# देववाणी-सुवासः

## द्वितीयः खण्डः

# देववाणी-सुवासः

## (डॉ० रमाकान्तशुक्लाभिनन्दनग्रन्थः)

# DEVAVĀṆĪ-SUVĀSAḤ

## (DR. RAMA KANT SHUKLA FELICITATION VOLUME)

# देववाणी-सुवासः

(डॉ० रमाकान्तशुक्लाभिनन्दनग्रन्थः)

द्वितीयः खण्डः

# DEVAVĀṆĪ-SUVĀSAḤ

(DR. RAMA KANT SHUKLA FELICITATION VOLUME)

Part II

प्रधानसम्पादकः

'अभिराज' डॉ० राजेन्द्र मिश्रः

प्रबन्धकसम्पादकः सहसम्पादकश्च

डॉ० चन्द्रमौलि शुक्लः

१९९३

प्रकाशकः

'डॉ० रमाकान्तशुक्लाभिनन्दनग्रन्थसमिति' कृते

देववाणी-प्रकाशनम् , नयी दिल्ली-११००५९

**देववाणी-सुवासः (डा० रमाकान्तशुक्लाभिनन्दनग्रन्थः) -२**

प्रधानसम्पादकः 'अभिराज' डॉ० राजेन्द्र मिश्रः
प्रबन्धसम्पादकः सहसम्पादकश्च : डॉ० चन्द्रमौलि शुक्लः
प्रकाशकः देववाणी-प्रकाशनम्
(डा० रमाकान्तशुक्लाभिनन्दनग्रन्थसमिति-कृते)
आर ६ वाणी विहार; नयी दिल्ली-११००५९ (भारतम्)
संस्करणम् : प्रथमम्, १९९३ ई०

**मूल्यम्**

सम्पूर्णग्रन्थस्य (प्रथम-द्वितीयखण्डात्मकस्य) पुस्तकालयसंस्करणस्य [ISBN : 81-900308-5-X]
भारते : २१०० ०० रूप्यकाणि (पुस्तकालयानां संस्थानां च कृते)
११०० ०० रूप्यकाणि (व्यक्तीनां कृते)
विदेशेषु : १०० यू० एस० डालरा : (पुस्तकालयानां, संस्थानां व्यक्तीनां च कृते)
द्वितीयखण्डस्य (पंचमप्रसरात्मकस्य) पुस्तकालयसंस्करणस्य [ISBN : 81-900308-7-6]
भारते : १५००:०० रूप्यकाणि (पुस्तकालयानां संस्थानां च कृते)
५५१ ०० रूप्यकाणि (व्यक्तीनां कृते)
द्वितीयखण्डस्य (पंचमप्रसरात्मकस्य) कर्गलपृष्ठसंस्करणस्य [ISBN : 81-900308-9-2]
२५१ ०० रूप्यकाणि (केवलं भारते, अध्यापकानां छात्राणामेव च कृते)


**DEVAVĀṆĪ SUVĀSAḤ-II**
(DR. RAMA KANT SHUKLA FELICITATION VOLUME)

EDITOR-IN-CHIEF
MISHRA, `ABHIRAJA' DR. RAJENDRA
MANAGING EDITOR & CO EDITOR
SHUKLA, DR. CHANDRA MAULI
PUBLISHER
DEVAVANI PRAKASHANAM
(FOR DR. RAMA KANT SHUKLA ABHINANDANA GRANTHA SAMIṬI)
R-6, VANI VIHAR, NEW DELHI-110059
EDITION : FIRST 1993

**PRICE :**

FULL SET (Part I & II) [ISBN : 81-900308-5-X]
IN INDIA Rs. 2100.00 (Rupees Two Thousand One Hundred Only)
(For Libraries and Institutions)
Rs. 1100.00 (Rupees One Thousand One Hundred Only)
(For Individuals)
OUT SIDE INDIA 100 U.S. $. (For Libraries, Institutions and Individuals)
*DEVAVĀṆĪ SUVĀSAḤ Part-II*, H.B. Edition [ISBN : 81-900308-7-6]
IN INDIA Rs. 1500.00 (Rupees One Thousand Five Hundred Only)
(For Libraries and Institutions)
Rs. 551.00 (Rupees Five Hundred Fifty One Only)
(For Individuals)
*DEVAVĀṆĪ SUVĀSAḤ Part-II*, Paper Back Edition [ISBN : 81-900308-9-2]
Rs. 251.00 (Rupees Tow Hundred Fifty One Only) Nett.
(For Teachers and Students Only in India).


मुद्रकः हिन्दी प्रिंटिग प्रेस, ए ४५ नारायणा औद्योगिक क्षेत्र द्वितीय चरण, नई दिल्ली

# संरक्षक-मंडल

प्रो० रामचन्द्र नारायण दाण्डेकर

(मानद सचिव, भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीच्यूट, पुणे
कृतकार्य महासचिव तथा अध्यक्ष, अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन, पुणे)

डॉ० प्रभुदयालु अग्निहोत्री

(कृतकार्य कुलपति, जबलपुर विश्वविद्यालय)

डॉ० प्रभाकर नारायण कवठेकर

(कृतकार्य, कुलपति, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन)

डॉ० आद्याप्रसाद मिश्र

(कृतकार्य कुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद)

डॉ० रमारंजन मुखर्जी

(कृतकार्य कुलपति, बर्दवान तथा विश्वभारती विश्वविद्यालय)

डॉ० रामकरण शर्मा

(कृतकार्य कुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
एवं कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा)

डॉ० सत्यव्रत शास्त्री

(कृतकार्य कुलपति, श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय, पुरी)

डॉ० मण्डन मिश्र

(कुलपति, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ दिल्ली)

डॉ० श्रीधर भास्कर वर्णेकर 'प्रज्ञाभारती'

(कृतकार्य प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर)

डॉ० रमेशचन्द्र शुक्ल

(संस्थापकाध्यक्ष, देववाणी-परिषद्, दिल्ली)

डॉ० बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञान'

(आचार्य, कालिदास अकादेमी, उज्जैन)

# परामर्शदातृ-मंडल

## डॉ० देवीदत्त शर्मा

(कृतकार्य प्रोफेसर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़,

## डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी

(कृतकार्य प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विद्या संकाय,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)

## डॉ० अशोक चटर्जी शास्त्री

(प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता)

## डॉ० कृष्णकान्त चतुर्वेदी

(प्रोफेसर एवं अध्यक्ष संस्कृत-पालि-प्राकृत-विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय ज़बलपुर)

## आचार्य श्रीनिवास रथ

(प्रोफेसर एवं अध्यक्ष संस्कृत-विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

एवं संचालक, कालिदास अकादेमी, उज्जैन)

## डॉ० राधावल्लभ त्रिपाठी

(प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, डा० हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर)

## डॉ० हरिनारायण दीक्षित

(प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल)

## डॉ० भास्कराचार्य त्रिपाठी

(सचिव, म० प्र० संस्कृत अकादमी तथा सम्पादक 'दूर्वा', भोपाल)

## डॉ० गणेशदत्त शर्मा

(प्राचार्य, लाजपतराय स्नातकोत्तर कालेज, साहिबाबाद)

# सम्पादक-मण्डलम्

## प्रधानसम्पादकः

'अभिराज' डॉ० राजेन्द्र मिश्रः

एम० ए०, डी० फिल्०

## सहसम्पादकाः

डॉ० दीक्षितपुष्पा

एम० ए०, पीएच० डी०

डॉ० रवीन्द्र नागरः

एम० ए०, पीएच० डी०, साहित्याचार्यः, वेदाचार्यः

डॉ० इच्छाराम द्विवेदी

एम० ए०, विद्यावाचस्पतिः, पुराणेतिहासाचार्यः

शीतांशु रथः

एम० ए०

कु० मनीषा शुक्ला

एम० ए०, बी० एड०

अरविन्दनाभ शुक्लः

एम० ए०

कु० माधवी शुक्ला

एम० ए०, बी० एड०

आनन्दवर्धन शुक्लः

एम० ए० (पू०)

## प्रबन्धसम्पादकः सहसम्पादकश्च

डॉ० चन्द्रमौलि शुक्लः

बी० ए०, बी० ए० एम० एस०

# प्रबन्धसम्पादक का निवेदन

'देववाणी-सुवास' (डा0 रमाकान्तशुक्लाभिनन्दन-ग्रन्थ) के प्रथम खण्ड में ग्रन्थ प्रकाशन में हुए विलम्ब आदि के विषय में विनम्र निवेदन किया जा चुका है।

'देववाणी-सुवास' के कलेवर को देखते हुए इसे एक ज़िल्द में प्रकाशित करना सम्भव प्रतीत न हुआ; अतः इसे दो खण्डों में प्रकाशित किया जा रहा है। प्रथम खण्ड में प्रधान सम्पादक डा0 राजेद्र मिश्र 'अभिराज' का विस्तृत प्राग्वाचिक समाविष्ट है जिसमें उन्होंने बीसवीं शताब्दी के संस्कृत साहित्य के विषय में महत्त्वपूर्ण चर्चा की है। इसका कुछ अंश इस खण्ड के प्रारम्भ में दिया जा रहा है। पाठकों से प्रार्थना है कि इसका अविकल रूप प्रथम खण्ड में देखने की कृपा करें।

प्रथम खण्ड में 'देववाणी-सुवास' के चार (1-4) प्रसर संकलित हैं। प्रथम प्रसर में अभिनन्द्य डा0 शुक्लजी के प्रति प्रेषित गुरुजनों के शुभाशीर्वाद, मित्रों की शुभकामनाएँ तथा अभिनन्दनग्रन्थ के सम्पादक के नाम शुभकामना-सन्देश हैं। कुछ पत्र सीधे डा0 शुक्ल को सम्बोधित थे, वे भी प्रथम प्रसर में संनिविष्ट कर दिये गये हैं। द्वितीय प्रसर में अभिनन्दनोक्तियाँ, साक्षात्कार और संस्मरण है। तृतीय प्रसर में वर्तमान युग को अपनी रचनाओं से आलोकित करने वाले कतिपय संस्कृत कवियों की रचनाएँ संकलित है। चतुर्थ प्रसर में संस्कृत साहित्य के विविध पक्षों पर विद्वानों के शोध-समीक्षात्मक लेख संकलित हैं। प्रथम खण्ड के अन्त में 1-4 प्रसर के लेखकों/रचनाकारों का संक्षिप्त परिचय अकारादि क्रम से दिया गया है।

द्वितीय खण्ड में पंचम प्रसर संकलित है जो बीसवीं शताब्दी के संस्कृत साहित्य से सम्बध है। इसके अन्त में भी लेखक परिचय प्रदत्त हैं।

अन्त में मैं डा0 रमाकान्त शुक्लभिनन्दन-ग्रन्थसमिति के संयोजक श्रद्धेय डा0 राजेन्द्र मिश्र जी 'अभिराज' का अत्यन्त आभारी हूँ। जिन्होंने इस ग्रन्थ के सह-सम्पादन और प्रबन्ध सम्पादन का मुझे अवसर दिया। मैं ग्रन्थ के संरक्षक मण्डल, परामर्शदातृ-मण्डल, सम्पादक-मण्डल तथा लेखकों के प्रति सादर नमन करता हूँ जिनकी सदाशयता से ग्रन्थ यह रूप ले सका है। अक्षरयोजक श्री संजय कुमार त्यागी, कु0 आरुषी गोयल और श्री ज्ञान प्रकाश त्यागी के प्रति धन्यवाद जिन्होंने संस्कृत ग्रन्थ का बड़े धैर्य और मनोयोग से अक्षरयोजन किया। ग्रन्थ मुद्रणार्थ हिन्दी प्रिंण्टिग प्रेस के स्वामी श्री श्यामसुन्दर गर्ग के प्रति भी हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

विनयावनत

महाशिवरात्रि, फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी वि0 सं0 २०४९ — चन्द्रमौलि शुक्ल

19.2.1993 ई0 — प्रबन्ध-सम्पादक

# प्राग्वाचिक

डा0 शुक्ल संस्कृत-जगत् की तीनों पीढ़ियों में कितने लोकप्रिय हैं इसका साक्ष्य, इस ग्रन्थ में संकलित आलेखों के रचनाकारों की नामावलि से प्राप्त होगा। कहने को तो यह विशाल ग्रन्थ डा0 शुक्ल के प्रति समर्पित 'अभिनन्दनग्रन्थ' है परन्तु सच्चे अर्थों में यह बीसवीं शताब्दी के संस्कृत वाङ्मय की विविध सर्जना का क्रमिक एवं प्रामाणिक विकास प्रस्तुत करने वाला एक अभूतपूर्व सन्दर्भ ग्रन्थ है। इस प्रकार का समर्थ साहित्यिक प्रयास इससे पूर्व नहीं ही हो सका था। शोध की दृष्टि से निश्चय ही यह ग्रन्थ महनीय सिद्ध होगा।

मैं राष्ट्र की उन महान् सारस्वत प्रतिभाओं के प्रति हार्दिक कृतज्ञता अर्पित करता हूँ जिन्होंने मेरी अभ्यर्थना स्वीकार कर वागध्वर के लिये अपनी रचनाहुति प्रेषित की। डा0 शुक्ल को अपने आशीष मंगलाशंसा एवं वर्धापन से अभिषिक्त करने वाले महामहिम गुरुजनों के प्रति, आलेखों के माध्यम से 'जय जीव' शब्द व्यक्त करने वाले विद्वज्ज्नों के प्रति तथा माँ शारदा की विलासवनिका में उभरे नवीन प्रतिभांकुरों के प्रति मैं क्रमशः प्रणाम, सम्मान एवं स्वाभिमान के साथ विनत हूँ।

हिमालय का अभिनन्दन उसकी प्रत्येक शिला का अभिनन्दन है। सागर का अभिनन्दन उसके प्रत्येक कल्लोल अभिनन्दन है। शिलाएँ ही हिमालय का निर्माण करती हैं। कल्लोल ही सागर सिरजते हैं। इस अभिनन्दन-ग्रन्थ के माध्यम से हमने भी एक हिमालय अथवा सागर गढ़ा है जिसकी संज्ञा है डा0 रमाकान्त शुक्ल! परन्तु सत्य यही है कि एक सहृदय रचनाकार का अभिनन्दन करके भारतवर्ष का सम्पूर्ण संस्कृत समाज स्वयमेव अभिनन्दित हुआ है। यह कार्य एक प्रतिष्ठित परम्परा का उदयविन्दु है । मुझे पूर्ण विश्वास है कि राष्ट्र का प्रत्येक संस्कृत सेवी इस परम्परा का स्वागत करेगा। एक बार पुनः अभिनन्द्य कविप्रवर, मान्य एवं वदान्य डा0 रमाकान्त शुक्ल जी के प्रति शतायुष्य की शुभकामना व्यक्त करते हुए यह सारस्वतोपायन सरस्वतीपुत्रों के ही कर-कमलो में अर्पित कर रहा हूँ।

विद्वद्वशंवद

२४ दिसम्बर १९९० ई0

अभिराज डॉ0 राजेन्द्र मिश्र

प्रधान सम्पादक

'देववाणी-सुवास'

(प्राग्वाचिक का सम्पूर्ण पाठ्य 'देवाणी-सुवास' के प्रथम खण्ड में अवलोकनीय है)

## देववाणीसुवासः

नैदाघैः पत्रवृन्तप्रसवविशरणैः प्रावृषेण्यैश्च दोषैः
जाड्यैर्हैमन्तजैर्वा मुहुरपि विरतिं यः प्रपेदेऽन्तरायम् ।
दिष्ट्या काल्पद्रुमोऽयं सहृदयमधुपैः पीतमाध्वीमरन्दः
स्वैरं सम्प्रत्यमन्दं प्रसरति परितो देववाणीसुवासः ॥

स्तोतारो विद्वदग्र्या बुधकुलमणयो देववाणीधुरीणाः
स्तोतव्यश्चापि शुक्लो गुणगणगरिमख्यातसर्वाङ्गकान्तः ।
वाग्देवीकीर्तिवृद्ध्यै यदपि सुविहितं कोविदैस्तत्कृतेऽयं
कार्तज्ञ्यप्रोदभारं वहति सविनयं भूरि राजेन्द्रमिश्रः ॥

राजेन्द्र मिश्रः

फाल्गुनकृष्णत्रयोदश्याम्
महाशिवरात्रौ वि० सं० २०४९
19.2.1993.

२५.१२.१९९० ई. तारिकायां नवदिल्ल्यां डॉ. रमाकान्तशुक्लाय
'देववाणी–सुवास'–प्रथमखण्डस्य पाण्डुलिपिं समर्पयन्
भारतस्य पूर्वराष्ट्रपतिः श्रीज्ञानीजैलसिंहमहाभागः

## डा० रमाकान्त शुक्लायाभिनन्दनग्रन्थः

डा० रमाकान्त शुक्लस्य संस्कृतसेवित्वं, कवित्वं, सम्पादकत्वं, समीक्षकत्वं, नाट्यकर्तृत्वं, देववाणी-प्रचारकत्वं चालक्ष्य 'डा० रमाकान्त शुक्लाभिनन्दन-ग्रन्थसमित्या' स्तत्त्वावधाने **'देववाणी-सुवासः'** इतिशीर्षकोऽभिनन्दनग्रन्थः प्रकाश्यते। प्रसिद्धसंस्कृतकविर्विद्वांश्च 'अभिराज' डा० राजेन्द्र मिश्रमहाभागो ऽस्याभिनन्दनग्रन्थस्य प्रधानसम्पादकोऽस्ति। डा० पुष्पा दीक्षित-डा० रवीन्द्र नागर-डा० इच्छारामद्विवेदप्रभृतयः सम्पादकमण्डलस्य सदस्याः सन्ति। अभिनन्दनग्रन्थस्य संरक्षकमण्डले प्रो० रामचन्द्रनारायण दाण्डेकर-डा० प्रभुदयाल अग्निहोत्री-डा० प्रभाकर नारायण कवठेकर प्रो० रमारञ्जन मुखर्जी-डा० आद्याप्रसाद मिश्र-डा० रामकरणशर्म-प्रो० सत्यव्रत शास्त्रि—डा० मण्डन मिश्र-डा० श्रीधरभास्कर वर्णेकर 'प्रज्ञाभारती'—डा० रमेशचन्द्र शुक्ल—डा० बच्चूलाल अवस्थिनः सदस्याः सन्ति। डा० देवीदत्तशर्म—डा० रेवाप्रसाद द्विवेद—आचार्य श्रीनिवासरथ—डा० राधावल्लभत्रिपाठि—डा० हरिनारायण दीक्षित—डा० भास्कराचार्य त्रिपाठि—डा० गणेशदत्तशर्माणः परामर्शदातृ-मण्डलसदस्याः सन्ति। अभिनन्दनग्रन्थे पञ्च खण्डाः सन्ति। १५०० प्रायपृष्ठेषु संस्कृतवाङ्मयस्य विविधपक्षेषु शताधिकविद्वद्भिः स्व विचारा अभिव्यक्ताः। श्रीकाञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वराणां जगद्गुरुश्रीशङ्कराचार्याणामाशीर्वादः डा० शुक्लाय, तस्य पञ्चाशत्तमे जन्मदिवसे (२४.१२.१९९०), वितीर्णोऽभवत्। २५.१२.१९९० तारिकायां नवदिल्ल्यां भारतस्य पूर्वराष्ट्रपतिना श्री ज्ञानी जैलसिंह—महाभागेन 'देववाणी-सुवास'स्य प्रथमखण्डस्य पाण्डुलिपिः डा० शुक्लाय समर्पिता। २८.१२.१९९० ई० तारिकायां मैनपुर्यामेकस्मिन् समारोहे द्वितीयखण्डस्य पाण्डुलिपिः डा० शुक्लाय उ० प्र० शिक्षामन्त्रिणा श्री अशोकवाजपेयीमहाभागेन समर्पिता। अभिनन्दनग्रन्थो मुद्रणाधीनो वर्तते। ग्रन्थार्थं देशविदेशस्थैनेकैर्विद्वद्भिः स्व शुभकामनाः प्रेषिताः सन्ति।

**१५-१-१९९१** (डा० रवीन्द्र नागरः)

## 'देववाणी सुवास' की पांडुलिपि भेंट की

नई दिल्ली, 25 दिसंबर (संस.): पूर्व राष्ट्रपति ज्ञानीजैल सिंह ने आज संस्कृत के प्रसिद्ध कवि और देववाणी परिषद्, दिल्ली के महासचिव डा. रमाकान्त शुक्ल को 50 वीं वर्षगांठ के अवसर पर 'देवावाणी-सुवास' नामक अभिनंदन ग्रन्थ के प्रथम खंड की पांडुलिपि भेंट की।

### संक्षिप्त समाचार

डा. रमाकान्त शुक्ल अभिनंदन ग्रन्थ समिति द्वारा आयोजित समारोह में इस अवसर पर राष्ट्रपति को डा. शुक्ल रचित ग्रन्थ भेंट किये गये। डा. शुक्ल को समर्पित 'अभिनंदन ग्रंथ पांच खंडों में है। उसके प्रधान संपादक डा. राजेन्द्र मिश्र है।

**दैनिक जागरण, नई दिल्ली 26 दिसम्बर, 1990 (3)**

# देववाणी-सुवासः

(डॉ० रमाकान्तशुक्लाभिनन्दनग्रन्थः)

## पंचमः प्रसरः

### विंशशताब्दीयसंस्कृतसाहित्यविमर्शः

# देववाणी-सुवासः (पञ्चमः प्रसरः)

## अनुक्रमणिका

# डॉ0 रमाकान्त शुक्ल : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

डॉ0 जनार्दनप्रसाद पाण्डेय 'मणि'

उत्तर प्रदेश के खुर्जा में उत्पन्न, जननी प्रियम्वदा की स्नेहाभिषिक्त ऊर्जा से लालित-पोषित, संस्कृत-सरस्वती की सेवा में ही समूचे जीवन को समर्पित कर देने वाले विद्वद्वरेण्य, उदग्र-मेधा से समालिङ्गित, सुकवि, पण्डितप्रवर, पूज्य पितृवर्य श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल के द्वारा क्षण प्रतिक्षण निर्देशित, बरेली कालेज के संस्कृत-विभागाध्यक्ष डॉ0 कृष्णकान्त शुक्ल एवं मुजफ्फरनगर एस0 डी0 कालेज के संस्कृत-विभाग प्रवाचक डॉ0 उमाकान्त शुक्ल के अनुज, सहारनपुर जे0 वी0 जैन कालेज के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ0 विष्णुकान्त शुक्ल के अग्रज, स्वयं राजधानी कालेज, नयी दिल्ली में हिन्दी के प्रवाचक, देववाणी-परिषद्, दिल्ली के महासचिव, ''अर्वाचीनसंस्कृतम्'' त्रैमासिक संस्कृत पत्रिका के सम्पादक, सुसंस्कृत एवं साक्षर पारिवारिक परिवेश के धनी, देववाणी-परिषद् की पूर्वोपाध्यक्षा, देवभाषा विदुषी, मूर्तिमती भारतीय संस्कृति, सुपत्नी श्रीमती रमा शुक्ला के निश्छल अनुराग-तड़ाग में सुस्नात, अमरधुनी के अमर गायक, राष्ट्रभारती एवं सुरभारती दोनों में परास्नातक, साहित्य-सांख्ययोगाचार्य, अधिगतडॉक्टरेटपदवीक, विद्वत्तल्लज, कविता-वनिता-विभ्रमरञ्जित-पुलकित-कवयिता, निःशङ्क वक्ता डॉ0 रमाकान्त शुक्ल के पावनाभिधान से संस्कृत-जगत् का कौन सा सहृदय अपरिचित होगा! २४ दिसम्बर १९४० का वह दिन निस्सन्देह धन्य था, जिस दिन संस्कृत-जगत् के इस अद्वितीय पुरोधा ने जन्म लिया था। डॉ0 शुक्ल आज अपने जीवन का पचासवाँ शिशिर देख रहे हैं। प्रस्तुत है डॉ0 शुक्ल के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व की एक विश्लेषणात्मिका झाँकी, जो उनकी अक्षय थाती एवं अब तक की उत्कृष्ट कमाई है ।

## व्यक्तित्व

किसी भी व्यक्ति की सम्पूर्ण शारीरिक विशेषताओं एवं मानसिक प्रवृत्तियों की समन्वित इकाई ही उस का व्यक्तित्व है । व्यक्तित्व के अन्तर्गत जिनकी परिगणना होती है, उनमें प्रेरणायें, प्रवृत्तियाँ, अनुभवजन्य मानसिक दशायें, रुचि, दृष्टिकोण, विचार, आदर्श एवं आदतें प्रमुख हैं । यद्यपि व्यक्तित्व के पक्ष अनन्त हैं फिर भी तथ्यात्मक विभाजन में व्यक्तित्व तीन प्रकार का हो जाता है :

१- शारीरिक, २- मानसिक, ३- चारित्रिक,

यदि इन्हें व्यक्तित्व का प्रकार मात्र कहा जाय, तो व्यक्तित्व को इनका सक्रिय संगठनमात्र कहा जा सकता है। कोई भी कलाकृति उसकी सर्जना करने वाले कलाकार के व्यक्तित्व के अनुरूप होती है। यदि हमें कलाकार के व्यक्तित्व का ज्ञान है तो उसकी कृति के मर्म तक पहुँचने में सहायता प्राप्त होती है। यह निःसंदिग्ध है कि कवि से उत्कृष्टतर कलाकार की सृष्टि ब्रह्माण्ड में नहीं हुई। आचार्य आनन्दवर्धन स्पष्ट शब्दों में कहते हैं,

अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ।।

(ध्वन्यालोक, ३ उद्योत)

इस अपार संसार में कवि प्रजापति के समान है; वह जैसा चाहता है वैसे ही काव्य जगत् को बना डालता है। आनन्दवर्धन की इस मान्यता का समर्थन अभिनव गुप्त ने नाट्यशास्त्र की अभिनवभारती टीका में कई जगह किया है। वे एक जगह लिखते हैं-

नमस्त्रैलोक्यनिर्माणकवये शम्भवे यतः ।।

(अभिनवभारती, पृ0 ३६)

एवं पितामहसदृशेन सर्वदा नाट्यवेदशरीररूपनिर्माणे कविना भाव्यमिति ।।

(अभिनवभारती, पृ0 १०६)

कवेरपि सहृदयायतन-सहतोदित-प्रतिभाविधानपरवाग्देवतानुग्रहोत्थितविचित्रापूर्वनिर्माणशक्तिशालिना प्रजापतिरिव कामजनित-जगतः।।

(अभिनवभारती (ना0 शा0) पृ0 १४२)

उपर्युक्त उद्धरणों में द्रष्टव्य है कि आचार्य अभिनवगुप्त ने कवि को प्रजापति, शम्भु, पितामह स्वीकार किया। ''कामजनितजगतः'' कहकर अभिनव ने आनन्द वर्धन प्रतिपादित कवि के स्वातन्त्र्य को पूर्ण स्वीकृति दी। काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने कवि-भारती की ''अनन्यपरतन्त्रा'' रूप में वन्दना की :

नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतंत्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति ।।

(काव्यप्रकाश १/१)

''नियतिकृत नियमों से रहित, केवल आनन्दमयी, कविभारती से अन्य की

अधीनता से विमुक्त, नव रसों से रमणीय, काव्य सृष्टि को प्रकट करती हुई कवि की वाग्देवी सर्वोत्कृष्ट रूप से वर्तमान है ।''

उदाहरण में सम्प्राप्त काव्यप्रकाश के एक और श्लोक में यह बात अभिव्यक्ति को प्राप्त करती है-

या स्थविरमिव हसन्ती कविवदनाम्बुरुहबद्धविनिवेशा ।
दर्शयति भुवनमण्डलमन्यदिव जयतु सा वाणी ।।

(काव्यप्रकाश ४ उल्लास,)

''वह वाणी विजयिनी हो, जो मानो बूढ़े ब्रह्मा का उपहास करती हुई कवि के वदन कमल में निवास करती हुई, संसार का कुछ दूसरे ही प्रकार से प्राकट्य करती है ।''

उपर्युक्त सभी उद्धरणों का अभिप्राय प्रस्तुत प्रसङ्ग में यहाँ यह है ''कि जिस प्रकार इस संसार के वैविध्य वैचित्र्य, या सौन्दर्य में हम प्रजापति के विराट् व्यक्तित्व का अनुमान लगा सकते हैं, उसी प्रकार काव्य के अध्ययन से हम कवि के व्यक्तित्व को समझ सकते हैं । कवि काव्य का निर्माण स्वेच्छया ही करता है, फलतः कवि के अनुरूप ही उसका काव्य हो जाता है । चित्रकार के दृष्टान्त के माध्यम से आचार्य राजशेखर इस बात को बड़ी ही स्पष्टता के साथ कहते हैं :

स यत्स्वभावः कविस्तदनुरूपं काव्यम् । यादृशश्चित्रकारस्तादृशाकारमस्य चित्रमिति प्रायो वादः ।। (काव्यमीमांसा, पृ0 १२२)

पाश्चात्य काव्यशास्त्री कालरिज का यह कथन कि, So He is So He writes. अर्थात् 'जैसा वह है, वैसा ही लिखता है' राजशेखर के कथन से पूर्ण साम्य रखता है । आनन्दवर्धन भी कवि के स्वभाव के अनुरूप ही काव्यसृष्टि को इस प्रकार स्वीकृति देते हैं:

शृंगारी चेत् कविः काव्ये जातं रसमयञ्जगत् ।
स एव वीतरागश्चेन्नीरसं सर्वमेव तत् ।।

(ध्वन्यालोक, उद्योत ३)

''यदि काव्य में कवि शृंगारी है, तो सारा संसार रसमय हो जाता है; और यदि वही कवि वीतराग हो जाय, तो सारा संसार शुष्क (नीरस) हो जाता है । वास्तव में साहित्य कवि की आत्माभिव्यक्ति है । बृहदारण्यकोपनिषद् ने भी ''**अयमात्मा वाङ्मयः**'' कहकर इसको स्वीकारा है । पाश्चात्य विद्वान् गेटे ने कहा कि किसी व्यक्ति की शैली उस के मस्तिष्क की सच्ची प्रतिलिपि होती है । शोपेनहावर

शैली का आत्मा की प्रतिच्छवि मानता है, टी0 एड्वाड्स शैली को व्यक्ति के स्वभाव का अंग मानता है। व्यक्तित्व के मानसिक एवं चारित्रिक पक्ष का काव्य के साथ सीधा संबन्ध होता है। व्यक्तित्व के शारीरिक पक्ष का काव्य से उतना सीधा संबन्ध नहीं होता। हाँ, यह अवश्य है कि शारीरिक हीनता न्यूनता की भावना की उत्पादिका हो जाती है। अतः, काव्य में व्यक्तित्व का शारीरिक पक्ष भी चिन्तन, अनुभूति, श्रद्धा, करुणा, दया, क्रोध के समानान्तर तीती-मीठी जीवन की अनुभूतियों के समीप अपनी एक हल्की सी छवि उभारता रहता है। काव्य कवि की आत्माभिव्यक्ति है, अथवा काव्य में कवि स्वयं अपने आप को अभिव्यक्त करता है, यह सिद्धान्त गीतिकाव्य, स्तोत्रकाव्य, श्रव्यकाव्य (खण्डकाव्य, प्रबन्धकाव्य) एवं दृश्य काव्य-सर्वत्र सिद्धि को प्राप्त करता है। यद्यपि साहित्य समाज का दर्पण होता है; काव्य में समूचे समाज एवं समग्र जीवन का चित्र होता है; तथापि कवि कहीं भी अपने व्यक्तित्व को नजरअंदाज करके नहीं चलता। उसकी अभिव्यक्ति का ढंग सब जगह अलग अलग होता है। कहीं कहीं पर वह अपनी बात प्रत्यक्ष कहता है, अपने सिद्धान्त, अपनी दृष्टि एवं अपनी मान्यता विन्यस्त करता है, कहीं कहीं वह परोक्ष रूप से; कही कवि विषयप्रधान होता है, कहीं पर विषयिप्रधान; कहीं पर वह अभिधया बोलता है, कहीं कहीं व्यञ्जनया। तभी तो आचार्य नमिसाधु ने रुद्रट की टीका में लिखा है,

नायकमुखेन कविरेव मन्त्रयते निश्चिनोतीति केचित् ॥(नमिसाधुः)

"नायक के मुखसे कवि ही बोलता है।"

नहि महाकविभिः वाल्मीकिप्रमुखैरिव ध्यानदृष्ट्या रामादीनामवस्थाः प्रातिस्विका निरूप्यन्ते, किन्तु रामादिकमाश्रयतया परिकल्प्य स्वप्रतिभाप्रभावलब्धाः सर्वसाधारणाः इति।

(प्रतापरुद्रीय टीका, कुमारस्वामी)

अर्थात् कवि की प्रतिभा उसके व्यक्तित्व की सर्वोत्कृष्ट शक्तिमत्ता है जो भावात्मिका, चेतोहरा एवं चिन्तनात्मिका है। कवि के व्यक्तित्व, उसकी मान्यताओं, प्रकृति, भावनाओं एवं आदर्श मर्यादाश्रित चिन्तनाओं से ही तो वाङ्मयरूपी दर्पण का निर्माण होता है। यदि "कला एक विशेष प्रकृति में देखा गया जीवन है"[१] तो द्रष्टा की बाह्याऽभ्यन्तरीय छवि के प्रभाव से वह दृष्ट जीवन असंसृष्ट नहीं है।

---

१- द्रष्टव्य, Art is a life seen through a temperament. (Introduction to the study of litrature, P. 15)

कविता अनुभव और संवेगों की अभिव्यक्ति का माध्यम है । वे अनुभव और संवेग यदि कवि के हैं तो उस के व्यक्तित्व के अंग हैं । तो, काव्य व्यक्तित्व की ही अभिव्यक्ति हुआ । यदि काव्य में अभिव्यक्त संवेदन दूसरे के हैं, तो भी वे कवि के व्यक्तित्व के वैशिष्ट्य की अभिव्यक्ति ही है । दूसरे के संवेदनों को पढ़ना, उसे अभिव्यक्ति देना कवि के व्यक्तित्व के वैशिष्ट्य की नियति है । यदि ऐसा नहीं तो, जहाँ क्रौञ्च की मृत्यु पर क्रौञ्ची विलाप कर रही थी, वहाँ वाल्मीकि के संवेदनशील अन्तस् से शाप फूट पड़ने का क्या औचित्य था । कवि दूसरों की संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के माध्यम से पाठक, श्रोता, द्रष्टा तक अपनी कोई मान्यता एवं अपना कोई न कोई संदेश अवश्य पहुँचाता है । तभी तो साहित्य व्यक्तित्व के उदात्त पक्ष की अभिव्यक्ति हो पाता है । कविता विश्वहृदय, निष्कलुष एवं विश्वचेतन होने पर ही तो लिखी जाती है । लिखी क्या जाती है, लिख जाती है । हम पाश्चात्य काव्यशास्त्री इलियट के इस सिद्धान्त को मान्यता नहीं देते कि ''कविता अहं की अभिव्यक्ति नहीं, अहं का विसर्जन है ।''

Poetry is not the expression of personality but an escape from Personality. (Selected Essay's P. 21)

''कवि का व्यक्तित्व काव्य की पृष्ठभूमि से दूर कभी भी नहीं'' पाश्चात्य काव्यशास्त्र की यह मान्यता शायद इलियट स्वीकार कर रहे हों । किन्तु व्यक्तित्व का विसर्जन ही साहित्य या कविता है- यह कभी मान्य नहीं हो सकता । काव्य दो प्रकार का होता है :

१- सायास काव्य

२- अनायास काव्य

एक में बुद्धि प्रधान है तो दूसरे में हृदय । एक में हृदय गौण है तो दूसरे में बुद्धि। किन्तु व्यक्तित्व दोनों में समानप्रवाह शक्तिप्रदातृत्व की पृष्ठभूमि में है। व्यक्तित्व को साथ लेकर ही सार्वभौम कलातत्त्व का विकास हो सकता है । सच्चा कलाकार अपने विशिष्ट जीवन की विशिष्ट अनुभूतियों को सार्वभौम मानव की अनुभूतियों में ढाल लेता है । तब उसकी अनुभूतियाँ सर्वजनसंवेद्य एवं प्रेषणीय बन जाया करती हैं । प्रातिभ ज्ञान, सहज ज्ञान, कल्पना एवं तन्मयता कविव्यक्तित्व को अभिव्यक्ति एवं नवनवोद्‌बोध के लिए विवश करती हैं । सांस्कृतिक एवं साहित्यिक पृष्ठभूमि, समसामयिक परिवेश, वंश-परिवार, भौतिकता एवं अभ्यास व्यक्तित्व के विकास में सहायक होते हैं ।

व्यक्तित्व की इन कुछ परिभाषाओं एवं वास्तविकताओं को अपने प्रतिपाद्य की भूमिका बनाकर हम डॉ0 रमाकान्त शुक्ल के सहज एवं उदात्त-व्यक्तित्व की कुलीन कल्लोलिनी में अवगाहन को तत्पर हो रहे हैं । इस कथ्य में सन्देह का लेशमात्र भी अवशेष नहीं बचता कि डॉ0 शुक्ल के व्यक्तित्व का प्रत्येक पक्ष परम

आकर्षक है । उनके सहज एवं सर्वजनाभिनन्द्य व्यक्तित्व का चाहे, शारीरिक पक्ष हो, चाहे मानसिक पक्ष हो, चाहे चारित्रिक पक्ष हो, या और विभाजन करें तो कह सकते हैं, कि चाहे आध्यात्मिक पक्ष हो, चाहे भौतिक पक्ष हो, चाहे हार्दिक पक्ष हो, चाहे आत्मिक पक्ष हो, चाहे व्यावहारिक पक्ष हो, चाहे सामाजिक पक्ष हो, चाहे सैद्धान्तिक पक्ष हो, चाहे निरा मौलिक पक्ष हो, चाहे आर्थिक पक्ष हो चाहे राजनैतिक पक्ष हो, सर्वत्र समान रूप से मनोहरता एवं सरलता की क्रीड़ा हुआ करती है । अपने प्रथम साक्षात्कार से ही सहृदय समाज पर जादू कर देने वाले डॉ0 शुक्ल के विराट् व्यक्तित्व में वे सभी गुण विद्यमान हैं जिनकी कामना मानव जन्म जन्मान्तर से करता आ रहा है । जैसे विशाल एवं स्वच्छ उनके व्यक्तित्व का बाह्य पक्ष यानी शारीरिक पक्ष है, वैसे ही विराट् एवं निष्कलुष उन के व्यक्तित्व का आभ्यन्तर पक्ष यानी हार्दिक पक्ष है । उनके सतरंगी व्यक्तित्व को रेखांकित करने के लिए उनके जैसे ही व्यक्तित्व की अपेक्षा होती है, किन्तु यह सुलभ नहीं हो पाता, क्योंकि वे अद्वितीय हैं । उनके बहुआयामी आनन्त्य-भावावेष्टित-विशद व्यक्तित्व में तुच्छता एवं क्षुद्रता, राग, द्वेष, ईर्ष्या, असूया प्रभृति कलुषाधृत भावनायें प्रवेश ही नहीं कर पाती हैं । उनके विशाल हृदय का सामीप्य पाकर ये निन्दनीय भावनायें स्वयं आत्मसमर्पण कर बैठती हैं । इनका अस्तित्व ही समाप्त हुआ रहता है । उनकी ओजस्विनी वाणी एवं प्रभाप्रदीप्त मुखमंडल के समक्ष दुष्प्रवृत्तियों एवं दुर्भावनाओं की तो सत्ता का कोई प्रश्न ही नहीं उठता ।

सन् १९८७ में, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के शताब्दी समारोह में पधारे डॉ0 शुक्ल के प्रथम साक्षात्कार ने ही मुझे उनके व्यक्तित्व का पुजारी बना दिया । ज्यों ज्यों मैं उनके सन्निकट होता गया मेरी श्रद्धा उन पर और बढ़ती गयी । आज उसी का परिणाम है कि मैं उन सन्तशिरोमणि के व्यक्तित्व-कर्तृत्व पर लेखनी उठाने को विवश हो गया । उनके परम उदार महतो महीयान् विराट् हृदय में समूची हृदय सृष्टि को समाविष्ट कर लेने की क्षमता है । जैसा कि मैं पहले कह आया हूँ कि साहित्य कवि के व्यक्तित्व की ही आत्माभिव्यक्ति है । इस सिद्धान्त के माध्यम से अब हम आचार्य डॉ0 शुक्ल के साहित्य यानी उनके कर्तृत्व (कृतित्व ) से अवगत होंगे । डॉ0 शुक्ल का कहीं चन्दन की तरह शीतल व्यक्तित्व, फिर कहीं चैत्रानल की तरह उद्दाम व्यक्तित्व उनकी रचनाओं में किस प्रकार अभिव्यक्त हुआ है, रचनाओं की भावभूमि, शिल्प, चरित्र चित्रण एवं कथानक तथा कथनोपकथन व्यक्तित्व के उर्वर साँचे में किस प्रकार ढलते गये हैं, यही हमारे अध्ययन का सम्प्रति प्रमुख विषय है ।

## व्यक्तित्व से अभिन्न कर्तृत्व

अपने जीवन के पचासवें शिशिर तक अध्ययन, अध्यापन एवं शोध करते हुए, देश विदेश की विविध कविगोष्ठियों, शोध संगोष्ठियों एवं कवि सम्मेलनों में भाग

लेते हुए, आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के विविध कार्यक्रमों के माध्यम से अपनी मनोभावनाओं एवं संवेदनाओं से, सहज-सम्प्रेषणीय रचनाओं से सामान्य को, विशेष को, समष्टि को, व्यष्टि को, सर्वविध समाज को जोड़ते हुए, विविध रूपकों का अभिनय, मञ्चन एवं निर्देशन करते हुए, देववाणी-परिषद् के महासचिवत्व के गुरुतर भार को वहन करते हुए, अर्वाचीनसंस्कृतम् जैसी उत्कृष्ट त्रैमासिक संस्कृत पत्रिका के सम्पादक की महनीय पदगरिमा को सँवारते हुए, समसामयिक अनेक विषयों पर वाद-विवाद एवं सम्भाषण चिन्तन करते हुए, घर-परिवार-समाज-प्रान्त-राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों की सम्यक् पूर्ति करते हुए, अन्तेवासियों, सहृदयों, कवियों एवं सुहृदों को अपेक्षित समय देते हुए कविकेसरी डॉ० शुक्ल ने जितनी रचनाओं से संस्कृत वाङ्मय की श्रीवृद्धि की है, वह अद्भुत है। उनकी प्रकाशित रचनायें जो अब तक मेरी जानकारी में हैं, नीचे द्रष्टव्य हैं :

## (१) कवितायें- अर्वाचीनसंस्कृतम् में प्रकाशित

१- भाति मे भारतम् -संस्कृतकाव्य प्रकाशित अप्रैल एवं अक्टूबर १९८०,
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय की एम0 ए0 संस्कृत की
कक्षा में पाठ्यत्वेन निर्धारित, रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय
एवं कुमायूँ विश्वविद्यालय की बी0 ए0 की कक्षा में तथा
जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय की शास्त्रिकक्षा में
पाठ्यत्वेन निर्धारित

| | | | |
|---|---|---|---|
| २- सुरभारती विजयते, | कविता | प्रकाशित | जुलाई १९८१ |
| ३- राजस्थानम्, | कविता | प्रकाशित | अप्रैल १९८३ |
| ४- उज्जयिनीयं जयति, | कविता | प्रकाशित | जनवरी १९८४ |
| ५- भाति मौरीशसम्, | कविता | प्रकाशित | अप्रैल १९८४ |
| ६- राष्ट्रदेवते ! | कविता | प्रकाशित | जनवरी १९८६ |
| ७- भारतजनताऽहम्, | कविता | प्रकाशित | जुलाई १९८६ |
| ८- अहं स्वतंत्रता भणामि, | कविता, | प्रकाशित | अक्टूबर १९८२ तथा जनवरी १९८७ |
| ९- रौति ते भारतम्, | कविता | प्रकाशित | अप्रैल १९८७ |
| १०- मेघप्रबोधनम्, | कविता | प्रकाशित | अक्टूबर १९८७ |
| ११- अकालजलद, | कविता | प्रकाशित | अप्रैल १९८८ |
| १२- स्वागतं पयोद ते, | कविता | प्रकाशित | जुलाई १९८८ |

१३- नेहरुं तं स्मरामो वयं सादरम्, कविता प्रकाशित जनवरी १९८९

१४- एकं सद्बहुधा विलोक्यते भारतम्, कविता प्रकाशित अप्रैल १९८९

१५- जाबालिपुरं चल, कविता प्रकाशित अप्रैल १९९०

१६- उत्तरमङ्गलम्, कविता प्रकाशित जनवरी १९९०

१७- वदत नेतारो मनाक्, कविता प्रकाशित नवम्बर १९९०

१८- जय भारतभूमे, स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित दिसम्बर १९८१

## (२) नाटक (नाट्यसाहित्य)

१- पण्डितराजीयम्, नाटक, प्रकाशित, जुलाई १९८४

२- पुरश्चरणकमलम्, नाटक, प्रकाशित, जुलाई १९८४

३- अभिशापम्, ध्वनिनाटक, प्रकाशित, अक्टूबर १९८४

४- विक्रमोर्वशीयम्, ध्वनिनाट्यरूपान्तर, प्रकाशित, जुलाई १९८९

५- आलोकिनी, ध्वनिनाटक, प्रकाशित, जुलाई १९८९

६- दाराशिकोहीयम्, ध्वनिनाटक, प्रकाशित, अक्टूबर १९८९

७- नियतिचक्रम्, ध्वनिनाटक, प्रकाशित, मार्च १९७६

## (३) शोध एवं समीक्षा

१- जैनाचार्य रविषेणकृत पद्मपुराण एवं तुलसीकृत रामचरितमानस (हिन्दी) तुलनात्मक समीक्षण, पुस्तक रूप में १९७४ में प्रकाशित, उ0 प्र0 शासन से पुरस्कृत,

२- विंशशताब्दीय-रामकाव्यपरम्परायां श्रीरामविलापः, प्रकाशित अप्रैल १९८४, अ0 सं0

३- श्रीगान्धिचरितवैशिष्ट्यम्, प्रकाशित अप्रैल १९८९, अ0 सं0

इसके अलावा अनेक शोधपत्र डॉ0 शुक्ल ने लिखे हैं। सब का विवरण यहाँ मैं नहीं दे पा रहा हूँ।

जहाँ तक समीक्षा की बात है अपने ''अर्वाचीनसंस्कृतम्'' में नयी नयी रचनाओं तथा ग्रन्थरत्नों का प्रकाशन करके डॉ0 शुक्ल उनकी समीक्षा भी किया करते हैं। एवं इसके अलावा अन्यत्र से प्रकाशित नयी नयी रचनाएँ एवं काव्य डॉ0

शुक्ल के पास समीक्षा के लिए आते हैं । आप उनकी भी समीक्षा करते हैं । ''अर्वाचीनसंस्कृतम्'' पत्रिका में उनका प्रकाशन भी होता है । मैं उनमें कुछ की चर्चा कर देता हूँ :

१- अर्वाचीन-संस्कृत-महाकाव्य-विमर्शः- खण्डत्रय में प्रकाशित पुस्तक रूप में उपलब्ध ।

२- अर्वाचीनसंस्कृतसाहित्येतिहासलेखनस्यावश्यकता, निबन्ध प्रकाशित अ0 सं0

३- राधाकृष्णरसायन-समीक्षा,

४- द्वारकाधीशमहाकाव्य-समीक्षा, प्रकाशित अ0 सं0

५- डॉ0 सी0 आर0 स्वामिनाथकृतरचनात्रयसमीक्षा, प्र0 अ0 सं0 इत्यादि ।।

## (४) व्याख्या तथा अनुवाद

१- उत्तररामचरितम् (प्रियम्वदा टीका) सहलेखन

२- कूहा- हिन्दी तथा अंग्रेजी अनुवाद

३- कालिदास के रघुवंश तथा कुमारसंभव के अंशों के हिन्दी काव्यानुवाद

## (५) अप्रकाशित रचनायें,

१- मजबूत धागे-हिदी नाटक, आकाशवाणी सं १९७२ में प्रसारित

२- अन्य अनेक स्फुट कवितायें, रेडियो वार्ताएँ तथा शोधपत्र

इस प्रकार डॉ0 शुक्ल ने अपने को साहित्य की विविध धाराओं से जोड़ते हुए, समाज, राष्ट्र, संस्कृति एवं संस्कृत के लिए प्रभूत सर्जना की है । उनकी रचनाओं की जीवन्तता एवं सम्प्रेषणीयता से कोई तटस्थ हो ही नहीं पाता है । यही कारण है कि संस्कृत विधा के सभी मंचों पर उनका हर एक श्रोता से सीधा हार्दिक सम्बन्ध बन जाता है । मंच उनका हो जाता है और वे उसके बेताज बादशाह हो जाते हैं ।

डॉ0 शुक्ल की कविता धारा जिस उत्स से नवीनता एवं सहजता पाती है वह है उनका वह अक्षय संस्कार जो उन्हें पिता, माता, पत्नी, भाई एवं भावुक संसार से मिला है । संस्कृतमय एवं संस्कृतिमय, मर्यादित, कवितालहरीचुम्बित, प्रबुद्ध परिवार ने डॉ0 शुक्ल को संवेदना के उर्वर धरातल पर बैठने को विवश कर दिया। उनकी अब तक की हुई समीक्षायें, उनके शोध ग्रन्थ एवं शोधपत्र जहाँ उनकी पाण्डित्यप्रौढि, उनके परमानुभवी बौद्धिक व्यक्तित्व की छवि उभारती है, वहीं उनके एकांकी, उनके नाटक, उनके अन्दर छुपे हुए थिरकते भाव संसार वाले उत्कृष्ट कलाकार की छवि एवं रसानुभूति से परिपुष्ट पुलकित व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

करते हैं। इसके बाद जब डॉ0 शुक्ल के गीतों की, गीतात्मक पद्यों की, पद्यात्मकश्लोकनिकुञ्जों की, संवेदनात्मिका वीथी रसमाधुरी की कादम्बिनी से क्लिन्न होती है तब उनके अन्तरङ्ग की प्रतिभा वधूटी अपने अवगुण्ठन को उठाकर अपनी स्निग्धरूपराशि के प्रदर्शन के बहाने अपने हासों, विलासों की मधुर मधुरा पयस्विनी में डॉ0 शुक्ल के सतरंगी व्यक्तित्व को देखने, समझने एवं जानने के लिए सहृदय-जगत् को बाध्य कर देती है।

डॉ0 शुक्ल की सबसे बड़ी विशेषता उनकी सरल सुबोध एवं प्रसादपेशल भाषा है। भाव के साथ भाषा का लालित्य उनके नाटकों के कथानकों की स्पन्दनालिङ्गित गति को सम्प्रेषणीयता प्रदान करता रहता है। ''पण्डितराजीयम्'' नाटक में भावों की मधुरता के साथ भाषा की थिरकाहट एवं चूर्णकता मन को मोह लेती हैं। नारी-स्वभाव की लज्जाशीलता लवङ्गी के चरित्र में दिखाई देती है वह जब सखी को तेजी सी बोलने से रोकती है[१]। फिर पण्डितराज को पेय देते समय उसके हाथों में व शरीर में[२] कम्पन हो जाता है। कालिदास की शकुन्तला यदि वह नहीं तो उनकी पार्वती तो है ही। कालिदास ने पार्वती को, भगवान् शिव के समक्ष स्थैर्यभावनिषिद्ध[३] करके सहृदय चिन्तकों को रस सरिता में बहुत देर तक डूबते रहने का सौभाग्य दिया तो डॉ0 शुक्ल ने लवङ्गी[४] को उसी रूप में चित्रित कर। यह कथन लवङ्गी के स्वगत वक्तव्य में प्राप्त होता है। बाद में लवङ्गी पण्डितराज की काव्यपङ्क्ति सुनकर अपने पैरों को आगे जाने में असमर्थ एवं पीछे की ही ओर मुड़ने में समर्थ पाती है; क्योंकि पीछे होकर ही वह अपने अभिवाञ्छित प्रेमी की बात सुन सकती थी। नारी की इतनी सूक्ष्म अनुभूतियों का चित्रण डा0 शुक्ल की सर्वान्तिःव्यापिनी एवं दिगन्तगामिनी शेमुषी का परिचायक है। जिससे

द्रष्टव्य-

१- **लवङ्गी-** मूढे ! शनकैर्वद। कथं तारस्वरेण प्रलपसि ? यदि कश्चिच्छृणुयात् ॥ (पण्डितराजीयम्, डॉ0 शुक्ल)

२- **शाहजहानः-** लवङ्गि ! पण्डितराजाय पेयदानकाले तव हस्ते कम्पः कथं सञ्जायते ॥ (पण्डितराजीयम्, डॉ0 शुक्ल)

३- मार्गाचलव्यतिकराऽकुलितेव सिन्धुः
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ॥
(कुमारसम्भवम्, कालिदास)

४- **लवङ्गी-** (स्वगतम्) -- वीक्ष्य शरीरे मनसि च अन्यदेव भवति।
नापि स्थातुं नैव च गन्तुं मे शक्तिः ॥
(पण्डितराजीयम्, डॉ0 शुक्ल)

प्रेमानुराग हो मन यदि उसे छोड़कर चरणों के साथ[१] आगे जाना चाहता है तो वह जा नहीं पाता। वह तो फिर पीछे ही चलता आता है। डॉ0 शुक्ल की लवङ्गी अपने स्वगत वक्यव्य में ही यह बात कहती है[२]। कालिदास को इस के लिए पुरुष पात्र ढूँढ़ना पड़ता है। उन्होंने तो शकुन्तला का साक्षात्कार करके लौटे[३] दुष्यन्त से यह कहलवाया है। यद्यपि शकुन्तला एवं[४] पार्वती दोनों को कालिदास इस सत्य की पृष्ठभूमि तक ले आ चुके हैं। डॉ0 शुक्ल अपने छोटे से एकाङ्की में ही रससमुद्र उडेलकर गागर में सागर भर देते हैं। "पुरश्चरणकमलम्" एवं "विक्रमोर्वशीयम्" में भाषा की सहजता, प्रवाहमयता, कथानक-कथनोपकथन की सर्वांग-सम्पूर्णता प्रतिबिम्बित होती है। "आलोकिनी" दीपावली के ऐतिहासिक[५] आधार के सत्य सर्वेक्षण का प्रतिपादन करती है। यह सर्वजन बोद्धव्य है कि डॉ0 शुक्ल अपने नाटकों में समष्टि को साथ लेकर चलते हैं। यदि संसार अपना कुटुम्ब है तो निश्छल भावाङ्गना लवङ्गी पण्डितराज को अभिप्रेत थी।

डॉ0 शुक्ल के नाटकों में उनके विचार यानी उनके व्यक्तित्व का आभ्यंतर पक्ष, मान्यताओं एवं आदर्शों के साथ उपस्थित हुआ है। सौन्दर्य एवं प्रेम[६] जाति विशेष का आदर नहीं करते, यह मान्यता उनके "पण्डितराजीयम्" में अभिव्यक्त है। "कर्तव्य व्यक्तित्व की ही आत्माभिव्यक्ति है" यह मेरा पूर्व निगदित सिद्धान्त-वाक्य डॉ0 शुक्ल परक मेरे इस लेख की पंक्ति· पङ्क्ति से जुड़कर चल रहा है।

---

द्रष्टव्य-

१- गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः। इत्यादि
अभिज्ञान शा0 कालिदास

२- कवितामाकर्ण्य मनश्चरणौ च पश्चादेव प्रयान्ति नत्वग्रे ।। लवङ्गी-
पण्डितराजीयम्- डॉ0 शुक्ल

३- दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे इत्यादि
अभिज्ञानशकुन्तलम्- कालिदास २-१२

४- एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ।।कुमारसम्भवम्-कालिदास

५- श्रीरामस्य स्वागतार्थं समायोजितेयमालोकिनी
सदैव स्मरणीया स्यात्। (आलोकिनी)

६- सौन्दर्यं प्रेम न जातिविशेषं नाद्रियेते ।।पण्डितराजीयम् डॉ0 शुक्ल

''अभिशापम्'' नाट्य में देवयानी एवं कच के वार्तालाप में जहाँ परस्पर शाप ही पर्यवसान करवाता है, उस भाव-भूमि पर सनातन धर्म,[१] आर्ष धर्म,[२] प्रेम के आरोपित अनारोपित पक्षों की बातें कितनी सुन्दर लगती हैं । डॉ0 शुक्ल ने ''अभिशापम्'' में सूत्रधार से यह कहलवाया है कि, सभी[३] बातें अभिधा में ही नहीं कहनी चाहिए । यहाँ पर डॉ0 शुक्ल का आग्रह व्यञ्जना के प्रति है । भगवान् कालों के महाकाल भूतभावन का दृष्टान्त इसी अभीप्सित का द्योतक है । क्योंकि भगवान् शिव के बाह्य वेष स्वरूप की अभिधा अमंगलात्मिका है किन्तु उसकी व्यंजना परम मंगलात्मिका है । ''अभिशापम्'' की सबसे बड़ी विशेषता है, मदिरा नामक पात्र विशेष की औपचारिक स्थिति । मदिरा द्वारा अपने पौरुष का बखान[४] कितना प्रभावोत्पादक है । वह अपने आपको स्वास्थ्यवान् के स्वास्थ्य, बलवान्[५] के बल, स्मृतिवान् की स्मृति, विवेकी के विवेक, उदार के औदार्य, एवं विद्वान् की विद्या को हरने वाली कहती है । वह अपने को वारुणी एवं सुरा कहती है । इस कथन पर कच द्वारा प्रदत्त फटकार मदिरा से जुगुप्सा कराने में जितनी सफल होती है, वह सफलता डॉ0 शुक्ल की है । डॉ0 शुक्ल के ''अभिशापम्'' नाट्य का प्रशस्त पात्र ''कच'' उसे इस दुःखान्त नाटक[६] की सूत्रधारिणी कहता है । वह मदिरा को ही

---

द्रष्टव्य-

१- सनातनं धर्मं कैतवप्रोज्झितं प्रेमाणं तिरस्कृत्य
आरोपितां रूढिं ख्यापयसि ।। (अभिशापम्-डॉ0 शुक्ल)

२- आर्षं धर्मं ब्रुवाणोऽहं त्वया कामतः शप्तो न तु धर्मतः ।। (अभि0- डॉ0 शुक्ल)

३- अयि ! वावदूके ! सर्वमपि अभिधयैव न भणितव्यम् ।। ( ,, ,, )

४- **मदिरा**- सर्वात्मना मयि विलीयाऽपि मां न प्रत्यभिजानासि ? अहं मदिरास्मि
अहं वारुणी, अहं सुरा ।। (अभिशापम् डॉ0 शुक्ल)

५- **मदिरा**--- स्वास्थ्यवतां स्वास्थ्यं, बलवतां बलं, स्मृतिवतां स्मृतिं, विवेकिनां विवेकं, उदाराणामौदार्यम्, विद्यावतां विद्यामहं हेलयैव हर्तुं क्षमा---
(अभिशापम् - डॉ0 शुक्ल)

६- **कचः**- तर्हि त्वमेवासि अस्य दुःखान्तनाटकस्य सूत्रधारिणी ! तवैव प्रभावादेतत्संवृत्तम् ! एकवारं त्वयि मम भस्म किं मिश्रितं, त्वया चिरकालमेव यावन्मम मनःसन्तुलनमेव नाशितम् । मम स्वभावे परुषता समानीता । मम विवेको नाशितः, धैर्यधुरीणस्यापि मम धैर्यं विलोपितम् । त्वसम्पर्कात्पूर्वं मया कदाऽपि देवयानी न शप्ता । नैवाऽपमानितासीत् । किन्तु त्वत्सम्पर्कादूर्ध्वं मया सा वराकी अभिशप्ता । महिममयी नारी शक्तिरेव अधिक्षिप्ता---(अभिशापम् डॉ0 शुक्ल)

अपने स्वभाव की परुषता एवं असन्तुलन का कारण मानता है; धैर्य एवं विवेक की विनाशिनी मानते हुए उसकी घोर उपेक्षा करता है । वह इस बात का प्रायश्चित्त करता है कि यदि मदिरा न छुई होती तो मेरे द्वारा महिममयी नारी शक्ति कभी अपमानित न होती; कभी भी अभिशप्त न होती । आखिर इसके पहले तो मैने ऐसा नहीं किया था । आज जो यह कर बैठा, इसका कारण सिर्फ तुम हो । तुम्हारा चिन्तन[१] भी मानव के लिए अभिशाप है । जब तुम्हें एक बार ही छूकर मेरी यह दशा है, तो जो रात दिन तुम्हारे प्रभाव में रहते हैं उनकी क्या दशा होती होगी । आधुनिक पथभ्रष्ट समाज के लिए यह ''अभिशापम्'' नाटक वास्तव में वरदानस्वरूप है । डॉ0 शुक्ल ने इस बात की पुष्टि सूत्रधार के माध्यम से करवा दी है । समूचे समाज के शिवार्थ डॉ0 शुक्ल ने मद्यपान जैसे निन्दित दुष्कृत्य के प्रति मानव का ध्यान आकृष्ट किया है । वास्तव में यह नाटक डॉ0 शुक्ल की नाट्य रचनाओं में सबसे अधिक सारगर्भित एवं समाज, पुर, प्रान्त, राष्ट्र एवं विश्व के लिए औचित्यपूर्ण है । इस के लिए वे कोटिशः धन्यवाद के पात्र हैं । इसमें उनका उदात्त एवं सुसंस्कृत व्यक्तित्व उभरकर सामने आता है । एक सन्देश, एक मान्यता, एक आदर्श के साथ समाज-सुधार एवं सुसभ्य जीवन की शिक्षा देता है ।

वस्तुतः डॉ0 शुक्ल के सिद्धान्त एवं उनके जीवन-मूल्य राष्ट्रवादी चिन्तन से मिलकर जिस सर्वजन-संवेद्य साहित्य की सृष्टि करते हैं उसमें भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों कालों की छवि होती है । पाश्चात्त्य काव्यशास्त्रियों ने कवि और इतिहासकार में यही अन्तर किया है कि विवेक का पुञ्जीभूत अवतार कवि प्राचीनता का पोषक वर्तमान का सजग प्रहरी एवं भविष्य का द्रष्टा होता है । महर्षि अरविन्द कहते हैं कि कवि की अन्तर्दृष्टि नितान्त वैयक्तिक वस्तु नहीं, वह कवि के समसामयिक युग तथा समाज के मस्तिष्क, विचारधारा एवं उपलब्धियों पर भी निर्भर होती है । डॉ0 रमाकान्त शुक्ल इन मान्यताओं के निदर्शन हैं । भारतवर्ष की गरिमा, महिमा एवं इसके शाश्वत प्रतिष्ठित स्वरूप के दर्शन से उनका उद्दाम उत्साह, एवं अव्याहत श्रद्धा कल्लोलिनी थम नहीं पाती है । वे 'भाति मे भारतम्' की धुन में चहकने लगते

---

द्रष्टव्य

१- कचः-तव चिन्तनमपि जनस्य कृतेऽभिशापः । का वार्ता सम्पर्कस्य । त्वया सह किञ्चित्कालसम्पर्काद् यदा सिद्धविद्यस्याऽपि मम स्वभावोऽसन्तुलितः सञ्जातस्तदा तेषां का दशा स्यात् येऽहर्निशं ते प्रभावे तिष्ठन्ति ।।

(अभिशापम्- डॉ0 शुक्ल)

हैं। समूचे विश्व में बन्धुत्व की[१] पावन शिक्षा देने वाला विश्ववन्द्य चरित्रों से संसारको पवित्र करने वाला, सारे विश्व को एक कुटुम्ब समझने वाला मेरा भारत देश संसार में सदैव सुशोभित हो रहा है। अंगूर ओर सेवों से परिपूर्ण और मधु से प्लावित, नावों के घरों एवं देवदारुओं के वनों से सुन्दर कश्मीर वाले इस देश की शोभा का गान डॉ0 शुक्ल ने भारत के कोने कोने में तो किया ही, अमेरिका एवं मारीशस देशों में भी जाकर अपने देश के सौभाग्य की इस प्रतिनिधि रचना को सप्तम स्वर में विदेशियों को सुनाकर बीसवीं शताब्दी में भी उन्हें भारत के प्रति लालची बना दिया। वास्तव में, यह 'भाति मे भारतम्' नामक संस्कृत काव्य, इस सदी का सबसे लोकप्रिय, सहृदय, कवि, विद्वान् एवं समालोचकों द्वारा भूरि भूरि प्रशंसित राष्ट्रीय काव्यरत्न है। यही कारण है कि डॉ0 सत्यव्रत शास्त्री, डॉ0 शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी, डॉ0 धर्मेन्द्र कुमार गुप्त, डॉ0 हरिनारायण दीक्षित, डॉ0 भगीरथ प्रसाद शास्त्री ''वागीश'' एवं डॉ0 रमेशचन्द्र शुक्ल प्रभृति विद्वत्तल्लजों ने इस पर समीक्षात्मक लेख लिखे। कुछों ने प्रशस्तियाँ लिखीं। डॉ0 शिवदत्त चतुर्वेदी[३] ने समीक्षा के साथ ''भाति मे भारतम्'' के ही छन्द में १५ प्रशस्ति पद्य लिखे। ''अभिराज'' डॉ0 राजेन्द्र मिश्र[४] एवं ''कविरत्न'' ओमप्रकाश ठाकुर[५] ने डॉ0 शुक्ल का उनके इस

---

द्रष्टव्य-

१- विश्वबन्धुत्वमुद्घोषयत्पावनं विश्ववन्द्यैश्चरित्रैर्जगत्पावयत्।
विश्वमेकं कुटुम्बं समालोकयद् भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।।१।।
(भाति मे भारतम्)

२- गोस्तनीसेवपूर्णं मधुप्लावितं देवदारूद्वहं नौगृहैः रञ्जितम्।
सुन्दरं यस्य काश्मीरकं राजते भूतले भाति तन्मामकं भारतम् ।।२।।
(भाति मे भारतम्)

३- श्रीरमाकान्तशुक्लस्य काव्यं नवं भाति मे भारतं शुभचित्राञ्चितम्।
शब्दधाराप्रवाहेण रोमाञ्चितं भावनागुम्फितं सर्वमोदावहम् ।।
(डॉ0 शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी, वाराणसी)

४- सिंहनादस्तदीयो रमाकान्तको भाति यस्याऽऽननेऽनारतं भारतम्
(डॉ0 राजेन्द्र मिश्र, सुरभारतीदण्डकम्)

५- गायन् मधुरं 'भाति मे भारतं' कविशार्दूलरमाकान्तः ।।
(कविरत्न ओम्प्रकाश ठाकुर)

प्रतिनिधि ग्रन्थ के साथ ही स्मरण किया । जहाँ तक मेरी जानकारी है वर्तमान सदी के विद्वत् शिरोमणि डॉ0 रेवाप्रसाद द्विवेदी, पं0 करुणापति त्रिपाठी, डॉ0 नगेन्द्र, डॉ0 मण्डन मिश्र, डॉ0 रामकरण शर्मा, डॉ0 देवी दत्त शर्मा, डॉ0 मारुतिनन्द पाठक, डॉ0 रमेशचन्द्र रस्तोगी, श्रीहरिमाधव शरण, डॉ0 प्रकाश पाण्डेय, प्रा0 हरिश्चन्द्र रेणापुरकर, श्री एस0 बी0 वेलणकर, डॉ0 दीपक घोष, डॉ0 विश्वम्भरमिश्र ''वागीश''. डॉ0 दीनदयाल चतुर्वेदी, श्री मुकुल शर्मा, डा0 लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, श्री राधेश्याम शर्मा, श्री अनन्तराम गौड़, श्री आर0 के0 नरूला इत्यादि देववाणी-साधकों ने इस रचना की प्रशंसा की । डॉ0 शुक्ल का राष्ट्रीय व्यक्तित्व इस रचना से अन्तर्राष्ट्रीय हो गया ।

संस्कृत कविता के क्षेत्र में डॉ0 शुक्ल ने राष्ट्रीय कविता को ही अपनी संचेतना दी । उन्हें देश एवं विदेश में जहाँ भी जो स्थान अच्छा लगा उसे उन्होंने एक साहित्य कलेवर दिया । ''भाति मौरीशसम्'' ''उज्जयिनीयं जयति'', ''राजस्थानम्'', ''जाबालिपुरं चल'' ऐसी ही रचनायें हैं । बादल भी जब आकाश में अपने निश्चित समय पर आया तो, डॉ0 शुक्ल ने उसका काव्याभिनन्दन एवं स्वागत किया । ''स्वागतं पयोद ते'' नामक अपनी कविता में डॉ0 शुक्ल की दृष्टि जीवन पर आ पड़ी और उन्होंने इस संसार में द्वन्द्व को ही जीवन[१] नाम दिया । संसार को निश्चिन्त रहने का सन्देश दिया । ''नूतने वत्सरे ते भवेन्मङ्गलम्'' कविता में शुक्ल ने समय पर वर्षा की कामना[२] की । उनके हृदय में विद्यमान विश्व कल्याण-भावना, औदार्य व सद्भाव के समाश्रित होकर प्रकट हुई । वे अपने बहरुओं से पुष्ट गोमाताओं की कामना करते हैं । अपने इस कामना सन्देश में डॉ0 शुक्ल सभी स्वकर्मणिसंलग्न लोगों के मंगल एवं कल्याण की कामना करते हुए वाणी में[३] विद्या, हाथ में कर्म,

---

द्रष्टव्य-

१- स्वागतं पयोद ! ते ।
हे सुकालवारिमुक् !
त्वया धरा सुतर्पिता
द्वन्द्व एव जीवनं नु
चिन्तयाऽलमत्र ते ।। स्वागतं पयोद ते । डॉ0 शुक्ल

२- वारिवाहस्सुकाले समागच्छतात् सन्तु गावस्सवत्साश्च पुष्टाः समाः।
शं स्वकार्येलग्नाः समे प्राषु नुयु-र्नूतने वत्सरे ते भवेन्मङ्गलम् ।।

३- वाचि विद्या करे कर्म दृष्टौ दया पादयोश्च प्रकृष्टा गती राजताम्
सुप्रवृत्तेन्द्रियैस्तोषमेयुर्जना नूतने वत्सरे ते भवेन्मङ्गलम् ।। (डॉ0 शुक्ल)

भावना में दया एवं पैरों में प्रकृष्ट गति की कामनां करते हैं । ये सर्वविध सर्वकल्याणमयी नेत्रों भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत की धरोहर हैं । डॉ0 शुक्ल का शिवत्वाऽनुरागी विराट् व्यक्तित्व इन विस्तृति-परिचुम्बित समुद्घोष-संकल्पनाओं में साह्लाद नर्तन करता दिखाई पड़ता है । आगे चलकर डॉ0 शुक्ल जब अपनी कामनाओं की पूर्ति में विश्व प्रपंच नियामक की लीला का थोड़ा सा भी ताण्डव अकाल में ही घिर आये बादल के रूप में देखते हैं तो वे अपनी ''अकालजलद'' कविता में अपना रोष व्यक्त करते हैं । प्रकृति की अनेकरूपता को डॉ0 शुक्ल का कोमल हृदय सह नहीं पाता है । वे अपने आक्रोश की अभिव्यक्ति कर ही देते हैं । राष्ट्रीय धारा से अनवरत प्रभावित व उससे सर्वदा समालिंगित कविचूडामणि डॉ0 शुक्ल अपनी पुस्तक ''जय भारतभूमे'' में कई शीर्षकों के माध्यम से अपनी मातृभूमि का स्तवन करते हैं तथा उसकी उन्नति, उसकी ऐतिहासिक यशःश्री का परिचय देते हैं । इस संस्कृत काव्य का मूल्यांकन भी १९८४ ई0 में डॉ0 हरिनारायण दीक्षित द्वारा हो चुका है । ''अर्वाचीनसंस्कृतम्'' पत्रिका में इसका प्रकाशन भी हुआ है । कवि अनेक प्राचीन पद्धतियों[१] एवं नवीन-प्रयोग समूहों वाली उचिताऽनुचित-समयनिरीक्षिका विश्वप्रणम्या भारतभूमि को प्रणाम करता है । इसी प्रकार ''एकं सद् बहुधा विलोक्यते भारतम्'' में राष्ट्रवादी कवि भारतवर्ष की एकता में अनेकता एवं[२] अनेकता में एकता की वर्णना का अभ्युदय कर ऐकात्म्य से सर्वदा संसिक्त अपने भारत राष्ट्र की सुरवन्द्यता की तरफ विश्व का ध्यान आकृष्ट करता है । ''भारतजनताऽहम्'' संस्कृत कविता में मेधावी, मनीषी, कवि डॉ0 शुक्ल ने ब्रह्माण्ड की समग्र सर्जना में भारत जनता की सुप्रतिष्ठित शोभा सर्वसशक्त-स्वरूपवाली स्वाभाविक ऊँचाई, एवं उदात्त जीवन मूल्यों की स्वाभिमानिनी रूपरेखा विन्यस्त की है । कवि की भाषा भावों के साथ अनायास सरकती, प्रवाहमयता की जीवन्तता

---

द्रष्टव्य-

१- अतिपुण्यपुरातनपद्धतिभि-
नर्वनूतनयोगप्रयोगचयैः ।।
समयोचितनीतिबलैस्सहिते !
जय भारतमेदिनि ! विश्वनुते ।। (जय भारतभूमे)

२- एकं सद् बहुधा विलोक्यते भारतम् ।
एकमखण्डमभिन्नमस्ति मे भारतम्
रम्यमस्ति सुरवन्द्यमस्ति मे भारतम् ।। (डॉ0 शुक्ल)

बनाये उत्कृष्ट काव्यत्व के निदर्शनत्व को संस्तुति देती है। मैं यह बात निःसन्देह भाव से कह सकता हूँ कि डॉ0 शुक्ल की राष्ट्रपरक प्रत्यग्र रचनाओं में, मैं ''भारतजनताऽहम्'' रचना को सर्वोत्तम मानता हूँ। इस रचना में डॉ0 शुक्ल का कविहृदय समूची भारतजनता का प्रतिनिधित्व करता है। वे इस रचना में सर्वात्मा व सर्वहृदय हैं। गीतात्मक अनुरणनों से झङ्कृत यह कविता दूरदर्शन से प्रसारित होते समय उनका भी चित्त आकर्षित कर लेती थी, जो देव भाषा जानते ही नहीं! समय पर मैं वज्र से से भी कठोर हूँ,[१] समय समय पर मैं पुष्प से भी कोमल हूँ, मैं स्वाभिमानिनी भी हूँ, विनम्र भी हूँ, मैं स्वर्ग कहे जाने वाले भारत की ऋजुचरिता जनता हूँ। मेरी जिह्वा[२] कीलने में कौन समर्थ है अरे! मैं गर्जन करती हुई भारत की जनता हूँ।मैं अध्यात्मनदी में[३] स्नान से परिपूता, दृढ़कवचा,[४] धृतिशीला, बहुवर्णा एवं रसभरिता[५] भारत-जनता हूँ। ये पंक्तियाँ संस्कृत की अनमोल लड़ियाँ हैं। ये डॉ0 शुक्ल के अनुपम कवित्व की परिचायिका हैं। ज्ञातव्य है कि डॉ0 शुक्ल ने ''भाति मे भारतम्'' की रचना कर भारत की समस्त उपलब्धियों को सुशोभित होती हुई कहा है। उनका भारत हर तरह से चमकता हुआ ही अभिव्यक्त हुआ है, किन्तु बाद में अभावों की अनेकता के आ जाने पर डॉ0 शुक्ल का कविहृदय देश को करुण आह भरता हुआ देखता है, तो उनका हृदय उनसे ही प्रश्न करता है, ''क्या आप सदैव यही कहा करते हैं कि देश सुशोभित हो रहा है; क्या आप आज

द्रष्टव्य-

१- अभिमानधना विनयोपेता शालीना भारतजनताऽहम्।
कुलिशादपि कठिना कुसुमादपि सुकुमारा भारतजनताऽहम्।
(डॉ0 शुक्ल)

२- जिह्वां मे कीलयितुं शक्तः कः कोऽत्र जगति मातुर्जातः।
वाणी विहरति मे सदोज्ज्वला गर्जन्ती भारतजनताहम्॥
(डॉ0 शुक्ल)

कृत्वा भूमण्डलपर्यटनं यं देशं स्वर्गं मनुते नाः।
तस्यैव नृपस्तस्यैव प्रजा ऋजुचरिता भारतजनताऽहम्॥

३- अध्यात्मसुधातटिनीस्नानैः परिपूता भारतजनताऽहम्॥
विविधाप्येका विलसामि मुदा बहुवर्णा भारतजनताऽहम्॥

४- ममसमा हि जनता क्वाऽपि नास्ति धृतिशीला भारतजनताऽहम्॥
आर्जवं न मे मूर्खत्वमस्ति दृढकवचा भारतजनताऽहम्॥

५- मम गीतैर्मुग्धं सर्वं जगद् रसभरिता भारतजनताऽहम्॥
(भारतजनताऽहम्)

अपनी आँखों से नहीं देखते कि देश अभावों की आत्यन्तिकता से अभिप्रेत होकर रो रहा है,"[१] । "रौति ते भारतम्" कविता में डॉ0 शुक्ल की ये ही संचिन्तनायें स्फुटित होती हैं । वे कहते हैं कि मैंने "भाति मे भारतम्" में दोषों को सर्वथा परित्यक्त करके गुणों की ही गणना की थी । डॉ0 शुक्ल ने अन्त में सब से यह निवेदन किया है कि वे ऐसा करें जिससे देश निरन्तर शोभित ही होता रहे[२] । देश की[३] बढ़ती हुई उग्रता, विहिंसन, एवं चीत्कृति से वे बहुत ही दुःखी हो जाते हैं तथा अपनी "राष्ट्रदेवते" कविता में वे स्वयं राष्ट्रदेवता से कहते हैं कि हे राष्ट्रदेवते! बोलो, मैं तुम्हारा पूजन एवं अर्चन कैसे करूँ । राष्ट्रदेवता के अन्दर समवेदना जगाकर वे उससे क्षमायाचना भी करते हैं ।[४] क्योंकि वे पहले "भाति मे भारतं" में उसके

---

द्रष्टव्य-

१- कश्चिदुवाच-

किंरमाकान्त ! नित्यं त्वया भण्यते

'भाति मे भारतं, भाति मे भारतम्' ।

किं न पश्यस्यनेकैरभावैर्युतं

रौति ते भारतम् रौति ते भारतम् ।।

रमाकान्त उवाच-

यत्त्वया कीर्तितं दोषजातं सखे ।

तन्मया सूचितं ह्येकपद्ये पुरा !

दोषवर्जं मया सद्गुणाः सन्विताः

तेन प्रोक्तं मया भाति मे भारतम् ।।

२- कीर्तनेनैव वा क्रन्देनैव वा लोपमेष्यन्ति दोषा न देशस्य वै ।

तेन सर्वैः क्रियन्तां सदा सुक्रियाः येन भातु प्रसन्नं सदा भारतम् ।।

रौति ते भारतम्- डॉ0 शुक्ल

३- राष्ट्रदेवते कथं नु पूजनं करोमि ते

ब्रूहि देवते ! समर्चनं कथं करोमि ते, राष्ट्रदेवते !

उग्रताविहिंसनोत्थचीत्कृतीः शृणोमि चेत् ।

राष्ट्रदेवते ! कथं नु कीर्तन करोमि ते, ब्रूहि देवते ।।

४- मिष्टमर्पितं पुरैव 'भाति भारतं' हि ते ।

यन्मया कटूक्तमत्र तत्क्षमस्व देवते ।। राष्ट्रदेवते - डॉ0 शुक्ल, राष्ट्रदेवते !

सौविध्य के गीत गा चुके हैं । ऐसे[१] ही अपनी ''अहं स्वतंत्रता भणामि'' कविता में कवि जब स्वयं स्वतंत्रता बनकर बोलता है तो दुःखी ही है । बड़े बलिदान एवं बड़े त्याग से प्राप्त हुई स्वतंत्रता दैन्यभाव से सब को अपनी बात सुनने के लिए और उसे मानस में बिठाकर यथोचित विधान की प्रार्थना करती है । ''अहं स्वतन्त्रता भणामि'' कविता में डॉ0 शुक्ल की स्वतंत्रता, पग-पग पर व्याप्त अयोग्यता, पदच्युत होती हुई सुयोग्यता, चाटुकारिता, देखकर सकष्टा हो जाती है और कहती है कि यदि यही दशा देश की रही तो मेरी स्थिति परिपुष्ट कैसे होगी ! देशवासियों से देशवासियों की हिंसा, पार्थक्य, दौःशील्य से दुःखी स्वतन्त्रता सबसे यह मिन्नत करती है कि, जिसे देखकर मेरी यह दयनीय दशा हो गयी है, उस दोषमयता को शीघ्र ही दूर कर दीजिये । इस कविता के माध्यम से डॉ0 शुक्ल ने वर्तमान युग की अमानवीय सञ्चरण-प्रणाली से क्षोभ व्यक्त कर यथार्थ एवं वास्तविकता की जीवन्त प्रस्तुति की है । २५ जनवरी १९८७ में इसे सर्वभाषा कविसम्मेलन में संस्कृत की प्रतिनिधि रचना स्वीकार किया गया था एवं आकाशवाणी के सभी केन्द्रों से इस कविता का प्रसारण हुआ था । भारत की सभी प्रमुख भाषाओं मे इसके काव्यरूपान्तर भी प्रसारित हुए थे । हिन्दी काव्यरूपान्तरकार थे डॉ0 कृष्णमुरारी शर्मा ।

---

द्रष्टव्य

१- अहं स्वतन्त्रता भणामि मद्वचो निशम्यताम्
निधाय मानसे च तद् यथोचितं विधीयताम् ।।
अहं स्वतन्त्रता -----
अयोग्यता पदोन्नता सुयोग्यता पदच्युता ।
अमोघलाभकारिणी मता च चाटुकारिता ।
इयं दशा स्व भारतस्य चेत्तदा मम स्थितिः
सुपुष्टतां भजेत्कथं भवद्भिरेव कथ्यताम् ।।
अहं स्वतंत्रता -----
स्वदेशवासिभिः स्वेदशवासिनां विहिंसनम्
पृथक्त्वभावपोषणं स्वदेशदेहदारणम् ।
अधीतिपण्यविक्रयं करप्रदातृनिःस्वतां
विलोक्य यां शुचं गतास्मि सा द्रुतं विलोप्यताम् ।।
अहं स्वतन्त्रता भणामि -------- ।।

(अहं स्वतन्त्रता भणामि- डॉ0 शुक्ल)

इस प्रकार यह बात पूर्ण सिद्ध हो जाती है कि डॉ0 शुक्ल का बहुआयामी, उदात्त, निर्भीक, पुनः विशेष राष्ट्रवादी व्यक्तित्व, जिसे समष्टि की संचेतना कह सकते हैं, उनके कर्तृत्व में अभिव्यक्त है । मैने यह बात पहले ही कही थी कि व्यक्तित्व, व्यक्ति के परिवेश, स्थिति, प्रेरणा, परम्परा, मान्यता, आदर्श, विश्वास, रुचि, छवि, पर्यवेक्षण, अनुभूति एवं संचेतना का ही एक सुव्यवस्थित अभिधान है । साहित्य साहित्यकार के व्यक्तित्व की प्रतिच्छवि के सिवा कुछ नहीं । सारस्वत समाज को डॉ0 शुक्ल ने जिन जिन माध्यमों से आह्लादित किया है, संस्कृत वाङ्मय की जिन जिन रचनाओं से श्री वृद्धि की है, राष्ट्रमाता का जिन जिन भावों से अभिनन्दन किया है, वे सब इनके विराट् व्यक्तित्व की सतरंगी शोभाएँ हैं । उनका कर्तृत्व अगम्य है तो व्यक्तित्व सुरम्य है । उनकी सेवायें अद्वितीय हैं, वे ओज एवं उत्साह की प्रतिमूर्ति हैं । गुरुवर्य डॉ0 राजेन्द्र मिश्र ने अपनी एक रचना में डॉ0 शुक्ल को संस्कृत वाग्वधूटी का रोष कहा है-[१] वे रोष तो हैं ही, मेरे शब्दों में वे संस्कृत वाग्वधूटी के घोष हैं ।

श्रीरमाकान्तशुक्लोऽस्ति घोषो ध्रुवम् ।
वाग्वधूट्या वधूट्या वधूट्याश्चिरम् ।।

---

१- रोषः कान्तो रमायाः -- इत्यादि ।

(डॉ0 राजेन्द्र मिश्र 'अभिराज')

# सभाजना

अवस्थी डॉ० बच्चूलालो ज्ञानोपाह्वः

शुक्लो रमाकान्तो मम यवीयान् सुहृत् । स्वयं कविर्भवन् मादृशानां काव्येषु प्रवर्तकः चन्द्रिकोल्लास इव चकोराणामाह्लादेषु, पाथोद इव बर्हिणानां नर्तनेषु, राकेश इव च सागरतरङ्गाणामुत्तुङ्गायितेषु, सन्निधिमात्रेणाकर्षग्रावेवायसानामभिमुखाकर्षणेषु । यथा पान्थः श्रान्तो वाटिकायां विश्राम्यति तथा कविहृदयः सहृदयो वा लोकशोककातरो रमाकान्तस्य प्रज्ञायां कृताश्वासमात्मानमनुभवति । अस्य प्रतिभा वक्रं मार्गं विधूय ऋजुमेव पन्थानमभ्युपेत्य कथ्यं यथातथ्यं व्याहरतीति तद्विदो विदुः। ऋजुना हि पथा क्राम्यन्नसौ न चिराय लक्ष्यं विध्यतीति नाविदितम् । तथा हि

किं कुरुथ किं वा करिष्यथ ? वदत नेतारो मनाक्!
किं मनसि वो वर्तते भो ? भणत नेतारो मनाक् !
पादयोः प्रणिपत्य घोणा-घर्षणं कृत्वा मुहुः ।
याचितं यन्मे मतं तस्यादरं रक्षत मनाक् ।।

मतादानसमये घोषणापत्रं प्रसार्य कार्यचिन्तैव प्रजाभ्यः क्रियमाणा प्रतीयते किन्तु शासनतन्त्रं स्वायत्तं कृत्वा नेतृब्रुवैः खलु अकार्यचिन्तैव क्रियते । पुनरपि पञ्चवर्षानन्तरमस्माकमेव शासनं प्रचलेदिति मनसि निधाय ते जनतायां जातिभेदं वर्गभेदं धर्मभेदं चादाय गृहयुद्धायैव जनः प्रयुज्यत इत्यहो जनतन्त्रस्य महिमा । इत्येतावत् सत्यमुद्घाटयितुमियं रचना पुरश्चक्रे ।

नेतारो यथा वा तथा वा सन्तु किन्तु भारतीया जनता सर्वोत्कर्षेण विराजते । भवन्तु नाम केऽपि लम्पटा लोलुपा लुण्टाका वा परन्तु समग्रतया ग्रहणे तस्याः स्वरूपमर्हणीयमेवेति कथयन् रमाकान्तः शुक्लो ब्रूते-

अभिमानधना विनयोपेता
शालीना भारतजनताऽहम् ।
कुलिशादपि कठिना कुसुमादपि
सुकुमारा भारतजनताऽहम् ।

काठिन्यं स्तुवानः प्राह

लङ्घिताः पर्वता अवरुद्धा
नद्यः, प्रपूरिता जलाशयाः
सिक्ता मरवश्च यथा बहुधा
महिता सा भारतजनताऽहम् ।।

अपि च मनसो मृदुत्वं वर्णयन् स्तौति-

आचरति दुर्जनो नीचकर्म
यत् तत् सर्वं जाने, जाने ।
प्राप्नोमि तथापि न निष्ठुरतां
करुणार्द्रा भारतजनताऽहम् ।।

× × ×

प्रेमोत्साहौ स्थायिनौ रमाकान्तशुक्लस्य काव्ये । तावपि अभिधामूलया व्यञ्जनया व्यक्ततां नीयेते । औत्सुक्यावेग ईर्ष्यादयो व्यभिचारिणः । देशप्रेमा विशेषेण मनो हरति । सैषा सामग्री-

" जाबालिपुरं चल रमाकान्त जाबालिपुरम् "

इत्यादिष्वपि नैव हीयते वस्तुव्यञ्जनां प्रति नादृता प्रतिभा रमाकान्तस्य।

"भूतले भाति मेऽनारतम् भारतम्"

इत्येषा रचना कविसमवायेषु लब्धसम्माना विद्यते । तत्र हि 'रौति ते भारतम् ' इति 'पूर्वपक्षः

यत्र रक्षाभटै रक्षणीयो हतो

यत्र गोप्ता न गोप्यं क्षमो रक्षितुम् ।

यत्र सन्तो मता दस्यवो हिंसका

रौति तद् भारतं,रौति तद् भारतम् ।

पूर्वपक्षव्याजेनैव विसंगतीः प्रकटयन्नुपसंहरति-

कर्गले राष्ट्रभाषास्ति नो भाषणे

संस्कृतं स्तूयते, नैव तत् सेव्यते ।

स्वीयपादे कुठारः स्वयं पात्यते

वीक्ष्य सर्वं ध्रुवं रौति ते भारतम् ॥

उत्तरपक्षत्वेन तु समग्रैव कविता (भाति मे भारतमिति) खण्डकाव्याकारा वर्तते । तत्रैकं पद्यम्

सन्तु दोषा अनेकेऽत्र कैश्चिन्मताः

किन्तु नाहं प्रपश्यामि तान् मन्दधीः ।

वन्दनीयं मया कीर्तनीयं मया

मोदतां वर्धतां राजतां भारतम् ॥

दोषज्ञता दोषदर्शनायैव नालम्, किं तर्हि, गुणा अपि द्रष्टव्याः स्तोत ना समेधापितव्याश्चेति मनसि कृत्वा स्पष्टयति-

''दोषवर्जं मया सद्गुणाः सञ्चिता-

स्तेन प्रोक्तं मया भाति मे भारतम् ॥''

× × ×

एतेन कवेः शैली स्फुटं प्रतीयते । तथा हि, केचिदिमामभिधा-शैलीमभिदधाति। तेषामयमाशयः-अभिधाद्वारेण कवेरन्तर्गतो भावो भाष्यते, न वृत्त्यन्तरमपेक्ष्यत इति। वयं तु ब्रूमः--न खलु व्यञ्जनां वृत्तिं विहाय काव्यं प्रसरति । सैव वक्रोक्तिनाम्ना व्यवह्रियेत तात्पर्यनाम्ना वेति यत्किञ्चिदेव स्यात् । अनुमाननाम्नापि सैवाभिधामूला

व्यञ्जनाभिधीयेत, वृत्त्यन्तरत्वं न स्यादित्येव विशेषः ।

रमाकान्तशुक्लः सुकुमारमार्गस्य कविरिति निर्विवादमेव । अनेन मार्गेणासौ वीररसं गन्तव्यं सम्पादयतीति तावच्चित्रम् । तत्रापि चित्रीये यदेष कविः गेयताभित्तौ स्थायिभावचित्रमुद्रेखयति । कवित्वं चास्य पाठ्यत्वमपेक्ष्य गेयत्वं पुरस्करोति । गानेन चासौ सभ्यांश्चित्रार्पितारम्भान् विधत्ते ।

शैली नाम रचयितुः शीलेन सम्बध्यत इत्यपि विचारणीयम् । शीलं व्यक्तेराध्यात्मिकं वान्तरिकं वा स्वरूपम् । रमाकान्तो यथा नामाक्लिष्ट-वचनः, अक्लिष्टरचनश्च, तथैव तस्य शैली । प्रकृत्या विनोदशीलः सन्नपि नाभिजात्यं जहाति, तथैवास्य कवितापि । यथा खल्वयं पुष्ट-तुष्ट-कलेवरस्तथास्य काव्यपुरुषोऽपि। नात्र गुणदोषविवेकः क्रियते प्रत्युत यथावत्तया शीलं शैली च निरूप्येते ।

श्रीरमाकान्तशुक्लेन देववाण्याः का सपर्या कृतेति तावद् विचार्यते। उच्चस्तरीयं बालसाहित्यं प्रायेणाभावग्रस्तम् । रमाकान्तस्य प्रत्येकं कविताः सुगेयत्वेन सुपठत्वेन सुबोधत्वेन च बालानां कृते सर्वथोपादेयतां भजतीति संशीतिलेशेनापि रहितं चकास्ति । 'भाति मे भारतम्' इति तु सर्वथा राष्ट्रमहिमानं प्रकाशयति । तादृशी सरला रचना यदि नालभ्या तर्हि दुर्लभा त्वस्त्येव । एवंप्रकृतिकानां कवितानां राष्ट्रगौरवाङ्कितानां रचयिता नूनं धन्यः । अपि च 'भारतजनताऽहम्' इति रचना यमात्माभिमानं प्रवर्तयति तत्कृते श्लाघनीयो नितरां श्रीशुक्लः-

निवसामि समस्ते संसारे
मन्ये च कुटुम्बं वसुन्धराम् ।
प्रेयः श्रेयश्च चिनोम्युभयं
सुविवेका भारतजनताऽहम् ।।

इतीदृशाः पङ्क्तयः खलु सर्वात्मना किशोरैर्मुखाग्रतां नेयाः ।

द्वादश-वर्षाणि गतानि, असौ रमाकान्तः स्वपराक्रमेण किलार्वाचीनसंस्कृतं नाम त्रैमासिकं पत्रं दिल्लीस्थ-देववाणी- परिषदः सम्पाद्य प्रकाशयति । तत्र सर्वप्रकाराः कवयो लेखकाश्च प्रकाश्यन्ते । देवगीर्लोकप्रियता लभेतेति महानयं प्रयासः। यवीयस्सु मम प्रेरकेष्वपि

रमाकान्तोऽन्यतमः । तथा चैवमाशासे-

ये प्रज्ञां प्रथयन्ति शारदशशिप्रख्यां समज्ञाजुषः
सौन्दर्याम्बुधिगाहनैकपटवो· गीर्वाणवाणीचणाः।
सौहित्यप्रवणा चिरन्तननवा येषां धनं साहिती
तेषूत्तुङ्गशिरस्सु मानिषु रमाकान्तो विभूयाच्चिरम्।।

# 'भाति मे भारतं' काव्यं सिद्ध-सूक्तिसुधान्वितम्

आचार्यः कामताप्रसाद त्रिपाठी 'पीयूषः'

दिष्ट्यानेके सुरगवी-साहित्य-शिल्पिनः, सूक्तिसुधारसवर्षिणो मनीषिणः कलिकश्मलाच्छन्ने कालकूटायमाने वर्त्तमाने युगेऽपि भारतस्य नैसर्गिकीं विश्वगुरुतां सम्पूर्णे महीमण्डले स्थापयितुं बद्धपरिकरा दृश्यन्ते। एतेष्वन्यतमो वीणापाणिपरिपोषितो, वन्दनीयवाग्मितापरितोषितो, मनीषिमानितोऽपि नम्रतानिर्मित इव वेणुनिस्वननिभकण्ठमाधुरीसंवलितः, स्वदेशानुरागरञ्जितः,कमनीयकाव्यकान्तिमान् डॉ० रमाकान्तशुक्ल-महाभागः समन्तसञ्चरणशीलया स्वकीर्तिलीलयाऽभिनन्द्यमानो भृशमानन्दयतितरां समेषां शेमुषीजुषां सचेतसां चेतांसि ।

सम्मान्यशुक्लमहोदयस्याशेषव्यक्तित्वकर्तृत्वपर्यालोचनायै एकः स्वतन्त्रः प्रबन्ध एव मूर्तिमान् बुभूषति । अत्र तु, दिल्लीवाराणसीभोपालोज्जयिनीसागरादिनगरेषु समायोजितासु संस्कृतकविगोष्ठीसु पौनःपुन्येन रसिकहृदयरसायनीभूतं, दूरदर्शनेनाप्यात्मसात्कृतं 'भाति मे भारतम्'[1] इति काव्यमवलम्ब्य काचिल्लिलेखिषा लेखनीलौल्यमुल्लासयति मामकीनम् ।

विवेच्यकाव्ये कविना विनाऽऽयासं या राष्ट्रियस्नेहधारा प्रवाहिता सा समस्तानां मनुसन्ततीनां मनांसि पावयिष्यतीति मे द्रढीयान् विश्वासः । ग्रन्थस्य समर्पणक्षण एव कवयितुर्विलक्षणानुरक्तिः स्वभारतं प्रति समुपचिता चकास्ति-

---

१. 'भाति मे भारतम्, प्रणेता : रमाकान्त शुक्लः । प्रकाशिका : देववाणी-परिषद्, दिल्ली । आर ६ वाणी विहारः नयी दिल्ली-११००५९। प्रथम संस्करणम् १९८०।

भारतं वर्त्तते मे परं सम्बलं
भारतं नित्यमेव स्मरामि प्रियम् ।
भारतेनास्ति मे जीवनं जीवनं
भारतायार्पितं मेऽखिलं चेष्टितम् ।।

यः कविर्भारतेनैव स्वजीवनस्य साफल्यमवृणोत् स्वकीयानि निखिलान्यपि चेष्टितानि स्वराष्ट्राय समार्पयच्च स कस्य सचेतसो भारतीयस्य न सभाजनीयः ?

यद्यपि स्वभावोक्तिभित्तिसंस्थिते सुवर्णसार्थसमलङ्कृते प्रसाद-प्रासादेऽष्टोत्तरशतस्रग्विणीसंस्तुते काव्येऽमुष्मिन्नार्य्यदेशस्यास्य विस्मया-वहमाध्यात्मिकमैश्वर्यं, भौगोलिकं स्वर्गस्पर्धि सौन्दर्यं, कलात्मकं कामनीयकं, वैज्ञानिकं वैभवं,सम्पूर्णमपि सांस्कृतिकं वैशिष्ट्यं प्रस्तुत्य कलशेऽर्णवो न्यधायि मनस्विना कविना, तथापि साभिप्रायसङ्गुम्फितानि, भारतीयचिन्तनोत्कृष्टनिदर्शनीभूतानि तपोविभासमुद्भूतानि सहृद-यहृदयवर्त्तीनि, विश्वविश्रुतानि, सूक्तिरत्नानि एव प्रत्यालोच्यन्ते। एतस्याः स्रग्विण्याः कविताकामिन्याः स्रजः प्रथमं प्रसूनमेव-

'अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।

इति सूक्तेः सद्भावसौरभमादाय विकासयत्यार्य-सौमनस्यपरम्परां यथा-

विश्वबन्धुत्वमुद्घोषयत्पावनं
विश्ववन्द्यैश्चरित्रैर्जगत्पावयत् ।
विश्वमेकं कुटुम्बं समालोकयद्
भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।।

अवधेयमत्र, प्रयोज्यमानानां प्राच्यसूक्तीनां स्वरूपसंरक्षणैक प्रक्षपातिनाऽपि कविना छन्दोऽनुरोधेन क्वचित किञ्छाब्दिकपरिवर्त्तनं विधायापि भावगाम्भीर्यं गुम्फितं इति ।

ज्ञानस्य व्यावहारिकी परिणतिरेव श्रेयस्करी ! इत्यभिप्रायगर्भिता 'ज्ञानं भारः क्रियां विना' सूक्तिरियं समादृता पद्येऽस्मिन्-

दर्शनज्ञानचारित्र्यसम्मेलनं
यत्र मोक्षस्य मार्गं भणन्त्यागमाः ।
ज्ञानमास्ते च भारः क्रियां वै विना
भूतले भाति तन्मामकं भारतम् ॥ (भाति० ८)

अधुनातनयानैः सम्पद्यमानायां विकासयात्रायां काव्यकृता सारगर्भिताया'श्चरैवेति' श्रुतेरनुश्रूयते प्रतिध्वनिः-

रेलनौकाविमानैर्बसैर्मोटरैः
कारटैम्पूशकट्यादिभिर्यानकैः ।
य 'च्चरैवेति' नित्यं समुद्घोषयद्
भूतले भाति तन्मामकं भारतम् ॥ (भाति० १६)

भारतीयसंस्कृतेरस्पृश्यादिदूषणेक्षणसक्षणानां, तथाकथितविचक्षणानां निरर्गलप्रलापप्रशमाय श्रीमद्भगवद्गीतोक्तसाम्यभावस्य महिमानमङ्गीकृत्य-

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥
(गीता ५/१८)

पद्यस्यास्य पल्लवितो भावराशिः श्लोकेऽस्मिन् विराजते-

कुङ्कुमैश्चन्दनैः पुष्करैः पाटलैः
सर्वगं सच्चिदानन्दमाराधयत् ।
विप्रगोहस्तिचाण्डालसाम्यान्वितं
भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ॥


(भाति० ४१)

'सत्यं शिवं सुन्दरम्' इति सूक्तौ श्लाघनीयार्षचिन्तनस्यान्तस्तत्त्वमिव निहितं विद्यते । अपरिवर्त्तितवेषा सूक्तिरेषा सविशेषं विभात्यत्र-

यत्र सत्यं शिवं सुन्दरं राजते
रामराज्यञ्च यत्राभवत्पावनम् ।
यस्य ताटस्थ्यनीतिः प्रसिद्धिं गता
भूतले भाति तन्मामकं भारतम् ॥ (भाति० ६८)

'हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः
साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते'
'सत्यमेव जयते नानृतम्'---(मुण्डकोपनिषद्)

एतेषामार्यविश्वासानां निश्वास इव विलसतितरां प्रस्तुते पद्यरत्ने-

यत्र हिंस्रः स्वपापैः स्वयं हिंस्यते
यत्र साधुः समत्वाद् भयान्मुच्यते !
यत्र सत्यं जयं याति नैवानृतं
भूतले भाति तन्मामकं भारतम् ॥ (भाति० ७५)

'शीलं सर्वत्र वै धनम्', 'शीलं परं भूषणं' वा, 'मौनं 'चैवास्मि गुह्यानां' (गीता १०/३८) 'मौनं सर्वोत्तमं व्रतं' वा-इति सूक्तीनां भावान् व्यनक्ति पद्यमेतत्-

यत्र सर्वसहा मेदिनी राजते
यत्र शीलं परं भूषणं भण्यते ।
यत्र मौनं चकास्ति व्रतेषूत्तमं

भूतले भाति तन्मामकं भारतम् ॥ (भाति० ७७)

'जङ्गले मङ्गल' मित्याभाणकं लोके प्रथितमस्ति । सर्वविदितमेतद् यद् भारतीया संस्कृतिरेव काननात् प्रसृता । वेदोपलब्धिरप्यरण्य एव जाता। विपिन एव मन्त्रद्रष्टारो महर्षयो न्यवसन् । वनाश्रम एव प्रायेण विश्वस्वस्तये यागादयोऽभवन् । दिलीपो नन्दिनीसेवया वंशकर्तारं तनयं वनवासादेवाधिगतवान् । नन्दनन्दनमुकुन्दस्य मुनिमनोमोहनशीला बाललीला वृन्दारण्य एवाभवत्, अत इदं वर्णनं समीचीनं प्रतीयते-

'जङ्गले मङ्गलं यच्च कर्तुं क्षमं
भूतले भाति तन्मामकं भारतम्' । (भाति0 ८८)

पद्यस्यास्येदं तात्पर्यन्तु विदितवेदितव्यैर्विद्वद्भिः सुस्पष्टमेवावगम्यते यद् विपन्नतायामपि सम्पन्नजनसौख्यातिशायिनी परमानन्दानुभूतिर्भारत एव भूरिशो दृश्यते ।

शान्तिसमुपासनपेशलं भारतं सर्वंसहायामवन्यां निवसन्नकारणा-विष्कृतवैरदारुणानां दुर्जनानामत्याचारानपि मौनीभूय सहिष्यत इति भ्रमो मा भूत्कस्यापि मनसि, यतः-

आर्षवृन्देषु शान्तिप्रधानेषु वै
यत्र गूढं हि तेजः प्रदाहात्मकम् ।
साध्यते यत्र योगो मुदा साधकै-
र्भूतले भाति तन्मामकं भारतम् ।। (भाति0 ८९)

अमुना पद्येन 'हिमाचलोऽपि ज्वालामुखीभूय द्रोहशीलान् शत्रून् धक्ष्यति' इति घोष्यत इव स्वदेशस्नेहिना शब्दशिल्पिना कविना (चर्चिते श्लोके) 'शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः' इति कालिदासोक्तिरभिनन्दिता च ।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' 'मृत्योर्माऽमृतं गमय' इति वेदमन्त्र-स्यान्तस्तापहरी पीयूषलहरी स्यन्दते स्वच्छन्दमेतच्छन्दोऽन्तरालात्-

अन्धकारात् प्रकाशं तथाज्ञानतो
ज्ञानमभ्येति मत्योस्तथा चामतम ।

यत्र जीवः स्वरूपावबोधस्थितो

भूतले भाति तन्मामकं भारतम् ।। (भाति० ८३)

अनया पर्यालोचनया पर्यवस्यतीदं यत्-कल्पवल्लीव शिवसङ्कल्पं सार्थयन्ती भारतीयसंस्कृतिरिव विश्वं पावयन्ती वासन्तीव विहसन्ती गम्भीराभिप्रायगर्भिता कविवर्यडॉ०रमाकान्तकविता महनीयार्षप्रतिभामनुभूय स्वसूक्तिरत्नराशिभिः सहृदयानां सर्वेषामार्यावर्त्तनिवासिनां स्वदेशानुरागं सन्तनोति, समेधयति च हृदयानन्दसन्दोहम् ।

अधुना शिखरिणीयमभिधित्सति भरतवाक्यमिव निबन्धस्यास्य निष्कर्षम्-

स्वभावोक्तिस्तोमैर्भरतवसुधोपासनरता,

गृहीत्वा सूक्तीनां सुकविरचितानां रुचिरताम् ।

प्रसन्ना गम्भीरा कविवररमाकान्तकविता,

प्रसादप्रासादं गमयति सलीलं सहृदयान् ।।

# संस्कृतकवितायाः लोकप्रियतायां डॉ० रमाकान्तशुक्लस्य योगदानम्

आचार्यवीरेन्द्रकुमारझा

अयि को न जानाति यदनेकविधज्ञानविज्ञानचमत्कारप्रचुरेऽस्मिन् संसारे भाषासु मुख्या मधुरा दिव्या गीर्वाणभारती विद्यते । या सुवर्णकिंकिणीणिक्वाणलीलावती सुललितपदावलीविन्यासपेशला समुचित-सन्निवेशविशेषरमणीयवेशभूषाऽलङ्कृता प्रसादादिगुणगण-गुम्फिता नवरस-रुचिरा इत्यादिर्भिविशेषणैः गौरवं प्रापिता संस्कृतभाषा सर्वासां भाषाणाम् जननीव संस्थिता, तस्यां काव्यनिर्माणपरम्परा महर्षि-वाल्मीकिकालादेव समागता विद्यते । अनेके कालिदासादिमहाकवयः अस्याः भाषायाः सेवां कुर्वन्तः काव्यनिर्माणमकुर्वन् । एषाम् कवीनां योगदानेन तदा संस्कृतमयं जगदासीत्,नास्त्यत्र सन्देहः । परञ्चैषा हि धारा आधुनिकयुगे उताहो स्वातन्त्र्योत्तरकाले प्रायः अवरुद्धा जाता । अस्मिन् समये न तादृशाः काव्यनिर्माणक्षमाः कवयः सञ्जाताः यैरस्याः संस्कृतभाषायाः लोकप्रियता अक्षुण्णा भवेत् ।

अस्यां संस्कृतकविशून्यस्थितौ संस्कृतानुरागिणां सौभाग्यात् एतादृशः संस्कृतकविः समुदभवत् येन संस्कृतकवितायाः लोंकप्रियता अधिकतमा परिवर्धिता जाता । स एव कविः डॉ0 रमाकान्तशुक्ल-नामकः, यस्य कठोरतमेन परिश्रमेण तपस्यया वा एषा संस्कृतकाव्यपरम्परा अद्यावधिपर्यन्तं जीविता दृग्गोचरीभवति ।

अनेन कविना अनेकानि संस्कृतकाव्यानि रचितानि सम्पादितानि च यानि खलु काव्यानि आगामिनवोदितकवीनां कृते आदर्शभूतानि सिध्यन्ति। अनेन कविना विरचितानि संस्कृतकाव्यानि संस्कृतानुरागिणां सहृदयानां कृते सत्पथप्रदर्शकानि नास्त्यत्र सन्देहलेशोऽपि । अनेन विरचितं [illegible] 'भाति मे भारतम्' नामकं काव्यं

भारतवर्षस्य वास्तविकं स्वरूपं ज्ञापयति किञ्च भारतीयनागरिकस्वरूप-विषये अनेनैव कविना विनिर्मितं ''भारतजनताऽहम्'' नामकं काव्यं भारतीयनागरिकस्य वास्तविकं स्वरूपं बोधयति ।

डॉ0 रमाकान्तशुक्लप्रणीतं ''भाति मे भारतम् '' नामकं चलचित्रम् भारतीयदूरदर्शने रामायण-महाभारतवत् धारावाहिकरूपेण समागतम् यदवलोक्य मन्ये सम्पूर्णभारतवर्षस्य आबालवृद्धाः सहृदयाः संस्कृतं प्रति जिज्ञासवः सञ्जाताः । एषैव जिज्ञासा संस्कृत-काव्यलोकप्रियतायाः मूलं कारणं भवति । किञ्च अनेनैव सिध्यति यत् संस्कृतकाव्यलोकप्रियतायां डॉ0 रमाकान्तशुक्लमहोदयस्य कियत् महत्त्वपूर्णं योगदानम् अस्ति ।

डॉ0 रमाकान्तशुक्लमहोदयेन ''देववाणी-परिषदः'' सचिवत्वेन यथावसरं परिषद एवंविधानि बहून्यायोजनान्यायोजितानि यानि खल्वस्मिन् समये संस्कृतभाषायाः सर्वविधसमुन्नत्यै भारतस्याखण्डतायै च अति अपेक्षितानि सन्ति ।

प्रायः जनानामेतादृशी भ्रान्तिः विद्यते यत् संस्कृतन्तु अतिकठिनतमो विषयो विद्यते यतो हि तस्य उच्चारणमेव अतिकाठिन्यमुपपादयति-किमुत विषयज्ञानम् । एतदपि सत्यमेव यतो हि संस्कृतभाषायाः संस्कृतविद्वद्भिः भाषायाः सरलीकरणम् न विधीयते किञ्च अध्ययनाध्यापनार्यं एवंविधा काऽपि विशिष्टा पद्धतिः न प्रचाल्यते यया संस्कृतानभिज्ञाः अपि जनाः संस्कृतं प्रति उत्कण्ठिताः भवेयुः । फलस्वरूपं संस्कृतकाव्यलोकप्रियता दिनानुदिनं ह्रासत्वपथमेवानुसरति ।

परञ्च नात्राऽतिशयोक्तिः यत् डॉ0 रमाकान्तशुक्लमहोदयस्य सरसा सरला च संस्कृतभाषा सहृदयानां संस्कृतानभिज्ञानामपि जनानां हृदयानि भृशमाकर्षयति ।

डॉ0 रमाकान्तशुक्लमहोदयस्य लेखन्यां साक्षात् वाग्देवी विराजमाना इव अवलोक्यते यतो हि तेनैव स्वकीये काव्ये एकत्रस्थाने भणितम् यत्-

''जिह्वां मे कीलयितुं शक्तः कः कोऽत्र जगति मातुर्जातः ।
वाणी विहरति मे सदोज्ज्वला गर्जन्ती भारतजनाऽहम् ।।''

अनेन डॉ0 रमाकान्तशुक्लमहाशयेन न केवलं भारत एव संस्कृतकाव्यलोकप्रियता परिवर्धिता अपितु विदेशेऽपि संस्कृतस्य महान् प्रचारः प्रसारश्च व्यधायि । संक्षेपेणेदमेव कथनं पर्याप्तं यत् विंशशताब्द्या अनेन कविना संस्कृतस्य प्रचाराय प्रसाराय परिवर्धनाय च मनसा वाचा कर्मणा वा यद्योगदानमर्पितं तदनुपमेयमतुलनीयञ्चास्ति ।

# भाति मे भारतम्

## (समीक्षा)

आचार्य डॉ० रमेशचन्द्रशुक्लः

अस्मदभिवन्दनीय एष भारतीयसंस्कृतसुधीसमाज एतस्मिन् आधुनिकेऽनेहसि राष्ट्रभक्तेः समुद्भावने, तस्याः परिवर्धने, सञ्चारणे, समुत्थापने च यत् समृद्धं समर्थ प्रेरणापरदं प्रभावपेशलं साहित्य-मद्यपर्यन्तमसृजत् तस्मिन् लोकमान्यतिलक-पण्डितमदनमोहन मालवीय-महात्मागान्धि - पण्डितजवाहरलालनेहरू - श्रीमतीन्दिरागान्धि - प्रभृतिपरकरराष्ट्रियकाव्यमहाकाव्यान्येवावश्यं पर्याप्तसंख्यायां दृष्टान्यभवन् परं राष्ट्रप्रेमपरिपोषणरतं मातृभूभक्तं परमप्रभावशालिन्यां भाषाया विरचितं नितान्तमनोरमौजस्विशब्देषु सुग्रथितं समुच्छलत्प्रवाहमञ्जुलायां शैल्यां विनिवेशितमुत्साहप्रदनवजीवनसञ्चारणकुशलार्थावल्यां विकसितं 'भाति मे भारतम्' नाम भारतस्तोत्रकाव्यं डॉ० रमाकान्तशुक्ल-प्रणीतमिदमेव मम दृग्गोचरतां गतमस्ति ।

संसारे शोभमानानां सर्वेषामपि राष्ट्राणां भाषासु यद्यपि काव्यानि शोभन्ते परं भारतस्य संस्कृतभाषायां भासमानानां काव्यानां स्वकीयमेवाद्वितीयं परमप्रकर्षश्रिया दीप्यमानं किमप्यनिर्वचनीयं वैशिष्ट्यं विद्योतते ।

संस्कृतकाव्यमद्भुता दिव्यां तां शक्तिमात्मनि सन्निवेशयति याध्येतुः श्रोतुश्च मनसो मलिनतां परिमार्ज्य तत्र पावनतां सञ्चारयन्ती प्रज्ञाया उत्कर्षं समुत्थापयन्त्यामनि परब्रह्मप्रकाशं वितनुते । अत एव तत्त्वज्ञाः सर्वास्वपि कलासु काव्यकलामुत्कृष्टतमां मन्यन्ते । इयं काव्यकलैव, या तामसानपि जनान् सत्कर्तव्योन्मुखान् विदधत्यत एव तु प्रोक्तम्-

'व्यामोहयन्ती विविधैर्वचोभिर्व्यावर्तयत्यन्यकलासु दृष्टिम् ।
कालं महान्तं क्षणवन्नयन्ती कान्तेव दक्षा कविता धिनोति ।।'

(महाकविनीलकण्ठदीक्षितः, शि० ली० म० १/२४)

काव्यं धर्म-देश-समाज-राजनीति-शिल्पकला-भक्ति-योग-देशप्रेमादिसर्वविषयान् सरसतया प्रकाशयितुं क्षमते, अत एव नाट्यशास्त्रे तल्लक्ष्यीकृत्याभिहितम्-

'न तच्छास्त्रं न सा विद्या न तच्छिल्पं न ताः कलाः ।
नासौ योगो न तज्ज्ञानं नाटके यन्न दृश्यते' ।

कविर्यो यावतीमेव कवित्वशक्तिं बिभर्ति तस्य काव्यमपि वर्णनीयं वस्तु तावतैव प्रकृष्टेनौजसा निधातुं प्रभवति । सफलः कविर्येन भावेन भावितो भूत्वा स्वकीयं वर्णनीयं वस्तु गायति, श्रोताध्येता वा तस्मिन्नेव भावे भावितो भवन् कविना सहैकात्म्यमश्नुते । तस्यां स्थित्यां सः कविहृदयगतसकलानिनायासेनैवावगन्तुं समर्थः सञ्जायते ।

इदं हि 'भाति मे भारतम्' स्तोत्रकाव्यमपि काव्यत्वश्रिया विद्योत्यमानमवाप्यते । काव्यनिकषे कृत्स्नतया शुद्धं काव्यत्वं हि तस्य सिद्ध्यति । काव्यस्योत्कृष्टतममुद्देश्यमिदमपि चरितार्थीकुर्वदधिगम्यते । काव्यस्य महनीयं कार्यमिदं यददः स्वकीयैः कतिपयैरेव पदैरस्मन्मानसं विषयान्तरादाकृष्य तत्र समावेशयेत् यस्मिन् समावेशनं तस्याभिमतं वर्तते। इदं काव्यं प्रारम्भादेव महनीयं कार्यमिदं विदधद् विलोक्यते । तद्-

विश्वबन्धुत्वमुद्घोषयत् पावनं
विश्ववन्द्यैश्चरित्रैर्जगत्पावयत् ।
विश्वमेकं कुटुम्बं समालोकयद्
भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।। (१)

इत्येतत्परमबन्धुरपदमधुरिम्णा गायदध्येतुः श्रोतुर्वा स्वान्तं स्वकीयस्य राष्ट्रस्य भारतस्य श्लाघनीयां महत्तां प्रति आवर्जयत् प्राप्यते।

यं राष्ट्रं मानवा अपि दानवा अपि सज्जनाः अपि असज्जनाः अपि, धनवन्तोऽपि दारिद्रयवन्तोऽपि, बलवन्तोऽपि नैर्बल्यवन्तोऽपि, देवा अपि, योगिनोऽपि भोगिनश्चापि समुपासते स राष्ट्रो यदि भूतले भाति तदा भूतलेन किन्न नाम सुकृतं सौभाग्यञ्चाधिगतमित्यभिदधत् कविः स्वस्य देशस्य गरिमाणं परमविदग्धतयाभिव्यञ्जयन्-

मानवैर्दानवैस्सद्जनैर्दुर्जनै-

स्सद्धनैर्निर्धनैस्सद्बलैर्निर्बलैः।

निर्जरैर्योगिभिर्भोगिभिश्चार्थितं

भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।।(४)

इत्येतस्यां सरलतासुशोभितायां पदावल्यां युगपदेव कार्यद्वयमनुतिष्ठति, तत्र प्रथमं देशस्य विचित्रविशिष्टताशालित्वं, द्वितीयञ्च तद्दिशायां सर्वेषामपि हृदयावर्जनम् । यत्र वैचित्र्यं विभाति तत् कं नाकर्षति ?

काव्यकलायां तु सा शक्तिर्या तं सर्वं विषयं, योऽपि तस्याः पुरः समुपस्थितो जायते, सफलतया वर्णयितुं शक्नोति; कामं सः कोऽपि विषयः स्यात् । अत्रेदं काव्यं प्रत्यक्षमेव रम्यं निदर्शनम् । काव्यस्यास्य ध्येयं वर्तते- 'राष्ट्रप्रेम' । इमं हि वर्णनीयें विषयं कियता चारुताचर्चितेन प्रकारेण कविरगायदित्येतवलोक्यास्मदीयमुपर्युक्तं कथनं स्पष्टतया सत्यं सिद्ध्यति।

राष्ट्रियं काव्यं तु तद् वस्तुतो यद् राष्ट्रस्य स्वरूपं राष्ट्रस्यात्मानं, राष्ट्रस्य भावनामस्माकं समक्षे निधातुं प्रभवेत् । इदं राष्ट्रिय- काव्यं कार्यमेतद् हृदयाभिरामया रीत्यानुतिष्ठदासाद्यते-

यत्प्रजातन्त्ररक्षापरैर्मानवै-

र्नास्ति हीनं कदापि प्रभाभासुरम् ।

आत्मतेजोमयं तद्ध्यहिंसामयं

भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।। (७६)

रक्तपातं विना शस्त्रपातं विना

यत्र संक्रान्तिरायाति मन्दस्मिता ।

येन विश्वं सदा शिक्ष्यते प्रेर्यते

भूतले भाति तन्मामकं भारतम् ।। (७४)

यत्र सर्वंसहा मेदिनी राजते

यत्र शीलं परं भूषणं भण्यते ।

यत्र मौनं चकास्ति व्रतेषूत्तमं
भूतले भाति तन्मामकं भारतम्' ।। (७७)

इत्येते श्लोका अस्मद्राष्ट्रस्य प्रजातन्त्रानुरागिताम्, अहिंसाव्रत-परायणताम्, आत्मतेजोऽर्जनोन्मुखतां निधाय, युद्धेऽहिंसाशस्त्र-प्रयोगप्रतिष्ठापनं चास्य राष्ट्रस्यास्मिन् युगे स्वकीयमेव कौशलमिति विज्ञाप्य 'शीलं परं भूषणम्' इत्येतामस्य राष्ट्रस्य मान्यतामाकलयन्तिं ।

काव्यं तु तद् यस्मिन् देशस्य वर्तमानदशापि चित्रिता भवेत्। काव्यमिदमीदृशमेव-

'सज्जनान् दुर्गतान् दुर्जनान् सद्गतान्
मानिता वारनारीर्विपन्ना वधूः ।
वीक्ष्य चित्तं कवेर्दूयते यत्र तद्
भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।। (७८)
दुःखदावानलैर्दग्धदेहान्नरान्
क्षुत्पिपासाकुलान् वृत्तिकष्टार्दितान् ।
वीक्ष्य कारुण्यपूर्णा नरा यत्र तद्
भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।। (७९)

कवेः प्रतिभायाः वाचश्चास्त्युल्लेखनीयं सौन्दर्यं यदसौ यल्लक्ष्यत्वेन वृणुते तत् स्वपठकस्याग्रे प्रत्यक्षीकृत्य प्रतिष्ठापयति । सः तस्मिन् भावे स्वकीयं श्रोतारं वाध्येतारं निमज्जयति । सोऽपि तद्भावभावितमना भवति।

कोमलमतीनामपि स्वराष्ट्रस्य धर्मे, स्वदेशस्य प्रेम्णि, स्वदेशीय-सदाचारोच्चधरित्र्यां प्रतिष्ठापनं काव्यस्यास्ति चरमोद्देश्यं; काव्यमेतत् स्वचरमोछेश्यस्यासादने, मन्मतौ, भृशं सफलतामधियाति ।

राष्ट्रभक्तिरपि वस्तुत इह काव्ये भावभुव उत्प्लुत्य रसभुवं गतास्ति। को जनो हि स यः काव्यस्य श्लोकान् श्रुत्वाधीत्य वा तमानन्दं न विन्दति य आनन्दः श्रुतौ साहित्ये च रस इति गीयते ।

साहित्यमर्मविदः कविकर्मभूतं काव्यं द्विविधमिति वदन्ति ।

तदेवम्- १. रसकाव्यम् । २. भावकाव्यम् । लोकं प्रधानीकृत्य कृता रचना 'रसकाव्य' मिति निगद्यते । देवस्वामि-नृप-देशादिविषयान् लक्ष्यीकृत्य रचना 'भावकाव्यम्' इति कथ्यते । प्रकृतेऽस्मिन् काव्ये देशभक्तिरुपश्लोकितास्ति तस्मात् काव्यमिदं भावकाव्यान्तर्गतं वर्तते ।

भक्तिपरका भावाः स्तोत्रे निधीयन्ते । स्तोत्राध्वैवैक ईदृग् यत्र भक्तिपरकभावना प्रीयते । अतो मनीषिणः कवय ईश्वर-गुरु-स्वामिप्रभृतिपूज्यानां गुणान् स्तोत्रकाव्ये गायन्ति । काव्यमिदं स्वकीयस्य राष्ट्रस्य गुणान् वैशिष्ट्यञ्च तत्तत्सादरं श्रद्धया च सह समुपस्थापयति, तस्मात्कारणत् काव्यस्यास्यान्तर्भावः स्तोत्रकाव्येषु जातोऽस्ति ।

स्तोत्रेण स्तूयमानस्य स्वरूपं परिचीयते । चेतोऽवस्थितिः सञ्जायते स्वरूपमभिज्ञायैव । गुणैः स्वरूपे निरूपिते सम्यक् परिचयोऽभीष्टस्य जायते; तेन च सुखं विन्दति चेतः । तत्र तत् ततो निलीयते । तदनुगुणतया कुमार्गाद्-विषयान्तरेभ्यो मनो निवर्तते । तत्र तत्रैवाराजति । तस्माद्धेतोः स्तोत्रस्यास्ति महन्महत्त्वम् ।

कविरयं 'केन प्रकारेण मानवस्य मनः स्वाभीष्टां दिशां प्रति आवर्जयितुं शक्यं येन तद् आवर्जितं भूत्वा तत्र निलीयेत' इति साधु समीचीनतया वेत्ति । अत एव तेन स्वकीयो देशः स्तोत्रपद्धत्यामुपश्लोकितः । उपश्लोकने तथा सोऽयतत यथा देशस्य स्वरूपं, तदीया गुणास्तदीया संस्कृतिस्तदीया आचाराश्च पावनाः प्रत्यक्षतया दृष्टा भवेयुः । तद्दर्शनं प्राप्य मनसस्तद्गुणेष्वासक्तिरनायासेनैव भवितुं शक्या । इदं हि गुरुतरं कार्य्यं काव्यमेतत् साधयति अतोऽस्तीदं नूनमेव प्रशस्ततरं स्तोत्रकाव्यम् ।

कस्यचन वर्णनीयस्य वस्तुनः कापि विशिष्टता यत्र काव्ये एकस्मिन्नेव श्लोके पूर्णयता चित्रिता जायते तदा तत् काव्यं मुक्तकत्वस्य रूपं बिभर्ति। एतस्मिन् काव्ये ये श्लोकाः शोभन्ते तेष्वेकैकः श्लोको वर्ण्यवैशिष्ट्यं कृत्स्नतयास्माकं समक्षे निदधात्यतः काव्यस्यास्य रूपं मुक्तकं रूपं वर्तते। एतदर्थमिह श्लोक एको निधीयते-

गोखलेबालगङ्गाधराराधितं
श्रीशिवाजीतुकारामसम्बोधितम् ।

यन्महाराष्ट्रकं सह्यशृङ्गोच्छ्रितं
भूतले भाति तन्मामकं भारतम् ।।(५२)

महाराष्ट्रप्रदेशस्य वर्णनं कवेरिष्टं यत्तच्छ्लोकेनैकेनैव पूर्णतयास्मत्समक्षे निधीयत इत्येतद्वयं स्फुटतया प्रेक्षामहे ।

स एव कविः स्वभावानुरूपं समाजं कर्तुं प्रभवति यः स्वकाव्ये निहितेषु भावेषु सर्वाङ्गीणतया स्निह्यति; यः स्वाभिमतेषु भावेषु प्रीयते, यः स्वकीयेषु भावेषु विशुद्धं छलरहितं पावनं निःस्वार्थं प्रेम निदधाति । अस्मिन् काव्ये राष्ट्रभक्तिभावो गृहीतोऽस्ति । कविस्तस्य भावस्य मनसा, वाचा कर्मणा चाराधकोऽस्ति; सोऽस्ति परमार्थतो देशभक्तः । इदं हि तदीयेनैतेन काव्येन तु सिद्ध्यत्येव । परमिह तेन समर्पणपरकौ श्लोकौ द्वौ रचितौ स्तः, ताविह प्रस्तुतीक्रियेते । ताभ्याञ्च तस्य देशभक्तत्वमस्माकं पुरः समुपस्थितं जायते-

भारतं वर्तते मे परं सम्बलं,
भारतं नित्यमेव स्मरामि प्रियम् ।
भारतेनास्ति मे जीवनं जीवनं,
भारतायार्पितं मेऽखिलं चेष्टितम् ।।
भारताद्भाति मे भूतलं भूतलं,
भारतस्य प्रतिष्ठास्ति मे मानसे ।
भारतेऽहं प्रपश्यामि विश्वेश्वरं,
भारत ! क्षोणिशृङ्गार ! तुभ्यं नमः ।।

अत्र काव्ये प्रचलितांग्लशब्दानामपि प्रयोगो दृश्यते (श्लोकः १६) । प्रायोऽत्र स्रग्विणीवृत्तं वर्तते । वस्तुनो वर्णनं यथावदतः स्वभावोक्तिरलङ्कारो मुख्यः । काव्यमुद्दिश्यान्यदपि वक्तुमवशिष्यते परं केवलमिदमुक्त्वा विरम्यते ।

# भाति मे भारतम् : काव्यदर्शनम्

प्रो० डा० शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी

श्रीरमाकान्तशुक्लस्य काव्यं नवं
'भाति मे भारतं' शुभ्रचित्राञ्चितम्।
शव्दधाराप्रवाहेण रोमाञ्चितं
भावनागुम्फितं सर्वमोदावहम् ।।१।।
शुभ्रव्यक्तित्वधाराऽभिरामं परं
हृत्तरंगेषु दोलायमानं कथम् ।
सा प्रतीक्षाऽस्ति काचित् प्रपूर्णीकृता
मेघदूतोत्तरं या विवृद्धिं गता।२।
कुत्र सौख्यं समस्तं मिलेत्पूर्णतः ?
कुत्र तृप्तिः समासादनीया भवेत्?
प्रश्नजातस्य सर्वस्य तत्रोत्तरं
''भाति मे भारतम्'' ।।३।।
नैकगोष्ठीषु देशस्य सम्यक् श्रुतं
सत्कवीनां समाजेषु यच्चर्चितम् ।
यत् श्रुतं शोतृवृन्दे परं तुष्टिदं
तादृशं विद्यते ''भाति मे भारतम्'' ।।४।।
विश्वविद्वत्समाजस्य सम्मेलने
काशिकायां रमाकान्तसंश्रावितम् ।
श्रोतृविद्वत्समूहे भृशं नन्दितं

दिव्यमोदान्वितं "भाति मेभारतम्" ॥५॥

को नु ब्रूतेऽद्य यत् प्राक्तनं संस्कृतम् ?
नो नवं संस्कृतं नोनवस्फूर्तिदम् ?
यो मृतं संस्कृतं वा समुद्घोषयेद्
तन्मुखे मुद्रणं "भाति मे भारतम्" ॥६॥

या प्रवृत्तिर्नवा भारते दृश्यते तस्य
सर्वस्य दृश्यावलिः प्रस्तुता ।
प्राक्तनं गौरवं सम्यगाम्रेडितं
रम्यकाव्येऽत्र तद् "भाति में भारतम्" ॥७॥

ये पठन्त्यद्य तेषां नवस्फूर्तिदं
संस्कृतेऽपि प्रसादस्य[१] काष्ठा परा ।
सत्वरं यन्मनोबुद्धिसन्तर्पणं
तादृशं सौख्यदं "भाति मे भारतम्" ॥८॥

सत्कवेरोजपूर्णैः स्वरैर्भूषितं
श्रोतृवृन्देषु रोमाञ्चसञ्चारकम् ।
पाठकाले "पुनः"[२] शब्दसम्पूजितं
तादृशं विद्यते "भाति मे भारतम्" ॥९॥

संस्कृतेऽद्यापि काव्यं नवं रच्यते ?
यद्भवेत्सर्वसाधारणे विश्रुतम् ?
सर्वथा नूतनैर्भावसार्थैर्युतं ?
तत्र सिद्धोत्तरं "भाति मे भारतम्" ॥१०॥

राजधान्यामिहाऽविष्कृतं भूरिशो
भाग्यमालाभिरास्ते परं मण्डितम् ।
सद्यशोवर्षकं सत्कवेर्नित्यशो
भूरिभाषाञ्चितं "भाति मे भारतम्" ॥११॥

मातृभूभक्तिसाम्राज्यसन्देशदं
मातृभूभक्तवीरस्मृतिस्फूर्तिदम् ।
भावसौगन्ध्यसारेण सम्पूरितं
दिव्यतामण्डितं "भाति मे भारतम्" ॥१२॥

नव्यसंयोजनावर्णनैर्मण्डितं
शुभ्रविज्ञानधारासमासेवितम् ।
चिन्मयैकान्तमित्रत्वमासादयत्
द्योतते मानसे "भाति में भारतम्" ॥१३॥

'कान्त' वाङ्मञ्जरीसेवितं सर्वशो
व्यञ्जनाभिर्नवाभिः समाराधितम् ।
चित्रसौगन्ध्यचुञ्चुद्वरेफैः परं
विद्भिरासादितं "भाति मे भारतम्" ॥१४॥

श्रीरमाकान्तशुक्लोऽभिनन्द्यो न कैर्येन
नव्यं नवस्फूर्तिदं निर्मितम् ।
काव्यमारात् प्रभाभास्वरं सुस्वरं
भाति में भारतम्" ॥१६॥

---

१. प्रसादगुणस्य

२. कविसम्मेलनेषु श्रोतभिरेतत्पठनावसरे 'पुनः' 'पुनः' इति ध्वनिः क्रियते ।

# राष्ट्रीयता की दृष्टि से-
# ''भाति मे भारतम्''

कु0 गीता चन्सौरिया

साहित्य वह सागर है जिसमें विभिन्न क्षेत्रों से आकर ज्ञान-विज्ञान की सरिताएँ समाविष्ट हो जाती हैं। 'सहितस्य भावः साहित्यं'' यह व्युत्पत्ति भी इस कथन की पुष्टि करती है। यही कारण है कि साहित्य में समाज के वे समस्त विषय स्तम्भ समाविष्ट हो सकते हैं जिनका सम्बन्ध हमारे जीवन से है। विभिन्न जीवन संघर्ष, उत्थान-पतन, उन्नति-अवनति, आर्थिक, धार्मिक राजनीतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा वैज्ञानिक आदि सभी स्थितियाँ उसमें समाविष्ट हो सकती हैं। उसमें भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली इन चारों काव्य तत्त्वों में किसी न किसी रूप में उक्त विशेषताएँ भी उपलब्ध रहती हैं। काव्य में भावपक्ष की प्रधानता परम्परा से चली आ रही है। इसमें जहाँ रसात्मकता सर्व प्रमुख रूप में स्वीकृत है, वहाँ भावुकता उसी से अनुस्यूत होने के कारण स्वतः समाहित हो जाती है। इस कारण देश प्रेम और राष्ट्रीयता जैसे भाव काव्य की शोभा में वृद्धिकारक होते हैं, क्योंकि इनसे बहुजन हिताय और बहुजन-सुखाय की पूर्ति होती है।

डा0 रमाकान्त शुक्ल अभिनव संस्कृत साहित्य के वह समर्थ कवि हैं जिन्हें संस्कृत का राष्ट्रकवि भी कह सकते हैं। इन्होंने देश प्रेम और राष्ट्रीयता से परिपूर्ण अनेक ग्रन्थ रत्नों का निर्माण किया है। उनमें **'भाति मे भारतम्'**[१] शीर्षक एक श्रेष्ठ मुक्तक काव्य है, जो राष्ट्रीय चिन्तन के क्षेत्र में अद्वितीय समझा जाता है। इसमें कवि ने एक सौ आठ छन्दों में अपने देश-प्रेम एवं राष्ट्रीय गौरव की व्यापक एवं सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की है। यह इतनी लोकप्रिय रचना है कि अखिल भारतीय स्तर के विभिन्न कवि-सम्मेलनों में इसका पठन एवं श्रावण हुआ है और एक स्वर से विद्वत् समाज ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इसमें कवि ने साहित्यिकता के साथ संगीतात्मकता की भी सुरक्षा की है। इसमें कवि ने स्रग्विणी छन्द का प्रयोग किया है जिसमें चार रगण होते हैं और -यह बड़ा ही सुन्दर एवं गेय छन्द है[२]। १९८० में प्रकाशित यह कृति संस्कृत-समाज में अपने काव्य सौष्ठव एवं राष्ट्रीय भावना के द्वारा बहुचर्चित एवं अत्यंत लोकप्रिय हो गयी है। ग्रन्थ के समर्पण में ही



कवि का देशानुराग अपनी पूर्ण शक्ति के साथ निम्नलिखित पंक्तियों में अभिव्यक्त

हुआ है, यथा-

भारतं वर्तते मे परं सम्बलं

भारतं नित्यमेव्व स्मरामि प्रियम् ।

भारतेनास्ति में जीवनं जीवनं

भारतायार्पितं मेऽखिलं चेष्टितम् ।।

राष्ट्रीयता क्या है ? इसके सम्बन्ध में भी कुछ निवेदन करना असंगत न होगा। जब किसी एक निश्चित भू-भाग पर एक भाषा, एक ही धर्म, एक ही जाति, एक ही संस्कृति के सूत्र में बँधे हुए लोगों में जो एकत्व की भावना होती है वही राष्ट्रीयता कहलाती है और यह राष्ट्रीयता जब स्वतंत्रता प्राप्त कर ले या अपना राज्य बना ले तो वह राष्ट्र हो जाता है। विद्वानों के अनुसार एक राष्ट्रीयता में एक ही भू-भाग, एक ही धर्म, एक ही जाति, एक ही भाषा और एक ही संस्कृति-ये पाँच बातें अवश्य होनी चाहिएँ। प्रसिद्ध विद्वान् जान स्टुअर्ट मिल ने लिखा है - ''एक राज्य में एक ही राष्ट्रीयता होनी चाहिए यह दशा स्वतंत्र संस्थाओं के अस्तित्व लिए आवश्यक है। जिन राज्यों में एक से अधिक राष्ट्रीयताएँ होती हैं, उनमें स्वतंत्र संस्थाओं का अस्तित्व असम्भव हो जाता है।'' इसी प्रकार राज्य में विद्यमान एकता अर्थात् राष्ट्रीयता की आध्यात्मिक भावना का नाम ही राष्ट्रँ है। अतः हम कह सकते हैं कि राष्ट्रीयता का ही विकसित एवं संगठित रूप राष्ट्र है।

शुक्ल जी ने अपनी इस रचना में अपनी राष्ट्रीयता का स्वर सबल रखने में अपनी समस्त शक्ति का उपयोग किया है। ग्रन्थं के प्रारम्भ में उन्होंने ''वसुधैव कुटुम्बकं'' की भावना को उद्घोषित करते हुए अपने देश भारत की प्रशस्ति की है। कवि ने अपने भारत की प्रशंसा में बड़ी तन्मयता के साथ कहा है कि मनुष्यों के द्वारा अत्यंत सम्मानित, दानवों के द्वारा अबाधित, देवताओं के द्वारा आराधित, सज्जनों के द्वारा आसाधित, पण्डितों के द्वारा पूजित तथा पक्षियों के द्वारा कूजित मेरा भारत भूतल में अनवरत सुशोभित हो रहा है-

मानवामानितं दानवाबाधितं

निर्जराराधितं सज्जनासाधितम् ।

पण्डितैः पूजितं पक्षिभिः कूजितं

भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।। (श्लो0 ३ )

शुक्ल जी की देश प्रेम पद्धति में व्यापक दृष्टि से विचार करने पर पता चलता है कि उन्होंने इसकी विभिन्न विशेषताओं पर गंभीरता से प्रकाश डाला है। यहाँ की सांस्कृतिक विभिन्नता में अभिन्नता का जो चमत्कार विद्यमान है उसे भी उन्होंने

विस्तार से लिखा है । भारतीय आदर्शवाद तथा विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों से गौरवान्वित इस देश को उन्होंने भूतल का आदर्श माना है, उनकी दृष्टि में गंगा, जमुना, नर्मदा आदि विभिन्न सरिताएँ प्रेरणा की स्रोत हैं । हिमालय, विन्ध्याचल आदि पर्वत हमारे सांस्कृतिक प्रतीक हैं । विश्वनाथ महाकालेश्वर तथा वेंकटेश्वर मन्दिर आदि हमारी आराधना के केन्द्र-बिन्दु हैं । यहाँ पर विभिन्न देवी देवताओं की आराधना होती है और आस्था के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं । यहाँ अर्थ, काम, धर्म, मोक्ष सभी की साधना होती है; भक्ति, कर्म और ज्ञान के अद्‌भुत समन्वय की साधना यहाँ की विशेषता है ।

अर्थकामान्वितं धर्ममोक्षान्वितं
भक्तिभावान्वितं ज्ञानकर्मान्वितम् ।
नैकमार्गैः प्रभुं चैकमाराधयद्
भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।। (श्लो० २२ )

कवि यह दिखलाता है कि यह वो देश है, जहाँ विविध भाषायें बोली जाती हैं, उनका पठन-पाठन होता है । और उनके साहित्य का सम्मान होता है चाहे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि प्रचीन भाषाएँ हों अथवा तमिल, तेलुगु, कन्नड़ आदि आधुनिक दक्षिण भारतीय भाषाएँ अथवा अंग्रेजी आदि पाश्चात्त्य भाषाएँ हों, इन सभी से हमारा राष्ट्र भारत वृद्धि को प्राप्त होता है । (श्लो० २३)

यह वह देश है जहाँ पर महर्षि वाल्मीकि, वेदव्यास, कालिदास, बाणभट्ट जैसे कविरत्न हुए । यह वह देश है जहाँ पर विभिन्न भाषाओं में रामकथा का गान किया गया है । कम्बरामायण, कृत्तिवासरामायण, भावार्थरामायण, अध्यात्मरामायण, भुशुण्डिरामायण आदि दुर्लभ ग्रन्थ उपलब्ध हैं । इतना ही नहीं यहाँ पर योगवासिष्ठ और गीता जैसे दर्शन के ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं । इतना ही नहीं कवि ने तीर्थों के देश भारत की तीर्थावलि का सानुराग स्मरण किया है जिनमें चारों धामों के अतिरिक्त अन्य विशिष्ट तीर्थों का भी उल्लेख किया है । इस देश में अनेक महापुरुषों की जयन्ती मनाई जाती है विभिन्न व्रत एवं त्यौहार मनाये जाते हैं और ताजमहल, खजुराहो, कन्याकुमारी जैसे दर्शनीय स्थलों का उल्लेख किया गया है । इस संबन्ध में अजन्ता एलोरा, बोधगया, सारनाथ और कोणार्क जैसे स्थलों की गरिमा का भी उल्लेख किया है । यहाँ के सांस्कृतिक परिवेश का चित्रण करते हुए कवि ने दिखाया है कि ओडिसी, मणिपुरी, भरतनाट्यम्, कूचिपूडि, कथक, डाँडियारास, कथकली, गरबा तथा भांगड़ा नृत्य आयोजित होते रहते हैं ।

ओडिसी मणिपुरी भारतं नाट्यकं
कूचिपुडि कत्थक डाण्डियारासकम् ।

कथकलीं गर्वकं भंगडां लासयद्

भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।। (श्लो0 ३३ )

यहाँ की धार्मिक सहिष्णुता के विषय में भी कवि लिखता है कि यहाँ मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, गिर्जाघर और आर्य समाज मन्दिर सभी में अपने-अपने ढंग से धर्म के रूप में जीवन के मर्म को समझने-समझाने की चेष्टा हुई है । कवि ने प्रकृति के क्षेत्र में भारत के विभिन्न पशु-पक्षियों के सौन्दर्य का भी चित्रण किया है । कोकिलों के कलरव, भौरों का गुंजन, मयूरों के नर्तन और तोता-मैना के संवाद इसे सहज ही में मुग्ध कर देते हैं । प्रकृति के क्षेत्र में मेघमालाओं से सुशोभित वर्षा, कांश कुसुम से सुशोभित शरद्, सरसों की शृंखला सुशोभित वसन्त और अन्न सम्पत्ति से सुशोभित ग्रीष्म उसके हृदय को गौरवान्वित करती है । यहाँ के झरते हुए झरने, हरे-भरे वृक्ष, कमलों से अलंकृत सरोवर, इनमें विहार करने वाले हंस, कारण्डव सारस, खञ्जन आदि पक्षी अपने सौन्दर्य से कवि के मन को मोह लेते हैं । यह वह देश है जहाँ विद्वान्, योद्धा, व्यापारी, श्रमिक, शस्त्रविज्ञ, शास्त्रवेत्ता, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा संन्यासी अपने-अपने स्थान पर सुशोभित हैं । प्रचीन इतिहास पर दृष्टि डालते हुए कवि ने लिखा है कि यह वह देश है जहाँ पर शक, हूण, म्लेच्छ, यवन आदि विभिन्न जातियाँ आकर लय हो गयीं । आर्य और अनार्य जहाँ एक होकर रहे यह वह देश है । इस देश में स्वामी दयानन्द, महात्मा गाँधी, स्वामी विवेकानन्द, योगिराज अरविन्द जैसे आधुनिक समाजसेवी, गोखले, बालगंगाधर, तिलक जैसे राष्ट्रप्रेमी उत्पन्न हुए । इसमें दक्षिण भारत की सांस्कृतिक गरिमा का भी गान किया है । कर्नाटक के गोम्मटेश्वर का उल्लेख इसकी व्यापक दृष्टि का प्रमाण है । अपनी प्राचीन विरासत का स्मरण कराते हुए वेताल और विक्रम की कहानियों का भी उल्लेख किया है और विभिन्न प्रान्तों में जो में जो भी विशेषताएँ प्रसिद्ध हैं उन सभी का गान करने में अपनी शक्ति लगायी है ।

कवि ने अपने देश के त्याग, बलिदान, शौर्य भावना और विभिन्न आदर्शो का स्मरण करते हुए यहाँ सत्यं, शिवं सुन्दरम् की प्रतिष्ठा का उल्लेख किया है । उसने अमर शहीद सरदार भगत सिंह आदि की वीरता और देश प्रेम की प्रशंसा की है । चन्द्रशेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल, सुभाषचन्द्र बोस, लाला लाजपतराय आदि देश भक्तों का बड़े आदर के साथ स्मरण किया है ।

साधकैस्सद्भिरध्यात्मचिन्तापरै-

देशभक्तैर्विपश्चिद्भिरापूरितम् ।

कर्षकैः कार्मिकैः स्विन्नगात्रैर्युतं

भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।। (श्लो0 ७ ८)

कवि ने अपनी मातृभूमि की प्रशंसा में लिखा है कि यह वो देश है कि जिसमें बिना रक्तपात के क्रान्ति होती है । ऐसी अहिंसात्मक क्रान्ति अन्यत्र कहाँ हुई । इतना ही नहीं उसने शत्रु के टैंकों को ध्वस्त करने वाले वीर अब्दुल हमीद का भी चित्रण किया है जिसने अपनी विश्वस्त राष्ट्रीयता का परिचय दिया है ।

इतना ही नहीं कवि ने अपने देश की विपन्न स्थिति का भी चित्रण किया है। सज्जनों की दुर्गति व गृह वधुओं की विपन्नता की स्थिति पर वह व्यथित हुआ ।

सज्जनान् दुर्गतान् दुर्जनान् सद्गतान्

मानिता वारनारीर्विपन्ना वधूः ।

वीक्ष्य चित्तं कवेर्विव्यथे यत्र तद्

भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।। (श्लो० ७८)

अपने देश में बेरोजगारों की समस्या देखकर उसके नेत्रों में अश्रु छलक आये हैं । भूखे प्यासे, भोले-भाले दुःखी भारतीयों को देखकर उसके चित्त को आन्तरिक क्लेश हुआ, किन्तु ऐसे लोगों में भी स्वाभिमान सुरक्षित है, इस बात का भी उल्लेख किया है-

यत्र नग्ना क्षुधार्ता अगेहा अपि

स्वाभिमानं जहत्येव नो मानवाः ।

यत्र दृप्तं निरीहस्तृणं मन्यते

भूतले भाति तन्मामकं भारतम् । (श्लो० ८५ )

इतना ही नहीं कवि ने देश की प्रचीन समृद्धि का भी उल्लेख किया है, अपिच उसने उसकी आधुनिक उन्नति और वैज्ञानिक विकाश को भी दिखलाया है, भाखड़ा आदि बाँधों का उल्लेख, विद्युत उत्पादन और तैल शोधन के क्षेत्र की प्रगति और आर्यभट्ट, रोहिणी तथा भास्कर जैसे प्रक्षेपास्त्रों, उपग्रहों का उल्लेख करके देश के गौरव का गान किया है ।

आर्यभट्टं वियन्मण्डले स्थापयत्

पोखरणभूमिगर्भेऽणुशक्तिं किरत् ।

शान्तिकार्येष्वणुं प्रेरयत्सन्ततं

भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।। (श्लो० १४ )

यहाँ के मतदान के नवीन साधनों, मिसाईल जैसे कारखानों का उल्लेख करके कवि ने भारत की अद्यतन प्रगति पर भी अपने को गौरवान्वित माना है ।

सारांश यह है कि कविवर शुक्ल ने भाति मे भारतम् में भारत देश के वैदिक कालीन गौरव से लेकर अद्यतन गौरव की अत्यंत सरस एवं प्रभावपूर्ण झाँकी प्रस्तुत की है। श्लोक-श्लोक में उनका देशानुराग छलकता हुआ प्रतीत होता है; यहाँ की नदियाँ, यहाँ के पर्वत, यहाँ की प्रकृति, यहाँ की सांस्कृतिक निधि, यहाँ की वैज्ञानिक प्रगति, यहाँ के पुरातन आदर्श और यहाँ की नवीन गतिविधियों से उनका यह काव्य परिपूर्ण है। इस प्रकार वे केवल इस काव्य के द्वारा ही संस्कृत राष्ट्रकवि के रूप में हमारे लिए वन्दनीय एवं माननीय हैं। इनसे अपेक्षा की जाती है कि यदि वे अपने वर्ण्य-विषय की क्रमबद्धता का ध्यान रखेंगे और उसमें कतिपय अछूते विषयों को भी सम्मिलित कर लेंगे जिससे भविष्य में यह नवीन संस्करण पाठकों के लिए अपेक्षाकृत अधिक आनन्ददायक सिद्ध हो सकता है।

---

१. डॉ0 शुक्ल ने कहीं कहीं स्रग्विणी के मात्रिक स्वरूप की कल्पना की है जिसमें प्रत्येक चरण में बीस मात्राएँ आयीं हैं।

२. लेखिका ने 'भाति मे भारतम्' के प्रथम संस्करण को अपने अध्ययन का आधार बनाया है।

# 'जय भारतभूमे' काव्यस्य मूल्याङ्कनम्

प्रोफेसर हरिनारायण दीक्षितः

## (कः) रचनापरिचयः

'जय भारतभूमे' नामकमेकं पद्यकाव्यं विगते ईशवीये भू-वसु-ग्रह-भूमिते (१९८१) अब्दे 'देववाणी-परिषद्, दिल्ली' तः प्राकाश्यमायातम-स्तीति नव-नवरचनास्वाध्यायशीलानां प्रगतिशीलानां सुरगवीस-मुपासकानां विदितचरमेव भवेदिति मन्ये । काव्यस्यास्य प्रणेता रससिद्धः कविवरो डॉ0 रमाकान्तशुक्लो वर्त्तते; यो हि भारतराष्ट्रधान्यां नवदिल्ल्यां वाणीविहारे आर-षष्ठे स्वीये आवासे विहितवासो संस्कृतभाषायाः सत्क्रियात्मकौ तीव्रतमौ प्रचार-प्रसारौ विदधानो महासचिवत्वेन च देववाणी-परिषदं सेवमानोऽनारतं संस्कृतसाहित्यश्रीवृद्धये भव्यभाषाभावभरितां काव्यसम्पदं विरचयन् संस्कृतसाहित्यसंसारे लभ्यमानसम्मानो वरीवृत्यते ।

अस्मिन् काव्ये समानभावानां सप्तानां कवितानां समावेशो वर्तते । तासां क्रमेण नामानि सन्ति-१- जय भारतभूमे, २- भजे भारतम्, ३- मम भारतं विजयते, ४- भारतभूमिर्विलसति, ५- जय भारतमेदिनि विश्वनुते, ६- भारताख्यः स्वदेशः, ७- दिव्यं मम भारतं चेति । एतासु 'जय भारतभूमे' कवितायामष्टाविंशतिः, 'भजे भारतम्' कवितायां चापि अष्टाविंशतिः' 'मम भारतं विजयते' कवितायामेकादश, 'भारत-भूमिर्विलसति' कवितायां द्वादश, 'जय भारतमेदिनि विश्वनुते' कवितायां नव, 'भारताख्यः स्वदेशः' कवितायां द्वादश, तथा 'दिव्यं मम भारतम्' कवितायामष्टौ पद्यानि सन्ति । सर्वाणि चेमानि समवेतानि भूत्वा अष्टोत्तरशतसंख्याकानि भवन्ति । यद्यपि पुस्तकेऽस्मिन् 'जय भारतभूमे' वर्जं स्थाने-स्थाने निर्धारितानि 'भजे भारतम्'-'मम भारतं विजयते'-

'भारतभूमिर्विलसति'-'जय भारतमेदिनि विश्वनुते'-'भारताख्यः स्वदेशः'-'दिव्यं मम भारतम्' चेतिस्वरूपाणि शीर्षकाणि अस्याः कृतेः संग्रहात्मकत्वं प्रकटयन्ति ; किन्तु सर्वेषु एषु शीर्षकेषु प्रतिपाद्यविषयस्य ऐक्यमालोक्य मामकी मतिः अस्यां कृतौ शतककाव्यत्वच्छविमनुभवति ; न तु तथा आपातमनुभूतं संग्रहात्मकत्वरूपम् । मन्ये यत्कविवरेण डॉक्टरशुक्लमहाभागेन स्वविरचित -'भाति मे भारतम्' इत्याख्यशतक-काव्यवदेव (यन्मम दृष्टौ 'मालाकाव्य' संज्ञाधारणेऽपि समर्थम्) एतद् 'जय भारतभूमे' नामकमपि काव्यं शतककाव्यरूपेणैव (मालाकाव्यरूपेणैव वा) प्रणीतमस्ति ।

## (खः) भावपक्षः

एनत्काव्यमधीत्य पाठकस्य मनसि कविनिष्ठायाः स्वेदशभक्ति-भावनायाः समुदयो भवतीति निश्चप्रचमेव । यतो हि अस्मिन् काव्ये प्रारम्भादवसानपर्यन्तं भारतभूमेरेव गरिमा महिमा वा पाठकस्य अनूभूतिविषयो बोभवीति नान्यत्ततः परं किमपि । कवेः दृष्टौ भारतभूमिः जन्मभूमित्वात्स्वर्गादपि गरीयसी विद्यते (पृ0 सं0 ३) । इदमेव कारणमस्ति यत्तेनास्या रचनायाः आरम्भिकेषु अष्टाविंशतिपद्येषु विविधविशेषणैः भारतभूमिं सम्बोध्य तस्या भूरिशो जयकारः कृतोऽस्ति । सः स्वदेशं भारतं प्रियं मन्यते ; स्वीयां वा मातृभूमिं भारतभूमिं पवित्रां मन्यते; भारतस्य भारतभूमेर्वा इयं प्रियता पवित्रता वा सर्वेषामेव मनःपटले विहितास्पदा वर्तते । अत एव सः प्रसन्नेन मनसा स्वदेशं दिव्यभूतं भारतं भजते -

मदीय स्वदेशः प्रियं भारतं मे
मदीया प्रिया मातृभूमिः पवित्रा ।
इतीत्थं त्रिलिङ्ग्यां जनैर्गीयते यो
भजेऽहं मुदा भारतं तं स्वदेशम्।
भजे तं मुदा भारतं दिव्यदेशम् ।।

(पृष्ठसंख्या, ४५)

कविवरो डॉ0 शुक्लमहाभागो निजदेशस्य प्रणमनीयता-कीर्त्तनीयता-वन्दनीयतादिरूपाः विशेषताः समनुभूय स्वदेशं प्रणमति; कीर्त्तयते; वन्दते च; सहैव च कामयते यत्स्वदेशोऽनारतं वृद्धिं, मुदं शोभां च प्राप्नोतु -

प्रणम्यः प्रणम्यो मया यः स्वदेशः
सदा कीर्त्तनीयः सदा वन्दनीयः ।
सदा वर्धतां मोदतां राजतां यो
भजेऽहं मुदा भारतं तं स्वदेशम् ।
भजे तं मुदा भारतं दिव्यदेशम् ।।

एवं प्रतिभाति यदेष कविवरो निजदेशे भारते भृशं स्निह्यति ; अत्यधिकं समादरं धारयति; महतीं च श्रद्धां करोति । अनेनैव हेतुना अयमभिलषते यद् भारते कमपि जनं क्षुधा नैव पीडयेत्; निवासाभावो न बाधेत; वस्त्रहीनता च न संस्पृशेत्; कुत्रापि चात्र कस्यापि केनापि शोषणं नैव क्रियेत; विदुषामुपेक्षा नैव भवेत्; दरिद्रता नैव जायेत; दुर्बलता च नैव सम्पीडिता स्यात्-

उपेक्ष्येत नो यत्र वैदुष्यपुञ्जो
न वै वर्धतां यत्र दारिद्र्यपुञ्जः ।
तथा दुर्बलाघात आस्तां न यत्र
भजेऽहं मुद्रा भारतं तं स्वदेशम् ।
भजे तं मुदा भारतं दिव्यदेशम् ।।

(पृष्ठसंख्या, ४७ - ४८)

काव्येऽस्मिन् कवेरियमपि हार्दिकीच्छा समभिव्यज्यते यदत्र भारते देशद्रुहां, दस्यूनां, कामकीटानां, वञ्चकानां, तस्कराणां कर्त्तव्यभ्रष्टानां च सुतरामभावो भवेत् । एवमेव सः 'बलात्कार-हत्या-अपहार-प्रहार-अशिक्षा-वधूदाह-भिक्षाचारादीनां ' निन्द्यानां जघन्यानां देशापकीर्त्ति-करणाम् अपकृत्यानां कर्मणां पूर्णरूपेण लोपं कामयते । तस्य च

विश्वासोऽपि वर्त्तते यदेषामपकृत्यानामवश्यमेव लोपो भविष्यति-

(अः) नितान्तं विहीनः कदाचित्तु यः स्याद्
गृहस्फोटकैर्दस्युभिः षिड्गसंघैः ।
तथा वञ्चकैस्तस्करैर्भ्रष्टकृत्यैः
भजेऽहं मुदा भारतं तं स्वदेशम् ।
भजे तं मुदा भारतं दिव्यदेशम् ।।

(आः) बलात्कारहत्यापहारप्रहाराः
अशिक्षावधूदाहभिक्षाप्रचाराः ।
कदाचित्तु लुप्ता भविष्यन्ति यस्मात्
(अवश्यं विलुप्ता भविष्यन्ति यस्मात्)
भजेऽहं मुदा भारतं तं स्वदेशम् ।
भजे तं मुदा भारतं दिव्यदेशम् ।।

(पृष्ठसंख्या, ४४-४५)

कविवरोऽयं स्वदेशस्य भारतदेशस्य तांस्तानपि दुर्लभान् सद्‌गुणान् अभिव्यनक्ति यैरयं स्वदेशो विश्वबन्धुतामापद्यमानः सर्वत्रैव सततं धवलं यशो विन्दते । एतैरेव च सद्‌गुणैर्भारतदेशोऽन्ताराष्ट्रिये प्राच्ये विश्वक्षितिजे भास्करायमाणो विद्यते-

(अः) कुटुम्बं धरित्री दया यस्य मित्रं
मनुष्यत्वसेवा यदीयोऽस्ति धर्मः ।
असत्यं च शत्रुः समस्तेऽपि लोके
भजेऽहं मुदा भारतं तं स्वदेशम् ।
भजे तं मुदा भारतं दिव्यदेशम् ।।

(पृष्ठसंख्या, ३५)

(आः) स्वकीयां बुभुक्षां पिपासां नियम्य
सदा रक्षिता येन भीताः प्रपन्नाः ।
यमाहुर्विदग्धास्तथा शान्तिदूतं
भजेऽहं मुदा भारतं तं स्वदेशम् ।
भजे तं मुदा भारतं दिव्यदेशम् ।।

(पृष्ठसंख्या, ३६)

(इः) विश्वस्य बान्धवं यन्मोक्षस्य साधकं यत् ।
गायच्च पञ्चशीलं मम भारतं विजयते ।।

(पृष्ठसंख्या, ५०)

(ईः) आशावादरताया आदर्शोद्घोषणासुनिपुणायाः ।
यस्या निखिलापीयं वसुधैव कुटुम्बकं भवति ।।

(पृष्ठसंख्या ५२)

सहृदयहृदयधुरीणस्य कविवरस्यास्य मान्यतास्ति यदेषास्माकीना भारतभूमिः जागृतिशीला, क्रान्तिविलासा, कान्तियुता, सम्मानयुता, विद्वत्तोषिणी, मानसपोषिणी, समरविरोषिणी, शान्तियुता, सत्य-अहिंसा-परहित-करुणा-सर्वंसहता-प्रीतिधरा च वर्त्तते । एवमेव हरिनामामृततृप्ता, प्रेयःश्रेयःसाधनिका, ब्राह्मक्षात्रप्रभापूर्णा सती व्यापारयुता, अमितकर्मयुता, जनगणमनो-जयगानयुता भूत्वा त्याग-भोगभूमिरपि विद्यते (पृष्ठसंख्या २६-२७ ) । अत्रत्या भारतीयाः जनाः राष्ट्रभक्तिं भगवत्पूजामिव मन्यन्ते तथा अत्रत्यां दुरवस्थां समूलमुन्मूलयितुं कृतसंकल्पा अनारतं यतमानाः सन्ति (पृष्ठसंख्या, ३१) आध्यात्मिकतारूपिणी परमस्पृहणीया सम्पत्तिः भारतस्यैव सविधे वरीवर्त्ति, यया समस्तसंसारस्य दुःखसंघातसंक्षयो विधातुं शक्यते । मनोऽभिरामा विविधाः कला अपि भारते एव लोचनातिथीभवन्तीत्यत्रापि कवेरस्य न संशयः (पृष्ठसंख्या, ४०-४१) अत्रत्या एव जना आत्मवीरतामादधानाः क्रोधमक्रोधेन, आसाधुतां साधुतया, कदर्यतां दानवीरतया, हिंसां चाहिंसया जेतुं प्रभवन्तीति विलक्षणमेवास्ति वैलक्षण्यं 'भा' रतस्य स्वीयस्य भारतस्य (पृष्ठसंख्या, ५३) । अत्रत्यायां संस्कृतौ लोकसंस्कृतौ चापि

महदुपयोगित्वमाकर्षकत्वं च विद्येते । विविधविध-लोकनृत्य-मेला-महोत्सव-संस्कार-व्रत-पर्वणां यादृशानि मनोऽभिरामाणि समायोजनानि स्वीये भारतदेशे भवन्ति, तादृशानि अन्यत्र सुदुर्लभान्येव सन्ति । एभिरपि भारतभूमेर्महिमा सुतरां संवर्धते एव (पृष्ठसंख्या, १७-१८, ३३, ४२, ५०) । प्रकृतिजन्या कृषिक्रियाजन्या च यावती शोभा भारते भाति, तावती अन्यत्र क्वापि न लोचनगोचरीभवति । भारते एव षण्णामृतूनामसीमं नयनमनोहारि च वैभवं लोकैः समनुभूयते, येन भारतं सदैव 'भारतं' सन्तिष्ठते (पृष्ठसंख्या, २२, २3, ५१, ५५, ५८-६०) ।

स्वीये भारते देशे विभिन्नभाषा-धर्म-सम्प्रदायानां सत्त्वेऽपि भारतीयेषु जनेषु ऐक्यभावमालोक्य कविवरो डॉ0 शुक्लमहाभागो मोदमापद्यते । सूत्रे मणिगणानिव राष्ट्रियभावे परस्परं सङ्गुम्फितानशेषान् भारतीयान् जनानालोकमालोकं कविवरोऽयममन्दमानन्दसन्दोहमनुभवति। तदीयोऽयमानन्दः पाठकानपि राष्ट्रभक्तिभरितान् संविधाय समानन्दयतीत्यत्र न मे संशीतिलेशः (पृष्ठसंख्या, १०,१९,५१,) कविनामुना स्वीयस्य भारतदेशस्य शान्तिप्रियतायाः तदाघाते च शक्तिशालिताया अपि सम्प्रयोगे अमोघं सामर्थ्यं समुपवर्णितमस्ति, येन भारतीयेषु जनेषु स्वीयरक्षा-सुरक्षाभावनापि सुदृढं पदं निदधातितराम् । अहं मन्ये यदत्रापि स्वराष्ट्रहितसाधने कवेः कौशलं विजृम्भतेतराम् ।

भारते विधीयमानां सर्वतोमुखीं वैज्ञानिकीं प्रगतिमपि कविवरो डॉ0 शुक्लमहाभागः एतस्य गरिम्णो महिम्नश्च परिवर्द्धने उल्लेखनीयं हेतुं मन्यते । ऐनेनापि हेतुना च भारतं विश्वमञ्चे महत्त्वपूर्णां भूमिकां बिभ्रदस्तीति स्वीये काव्ये साधु साधयन् कविवरोऽयं भारतीयेषु भारतीयतां प्रति स्पृहणीयं भावं जनयतीति मम विश्वासः ।

## (गः) कलापक्षः

भव्येऽस्मिन् काव्ये कविवरेण काव्यकलापक्षोऽपि चारुतया संनिवेशितोऽस्ति । छन्दोऽलङ्कार-गुणरीतिप्रभृतीनि सर्वाण्येव काव्यकलापक्षीयाणि अङ्गानि लघुन्यपि अस्मिन् काव्ये अवलोचकलोचनातिथीभवन्ति। संक्षेपेणात्र तेषां विवरणं प्रस्तूयते-

## छन्दांसि

ताटङ्क-भुजङ्गप्रयात-दिक्पाल-आर्या-तोटक-मालिनी-द्रुतविलम्बित-शार्दूलविक्रीडिताख्यानि प्रसिद्धान्यप्रसिद्धानि च छन्दांसि काव्येऽस्मिन् अनूभूतिविषयतामायान्ति । यथा प्रतिपादं त्रिंशन्मात्रस्य, क्रमेण षोडश्यां तदनन्तरं पुनश्चतुर्दश्यां च मात्रायां यतियुतस्य ताटङ्कनामकस्य छन्दसोऽनुभूतिरधोलिखितपद्यसदृशेषु अष्टाविंशतिपद्येषु बोभूयते-

काशीमथुरापुरीद्वारका
हरिद्वारमाहात्म्ययुते,
सेतुबन्धकन्याकुमारिका-
गङ्गासागरकीर्तियुते ।
बदरीनाथवैष्णवीज्वाला-
हेमकुण्डशुभयशोधरे,
जय जय जय हे भारतभूमे
जय जय जय भारतभूमे ।।

(पृष्ठसंख्या, १२)

प्रसङ्गेऽस्मिन्नुल्लेखनीयमस्ति यदस्य छन्दसः प्रयोगे कविवरेण डॉ0 शुक्लमहाभागेन यतिविधाने यत्र-कुत्रचित् वैपरीत्यमपि अवलम्बितमस्ति। येन प्रतिपादं षोडशी मात्रा तदनन्तरं पुनश्चतुर्दशी मात्रा यतियुता स्यादित्यस्य नियमस्य वैपरीत्याद् यत्र-कुत्रचित् पद्ये प्रथमं चतुर्दश्यां मात्रायां तदनन्तरं पुनः षोडश्यां मात्रायां यतिरायातास्ति । कस्मिंश्चित्पद्ये तु उभयवारं पञ्चदशी एव मात्रा यतिमती दृश्यते । किन्तु छन्दसः प्रवाहप्राबल्याद् भावपक्षस्य च सामर्थ्यादिदं सर्वं कविकृतं परिवर्त्तनं काव्यसौष्ठवं व्याहन्तुं कथमपि नैव समर्थमस्ति; अपितु प्रकृतच्छन्दो-भेदविधाने कविकौशलस्यैव द्योतकं प्रतिभाति ।

सर्वत्रैव प्रतिवारं द्वादश्यां यतियुते दिक्पालनामके मात्रिके छन्दसि कविनामुना एकादश पद्यानि विरचितानि सन्ति । निदर्शनत्रयं प्रस्तूयते -

लोकप्रबोधशीलं शोकप्रणाशशीलम् ।
चेतोविकाशकुशलं मम भारतं विजयते ।।
सह्याद्रिविन्ध्यहिमवत्सप्ताद्रिकीर्तितश्रि ।
गङ्गाजलैः पवित्रं मम भारतं विजयते ।।
क्वापि श्रमेण सहितं क्वापि प्रमोदभरितम् ।
नानाक्रियाकलापं मम भारतं विजयते ।।

(पृष्ठसंख्या, ४0)

प्रतिपादं सगणचतुष्टययुक्तं तोटकाख्यं छन्दोऽनुसृत्य कविवरोऽयं सुललितानि नव पद्यानि विरचितवानस्ति ।

यथा-

(अः) हिमवत्कलहासमरीचिसिते,
यमुनाजलनीलविभामहिते !
रविचुम्बितकोकनदारुणिते,
जय-भारतमेदिनि विश्वनुते ।।

(आः) नवसर्षपपीतदुकूलयुते,
बहुशस्यसमूहविभाहरिते ।
मलयानिलमोदलाकलिते,
जय भारतमेदिनि विश्वनुते ।।

(पृ0 सं0 ५५)

उपरिवर्णितवृत्तत्रयातिरिक्तानि आर्या-मालिनी-भुजङ्गप्रयात-द्रुतविलम्बित-शार्दूलविक्रीडिताख्यानि छन्दांसि सुतरां प्रसिद्धानि सन्तीति विचार्य ऐतेषामुदाहरणाानि पाठकप्रवरेभ्यो नोपाद्रिन्ते । एतद्-दिदृक्षापरवशास्तु मूलकृतिमेवावलोकयितुं कृपां कुर्युः ।

## अलङ्काराः

अस्यां कृतौ स्थाने-स्थाने स्वीयभावपक्ष-पोषकाणामलङ्काराणामपि प्रयोगे कवेः पाटवं प्रस्फुटति । अनुप्रास-यमक-उदात्त-यथासंख्यप्रभृतयोऽलङ्काराः कवेः भावसम्प्रेषणीयतां परिवर्धयन्तः काव्यचारुतामापादयन्ति ।

स्थानाभावादत्रैषामुदाहरणाभावो मर्षणीय एव तत्त्वविद्भिः ।

## गुणरीतयः

शब्दशय्यायाः सुकुमारतया, समासानां सुबोधतया, अत एव भाषाया भव्यतया, भावनाया विशदतया, छन्दसां धाराप्रवाहशीलतया, अलङ्काराणां सहजतया चास्यां कविताकृतौ सर्वत्रैव वैदर्भी रीतिः प्रसाद-माधुर्यसंज्ञकौ च गुणौ पाठकानां मनोमयूरनर्तने श्रावणमेघायन्ते । अस्मिन्नेव लेखे 'छन्दांसि' इति शीर्षकमादाय समुदाहृतेषु पद्येषु कवेरिदं काव्यवैशिष्ट्यं पाठकेन नेत्रमनोविषयीविधातुं शक्यते ।

## (घः) अन्त्यम्

एवं रीत्या संक्षेपेणात्र विहितेन विचारेण मामकीनायां मतौ तथ्यमिदं सुतरां समाविशति यत्कविवरस्यास्य डॉ0 शुक्लमहाभागस्य कृतिरियं काव्यशास्त्रीय- तत्त्वनिचयनिचिता वरीवर्त्ति । अत एव कविवरोऽयं मया मुदा समभिनन्द्यते ; अशास्यते चास्य संवेदनशीला समभिव्यक्तिकुशला निरलसा च लेखनी अनारतं संस्कृतसाहित्यस्य सामयिकीं श्रीसमृद्धिं विधास्यति ।

# ''पण्डितराजीयम्''

## एक नाट्यशास्त्रीय दृष्टि

डॉ0 श्रीमती किरण सिंह सेंगर

विविधानन्दभूमि देववाणी के कोमल आक्रोड में विलसित होता हुआ नाट्य साहित्य अपने वैशिष्ट्य से विश्व-प्रतिभा को चमत्कृत करता रहा है। कालिदास से लेकर अद्यतन साहित्य मनीषियों तक संस्कृत-नाटक अपने भाव, कथ्य, शैली और रस-पेशलता के लिए स्वयं अपने निदर्शन बनते रहे हैं। दूसरी ओर भरत, भामह, वामन, आनन्दवर्धन, मम्मट धनञ्जय इत्यादि आचार्यों ने शास्त्रीय-निकष पर नाटक के स्वरूप का ऐसा विशद परीक्षण किया जिससे संस्कृत-नाटक अलंकृत शुद्ध स्वर्ण की भाँति विश्व-साहित्य में अपना स्थान बना सके।

संस्कृत-साहित्य में नाटक के लिए प्रायः नाटक, रूपक, रूप तथा रूप्य शब्दों का प्रयोग प्राप्त है। नाटक शब्द की व्युत्पत्ति ''नट्''धातु से हुई है ?

इसी प्रकार रूपक शब्द ''रूप'' से ''ण्वुल्'' प्रत्यय द्वारा निष्पन्न है[२] यद्यपि कुछ पाश्चात्य समीक्षकों ने नट् को नृत्त का प्राकृत रूप माना है।[३]

### नाटक दशरूपककार के मत में-

''अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते ।
रूपकं तत्समारोपाद् दशधैव रसाश्रयम् ।।''[४]

जैसा कि सर्वविदित है कि नाटक शब्द हिन्दी में जिस तरह व्यवहृत होता है संस्कृत-साहित्य में ठीक वैसा नहीं है। संस्कृत वाङ्मय में नाटक को दशविध रूपक का एक प्रकार माना गया है-

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः ।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति ।[५]

अभिनव-संस्कृत-नाटककारों में रमाकान्त शुक्ल अपने नाटकों पुरश्चरण-कमलम् अभिशापम् एवं पण्डितराजीयम् के कारण १९९० के दशक में बहुचर्चित रहे हैं। ''पण्डितराजीयम्'' पण्डितराज जगन्नाथ के ऐतिहासिक, प्रेम कथा के ताने

बाने को लेकर बुना गया एक ऐसा ऐतिहासिक नाटक है जिसमें एक ओर सत्रहवीं शताब्दी के संस्कृत कविता-कामिनी के विलास पण्डितराज जगन्नाथ का एक यवनी रमणी से अनुराग चित्रित किया गया है, तो दूसरी ओर जाति संप्रदाय एवं धर्म की सीमाओं को पीछे छोड़ती नारी के मन की कोमलतम अभिव्यक्ति प्रेम का मर्मस्पर्शी दृश्याङ्कन किया गया है ।

नाटककार का ''पण्डितराजीयम्'' नाम रखने का एक मात्र उद्देश्य नाटक में पण्डितजगन्नाथ का सर्वतोमुखीन सर्वोत्कृष्ट व्यक्तित्व है । सम्पूर्ण नाटक नायक के गुणों से मानो अभिभूत सा होकर परिक्रमा करता हुआ प्रतीत होता है । वह पण्डितराज जगन्नाथ के पाण्डित्य और चारित्रिक उदात्त वैशिष्ट्य का प्रतिबिम्ब मात्र है । यह शीर्षक लेखक के नाट्य कौशल का परिचायक है ।

दशरूपककार ने नाटक की सांगोपांग पूर्णता के लिये निम्नांकित उपबन्ध निश्चित किये हैं-

प्रख्यात (ऐतिहासिक या पौराणिक) कथावस्तु, मुख प्रतिमुख आदि पाँचों सन्धियाँ, ५ से १० तक अंक, धीरोदात्त (नृप या दिव्य) नायक, चारों (कैशिकी, आरभटी, सात्त्वती, और भारती) वृत्तियाँ, अंगी रस वीर या शृंगार अन्य सभी रस होने चाहियें ।

''पण्डितराजीयम्'' में उपर्युक्त अंगों का कहाँ तक समावेश है- विवेचनार्थ सम्यक् विवरण आवश्यक है-

## इतिवृत्त-

इतिवृत्त अर्थात् कथानक नाटक का शरीर होता है-

''शरीरं नाटकादीनामितवृत्तं प्रचक्षते'' ।[६]

''पण्डितराजीयम्'' में ऐतिहासिक (मर्त्य) इतिवृत्त है । इतिवृत्त का फल जाति वर्णादि की संकुचित भावना से ऊपर उठकर ''वसुधैव कुटुम्बकं'' का आदर्श स्थापित करना है-

जगन्नाथः --- अस्यां पृथिव्यां ''उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्'' इति भावनां वास्तविकरूपेण प्रसारयन्तु ।[७]

इतिवृत्त दो प्रकार का होता है-प्रख्यात और उत्पाद्य । कतिपय आचार्यों ने तीन प्रकार का इतिवृत्त माना है-प्रख्यात, उत्पाद्य व मिश्र । पण्डितराजीयम् का इतिवृत्त प्रख्यात भी है ।

नाटकीय इतिवृत्त को पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है- बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य । इनको अर्थप्रकृतियाँ भी कहते हैं-

"बीजबिन्दुपताकाख्यप्रकरीकार्यलक्षणाः ।
अर्थप्रकृतयः पञ्च ता एताः परिकीर्तिताः ।।"[८]

## बीज

जो इतिवृत्त नाटक के प्रारम्भ में संक्षेप में कहा जाता है और फल-प्राप्ति पर्यन्त अनेक रूपों में पल्लवित होता हुआ विस्तार को प्राप्त होता है, वह बीज कहलाता है।

"स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्हेतुर्बीजं विस्तांर्यनेकधा" ।[९]

साहित्यदर्पणकार ने कहा है-

"अल्पमात्रं समुदिष्टं बहुधा यद्विसर्पति ।
फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजं तदभिधीयते" ।।[१०]

बीज नामक अर्थ प्रकृति भी तीन प्रकार की होती है- १-फल-बीज, २-अर्थ-बीज, ३- वस्तु-बीज ।

प्रस्तुत नाटक में अर्थ बीज नाटक के प्रथम अंक में द्वारस्थ व्यक्ति के कथन में प्राप्त होती है-

द्वारस्थः- "प्रतिहारि ! श्रीमत्पेरमभट्टस्य सूनुर्जगन्नाथोऽहम् । यः खलु विविधशास्त्राण्यधीत्य श्रीमज्जहाँगीरस्य राज्यसभानिवास-सुखमनुभूय---ससुखं काव्यसाधनां सम्पादयितुमुपस्थितः ।"[११]

## बिन्दु

अवान्तरकथा के विच्छेद हो जाने पर जो उसे मुख्य कथा के साथ जोड़ने का कारण है, उसे बिन्दु कहते हैं-

"अर्थान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम् ।"[१२]

अन्यत्र भी कहा गया है-

"प्रयोजनानां विच्छेदे यदविच्छेदकारणम् ।
यावत्समाप्तिर्बन्धस्य स बिन्दुः परीकीर्तितः ।।[१३]

नाटक में द्वितीय अंक में सखी के कथन में बिन्दु नामक अर्थप्रकृति प्राप्त होती है-

"अयि मन्दस्मितमधुरं वदनं तन्वंगि यदि मनाक् कुरुषे ।
अधुनैव कलय शमितं राकारमणस्य हन्त साम्राज्यम् ।।"[१४]

## पताका

जो प्रांसगिक इतिवृत्त व्यापक होता है तथा प्रधान इतिवृत्त का उपकारी (सहायक) होता है, उसे ''पताका'' कहते हैं-

''व्यापि प्रासंगिकं वृत्तं पताकेत्यभिधीयते ।''[१५]

सम्राट् और सम्राज्ञी का वार्तालाप पताका के अन्तर्गत ही आता है और यह पण्डितराज (प्रधान इतिवृत्त) को लंवगी (सहायक) से मिलाती है-

सम्राज्ञी- एवम् ? तदा तूभयनिष्ठं प्रेम !

शाहजहाँनः- प्रेम अपि कियच्चतुरम्-स्वकीयं क्रीडास्थलं सर्वत्रैव अन्वेषयति[१६]

## प्रकरी

अल्पदेश तक चलने वाला प्रासंगिक इतिवृत्त प्रकरी कहलाता है-

''प्रासंगिकं प्रदेशस्थं चरितं प्रकरी मता ।''[१७]

भरतमुनि ने प्रकरी के विषय में कहा है-

''फलं प्रकल्प्यते यस्याः परार्थायैव केवलम् ।
अनुबन्धविहीनत्वात् प्रकरीति विनिर्दिशेत् ।''[१८]

पण्डितराजीयम् नाटक में असूयक पण्डित का कथन प्रकरी नाम अर्थप्रकृति का भेद है ।

असूयकपण्डितः-न वयं यवनीस्पर्शपांसुलस्य भवतो गृहं प्रविशामः।[१९]

## कार्य

जो साध्य अपेक्षित हो और जिसके लिये नाट्य का प्रारम्भ होता है तथा जिसकी सिद्धि के लिये क्रिया की समाप्ति होती है, उसे कार्य कहते हैं-

''अपेक्षितं तु यत्साध्यमारम्भो यन्निबन्धनः ।
समापनं तु यत्सिद्धयै तत्कार्यमिति सन्मतम् ।।''[२०]

नाटक में नायक-नायिका-मिलन तथा नायक का संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रति समर्पण भाव कार्य है ।

## पञ्च अवस्था

फल की इच्छा वाले व्यक्ति के द्वारा आरम्भ किये गये कार्य की पाँच अवस्थायें होती हैं-

"अवस्थाः पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः ॥[२१]

## आरम्भ

"भवेदारम्भ औत्सुक्यं यन्मुख्यफलसिद्धये ।"[२२]

और भी कहा है-

"फलायौत्सुक्यमारम्भः ।"[२३]

फल की सिद्धि के लिए जो औत्सुक्य है उसे आरम्भ कहते हैं । नाटक के तृतीय अंक में आरम्भ नामक अवस्था प्राप्त है-

लवंगी-इमाः कविताः कुतः कुतोऽवधार्य आनयसि ?

सखी- तत एव योऽसौ अद्यत्वे ब्रूते-
यथा यथा तामरसेक्षणा मया
पुनः सरागं नितरां निषेविता ।
तथा तथा तत्त्वकथेव सर्वतो
विकृत्य मामेकरसं चकार सा ।"[२४]

## प्रयत्न

"प्रयत्नस्तु फलावाप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः ।"[२५]

नाट्यदर्पणकार के अनुसार- "प्रयत्नो व्यापृतौ त्वरा"[२६]

अर्थात् फल की प्राप्ति हेतु त्वरायुक्त यत्न को प्रयत्न कहते हैं । नाटक में पण्डितराज जगन्नाथ का नित्य रसमयी कविता द्वारा राजा को प्रसन्न करने का प्रयास।

## प्रत्याशा

"उपायापायशंकाभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसम्भवः ।"

उपाय के होने तथा विघ्न की शंका होने से जो फल प्राप्ति की सम्भावना होती

है, वह प्राप्त्याशा कहलाती है। शुक्ल जी कृत ''पण्डितराजीयम्'' के पञ्चम अंक में प्राप्त्याशा निम्न स्थान पर स्पष्टतः परिलक्षित है-

शाहजहानः- पण्डितराज,------ब्रूहि मनोगतम्।

लवंगी- (प्रविश्य) इदं पेयम्।

जगन्नाथः- (स्वगतं) कथं याचे ?

शाहजहानः- ननु ब्रूहि निःशङ्कम् ?[२७]

जगन्नाथः- (प्रकाशं) देव,यदपि याचे तद् दास्यसि ?

शाहजहानः- अवश्यम्। ननु दिल्लीश्वरोऽहम्।''[२८]

## नियताप्ति

''अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिस्तु निश्चिता।''[२९]

अर्थात् विघ्नों के अभाव से फल की निश्चित रूप से प्राप्ति ही नियताप्ति कहलाती है। प्रस्तुत नाटक में निम्न स्थान पर नियताप्ति है-

जगन्नाथः - अधुनेयं मम पत्नी भवतु इति कामये।

शाहजहानः - (लवंगीं प्रति) लवंगि ! पण्डितराजस्य याचना तवाभिमता न वा ? अस्माभिरियं याचना पूरणीया।

लवंगी-यदा देवेन प्रथमं वचो दत्तं, तदा तु याचना पूर्णा एव।''[३०]

## फलागम

''सावस्था फलयोगः स्यात् यः समग्रफलोदयः।''[३१]

अर्थात् समग्र फल की प्राप्ति को फलागम कहते हैं। नाटक में फलागम निम्न स्थान पर हैं-

शाहजहानः- ''(विहस्य) पण्डितराज, भवते लवंगी प्रदत्ता। इयमस्मत्पालिता कन्या सुखिनी स्यात्। शुभं कामये भवतोः। लवंगि, धन्यासि पण्डितेन्द्रकल्पद्रुमं प्राप्य।''[३२]

## सन्धियाँ

''अर्थप्रकृतयः पञ्च पञ्चावस्थासमन्विताः।
यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्याः पञ्च सन्धयः॥''[३३]

पाँच कार्यावस्था पाँच अर्थप्रकृतियों से मिलकर पाँच सन्धियों का निर्माण करती हैं । पाँच सन्धियाँ मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श और निर्वहण हैं । नाटक में पाँचों सन्धियों का समुचित समावेश है ।

## मुखसन्धि

''यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा
प्रारम्भेण समायुक्ता तन्मुखं परिकीर्तितम् ।।''[३४]

श्रीमत्पेरमभट्टस्य सूनुर्जगन्नाथोऽहम् (बीज)

प्रथम दृश्य में अपने काव्य के प्रति आत्माभिमान अतः वीर रस, गंगा के प्रति भक्ति रस, पण्डितराज द्वारा विरचित श्लोकों में जिज्ञासा या कौतूहल वृत्ति के कारण अद्भुत रस के समावेश के कारण मुख सन्धि है ।

## प्रतिमुख सन्धि -

''फलप्रधानोपायस्य मुखसन्धिनिवेशिनः ।
लक्ष्यालक्ष्य इवोद्भेदो यत्र प्रतिमुखं च तत् ।।''[३५]

नाटक के तृतीय अंक में ''अयि मन्दस्मितमधुरं'' श्लोक से (प्रेम रूपी) बीज का कुछ प्रकट (लक्ष्य) रूप में और ''उपनिषदः परिपीता'' में अलक्ष्य की तरह से प्रकाशन के कारण प्रतिमुख सन्धि है ।

## गर्भ सन्धि

''गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः ।
द्वादशाङ्कपताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्तिसंभवः ।।''[३६]

चतुर्थ अंक (दृश्य) में सम्राज्ञी के द्वारा लवंगी और जगन्नाथ के प्रेम के विषय में जानकर प्रेम की प्राप्ति में सहायक होना, पंचम अंक में लवंगी द्वारा अप्राप्ति की आशंका, तदुपरान्त पुनः इसी अंक में पुनः प्राप्ति से गर्भसन्धि है ।

## विमर्श या अवमर्श

''क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात् ।
गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः ।।[३७]

नाटक के पंचम अंक में जगन्नाथ के कथन-

जगन्नाथः- तर्हि अत्र भवन्तो मां जेतुकामाः---कदा सा नवनीतकोमलांगी ।[३८]

में लवंगी को प्राप्त करने रूप ऊहापोह के कारण विमर्श की स्थिति है, अतः अवमर्श सन्धि है ।

## निर्वहण

''बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम् ।
एकार्थमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत् ॥''[३९]

''पण्डितराजीयम्'' में सम्राज्ञी के कथन, लवंगी द्वारा संस्कृत शिक्षा के लिए प्रार्थना आदि का शाहजहाँ द्वारा 'पण्डितराज, भवते लवंगी प्रदत्ता'' वाक्य द्वारा फलागम रूप में अभीष्ट पूर्णता को प्राप्त करता है । अतएव चतुर्थ अंक से पंचम अंक तक निर्वहण संधि है ।

## नायक

नायक में नेतृत्व का गुण होना आवश्यक है क्योंकि रस परिपाक का मूल वही है-तमालम्ब्य रसोद्गमात् ।[४०] नेता के विषय में कहा गया है-

''त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही ।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान् नेता ।''[४१]

नायक चार प्रकार के होते हैं-

''भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैरयम् ।''[४२]

पण्डितराजीयम् का नायक पण्डितराज जगन्नाथ मालतीमाधव और मृच्छकटिक आदि के नायक की भाँति धीरप्रशान्त नायक की कोटि में आता है । धीरप्रशान्त नायक में निम्न विशेषताएँ होती हैं-

''सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः ।''[४३]

## रस

भारतीय विचारकों ने काव्य से प्राप्त होने वाले आनन्द का विवेचन रस सिद्धि के रूप में किया है । भरत से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक सभी मनीषियों ने रस विवेचन में दीर्घ काल व्यतीत किया है । विश्वनाथ कविराज का तो कहना है-

''वाक्यं रसात्मकं काव्यम् ।''[४४]

श्रुति भी कहती है- रसौ वै सः ।



काव्यप्रकाशकार ने रसों के निम्न भेद किये हैं-

''शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः ।।''[४५]

परवर्ती विद्वान् शान्त को नवम रस के रूप में स्वीकार करते हैं-

''निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः ।''[४६]

पण्डितराजीयम् में यथा-यथा तामरसेक्षणा मया,[४७] इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्तकुम्भा में शृङ्गार रस,[४८] स्मृतं सद्यः स्वान्तं में भक्ति रस,[४९] रे खल तव खलु चरितं[५०] में मात्सर्य, जुगुप्सा के कारण बीभत्स रस, नेपथ्य में गायकों द्वारा पढ़े गये श्लोकों में करुण रस[५१] आदि के दर्शन होते हैं किन्तु अंगीरस शृङ्गार ही है । मात्र एक वाक्य से करुणिक भाव पाठकों का हृदय द्रवीभूत कर देता है-

जगन्नाथः- पण्डितराजस्तु यदासीत् तदासीत् । अधुना तु अनाथो जगन्नाथ एव ।[५२]

## प्रसाद गुण वैदर्भी रीति

आत्मा के शौर्यादि धर्मों के समान (काव्य के आत्मभूत) प्रधान रस के जो अपरिहार्य और उत्कर्षाधायक धर्म हैं वे गुण कहलाते हैं । गुण तीन प्रकार के होते हैं- प्रसाद, माधुर्य और ओज ।

प्रसाद गुण को मम्मटाचार्य ने इस प्रकार परिभाषित किया है -

''शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः ।
व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः ।।[५३]

अर्थात् सूखे इन्धन में अग्नि के समान अथवा स्वच्छ जल के समान जो चित्त में सहसा व्याप्त हो जाता है, वह सर्वत्र (सब रसों में) रहने वाला प्रसाद (गुण) कहलाता है ।

प्रस्तुत नाटक में निम्न स्थान पर प्रसाद गुण हैं ।

''उपनिषदः परिपीता गीतापि च हन्त मतिपथं नीता ।
तदपि न हा विधुवदना मानस-सदनाद् बहिर्याति ।।'' ।

## वैदर्भी रीति

वामन ने रीति को काव्य की आत्मा माना है- ''**रीतिरात्मा काव्यस्य ।**''
साहित्यदर्पण में वैदर्भी रीति को इस प्रकार विवेचित किया गया है-

''माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैः रचना ललितात्मिका ।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते ।।''[५४]

''पण्डितराजीयम्'' के छठे अंक में निम्नांकित श्लोक में वैदर्भी रीति है -

''सानुकम्पाः सानुरागाश्चतुराः शीतशीतलाः ।
हरन्ति हृदयं हन्त कान्तायाः स्वान्तवृत्तयः ।।''[५५]

काव्य या नाटक में श्रोता या दर्शक और पाठक की कौतूहलवृत्ति कि अब नाटक में क्या होगा ? चार चाँद लगा देती है । शुक्ल जी ने बड़ी निपुणता से औत्सुक्य-निर्वाह का पालन किया है यथा-

लवंगी- किं किं लिखितम् ?

जगन्नाथः- श्रोतुकामासि ?[५६]

शाहजहानः-साधु पण्डितवर, साधु! अन्या शुश्रूषा वर्धते ।[५७]

नाटक में भावप्रवणता भी स्थान-स्थान पर परिलक्षित होती है । द्रष्टव्य है-

लवंगी-अये ध्यानमग्न तपस्विन् ! इदं पेयम्, गृह्यताम् ।।[५८]

नाटक की सरल, सहज भाषा पाठकों के हृदय को अपनी सहज स्वाभाविकता से वशीभूत कर लेती है ।

नाटक का विभाजन अंकों में होता है । और अंकों की संख्या ५ से १० के मध्य होनी चाहिए । नाटककार ने परम्परा का पालन करते हुए १२ अंकों में नाटक को परिणति दी है ।

नाटक में प्रारम्भ में नान्दी और अन्त में भरत-वाक्य का विधान बताया गया है । नान्दी के विषय में कहा गया है-

''आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ।।''[५९]

शुक्ल जी द्वारा प्रणीत ''पण्डितराजीयम्''[६०] में सूत्रधार के द्वारा जन्मभूमि भारत भू की नतमस्तक हो प्रशंसा की गयी है, जो नान्दी के अन्तर्गत आती है-

सूत्रधारध्वनिः - भारतभूमिर्महापुरुषाणाम् जन्मस्थली ।'' ।

इसी प्रकार ''भूतले भाति मेऽनारतं भारतम्''[६१] भरत वाक्य से नाटक की परिसमाप्ति होती है । इस प्रकार नाटक के सभी आधायक अंगों का ''पण्डितराजीयम्'' में निर्वाह किया गया है । अपनी भाषा, रस, भाव-प्रवणता तथा प्रभावशाली संवादात्मकता के कारण यह संस्कृत-साहित्य का अनुपमेय नाटक है,

साथ ही आधुनिक रंगमंच के लिए यह आधुनिक संस्कृत-नाटकों में अपनी कथावस्तु, समसामयिकता, साम्प्रदायिक ऐक्य एवं लालित्य के कारण अभिनेय है।

नाटक ''पण्डितराजीयम्'' की परिकल्पना यद्यपि नाटककार के शब्दों में रेडियो रूपक के रूप में की गयी थी किन्तु नाटक की प्रथम रंगमंचीय प्रस्तुति ने ही इसे सफलता के ऊँचे धरातल पर प्रतिष्ठित किया है। प्रस्तुत नाटक के विषय में आधुनिक समालोचकों के विचारों से ही नाटक के वैशिष्ट्य की सहज कल्पना की जा सकती है।

## समालोचकों के विचार

नाटक की पूर्ण सार्थकता तब है, जब वह मंच पर अपनी कसौटी पर खरा उतरे। ''पण्डितराजीयम्'' को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ और अनेकों प्रबुद्ध संस्कृत-अनुरागियों ने नाटक की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कतिपय मनीषियों के विचार हैं:-

१. ''दिल्ली में संस्कृत नाटक अति प्रिय हो रहे हैं जिसका ताजा प्रमाण है कुछ दिन पहले ''श्रीराम संस्कृति कला केन्द्र'' के प्रेक्षागृह में प्रस्तुत ''पण्डितराजीयम्'' के दर्शकों की बहुत बड़ी उपस्थिति। --- नाटक की भाषा सहज और सरल थी, जिसको श्रुतिमधुर भी कह सकते हैं।[६२]

२. ''----आलेख की प्रस्तुति साफ सुथरी थी। पात्रों ने काफी अच्छा अभिनय किया और उनका संस्कृत का उच्चारण, गायन ऐसा स्पष्ट था कि हिन्दी जानने वाले उन्हें लगभग पूरी तरह समझ सकते थे।[६३]

३. '' राजस्थानी में संस्कृत नाटक यदा कदा ही होते हैं, लेकिन जो होते हैं वे अपने भाषागत शालीन सौन्दर्य के कारण दर्शकों को अरसे तक याद रहते हैं। यह प्रस्तुति इसी तथ्य का प्रतीक थी। ---------नाट्य बिम्ब सार्थक रूप से उभर कर सामने आये। आगरा और वाराणसी के दृश्यबंध तो वस्तुतः उनकी प्रतिभा के सजीव प्रमाण थे।

नाटक की भाषा संस्कृत होने के बावजूद सहज थी। इसका एक कारण यह भी था कि कलाकारों द्वारा बोले गये संवादों में पाण्डित्यपूर्ण दबाव नहीं था----मंच सज्जा कथा के अनुरूप थी। छोटे लाल के संगीत स्पर्शों ने प्रस्तुति को सार्थकता प्रदान की।''

४. "The play,unlike classical Sanskrit dramas,is written in a realistic manner."[65]

---

१. ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, मैकडानल, पृ0 ३४६

२. रूपकम् क्ली0 (रूपयतीति, रूपि+ण्वुल्) नाटकम् (तस्य संज्ञायुहेमाह रूपरोपात्तु

रूपकम्) इत्यादि । शब्दकल्पद्रुम चतुर्थ खण्ड प्र0 १७६

३. संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी पृ0 ५२५

ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर पृ0 १९७--मोनियर विलियम्स तथा बेवर

४. दशरूपकम्- प्रथम प्रकाश का0-७

५. दशरूपकम्- प्रथम प्रकाश का0-८

६. अग्निपुराण

७. पण्डितराजीयम्-डॉ0 रमाकान्त शुक्ल पृ0 ३९

८. दशरूपकम्-प्रथम प्रकाश का0 १८

९. दशरूपकम प्रथम प्रकाश का0 १७ (पूर्वार्द्ध)

१०. साहित्यदर्पण-षष्ठ परिच्छेद का0 ६५

११. पण्डितराजीयम्- पृ0 संख्या ३

१२. दशरूपकम्-प्रथम प्रकाश का0 १७ उत्तरार्ध

१३. उद्धृत सा0 द0- पृ0 ३९९ सम्पादक-डॉ0 सत्यव्रत सिंह

१४. पण्डितराजीयम्- पृ0 संख्या १२

१५. सा0 द0- षष्ठ परि0, का0 ६७

१६. पण्डितराजीयम्- डॉ0 रमाकान्त शुक्ल पृ0 सं0 १४

१७. सा0 द0-षष्ठ परि0, का0 ६८

१८. नाट्यशास्त्र १९/२५

१९. पण्डितराजीयम्-पृ0सं0 २५

२०. सा0 द0 षष्ठ परि0, का0-६९

२१. दशरूपकं-प्रथम प्रकाश, का0-१९

२२. सा0 द0, षष्ठ परि0 का0-७१

२३. नाट्यदर्पण

२४. पण्डितराजीयम्-पृ0 संख्या १२

२५. सा0 द0, षष्ठ परि0, का0 ७२ (पूर्वार्द्ध)

२६. नाट्य-दर्पण

२७. सा0द0, षष्ठ परि0 का0 ७२ (उत्तरार्द्ध)



२८. पण्डितराजीयम् - पृ0 संख्या २२

२९. सा0द0, षष्ठ परि0 का0 ७३(पूर्वार्द्ध)

३०. पण्डितराजीयम् - पृ0 सं0 २३

३१. सा0 द0, षष्ठ परि0, का0 ७३ (उत्तरार्द्ध)

३२. पण्डितराजीयम् - पृ0 सं0 २४

३३. दशरूपकम्- प्रथम प्रकाश, का0 २२

३४. सा0 द0 षष्ठ परि0, का0 ७६

३५. सा0 द0 षष्ठ परि0, का0 ७७

३६. दशरूपकं- प्रथम प्रकाश, का0 ३६

३७. दशरूपकं- प्रथम प्रकाश, का0 ४३

३८. पण्डितराजीयम्- पृ0 २०

३९. सा0 द0, षष्ठ परि0, का0 ८०

४०. सा0 द0, तृ0 परि0, का0 २९

४१. सा0 द0, तृ0परि0 का0 ३०

४२. दशरूपक- द्वितीय प्रकाश- पृ0 संख्या ११३

४३. दशरूपक- द्वितीय प्रकाश- पृ0 सं0 ११४

४४. साहित्यदर्पण

४५. काव्यप्रकाश-मम्मट चतुर्थ उल्लास,सूत्र ४४, का0२९

४६. काव्यप्रकाश-मम्मट चतुर्थ उल्लास सूत्र ४७, का0 ४४

४७. पण्डितराजीयम्-पृ0 संख्या १२

४८. पण्डितराजीयम्- पृ0 संख्या २२

४९. पण्डितराजीयम्- पृ0 संख्या ८

५०. पण्डितराजीयम्- पृ0 संख्या ३२

५१. पण्डितराजीयम्- पृ0 संख्या ३७

५२. पण्डितराजीयम्- पृ0 संख्या ३६

५३. काव्यप्रकाश-अष्टम उल्लास, सूत्र ९३

५४. पण्डितराजीयम्- पृ0 संख्या १३

५५. पण्डितराजीयम्- पृ0 संख्या २५

५६. पण्डितराजीयम्- पृ0 संख्या २८

५७. पण्डितराजीयम्, पृ0 संख्या १०

५८. पण्डितराजीयम्, पृ0 संख्या २७

५९. नाट्यशास्त्र ५/२४

६०. पण्डितराजीयम्- पृ0 संख्या १

६१. पण्डितराजीयम् पृ0 सं0 ४०

६२. ''आजकल'' नई-दिल्ली, मई १९८३ ई0

६३. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, नवभारत टाइम्स, दिल्ली ३ फरवरी १९८३

६४. हिन्दुस्तान, ६ फरवरी १९८३ ई०

६५. Statesman, New Delhi 26th January 1983

# डॉ० रमाकान्त शुक्ल-प्रणीत संस्कृत-नाटक कथ्य की प्रासंगिकता

डॉ० श्यामबिहारीलाल शर्मा

किसी भी साहित्यिक कृति की सार्थकता उसकी प्रासंगिकता में निहित है। विशिष्ट देश और काल की सीमा में आबद्ध होकर भी जिस रचना का कथ्य सार्वदेशिक और सार्वकालिक हो उठता है वही साहित्य की स्थायी और अमूल्य निधि बनती है। विश्व-वाङ्मय की कालजयी रचनाएँ इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण हैं कि उनमें अभिव्यक्त सत्य युग-सत्य होते हुए भी सार्वजनीन और सार्वभौमिक है। जिन कृतियों में अमर सन्देश को वाणी नहीं मिल पाती, केवल तात्कालिक प्रभाव की ही सृष्टि करके रह जाती हैं उनका काल-कवलित हो जाना अवश्यम्भावी है। ऐसी स्थिति में रचनाकार का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अत्यन्त अव्यवहितचित्त होकर अपनी रचनाओं में शाश्वत एवं चिरन्तन सत्यों का ही समायोजन करे।

उपर्युक्त दृष्टि से डॉ० रमाकान्त शुक्ल के द्वारा विचरित संस्कृत-नाटकों का विशेष महत्त्व है। उन्होंने अद्यतन छह नाटकों का प्रणयन किया है जो प्रकाशन वर्ष क्रमानुसार इस प्रकार है- 'पुरश्चरणकमलम्' (१९८३), 'पण्डित- राजीयम्, (१९८४), 'अभिशापम्' (१९८५), 'विक्रमोर्वशीयम्' (१९८९), 'आलोकिनी' (१९८९) तथा 'दाराशिकोहीयम्' (१९८९)। ये सभी ध्वनिनाटक हैं जिनका प्रसारण आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र से अनेक अवसरों पर हो चुका है।

(२) 'पुरश्चरणकमलम्' महाप्राण निराला की सुप्रसिद्ध हिन्दी-कविता 'राम की शक्ति-पूजा' भावानुवाद है। इसीलिए इसका कथानक मूल कविता से बहुत भिन्न नहीं है- सन्ध्याकाल हो चुका है। राम और रावण की सेनाएँ अपने-अपने शिविरों में पहुँच चुकी हैं। आज के इस युद्ध में राम ने अपने बाणों से रावण पर अनेक दुर्वार प्रहार किये हैं, किन्तु शक्ति के द्वारा रक्षित होने के कारण वे उसका कुछ बिगाड़ नहीं पाये हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें यह लगने लगता है कि सीता का उद्धार सम्भव नहीं है और इसीलिए उनका हृदय अवसाद युक्त हो उठता है। उनकी खिन्नता को देखकर और उसका कारण जानकर जाम्बवान् उन्हें परामर्श देते हुए

कहते हैं कि आप आराधना का दृढ़तर आराधना से उत्तर दीजिए; यदि रावण अशुद्ध होता हुआ भी शक्ति का अपना हो सकता है तो आप शुद्ध होते हुए भी शक्ति के अपने क्यों नहीं बन सकते । जाम्बवान् की इस मन्त्रणा से राम के हृदय में आशा का संचार होता है । वे शक्ति-पूजा का संकल्प करते हैं । पूजा के निमित्त देवीदह से एक सौ आठ कमलों को लाने के लिए राम हनूमान् को आदेश देते हैं । हनूमान् आज्ञा का पालन करते हैं । तदनन्तर राम के द्वारा पूजा का श्रीगणेश किया जाता है । प्रत्येक जप के पश्चात् वे एक कमल देवी को अर्पित करते हैं । पुरश्चरण की इस प्रक्रिया में एक सौ सात कमल देवी को अर्पित हो चुके होते हैं । अन्तिम-पूजा कमल को देवी लेकर विलीन हो जाती हैं । जब राम इस पूजा-कमल के लिए हाथ बढ़ाते हैं और जब वह नहीं मिलता तब वे अपने बाण की नोक से अपने नेत्रकमल को निकालकार देवी को उसे समर्पित करना चाहते हैं। इसी बीच देवी प्रकट होती हैं और राम को विजय का वरदान देती हैं । यहाँ विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या नाटककार राम-कथा के मात्र एक प्रसंग को ही प्रस्तुत करके रह जाना चाहता है अथवा इसके आगे और भी कुछ कहना चाहता है । प्रश्न का उत्तर एकदम स्पष्ट है और वह यह है कि रचनाकार राम के जीवन की घटना के द्वारा आज के उन लोगों के हृदयों में आशा का संचार करना चाहता है जो सन्मार्ग पर प्रवृत्त रहकर भी पराजय का अनुभव करने लगते हैं और दुराचारियों को फलता-फूलता हुआ देखते हैं । वस्तुतः यही कथ्य है जो एक अति प्राचीन कथानक को आज भी प्रासंगिता प्रदान कर रहा है ।

'पण्डितराजीयम्' का ताना-बाना संस्कृत-काव्यशास्त्र के अन्तिम किन्तु सुविख्यात आचार्य एवं रससिद्ध कवि पण्डितराज जगन्नाथ के इर्द-गिर्द बुना गया है। साहित्य तथा अन्य विविध कलाओं के अनन्य प्रेमी मुगल-सम्राट् शाहजहाँ उनका बहुत अधिक सम्मान करते थे और उन्होंने ही उनके अद्भुत वैदुष्य से प्रभावित होकर उन्हे 'पण्डितराज' की उपाधि से विभूषित किया था ।

दैवयोग से पण्डितराज और शाहजहाँ की पोषिता पुत्री लवंगी एक-दूसरे के प्रणयपाश में आबद्ध हो जाते हैं । दोनों का यह प्रणय शाहजहाँ की अनुमति से वैवाहिक बन्धन से परिणत हो जाता है । किन्तु यहीं से उनके दुर्भाग्य की कहानी भी आरम्भ हो जाती है । यवन-कन्या से विवाह कर लेने के कारण पण्डितवर्ग पण्डितराज का बहिष्कार कर देता है । पति के इस बहिष्कार से लवंगी को असह्य मानसिक वेदना होती है । इसी पीड़ा में वह तिल-तिल कर घुलने लगती है और अन्ततः संसार से विदा ले लेती है । उसके वियोग को न सह पाने के कारण पण्डितराज भी ज्ञान के अर्जन और वितरण के लिए वाराणसी चले जाते हैं ।

आज जबकि सारा देश साम्प्रदायिक असहिष्णुता के कारण होने वाले दंगो की आग में जल रहा है, 'पण्डितराजीयम्' जैसे नाटकों का महत्त्व सर्वथा स्पष्ट है । वह

दिन इस देश के इतिहास में अत्यन्त शुभ होगा जिस दिन हिन्दू और मुसलमान पारस्परिक वैर-भाव का परित्याग करके स्नेहपूर्वक एक-दूसरे का आलिंगन कर सकेंगे, जिस दिन हिन्दू और मुस्लिम युवक-युवतियाँ पण्डितराज और लवंगी की भाँति धर्म की संकुचित परिधि से बाहर आकर एक-दूसरे को अपना बना सकेंगे और जिस दिन शाहजहान के रूप में सारा भारतीय समाज यह कह सकेगा कि पण्डितराज भी अपने हैं और लंवगी भी अपनी ही है- **'पण्डितराजोऽपि स्वकीयः, लवंगी अपि स्वकीया एव'** । पण्डितराज जगन्नाथ लंवगी से ठीक ही तो कहते हैं कि यह भारत का दुर्भाग्य ही है जहाँ धर्मान्धिता की प्रवृत्ति मानवों में पारस्परिक वैर-भाव का पोषण कर रही है । इसीलिए जब असूयक पण्डित लंवगी को लेकर पण्डितराज पर व्यंग्य करता है तब पण्डितराज मानवता की दुहाई देते हुए उससे अत्यन्त क्षुब्ध स्वर में कहते हैं- **मानवतामङ्गीकृत्य किञ्चित् ब्रूत ।** वे ऐसे आदर्श के पोषण की शपथ लेते हैं जिसके समक्ष जाति, वर्ण आदि की संकुचित भावना ठहर नहीं सकेगी - **'अहमपि एवमादर्शं पोषयिष्यामि यस्याग्रे जातिवर्णादिसंकुचितभावना न स्थास्यति'** । वस्तुतः आज इस देश को पण्डितराज जगन्नाथ-जैसे उदार मानवों की ही आवश्यकता है जो अपने लोकोत्तर व्यक्तित्व द्वारा सारे भारतवासियों के हृदयों से संकुचित धर्मगत भावना का अपसारण कर उनमें विश्वबन्धुत्व का भाव प्रतिष्ठापित कर सकें ।

'अभिशापम्' की कथावस्तु महाभारत से गृहीत है । दातव्य सन्देश के अनुरूप डॉ० शुक्ल ने अपनी कल्पना के बल पर उसमें यत्र तत्र किंचित् संशोधन और संवर्द्धन भी किया है । कथासार इस प्रकार है- दानवों के गुरु शुक्राचार्य अपनी संजीवनी विद्या के द्वारा देव-दानव-युद्ध में हत दानवों को पुनरुज्जीवित करते चले जाते हैं । इससे देवता पराजित हो जाते हैं । देवगुरु बृहस्पति इस संजीवनी विद्या को नहीं जानते हैं। निराश इन्द्र बृहस्पति के पुत्र कच को इस विद्या का अध्ययन करने के लिए शुक्राचार्य के समीप भेजते हैं । कच शुक्राचार्य की अनुमति से उनके आश्रम में रहने लगता हैं। इसी बीच शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी कच से प्रेम करने लगती है । उधर दानव यह नहीं चाहते कि संजीवनी विद्या देव लोक में पहुँचे और इसीलिए वे बार-बार कच का वध करते हैं; किन्तु शुक्राचार्य अपनी संजीवनी विद्या से प्रत्येक बार कच को जीवित कर देते हैं । अन्त में दानव कच का वध करके उसके शरीर को जलाकर भस्मीभूत कर देते हैं । इस भस्म को सुरा में मिलाकर दानव उसे शुक्राचार्य के समक्ष प्रस्तुत करतें हैं । सुरा शुक्राचार्य की बहुत बड़ी दुर्बलता है । वे उसे पीकर अपने आश्रम को लौट आते हैं । देवयानी कच को आश्रम में न पाकर उसकी अनुपस्थिति की सूचना अपने पिता शुक्राचार्य को देती है । संजीवनी विद्या का प्रयोग कर जब शुक्राचार्य कच को बुलाते हैं तब वह उनके उदर से उत्तर देता है । कच के जीवन के लिए शुक्राचार्य का उदर-विदारण अनिवार्य हो जाता है और उधर देवयानी के जीवन के लिए कच का पुनरुज्जीवित होना आवश्यक है । ऐसी

स्थिति में देवयानी कच और शुक्राचार्य में से किसी एक को ही जीवित देख सकती है, दूसरे की मृत्यु अवश्यम्भावी है । इस अवसर पर शुक्राचार्य सुरापान की जी भरकर निन्दा करते हैं । अन्ततः शुक्राचार्य स्वोदरस्थ कच को संजीवनी विद्या प्रदान करते है । इस विद्या से जीवनी लाभ कर कच बाहर आता है, किन्तु शुक्राचार्य मर जाते हैं । तदनन्तर कच विद्या-बल से शुक्राचार्य को पुनरुज्जीवित करता है । गुरुदक्षिणा के रूप में शुक्राचार्य कच से सुरापान न करने के व्रत को लेने के लिए कहते हैं । कच इसे स्वीकार कर लेता है । विद्या-ग्रहण के पश्चात् जब कच देवलोक को जाने के लिए उद्यत होता है तब देवयानी उससे विवाह की इच्छा व्यक्त करती है, किन्तु कच उसके इस प्रस्ताव को ठुकरा देता है । इस पर देवयानी उसे शाप देती है । क्रोध के वशीभूत हो कच भी उसे शाप दे बैठता है; किन्तु बाद में कच इस प्रतिशाप पर पश्चात्ताप करता है और सोचता है कि सुरा के सम्पर्क के कारण ही उसमें प्रतिशाप की भावना ने जन्म लिया था । नाटक के अन्त में उसका उद्घोष है-

यो ब्राह्मणोऽद्यप्रभृतीह कश्चि-
न्मोहात्सुरां पास्यति मन्दबुद्धिः ।
अपेतधर्मा ब्रह्महा चैव सः स्या-
दस्मिंल्लोके गर्हितः स्यात्परे च ॥

आज के सन्दर्भ में प्रस्तुत नाटक की उपयोगिता स्वतः सिद्ध है । हम सभी जानते है कि देश-विदेश में मदिरा सेवन दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही चला जा रहा है । मदिरा विवेक का नाश कर देती है । मदिरा के नशे में धुत व्यक्ति सदाचरण से गिर जाता है । जिसे एक बार इसकी लत पड़ जाती है वह फिर जीवन भर के लिए इसका दास बनकर रह जाता है । मदिरा मनुष्य का सर्वनाश करके ही छोड़ती है । अतः मनुष्य का धर्म है कि वह इसे मुँह से न लगाये, अन्यथा शुक्राचार्य और कच की भाँति मानव इसके आवेश में किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है । स्वयं नाटककार ने 'प्रस्तावना' में सुरापान से होने वाली हानियों का उल्लेख किया है ।

जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है 'विक्रमोर्वशीयस्य ध्वनिनाट्यरूपान्तरम्' संस्कृत के महान् नाटककार कालिदास के नाटक 'विक्रमोर्वशीयम्' का ही ध्वनिरूपक में रूपान्तरण है । नाटक की कथावस्तु भी वही है- केशी नामक राक्षस अप्सरा उर्वशी का बलात् अपहरण करता है । प्रतिष्ठानपुर के पराक्रमी राजा पुरूरवा केशी के हाथों से उर्वशी का उद्धार करते हैं और उसे उचित दंड देते हैं; किन्तु उर्वशी का त्राणकर्ता स्वयं उर्वशी के अप्रतिम सौन्दर्य का शिकार हो जाता है । उधर उर्वशी भी राजा के प्रति, अतीव आसक्ति का अनुभव करने लगती है । इन्द्र की कृपा से

दोनों का मिलन होता है और वे विहार के लिए गन्धमादन वन में चले जाते हैं। पुरूरवा की प्रणयदृष्टि विद्याधरपुत्री उदयवती पर पड़ती हैं। इससे रुष्ट होकर उर्वशी कुमारवन में चली जाती है जहाँ वह एक लता के रूप में परिणत हो जाती है। राजा उसके वियोग में विलाप करता है; किन्तु संगमनीय मणि के प्रभाव से उर्वशी पुनः अपने वास्तविक रूप को प्राप्त करती है। दोनों का एक बार पुनः सुखद मिलन होता है। उर्वशी पुत्र आयु को जन्म देती है और उसे पुरूरवा को सौंपकर इन्द्र के आदेशनुसार स्वर्ग को जाना चाहती है कि इन्द्र पुरूरवा के उपकारों का बदला चुकाने के लिए उन्हें उर्वशी को सदैव के लिए सौंप देते हैं। इस प्रकार पुरूरवा, उर्वशी और पुत्र आयु के मिलन से नाटक का सुखद अन्त होता है।

प्रस्तुत नाटक के सन्दर्भ में इस प्रश्न का उठना नितान्त स्वाभाविक है कि आज के युग में इस अति प्राचीन कथानक की क्या उपयोगिता है। उत्तर है कि यह नाटक आज की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समस्या- नारी के अपहरण और बलात्कार की समस्या- पर प्रकाश डालता है। आये दिन हम समाचार-पत्रों में पढ़ते हैं कि आज अमुक स्थान पर एक लड़की को अपहृत कर लिया गया, आज अमुक स्थान पर एक नारी के साथ बलात्कार किया गया। नारी की इच्छा के विरुद्ध उसका अपहरण और उसके साथ बलात्कार करने वाले लोगों को उचित दण्ड मिले, यही इस नाटक का सन्देश है। नाटककार ने उन दानव रूप लोगों की भर्त्सना की है जो किसी सुन्दरी का बलपूर्वक अपहरण करते हैं-

**'ननु जघन्या दानवास्ते ये इच्छाविवर्जितां कामपि सुन्दरीं बलादपहरन्ति।'**

'आलोकिनी' में रामकथा का संक्षेप में प्रस्तुतीकरण है। लंका-विजय के उपरान्त राम के अयोध्या आने पर उनका राज्याभिषेक किया जाता है और इसी उपलक्ष्य में अयोध्या में एक मास के लिए दीपमालिका का आयोजन किया जाता है यह दीपमालिका ऊँच-नीच, धनी-निर्धन आदि सभी के घरों को आलोकित करती है। इसलिए इसका नाम 'आलोकिनी' है। यह आलोकिनी दीपमालिका सभी मानवों में सद्भावना का संचार करे, यही भरत की कामना है- **'इयमालोकिनी दीपमालिका अयोध्यायां सौहार्दस्य, भ्रातृभावस्य, सौख्यस्य, शान्तेः, समृद्धेश्च दूती भवतु। अत्र सर्वे सम्मिल्य सौहार्देन कालं यापयन्तु'**।

सम्प्रति सारे विश्व के मानवों के हृदय द्वेष और दुर्भावना के अन्धकार से आच्छन्न हैं। पारस्परिक प्रेम और सद्भाव का प्रकाश इस अन्धकार का उच्छेद कर दे, इसी उद्देश्य को दृष्टिपथ में रखकर इस नाटक की रचना की गयी है। नाटककार ने अपने हृदय की इसी आशा को नाटक के अन्तिम गीत के अन्तिम चरण में इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

क्षुद्रभावान् भृशं तर्जयन्ती नृणां
सौमनस्यं तथौदार्यमातन्वती

अन्धकारात्प्रकाशं नयन्ती जगद्
राजतां दीपमालेयमालोकिनी ।
राजतां दीपमालेयमालोकिनी ।।

'दराशिकोहीयम्' में महामानव दाराशिकोह का आख्यान प्रस्तुत किया गया है। उदारचेता दाराशिकोह इस भारतभू पर हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच सेतु बनकर अवतरित हुए थे। उन्होंने संकीर्णता का परित्याग कर उदारता का प्रचार किया था। प्रभुता को पाकर भी वे प्रमत्त नहीं हुए थे। लक्ष्मी और सरस्वती दोनों के ही वे वरद पुत्र थे। उन्हें प्रपितामह अकबर की सहिष्णुता, पितामह जहाँगीर की न्यायप्रियता, पिता शाहजहाँ का साहित्यकलाप्रेम और माता मुमताजमहल का सौन्दर्य जैसे गुण विरासत में मिले थे। उन्होंने मृत्युपर्यन्त मानवता को ही सबसे बड़ा धर्म माना तथा संकुचित विचारों के समक्ष उनका मस्तक कभी झुका नहीं। संस्कृत और फ़ारसी भाषा पर उनका समान अधिकार था और वे इन दोनों ही भाषाओं में बड़े अधिकार के साथ ग्रन्थों का प्रणयन करते थे। उनके विचार से गीता और कुरान दोनों ही मानव कल्याण के लिए हैं- **'मया पवित्रं कुरानमधीतम्, गीता चाप्यधीता। मन्मते तु द्वावपि मानवस्य कल्याणाय एव'**। दाराशिकोह के ठीक विपरीत गुणों वाला उनका भाई औरंगज़ेब था जो धर्मान्धता की साक्षात् प्रतिमूर्ति था।

पिता शाहजहाँ मानवीय गुणों के आकार दाराशिकोह को सिंहासन पर बिठाना चाहते हैं; किन्तु राज्य का लोभी औरंगज़ेब राज्य को हथिया लेने की इच्छा से एक विशाल वाहिनी लेकर अपने भाई दाराशिकोह पर आक्रमण कर देता है। दाराशिकोह भी अपनी सेना लेकर युद्धभूमि में उतरते हैं। धूर्त औरंगज़ेब की दुहाई देकर दारा के सेनानायक खलीलुल्लाखान को अपनी ओर मिला लेता है। परिणामतः इस युद्ध में दाराशिकोह की हार होती है और उन्हें इधर-उधर भटकना पड़ता है। कुछ समय पश्चात् उन्हें बन्दी बना लिया जाता है और औरंगजेब तथा उसके चाटुकार क़ाज़ियों द्वारा उन पर विधर्मिता का आरोप लगाकर उन्हें मृत्यु दण्ड दे दिया जाता है। अन्त में औरंगज़ेब अपने इस क्रूर कृत्य पर स्वयं पश्चात्ताप करता है और स्वर्गस्थ दाराशिकोह को महामानव मानता हुआ उनसे क्षमायाचना करता है।

यह ठीक है कि प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु का आधार ऐतिहासिक है तथापि संकुचित धार्मिक वृत्ति से ग्रस्त भारत को आज भी दाराशिकोह जैसे महापुरुष की आवश्यकता है जो हिन्दू और इस्लाम धर्मों को सम भाव से देखता हुआ दोनों धर्मों के अनुयायियों में ऐक्य-भाव को उत्पन्न कर सके और औरंगज़ेबों के पार्थक्यविधायक मनसूबों को ध्वस्त कर सके।

प्रस्तुत विवेचना से स्पष्ट है कि डॉ० रमाकान्त शुक्ल ने अपने संस्कृत-नाटकों के कथानकों का चयन भले ही इतिहास, पुराण अथवा अन्य कहीं से क्यों न किया

हो तथापि उन्होंने इनके प्रणयन में आधुनिक भारतीय परिवेश को ही सामने रखा है। उन्होंने इन नाटकों के माध्यम से सहृदय सामाजिक का ध्यान देश की ज्वलन्त समस्याओं की ओर ही आकृष्ट किया है, कथानक तो इन समस्याओं के प्रस्तुतीकरण के माध्यम भर हैं। अतः यह बात अत्यन्त निर्भ्रान्त शब्दों में कही जा सकती है कि डॉ० शुक्ल के नाटक संस्कृत में रचित होकर भी आज के युग में सर्वथा प्रासंगिक है।

## समसामयिक सन्दर्भों की एक कालातीत रचना

# अहं स्वतन्त्रता भणामि

डॉ० सुन्दरलाल कथूरिया, डी0 लिट्0

किसी रचनाकार की महानता अनेक बातों पर निर्भर करती है । उनमें से एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह जिस कृति की सृष्टि करे, युगीन संदर्भों से जुड़ी होने पर भी वह कालजयी और और शाश्वत हो । स्रष्टा जिस जीवन-दर्शन का प्रतिपादन करे, वह क्षणिक, ता त्कालिक और अखबारी न होकर युग-युगों तकप्रेरणा देने वाला और मंगलकारी हो । वस्तुतः महान् साहित्यकार न्यायकारी सत्पक्ष का समर्थक और अन्यायकारी असत्पक्ष का विरोधी होता है । वह दीन-दुखियों, पद-दलितों और शोषितों की वाणी बन कर अन्याय का प्रतिकार करता है और उन संवेदनाओं को अभिव्यक्ति देता है जो शाश्वत और कालातीत होती है । उसके साहित्य के युगीन संदर्भ धूमिल पड़ सकते है, परिस्थितियाँ बदल सकती हैं, पर उसकी आत्मा युग-युगों तक आलोक-पुंज के समान देदीप्यमान रहती है और समय-समय पर न केवल साहित्यकारों को प्रेरित करती है, वरन् जब-जब भी नये आन्दोलनों का सूत्रपात होता है, उनके बीज इन महान साहित्यकारों के साहित्य में उपलब्ध हो जाते हैं । वाल्मीकि, व्यास, कालिदास आदि ऐसे ही महान् साहित्यकार हैं । कुछ साहित्यकार ऐसे भी होते हैं जो इन महान साहित्यकारों के पद-चिन्हों का अनुकरण करने का प्रयास करते हैं और अपनी अलग पहचान बनाकर इस परंपरा की कड़ी बन जाते हैं । संस्कृत के अर्वाचीन कवि डॉ0 रमाकान्त शुक्ल, मेरी दृष्टि में, ऐसे ही कवि हैं। वे सत्पक्ष के समर्थक, न्यायप्रिय, शाश्वत मानव-मूल्यों के पक्षधर एवं राष्ट्रचेता साहित्यकार हैं, अतः उनकी रचानएँ युग-युगों तक प्रासंगिक बनी रहेंगी, ऐसा मेरा विश्वास है ।

**'भाति मे भारतम्' 'जय भारतभूमे !'** और **'अहं स्वतन्त्रता भणामि'** शीर्षक कृतियाँ डॉ0 रमाकान्त शुक्ल की उत्कट देश भक्ति एवं राष्ट्रीय चेतना का ज्वलन्त प्रमाण हैं । यद्यपि उक्त तीनों कृतियों में कवि की प्रखर राष्ट्रीय चेतना दृष्टिगत होती है तथापि इनकी सृजन-भूमि में एक पार्थक्य है । 'भाति मे भारतम्' में कवि भारतीय संस्कृति, सभ्यता, ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, संगीत, कला, राष्ट्रीय प्रगति, प्राकृतिक वैभव, अनेकत्व में एकत्व आदि पर मुग्ध है तो 'जय भारतभूमे !' में भारत की कमनीयता पर ।

इसके विपरीत 'अहं स्वतन्त्रता भणामि' में वह देश की वर्तमान दुर्दशा पर चिन्तित और गलदश्रु है, अतः यह एक भिन्न मनोभूमि की रचना है। इस भिन्नता का आशय यह कदापि नहीं कि इसमें देशभक्ति या राष्ट्रीय चेतना की वह प्रगाढ़ता नहीं है जो उक्त दो कृतियों में पायी जाती है। डॉ0 रमाकान्त शुक्ल की इन तीनों काव्यात्मक रचनाओं में उत्कट राष्ट्रीय चेतना है, पर उसकी अभिव्यक्ति के धरातल भिन्न हैं जिससे कवि की मौलिकता और सतत गतिमानता प्रमाणित होती है।

डॉ0 रमाकान्त शुक्ल द्वारा संपादित 'अर्वाचीनसंस्कृतम्' के २६ जनवरी, १९८७ अंक में प्रकाशित 'अहं स्वतन्त्रता भणामि' शीर्षक रचना में कुल सोलह छन्द हैं। इस रचना का प्रसारण आकाशवाणी के समस्त केन्द्रों से २५.१.१९८७ को रात्रि ९.४५ पर हुआ था और तब इसे कवि ने सर्वभाषा कवि सम्मेलन में पढ़ा था। जिन्होंने इस रचना को कवि-मुख से सुना है वे इसकी शक्ति और मर्मस्पर्शी प्रभाव से सुपिरिचित हैं। इस कविता का छन्दोबद्ध हिन्दी अनुवाद श्री कृष्णमुरारि शर्मा ने 'मैं स्वतन्त्रता तुम्हें पुकारती।' शीर्षक से किया है जो 'अर्वाचीनसंस्कृतम्' के उक्त अंक में मूल रचना के सामने प्रकाशित है। इस रचना का हिन्दी रूपान्तर डॉ0 गुलाबचन्द्र जैन ने भी किया है जो भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित 'भारतीय कविताएँ- १९८३' में संकलित है। डॉ0 जैन ने इस रचना का रूपान्तर स्वच्छन्द छंद में किया है। उक्त तथ्यों के आलोक में दो निष्कर्षों पर पहुँचा जा सकता है : (१) 'अहं स्वतन्त्रता भणामि' की रचना १९८३ या उससे पहले हुई होगी और (२) यह एक ऐसी सप्राण, जीवन्त और महत्त्वपूर्ण रचना है कि भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित 'भारतीय कविताएँ- १९८३' में इसे संकलित करना पड़ा। आकाशवाणी के सभी केन्द्रों से सर्वभाषा कवि सम्मेलन के अन्तर्गत इसका प्रसारण भी इसकी महत्त्व-स्वीकृति का ही प्रमाण है। कवि - मुख से इस कविता को सुनकर, संस्कृत न जानने वाले श्रोताओं द्वारा इसका प्रभाव ग्रहण व भूरि-भूरि प्रशंसा न सिर्फ इसकी लोकप्रियता वरन् इसकी सर्वजनसंवेद्यता का भी प्रमाण है और इसे किसी कवि की कम बड़ी उपलब्धि नहीं माना जा सकता। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं तो इसे किसी महान् कवि का भी लक्षण मानता हूँ, क्योंकि उसकी रचनाएँ जहाँ विद्वत्समाज में समादृत होती हैं, वहाँ जन-साधारण को भी अपनी ओर आकर्षित करती हैं और यह गुण डॉ0 रमाकान्त शुक्ल की काव्य-कृतियों में भरपूर मात्रा में है।

जैसा कि कहा जा चुका है 'अहं स्वतन्त्रता भणामि' देशभक्ति एवं राष्ट्रीयचेतना की रचना है और देशभक्ति में जिन तत्त्वों का योग रहता है उनमें से एक है 'वर्तमान दुर्दशा की ओर देशवासियों का ध्यान आकर्षित करना, उनके सुधार एवं जागरण की कामना करना, राष्ट्र के भावी स्वरूप की रूपरेखा, राष्ट्र की आशाओं, आकांक्षाओं एवं स्वप्नों का रेखांकन'[१] -और डॉ0 रमाकान्त शुक्ल की प्रस्तुत कृति देशभक्ति के इसी रूप का अन्यतम उदाहरण है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए जिन नेताओं ने संघर्ष

किया तथा प्राणों की बाज़ी लगा दी, उन्होंने जिन सपनों को संजोया था तथा राम-राज्य की जो कल्पना की थी, स्वतन्त्रता प्राप्ति के तैंतालीस वर्षों के उपरान्त भी वह पूरी न हो सकी। 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं' से प्रेरित और मुक्ति-चेतना से अनुप्राणित होकर जिन ज्ञात-अज्ञात असंख्य देश-भक्तों ने देश की बलिवेदी पर सर्वस्व न्योछावर कर दिया था, देश की वर्तमान दुर्दशा पर स्वर्ग में बैठे वे निश्चय ही आँसू बहा रहे होंगे। आज और नहीं तो उन्हीं वीरों का स्मरण कर, हमें देश-निर्माण के कार्य में प्राण-पण से जुट जाना चाहिए तथा देश की विघटनकारी शक्तियों को मुँह-तोड़ जवाब देना चाहिए। देश-हित और स्वतन्त्रता जिनके लिए सर्वोपरि थी तथा जो इसके लिए आत्मोत्सर्ग कर गये, वे हमारे प्रेरणा-स्रोत बन सकते हैं और हमें उन महान् देश भक्तों की सदैव वन्दना करनी चाहिए। स्वतन्त्रता का मानवीकरण करते हुए, कवि ने स्वतन्त्रता के मुख से 'अहं स्वतन्त्रता भणामि' के प्रारंभ में यही कहलवाया है -

अहं स्वतन्त्रता भणामि मद्वचो निशम्यताम्।
निधाय मानसे च तद् यथोचितं विधीयताम्॥
मदर्चनाकृते शिरांस्युपायनीकृतानि यैः,
धनं वपुस्तथा मनः सहर्षमर्पितानि यैः।
अवापुरात्मवक्षसि ज्वलद्भुशुण्डिगोलिकाः
गता त एव मे जना सदैव वन्दनीयताम्॥[२]

देशभक्तों ने देश की एकता और मुक्ति-कामना से आत्मोत्सर्ग कर दिया, पर दुर्दैववश आज देश की वही एकता दाँव पर लगी है, अतः स्वतन्त्रता चिन्तित और परेशान है। भारत देश ने वैज्ञानिक, औद्योगिक एवं भौतिक दृष्टि से निश्चय ही पर्याप्त प्रगति की है, पर आत्मिक और नैतिक मूल्यों की दृष्टि से इसका जो पतन हुआ है वह अश्रुतपूर्व है तथा देश की अनादिकालीन एकता के लिए घातक है, अतः स्वतन्त्रता का सिर धुनते हुए देशवासियों को सावधान करना सहज स्वाभाविक है। स्वतन्त्रता कहती है-

परन्तु दैवयोग से विचित्र काल आ गया।
युग-युगों की एकता अभाग्य हाय ! खा गया॥[३]

भारतीयों ने चिरकाल से 'सत्यमेव जयते' का पाठ पढ़ा था। नीति और सच्चरित्रता उनके जीवन के नियामक थे पर भारतीयता के नियामक ये जीवन-मूल्य

आज अन्तिम साँस लेते से दिखायी पड़ रहे हैं । आज जो व्यक्ति जितना ही कुकर्मरत है, कुपथगामी है, सत्य-पथ से च्युत है, वह उतना ही सम्मानित, प्रतिष्ठित और समृद्ध है ।[४] यह भाग्य की विडम्बना नहीं तो और क्या है । देश-व्यापी इस विडम्बना और विसंगति पर आँसू बहाती हुई स्वतन्त्रता भारत-वासियों को सुपथ पर चलने का सन्देश देती है, पर उसके इस सन्देश को सुनता ही कौन है? सब अपने कानों में तेल डाले बैठे हैं और उसका यह रुदन मात्र अरण्य रोदन बनकर रह गया है ।

यह असीम वेदना और खेद की बात है कि उस देश में आज बहुएँ जलायी जा रही हैं जहाँ के स्मृतिकारों ने 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते--' का दिव्य सन्देश दिया था। सत्य, अहिंसा और निष्कपटता के पथिकों का यह देश आज छल-छद्म और भ्रष्ट आचरण को प्रश्रय दे रहा है और ये अमानवीय कृत्य जीवन के नियामक हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में देश का सर्वनाश अवश्यम्भावी है । अतः देशवासियों को प्रेरणा देते हुए स्वतन्त्रता कहती है कि तुम सावधान होकर मेरी बात, सुनो अन्यथा बाद में हाथ मलने से कुछ लाभ न होगा ।[५]

स्वदेशवासियों द्वारा स्वदेशवासियों की हिंसा, अलगाववादी प्रवृत्ति से परिचालित होकर देश को विखंडित करने के प्रयत्न, ज्ञान-विज्ञान का विक्रय, कदम-कदम पर भेदभाव, दलों की दल-दल, व्यक्तियों की प्रतारणा, देश के भीतर और बाहर फैले आतंकवाद, मिलावट की रोगदायक जघन्य प्रवृत्ति, देशव्यापी दुराचार आदि पर स्वतन्त्रता क्षुब्ध है ।[६] अत्याचार, भ्रष्टाचार, विडंबनाओं और विसंगतियों को वह सजल नेत्रों से देख रही है तथा इनसे अत्यधिक चिन्तित है, क्योंकि ये देशघाती प्रवृत्तियाँ स्वयं स्वतन्त्रता के लिए भी खतरनाक हैं ।

कविवर डॉ0 शुक्ल ने देशव्यापी विसंगतियों और विरोधों को खुली आँखों से देखा है, यथार्थवादी धरातल पर उनका चित्रण किया है तथा एक सच्चे कवि के नाते सत्परामर्श भी दिया है । योग्यता के पदच्युत होने एवं अयोग्यता के फलने-फूलने पर कवि उदास है, चाटु-कारिता का अमोघलाभकारी होना उसे सालता है[७] तथा धर्म के नाम पर होने वाला अनाचार उसे विह्वल करता है । उसकी आँखो से कुछ भी छिपा नहीं है । वह देख रहा है कि श्रमिक वर्ग के पास रहने को जगह नहीं और वे बेचारे कैसे 'फुटपाथ' पर रात काट देने को विवश हैं । कैसे सुनियोजित ढंग से देह का व्यापार चल रहा है[८] और कैसे दीन-हीन व्यक्तियों का शोषण हो रहा है, पर वे उसके विरुद्ध कोई आवाज नहीं उठा पा रहे ।

इस देश के मनीषियों एवं तत्त्व-चिन्तक ऋषियों ने जहाँ देशवासियों को 'ईशावास्योपनिषद्' के प्रारंभ में निर्लोभ भाव से जीवन-यापन का अमृत सन्देश दिया वहाँ आज 'गृद्ध-दृष्टि' प्रमुख हो उठी है और 'समत्व भाव' लुप्त-प्राय हो गया है। आज का भारत वर्ग-वैषम्य का जीता-जागता उदाहरण है, फलतः कहीं तो विलास के अपार साधन हैं और कहीं भूख से देशवासी बिलबिला रहे हैं, कहीं धन की नदियाँ

बह रही हैं और कहीं विपन्नता मुँह बाए खड़ी है ।[९] ऐसी विडंबित स्थिति में भला स्वतन्त्रता कैसे चुप रहे ? उसे मुँह खोलने पर विवश होना पड़ता है और विवशता श्लोकों में फूट पड़ती है ।

भारत की वर्तमान दुर्दशा के लिए उत्तरदायी है यहाँ का प्रलुब्ध नेतृवर्ग[१०] अन्यथा इस देश में किसी चीज की कमी नहीं, यह तो 'रत्नगर्भा वसुन्धरा' है । यहाँ धन, श्रम या मूल्यवान धातुओं की कमी नहीं-कमी है तो कभी-कभी बुद्धि की । यदि सद्बुद्धि एवं लोकमंगल की भावना से अनुप्राणित होकर देश की समस्याओं का समाधान किया जाए तो इसमें शायद ही कोई कठिनाई हो । कवि के शब्दों में-

न तो धनाभाव
न ही अभाव श्रम का
प्रभादीप्त भारत में, फिर भी
पनप जाती विवेकहीनता यदा कदा ।
न पनपे कदापि वह
हो ऐसा विधान ।[११]

'अहं स्वतन्त्रता भणामि' शीर्षक रचना का अन्त कविवर डॉ0 शुक्ल ने इस मंगल-कामना के साथ किया है कि इस देश में न कोई निर्धन हो, न शक्तिहीन ही । सभी का स्वाभिमान बना रहे और कभी किसी का मान-भंग न हो । इस देश के निवासियों में स्वावलम्बन की भावना का विकास हो तथा वे सदैव मुदित और प्रमुदित हों ।

स्पष्टतः 'अहं स्वतन्त्रता भणामि' शिवत्व की भावना से ओत-प्रोत काव्य है । यथार्थ के धरातल पर देश की वर्तमान दुर्दशा का चित्रण करने के बावजूद कवि का मूल उद्देश्य भारत और भारतीयों के मस्तक को स्वावलम्बन एवं स्वाभिमान से दीप्त कर गर्वोन्नत करना है । इस रचना में कवि आद्यन्त भू, जन और इस देश की संस्कृति से जुड़ा रहा है-उनके प्रति चिन्तित रहा है । परिणामतः अपनी समग्रता में यह देशप्रेम और राष्ट्रीय चेतना की रचना है । यद्यपि इसमें समसामयिक संदर्भों की अनुगूँज है तथापि अपनी भाव संपदा एवं कलात्मक उत्कर्ष के कारण यह एक कालातीत रचना है ।

डॉ0 रमाकान्त शुक्ल एक प्रातिभ कवि हैं । संस्कृत भाषा और साहित्य के संस्कार उन्हें विरासत में मिले हैं । 'अहं स्वतन्त्रता भणामि' में उनकी काव्यात्मक सहजता देखते ही बनती है । अतीत और वर्तमान के पारदर्शी, सूक्ष्म विवेचन के साथ इसमें यथार्थ और आदर्श का मणि-कांचन योग तो है ही, भविष्य के प्रति चिन्ता

भी है। प्रस्तुत रचना में संकलित छन्द स्वतः स्फूर्त, सहजता से ओतप्रोत, चिन्तन और भाव-गाम्भीर्य से युक्त, संगीतात्मकता, नाद-सौन्दर्य एवं गेयता से समन्वित तथा कलात्मक प्रौढि का प्रतिदर्श हैं। भाषा और छन्द पर कवि का अप्रतिम अधिकार है। काव्यरूप की दृष्टि से 'अहं स्वतन्त्रता भणामि' को चिन्तनप्रधान लम्बी कविता की कोटि में रखा जा सकता है। इस उत्कृष्ट सर्वजनसंवेद्य, समसामयिक संदर्भों की कालजयी रचना के लिए डॉ0 रमाकान्त शुक्ल निश्चय ही साधुवाद के पात्र हैं।

---

१. रस-संख्याः काव्यशास्त्रीय विश्लेषण, डॉ0 सुन्दरलाल कथूरिया, पृ0 २७३

२. मैं स्वतन्त्रता तुम्हें पुकारती सुनो।
   सोचकर हृदय वितान कर्म के बुनो।
   अर्चना-पलों में जो शिरों की भेंट दे गये।
   देह-गेह सौंप हर्ष पूर्ण चित्त से गये।
   गोलियाँ सहीं जिन्होंने आत्म वक्ष पर सदा।
   जो रहे सदैव ही नृवीर देश की गदा।
   उन्हीं महान् वन्दनीय के चरित गुनो।
   मैं स्वतन्त्रता तुम्हें पुकारती सुनो॥

   -अर्वाचीनसंस्कृतम्, २६ जनवरी, १९८७, पृ0 ४१

३. उपरिवत्, पृ0 ४३

४. उपरिवत्, (हिन्दी-अनुवाद, पृ0४३)

५. अर्वाचीनसंस्कृतम्, २६ जनवरी १९८७ में संकलित 'अहं स्वतन्त्रता भणामि' श्लोक ७

६. उपरिवत् 'अहं स्वतन्त्रता भणामि', श्लोक ८-१० के आधार पर लिखित

७. उपरिवत् द्रष्टव्य-श्लोक ११

८. उपरिवत् द्रष्टव्य-श्लोक १३

९. क्वचिद्विलाससाधनैर्विमण्डिता विलासिनः
   क्वचित्क्षुधाप्रपीडिता वसन्ति देशवासिनः।
   क्वचित्पयस्विनी धनस्य कुत्रचिच्च निःस्वता,
   इयं दशा विलोपमेतु येन तद्विधीयताम्॥

   अहं स्वतन्त्रता भणामि, श्लोक १२, अर्वाचीनसंस्कृतम्, ९/१, पृ0 ४४

१०. द्रष्टव्यः अहं स्वतन्त्रता भणामि, श्लोक १४, अर्वाचीनसंकृतम्, ९/१, पृ0 ४६

११. अर्वाचीनसंस्कृतम् नवम वर्ष प्रथमांक में संकलित 'अहं स्वतन्त्रता भणामि' के श्लोक क्रमांक १५ का भावानुवाद, द्रष्टव्य-भारतीय कविताएँ :१९८३ (भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन), मैं स्वतन्त्रता बोल रही हूँ (रूपान्तरकार-डॉ0 गुलाब चन्द्र जैन) पृ0 १८७.

# 'भारतजनताऽहम्'

## के विशेष परिप्रेक्ष्य में डॉ० रमाकान्त शुक्ल की राष्ट्रवादी रचनाओं में जनमानस की प्रतिध्वनि

डॉ० वी० के० सिंह

साहित्य और समाज का अटूट सम्बन्ध सन्देहातीत है फिर भी पाश्चात्त्य मानसिकता के अन्धभक्त संस्कृत साहित्य को कालिदास, माघ प्रभृति प्राचीन कवियों तक सीमित और यथार्थ के धरातल से दूर लोकरंजक कपोल कल्पना समझते हैं। यही नहीं, वे संस्कृत भाषा को वर्तमान जनमानस की अभिव्यक्ति में असमर्थ किंवा आधुनिक युग में अनुपयोगी भी मानते हैं। परन्तु बीसवीं शताब्दी की संस्कृत कृतियों के सम्यग् अनुशीलन से उनकी यह भ्रान्ति सर्वथा निराधार सिद्ध होती है। आधुनिक संस्कृत कवियों में डॉ० रमाकान्त शुक्ल का अपना एक विशिष्ट स्थान है। नाटककार एवं कवि उभय रूपों में डॉ० शुक्ल संस्कृत-जगत् में समादृत हैं। आपके 'पण्डितराजीयम्', 'दाराशिकोहीयम्' 'अभिशापम्' इत्यादि संस्कृत नाटकों का आकाशवाणी तथा विभिन्न प्रतिष्ठित मंचों पर सफल अभिमंचन हो चुका है। मारीशस, फिलाडेल्फिया, उ० प्र०, म० प्र०, राजस्थान एवं दिल्ली की संस्कृत अकादमियों, कालिदास अकादमी उज्जैन तथा अखिल भारतीय प्राच्य विद्यासम्मेलन की कविगोष्ठियों में आपने अपने काव्य पाठ से संस्कृत की वर्तमान रचनाधर्मिता से देश विदेश के विद्वानों को परिचित कराया और संस्कृतानुरागियों को नवचेतना प्रदान की।

डॉ० शुक्ल की कविताओं में राष्ट्र का गौरवशाली अतीत, प्रगति के लिए जूझते तथा कुण्ठाप्रधान वर्तमान और शुभाशीर्मय इन्द्रधनुषी भविष्य सजीव रूप में दर्शाया गया है। 'भाति मे भारतम्' (१९७९) तथा 'जय भारतभूमे' (१९८१) में भारतभूमि की प्रशस्ति और तद्द्वारा सुखद अतीत एवं विकासशील वर्तमान की मोहक अनुभूति है तो 'रौति ते भारतम्'[२] (१९८५) में उसकी वर्तमान करुणदशा की निःसंकोच अनावृति। 'अहं स्वतन्त्रता भणामि' (१९८३) में भारतीय स्वतन्त्रता की आत्मकथा का ऐसा सजीव चित्रण उपन्यस्त हुआ है कि यह रचना १९८७ में सर्वभाषा कविसम्मेलन में संस्कृत की प्रतिनिधि कविता के रूप में चुनी गयी और भारत की अन्य भाषाओं में इसका अनुवाद किया गया। अनावृष्टिजन्य पीडा से क्षुब्ध

कवि 'मेघप्रबोधनम्' में मेघ को बुरी तरह फटकारता है[१] तो दूसरे वर्ष समयानुकूल वर्षा के लिए 'स्वागतं पयोद! ते' कविता में उसका भरपूर सम्मान भी करता है।[२] इस प्रकार कवि राष्ट्र की समस्याओं एवं परिस्थितियों के यथार्थ चित्रण में गहरी रुचि रखता है, जनमानस की अभिव्यक्ति ही उसकी कविता का मूल प्रतिपाद्य है। जनमानस से साक्षात् सम्बद्ध रचनाओं में उनकी एक प्रसिद्ध कविता है 'भारतजनताऽहम्' (मैं भारत की जनता हूँ) जिसकी यथामति समीक्षा प्रस्तुत लघुनिबन्ध में विवक्षित है। अस्तु!

'भारतजनताऽहम्' नामक कविता 'अर्वाचीनसंस्कृतम्' पत्रिका के जुलाई १९८६ अङ्क में प्रकाशित हुई और 'त्रिदिवसीय संस्कृताभ्युदयसंगोष्ठी' के अन्तर्गत आयोजित संस्कृत कविसमवाय (दिनांक ९ जनवरी १९८७ ई0) के अवसर पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के श्रीनेत्रमण्डप (सीनेट हाल) में डॉ0 शुक्ल के द्वारा विशेष रूप से सुधी श्रोताओं को समर्पित की गयी। इस कविता ने उपस्थित जनसमुदाय को आनन्द विभोर कर दिया था, प्रत्येक श्रोता मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने को विवश हो गया था।[३] इस कविता में कुल ४२ पद्य हैं जिनमें भारतीय जनता की आत्मकथा मार्मिक ढंग से निबद्ध है।

कविता के आरम्भिक पद्यों (१-६) में कवि ने स्वाभिमान, विनम्रता, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना, साहित्य-ज्ञान-विज्ञान एवम् अध्यात्म की ओर सहज प्रवृत्ति आदि सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति भारतीय जनता की प्रतिबद्धता का प्रतिपादन किया है। उसे गर्व है कि देवस्पृहणीय देश में उसका जन्म हुआ (पद्य-५)। कवि का उद्घोष है कि भारत जैसी जनता किसी दूसरे देश में है ही नहीं-

> नाहं भ्रमेऽस्मि नाहं मोहे विश्वं भ्रान्त्वा तथ्यं वदामि।
>
> मत्समा हि जनता क्वापि नास्ति[४]
>
> धृतिशीला भारतजनताहम् (पद्य-६)

कवि जानता है कि अतीत की यशोगाथा से अभिभूत तथा अपने समान किसी दूसरी को न मानने वाली जनता पर अकर्मण्यता एवं मिथ्या दर्प का आरोप लग सकता है इसलिए वह तत्काल सजग हो उठता है और कहता है कि-भारतीय जनता सबसे स्नेह करने वाली है, और निरन्तर कर्मरत रहती है (पद्य-६)। इसके जीवन के मूल मन्त्र हैं-'सर्वभूतहिते रताः', 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः' तथा 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' सदृश महान् संकल्प।

सामान्य विषताओं पर प्रकाश डालने के बाद कवि स्वतन्त्रता आन्दोलन (८), आत्मनिर्भरता (९), अहिंसा प्रधान आणविक उन्नति (१३), भौतिक साधनों की सम्पन्नता (१४), पंचशील के सिद्धान्तों की रक्षा (१५), विश्व में परमाणु निरस्त्रीकरण के प्रयास द्वारा विश्वशान्ति की स्थापना (१६) दूसरे राष्ट्र के स्वतन्त्रता

आन्दोलन में सहयोग (४२) प्रभृति भारत के प्रमुख राष्ट्रीय तथा अन्ताराष्ट्रीय सिद्धान्तों की चर्चा करता है। निर्धनता, बेरोजगारी (२०), बलात्कार, हत्या, अपहरण, तस्करी (स्मगलिंग) (२१), आतंकवाद, दहेजहत्या (२६), साम्प्रदायिक उन्माद, पर्यावरण प्रदूषण (२८), नदी प्रदूषण (२९), युवकों में बढ़ती हुई आत्महत्या एवं मादक द्रव्यों के सेवन की प्रवृत्ति तथा सुविधा शुल्क (उत्कोच या घूस) (३०) जैसे व्याप्त भ्रष्टाचार की ओर कवि सहज भाव से दृष्टिपात करता है। इन विकट परिस्थितियों में भी दृढ़ रहने वाली भारतीय जनता का धैर्य और अदम्य साहस स्तुत्य है-

दारिद्र्यदुःखदावाग्निदग्धदेहापि नो म्रिये ह्यद्यावधि ।
साहसजिजीविषाकर्मठतापुत्तलिका भारतजनताहम् ॥ (१०)
विषपानपरापि स्मितवदना सर्वंसहभारतजनताहम् (११)
उच्चावचमार्गे गच्छन्ती सोत्साहा भारतजनताहम् (१२)

कवि का कथन है कि भारतीय जनता बड़ी से बड़ी आपदाओं को भी येन-केन प्रकारेण सहन कर सकती है परन्तु राष्ट्र की एकता एवम् अखण्डता में व्यवधान डालने वाली विघटनकारी शक्तियों को कथमपि अनदेखा नहीं कर सकती-

नो सहे किन्तु देशस्य भंगमुन्निद्रा भारतजनताहम् (२१)
एकतां कामये नित्यं स्वां जगदीश्वर! भारतजनताहम् (३१)
अविरुद्धान् वापि विरुद्धान् वा ह्येकस्मिन् सूत्रे स्थापयितुम् ।
किं किं न मया क्रियते लोके, यत्नस्था भारतजनताहम् ॥ (३८)

इसी तरह, यह जनता स्वयं तो कष्ट उठा सकती है किन्तु दूसरों के सन्ताप से सदैव करुणार्द्र हो उठती है-

नोपेक्षे किन्तु सतां पीडां करुणार्द्रा भारतजनताहम् (२०)
प्राप्नोमि तथापि न निष्ठुरतां करुणार्द्रा भारतजनताहम् (२६)

आगे चलकर कवि ने भारत में प्रजातन्त्र के वर्तमान स्वरूप और उसमें नेताओं की भूमिका का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। उसका कहना है कि प्रजातन्त्र की परिभाषा का केन्द्र है जनता परन्तु दुर्भाग्य से आज उसी के हित गौण हो गया गये हैं-

शासनासन्दिकामधिरोढुं प्रतिनिधयो मे कुर्वन्ति न किम् ?

तां प्राप्य केऽपि यां विस्मरन्ति मुग्धा सा भारतजनताहम् (३६)

नेताओं के चरित्र के सम्यक् प्रतिपादन हेतु प्रयुक्त 'नक्र', 'गृध्र', 'गोमायु' तथा 'करकट-दमनक' के प्रतीक अतीव प्रभावोत्पादक हैं :-

नक्राश्रुजलं जाने सम्यक् जाने च गृध्रगोमायुगिरम् ।

जाने करटक-दमनकचरितं हृदयज्ञा भारतजनताहम् ।।२४।।

राजनीतिजन्य कुटिलताओं को जानती हुई भी जनता जो शान्त रहती है उसका कारण है उसकी ऋजुता न कि मूर्खता (१५) । वह अभिव्यक्ति स्वतन्त्रता के मौलिक अधिकार के प्रति सतत जागरूक रहती है (२३) ।

वर्तमान समाज की विसंगतियों से जनता बहुत व्यथित (२६) चिन्ताकुल और निराश अवश्य है परन्तु हताश नहीं क्योंकि उसे जगन्नियन्ता पर पूरा भरोसा है (४१), वह इन्हें तात्कालिक अन्तराय मात्र मानती है (३३) और अपने दोषों के शीघ्र परिहार की मङ्गलकामना करती है-

ये दृश्या मयि दोषा नैकेऽरुन्तुदा अवाच्याः कष्टकराः ।

कामये विलोपं वै तेषामतिशीघ्रं भारतजनताहम् ।।३२।।

'भारतजनताहम्' कविता की अग्रिम कड़ी के रूप में डॉ० शुक्ल ने अपनी अभिनव रचना 'वदत नेतारो मनाक्'[५] में जनाकांक्षाओं को चित्रित किया है । इसके पद्यों का समन्वित भाव यह है कि तथाकथित नेताओं ने ही अपने क्षुद्र राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए कश्मीर, पंजाब, असम, श्रीरामजन्म भूमि/बाबरी मस्जिद जैसी विकराल समस्याओं को उलझाये रखा है, राष्ट्र हित के स्थान पर उनमें सत्तामोह अधिक प्रबल हो गया है-

'यातु देशो ह्यन्धकूपे रक्षितं स्यान्मे मतम् ।'

इति विचारपरम्परां स्वां त्यजत नेतारो मनाक् ।

देशसेवां कर्तुमागच्छथ, कुरुथ यादृच्छिकम् ।

व्यवहृतिः केयं स्फुरति वश्चिन्तयध्वं रे मनाक् ।।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि डॉ० शुक्ल की रचनाओं में भारतीय जनमानस पूरी तरह उरेहा गया है, उनमें अतीत, वर्तमान और भविष्य का मञ्जुल समन्वय है । कविताओं का प्रतिपाद्य राजनीतिपरक अवश्य है परन्तु राजनीतिप्रेरित कदापि नहीं, उनका उत्स तमसावृत वर्तमान भले हो किन्तु उनसे दीप्यमान भविष्य की किरणें प्रस्फुटित होती हैं ।

भावपक्ष के साथ-साथ कविताओं का कलापक्ष भी स्पृहणीय है। सरल-सुबोध पद-विन्यास, आडम्बरविहीन स्वाभाविक अभिव्यक्ति तथा अजस्र प्रवाहमयी भाषा का सर्वत्र दर्शन होता है। 'भारतजनताहम्' में एक स्थल पर[६] डॉ० शुक्ल ने भारतीय जनता की सूक्ष्मेक्षणसामर्थ्य के माध्यम से कविकर्म के महत्त्वपूर्ण पक्ष पर प्रकाश डाला है। उनकी मान्यता है कि कवि को सदैव सावधान रहकर समाज और जनाकांक्षाओं को पहचानने का प्रयास करना चाहिए फिर अतीत तथा भविष्य के साथ सामञ्जस्य स्थापित करते हुए उसकी अभिव्यक्ति करनी चाहिए क्योंकि ऐसा कवि ही जनमानस को प्रभावित कर सकता है उसे समुचित दिशा निर्देश कर सकता है। कवि ने अपनी कविताओं में इस सिद्धान्त का व्यावहारिक प्रयोग कर दिखाया है। यही कारण है कि उनकी कवितायें जनमानस की प्रतिध्वनि बन गयी है, जनता उन्हें सुन-सुन कर झूम उठती है-

रथ-रमाकान्त-राजेन्द्रमिश्र-कवितालहरीः पायं पायम् ।
विस्मरति सुधाधारामपि या रसिका सा भारतजनताहम् ॥[७]

---

१. क्रूरहृदय! मेघ! कथं सुप्यते त्वया
गर्ज्यते न तर्ज्यते न वृष्यते त्वया ।

२. हे सुकालवारिमुक् ! त्वया धरा सुतर्पिता ।
हे पयोद ! चातकास्त्वया भृशं सुहर्षिताः
केकिनां गणस्त्वया मुदा वनेषु नर्त्यते ।
स्वागतं पयोद ते, स्वागतं पयोद ! ते ॥

३. निबन्ध लेखक इस तथ्य का प्रत्यक्षदर्शी है ।

४. इसका पाठान्तर 'प्रेरणां जगन्मत्तो लभते' के रूप में भी कवि ने किया है ।

५. यह कविता २९.१०.९० को लिखी गई और सर्वप्रथम कालिदास समारोह उज्जैन (२.११.९०) में सुनाई गई । ७.११.१९९० को 'अर्वाचीनसंस्कृतम्' (१२/४) में प्रकाशित हुई ।

६. अभितः परितः समया निकषा मां यद्घटते तत्प्रेक्षेऽहम् ।
सर्वस्य कृते खलु सज्जा यासावहिता भारतजनताहम् ॥पद्य ३८॥

७. यह पद्य मुद्रित नहीं है किन्तु कवि ने इलाहाबाद में सुनाया था । अन्य स्थानों पर भी उसने इसका पाठ किया है ।

# डॉ० रमाकान्त शुक्ल की

## रचनाओं में अभिव्यक्त उदात्त भावनाएँ

डॉ0 पतञ्जलि कुमार भाटिया

संस्कृत साहित्य का सूक्ष्मतया अवलोकन करने पर एक तथ्य उभर कर सामने आता है कि देववाणी के समुपासक कवि प्रारम्भ से ही अपनी विशाल एवम् उदात्त दृष्टि से समस्त विश्व को देखते रहे हैं। उनकी दृष्टि में सङ्कीर्णता का नितराम् अभाव रहा है। संस्कृत कवि 'यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्' की विचारावली से ओतप्रोत रहा है। वह सङ्कीर्णता से दूर रहता हुआ विषम सामाजिक परिस्थितियों के होने पर भी शाश्वत आनन्द की खोज में सदा संलग्न रहता आया है। परन्तु इस का अभिप्राय यह नहीं कि वह समाज के आभिजात्य परिवेश में रहता हुआ आनन्द-प्रमोद में दिन व्यतीत करता रहा अपितु समाज में व्याप्त वैषम्य भावना के कारण उत्पन्न समस्याओं से ग्रस्त दीन दुःखियों की दीनता भी कवि के अन्तःकरण को आलोडित करती रही है; वह भी उन के दुःख का सहभागी होता आया है। समाज का प्राणी होने के कारण उस का हृदय भी सहानुभूति की भावना से ओत प्रोत होता रहा; यही कारण है कि उस के मुखारविन्द से 'मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्' की करुणामयी पदावली स्वयमेव निःसृत होती रही है।

इस पृष्ठभूमि में जब हम बीसवीं शताब्दी के आधुनिक संस्कृत कविकुलमूर्धन्य, गीर्वाणगिरासमुपासक कोटि-कोटि जनता के हृदयसम्राट् डॉ0 रमाकान्त शुक्ल की कविताओं का रसास्वादन करते हैं तो उन की लेखनी में ऋग्वैदिक कवि की उदारता, औपनिषदिक चिन्तन तथा भारतीय तत्त्वज्ञान की शाश्वत विचारधारा का समन्वय, कालिदास की विश्वबन्धुत्वभावना, वर्तमान चिन्तकों की प्रगतिशीलता, सहज-सरल जीवन पद्धति के प्रति आग्रह, क्रान्तिकारियों की तेजस्विता, देशभक्ति, सत्य एवं अहिंसा के प्रति आग्रह तथा मंगलमयी कामना से परिपूर्ण चिरन्तन शाश्वत अजस्र धारा के दर्शन युगपत् होते हैं। ऋग्वैदिक ऋषि की भाँति उन की दृष्टि में 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' की ही मूर्तिमती प्रतिध्वनि **'एकं सद् बहुधा विलोक्यते भारतम्'** है। डॉ0 शुक्ल की दृष्टि में भारत पर्याय है 'संगच्छध्वं संवदध्वम्' के उस शंखनाद का, जिसने अनन्त काल से इस धरा को गुंजायमान किया है। विश्व शान्ति के



समुपासक पं0 जवाहरलाल नेहरू के संदेश के समस्त विश्व में प्रसारण के इच्छुक

डॉ0 शुक्ल की लेखनी, विश्व में परिव्याप्त आतङ्कमय परिवेश को देख कर चीत्कार करती हुई कह उठती है-

सन्तु सर्वत्र सर्वे सदा नन्दिताः
युद्धदावानलो नैव लोकं दहेत् ।।[१]

पुनः अपनी प्रसिद्ध कविता **'उत्तरमङ्गलम्'** में भी वे यही सन्देश दृढ़तापूर्वक प्रतिपादित करते हैं । उदात्तमयी भावना से परिपूर्ण पदावली से श्रोता को करुणासागर में मानों आप्लावित करते हुए वे लिखते हैं-

नैव याचे धनं स्वर्गमेवाथवैकाकिनस्ते न सौख्यं सखे कामये ।
सन्तु सर्वत्र सर्वे सदा नन्दिताः, नूतने वत्सरे ते भवेन्मङ्गलम् ।।
प्रेमभङ्गो न कस्यापि लोके भवेत् प्रेमिणो विप्रयुक्ता मिलेयुर्मुदा ।
स्युः स्मितास्याः समे फुल्लपद्मोपमा नूतने वत्सरे ते भवेन्मङ्गलम् ।।[२]

डॉ0 शुक्ल वर्तमान काल में प्रसृत पारस्परिक वैमनस्य भावना से कातर होकर करुणार्द्रचेतसा मङ्गलकामना करते हुए अपनी उदात्त भावना का परिचय निम्न शब्दों में कराते हैं-

यत्र गेहे वसेर्यत्र वीथ्यां वसेर्ग्रामके वा नगर्यां वसेस्त्वं सखे ।
वैमनस्याग्निरुग्रो न तत्र ज्वलेन्नूतने वत्सरे ते भवेन्मङ्गलम् ।।
यन्मया नोदितं यच्च काम्यं त्वया यच्च पथ्यं भवेन्मङ्गलाधायकम्।
तत्सुलभ्यं भवेत्त्वत्कृते सत्वरं नूतने वत्सरे ते भवेन्मङ्गलम् ।।[३]

वर्तमान युग में इस से बढ़कर मंगलकामना हो ही नहीं सकती कि प्रजातन्त्र की रक्षा में नागरिक संनद्ध हों, क्योंकि राष्ट्र की एकता तथा सुरक्षा प्रजातन्त्र की भित्ति पर ही आधृत हैं । समाज से वृत्तिहीनता (बेरोजगारी) दूर हो, अत्यन्त क्षोभकारक नारीदाह, पतिदाह, आत्मदाह अथवा किसी भी जीवित प्राणी के दाह की घटना भी सुनने को न मिले-

नैव वध्वा न पत्युर्न वा कस्यचिज्जीवितप्राणिनो दाहमाकर्णयेः ।
नैव दारिद्र्यपीडा जनान् बाधयेन्नूतने वत्सरे ते भवेन्मङ्गलम् ।।
यत्र देशेऽस्ति वासः सखे तावकस्तत्र कर्तव्यशून्यो न कश्चिद्भवेत् ।
स्युः प्रजातन्त्ररक्षापरास्तन्नरा नूतने वत्सरे ते भवेन्मङ्गलम् ।।[४]

शस्त्रास्त्रों का लक्ष्य आतति से त्राण है, न कि निरीह जनता का दमन ।
इस तथ्य को वे संसार के समक्ष उद्घोषित करते हुए लिखते हैं-

"आर्तरक्षार्थमस्त्राणि शस्त्राणि वै, नैव सन्तु प्रहर्तुं तथानागसि ।"[५]

पारस्परिक द्वेषभावना फैलाने वालों के प्रति भी अपनी औदात्तिक मङ्गलमयी काव्यधारा का प्रयोग करते हुए कविपुङ्गव कामना करते हैं-

येषु चित्तेषु दावानलो भीषणो द्वेषभावस्य जागर्ति धूधूत्करः ।
जागृयात्तेषु वासन्तिकी श्रीः शुभा नूतने वत्सरे ते भवेन्मङ्गलम् ।।[६]

डॉ0 शुक्ल के मत में आध्यात्मिक उन्नति के साथ भौतिक उन्नति भी आवश्यक है-अत एव वे भारतीय जनता की चतुर्दिक् उन्नति की कामना करते हुए आधुनिक उपलब्धियों का भी आश्रय लेने पर बल देते हैं । इसी प्रकार, अणुशक्ति का उपयोग विध्वंसात्मक कार्यों के लिए न होकर रचनात्मक एवं शान्तिपूर्ण कार्यों के लिए हो,तभी विश्वशान्ति स्थापित हो सकती है-इस सन्देश के साथ डॉ0 शुक्ल यह भी कामना करते हैं कि वैज्ञानिक उपलब्धियों तथा भौतिक उन्नति के पीछे भागते हुए पाश्चात्त्य जगत् की तरह जीवन का आनन्द ही समाप्त न हो जाये; जीवन में शुष्कता न समा जाये-

अण्वस्त्रनिर्मितिर्नो कठिना मम कृते, तथापि न तामीहे ।
वास्तविकी हेतिरहिंसा मे, निर्भीका भारतजनताहम् ।।
संगणकयन्त्रजालोऽपि मेऽस्तु भौतिक्युन्नतिरपि मे तथास्तु ।
जीवनरसश्च मा शुष्को भूदितिकामा भारतजनताहम् ।।[७]

भारतभूमि को शरीरवत् मानते हुए उस के किसी भी एक अङ्ग में अशान्ति होने पर जो मानसिक अरुन्तुद वेदना होती है, उस की अनुभूति करते हुए डॉ0 शुक्ल की लेखनी सजीव होकर क्रन्दन करते हुए कह उठती है-

यदि पादेऽस्य कदापि निविशते कण्टकम्
निखिलतनौ पीडनं भवति मर्मान्तकम् ।
यदि वेदना शिरसि समुदेति तदा ध्रुवम्
व्यथते सकलतनौ मे निखिलं भारतम् ।[८]

विश्व में कहीं पर भी जब प्रजातन्त्र का गला दबाया जाता है अथवा प्रजा की उचित अभ्यर्थना के प्रति नेता मूक रहते हैं तब भारत की जनता अपनी उदात्त दृष्टि से उसे आप्लावित करती हुई उस के साथ होती है-

क्वापि पतति संकटे प्रजातन्त्रं यदा
अवरुद्ध्यते जनानां कण्ठो वा यदा ।

सर्वातङ्कभयाशङ्काः परिहृत्य वै
गर्जति, सकलं समुज्ज्वलं मे भारतम् ।[९]

वर्तमानकालिक सत्तालोलुप, जनता के कष्टों के प्रति सर्वथा सहानुभूति शून्य परन्तु मगरमच्छ की तरह आँसू बहाने वाले नेताओं को अपनी क्रान्तदर्शी दृष्टि से डॉ0 शुक्ल, महर्षि वेदव्यास की भाँति फटकारते हुए, प्रतिबोधनार्थ चेतावनी देते हुए लिखते हैं-

किं कुरुथ किं वा करिष्यथ, वदत नेतारो मनाक् ।
किं मनसि वो वर्तते भो भणत नेतारो मनाक् ।।
पादयोः प्रणिपत्य धोणाघर्षणं कृत्वा मुहुः ।
याचितं यन्मे मतं तस्यादरं रक्षत मनाक् ।।
शासनासन्दीमवाप्य व्रजत नो गर्वं क्षणम् ।
आगते विपरीतकाले कोऽपि रक्षति किं मनाक् ।।
उपचिताः खलु यैर्भवन्तस्ते भवद्भिर्लुण्ठिताः ।
रे प्रजातन्त्रस्य हन्तारो बिभिथ लोकान्मनाक् ।।
यातु देशो ह्यन्धकूपे रक्षितं स्यान्मे मतम् ।
इति विचारपरम्परां स्वां त्यजत नेतारो मनाक् ।[१०]

देशवासियों की दुर्दशा को देखकर कवि का मन रो उठता है-

नाशितं जनजीवनं पितृसद्मतां नीताः पुरः ।
कारिताः शालाश्च काराः किं न लज्जध्वे मनाक् ।।
यद्यदाचरथ स्वदेशीये जनेऽत्र प्रत्यहम् ।
किं तदाचरितं कदाचिदांग्लकुटिलैरपि मनाक् ।।
स्फोटयथ शासथ नियमतः खण्डयथ राष्ट्रैकताम् ।
व्रजथ कुह वा व्रजिष्यथ वदत नेतारो मनाक् ।[११]

इन नेताओं को अपनी राष्ट्रभूमि की महत्ता का परिचय कराते हुए डॉ० शुक्ल अनेक कवियों के द्वारा गीयमान भारत की उज्ज्वल गरिमा की रक्षा करने के लिए जगाते हुए लिखते हैं-

यस्य रक्षार्थं भटा उत्साहिनः खे भुवि जले ।
यूयमपि तद्देशरक्षार्थं कुरुत यत्नान् मनाक् ।।
नैककविभिर्नवपुराणैर्यस्य महिमा गीयते ।
भारतं तत्किं न रक्षथ वदत नेतारो मनाक् ।[१२]

१९८७ में इस शताब्दी के भीषणतम सूखे के कारण जो त्राहि-त्राहि मच गयी थी-कवि का कोमल हृदय उस से प्रभावित होकर मेघ को प्रतिबोधित कराता हुआ पुकारता है-

क्रूरहृदय मेघ! कथं सुप्यते त्वया ?
गर्ज्यते न तर्ज्यते न वृष्यते त्वया ।।
प्रथमे ह्याषाढदिने दृष्टो न त्वम्
श्रावणेऽथ भाद्रपदे वृष्टो न त्वम् ।
कार्यनिहसि वद क्व खेल्यते त्वया ?
आतपनिःश्वासान् हा धरा मोमुचीति
रारटीति चातकः पिकश्च रोरुदीति ।
क्रन्दनं निशम्य मौनमास्यते त्वया !
स्वनियोगमशून्यं कुरु वर्ष सत्वरम् ।

* * *

अल्पय दारुणविपदं जीवखेदिनीम् ।
तर्पय धारासारैस्तप्तमेदिनीम् ।।[१३]

करुणार्द्रहृदय कवि की पुकार को मेघ भी अनदेखा न कर सका तथा उपर्युक्त कविता की रचना के तुरन्त बाद ही जबलपुर में वर्षा ने धरती की प्यास बुझाई । यह कवि की सर्वजनसंवेद्यता का ही परिणाम था कि प्रकृति भी सरस्वती के वरद पुत्र के अनुरोध को टाल न सकी ।

यदि डॉ0 शुक्ल का भावुक हृदय अनावृष्टि से दुःखित है तो असमय वृष्टि से भी उतने ही दुःखित होकर अपनी उदात्त दृष्टि से मेघ को भी चेतनवत् कर उसे शिक्षा देते हुए लिखते हैं-

अकालजलद! त्वया किमिति निन्द्यमाचर्यते ?

कृषीवलपरिश्रमः कथमहो त्वया नाश्यते ।

निपात्य करकाचयं परिणतेषु सस्येषु हा
त्वया किमिति तुद्यते वद पयोद ! पृथ्वीमनः ?

* * *

श्रमेण परिपालिता कृषिलता त्वया मर्दिता ।
धिगस्तु तव जीवनं ! चरति यद्भवे वैशसम् ।।
यथासमयमस्तु ते जलद ! गर्जनं वर्षणम्
यथासमयमस्तु ते समुदयस्तथा विश्रमः ।
जगज्जनसुरञ्जनो भव न वै जगत्त्रासकः
परोपकरणव्रतं वृणु पयोद ! कल्याणदम् ।।[१४]

वैदिक कवि की भाँति वे राष्ट्र देवता की स्तुति करते हुए जनता के कष्टों से द्रवित होकर कह उठते हैं-

उग्रताविहिंसनोत्थचीत्कृतीः शृणोमि चेत्
राष्ट्रदेवते कथं नु कीर्तनं करोमि ते!
यावदाननानि हर्षफुल्लतां न चाप्नुयुः
ब्रूहि देवते सुमार्पणं कथं करोमि ते ।।[१५]

डॉ0 शुक्ल के विचार में भावनात्मक सौमनस्य के आधार पर ही राष्ट्र की उन्नति हो सकती है-सौमनस्यसूत्रगुम्फिता न चेत्स्थिता जनाः । राष्ट्रदेवते कथं सुमाल्यमर्पयामि ते[१६] । परदुःखकातर डॉ0 शुक्ल अपनी उदात्तमयी दृष्टि में इस धरा को हत्या-बलात्कार-हिंसा से शून्य देखने की कामना करते हैं तथा उन की सदैव यही प्रार्थना है कि इस प्रकार के कष्ट दूर हों-

यदा यदा शृणोम्यहं वधूविदाहपातकम्
यदा यदा शृणोम्यहं बलात्कृतिं विहिंसनम्
तदा तदा भवाम्यरुन्तुदव्यथाप्रपीडिता
इयं व्यथा प्रणाशमेतु येन, तद्विधीयताम् ।।[१७]

डॉ0 रमाकान्त शुक्ल की कविता-भागीरथी में अवगाहन से स्पष्ट अनुभूत होता है कि वे यद्यपि राष्ट्र की दयनीय दशा से दुःखित हैं, परन्तु उन का स्पष्ट मत है कि समस्याओं का समाधान क्रन्दन से नहीं होता, उस के निवारणार्थ तो कर्म करना ही एकमात्र हल है । 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' के मन्त्र का ही सिंहनाद करते हुए वे जनता को सन्देश देते हैं-

कीर्तनेनैव वा क्रन्दनेनैव वा
लोपमेष्यन्ति दोषा न देशस्य वै ।
तेन सर्वैः क्रियन्तां सदा सुक्रियाः
येन भातु प्रसन्नं सदा भारतम् ।।
देशसेवां मिलित्वा कुरुध्वं समे
येन भूयोऽपि भासेत नो भारतम् ।।[१८]

यह संसार फूलों की सेज नहीं, अपितु कर्मभूमि है । अत एव संघर्ष ही जीवन है-इसी शाश्वत् सत्य को लिपिबद्ध करते हुए कविकुलमूर्धन्य डॉ० शुक्ल लिखते हैं **द्वन्द एव जीवनम्**[१९] परन्तु इस द्वन्द्व में रह कर हमें निराश नहीं होना है- **आशां वृणुते नैव निराशां भारतम्**[२०] । वस्तुतः यही सम्बल है जिस ने भारत की जनता को विषम परिस्थितियों में भी स्वाभिमानपूर्वक रहने की प्रेरणा दी है ।

जिस प्रकार कालिदास का मेघदूत' राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है, उसी प्रकार वर्तमान काल में डॉ० शुक्ल की 'भाति मे भारतम्' पद्यमाला भारत की एकता का पर्याय है । डॉ० शुक्ल भूतकाल को ही स्वर्णयुग नहीं मानते, उनकी दृष्टि में भारत आज भी सोने की चिड़िया है । वे भारत को उन निराशावादियों की दृष्टि से नहीं देखते जो केवल विगत की प्रशंसा में ही झूम कर वर्तमान की उपेक्षा करते हैं । डॉ० शुक्ल को भारत के कोने-कोने में व्याप्त विभिन्न प्रकार के कारखानों, विद्युदुत्पादनसंयंत्रों, प्राकृतिक तथा नूतनविज्ञानोत्पन्न संसाधनों पर गर्व है । **'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'** की अथर्ववेदीय भावना के समुपासक डॉ० शुक्ल को एक सच्चे सुपुत्र की भाँति इस राष्ट्र पर गर्व है, क्योंकि यही एकमात्र ऐसा राष्ट्र है, जिसने विश्वबन्धुत्व तथा विश्व को कुटुम्बवत् व्यवहार करने की उदारतामयी शिक्षा दी है तथा जो आज भी परमाणु युद्ध की विभीषिका से ग्रस्त इस संसार में शान्ति स्थापित करने का मूल मन्त्र है-

विश्वबन्धुत्वमुद्घोषयत्पावनं
विश्ववन्द्यैश्चरित्रैर्जगत्पावयत् ।
विश्वमेकं कुटुम्बं समालोकयद्
भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।।[२१]
भाखडाबन्धदामोदरीयोजना-
[illegible]र्जितम् ।

ब्रह्मपुत्रादिसन्दर्शिताम्बुच्छटं

भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।।[२२]

विद्युदुत्पादने तैलसंशोधने

इन्धनान्वेषणे लौहनिष्पादने ।

यन्त्रनिर्माणकार्ये समर्थं च सद्

भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।।[२३]

आर्यभट्टं वियन्मण्डले स्थापयत्

पोखरणभूमिगर्भेऽणुशक्तिं किरत् ।

शान्तिकार्येष्वणुं प्रेरयत्सन्ततं

भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।।[२४]

इस प्रकार वैज्ञानिक उपलब्धियों पर गर्व करने वाले डॉ० शुक्ल की कृतियों से एक अन्य तथ्य भी सामने आता है और वह है कि जो हमारे प्रेम एवं स्नेह का पात्र होता है-उस के दोष नहीं-अपितु गुण ही देखे जाते हैं । इसी भावना से वशीभूत होकर डॉ० शुक्ल को स्वदेश में कोई दोष दृष्टिगोचर नहीं होता जो कि उनकी उदात्त दृष्टि का पूर्ण परिचायक है-

सन्तु दोषा अनेकेऽत्र कैश्चिन्मताः

किन्तु नाहं प्रपश्यामि तान् मन्दधीः ।

वन्दनीयं मया, कीर्तनीयं मया

मोदतां वर्धतां राजताम् भारतम् ।।[२५]

डॉ० शुक्ल की उदात्त दृष्टि में दीपावली का प्रकाश केवल अन्धकार को दूर नहीं करता, अपितु जिस अन्धकार का वस्तुतः विनाश हो वह है दुःख तथा दरिद्रता, जनता के हृदय में बैठा हुआ नैराश्यरूपी अन्धकार । इसी को दूर करने की प्रार्थना करते हुए वे लिखते हैं-

दुःखदारिद्र्यरोगप्रवृद्धं तमो नैव दृश्येत भूमौ कुहापि प्रभो ।

सन्तु सर्वत्र सर्वे सदा नन्दिता राजतां दीपमालेयमालोकिनी ।

अन्धकारं निराशाप्रसूतं दृढं ध्वंसयेद् दीपमालेयमालोकिनी ।।२६

इस प्रकार डा० रमाकान्त शुक्ल की काव्यधारा का आस्वादन करने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उन का स्वर आशावाद एवं उदात्तभावना से परिपूर्ण है । वे हमारे समक्ष प्रतिदिन की समस्याओं को रखते हुए उनके परिहारार्थ परिश्रममार्ग का आश्रय

कर कर्म करने की प्रेरणा देते हैं । प्रत्येक कविता में वे किसी न किसी आदर्श की स्थापना करते हैं जो कि विभिन्न उपनिषदों, पुराणों तथा साहित्यरूपी सागर के मन्थन से उद्भूत सुधा की भाँति हृदय को आवर्जित करने वाला होता है । डॉ0 शुक्ल की कविता प्राचीन कवियों की भाँति श्रृंगारपरक न होकर यथार्थ का चित्रण करा कर जीवनलक्ष्य क्री प्राप्ति में सहायक सद्गुणों का सञ्चार करती है । बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न ऐसे विश्ववन्द्य कवि संसार में विरल ही होते हैं । उन की लेखनी से प्रसृत सुमन न केवल भारतीय जन-मानस को उदार दृष्टिकोण अपनाने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं, अपि तु विश्वशान्ति की स्थापना की दिशा में उनका साहित्य बहुत अधिक मात्रा में सहायक सिद्ध होगा क्योंकि **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** का आधार उदार दृष्टि है, जो कि उन के साहित्य में पदे-पदे भागीरथीप्रवाहवत् अबाध गति से प्रसृत हो रही है ।।

---

१. नेहरुं तं स्मरामो वयं सादरम्-अर्वाचीनसंस्कृतम्, १५.१.८९

२. उत्तरमङ्गलम्-अर्वाचीनसंस्कृतम्, १५.१.९०

३. उत्तरमङ्गलम्-अर्वाचीनसंस्कृतम् १५.१.९०

४. उत्तरमङ्गलम्

५. तुलनीय : आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि (अभिज्ञानशाकुन्तलम्, १/११)।

६. उत्तरमङ्गलम्

७. भारतजनताहम्-अर्वाचीनसंस्कृतम् १५.७.८६

८. एकं सद् बहुधा विलोक्यते भारतम्-अर्वाचीनसंस्कृतम् १५.४.८९

९. एकं सद् बहुधा विलोक्यते भारतम्-अर्वाचीनसंस्कृतम् १५.४.८९

१०. ३३ वें कालिदाससमारोह(१९९०) उज्जयिनी में २.११.१९९० को अखिलभारतीयसंस्कृतकविसमवाय में डॉ0 शुक्ल द्वारा पठित तथा अर्वाचीनसंस्कृतम् (१२/४) ७.११.१९९० में प्रकाशित 'वदत नेतारो मनाक्' कविता से उद्धृत ।

११. पूर्वोक्त

१२. पूर्वोक्त

१३. मेघप्रबोधनम्-अर्वाचीनसंस्कृतम्-१५. १० .१९८७



१४. अकालजलद-अर्वाचीनसंस्कृतम्, १५.४.८८

१५. राष्ट्रदेवते-अर्वाचीनसंस्कृतम्, १५.१.८६

१६. पूर्वोक्त,

१७. अहं स्वतन्त्रता भणामि-अर्वाचीनसंस्कृतम् १५.१.८७

१८. रौति ते भारतम्-अर्वाचीनसंस्कृतम्, १५.१.८७

१९. स्वागतं पयोद ते-अर्वाचीनसंस्कृतम् १५.७.८८

२०. एकं सद् बहुधा विलोक्यते भारतम्-अर्वाचीनसंस्कृतम् १५.४.१९८९

२१. भाति मे भारतम्, श्लोक संख्या १

२२. भाति मे भारतम्, श्लोक संख्या ११

२३. भाति मे भारतम्, श्लोक संख्या १२

२४. भाति मे भारतम्, श्लोक संख्या १४

२५. भाति मे भारतम्, श्लोक संख्या १०७

२६. आलोकिनी (ध्वनिनाटकम्)-अर्वाचीनसंस्कृतम्, १५.७.८९

# डॉ० रमाकान्त शुक्ल की कविता में राष्ट्रीयता के स्वर

आचार्य गणपति शुक्ल

भारतीय काव्यशास्त्र में कविता के विविध उद्देश्य हैं। स्वान्तःसुख, यश, धन, लोकमङ्गल तथा मनोहारि वचनों से जन-जागृति आदि। देश काल की परिस्थिति के अनुसार ये उद्देश्य समय समय पर अपनी प्रमुखता पाते रहे। आदिकवि वाल्मीकि ने रामायण में हिंसा और अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाकर लोकमर्यादा की स्थापना में काव्य को प्रतिष्ठित किया **(मा निषाद प्रतिष्ठां त्वम0)**। महाभारतकार वेदव्यास ने राजसत्ता प्राप्ति हेतु आपसी कलह, हिंसा और प्रतिशोध का विरोध कर निःस्वार्थ कर्तव्य कर्म करने की बात कही ''**कर्मण्येवाधिकारस्ते**''। स्वान्तःसुख के लिए रस, छन्द, अलंकार से सजी भारवि, हर्ष, भट्टि और माघ की कलात्मक रचनायें भी निर्मित हुईं। फिर भी वाल्मीकि से आज तक के कवि लोक जीवन से जुड़े रहे और लोककल्याण के लिए स्व-पर की भावना से ऊपर उठकर ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' के सन्देशवाहक रहे।

बीसवीं शती में विदेशी दासता एवं संस्कृति के विरुद्ध स्वदेशी संस्कृति तथा स्वतन्त्रता का पावन सन्देश सुनाने वालों में लोकमान्य तिलक, पं0 मदन मोहन मालवीय, स्वामी दयानन्द, श्रीमती क्षमाराव, स्वामी भगवदाचार्य, अम्बिकादत्त व्यास तथा पाण्डुरङ्ग शास्त्री प्रमुख रहे जिन्होंने भारत में राष्ट्रीय विचारधारा प्रवाहित कर जन जागृति की। संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध कवि तथा समालोचक डॉ0 वे0 राघवन लिखते हैं-

''देश के सार्वजनिक जीवन में जो नये सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलन होते रहे थे उन्होंने संस्कृत के लेखकों पर अपना प्रभाव डाला और इस प्रकार से संस्कृतज्ञों ने नये रूप में जो साहित्य पैदा किया, उसमें संस्कृत पूरी तरह जीवित दिखाई दी।'' (आजका भारतीय साहित्य पृष्ठ ९२५)

स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत कविता में १९८१ से १९९० तक भारतीय राष्ट्र की एकता, अखण्डता, ज्ञानविज्ञान का विकास और आर्थिक समृद्धि हेतु जो प्रयत्न होते रहे उन पर संस्कृत के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् कवि डॉ0 रमाकान्त शुक्ल ने अपने साथी कवियों सहित अर्वाचीनसंस्कृतम् पत्रिका, कविसम्मेलन, आकाशवाणी तथा दूरदर्शन

के माध्यम से राष्ट्रकल्याणकारी साहित्य का प्रचार प्रसार किया। प्रस्तुत लेख इन्हीं विशेषताओं पर आधारित हैं।

किसी भी राष्ट्र का निर्माण और उसका साहित्य भूमि, जन और संस्कृति पर आधारित है; ये तीन राष्ट्र के निर्माता हैं। भूमि माता है और जन उसका पुत्र। पुत्र माता के प्रति जितना सेवाभावी, कर्मठ और ईमानदार रहेगा, माता उतनी ही पुत्र के लिए वरदायिनी रहेगी। संस्कृति जनके सत् विचार और सत्कृति से विकसित प्रफुल्लित पुष्प है। संस्कृति ही राष्ट्र का गौरव बढ़ाती है और राष्ट्र को जिन्दा रखती है। राष्ट्रीय कवि इन तीनों तत्त्वों का चिन्तन मनन कर कविता सृजन करता है।

**जय भारतभूमे !** डा शुक्ल रचित मातृभूमि महिमा का गायक काव्यसंग्रह है जो सन् १९८१ में प्रकाशित हुआ। इसमें ७ कवितायें संकलित हैं। मातृभूमिवन्दना करते हुए कवि भारत देश के प्रशंसनीय गुणों का भी उल्लेख करते हैं-

प्रणम्यः प्रणम्यः सदा यः स्वदेशः
सदा कीर्तनीयः सदा वन्दनीयः।
सदा वर्धताम् मोदतां राजतां यो
भजेऽहं मुदा भारतं तं स्वदेशम्॥
कुटुम्बं धरित्री दया यस्य मित्रम्
असत्यञ्च शत्रुः समस्तेऽपि लोके।
मनुष्यत्वसेवा यदीयोऽस्ति धर्मः
भजे तं मुदा भारतं दिव्यदेशम्॥

**भाति मे भारतम्** कवि की प्रसिद्ध लोकप्रिय राष्ट्रीय विचारों से ओतप्रोत कविता है जो प्रान्तीय शासनों के शिक्षाविभागीय पाठ्यक्रम में निर्धारित है। आकाशवाणी और दूरदर्शन से सचित्र प्रसारित भी हुई है। इसमें भारत की विश्वबन्धुता, ताटस्थ्यनीति तथा वैज्ञानिक विकास का स्वागत किया गया है। अनेकता में एकता की प्रतीक राष्ट्रभाषा हिन्दी, सर्वधर्म समभाव के प्रतीक मन्दिर-मस्जिद-गुरुद्वारों का उल्लेख किया गया है।

यत्र सत्यं शिवं सुन्दरं राजते
रामराज्यञ्च यत्राभवत् पावनम्।
यस्य ताटस्थनीतिः प्रसिद्धिं गता
भूतले भाति तन्मामकं भारतम्॥

मन्दिरैर्मस्जिदैश्चैत्यगिर्जागृहै-

रार्यगेहैर्गुरुद्वारकैर्भ्राजितम् ।।

कर्मभूः शर्मभूर्धर्मभूर्मर्मभूः

भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।

पापसंहारिणी जनमङ्गलकारिणी गंगा तथा चारुसञ्चारिणी गोदावरी नदी का वर्णन बहुत सुन्दर हुआ है । मातृभूमि को आजाद कराने वाले भगतसिंह का स्मरण कर कवि अपने को उपकृत मानते हैं । इस कविता पर हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ मूर्धन्य समालोचक डा0 नगेन्द्र का कथन कितनी सार्थकता रखता है-

''देश की प्राचीनतम भाषा में आधुनिक भारत का यह गौरवगान अपने आप में एक चमत्कार है । इससे जहाँ एक ओर देववाणी का प्रसार हो रहा है वहाँ भारत के वैभव के गीत जनमानस में गूँजने लगे हैं । इस अनूठे प्रशस्तिकाव्य के रचयिता निश्चय ही साधुवाद के पात्र हैं ।''

मातृभूमिगौरवगान के साथ ही भारतीय जनता के लिए सुख-समृद्धि तथा समान प्रगति की कवि कामना करते हैं-

शोषितो नात्र कश्चिद् भवेत् केनचित्

व्याधिना पीडितो नो भवेत् कश्चन ।

नात्र कोऽपि व्रजेत् दीनताम् हीनताम्

मोदताम् मे सदा पावनं भारतम् ।।

**रौति ते भारतम्-** कविता का सृजन देश की दुःस्थिति से उत्पन्न दुःख के कारण करुणाप्लावित होकर कवि ने किया है । श्रमिकों का सड़कों पर शयन, धर्म की ओट में मनमानी, रूप और देहका विक्रय, नेतृवर्ग की लोभप्रवृत्ति, देश की एकता खण्डित होना, कृषकों को भी अन्न वस्त्र दुर्लभ होना प्रगतिशील राष्ट्र के लिए चिन्तनीय एवं शोचनीय है ।

कर्षकेभ्यो यदान्नं भवेद् दुर्लभं

कार्मिकेभ्यश्च गेहं यदा दुर्लभम् ।

वस्त्रकृद्भ्यश्च वस्त्रं यदा दुर्लभम्

तर्हि नूनं हहा ! रौति ते भारतम् ।।

कर्गले राष्ट्रभाषाऽस्ति नो भाषणे

संस्कृतं स्तूयते नैव तत्सेव्यते ।

स्वीयपादे कुठारः स्वयं पात्यते,

वीक्ष्य सर्वं ध्रुवं रौति ते भारतम् ।।

कवि ने देश की अच्छाई का ''भाति मे भारतम्'' में वर्णन किया वहीं देश की बुराई को चित्रित करने में भी कवि संकोचशील नहीं हुआ । कवि केवल प्रशस्तिवादी नहीं है, वह यथार्थ स्थिति का भी सशक्त शब्दों में वर्णन करता है।

**''अहम् स्वतन्त्रता भणामि''** कवि का क्रान्तिकारी प्रेरणादायक राष्ट्रीय गीत है । जो सन् १९८३ में लिखित तथा जनवरी १९८७ में आकाशवाणी केन्द्र द्वारा हिन्दी अनुवाद सहित प्रसारित हुआ है । स्वतन्त्रता उन वीर पुत्रों का स्मरण कराती है जिन्होंने दासता समाप्ति के लिए अपने शीश तथा परिवार की परवाह् नहीं की ; लाठियाँ खायीं, गोलियाँ खायीं और अपने प्राणों को देश के लिए न्योछावर कर दिया। आज उन्हीं वीरों के त्याग से खुशी के दिन देखने को मिले हैं । इसे चिरस्थायी बनाना है-

भवद्भिरद्य दृश्यते यथार्थिकी समुन्नतिः

भवद्भिरद्य दृश्यते नवा च या विनिर्मितिः ।।

भवद्भिरद्य यः स्वतन्त्रतारसो निपीयते

तदेतदात्मजीवने चिरं चिराय धार्यताम् ।।

अहम् स्वतन्त्रता भणामि ।।

स्वतन्त्रता के मन की स्थिति कवि बतलाते हैं कि उसने यह कभी नहीं सोचा कि दुर्बलों का शोषण तथा सज्जनों का अपमान स्थान-स्थान पर होगा । देश में नीतिहीनता तथा वृत्तिहीनता (बेरोज़गारी) फैलेगी और लज्जा से उसे मस्तक झुकाना पड़ेगा । जगह जगह वधुएँ जलाई जा रही हैं । बलात्कार, हिंसा और अपहरण को देखकर मेरा हृदय दुःखित हो उठता है । इसे समाप्त करना चाहिए-

यदा यदा श्रृणोम्यहं वधूविदाहपातकम्

यदा यदा श्रृणोम्यहं बलात्कृतिं विहिंसनम् ।

तदा तदा भवाम्यरुन्तुदव्यथाप्रपीडिता

इयं व्यथा प्रणाशमेतु येन तद् विधीयताम् ।।

स्वतन्त्रता पुनश्च कहती है कि अपने ही देशवासियों द्वारा स्वदेशी जनों की हिंसा करना, अलगाव की स्थिति पैदा करना, देश को खण्डित करना, ज्ञान का व्यवसायीकरण, करों की अधिकता से जनता का बोझिल होना मेरे हृदय को विदीर्ण करता है । देश में जल दुर्लभ है किन्तु मदिरा स्थान स्थान पर सुलभ है । वचन है पर क्रिया नहीं है; आपसी भेदभावना बढ़ रही है; यह दूर होना चाहिए-

जलं न लभ्यते तथा यथा सुरा पदे पदे
वचांसि सन्ति भूरिशो नहि क्रियाः पदे पदे ।
पुनश्च भेदभावना प्रवर्त्यते पदे पदे
इयं दशा समर्थनं किमर्हतीति चिन्त्यताम्
अहं स्वतन्त्रता भणामि ।।

सोलह पद्यों में रचित यह कविता सहृदय व्यक्ति के मन को झंकृत कर देती है । उसे देश के प्रति सोचने समझने के लिए क्रान्तिकारी सन्देश देती है । कवि भी इस स्थिति सें दुःखित हो उठता है । पर इस कष्ट का निवेदन करे तो किस से ?

**राष्ट्रदेवते** कविता में अपने आराध्य राष्ट्रदेवता के प्रति सक्रोध निवेदन करते हैं- 'मैं आपका पूजन अर्चन और कीर्तन कैसे कर सकता हूँ क्योंकि उग्रवादियों द्वारा की गयी हिंसा से उत्पन्न चीत्कारें मैं सुन रहा हूँ-

राष्ट्रदेवते ! कथं नु पूजनं करोमि ते ?
ब्रूहि देवते ! समर्चनं कथं करोमि ते ?
उग्रताविहिंसनोत्थचीत्कृतीः शृणोमि चेत्
राष्ट्रदेवते ! कथं नु कीर्तनं करोमि ते ।।

पूजन की विविध सामग्री अर्पित न किये जा सकने के कारण कवि ने युक्त तर्क दिये हैं-

जब तक मनुष्यों के मुख हर्ष प्रफुल्लित न हों
तब तक पुष्प कैसे चढ़ाऊँ ?
जहाँ भ्रष्टाचार की कालिमा से लोग लिप्त हों
चन्दन कैसे लगाऊँ ?
जहाँ के रास्ते गन्दगी से पूर्ण हों तो सुगन्ध कैसे समर्पित करूँ ?
लोगों के हृदय जब तक प्रेम सूत्र से न बँधे हुए हों
तो हार कैसे अर्पण करूँ ?
पीने का पानी जन-जन को सुलभ न हो
आपको स्नान कैसे कराऊँ ?
प्रतिदिन बहुओं की जलने की चीत्कार सुन रहा हूँ

इस स्थिति में स्तोत्र पाठ कैसे करूँ ?

द्वेष उत्पन्न करने वाली आँधी जब तक शान्त न हो

दीपक कैसे जलाऊँ ?

एक भी आदमी भूखा रहता है तो आपको नैवेद्य कैसे लगाऊँ ?

सम्पत्ति देश की बढ़ी है किन्तु जब तक गरीबों को नहीं मिलती

दक्षिणा कैसे दूँ ?

कवि क्षमायाचना करते हैं कि मैं तुम्हें मधुर मिठाई तो 'भाति मे भारतम्' के माध्यम से पहले ही समर्पित कर चुका हूँ यहाँ जो कुछ कटुवचन कह गया हूँ, राष्ट्रदेवते ! उन्हें क्षमा करना ।

कवि आशावादी है, कर्मठ है, अपने ज्ञान और भुज बल पर आत्मविश्वासी है। देश में राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक क्रान्तियाँ होती रहती हैं किन्तु मनुष्य धैर्य बनाये रखें, मनोबल टूटने न दें । रोने गाने से क्या होता है । सभी को एकचित्त होकर पारस्परिक सहयोग से राष्ट्रकल्याणकारी कार्यों को पूर्ण करना चाहिए । हमारे नेता लोभी न हों और प्रजा भी अपना विवेक न छोड़े-

कीर्तनेनैव वा क्रन्दनेनैव वा

लोपमेष्यन्ति दोषा न देशस्य वै ।

तेन सर्वैः क्रियन्तां सदा सुक्रियाः

येन भातु प्रसन्नं सदा भारतम्।।

वर्तमान युग में संस्कृत काव्यों में राष्ट्रीय विचारधारा के स्वर को प्रसारित करने में जिन कवि साथियों का पारस्परिक सहयोग मिला उनके नाम तथा कविता नाम देना अप्रासङ्गिक नहीं होगा-

डा० राजेन्द्र मिश्र 'प्रयाग' **'कीदृशी स्वतन्त्रता'** में लिखते हैं :

निर्दयं विरौम्यहं कोऽपि नो शृणोति मे

मामके हि भारते कीदृशी स्वतन्त्रता !

शोकतापजर्जरा द्रोहभारभङ्गुरा

अद्य दृश्यते न किं भारती वसुन्धरा ?

आचार्य श्रीनिवास रथ (उज्जैन) दीन जनों के कल्याण हेतु चिन्तन कर लिखते हैं-

येऽधुना निर्धना शून्यशून्येक्षणा भावि तेषां कथं सार्थकं जीवनम् ।

तत्कृते कर्म यत्सर्वधर्मामृतम् तत्र संपत्स्यते सर्वदेवार्चनम् ।।

दुर्बलाराधनं राष्ट्रसंवर्धनम् स्वीकृतं चेतसा यत्त्वया साम्प्रतम् ।
तेन रक्षाद्युना सर्वदेशोत्तमं रक्ष सर्वात्मना रक्ष तं भारतम् ।।

डा0 लीना रस्तोगी (नागपुर) अनीति जन्य अन्धकारपूर्ण राज्य की निन्दा करते हुए स्वच्छ प्रशासन की कामना करती हैं-

इह तमसां राज्ये अन्धीभवति चेतना ।
करणीयं किमिति न परिचलति कल्पना ।।
पाटवमिति यत्र धूर्तता हि संज्ञिता
शिष्टानामाचारश्चाटुकारिता
पाण्डित्यं केवलमिह दर्पजल्पना ।
इह तमसां राज्ये अन्धीभवति चेतना ।।

डा0 शुक्ल की भाति मौरीशसम्, उज्जयिनीयं जयति, जाबालिपुरं चल, नेहरुं तं स्मराम आदि कविताएँ' देश-भक्ति एवं विश्वमैत्री भावना को जागृत करती हैं । हिन्दी के महाप्राण कवि निराला की ''राम की शक्ति पूजा'' कविता कवि की प्रेरणा दायिनी कविता है जिसका संस्कृत नाट्यरूपान्तर ''पुरश्चरणकमलम्'' शीर्षक से किया गया है ।

बहुजनहिताय बहुजनसुखाय के सिद्धान्त को ध्यान में रखकर आपने अपनी संस्कृत कविताओं को सरस सुबोध रूप में ही प्रस्तुत किया है, भाषा प्रसादगुणमयी है, भाव स्वतः सुन्दर है इसे सजाने के लिए कवि को अलग से अलङ्कार पहनाने की आवश्यकता नहीं हुई-

''अनलङ्कृताऽपि कविवाक् रमणीया व्यंग्यसंगता भवति ।
निर्भूषणाऽपि रमणी राजति लावण्ययोगेन ।।''

संस्कृत को प्राचीन मृतभाषा मानने वाले जब दूरदर्शन पर कवि मुख से कवितायें सुनते हैं तो आश्चर्यान्वित होकर कहते हैं कि संस्कृत जीवित ही नहीं बल्कि इसमें लिखा जाने वाला साहित्य अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का भी है, जो अन्य भाषाओं को प्रेरणा देता है ।

संस्कृत के विकास एवं समृद्धि हेतु संस्कृत-जगत् डा0 रमाकान्त शुक्ल के प्रति बहुत आशान्वित है और उनके यशस्वी जीवन की कामना करता है ।

# Let Victory Be Yours Oh Devabhasha[1]

Dr. Rama Jha

1. Rich with Nigamas and Puranas,
   Made beautifull with gems of science
   The body sanctified with Vedangas
   Victory be thine Oh Devabhasha !

2. Resounding with Jayadev's dulcet lyrics
   And glory brought to you by Kalidasa
   Bustling with strains of laughter in Saumilla and Bhasa
   Victory be thine Oh Devabhasha !

3. Delving deep into the meaing of life
   Propagating Knowledge all over
   veloping the self of man to heights unscaled,
   Let victory be thine Oh Devabhasha !

4. Awakening the world
   By dispelling sorrsw
   And Destroying worries
   Let victoy be thine Oh Devabhasha. !

5. That, Education brings humility
   And,'Truth always wins'
   And reverberating with many more such sayings
   Let victory be thine oh Devabhasha !

---

1. Poetic transcreation of Dr. Rama kant Shukla's Sanskrit poem 'Surabharati vijayate'

6. The Ignoramus consider you dead.
But you embody immortality itself
A sense of immortality
Spreading your wings
Embracing many more
Let victory be thine Oh Devabhasha !

7. You gave the massage of Gita
Yet look so soft and delicate
Spreading light all over, always
Let victory be thine Oh Devabhasha !

# Freedom's Expectation[1]

Dr.S.P.Dixit.

I freedom, address here.
Mind and do, I say my dear.

(1) Those,sacrificed themselves,
Adored with body soul and wealth
Bore bullets on their chests bare
Are fit, for my adoration clear.

(2) For the space, you conquered,
And defeated ememies all the time,
Well arranged, participated too in ASIAD
Congratulations, conquer celestical sphere.

(3) Seeing gradually prospering day by day,
Making new constructions of the day
Enjoying fully the bliss of freedom
Bless you such selfreliance ever
Dont's fear.

(4) My wishes good, all you have
Since your progress and joys are my concern,
Modern affairs, make uneasy
So entreat you to tackle, swear.

---

1. Poetic transcreatioin of 'अहं स्वतन्त्रता भणामि' of Dr. Rama Kant Shukla

(5) Whenever I here murders
Or of Burnt grooms, or oppression
I feel perplexed ache and tear
Do some thing effective and save my teer.

(6) I neither liked exploiting the poor
Nor the satity of the wicked.
Nor the disgrace of the gentle
But Oh! that all I bear with tear.

(7) I see unemployment, whenever
And gross injustice, every where
I bent with shame and feel if died
Such things should not prervail, in any atmosphere.

(8) Live a few, having spoon golden
But many live and die in hunger
Riches flow to selected and poverty to many
Such disparity be turned to peer .

(9) Ruin of a nation, by my own nationalist
Feeding of disintegrity, of the people
And the unability of tax payers.
Can't see my anxiety, place these rear.

(10) Leaving a party and joining the other
Tyrant's suppression of the people
Slaughters in lances and germs of infection.
Make me penic avoid such snear.

(11) Demotion of able and promotion of disable
Flattery reigning for personal gain
If continues and survives in our India
How can I be strong, So be a seer.

(12) Troubles of generation I remember
Which makes me happy and see proud.
But seeing leaders desiring gains
My joys disappears, Oh! it is queer

(13) One may get wine not water here
Not a single action but hundred swear
See willing separation at every step
Admitting these say can I cheer ?

(14) Know nothing lacking,capital or labour
Get mines and minerals every where
But rise of mean and unreasonable thinking
Must be stopped Do you hear ?

(15) Let none be weak
None be poor
None disrespected none disunited
Let confidance develope in each and all
Let India prosper
Year to year.

# I AM THE PEOPLE OF INDIA[1]

## (भारतजनताऽहम्)

Dr. Rama Jha

[What follows is the translation of a beautiful tribute paid to the people of India in Devbhasha Sanskrit by a Delhi based noted modern Sanskrit poet Shri Ramakant Shukla. The rhapsody encompasses the complexity of the people of Indian Republic and expresses most poetically the contraries that Indian people have absorbed and the tenacity with which they hold on to the best of its centuries old tradition even as they march ahead with times.. -Editor]

Proud yet most humble,
I am the people of India,
Harder than the thunderbolt,
Softer than the flowers,
I am the people of India !

I am all over the world, for I consider
The whole world one family,
Love and dignity, I choose them both,
I am the people of India !

---

१. श्री रमाकान्तशुक्लप्रणीताया 'भारतजनताऽहम्' इत्येतस्या रचनायाः केषाञ्चित्पद्यानामाङ्गलभाषायां 'च्वाइस इण्डिया' - सम्पादिकया डॉ० रमा झा-महाभागया कृतः काव्यानुवादः ।

## I AM THE PEOPLE OF INDIA



I posses the treasure of Science and knowledge
Literature and music are my second self,
Bathed and made pious
In the nectar of its Spiritual spring
I am the people of India !

I am the country Which one considers
Paradise on earth,
After numerous sojourns abroad,
I am the ruler and ruled both
Simple and open,
I am the people of India !

Illusions and delusions I Know not,
Nowhere would you find the Janata
As patient I am,
I travelled all over and
Am visible every where,
Industriousness my key philosophy,
I am the people of India !

What Sacrifices haven't I made
In the worship of the goddess of freedom ?
And now for its protection
What all am I not bearing ?
This me, Yes this me,
The continuous labourer,
I am the people of India !

Manufacturing nuclear arms
Not any Impossibility for me,

But I desire it not,
My real armamant is
Non-violence,
Fearless,
I am the people of India !

I may opt for the Computer network,
Nor am I alergic to the material progress,
But desire I all the same
That the sap of life be not dried
Hoping this as always
I am the people of India !

Attack I no one
Tolerate I no Invasion
Never you confuse
My simplicity
With stupidity,
Heavily shielded
I am the people of India !

Squatting on the mouth of volcano,
To World made nervous
By the nuclear demon
Still preaching
The concept of peace
I am the people of India !

('Choice India' Vol. V. No. 1 January 1989 पत्रिकातः साभारम्)

# स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत महाकाव्य

डॉ0 रहस विहारी द्विवेदी

वैदिक काल से आज तक संस्कृत साहित्य सर्जन की अविरल धारा प्रवाहित है । अनेक राजनीतिक और सामाजिक व्याघातों को सहते हुए भी संस्कृत साहित्य सर्जक अपनी साधना से विरत नहीं हुए । राष्ट्र पारतन्त्र्य की अवधि में जो संस्कृत कवि लुक-छिप कर अपने प्रेरक उद्गारों से भारतीय जनता में राष्ट्रवादी भावना का संचार करते थे, वे देश को स्वतन्त्र देखकर हर्षाप्यायित हो उठे । उनके साहित्य में आनन्द का विशिष्ट निर्झर फूट पडा, कवियों की चिर प्रतीक्षित भावना साकार हो उठी । स्वतन्त्रता के स्वागत में अनेकविध साहित्य की सृष्टि आरम्भ हुई। स्वतन्त्रता के बाद संस्कृत साहित्य में प्रखर राष्ट्रीय भावना देखने को मिलती है । प्राचीन कथावस्तु पर आधारित कृतियों में भी अभिनव राष्ट्रीय चेतना का समावेश हुआ । स्वतन्त्रता संग्राम के यशस्वी व्यक्तियों को आधार बनाकर अधिकांश काव्यकृतियों का निर्माण हुआ । प्रायः सभी राष्ट्रनेताओं को काव्यनेता के रूप में प्रतिष्ठित करने का कवियों ने श्लाध्य प्रयास किया । स्वतन्त्रता के बाद शताधिक संस्कृत महाकाव्यों का प्रणयन हुआ । बीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही अंग्रेजी, बंगला, हिन्दी प्रभृति भाषाओं के सम्पर्क से लघुकथा (कहानी), कथा (उपन्यास), जीवनी, यात्रावृत्तान्त, पत्रलेखन, निबंध, प्रबंध, मुक्तक , मात्रिक छन्दों की तुकान्त कविता, संगीतिका आदि अभिनव विधाओं का द्रुतगति से विकास हुआ । इस अवधि में संस्कृत की पत्र पत्रिकाओं का भी प्रभूत विकास हुआ । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद संस्कृत के नवलेखन को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला । रेडियो रूपक, रेडियो वार्ता, दूरदर्शन रूपक, आकाशवाणी और दूरदर्शन के प्रसारण योग्य लघु कविताओं तथा गीतिकाओं का लेखन इस अवधि की अन्यतम उपलब्धि है । आधुनिक कार्यव्यस्त पाठकों के बीच साहित्य के लघु रूप अधिक प्रश्रय पाने लगे; इनके लेखन, प्रकाशन और प्रचार यथाशीघ्र हाने से इस ओर भी संस्कृत कवियों का झुकाव हुआ । फिर भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद संस्कृत की दीर्घकाय विधा महाकाव्य के लेखन की ओर कवियों की साधना सुखद आश्चर्य का विषय है । उपलब्ध संस्कृत साहित्य पर दृष्टिपात करते हुए यह कहना असत्य न होगा कि स्वतन्त्रता प्राप्ति से आज (१९९०) तक लिखे गये महाकाव्यों की जो संख्या है, इतनी ही अवधि में इतने महाकाव्य कभी नहीं लिखे गये । महाकाव्य लेखन का यह कीर्तिमान संस्कृत साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित किया जायेगा । इस युग में अन्य भाषाओं के कवियों की रुचि महाकाव्य-प्रणयन की ओर कम हो

गयी किन्तु संस्कृत के दृष्टि सम्पन्न प्रज्ञावान् कवियों ने अमित संरम्भ और धैर्य के साथ अनेकविध महाकाव्यों का प्रणयन किया । अनेक कवि समपेक्षित अर्थादि के अभाव से त्रस्त तथा तथाकथित आचार्यादि के पद पर नहीं रहे तथापि उनके द्वारा सधैर्य उत्तम महाकाव्यों की सृष्टि संस्कृत कवियों की कठिन साहित्य-साधना और आत्मविश्वास का महता कण्ठेन उद्घोष कर रही है ।

इस अवधि के महाकाव्यों की विषयवस्तु में वैविध्य दिखाई देता है । परम्परा प्राप्त रामायण, महाभारत से वस्तुग्रहण के साथ निकट भूत में उदात्त और यशस्वी जीवन व्यतीत करने वाले लोकविख्यात महापुरुषों- शिवाजी, झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई, लोकमान्य तिलक, मोहनदास कर्मचन्द गाँधी, सुभाषचन्द्र बोस, जवाहर लाल नेहरू, डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, महामना मदन मोहन मालवीय प्रभृति राष्ट्रस्वातन्त्र्य के महान् नेता, स्वामी विवेकानन्द, एकनाथ, योगिभक्त, ज्ञानानन्द प्रभृति सन्त महात्माओं, लेनिन आदि सामाजिक तथा आर्थिक क्रान्तिकारियों तथा राष्ट्र और समाज में अभिव्याप्त समस्याओं को महाकाव्य की विषय वस्तु के रूप में ग्रहण किया गया है । गंगा नदी तथा नर्मदा को प्रतीक पात्र के रूप में नायिका बनाकर महाकाव्य लिखने का सफल प्रयास किया गया है । संस्कृत के श्रेष्ठ विद्वान् और महान् साहित्येतिहास और समीक्षा लेखक आचार्य बलदेव उपाध्याय के जीवन पर आचार्य श्री निवास रथ महाकाव्य लिख रहें हैं जिसके कई सर्ग 'दूर्वा' में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हो चुके हैं । किसी जीवित व्यक्ति पर महाकाव्य लेखन की यह दूसरी घटना है; इसके पूर्व डॉ0 सत्यव्रत शास्त्री ने श्रीमती इन्दिरा गाँधी पर उसके जीवन काल में ही महाकाव्य लिखा था । इस अवधि में अन्य भाषाओं के कुछ संस्कृत महाकाव्यों को समपद्यीय संस्कृतानुवाद द्वारा प्रस्तुत किया गया है जिनमें हिन्दी के कामायनी, प्रियप्रवास, रामचरितमानस, कृष्णायन (अन्तिम सर्ग मात्र), अंग्रेजी के सावित्री, मलयालम् के केशवीयम् प्रभृति विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । ये रचनाएँ भी मूल रचना जैसी आह्लादक्षम हैं ।

स्वातन्त्र्योत्तर महाकाव्यकारों के प्राचीन रूढ उद्देश्य नहीं हैं । इनमें शासन, समाज या धर्म की दिशा में होने वाले अन्यायों के प्रति विरोधी स्वर हैं । प्राचीन अथवा मध्यकालीन शारीरिक चेतना (शृंङ्गारात्मक वर्णन) के स्थान पर मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय चेतना की तीव्र उद्भावना हुई है । राष्ट्रीय जीवन के साथ सामरस्य, महापुरुषों के प्रेरक व्यक्तित्त्वों का आकलन, प्राचीन प्रख्यात कथानकों का युगानुरूप संशोधन और संवर्धन, पूर्व कवियों द्वारा अस्पृष्ट विषयों का समावेश, शास्त्र की रूढ परम्पराओं और सामाजिक (वर्तमान जीवन के लिए) अनुपयोगी प्रथाओं का परित्याग, राष्ट्रीय एकता और चेतना को संबल प्रदान करने वाली भावनाओं की उद्भावना आदि इन महाकाव्यों का व्यावहारिक प्रयोजन है । इन राष्ट्रवादी स्वरों के साथ सहृदय हृदय संवेद्य-आह्लादकता और कान्तासम्मित

उपदेश का प्राचीन उद्देश्य भी सर्वथा सुरक्षित है । अपवाद के रूप में 'रुक्मिणीहरण महाकाव्य' (श्री काशीनाथ द्विवेदी प्रणीत) के प्रणेता का उद्देश्य प्राचीन काव्यशास्त्रीय मान्यताओं का अनुगमन कर उन दिगन्तविश्रुत कवियों से भी बढ चढ़कर वर्णन करना है । इस प्रकार इस अवधि के महाकाव्यकार प्राचीन शिल्प की सुरक्षा और संवर्धन दोनों ओर प्रवृत्त दिखाई देते हैं ।

स्वातन्त्र्योत्तर महाकाव्यों में कथावस्तु संबधी प्राचीन धारणाओं में अनेक परिवर्तन हुए हैं । आधुनिक बुद्धिवाद ने अनेक मान्यताओं को विखण्डित कर दिया। ज्ञान-विज्ञान के नवीन आलोक को कथानक की जीर्ण परम्पराएँ न सह सकीं । अधिकांश महाकाव्यों में कथाद्रव्य उस सीमा तक नहीं स्वीकार किया गया जिस सीमा तक उनकी आवश्यकता प्राचीन महाकाव्यों में मानी गयी थी । अनेक महाकाव्य ऐसे हैं जिनमें कथानक की मांसलता न रहकर विचारों, चिन्तनों और मनोवैज्ञानिक चित्रणों का प्राधान्य है । तर्जनी, भूभामिनीविभ्रमम् और लेलिनामृतम् प्रभृति महाकाव्यों में यह स्थिति विशेष रूप सें दिखाई देती है । इस अवधि के महाकाव्यकारों ने कथानकों के मार्मिक, राष्ट्र और समाज के लिए उपयोगी अंशों का चुनाव बड़ी सूझ-बूझ के साथ किया है । उदाहरणार्थ स्व0 प्रभुदत्त शास्त्री के 'गणपतिसंभवम्' में गणपति, साक्षात्कार देने वाले युवक, मातृभूमि के प्राणपण से रक्षक द्वारपाल, राष्ट्ररक्षक सैनिक, लिपिक, और राष्ट्रपति (गणपति) की भूमिका में प्रस्तुत किये गये हैं तथापि उनका देवत्व सुरक्षित रखा गया है । गङ्गासागरीयम्, रुक्मिणीहरणम्, सीताचरितम्, उर्मिलीयम्, जानकीजीवनम्, प्रभृति में साम्प्रतिक नारीजागरण की अभिव्यंजना हुई है । इन काव्यों में नारियाँ करुणा की मूर्ति न होकर पुरुषों के सदृश समाज में अपना व्यापक स्थान रखती हैं । अनेकत्र इन्हें प्रमुख पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है । देव पात्रों में मानवत्व और मानव पात्रों में देवत्व की प्रतिष्ठा कर उन्हें स्वाभाविक और उदात्त भावभूमि पर प्रस्तुत किया गया है । सीताचरितम् जानकीजीवनम् प्रभृति महाकाव्यों में प्रसिद्धतम कथानक को परिवर्तित कर आक्षेपग्रस्त स्थलों को छोड़ देने का प्रयास किया गया है । 'बलदेवचरितम्' में स्वतन्त्रता संग्राम तथा तत्कालीन शिक्षाव्यवस्थादि को नायक के जीवन से सम्पृक्त कर महाकाव्य के रचनाफलक को अभिव्यापक बनाने का प्रयास किया गया है ।

इस अवधि के महाकाव्यों में चातुर्वर्ण और आश्रम पर आधारित समाज की मध्यकालीन संस्कृत साहित्य की परिकल्पना से हटकर मानव मात्र के अखण्ड समाज की संकल्पना साकार हुई है । आजन्म समत्व समन्वित राष्ट्रसेवा तथा जनकल्याण की भावना सर्वत्र उद्भावित है । व्यष्टि रूप में धर्म का अनुपालन करते हुए भी राष्ट्रीय एकात्म भाव को महत्त्व दिया गया है । आज के राष्ट्रीय एकत्व की अभीप्सा के युग में इन महाकाव्यों का स्वर अत्यन्त उपयोगी है-

वर्णधर्मवचोवृत्ति-भेदवत्यपि यद्धृता ।
शैलादासिन्धुदेशेऽस्मिन्नेकभावा हि देहिन : ।।
विभिन्नधर्मवर्त्मानो विभिन्नाजीववर्तिन :।
विभिन्नाचारवन्तोऽपि नोद्वेगाय परस्परम् ।।

(क्षत्रपतिचरितम् १/३९,१९)

समाज के लिए बड़े से बड़ा त्याग अभिव्यक्त हुआ है। प्रायः सभी महाकाव्यों के मुख्य पात्र के चरित्र का यह वैशिष्ट्य आरेखित हुआ है । परिवार से समाज को अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है । परिवार अपने समाज और राष्ट्र के कल्याण के लिए अपने प्रिय से प्रिय सदस्य को अर्पित करने में परम सुख और शान्ति का अनुभव करता है। क्षत्रपतिचरितम् में महाकाव्यनायक शिवराज की माता जिजा कहती हैं-

मदेकपुत्रं नहि केवलं शिवं
परं महाराष्ट्रधरानभोमणिम् ।
सुमेधस : सन्नयथ प्रभोज्ज्वलं
तमोऽन्तरायोऽभिभवेन्न तद्रुचम् ।।

(क्षत्रपतिचरितम् ८/५०)

सीताचरितं में प्रमुख पात्र सीता विश्व कल्याण के लिए स्वयं वनगमन का प्रस्ताव रखती हैं-

'अस्तु मे भवदीप्सिता गतिर्यत्र कुत्रचन कानने वने ।
विश्वमानवमशल्यतां व्रजेत् काममद्य सह कीर्तिभिस्तव ।।'

(सीताचरितम् ३/८)

संकुचित वर्गविहीन समाज और समग्र विश्व के प्रति एकात्मभाव सीता द्वारा व्यक्त हुआ है-

धिक् कोऽयं निजरुचिनामको जनानां
विश्वस्मिन् मनसि शयोऽस्ति भेदहेतु : ।
येनेदं जगदखिलं समुद्रशैल-
नद्याद्यैः शकलितमेकतां न याति ।।

(सीताचरितम् ५।१०)

महाकाव्यो के नेता निर्भीक किन्तु विनम्र हैं। उनके नेतृत्व में समत्व की गरिमा है।

इन महाकाव्यों में धर्म और दर्शन का उपस्थापन सहिष्णुता से अनुप्राणित है। यत्र-तत्र सर्वधर्मसमन्वय का प्रयास किया गया है। धर्मों की प्रतिष्ठा और अनुपालन में अन्योन्य ईर्ष्या और कटुता की भावना नहीं है। विविध धर्मों में प्रतिपादित उदात्त कर्मों की प्रेरक उद्‌भावनाएँ की गयी हैं। तथाकथित धर्मों के उन अंशों का विशेष रूप से वर्णन किया गया है जो धर्म और संप्रदाय के व्यामोह के कारण उत्पन्न खाई को पाटने का कार्य करते हैं। समस्त धर्म राष्ट्रधर्म में परिणत हैं, सब में लोककल्याण की भावना अनुस्यूत है। इन महाकाव्यकारों की मान्यता है कि अनैक्य का कारण धर्म भेद नहीं है और न ही एकधर्मता एकता का कारण है-

'न धर्मभेदत्वमनैक्यकारणं

न चैक्यहेतुः क्वचिदेकधर्मता।' (क्षत्रपतिच0 १७/६०)

स्वातन्त्र्योत्तर महाकाव्यों पर समसामयिक राष्ट्रव्यापिनी गतिविधियों का गहरा प्रभाव पड़ा है। राष्ट्रमुक्ति का आन्दोलन और तज्जन्य स्वातन्त्र्य, विश्वशान्ति का प्रयास, चीन और पाकिस्तान से भारत का युद्ध, देश की आन्तरिक अन्य गतिविधियों की क्रिया प्रतिक्रिया अनेक रूपों में अभिव्यंजित है। तिलकयशोर्णवः, क्षत्रपतिचरितम्, शिवराज्योदयम्, महात्मगान्धिचरितम्, सुभाषचरितम्, नेहरूचरितम स्वराज्यविजयम्, स्वाधीनभारतम्, स्वातन्त्र्योदयः, झाँसीश्वरीचरित्रम्, भारतविजयम् प्रभृति महाकाव्यों में उक्त परिस्थितियों का विशेष रूप से आकलन किया गया है। गणतन्त्र प्रशासन में अधिकार और कर्तव्य का उचित रेखांकन किया गया है। राष्ट्रनेता के निर्वाचन में उसकी बलिदान भावना, त्याग और समत्वभावना आदि के अवलोकन की प्रेरणा दी गयी है। केवल राष्ट्रीय उत्सवों में राष्ट्रध्वज का स्पर्श करने वाला और बाहरी गले से राष्ट्रगीत गाने वाला राष्ट्रनेतृत्व का अधिकारी नहीं होना चाहिए-

दत्त्वैवात्मशिरो बलिं गणपतिः प्राप्तोऽभवत् पूज्यताम्,

एवं राष्ट्रसुशासनेच्छुचरिते लोकेलिमः स्याद्बलिः।

न स्यात्केवलमुत्सवेषु मिलितो राष्ट्रध्वजस्पर्शकः,

वाह्येनैव गलेन गायति च यः स्वां राष्ट्रगीतावलीम्॥

(गणपतिसंभवम् ९/४९)

जनता की उपेक्षा, पदलोलुपता और स्वार्थपरता की कटु आलोचना की गयी है। इन महाकाव्यों मे समाजोन्मुख राजनीति रूपायित हुई है। राष्ट्रनेता स्वार्थों की

तिलांजलि देकर जनता को सर्वविध सुख और शान्ति प्रदान करते हुए चित्रित किये गये हैं। जातिवाद, छुआ-छूत की भावना की समाप्ति तथा सभी को समानाधिकार देने का आग्रह अभिव्यक्त हुआ है-

अमुं स्पृशेयं न विशेत्सुपर्वणां द्विजप्रवेश्यायतनानि नापरः ।
अमुष्य पेयं न पयोऽस्य पीयतामितीदृशी वो रुचिरा व्यवस्थितिः
जनुः समानं परिदृश्यते यतः कुतस्तनी जातिभिदा तदिष्यते ।
निरूपिता यामवलम्ब्य जन्मिनां विभिन्नरूपा निगमेषु वृत्तयः ।।
जनेषु कस्मान्न विभज्यते समं समानरूपेण समीहितं वसु ।
न कस्यचिद्यत्सहजं समीक्ष्यते न कोऽपि तस्याधिकृतौ विशेषभाक् ।।

(रुक्मिणीहरणे- ११/८४-८५,८८)

सतीप्रथा का सतर्क खण्डन किया गया है। इसे पुरुषों द्वारा स्त्रियों के प्रति किया गया अत्याचार माना गया है। विधुर द्वारा विधवा से विवाह न कर अविवाहित युवती से विवाह किये जाने की प्रथा पर करारा प्रहार किया गया है-

मृतास्वहो प्राणसमासु सत्वरं प्रमोदतेऽन्या परिणीय पूरुषः ।
कुलस्त्रियः स्वामिनि संस्थिते पुनर्वहन्ति वैधव्यमसह्यवेदनम् ।।
नमोऽस्तु पाखण्डविनिर्मिताय ते द्विजेन्द्र ! धर्माय विडम्बनात्मने।
सहैधसा यत्र लतेव नूतना शवेन सत्रा तरुणी प्रदह्यते ।।

(रुक्मिणीहरणे-११/९०-९१)

विधि और आदेश के पालन से ही राष्ट्र सुखमय वातावरण में विकास कर सकता है-

प्रजामहीपालमयं च मानवं नयं नृपादेशमथाऽधिकारिणः ।
सदैव यत्रानुसरन्ति सर्वथा स एव देशः ससुखं समेधते ।।

(वही-१२/११४)

जनता के अशिक्षित होने की राष्ट्राध्यक्ष को गहरी चिन्ता है। सम्राट् राम जनता के अशिक्षित होने का दायित्व अपने ऊपर लेते हुए कहते हैं-

ममैव किन्त्वत्र परिच्युतात्मनः त्रुटिर्यदेषा जनतास्त्यशिक्षिता ।
पितुः सदोषः शिशुरत्ति यद्विषं भिषग् हि वाच्यो यदि वर्धते रुजा।

(सीताचरितम् २/२९)

सीताचरितकार के अनुसार लोकमत से धर्म का निर्णय मान्य नहीं है-

यदि लोकमतेन केवलं क्रियतां धर्मविनिर्णयो बुधैः ।
तदधर्म इति श्रवस्तया श्रुतिरेवास्तु निघण्टनिःसृता ।।

(वही-४/४१)

सुभाषचरितम् के नायक सुभाष चन्द्र बोस का प्रथम लक्ष्य मानवीयता की रक्षा थी, वे देश की स्वतन्त्रता जाति और धर्म की सहिष्णुता के लिए चाहते थे-

स्वातन्त्र्यमिच्छामि तु पूर्णमेव
नारीनरव्यक्तिसमाजभूत्यै ।
श्रीमद्दरिद्राखिलमङ्गलार्थं
धर्मस्य जातेश्च सहिष्णुतार्थम् ।।

(सुभाषचरितम् ६/ ७ )

तिलक के वाक्य समस्त भारतवासियों के लिए शाश्वत जीवन मूल्य कहे जा सकते हैं-

हिन्दुभूर्जननी मेऽस्ति सङ्कल्पो जायते यदा ।
सर्वेषां भारतीयानां भारतैक्यं तदा भवेत् ।।
न प्रान्तस्य न धर्मस्य जातेर्वर्णस्य वा तथा ।
भिन्नत्वाद् देशबन्धुत्वं बाध्यं न स्यात् कदाचन ।।

(तिलकयशोऽर्णवः ५५/१८२,८३)

राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के लिए भाषा और भूभाग के आधार पर विभाजन इस युग के महाकाव्यकारों को इष्ट नहीं है । विश्वबन्धुत्व समन्वित भारतीयता इन्हें अभीष्ट है । बलदेवचरितकार का वक्तव्य इस प्रकार है-

एकनीडमिव विश्वजीवनं वेदवाचि ऋषिभिः समर्थितम् ।
भाषयैव यदि भेद इष्यते हा हतैव ननु भारतीयता ।।
भारतीयजनता पदे-पदे भाषते विविधभाषया न किम् ।
किं तथापि परिचीयते मनाग् भिन्नभूमिभिदुरात्मचिन्तनम् ।।

वैखरीतनुरियं ममेदृशी दृश्यते बहुविधा चकासती ।
देवतासु दिवि या सरस्वती मानवेषु भुवि सैव भारती ।।
सागरैश्च गिरिभिर्नदीजलैर्भूरियं यदि विभज्यते जनैः ।
व्याप्य शब्दगुणकं मया नभः सूचितं त्रिभुवनं निजात्मना ।।

(बलदेवचरितम् ३/४१-४४)

प्रबल राष्ट्रीय भावना सभी महाकाव्यों में परिव्याप्त है । भारतीय संस्कृति तथा भौगोलिक परिवेश, राष्ट्ररक्षा और स्वातन्त्र्य की भावना, सामान्य जनजीवन का रागात्मक चित्रण, राष्ट्रकल्याण और सर्वोदय की समीहा पद-पद पर अभिवर्णित है। राष्ट्रसीमा की सुरक्षा के प्रति सजग नायक (गणेश) का वक्तव्य देखें-

यस्या अंशकणाणुतोऽस्मि धृतवानेतामनूनां तनूं
तस्या अङ्गुलिदघ्नदेहबलये नान्यां गतिं संसहे ।
खण्डानां तु कथैव का, चणकभो गृह्येत चेत् तत्कणः
तस्मै चाऽपि शरीरकं शकलयन् कुर्यात् रणं सव्रणम् ।।

(गणपतिसंभवम्-४/१३)

राष्ट्रस्वातन्त्र्य के लिए अपने पुत्र के सिर को भी अर्पित करने की भावना व्यक्त की गयी है । शिवाजी के प्रति कान्होजी का कथन अवलोकनीय हैः

स्वातन्त्र्यलक्ष्म्याश्चरणोपहारं
चिकीर्षसे चेन्नर शीर्षपद्मैः ।
त्वन्नेत्रसंकेततृणीकृतात्मा
स्वपुत्रशीर्षाण्यपि कर्तिताऽस्मि ।।
त्वत्कांक्षितं दुर्घटमप्यकस्मात्
सम्पूरयिष्याम्यधुनैव राजन् ।
प्रविश्य दावाग्निमुपेत्य वार्द्धिं
निष्पेष्य वाद्रिं प्रविदार्य वाभ्रम् ।।

(शिवराज्योदये २०/२९,३०)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्र पर किये गये चीन तथा पाक के आक्रमण के कारण

अभिनव चेतना के साथ राष्ट्रीयता की भावना प्रबल हो उठी है । चीन के आक्रमण को आधार बनाकर श्री परमेश्वरदत्त त्रिपाठी ने 'रक्ताक्तहिमालयम्' महाकाव्य लिखा है । राष्ट्रनेताओं पर आधारित महाकाव्यों में राष्ट्रीय भावना अपने चरम उत्कर्ष पर तो है ही, प्राचीन वाङ्मय पर आधारित गणपतिसंभवम्, सीताचरितम् गङ्गासागरीयम् प्रभृति महाकाव्यों में भी यह भावना आद्यन्त विद्यमान है । क्षत्रपतिचरितम्, शिवराज्योदयम्, गान्धिचरितम्, स्वराज्यविजयम्, सुभाषचरितम्, तिलकयशोऽर्णवः, नेहरूचरितम्, जवाहरज्योतिः प्रभृति महाकाव्यों में स्वभावतः यह भावना आप्रबन्ध देखने को मिलती है । इन महाकाव्यों पर दृष्टिपात करते हुए स्वातन्त्र्योत्तर काल को 'राष्ट्रीय महाकाव्य युग' की संज्ञा दी जा सकती है ।

यथार्थ वर्णन और स्वाभाविकता स्वातन्त्र्योत्तर महाकाव्यों की अन्यतम विशेषता है । इनमें वर्णनों की प्रधानता न होकर विषय और वक्तव्य की प्रधानता है । भारत के महान् राष्ट्र सेवकों तथा लेनिनादि विश्व स्तर के सामाजिक तथा आर्थिक क्रान्ति करने वाले विचारकों का यथायथ वर्णन अत्यन्त प्रेरणाप्रद तथा स्वाभाविक बन पड़ा है । प्राचीन काव्यों की तरह प्रशस्तिपूर्ण, अतिरंजनामय वर्णनों का इन महाकाव्यों में अभाव है । प्राचीन कथानकों पर आधारित 'रुक्मिणीहरण' को छोड़कर अन्य सभी महाकाव्यों में प्रायः वस्तुविषय और वक्तव्य का प्राधान्य है । इन महाकाव्यों का वस्तुविन्यास, वातावरण और पात्र सभी कुछ आधुनिक युग के अनुरूप तथा यथार्थ के निकट है । इनमें वैभव का अतिशयोक्तिप्रधान विलास नहीं दिखाई देता। इन का उद्देश्य जन-जन में नवोन्मेष और स्फूर्ति का संचार करना है । अत एव जीवन की वास्तविक स्थिति के चित्रण में ही इनकी रुचि है । यह कार्य कोरे यथार्थ और आदर्श से संभव न हो पाता । इन काव्यों में आदर्शोन्मुख यथार्थ की स्वाभाविक प्रतिष्ठा हुई है । राष्ट्र और समाज के पुनर्निर्माण और पुनर्जागरण के लिए इन महाकाव्यों का अध्ययन तथा इनकी सद्भावनाओं का व्यापक प्रसार परम कल्याणप्रद होगा । इन महाकाव्यों में भामहादि की शास्त्रीय मान्यताओं तथा लब्धप्रतिष्ठ प्राचीन महाकाव्यों के शिल्पों का स्वीकार-परिहार दृष्टिगोचर होता है । इन महाकाव्यकारों ने प्राचीन संस्कृत महाकाव्यों तथा अन्य भाषाओं की कृतियों से पर्याप्त प्रेरणा ग्रहण करने के बाद भी अपनी प्रज्ञा को अन्धानुगामिनी नहीं रखा है । इनकी रचनाओं में पूर्व शिल्पों का युगानुरूप संशोधन और परिवर्तन किया गया है ।

वस्तु विन्यास में प्राचीन साहित्य और शिवाजी पर आधारित महाकाव्यों को छोड़कर प्रायः नाट्यसन्धियों के निर्वाह और सुखान्तता की ओर कवियों का आग्रह नहीं दिखाई देता । आधुनिक चरितों पर आधारित महाकाव्यों में चरितनायकों के मृत्युपर्यन्त वर्णन के कारण वे प्रायः दुःखान्त ही दिखाई देते हैं । राष्ट्रकल्याण के लिए आजन्म प्रयत्नशील तथा आफलोदयकर्मा (तिलक, गाँधी, सुभाष आदि) चरितनायकों के समग्र जीवन के वर्णन की दृष्टि से उनकी अन्तिम यात्रा का वर्णन

और उनके प्रति राष्ट्र की प्रतिक्रिया का वर्णन अनुचित भी नहीं प्रतीत होता। शिवाजी तथा प्राचीन साहित्य पर आधारित महाकाव्य सुखान्त हैं। सीता के उत्तर चरित पर आधारित महाकाव्य 'सीताचरितम्' जिसके दुःखान्त होने की सम्भावना थी उसे सीता के स्वतः वनगमन के प्रस्ताव, पौत्रों के संस्कार के लिए कौशल्यादि की अभिस्वीकृति से वाल्मीकि के आश्रम में सम्प्रेषण और अन्ततः समाधिमांगल्य द्वारा सीता की भूसमाधि की परिकल्पना कर कवि ने उसे मंगलान्त कर दिया है। 'जानकीजीवनम्' में सीता परित्याग की घटना को छोड़ दिया गया है। महाकाव्य की भूमिका में कवि ने राम द्वारा सीता के परित्याग के पूर्व वर्णन को तर्कपुरस्सर प्रक्षिप्त सिद्ध किया है। गणेश और शिवराजादि को अन्ततः राज्याभिषिक्त कर उनके प्रशासन की सुभग कल्पना में अधुनातन प्रशासन के लिए लोकानुरंन की विधि को अभिव्यंजित किया गया है। इन महाकाव्यों के वस्तु विन्यास में जनता, राष्ट्रनेता और प्रशासकों के कर्तव्यों की प्रेरणा के लिए पर्याप्त अवसर निकाला गया है किन्तु लब्धप्रचार आधुनिक इतिहास पर आधारित कथावस्तुओं को नाट्य सन्धियों के विनियोग हेतु परिवर्तित करने का कवियों ने प्रयास नहीं किया है। 'बोधिसत्त्वचरितं' में नाट्य सन्धियों के स्थान पर बौद्धों के अष्टांग मार्ग को कथानक में अनुस्यूत किया गया है। वस्तु विन्यास में महाकाव्यकार सर्गबद्धता आदि की दृष्टि से प्राचीन परम्परा के अनुगामी न होकर वैचारिक प्रतिष्ठा तथा वस्तु विकास में स्वयं की मेधा का उपयोग करते दिखाई देते हैं। शास्त्रीय विधि से नाट्य सन्धियों के निर्वाह और युगचेतना के अनुरूप वस्तु विन्यास के कारण गणपतिसंभवम्, क्षत्रपतिचरितम्, शिवराज्योदयम्, सीताचरितम् और रुक्मिणीहरणम् इस अवधि के श्रेष्ठ महाकाव्य कहे जा सकते हैं। इन महाकाव्यों में प्राचीन मान्यताओं के प्रति श्रद्धा और आधुनिकता के प्रति आकर्षण दोनों का अद्भुत और आवर्जक संगम दिखाई देता है।

इस अवधि के महाकाव्यों में प्रमुख पात्र के रूप में गणेश, गंगा, सीता, उर्मिला, श्रीकृष्ण, रुक्मिणी, राम आदि प्राचीन चरितनायकों के साथ राष्ट्रनेताओं, सन्त महात्माओं और विद्वानों को भी स्थान दिया गया है। तथाकथित नायिकाओं और प्रतिनायकों का अधिकांश महाकाव्यों में अभाव है। गणेश, श्रीकृष्णदि को आधुनिक उदारचरित नेताओं और नारी पात्रों को वर्तमान जागृत नारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। सद्वांश और क्षत्रियकुलोत्पन्न नायक की मान्यताओं के विपरीत आज गुण और सामाजिक अर्हता को महत्त्व दिया गया है। राष्ट्रनेताओं और धर्मनेताओं का राष्ट्रस्वभावानुकूल चरित्रांकन किया गया है।

स्वातन्त्र्योत्तर महाकाव्यों में 'शृंङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते' के प्रति कवियों का योजनाबद्ध आग्रह नहीं दिखाई देता, आपाततः भले ही शृंगार, वीर और शान्त अंगी रस के रूप में उपलब्ध हैं। इन महाकाव्यों में शृंगार के विपरीत रसराज के रूप में राष्ट्रभक्तिपरिमलित वीर को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। शारीरिक

चेतना के स्थान पर सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना की ओर उन्मुख होने के कारण इन महाकाव्यों में शृंगार के प्रति औदासीन्य दिखाई देता है। स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों, राष्ट्रचेता व्यक्तित्वों और सन्त-महात्माओं के चरिताकलन में शृंगार की उपेक्षा दूषण भी नहीं कही जा सकती। अधिकांश महाकाव्यों में राष्ट्रभक्ति समन्वित वीर को अंगी रस रखा गया है। इस अवधि में शृंगार के परिपाक की स्थिति पहले से पर्याप्त भिन्न है। नायक-नायिका को आश्रय बनाकर किसी भी महाकाव्य में उद्दाम शृंगार का वर्णन नहीं है। 'रुक्मिणीहरण' जैसे रससिद्ध महाकाव्य में विप्रलम्भ शृंगार अंगी है किन्तु उसे देवादिविषयक रति (कृष्ण के प्रति रुक्मिणी की सर्वथा कामुतारहित दृढ़ भक्ति) तथा धर्मवीर से अनुप्राणित कर प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार 'गंगासागरीयम्' का अंगी रस विप्रलंभ शृंगार है किन्तु उसे भी विलासरहित और धर्मवीरसमन्वित किया गया है। गणपतिसंभवकार ने संयोग शृंगार का अंग के रूप में, शंकर पार्वती को उसका आश्रय बनाकर, वर्णन किया है किन्तु शृंगार को योग के अद्वैत रस में मिलाकर इतने श्लिष्ट और आवर्जक रूप में प्रस्तुत किया है कि लगता है यह स्थल (तृतीय सर्ग योगशक्ति चमत्कृति) समग्र संस्कृत साहित्य में अनुपम है। रुक्मिणीहरण और क्षत्रपतिचरितम् में गौणपात्राश्रित संयोगशृंगार स्वल्प किन्तु अत्यन्त प्रभावपूर्ण है। 'बोधिसत्त्वचरितम्' में मानवोचित दुर्बलता के चित्रण में नायकाश्रित शृंगाराभास का वर्णन हुआ है जिसे प्राचीन काव्यशास्त्रियों ने अनौचित्यप्रवर्तित कहा है किन्तु तत्सबद्ध पात्र अन्ततः अपनी दुर्बलता पर विजय प्राप्त करता है। अतः शृंगाराभास यहाँ परिणामरमणीय होने से अनुचित नही कहा जा सकता। श्रीनेहरूचरितम् में दयावीर और करुण राष्ट्रभक्ति से सम्पृक्त होकर अभिव्यंजित हुए हैं। एक स्थल पर महाकाव्यकार अपनी रसयोजना की समीक्षा स्वयं कर देता है। यद्यपि महाकाव्य के मध्य में यह वक्तव्य औचित्यपूर्ण नहीं है तथापि इस युग के कवियों का दृष्टिकोण इन पंक्तियों में रेखांकित हो उठा है :

अग्रे भविष्यति हि राष्ट्रपितृव्यनामा,
विख्यातकीर्तिरवनीतलवन्दनीयः ।
तस्मात्तयोर्जनकयोरिव शास्त्रगर्हं
शृङ्गारवर्णनमिहानुचितं विभाति ॥

(श्रीनेहरूचरितम् १३/१४)

प्राचीन महाकाव्यों के अखण्ड दण्डायमान शब्दों, ग्रन्थ-ग्रन्थियों और दुरूह प्रयोगों का इन महाकाव्यों में सर्वथा अभाव है। पूर्व की अपेक्षा सरलतर भाषाशिल्प में ये महाकाव्य उपनिबद्ध हैं। भाषा को स्वाभाविक सरल और बोधगम्य बनाने के

लिए आंग्लादि भाषा के लब्धप्रचार शब्दों का प्रयोग यत्र-तत्र देखने को मिलता है। संस्कृत व्याकरण और कोश पर असाधारण अधिकार रखने वाले गणपतिसंभवकार जैसे कवि 'या कोपतोपप्रिया', 'ग्रामोफोनरवा च वृद्धवनिता, 'टैंकान् वक्रमुखान् शशाङ्कसदृशान्' जैसे प्रयोग कर अपने भाषागत उदार दृष्टिकोण को व्यक्त करते हैं। तिलकयशोऽर्णवकार भी 'डू आर डाईति महाव्रतं यत्' प्रभृति प्रयोग करते दिखाई देते हैं। आधुनिक विषयों पर आधारित अधिकांश काव्यों में अन्य भाषा के शब्दों का प्रयोग या उनका संस्कृतीकरण किया गया है। रुक्मिणीहरणम्, सीताचरितम्, परिजातहरणम् प्रभृति में प्रायः संस्कृत व्याकरणनिष्ठ सुसंस्कृत शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। इन महाकाव्यों की वाक्ययोजना पर हिन्दी आदि का प्रभाव भी दिखाई देता है। अधिकांश महाकाव्यों की भाषा सरल स्वाभाविक और मुहावरेदार है। सर्वत्र वैदर्भी रीति और प्रसाद गुण का वैभव बिखर रहा है। भावानुरूप शब्द गुम्फन में अधिकांश महाकाव्यकार सफल रहे हैं। भाषा शब्दाडम्बर और अलंकारों से बोझिल नहीं है। आधुनिक विषयों पर आधारित अनेक काव्यों में कहीं कहीं कुछ दूर तक अलंकारों का अभाव दिखाई देता है किन्तु प्राचीन कथावस्तु पर आधारित काव्यों में सर्वत्र सालंकार वाक्य योजना दिखाई देती है। प्राचीन उपमानों का नवीनीकरण करते हुए आधुनिक उपमानों को समाविष्ट किया गया है। अभिनव अर्थान्तरों और प्रेरक सूक्तियों की बहुविध योजना की गयी है। राष्ट्रीय भावना और समाज कल्याण के प्रति प्रेरित करने वाली सूक्तियों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है।

इन महाकाव्यों में संवाद, अभिभाषण, सभा, यात्रा,और कथावस्तुगत स्थान प्राकृतिक दृश्यादि का युगोचित वर्णन करके कथानक को विकसित किया गया है। इस अवधि के महाकाव्यों में, विशेष रूप से रुक्मिणीहरण को छोड़कर, प्रायः सौन्दर्य, प्रकृति और स्थानादि का अत्यन्त सन्तुलित और वस्तु सम्पृक्त चित्रण किया गया है। इनमें काव्यशास्त्रियों द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्यों में अपेक्षित वर्णनीय विषय की सूची के अनुसार वर्णन करने का आग्रह नहीं दिखाई देता। ऐसे वर्णनों को सर्वथा छोड़ दिया गया है जिनका वास्तविक जीवन से कोई संबन्ध नहीं है। वर्णनात्मक प्रसङ्ग यथार्थ की भावभूमि पर प्रस्तुत हैं। सभास्थल, शोभायात्रा, विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, महानगर, ग्राम, कृषि, मज़दूर वर्ग, आधुनिक वाहन, युद्धोपकरण, यात्रा, विविध वैज्ञानिक उपकरण, रीतिरिवाज, वेशभूषा आदि का सांस्कृतिक वर्णन किया गया है। विकृत समाज के प्रतिबिम्बन के लिए जुआरी, शराबी, वेश्यागामी, दलबदलू, घूसखोर, पदलोलुप और वंचक आदि का वर्णन भी यत्र-तत्र किया गया है। भारतेतर राष्ट्रों में ब्रिटेन, अमेरिका, रूस आदि की भौगोलिक और सांस्कृतिक गतिविधियों, रीति रिवाजों तथा वेशविन्यासादि का वर्णन भी कुछ काव्यों में मिलता है। वर्णनों का कथावस्तु के साथ सामंजस्य और संतुलन इस युग की विशेषता है।

छन्दोयोजना प्रायः प्राचीन महाकाव्यों के सदृश है। गणपतिसंभवकार ने एक ही विशालकाय छन्द (शार्दूलविक्रीडित) का प्रयोग किया गया है जिसे पाश्चात्त्य महाकाव्य (एपिक) के शिल्प का अनुगमन भी माना जा सकता है किन्तु आदि काव्य रामायण में भी प्रायः अनुष्टुप् छन्द का बाहुल्य है, अतः एक छन्द में महाकाव्य लेखन को पाश्चात्त्यानुकरण मात्र नहीं कहा जा सकता। अत्यन्त विशिष्ट भाव परिवर्तन के लिए गणपतिसम्भवकार भी गीतों तथा राष्ट्रगीत के लिए भारत के राष्ट्रगीत वाले छन्द का ही प्रयोग करते हैं। रक्ताक्तहिमालयकार चौपाई आदि हिन्दी के प्रसिद्ध मात्रिक छन्द का भी प्रयोग करते हैं। विशिष्ट लयात्मकता के लिए जयोदय तथा बोधिसत्त्वचरितम् के प्रणेता वर्णिक छन्दों को भी यत्र-तत्र तुकान्त कर देते हैं। कहीं-कहीं अन्त्यानुप्रसास और तुकान्त गीतों की योजनाएँ की गयी हैं।

इन महाकाव्यों के आकार में वैविध्य दिखाई देता है। पाँच सौ पद्यों से लेकर बारह हजार पद्यों तक के महाकाव्य लिखे गये हैं। अधिकांश महाकाव्यों की सर्ग संख्याएँ बीस के आस पास हैं। कुछ कवियों ने विषय वस्तु की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण किन्तु आकार में लघुकाय (सीताचरितम्, गंगासागरयीम्, सुभाषचरितम् आदि) महाकाव्यों की रचना की है किन्तु इसके विपरीत कुछ कवियों ने विशालकाय महाकाव्यों का सर्जन किया है। इनमें तिलकयशोऽर्णव (६५ सर्ग) तथा शिवराज्योदय (६८ सर्ग) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कथानक के प्रत्येक पक्ष को उद्घाटित करने के कारण ये दोनों महाकाव्य अपेक्षाकृत पर्याप्त विशाल हो गये हैं किन्तु ये रचनायें इतने धैर्य और मनोयोग के साथ की गयी हैं कि आद्यन्त भाषा और रसभाषादि का प्रवाह शिथिल नहीं हुआ है। क्षत्रपतिचरित आदि महाकाव्यों में मार्मिक स्थलों को ही विशेष रूप से पल्लवित किया गया है; अतः ये अधिक सन्तुलित और रसनीय हो गये हैं।

अभिनव राष्ट्रीय चेतना, उदात्तमानव मूल्यों की स्थापना, स्वाभाविक भाषा-शिल्प, परम गुण युक्त प्रमुख पात्रों का चरित्रांकन, युगानुरूप विविध विषयों का वस्तु के रूप में ग्रहण, सहृदय-हृदयसंवेद्य रससिक्त वर्णन, काव्यशास्त्रीय मूल्यों की अभिनव अवतारणा के साथ प्राचीन मान्यताओं की स्वीकृति, व्यापक लोकस्वभावाभिव्यंजन प्रभृति विशेषताओं से अभिमण्डित इन महाकाव्यों से आशा की आलोकमयी किरणें बिखर रही हैं। इनके प्रखर आलोक में संस्कृत साहित्य की महनीय विधा महाकाव्य के लेखन का मार्ग आलोकित हो उठा है। अन्य भाषाओं में प्रचलित विविध विधाओं की भाँति संस्कृत में प्रायः सभी विधाओं में रचनायें की जा रही हैं जिनकी संख्या महाकाव्यों से कई गुनी अधिक है किन्तु महाकाव्य संरचना में आश्चर्यजनक अभिवृद्धि हुई है। संस्कृत का महाकाव्य लेखन आज अपने स्वर्णयुग में प्रविष्ट है।

इन महाकाव्यों का अध्ययन संस्कृत साहित्य को जीवित रखने के लिए नहीं, अपने को जीवित रखने के लिए, अपने राष्ट्र के दिगन्त शाश्वत आदर्शों को जीवित रखने के लिए आवश्यक है। संस्कृत साहित्य सर्जन अवरुद्ध हो जायेगा और संस्कृत भाषा लुप्त

हो जायेगी, ऐसा मानकर संस्कृत साहित्य के अभिनव सर्जकों को कृपापात्र मानने और उन पर उपकार करने की आवश्यकता नहीं है। जिन संस्कृत साहित्य साधकों ने सैकड़ों वर्षों के परतन्त्रात्मक संघर्ष और अवमान की परवाह न करते हुए अपनी कठोर तपश्चर्या से संस्कृत साहित्य के प्रवाह को आज तक अविच्छिन्न रखा है, वे स्वतंत्र राष्ट्र के सुखद वातावरण में (केवल अपनी बात कहने भर का उन्मुक्त अवसर प्राप्त कर अपनी साधना से विरत होंगे या हैं, ऐसा मानना भयंकर भूल है। आज वे अपूर्व उत्साह से स्वागत अथवा प्रतिक्रिया की परवाह न करते हुए दिन-दूनी रात-चौगुनी गति से सुभग साहित्य की सृष्टि में प्रवृत्त हैं। इनके प्रति औदासीन्य या नासिका-संकोच इनका नहीं, उदासीन या असहिष्णु व्यक्ति का दुर्भाग्य है। परम साधना के चिरसंचित फल की उपेक्षा से अधिक दुर्भाग्य और हो ही क्या सकता है ? अभिनव सृष्ट संस्कृत साहित्य में भी वे शाश्वत तत्त्व विद्यमान हैं, जिनकी उपेक्षा राष्ट्र का घोर संकट है और जिनके अनुपालन में व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व का कल्याण निहित है। साम्प्रतिक उदात्त मानव-मूल्यों और राष्ट्र-धर्म की उद्भावना में आधुनिक संस्कृत महाकाव्यों का महत्त्व प्राचीन दिगन्तविश्रुत कवियों की रचनाओं से अधिक है।

अत्यंत प्रचीन काल से प्रवाहित संस्कृत सुरापगा में अनेकविध साहित्य-सरिताओं का संगम हुआ है। इसके पावन प्रवाह में सम्मिलन्ती सरितायें इसकी ही उस परिखा से प्रवाहित होती है जिसमें जीवन को कल्मषरहित कर देने की क्षमता अतीत काल से विद्यमान है। इनके सम्मिलन में टकराव नहीं आलिंगन की आकुलता है और यह संगम तीर्थ नहीं तीर्थराज है, जहाँ आकर्षण भी है पवित्रता भी। गंगा का पूर्व संचित जल जिस प्रकार शताब्दियों तक विकृत नहीं होता उसी प्रकार वाल्मीकि-कालिदासादि का पूर्व संचित परम श्रद्धार्ह रससिक्त साहित्य आज भी अनाघ्रात पुष्प की ताजगी और पुण्यों के अखण्ड फल के समान स्वादु है। जिस प्रकार शताब्दियाँ बीत जाने पर भी गंगा का प्रवाह आज भी अविच्छिन्न है उसी प्रकार संस्कृत साहित्य की धारा अजस्र प्रवहमान है, नवनवोन्मेषी कवियों द्वारा आज परिष्कृत और परिमार्जित कर उसे निर्मल बना दिया गया है। आज वैज्ञानिक युग का स्वतंत्र संस्कृत काव्यकार जो कुछ लिख रहा है, उसका विशुद्ध अध्ययन और अनुशीलन संस्कृत साहित्य और राष्ट्र दोनों के लिए परम कल्याणकारी है। आज के संस्कृत महाकाव्य सत्य (यथार्थ), शिव और सुन्दर होने के कारण अवश्य ही स्वागतार्ह हैं।

नायं पन्था यदपि बहुभिर्नूतनः संस्कृतस्य
दृष्टः सम्यङ् नव इति धिया निन्दितश्चापि कैश्चित्।
भूयो भूयो न खलु कृतिनस्तावदेवं भ्रमन्तो

नव्यैः काव्यैर्यदि न सरसैः संस्कृतज्ञा रमन्ते ॥

## स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत महाकाव्य



स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत महाकाव्यों के नाम, उनके लेखक, रचना काल तथा स्थान निर्देश के साथ प्रस्तुत किया जा रहे हैं। प्रथमतः प्रचीन साहित्य पर आधारित, तदनन्तर नवीन विषयों पर आधारित और अन्य भाषा के महाकाव्य जो संस्कृत पद्यानुवाद द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं, उनकी सूची दी गयी है। नये महाकाव्यों की यह सूची पूर्ण है, इसका दावा नहीं किया जा सकता; विद्वानों से विनम्र अनुरोध है कि इस सूची में जिनका उल्लेख नहीं हो सका है उनकी सूचना देकर उपकृत करें-

१- **सौमित्रसुन्दरीचरितम्** - श्री भवानीदत्त शर्मा - १९५८ - मुजफ्फरपुर

२- **श्रीबोधिसत्त्वचरितम्** - डा0 सत्यव्रत शास्त्री - १९६२ दिल्ली

३- **हरनामामृतम्** - श्रीविद्याधर शास्त्री १९५८ बीकानेर

४- **सौलोचनीयम्** - स्व0 विष्णुदत्त शुक्ल १९५७ कानपुर

५- **गङ्गासागरीयम्** - स्व0 विष्णुदत्त शुक्ल १९६४ सागर

६- **जानकीचरितामृतम्** - श्री रामसनेहीदास १९५७ फैजाबाद

७ - **उत्तरनैषधीयम्** - श्री भैरव गिरि, मुजफ्फरपुर

८- **गणपतिसंभवम्**- स्व0 प्रभुदत्त शास्त्री १९६८ दिल्ली

९- **रुक्मिणीहरणम्**- स्व0 काशीनाथ द्विवेदी १९६४ वाराणसी

१०- **नन्दचरितम्** - श्रीसूर्यनारायण शास्त्री, हैदराबाद

११- **कर्णार्जुनीयम्** - स्व0 विन्ध्येश्वरीप्रसाद शास्त्री १९६८ वाराणसी

१२- **सतीचरितम्** - श्री के0 एस0 कृष्णमूर्ति १९५३ मदुराई

१३- **सतीस्वयंवरम्** - श्री नागराजः १९४९ कल्याणपुरी (बंगलौर)

१४- **वीरोदयम्** - जैन मुनि ज्ञानसागर १९६८ ब्यावर (राजस्थान)

१५- **जयोदयम्**- वही १९६० ब्यावर

१६- **सुदर्शनोदय**- वही १९६६ ब्यावर

१७- **पारिजातहरणम्** - श्री उमापति द्विवेदी, १९५७ वाराणसी

१८- **उर्मिलीयाम्** - श्री नारायण शुक्ल, १९७३ देवरिया

१९- **शुम्भवधम्** - डा0 भोलाशंकर व्यास (अप्रकाशित) वाराणसी

२० - **किरातार्जुनीयम्** - डा0 जगन्नाथ पाठक (अ0प्रका0) इलाहाबाद

२१- **सूर्यचरितम्**- श्री तारादत्त पन्त, (अप्रका0) इलाहाबाद

२२- **सीताचरितम्** - डा0 रेवाप्रसाद द्विवेदी, १९७३ वाराणसी

२३- **वामनावतरणम्** - डा0 राजेन्द्र मिश्र (अप्रकाशित) इलाहाबाद

२४- **उषोहरणम्** - स्वामी अनन्तानन्द - वाराणसी

२५- **सावित्रीचरितम्** - श्री आत्माराम शास्त्री, १९६१ बम्बई

२६- **अद्भुतदूतमहाकाव्यम्** - श्री जग्गूबकुलभूषण, १९६८ बंगलौर

२७- **परशुरामदिग्विजयम्** - श्री छज्जूराम शास्त्री, १९६९ दिल्ली

२८- **राधापरिणयम्** - स्व0 बदरीनाथ झा, मुजफ्फरपुर

२९- **श्रीकृष्णचरितामृतम्** - श्री कृष्णप्रसाद शर्मा घिमिरे १९७१ काठमाण्डू (नेपाल)

३०- **नाचिकेतसम्** - वही

३१- **वृत्रवधम्** - वही

३२- **ययातिचरितम्** - वही

३३- **भारतीस्वयम्वरम्**- स्व0 श्री सुधाकर शुक्ल, दतिया (उ0 प्र0)

३४- **यशोधरा**- श्री ओगेटि परीक्षित शर्मा, १९७६ पुणे

३५- **सुरहावर्णनम्** - स्व0 रघुनाथ शर्मा, वाराणसी

३६- **उन्मत्तकीचकम्** - श्री के0 एम0 नागराजन्

३७- **रावणायनम्** - श्री पालीवाल, फर्रुखाबाद

३८- **पद्मिनीपरिणयम्** - श्रीनिवासाचार्य (संविद् पत्रिका में) बम्बई

३९- **मोहभंगम्** - डा0 रसिकविहारी जोशी, १९७६ दिल्ली

४०- **जानकीजीवनम्** - डा0 राजेन्द्र मिश्र १९८९ इलाहाबाद

४१- **रामचरितम्** - श्री पद्मनारायण त्रिपाठी

४२- **श्रीहरिचरितामृतमहाकाव्य** - श्री हरिपद्मनाभ शास्त्री, वाराणसी

४३- **पयःपानम्** - श्री मोतीराम शास्त्री (अप्रका0), जबलपुर

४४- **श्रीकृष्णचरितम्** - डा0 रमेशचन्द्र शुक्ल, १९७९ दिल्ली

४५- **सुगमरामायणम्**- वही १९७८ दिल्ली

४६- **श्रीद्वारकाधीशमहाकाव्यम्** - डा0 वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, १९८१ मथुरा

४७- **लवलीपरिणयम्** - डा0 के0 एस0 नागराजन्, १९७५ बंगलौर

४८- **सीतास्वयम्वरम्** - वही, १९७० बंगलौर

४९- **प्रसन्नाञ्जनेयम्** - डा0 डी0 अर्क सोमयाजी, १९८० तिरुपति



५०- **हरिप्रेष्ठमहाकाव्यम्** - श्री वनमालीदास शास्त्री, १९७६ - मथुरा

५१- **भरतचरितम्**- स्व0 भवानीदत्त पाण्डेय - (अप्रका0) आरा (बिहार)

५२- **सुरेन्द्रचरितमहाकाव्यम्** - श्री वासुदेव द्विवेदी से प्राप्य, वाराणसी

५३- **हरिश्चन्द्रमहाकाव्यम्** - डॉ0 बलवीरदत्त शास्त्री १९८८ (भारतोदय) हरिद्वार (उ0 प्र0)

५४- **परशुराममहाकाव्यम्** - श्री त्रिपुरारि पाण्डेय (अप्र0) रायबरेली

५५- **देवीचरितम्** - गया

५६- **रामरसायनमहाकाव्यम्** - श्री हजारीलाल शास्त्री इन्दौर

५७- **भृगुवंशमहाकाव्यम्** - डॉ0 मिथिलाप्रसाद त्रिपाठी, इन्दौर

## आधुनिक विषयों से संबद्ध महाकाव्य

१- **महात्मगान्धिचरितम्** - (तीन खण्डों में) स्वामी भगवदाचार्य

(अ)- भारतपारिजातम् १९४९ खेड़ा (गुजरात)

(आ)- परिजातापहारः १९४९ खेड़ा

(इ)- परिजातसौरभम् - १९४९ खेड़ा

२- **रामानन्ददिग्विजयम्** - स्वामी भगवदाचार्य, खेड़ा

३- **स्वराज्यविजयम्** - स्व0 पण्डिता क्षमा राव, बम्बई

४- **तुकारामचरितम्** - वही १९४७ बम्बई

५- **रामदासचरितम्** - वही १९५२ बम्बई

६- **ज्ञानेश्वरचरितम्** - वही १९४७ बम्बई

७- **गान्धिचरितम्**- श्री साधुशरण मिश्र, १९७२ चम्पारन (बिहार)

८- **शिवानन्दविलासम्** - श्रीरामकृष्ण भट्ट, १९७२ गढ़वाल (उ0 प्र0)

९- **योगिभक्तचरितम्** - स्व0 कालीपद तर्काचार्य, १९६१ कलकत्ता

१०- **विश्वमानवीयम्** - श्री विद्याधर शास्त्री बीकानेर, राजस्थान

११- **स्वाधीनभारतम्** - श्रीरामनिरीक्षण सिंह - समर्थकल्याणपुर (बिहार)

१२- **गान्धिविजयम्**- स्व0 लोकनाथ शास्त्री (अपूर्ण) ऋतंभरा जबलपुर

१३- **गान्धिसौगन्धिकम्** - श्री सुधाकर शुक्ल (अप्रका0) दतिया (म0 प्र0)

१४- **स्वराज्ययिजयम्** - स्व0 द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री, १९७१ मेरठ

१५- **श्रीसुभाषचरितम्** - श्री विश्वनाथ केशव छत्रे, १९६३ कल्याण

१६- **स्वातन्त्र्योदयम्** - वही (भारती) जयपुर

१७- **सातवलेकरचरितम्**- वही (अप्रका0) कल्याण

१८- **एकनाथचरितम्** - वही (अप्रका0) कल्याण

१९- **श्रीशिवराज्योदयम्** - डा0 श्रीधर भास्कर वर्णेकर, १९७२ नागपुर

२०- **क्षत्रपतिचरितम्** -डॉ0 उमाशंकर शर्मा, १९७२ वाराणसी

२१- **रक्ताक्तहिमालयम्**-श्री परमेश्वरदत्त त्रिपाठी (अप्रका0) बलिया (उ0 प्र0)

२२- **भारतविजयम्** - स्व0 प्रभुदत्त शास्त्री, (अप्रका0) दिल्ली

२३- **श्रीतिलकयशोऽर्णवः**- स्व0 माधव श्रीहरि अणे, १९६०-७१ पुणे

२४- **श्रीमालवीयकाव्यम्**- स्व0 रामकुवेर मालवीय, १९६४ वाराणसी

२५- **श्रीनेहरूचरितम्** - स्व0 ब्रह्मानन्द शुक्ल, १९६९ खुरजा (उ0 प्र0)

२६- **राजेन्द्रप्रसादाभ्युदयम्**- श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री, १९६० राजमुन्द्रि (आन्ध्र)

२७- **जवाहरवसन्तसाम्राज्यम्** - श्री जयराम शास्त्री १९५० दिल्ली

२८- **श्रीनेहरूयशःसौरभम्**- श्री बलभद्र प्रसाद शास्त्री, १९७५ हरदोई (उ0 प्र0)

२९- **लेनिनामृतम्** - श्री पद्म शास्त्री, १९७३ होशियारपुर (पंजाब)

३०- **तर्जनी** - श्री दुर्गादत्त शास्त्री, कांगड़ा (हिमाचल प्र0)

३१- **भूमामिनीविभ्रमम्** - श्री रामसेवक मालवीय, १९७० फैजाबाद

३२- **रामदासकाव्यम्** - श्री सूर्यनारायण शास्त्री, १९६० हैदराबाद

३३- **विवेकानन्दम्** - श्री सूर्यनारायण शास्त्री, १९६० हैदराबाद

३४- **दयानन्ददिग्विजयम्** - श्री मेधाव्रताचार्य, १९४७ बड़ौदा

३५- **महर्षिविरजानन्दचरितम्** - वही (१९५२) बड़ौदा

३६- **महर्षिज्ञानानन्दचरितम्** - स्व0 विन्ध्येश्वरीप्रसाद शास्त्री १९७० वाराणसी

३७- **स्वामिश्रीविवेकानन्दचरितम्** - श्री त्र्यम्बक शर्मा भण्डारकर१९७३ वाराणसी

३८- **आर्योदयम्** - श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय, १९५१ इलाहाबाद

३९- **झांसीश्वरीचरितम्** -श्री सुबोधचन्द्र पन्त , १९८० इलाहाबाद

४०- **दयानन्दतिमिरभास्करः**- श्री अखिलानन्द, बुलन्दशहर

४१- **गोस्वामितुलसीदासचरितम्** - श्री हरिप्रसाद द्विवेदी १९६१ एटा (उ0 प्र0)

४२- **जयदेवकीर्तिलतामहाकाव्य**, - स्व0 रामबालक शुक्ल, (१९६०) इलाहाबाद

४३- **श्रीनारायणविजयः**- श्री बालराम पणिक्कर (१९७१) त्रिवेन्द्रम्

४४- **हिन्दूविश्वविद्यालयकाव्यम्**- श्रीमधुसूदन शास्त्री, वाराणसी



४५- **श्रीमत्प्रतापराणायणम्** - श्री ओगेटि परीक्षित शर्मा, पुणे १९९०

४६- **गान्धिगौरवम्** - श्री शिवगोविन्द त्रिपाठी, १९६३ जयपुर

४७- **इन्दिराचरितम्** - डा0 सत्यव्रत शास्त्री, १९७४ दिल्ली

४८- **नानकमहाकाव्यम्** - वही, भारती, जयपुर

४९- **सत्यानुभावम्**- स्व0 कालीपद तर्काचार्य, कलकत्ता

५०- **भारतभूमिचरितम्** - श्री प्रभुदत्त स्वामी, १९६७ (भारतोदय - पत्रिका)

५१- **श्रीगान्धिचरितामृतम्**- श्री विधानिधि शास्त्री (वही)

५२- **केरलोदयः**- श्री के0 एन0 एलुतच्छन्, १९७७ पट्टम्बि (केरल)

५३- **श्रीबलदेवचरितम्** - श्री श्री निवास रथ (उज्जैन) (दूर्वा) भोपाल

५४- **नानकचन्द्रोदयम्** - देवराजशर्मा, १९८५ वाराणसी

५५- **जवाहरज्योतिर्महाकाव्यम्** - पं0 रघुनाथप्रसाद चतुर्वेदी, मथुरा १९७७

५६- **दयानन्ददिग्विजयम्** श्री अखिलानन्द शर्मा, दिल्ली

५७- **दयानन्दचरितम्** - श्रीरमाकान्त उपाध्याय (अप्रका0) (अर्वाचीनसंस्कृतम् में सूचित)

५८- **श्रीगुरुनानकदेवचरितम्** - श्री विष्णुदत्त शर्मा, - १९८१ मेरठ

५९- **श्री जवाहरलालनेहरुचरितमहाकाव्यम्** - कविशिरोमणि श्री अमीरचन्द्र शास्त्री, १९९० दिल्ली

६०- **विश्वभानुः**- डॉ0 पी0 के0 नारायण पिल्लै १९८१ त्रिवेन्द्रम्

६१- **चर्चामहाकाव्यम्**- डॉ0 शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी, १९८८ वाराणसी

६२- **श्रीस्वामीचरितम्** - श्री सुधाकर शुक्ल, १९८८ दतिया (म0 प्र0)

६३- **परमाणुभारतम्** - श्री शिवजी उपाध्याय, वाराणसी

६४- **महात्मगान्धिचरितम्**- श्री वीरेन्द्र गोविन्द राजवैद्य, इन्दौर

६५- **अशोकमहाकाव्यम्** - श्री हरिहर त्रिवेदी, इन्दौर

६६- **धर्मसागरम्** - डा0 पी0 के0 नारायण पिल्लै, त्रिवेन्द्रम् ।

६७- **सुरेन्द्रचरितम्** - पण्डितराज दिगम्बर महापात्र, लोकभाषा प्रचार समीति बड़ा ओडिया मठ

६८- **मुत्तुस्वामिचरितम्** - डा0 व्ही राघवन्, मद्रास पुरी ७५२००१

६९- **श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्**- डॉ0 सत्यव्रत शास्त्री, १९८९, बैंकाक ।

# बीसवीं शताब्दी के संस्कृत शतककाव्य

डॉ० दुर्गाप्रसाद मिश्र

संस्कृत की नाना काव्यविधाओं में हमारी संस्कृति पल्लवित तथा पुष्पित हुई है। हमारी संस्कृति का प्राण आध्यात्मिक भावना है, जो संस्कृत-वाङ्मय में त्याग एवं तपस्या के द्वारा संवर्धित हुई है। वैदिक वाङ्मय से प्रभावित भारतीय कवि की आत्मानुभूति जब काव्य रूप ग्रहण करने के लिए चञ्चल कामिनी के समान थिरक पड़ी उस समय भी हमारी संस्कृति के प्राण अध्यात्मवाद ने उसके हाव-भाव का रूप ग्रहण किया। फलतः नाना भङ्गिमाओं में निःसृत काव्य-धारा आशावादिता से परिपूर्ण रहो। शतक-काव्यों में भी अनेक रूपों में भावों की अभिव्यक्ति हुई है।

'शतक' हमारी वैदिक परम्परा में पूर्णता का प्रतीक रहा है। **'जीवेम शरदः शतम्'**[१] आदि की आत्मा पूर्णता तथा कल्याण से युक्त है। इसी से अनुप्राणित होकर भारतीय कवि की भी स्वानुभूति शतक काव्य के रूप में प्रकट हुई। संस्कृत काव्य की विधाओं में शतक-काव्यों का स्थान खण्ड-काव्य के अन्तर्गत प्रतिष्ठित होता है। वैसे शतक काव्य मुक्तक काव्य के प्रमुख उदाहरण हैं जिनको पढ़कर सहृदय सद्यः परितृप्त होकर आनन्दित हो जाता है।

शतक काव्य हमें मुख्यतः तीन रूपों में ही प्राप्त होता है जिनमें धार्मिक, नीति-सम्बन्धी तथा शृङ्गारी की परिगणना की जाती है।

धार्मिक शतकों का प्रतिपाद्य विषय देवताओं की स्तुतियाँ हैं। इन्हें ही स्तोत्र शतक साहित्य के नाम से जाना जाता है। कवियों ने अपने लौकिक कल्याण के

---

१. जीवेम शरदः शतम्।
बुध्येम शरदः शतम्। रोहेम शरदः शतम्।
पूषेम शरदः शतम्ः। भवेम शरदः शतम्
भूषेम शरदः शतम्। भूयसीः शरदः शतम्। अथर्ववेद १९/६७/२-८
अदीनाः स्याम शरदः शतम्।
भूयश्च शरदः शतात्। - यजुर्वेद ३६/२४

भाव से ओत-प्रोत होकर दिव्य देवताओं की स्तुति में अनेक शतकों की रचना की जिनमें देवता विशेष को ही आधार बनाकर उन्हीं के यशोगान में मुक्तक पद्यों में सुन्दर रसपेशल भाव व्यक्त किये। इनमें शिव-पार्वती, राम-सीता, हनुमान्, कृष्ण-राधा, दुर्गा, स्थानीय देवता तथा पुराण सम्बन्धी शतकों की संख्या अगणित है। कवि ने देवता विशेष की दिव्याकृति, करुणामय स्वरूप तथा दैवी शक्ति आदि तत्त्वों को काव्यरूप प्रदान किया। भारतीय मनीषी ने वैदिक काल से ही ईश्वर के प्रति अपने को अर्पण करने में ही सफलता मानी है। देवता विशिष्ट के वन्दन में ही एक-एक सूक्त का निर्माण किया गया। उसी परम्परा में लौकिक संस्कृत साहित्य में स्तोत्र रूप में विशाल शतक साहित्य का निर्माण किया गया।

संस्कृत के कवियों ने जहाँ एक ओर स्तोत्र-परम्परा को समृद्धिशाली बनाया वहीं आचार्यों से प्रभावित होकर काव्य के महनीय प्रयोजन 'कान्तासम्मित उपदेश' का समादर किया। शतक काव्यों के माध्यम से भारतीय मनीषियों ने ऐसी उपदेशात्मक तथा नीतिपरक बातों की शिक्षा दी है जो किसी अन्य वाङ्मय में दुर्लभ है। इन नीति सम्बन्धी शतकों का समाज पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। इन शतकों में कवियों ने प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों रूपों में शिक्षायें प्रदान की हैं। इन शतकों का यदि हम ऐतिहासिक दृष्टि से अवलोकन करें तो स्पष्ट हो जाता है कि समाज में प्रत्येक युग में यथार्थ दिशा प्रदान करने का कार्य भारतीय मनीषी ही अपने काव्य के माध्यम से करते रहे। नीति सम्बन्धी शतकों में माहात्म्य, धर्मशास्त्र, व्यंग्य, सामाजिक, आत्मचरित, आचार्यचरितप्रधान, प्रकृति-ऋतु, राजचरित, छन्द अलंकार, काव्यमाहात्म्य सम्बन्धी शतकों का परिगणन किया गया है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। उसके मूलाधार अर्थात् उद्भावक तत्त्व है लोक, वेद तथा अध्यात्म[२]। लोक से सामाजिक जीवन, वेद से विज्ञान तथा अध्यात्म से दार्शनिक चिन्तन का ग्रहण होता है। भामह, मम्मट प्रभृति आचार्यों ने भी काव्य निर्माण में लोक तत्त्व की महिमा को स्वीकार किया है।[३] साहित्य एक कला है, कला के द्वारा काव्यकार अपनी सौन्दर्यानुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। सौन्दर्य रूप और विचार दोनों में पाया जाता है, उन विचारों की अभिव्यक्ति कवि को बेचैन कर देती है। शृङ्गारी शतकों का विकास इसी का परिणाम है। इन शतकों में शृङ्गार को ही प्रधान रस माना गया है तथा काम के विभिन्न रूपों मदन, मन्मथ, मार, काम, कन्दर्प, पञ्चशर आदि के मानव समुदाय में व्यापक व्याप्त प्रभाव का चित्रण किया गया। कवियों ने नायिका के विभिन्न अवयवों, विलास क्रीडाओं, मनोमुग्धकारी रूपों के चित्रण में ही अपनी लेखनी को सार्थक बनाया।

---

२. लोको वेदस्तथाध्यात्मं प्रमाणं त्रिविधं स्मृतम्। -व्यक्तिविवेक

३. लोकस्य स्थावरजङ्गमात्मकलोकवृत्तस्य। -काव्यप्रकाश १/१ वृत्ति

**'सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानम्'** तथा **'सर्वस्य गात्रस्य शिरः प्रधानम्'** उक्तियों को कवियों ने अपनी सूक्ष्म उपमाओं तथा अलौकिक भावों से सार्थक सिद्ध कर दिया।

शृङ्गारी शतकों में कवियों ने रमणी के नयन, मुख, नासिका, केश, कटाक्ष, वक्षोज, कटि, रोमावलि, आदि अवयवों को ही विषय बनाकर काव्य सर्जना की। इतना अवश्य है कि हमारे इन कवियों का ज्ञान अलौकिक था तथा अपनी अन्तः सूझ से इन्होंने विषय-वस्तु को जिस कलेवर में सँजोया वह संसार के किसी भी साहित्य में दुर्लभ है। कवि ने मर्यादित शृङ्गार का ही चित्रण किया है। जहाँ कहीं भाव विभोर होकर वह लौकिक धरातल पर उतरने लगता है, अश्लीलता भी ला देता है; पर उसमें भी एक अपूर्व आनन्द तथा सौन्दर्य का समन्वित रूप पाया जाता है।

बीसवीं शताब्दी में भी हमें उक्त सभी प्रकार के शतक काव्यों का विशाल साहित्य उपलब्ध होता है। समाज में घटित घटनाओं का यथावत् चित्रण करने में कवि आदि काल से सिरमौर रहा है। प्रत्येक क्षेत्र का समुचित चित्रण साहित्य में अक्षुण्ण है। अब बीसवीं शताब्दी में रचित शतक काव्यों का मिश्रित (स्तोत्र, नीति, शृङ्गार) रूपेण उल्लेख इस प्रकार है -

## शक्तिशतक-सकलेश्वरशतक

इन शतकों के रचयिता गणेश्वर रथ उड़ीसा प्रान्त के कालाहांडी के निवासी थे। इनका जन्म १८९९ ई0 में हुआ। इन दोनों शतकों में कवि ने नामानुरूप शक्ति माँ तथा ईश्वर के माहात्म्य का चित्रण किया है। ये स्तोत्र शतक काव्य हैं।

## कालिकाशतक, आत्मनिवेदनशतक, शतकसप्तक

ये शतक बटुकनाथ शर्मा प्रणीत हैं। इनके पिता भारद्वाज गोत्रीय ईश्वरी प्रसाद मिश्र हैं। इनका जन्म १८९५ ई0 तथा मृत्यु १९४४ ई0 में हुई। आप बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर थे। इनमें कालिकाशतक स्तोत्र काव्य है जिसमें भगवती की स्तुति है। शेष दो शतक आत्मचरित तथा नीति सम्बन्धी हैं।

## विष्णुस्तोत्रशतक

यह स्तोत्र काव्य महाविष्णु के अवतार से सम्बन्धित है। इसके रचयिता श्रीतीर्थपाद परमहंस स्वामी केरल निवासी हैं। इनके पिता आलक्काट चेस्कोतत्त इल्ल नम्बूदरी माता कुजकुट्टिपिल्ला हैं। आपका जन्म १८८२ तथा मृत्यु १९३९ ई0 में हुई थी।

## नृसिंहशतक

इसके रचयिता तिरुवेंकट तातदेशिक हैं जो शष्मर्षण गोत्रीय सिंगाराचार्य के

पुत्र हैं । आपका जन्म १८८२ तथा मृत्यु १९३५ ई0 के बाद हुई । यह स्तोत्र शतक है जिसमें नृसिंह भगवान् के माहात्म्य का वर्णन है ।

## कोलाम्बाकुचशतकम्

यह स्तोत्रशतक एक स्थानीय देवतापरक है । इसके रचयिता सुन्दराचार्य का जन्म १८८० ई0 में हुआ । आप रामानुजाचार्य के शिष्य थे ।

## वैराग्यशतक, नीतिशतक शृङ्गारशतक

इन शतकों के प्रणेता तेजोभानु पण्डित का जन्म १८८० ई0 में हुआ था । आपने भर्तृहरि के अनुकरण पर ये शतक रचे और अभिनव भर्तृहरि विरुद से अलंकृत हुए ।

## तपोवनशतक

इसके रचयिता बालकृष्ण शास्त्री जाखाली ग्राम, टिहरी गढ़वाल के निवासी थे। आपका जन्म १८८० ई0 में हुआ था । आप तपोवन स्वामी के शिष्य थे और अपने गुरु के माहात्म्य में यह शतक लिखा ।

## व्याघ्रालयेशशतक, शोणाद्रीशशतक

इन शतकों के रचयिता केरलवर्मा साम्बशिव शास्त्री का जन्म १८७९ तथा निर्वाण १९४६ माना गया है । आपने स्तोत्रशतकों में स्थानीय देवताओं की स्तुतियाँ की हैं । आप गणपति शास्त्री के बाद १९३७ से १९३९ तक ग्रंथशाला प्रकाशन के अध्यक्ष रहे ।

## सुभाषितशतकम्

इसके रचयिता आर0 बी0 कृष्णमाचारियर का जन्म १८७४ तथा निर्वाण १९४४ ई0 है । आपने कुम्भकोणम् में विद्याभ्यास किया तथा आप गवर्नमेंट कालेज में दीर्घ काल तक पण्डित थे । यह शतक नीतिपरक है ।

## जगद्गुरु अष्टोत्तरशतक

इसके रचयिता पंचपागेश शास्त्री तंजौर जिला के अन्तर्गत पैगनाडु ग्राम में जन्मे थे । आपका जन्म १८७४ तथा निर्वाण १९४० ई0 है । यह शतक आचार्यचरित प्रधान है ।

## श्रीकृष्णकरुणाशतक

इसके रचयिता श्रीनिवासकृष्णार्जुन वाडकर का जन्म १८७४ तथा निर्वाण

१९६४ ई0 है । आप गाँधीवादी थे । यह शतक राधाकृष्ण की स्तुति में प्रणीत स्तोत्र काव्य है ।

## शतश्लोकीयधर्मशास्त्र

इसके रचयिता रामावतार शर्मा छपरा, बिहारवासी देवनारायण शर्मा के पुत्र थे । आपका जन्म १८७४ तथा निर्वाण १९२९ ई0 है । उक्त शतक में धर्मशास्त्र सम्बन्धी तत्त्वों का समायोजन है । आपके मारुतिशतकम् तथा शम्भुशतकम् भी है जो १९ वीं सदी के अन्त के हैं ।

## कृष्णार्यशतक

इसके रचयिता मेलारकोड सुब्रह्मण्य अय्यर का जन्म १८७२ तथा निर्वाण १९४१ ई0 है । आप मालाबार जिला के पालक्काट तालुकान्तर्गत मेलारकोट में जन्मे थे । इसमें १०८ श्लोकों में कृष्ण चरित का व्याख्यान है ।

## भगवत्सुधाशतकम्

इसके रचयिता शिवदत्त का जन्म १८७२ ई0 में हुआ था । आप कलकत्ता निवासी थे । यह शतक १९०८ में प्रकाशित हुआ ।

## सारशतक

इसके रचयिता भट्ट श्री कृष्णराम व्यास का जन्म १८७१ ई0 में हुआ था । आप जयपुर निवासी थे तथा भिषगाचार्य एवं आयुर्वेदाचार्य की उपाधि से सम्मानित थे । यह शतक कुमारसम्भव, रघुवंश, शिशुपालवध, किरातार्जुनीय, नैषध इन पाँचो ग्रन्थों का सार रूप है जो १९०३ में प्रकाशित किया गया । आपके स्मरशतकम्, आर्यालंकारशतकम्, पलाण्डुराजशतकम् भी हैं जो थोड़े पूर्ववर्ती हैं ।

## धर्मशास्त्रशतकम्

इसके रचयिता मनन्तल नीलकण्ठ भूषत का जन्म १८६८ तथा निर्वाण १९३२ ई0 है । पिता केशव भूषत माता श्री देवी मनयम्बा, गुरु किटक्के पुतल कुंजुन्नि भूषत थे । इसमें धर्मशास्त्र सम्बन्धी उपदेशों का चित्रण है ।

## रामवर्मशतकम्

यह राजचरित प्रधान शतक काव्य है । इसके रचयिता सहृदयतिलक रामपिशारडी केरल निवासी थे । आपका जन्म १८६५ तथा निर्वाण १९४७ में हुआ। यह शतक आपने १९१३ ई0 में अवकाश ग्रहण करने के बाद लिखा था, जिस समय कुच्चि महराज की षष्ठिपूर्ति मनायी गयी थी ।

## हनुमत्प्रसादशतकम्

इसके रचयिता रंगनाथ ताताचार्य तंजौर के रामदुर्ग नामक ग्राम में जन्मे थे। आपका जन्म १८६५ में हुआ था। आप कविभूषण की उपाधि से अलंकृत थे। १८३४ में तंजौर सरस्वती महल ग्रंथालय के मुख्याधिकारी थे। यह शतक हनुमान की स्तुति में रचित है।

## आर्याशतकम्

इसके रचयिता आत्माराम मोरेश्वर क्षत्रे महाराष्ट्र के बम्बई निवासी थे। यह शतक १९०६ में वेंकटेश्वर मुद्रणालय से प्रकाशित हुआ था।

## जार्जदेवशतकम्

इसके रचयिता लक्ष्मण सूरि तमिलनाडु के रामनाथपुर जिले में श्रीवेल्लिपुत्तूर के निकट पुनालवेदी में उत्पन्न हुए। आपका जन्म समय १८५९ ई० तथा निर्वाण १९१९ ई० है। आपने जार्ज पञ्चम के अभिषेक में १९१९ में इस शतक की रचना की। इस प्रकार यह अंग्रेजचरितप्रधान काव्य है।

## भारतशतकम्

सौ पद्यों में गुम्फित इस शतक के रचयिता आचार्य श्री महादेव पाण्डेय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय संस्कृत महाविद्यालय में साहित्य-विभागाध्यक्ष रहे। इसका प्रथम प्रकाशन १९५३ ई० में हुआ। भारतीय स्वाधीनता के लिए किये गये प्रयासों का इतिहास है। प्रत्येक व्यक्ति में आद्या शक्ति के आविर्भाव की कामना की गयी है। कवि ने अपने देश को स्वर्ग के समान सुखद माना है तथा तीर्थों, ज्ञान-विज्ञान की प्रगति का वर्णन किया है। कवि के अनुसार वास्तविक विद्वान् वही है जो देश की सेवा करता है।

## विभावनम् (ब्रह्मानन्दशतकम्)

यह श्रद्धाञ्जलिपरक शतक काव्य हैं। इसके रचयिता डॉ० रमेशचन्द्र शुक्ल है जिन्होंने १९७० से १९७४ के बीच काव्य रचना की और १९७५ ई० में प्रथम प्रकाशन किया। इसमें सुरभारती के अमरपूत पण्डित ब्रह्मानन्द शुक्ल के प्रति भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की गयी है।

## इन्दिराकीर्तिशतकम्

यह अभिनन्दनात्मक शतककाव्य है। इसके रचयिता कविरत्न श्रीकृष्ण सेमवाल चमोली गढ़वाल उ० प्र० के अन्तर्गत गुप्तकाशी के समीपवर्ती ... गाँव के

निवासी, ग्रन्थरचनाकाल में दिल्ली प्रशासन उ0 मा0 वि0 में संस्कृत के अध्यापक थे और सम्प्रति दिल्ली संस्कृत अकादमी के सचिव हैं। इसमें तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के जीवन चरित के साथ राष्ट्रोपयोगी कार्यों का वर्णन किया गया है। लोगों में देशभक्ति, देशराग आस्था जगायी गयी है।

## भाति मे भारतम्

इस शतक काव्य में १०८ पद्य हैं अर्थात् माला काव्य। इसके रचयिता डॉ० रमाकान्त शुक्ल राजधानी कालेज दिल्ली में हिन्दी के वरिष्ठ प्राध्यापक हैं। इसका रचना काल १९७८-७९ है। कवि ने भारत राष्ट्र की विशेषताओं का वर्णन करके भारतीयों में आत्मनिष्ठ राष्ट्र के अभिमानी भावों को जगाया है। भारत ही ऐसा राष्ट्र है जहाँ हिंसा पर अहिंसा की विजय है। यहाँ विविधता होने पर भी एकता स्तुत्य है। खान-पान, रीति-रिवाज, खेलकूद, उपासना पद्धतियों की प्राच्य विद्या की प्रशंसा की गयी है। व्रत, पावन तीर्थ, विज्ञानकी प्रगति, विभिन्न योजनाओं, औषधि निर्माण, शल्यचिकित्सा आदि की योजना उत्तम है। अभिनव अनुसन्धान आर्यभट्ट, रोहिणी, भास्कर उपग्रहों की सर्जना, देश की प्रगतिमें युद्धपोत, मोटर, यान, रेल की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की गयी है। गंगा, यमुना, चन्द्रभागा, नर्मदा आदि नदियों की आर्थिक एवं धार्मिक महिमा का गान किया गया है। कवि ने राष्ट्र की विश्वमंगल कामना व्यक्त की है। सारा संसार एक परिवार माना है। कवि ने १९८९-९० में दूरदर्शन के माध्यम से इस काव्य के अंशो का गान करके अपने संदेश को विश्वव्यापी बना दिया है।

## यतीन्द्रशतकम्

इस के रचयिता केवलानन्द शर्मा का जन्म १९१९ ई0 में बोढा नामक गाँव, जो मेरठ मण्डलान्तर्गत उ0 प्र0 में है, में हुआ। आपकी सम्पूर्ण शिक्षा वाराणसी की है। आप पर अपने गुरुओं खिस्ते जी तथा मंगलदेव शास्त्री, वामन भट्टाचार्य आदि का प्रभाव लक्षित होता है। शतक को कवि ने अपने जीवन के १८ वें वर्ष १९३६ में रचकर, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी में 'बालकवि' की उपाधि प्राप्त की थी। आप पर लेनिन की अमिट छाप है। आपने 'इन्दिरा प्रियदर्शनी' 'लेनिनकुसुमाञ्जलि' जैसे संस्कृत के महान ग्रन्थों की रचना की। आप एक कुशल राजनीतिज्ञ हैं और वर्तमान में आचार्य दीपंकर के नाम से जाने जाते हैं। इस शतक में दयानन्द जी द्वारा समाज में व्याप्त आडम्बर, कुरीतियों, छुआछूत आदि के समूल विनाश का जो प्रयास चित्रित किया गया है, मानव मन को आन्दोलन करने वाला है।

## कृष्णशतक

यह शतक वल्लथोल नारायण मेनन रचित है । इनका जन्म १८९० ई0 में हुआ था । यह भगवान् कृष्ण की स्तुति में रचित स्तोत्र काव्य है ।

## विधवाशतक

इस शतक के रचयिता वरदकृष्णमाचार्य वलत्तुर जिला तंजौर के निवासी थे। आपका समय २० वीं शताब्दी है ।

## इन्दिराशतकम्

इस शतक के रचयिता रामकृष्ण शास्त्री जी हैं । यह शतक काव्य अभिनन्दनात्मक हैं । भारतीय राजनीति के इतिहास में चण्डी की उपाधि से विभूषित इन्दिरा विश्वविख्यात राजनेताओं में से थी । यह शतक १९८१ ई0 में प्रकाशित हुआ । इसके रचयिता उत्तर प्रदेश के मेरठ मण्डल के समीप मवाना में संस्कृत के प्राध्यापक रहे ।

## श्रीनिवासशतकम्

इस शतक के रचयिता विठलदेवुनि सुन्दर शर्मा हैं । इसका समय २० वीं शताब्दी है । इस शतक का प्रकाशन सर्वप्रथम १९७८ ई0 में हुआ । यह एक चरित प्रधान काव्य है । इन्हीं का स्तोत्र काव्य वीराञ्जनेयशतक भी है जिसका प्रकाशन १९८१ ई0 में हुआ । यह हनुमान् के पराक्रम, वीरता और सच्ची भक्ति का प्रतीक है ।

## गुरुमाहात्म्यशतकम्

इस शतक के प्रणेता डॉ० कैलाशनाथ द्विवेदी हैं । जो उत्तर प्रदेश के निवासी हैं । इसका प्रकाशन १९८० में कानपुर से हुआ । यह एक चरितप्रधान काव्य है जिसमें गुरु के माहात्म्य का प्रणयन किया गया है ।

## कॉफीशतकम्

इस शतक के रचयिता श्रीरंगम वेंकटेश्वर हैं । इनका समय २० वीं शताब्दी है । यह एक व्यंग्य प्रधान काव्य है । व्यंग्य का एक रूप इस प्रकार है-

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति कॉफीपानात्पदे पदे ।।

## वामनशतक, सुमतिशतक, दाशरथिशतक, कृष्ण-शतक, भास्करशतक

इन शतकों के अनुवादक चिट्टिगुडूर वरदाचारियर का समय १८६५ ई० है। ये सभी तेलुगु से अनूदित हैं। ये शतक अपने नामानुरूप स्तुति के प्रतीक हैं।

## विज्ञानशतकम्

इस शतक के रचयिता महाराष्ट्र के कृष्णभाऊ शास्त्री धुले नागपुर के निवासी हैं। इनका जन्म १८७४ ई० में हुआ था। ये सीताराम शास्त्री उर्फ भाऊशास्त्री के पुत्र थे। आप महामहोपाध्याय की उपाधि से अलंकृत थे। आप ने इस शतक में विज्ञान की उपयोगिता तथा प्रगति का विवेचन किया है।

## केरलवर्मविलासशतकम्

इस शतक के रचयिता के० सी० केशव पिल्लै का जन्म १८६८ तथा निर्वाण १९३६ ई० में हुआ। आप के पिता व० रामन पिल्लै तथा माता लक्ष्मी अम्मा थीं।

## व्याघ्राटवीशतक

इस शतक के रचयिता नल्लूर कण्डि कृष्णन् नम्बूदिरी उत्तर मलयाल के कटत्तनाट नरिक्काटिरि ग्राम, केरल प्रान्त के निवासी थे। आपका जन्म १८६५ ई० तथा निर्वाण १९३३ ई० में हुआ। यह प्रकृति प्रधान काव्य है। स्थानीय देवता की स्तुति है।

## द्ररिद्रनारायणशतकम्

इसके रचयिता श्री जगन्नाथ व्यास हैं। इसमें वंशस्थ वियोगिनी आदि छन्दों में गरीबों के प्रति सहानुभूति जगाने का प्रयास किया गया है। रचना १९८३ में मेरठ से प्रकाशित है।

## डॉ0 शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी के शतक

म0 म0 पं0 गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के सुपुत्र डॉ० शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी ने भी अनेक शतक-काव्य लिखे। देववाणी-परिषद् दिल्ली से १९८२ में प्रकाशित आपके काव्य-संकलन 'स्फूर्ति-सप्तशती' में ५२ से ६२ पृष्ठों पर आपका 'किन्तु-शतकम्' प्रकाशित हुआ है जिसमें कवि ने प्रत्येक आर्या में दो परस्पर विरुद्ध स्थितियों का चित्रण किया है यथा-

ऐक्यं नाम रसायनमसमं बलवर्धकं किन्तु।

स्वार्थमयं विषमुल्बणमद्यत्वे तद्विलोपयति ॥१४॥

'स्फूर्तिसप्तशती के प्रास्ताविक में डॉ० रमाकान्त शुक्ल ने इनके १९८२ से पूर्व प्रणीत तथा प्रकाशित इन चार शतकों की भी सूचना दी है- 'काव्यप्रयोजनशतकम्', 'गोस्वामितुलसीदासशतकम्,' 'काव्यकारणशतकम्' तथा 'विद्योपार्जनशतकम्'। डॉ० चतुर्वेदी ने 'यात्राशतकम्,' 'सी0 वी0 रमणशतकम्', 'कार्लमार्क्सशतकम्', 'विद्याशतकम्', 'यावत्तावत्‌शतकम्' तथा 'हाहा-हूहू-शतकम्' आदि अनेक शतकों की भी रचना की जिनका समावेश १९८७ में प्रकाशित उनके 'चर्चामहाकाव्यम्' में सर्गों के रूप में कर दिया गया है।

## अभिराज के शतक

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग में प्रवाचक पद पर अभिषिक्त, उ0 प्र0 शासन एवं साहित्य अकादमी पुरस्कारों से सम्मानित अभिराज डॉ० राजेन्द्र मिश्र ने प्रायः वाङ्मय की प्रत्येक विधा को समृद्ध किया है। डॉ० मिश्र का जन्म उत्तर प्रदेश के जौनपुर जनपदस्थ द्रोणीपुर नामक गाँव में २६ दिसम्बर १९४२ ई0 में हुआ। आपके पिता (स्वर्गीय) पं0 दुर्गाप्रसाद जी मिश्र तथा माता श्रीमती अभिराजीदेवी हैं। महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटिका, एकाङ्की-संग्रह, कथासंग्रह तथा गीत-संग्रह के रूप में डॉ० मिश्र की अब तक अनेक कृतियाँ प्रकाश में आ चुकी हैं।

अभिराज डॉ० राजेन्द्र मिश्र ने अब तक १८ शतक काव्यों की रचना की है जिनके विषय विविध हैं। इन शतकों के नाम हैं-नवाष्टकमालिका, पराम्बाशतकम्, शताब्दीकाव्यम्, नव्यभारतशतकम्, मातृशतकम्, प्रभातमङ्गलशतकम्, सुभाषितोद्धारशतकम्, चतुर्थीशतकम्, सम्बोधनशतकम्, विमानयात्राशतकम्, बालीप्रत्यभिज्ञानशतकम्, यवद्वीपसाहित्यशतकम्, देववाणीहुङ्कारशतकम्, बालीविलासकाव्यम्, अभिराजशतकम् (अप्रकाशित) धर्मानन्दचरितम्, आर्यान्योक्तिशतकम् तथा धारामाण्डवीयम् (दूर्वा में प्रकाश्यमाण)।

आर्यान्योक्तिशतकम् का प्रकाशन सन् १९७६ ई0 में हुआ। इसमें सर्वथा अभिनव प्रतीकों के माध्यम से आर्या छन्द में अन्यापदेश प्रस्तुत किये गये हैं। नवाष्टमालिका में नौ देवताओं की स्तुतियाँ संकलित हैं, जिनकी सम्मिलित संख्या सौ से अधिक ही है। पराम्बाशतकम् में आद्यन्त भगवती पराम्बा (दुर्गा) की भावभीनी स्तुति की गयी है। इस शतक की रचना कवि ने मात्र १८ से २३ जून १९८१ ई0 के मध्य में सम्पन्न की।

शताब्दीकाव्यम् इलाहाबाद विश्वविद्यालय के शताब्दी समारोह (१८८७-१९८७ ई0) के अवसर यह लिखा गया शतक काव्य है। इसके प्रोचना, स्थापना, गवेषणा आदि पाँच खण्डों में कवि ने विश्वविद्यालय के विविध पक्षों को उजागर किया है।

नवभारतशतकम् से लेकर सम्बोधनशतकम् तक ६ शतक अभिराजसप्तशती (प्रकाशनवर्ष १९८६ ई0) में संकलित हैं। विमानयात्राशतक से देववाणी हुङ्कारशतक तक चारों काव्य डॉ० मिश्र द्वारा बालीद्वीप की प्रवास अवधि (मई ८७ से अप्रैल ८९ तक) में लिखे गये तथा यथावसर 'अर्वाचीनसंस्कृतम्' पत्रिका में प्रकाशित होते रहे। सम्प्रति ये सभी शतक 'पञ्चकुल्या' नामक कृति होकर प्रकाशित हुए हैं।

बालीविलासकाव्यम् में १०८ वसन्ततिलका छन्द हैं। इस शतक में कवि ने बाली द्वीप की नैसर्गिक सुषमा का हृद्य वर्णन प्रस्तुत किया है। यह शतक संस्कृत प्रतिभा (साहित्य अकादमी, दिल्ली) तथा दूर्वा (भोपाल) में प्रकाशित हो चुका है।

धारामाण्डवीयम् डॉ० मिश्र का नवीनतम शतककाव्य है जिसे कवि ने, कुछ ही दिन पूर्व सम्पादित धारा एवं माण्डू की यात्रा के अनन्तर प्रणीत किया है। इसमें धारानगरी के प्राक्तन वैभव, राजा भोज के व्यक्तित्व, कर्तृत्व तथा माण्डवगढ़ के स्थापत्य का यशोगान किया गया है।

डॉ० मिश्र के समस्त शतक काव्यों का विषय-विवेचन प्रस्तुत निबन्ध में कर पाना सम्भव नहीं है। परन्तु एक बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि संभवतः इतनी प्रभूत संख्या में, विषय की विविधता के साथ कोई भी अन्य कवि बीसवीं शती में शतककाव्यों का प्रणयन नहीं कर सका है।

## विठलदेवमुनिसुन्दरराज शर्मा के अन्य शतक

श्री विठलदेवमुनि सुन्दरराज शर्मा ने भक्तिपरक स्तोत्र काव्य लिखे जिनमें 'श्रीनिवासशतकम्', और 'वीराञ्जनेयशतकम्', की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। 'छायापतिशतकम्', 'देवीशतकम्' तथा 'शम्भुशतकम्' इनके अन्य शतक हैं जो १९८३ ई0 तक प्रकाशित हो चुके थे।

इन शतक काव्यों के अतिरिक्त बीसवीं शताब्दी के और भी शतक काव्य होंगें जिनका पूर्ण विवरण अनुपलब्ध होने के कारण यहाँ उल्लेख न किया जा सका। विषय-विस्तार के भय से शतकों का अति संक्षिप्त परिचय दिया गया है। वस्तुतः संस्कृत शतक साहित्य इतना विशाल है जिस पर निरन्तर शोध तथा प्रकाशन की आवश्यकता है। शतक साहित्य का अधिकांश भाग आज भी हस्तलिपि रूप में पुस्तकालयों, संग्रहालयों में बन्द पड़ा है। ये शतक १०८ गुटिका की माला के प्रतीक है, इन मुक्ताओं में प्रत्येक की अपनी स्वयं की आभा है जिन्हें लड़ी में पिरोकर शतक काव्य का रूप दिया गया। ये शतक मानवता के सर्वतोमुखी कल्याण के प्रतीक हैं।

# बीसवीं शती के राष्ट्रीयभावनापरक शतक काव्य

डॉ० (श्रीमती) सन्ध्या शर्मा

बीसवीं शताब्दी का उदय भारत के लिए राजनैतिक दृष्टि से नितान्त संघर्षपूर्ण था । विदेशी शासन से आक्रान्त भारतीय जनता अपने ही परिवेश में से एक राजनैतिक विकल्प ढूँढ लेने के लिए विकल थी । प्रवर्तमान शताब्दी के पूवार्द्ध का इतिहास उसकी इसी तड़प को अभिव्यक्त करता है । इसके लगभग मध्य में स्वातन्त्र्य प्राप्ति के साथ ही उसकी यह चिरप्रतीक्षित साध पूर्ण हुई । परन्तु यह केवल 'योग' था । अब स्वतन्त्र भारत की सबसे ज्वलन्त समस्या स्वतन्त्रता का समुचित 'क्षेम' थी । इन सभी परिस्थितियों का प्रभाव इस काल के साहित्य पर पड़ना भी स्वाभाविक ही था । अतः स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए देश की जनता के उद्‌बोधन के साथ-साथ स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों के प्रति कृतज्ञता निवेदन और सामाजिक कुवृत्तियों के विरुद्ध विद्रोह इस शताब्दी के संस्कृत साहित्य के मुख्य विषय हैं ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनन्तर साम्प्रदायिक संकीर्णताओं ने देश के सतत विकास की प्रक्रिया को शिथिल कर दिया है । ऐसी परिस्थिति में भारत की भौगोलिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय एकता के गान फिर से प्रासंगिक हो गये हैं । अत एव इस प्रकार के काव्यों का प्रणयन और उनका अध्ययन-विश्लेषण वर्तमान की महती आवश्यकता है । प्रस्तुत लेख इसी दिशा में किया गया प्रयास है ।

बीसवीं शताब्दी के सभी संस्कृत शतक काव्यों की उपलब्धि इस विषय की सर्वप्रथम आवश्यकता थी । पर्याप्त परिश्रम के पश्चात् कुल तेईस शतक काव्यों की उपलब्धि हो सकी है । इसके अतिरिक्त भी दो-एक काव्यों के लिखे जाने की सूचना है, लेकिन अपनी शक्ति और समय की सीमा में जो काव्य प्राप्त हो सके है, उन्हीं के आधार पर यह संक्षिप्त लेख प्रस्तुत किया जा रहा है ।

## (क) भारत सम्बन्धी शतक-काव्य

### १- विभूतिवन्दनास्तोत्रम्

'विभूतिवन्दनास्तोत्रम्' [१] नामक शतक काव्य डॉ0 श्रीधर भास्कर वर्णेकर द्वारा

१९४९ में रायपुर कारालय में लिखा गया था । इस शतक काव्य के सौ श्लोकों में भारत की विभिन्न विभूतियों की वन्दना की गयी है । काव्य की भाषा सरल एवं सुबोध है । कवि का उद्देश्य काव्य को अलंकारों से मण्डित करना नहीं है प्रत्युत राष्ट्र-प्रेम को अभिव्यक्ति देना है । इस अभिव्यक्ति के प्रसंग में कहीं-कहीं अनायास ही अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है । इस शतक काव्य के श्लोकों पर संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध श्लोकों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । काव्य में कवि ने भारत के धर्मनिरपेक्ष रूप को स्पष्ट रूप से उजागर किया है । प्रत्येक मतावलम्बी के आराध्य को इस काव्य में स्मरण किया गया है ।

इस काव्य में अखण्ड भारत की चेतनाचेतन विभूतियों के हृदयावर्जक वर्णनों का स्पर्श पाकर राष्ट्रीयता की मन्दाकिनी भारतीयों की स्वदेशानुरागात्मक भावनाओं को उद्दीप्त करती है । प्रत्येक क्षेत्र व वर्ग से संबंधित कोई भी ऐसा व्यक्तित्व नहीं जिसका पावन स्पर्श कवि की लेखनी ने न किया हो । चाहे आध्यात्मिक क्षेत्र हो, राजनैतिक हो अथवा साहित्यिक हो, विषय चाहे भ्रातृभक्ति का हो अथवा स्वाभिभक्ति का, विज्ञान का हो या देशोद्धार का-सभी का ऐसा भावपूर्ण उल्लेख कवि ने किया है कि मन में भारतीयता के प्रति आदर एवं अभिमान के भाव उत्पन्न होते हैं ।

## २- भारतशतकम्

श्री महादेव शास्त्री रचित भारतशतकम्[२] में भारत के प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप का चित्रण किया गया है । काव्य में १०१ पद्य हैं । समग्र वर्णन में भाषा की योजना भावानुरूप ही हुई है । समस्त और सुकुमार भाषा में अत्यन्त दुरूह भावों की भी समर्थ अभिव्यक्ति कवि के प्रगल्भ पाण्डित्य को प्रकट करती है । तद्धितान्त पदों के प्रयोग में कवि ने अपनी विशेष अभिरुचि प्रकट की है । अनुप्रास और यमक अलंकारों के प्रयोग से भाषा में लालित्य का आधान हुआ है । सम्पूर्ण काव्य स्रग्धरा छन्द में उपनिबद्ध है ।

काव्य के प्रत्येक श्लोक से राष्ट्रीय भावना की परम पावन मन्दाकिनी प्रभावित हो रही है । भारत का महनीय वैशिष्ट्य प्रतिपादित करते हुए कवि पाठकों के राष्ट्र-प्रेम को दृढ करता है । देश के अतीत का गौरवगान भी पाठकों को राष्ट्र के प्रति श्रद्धावान् बनाता है । कवि श्रीराम और श्रीकृष्ण के अप्रतिम चरित्र को स्मरण करता है । भारतभू को कवि स्वर्गलोक बताता है, देवगण भी इसकी महिमा का गान करते हैं ।

यह भूमि संस्कृति का प्रभव (संस्कृत्याः सुप्रसूतिः) तथा प्रकृति की क्रीडास्थली (क्रीडारङ्गः प्रकृत्याः) है । भारत का ऐसा महिमा गान पढकर अवश्य ही पाठकों के हृदय में गौरव का भाव जगता है ।

## ३- भारतशतकम्

भारतशतकम्[३] नामक शतक काव्य के लेखक श्री रामकैलाश पाण्डेय हैं। इसमें १०१ पद्य हैं जिनमें कवि ने अपने राष्ट्रीय गौरव की अभिव्यक्ति की है। प्रस्तुत काव्य के उपोद्घात से ज्ञात होता है कि यह कवि के विद्यार्थी-काल की रचना है। यह उस काल की रचना है जब भारत का चीन के साथ युद्ध हुआ। तब उत्साह से अभिभूत होकर सैनिकों के उत्साहवर्धन के लिए यह काव्य लिखा गया। भारतशतकम् की भाषा प्रवाहमयी एवं सानुप्रास है। पद-योजना बहुत सुन्दर है जिससे काव्य में लालित्य का आधान हुआ है। श्रीकृष्ण के गुणगौरव के वर्णन के प्रसंग में शब्दों की योजना इस प्रकार है-

बभाण गीतां सरसां गभीरां
जघान योऽरींश्छलनामुपेत्य।
वृन्दावने राधिकया सहैव
विहर्त्तुकामो मम कृष्ण आसीत्॥

सैनिकों का उत्साह वर्धन करने के लिए कवि अर्जुन की याद दिलाता है जो युद्ध में काल का भी अन्त करने वाला है और संग्राम में मतवाला हो जाता है। मेवाड़ के गौरवमय इतिहास की याद ताजा करते हुए कवि कहता है कि उस समय वीर युद्धभूमि में अट्टहास करते थे।[४] वीरबालक अभिमन्यु के रणचातुर्य का स्मरण कराने के अवसर पर कवि की पदावली देखिए-

दृष्ट्वाद्भुतं सङ्गरकौशलं ते
भो वीर! भो बालक पार्थपुत्र!
शीर्णानि वर्ष्माणि मृधे परेषां
च्युतानि वर्माणि धरा चकम्पे॥

कवि की भाषा भावानुसारिणी है। वीरता-वर्णन के प्रसंग में यदि ओजमयी भाषा है तो कारुण्य की व्यंजना में भी शब्दों का चयन करुणोत्पादक है। भाषा की दृष्टि से लिट् लकार के प्रति कवि का अत्यधिक मोह प्रकट होता है। कवि ने अनुप्रास अलंकार के सुन्दर प्रयोग किये हैं। कहीं-कहीं यमक के प्रयोग भी मिलते हैं। श्लेष का सर्वथा अभाव है। अर्थालंकारों में उपमा, रूपक और अर्थान्तरन्यास का ही प्रयोग अधिक हुआ है। यह शतक काव्य उपजाति छन्द में उपनिबद्ध है।

भारत के प्राचीन गौरव गान के माध्यम से कवि ने सुप्त भारतवासियों को जागृत करने का प्रयास किया है। भारत के ऐश्वर्य के प्रति ईर्ष्यावान् विदेशियों के

समूह ने भारत की सम्पत्ति, नीति और संस्कृति को जो हानि पहुँचाई उसका उल्लेख

कर कवि देशवासियों के मन में ऐसा अदम्य उत्साह भरने का प्रयास करता है जिससे भारत पुनः शत्रुओं के हाथों पराजित न हो । वैदिक धर्म के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते हुए उसकी रक्षा की प्रेरणा देता है । संक्षेपतः काव्य के प्रत्येक श्लोक से देशभक्तिभाव की मन्दाकिनी प्रवाहित हो रही है ।

## ४- मातृभूलहरी

मातृभूलहरी[५] शतककाव्य डॉ0श्रीधर भास्कर वर्णेकर द्वारा लिखित है । प्रथम मंगलाचरणात्मक श्लोक में जहाँ किसी आराध्य देव की स्तुति की जाती है वहाँ प्रकृत काव्य में भारतभूमि की वन्दना की गयी है जिससे कवि की दृष्टि में भारतभूमि की महनीयता सिद्ध होती है । भाषा का लालित्य, भावों की स्फुट अभिव्यक्ति, कल्पना का असीम वैभव और इसके साथ-साथ अलंकारों का रसानुगुण सन्निवेश इन सबको मिलाकर इस काव्य का निर्माण हुआ है । भारतमाता की प्रशस्ति में कवि ने सुन्दर उत्प्रेक्षाएँ की हैं ।

भारतभूमि के सकल गुणों का वर्णन कर पाठकों को देशभक्त बनने की प्रबल प्रेरणा दी है । किसी राष्ट्र की भौगोलिकता राष्ट्रीयता की भावना को प्रभावित करती है । कवि ने भारतभूमि का वर्णन अलंकारों के माध्यम से किया है जिसे पढ़कर कोई भी भारतीय उस पर गौरव कर सकता है । भारत की प्राकृतिक संपदा का आत्मीयता के साथ किया गया स्मरण पाठकों की भारत के प्रति आस्था बढ़ाता है । कवि भारत के गौरवशाली अतीत का ऐसा चित्र खींचता है जिस पर कोई भी भारतीय गर्व कर सकता है । भारतभूमि के पाषाणखण्ड को इन्द्रासन से भी वरिष्ठ मानकर कवि ने अपने राष्ट्रप्रेम का परिचय दिया है । ।

प्रस्तुत काव्य पर पूर्ववर्ती काव्यों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । काव्य का प्रस्तुत पद्य-

चरित्रं शिक्षेरन् द्विजजनसकाशात् स्वकमिति
श्रुतो दिङ्नागैस्ते जननि ! सुयशो दुन्दुभिरवः ।।५८

मनुस्मृति के निम्नलिखित पद्य से स्पष्टतया प्रभावित है-

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ।।

६० वें श्लोक की **'तदद्यापि ग्राव-द्रव-करमहो ! वज्रदलनम्'** इस पंक्ति पर भवभूति के उत्तररामचरितम् की **'अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्'**-इस पंक्ति का प्रभाव स्पष्ट रूप से है । इस प्रकार अन्य कतिपय श्लोकों पर भी संस्कृत के प्रसिद्ध श्लोकों का प्रभाव देखा जा सकता है ।

## ५- भाति मे भारतम्

'भाति मे भारतम्'[६] डॉ0 रमाकान्त शुक्ल प्रणीत एक राष्ट्रीय भाव प्रधान शतक काव्य है । इसके १०८ श्लोकों में भारत की श्लाघनीय महत्ता का प्रतिपादन किया गया है । काव्य की भाषा सर्वत्र प्राञ्जल और सुमधुर है । पदावली कोमल,सानुप्रास तथा सुबोध होने के साथ-साथ हृदयग्राही भी है । माधुर्य गुण के व्यंजक वर्ण यथेष्ट मात्रा में उपलब्ध होते हैं । क्लिष्टता का सर्वथा परिहार होने के कारण भाषा प्रसादमयी है । अनुप्रास कवि को प्रिय है । काव्य का शीर्षक 'भाति मे भारतम्'-भी सानुप्रास ही है । अर्थालंकारों में प्रायः मुख्य अलंकारों का ही प्रयोग हुआ है । स्रग्विणी छन्द में लिखा गया यह काव्य भारत के सामाजिक,धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप को उद्‌घाटित करता है । वस्तुतः इस काव्य को पढ़कर पाठक भारत के प्रेम में रँग जाता है । भारत की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए कवि भारतीयों के मन में राष्ट्रीय चेतना का उद्‌बोधन करता है । कवि कहता है कि भारत कर्म, शील, धर्म तथा जीवन के मर्म को समझने की स्थली है,'कर्मभूः शर्मभूर्धर्मभूर्मर्मभूः' यहाँ सत्य,शिव और सुन्दर सुशोभित रहता है और वह पवित्र रामराज्य के लिए प्रसिद्ध है -

यत्र सत्यं शिवं सुन्दरं राजते
रामराज्यं च यत्राभवत्पावनम् ।
यस्य ताटस्थ्यनीतिः प्रसिद्धिं गता
भूतले भाति तन्मामकं भारतम् ।।

विश्व ने सदा इससे शिक्षा और प्रेरणा पाई है-

''येन विश्वं सदा शिक्ष्यते प्रेर्यते''

इसी प्रकार काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक सभी प्रदेशों का भावपूर्ण स्मरण (श्लोक संख्या ४७ - ५५) किस देशवासी को उद्वेलित नहीं करता । अपने देश के राष्ट्रीय पर्वों , भाषा, साहित्य, कला, संस्कृति का मुग्ध स्तवन कवि ने किया है । अपनी राष्ट्रभूमि के प्रति कवि का भक्तिभाव इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि भारत को विदेशी शासन से मुक्त कराने के लिए आत्मोसर्ग करने वाले वीरों को कृतज्ञता पूर्वक स्मरण किया गया है । कवि हिन्दू-मुसलमान में कोई भेद नहीं करता । उसने हिन्दू सैनिक के साथ-साथ मुस्लिम सैनिक की वीरता को भी स्मरण किया है । काव्य में कवि जहाँ अपने देश का उज्ज्वल रूप चित्रित करते हुए स्वाभिमान से भर जाता है, वहाँ कवि ने भारत के दैन्य रूप का चित्रण भी किया है । यह इस बात का संकेत है कि कवि को भारत का वह रूप वांछित है जिसमें कोई किसी का शोषण न करे।

इस काव्य पर कहीं-कहीं पूर्ववर्ती भागवत आदि का प्रभाव परिलक्षित होता है । काव्य का यह श्लोकांश-

> ''यत्र हिंस्रः स्वपापैः स्वयं हिंस्यते
> यत्र साधुः समत्वाद् भयान्मुच्यते'' (७५)

तुलनीय है-

> हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः
> साधुः समत्वेन भयाद्विविमुच्यते''
>
> (भागवत १०/७/३१)

इस काव्य पर जहाँ पूर्ववर्ती काव्यों का प्रभाव देखा जाता है वहाँ प्रस्तुत काव्य का प्रभाव परवर्ती रचनाओं पर भी पड़ा है । आचार्य वेदानन्द झा ने स्रग्विणी छन्द में ही ''भाति मे भारती भारतेऽनारतम्''-शीर्षक से कतिपय श्लोकों की रचना की है । 'भारते भासतां भारती संस्कृतिः'' -इस शीर्षक से लिखी कविता में डा0 वनेश्वर पाठक के द्वारा भारतीय संस्कृति का स्वरूप बताया गया है । कविता के विषय में डॉ0 पाठक ने ३.५.८२ को लिखे पत्र में डॉ0 रमाकान्त शुक्ल को लिखा कि उनकी कविता 'भूतले भाति मेऽनारतम्' का अनुसरण करके ही यह कविता बनाई है । इसी प्रकार, डॉ० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी कृत ''भारतं भारतं नौमि तं साम्प्रतम्'' (भारतवन्दनम् ), डॉ० राजदेवमिश्र कृत 'मामका भारतीयाः क्षणं श्रूयताम् ', डॉ० शम्भुनाथ आचार्य कृत 'भारतीयः स एवाद्य सङ्कीर्त्यते '' डॉ० मल्लिकार्जुन परड्डी कृत ''राष्ट्रवन्दनम् '' (दृश्यतामस्मदीयं महद् भारतम् ) ,कवीश राम कैलाश पाण्डेय कृत ''भारतम्'' (भारतं तन्नमामि प्रियं भारतम्) तथा डॉ० चन्द्रशेखर द्विवेदी कृत 'भा-रतं भारतं भातु भूमौ सदा' रचनाएँ 'भाति मे भारतम्' के कथ्य और छन्द का अनुसरण करती हैं । इनमें से अन्तिम को छोड़कर सभी रचनाएँ डॉ० शुक्ल द्वारा सम्पादित ''अर्वाचीनसंस्कृतम्'' में प्रकाशित हुई हैं । डॉ0 रमाकान्त शुक्ल द्वारा किये गये प्रस्तुत काव्य के पाठों के सदर्भ में डॉ0 शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी ने लिखा है कि कवि सम्मेलनों में इस अवसर पर श्रोताओं द्वारा 'पुनः पुनः' - ऐसा कहा जाता है-

> सत्कवेरोजपूर्णैः स्वरैर्भूषितं श्रोतृवृन्देषु रोमाञ्चसञ्चारकम् ।
> पाठकाले 'पुनः' शब्दसम्पूजितं तादृशं विद्यते भाति मे भारतम् ।।

## ६- जय भारतभूमे

जय भारतभूमे[७] डॉ0 रमाकान्त शुक्ल प्रणीत एक राष्ट्रीय शतक काव्य है । काव्य के १०८ श्लोकों को कवि ने सात शीर्षकों में विभक्त किया है । समग्र काव्य

विषय की सरलता और प्रस्तुति की सहजता से अधिक सरस बन पड़ा है। अभिव्यक्ति इतनी मुखर है कि पाठक भी उसी के अनुरूप भाव-जगत् में अवगाहन करने लगता है और लालित्यमयी भाषा सरल और सुबोध शब्दों के प्रयोग से युक्त है। माधुर्य एवं प्रसाद गुण के सर्वत्र दर्शन होते हैं। समास का भी अल्प प्रयोग है। अतः काव्य में वैदर्भी रीति की स्थिति स्वीकार की जा सकती है। लोकव्यवहार में प्रयुक्त हाने वाले तथा आञ्चलिक शब्दों के प्रयोग से भाषा अधिक लोकनिष्ठ हो गयी है। शब्दालंकारों में अनुप्रास और यमक का प्रयोग हुआ है। अर्थालंकारों में सर्वाधिक प्रशस्त उत्प्रेक्षा है।

सम्पूर्ण काव्य में भुजंगप्रयात, आर्या, तोटक, मालिनी, द्रुतविलंबित शार्दूलविक्रीडित छन्द प्रयुक्त हुए हैं। ताटङ्क तथा दिक्पाल जैसे अप्रचलित छन्दों का भी प्रयोग मिलता है। इस काव्य पर भी पूर्ववर्ती काव्यों का पर्याप्त प्रभाव है। एक उदाहरण देखिए-

कालिदास ने रघुवंशम् के पंचम सर्ग में एक स्थल पर कहा है कि मुनि लोग यज्ञादि अनुष्ठान करते हैं, हरिणियों के छोटे-छोटे बच्चे मुनियों की गोद की शय्या में ही अपनी नाभि के नालों को गिरा देते हैं-

क्रियानिमित्तेष्वपि वत्सलत्वादभग्नकामा मुनिभिः कुशेषु।
तदङ्कशय्याच्युतनाभिनाला कच्चिन्मृगीणामनघा प्रसूतिः॥

(रघुवंशम् ५/७)

इसी भाव को डॉ0 शुक्ल ने अपने काव्य में इस प्रकार लिखा है-

क्व च मुनिगणपूर्णा आश्रमाः सम्भवन्ति ?
नवकिसलयरागा यत्र चित्तं हरन्ति।
त्यजति ऋजुमुनीनां क्रोडमागत्य यत्र
नवमृगसुतवृन्दं नाभिनालान् स्व चित्रम्॥

इस काव्य में भारतदेश की प्रतिष्ठा, सुरक्षा और शालीनता के प्रति जनचेतना को प्रबुद्ध किया गया है और भारतीय सभ्यता, संस्कृति तथा ज्ञान-विज्ञान की महनीय राशि का गौरव के साथ उल्लेख किया गया है।

## ७- भारतशतकम्

डॉ0 राजेन्द्र मिश्र द्वारा प्रणीत भारतशतकम्[८] राष्ट्रीयभावनापरक शतक काव्य

है । श्लोकों की संख्या १०० है । अनुष्टुप् छन्द में उपनिबद्ध यह काव्य सरल एवं सुबोध है । शब्दालंकारों में अनुप्रास के सद्भाव से लालित्य की सृष्टि हुई है । काव्य की विषय-योजना ही इस प्रकार की है कि श्लेष और यमकादि के शब्दाभ्यास का कवि के पास अवसर ही नहीं था । उसका ध्यान मुख्यतः स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् हो रहे भारतीयों के चारित्रिक पतन और सांस्कृतिक  ास विरुद्ध आक्रोष व्यक्त करने में ही केन्द्रित रहा है । इसलिए जहाँ कहीं कोई अलंकारादि आया भी है, वह उसके द्वारा सायास उपनिबद्ध न होकर स्वतः ही काव्य में आविर्भूत हुआ है । अतः इस काव्य की गरिमा इन शास्त्रीय गुणों के अन्वेषण में नहीं प्रत्युत उसके हृदय की प्रबल भावनाओं की सहज संवेद्य और सफल अभिव्यक्ति में ही निहित है । इस प्रस्तुति की सफलता का मुख्य कारण है-भावानुकूल भाषा जो ध्वनि प्रभाव से ही विषय को स्पष्ट करने में सुतरां समर्थ है ।

काव्य को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि में अपने राष्ट्र भारत की सभ्यता, संस्कृति व धार्मिक विचारधारा के प्रति आदर की प्रचुर भावना है । यही कारण है कि वर्तमान भारत में अपनी सभ्यता व संस्कृति के भ्रष्ट रूप को देखकर कवि का हृदय अत्यन्त विषण्ण है । कुर्सीपरस्त राजनीति से भी भारत क्षुब्ध है । दुष्कृत्यों से भारत का गौरव नष्ट हो रहा है । वह भारत का उज्ज्वल रूप देखना चाहता है । राष्ट्र के प्रति कल्याण की यह कामना कविनिष्ठ राष्ट्रीय भावना को उजागर करती है ।

## (ख) राणाप्रताप सम्बन्धी

## ८- नृपप्रतापविजयम्

११२ श्लोकों में गुम्फित नृपप्रतापविजयम्[१] नामक शतक काव्य श्री हजारीलाल द्वारा लिखा गया है । इसमें राष्ट्र की स्वतन्त्रता के समर्थक तथा संरक्षक महाराणा प्रताप के मुगल सम्राट् अकबर के साथ हुए संघर्ष तथा अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम का वर्णन है । कवि की भाषा भावानुकूल है । काव्य में वैदर्भी रीति का निर्वाह हुआ है । काव्य में अलंकारों की भरमार नहीं है फिर भी उनका स्वाभाविक प्रयोग हुआ है । अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, अर्थान्तरन्यास, विशेषोक्ति, विभावना जैसे प्रचलित अलंकारों का प्रयोग किया गया है । सम्पूर्ण काव्य वसन्ततिलका छन्द में उपनिबद्ध है । पूर्ववर्ती काव्यों का प्रभाव इस काव्य पर भी पड़ा है ।

प्रस्तुत कृति में स्वतन्त्रता के महत्त्व पर बल दिया गया है । कवि ने देश द्रोह करनेवाले राजपूतों की निन्दा की है एवं राष्ट्र से प्रेम करने वाले राणा प्रताप तथा भामाशाह की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है ।

# (ग ) शिवाजी संबन्धी

## ९-शिवराजविजयम्

शिवराजविजयम्[१०] - नामक शतक काव्य के प्रणेता भी श्री हजारीलाल शास्त्री है । काव्य के १०१ श्लोकों में भारत राष्ट्र के वीरशिरोमणि छत्रपति शिवाजी द्वारा किये गये भारतीय गौरवपूर्ण ऊर्जस्वल कार्यकलापों का संक्षिप्त लेकिन मर्मस्पर्शी वर्णन है । काव्य में भावानुकूल वर्णों का संयोजन किया गया है । अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग है ।

कवि कहता है कि प्राणों की बाजी लगाकर आर्य धर्म तथा आर्य संस्कृति की रक्षा करने वाले शिवाजी की अद्‌भुत अमृतमयी वीर-कथा समस्त जनों को पवित्र करती है । राष्ट्रभक्त शिवाजी के शौर्यसम्पन्न कार्यों को पढ़कर पाठकों के मन में राष्ट्रीय भावना की उत्पत्ति होती है । माता जीजाबाई द्वारा सिंहल दुर्ग को जीतने की प्रेरणा देकर देशभक्ति की भावना की अभिव्यक्ति कराई है ।

# (घ) सावरकर सम्बन्धी

## १०- स्वातन्त्र्यवीरशतकम्

स्वातन्त्र्यवीरशतकम्[११] नामक शतक काव्य डॉ0 श्रीधर भास्कर वर्णेकर द्वारा लिखित है । इसके १०१ श्लोकों में कवि ने वीर सावरकर के गुण-गौरव का गान किया है । प्रस्तुत काव्य आठ स्तबकों में विभक्त है । कवि ने सुन्दर उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से सावरकर के चरित्र को ऊँचा उठाया है । एक स्थल पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि हनुमान् ने नभोमार्ग से जाकर समुद्र का उल्लंघन किया तो उसमें कौन सा आश्चर्य है । हनुमान वायुपुत्र है । 'आकाशात् वायुः'-इस उपनिषद्-वचन के अनुसार वायु आसमान का पुत्र और वायु पुत्र हनुमान आसमान का पोता है । उसने आकाशमार्ग से अर्थात् दादा की सहायता से समुद्र का उल्लंघन किया तो इसमें क्या आश्चर्य ? आश्चर्यजनक बात तो यह है कि भारत के एक असहाय पुत्र (सावरकर) ने अपने बाहु बल से समुद्र का उल्लंघन किया ।

यह काव्य इन्द्रवज्रा,उपेन्द्रवज्रा और उपजाति छन्दों में लिखा गया है । काव्य के अन्त में छन्द परिवर्तन की परम्परा के अनुसार इस काव्य में भी अन्तिम तीन श्लोकों में छन्द परिवर्तन है जहाँ क्रमशः द्रुतविलम्बित , शार्दूलविक्रीडित एवं मालिनी छन्द हैं । शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक और श्लेष तीनों का ही सुन्दर संयोग है। अर्थालंकारों में भी उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक इत्यादि प्रसिद्ध अलंकारों का प्रयोग हुआ है ।

कवि ने संस्कृत साहित्य को अपार वैदुष्य अर्पित किया है, जिसका प्रयोग

उन्होंने इस कृति में किया हैं। इन प्रयोगों से इस काव्य का माहात्म्य और गाम्भीर्य बढ़ गया है।

स्वातन्त्र्यवीर सावरकर द्वारा अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष का वर्णन होने के कारण इस काव्य में उन सभी तथ्यों का समावेश हो गया है जो काव्य में राष्ट्रीयता का आधान करते हैं।

# (ङ) महात्मा गाँधी सम्बन्धी

## ११- शोकश्लोकशतकम्

शोकश्लोकशतकम्[१२] नामक शतक काव्य श्री बदरीनाथ झा द्वारा रचित है। इसमें श्लोकों की संख्या १०० है। राष्ट्रनायक महात्मा गाँधी के देहावसान पर कवि ने वसन्ततिलका छन्द में हृदय के उद्‌गारों को इस काव्य में व्यक्त किया है। काव्य में व्यंजित कवि-हृदय की आकुलता से ऐसा प्रतीत होता है मानो कवि के हृदय को वाणी मिल गयी हो। परन्तु यह करुणा काव्य में राष्ट्र के प्रति प्रेम भावना उद्दीप्त करने में बाधक नहीं है। एक विशाल देश के पिता स्वरूप महापुरुष के निधन पर प्रकट शोक से उसके प्रति असीम श्रद्धाभाव अभिव्यंजित होता है। शोक प्रकट करते हुए कवि ने राष्ट्रपिता के गुणों की चर्चा की है जो पाठक को उस महान् विभूति के माध्यम से राष्ट्र के साथ जोड़ देती है।

## १२- श्रीगान्धिचरितम्

श्रीगान्धिचरितम्[१३] श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल द्वारा रचित राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत एक शतक काव्य है। इसमें १११ श्लोक हैं। इसमें महात्मा गाँधी के चरित्र के कुछ महनीय पक्षों का संक्षेप में चित्रण है। भाषा सरल, सरस, माधुर्यगुणप्रधान एवं रचना प्रसादमयी है। इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, अनुष्टुप्, वसन्तलिका और मालिनी छन्दों का प्रयोग हुआ है। गाँधीजी के उदात्त गुणों, देश के प्रति प्रेम व बलिदान को स्पष्ट कर पाठकों के हृदय में राष्ट्रीय भावना जागृत करने का सफल प्रयास किया गया है।

## १३- गान्धिगौरवम्

गान्धिगौरवम्[१४] नामक शतक काव्य के रचयिता डॉ0 रमेशचन्द्र शुक्ल हैं। इस शतक काव्य में महात्मा गाँधी के गौरवाधायक तथा राष्ट्रोपयोगी कार्यों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। प्रचलित छन्दों तथा अलंकारों का प्रयोग हुआ है। डॉ0 शुक्ल ने अपनी इस कृति में चरितनायक के व्यक्तिगत गुणों से कहीं अधिक उसके राष्ट्रीय भावों पर प्रकाश डाला है। भारत के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक

और राष्ट्रीय परिवेश में उनके योगदान का आकलन किया गया है ।

# (च) जवाहरलाल सम्बन्धी

## १४- जवाहरतरङ्गिणी

डॉ0 श्रीधर भास्कर वर्णेकर द्वारा लिखे गये 'जवाहरतरङ्गिणी'[१५] नामक शतक काव्य में १०२ श्लोक हैं । अपने ग्रन्थनायक के प्रशंसनीय कार्यों का वर्णन श्री वर्णेकर जी ने प्रभावशाली ढंग से किया है जिससे उनकी प्रखर वर्णना तथा उच्च कल्पना-वैभव के दर्शन होते हैं । पदों का लालित्य दर्शनीय है । प्रचलित अलंकार ही प्रयुक्त हुए हैं । उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग सर्वाधिक है । श्री वर्णेकर ने पं० नेहरू के देश के प्रति किये गये महनीय कार्यों से प्रभावित होकर उनके व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया है । काव्य के षष्ठ पद्य में '**तवाकृतिर्निश्चलदेशभक्तिः**'- कहकर कवि ने उनके समस्त जीवन को ही निश्चल देशभक्ति का निदर्शन स्वीकार किया है ।

# (छ) इन्दिरा सम्बन्धी

## १५- इन्दिराविजयवैजयन्ती-इन्दिराप्रशस्तिशतकम्

श्री हजारीलाल ने इन्दिराविजयवैजयन्ती[१६] तथा इन्दिराप्रशस्तिशतकम्[१७] नामक दो शतक काव्य लिखे जिनमें श्रीमती इन्दिरा गाँधी के शासन-काल की उपलब्धियों की चर्चा करते हुए इन्दिरा से दुराचरण को हटाने की प्रार्थना की है । इ0 प्र0 शतकम् में ११४ श्लोक हैं । इसी काव्य के आगे १२ श्लोक और जोड़कर 'इन्दिराविजयवैजयन्ती' -नामक शतक काव्य रचा ।

## १६-इन्दिराकीर्तिशतकम्

श्रीकृष्ण सेमवाल 'इन्दिराकीर्तिशतकम्'[१८] के रचयिता हैं । इसमें १०० पद्यों में कवि ने श्रीमती गाँधी के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं दृढ शासकत्व का समुचित रूप से निरूपण कर उनका अभिनन्दन किया है ।

## १७- इन्दिरायशस्तिलकम्

इन्दिरायशस्तिलकम्१८ डॉ० रमेशचन्द्र शुक्ल लिखित शतक काव्य है । इस काव्य के ११४ श्लोकों में श्रीमती गाँधी के गुणों की चर्चा करते हुए उनकी राजनैतिक सफलताओं का उल्लेख किया गया है । यथास्थान भारत के गौरवमय चित्र का भी चित्रण किया गया है ।

## १८- इन्दिराशतकम्

इन्दिराशतकम्[२०] नामक शतक काव्य श्रीरामकृपालु शास्त्री द्वारा लिखा गया है । इसमें १३७ श्लोकों में लोकप्रिय नेत्री श्रीमती गाँधी के जीवन-गुणों एवं कार्यों की भावाभिव्यंजक स्तुति की गयी है । पूरे काव्य में १४ छन्दों का प्रयोग है ।

## १९- इन्दिराशतकम्

श्रीरामकृष्ण शास्त्री अव्यय प्रणीत इन्दिराशतकम्[२१] काव्य में १०५ श्लोक हैं। इसमें नेहरूवंश की तथा भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम की संक्षेप में चर्चा करते हुए इन्दिरा गाँधी के राजनैतिक जीवन पर प्रकाश डाला गया है ।

## २०- इन्दिराविरुदम्

इन्दिराविरुदम्[२२]नामक शतक काव्य श्री विष्णुदत्त शर्मा द्वारा लिखित है । इसमें १३१ श्लोकों में इन्दिरा जी के गुणों एवं कार्यों की स्तुति की गयी है । श्रीमती गाँधी के सभी कार्य राष्ट्र के लिए समर्पित थे, अत एव यह काव्य राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठ बनने की प्रेरणा देता है ।

## २१- कूहा

डॉ० उमाकान्त शुक्ल द्वारा ११७ श्लोकों में रचित 'कूहा[२३] नामक शतक काव्य में श्री राजीव गाँधी द्वारा हिमालय की चोटियों पर श्रीमती इन्दिरा गाँधी की अस्थियों के विसर्जन के समय राजीव गाँधी द्वारा अपनी माता का भावपूर्ण स्मरण वर्णित है । काव्य के प्रारम्भ में हिमालय के गौरव और शोभा का वर्णन इस शतक काव्य की विशेषता है । काव्य में आयुधों की स्पर्धा त्यागकर सम्पूर्ण भूमि को एक नीड के रूप में देखने की बात की गयी है जो पाठक के मनोमस्तिष्क पर निश्चय ही भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा के भाव पनपाती है ।

## २२- इन्दिराप्रशस्तिशतकम्

इन्दिराप्रशस्तिशतकम्[२४] नामक शतक काव्य की लेखिका श्रीमती शान्ति राठी हैं । इसमें ११६ श्लोक हैं । इसमें श्रीमती गाँधी द्वारा देश की सेवा में किये गये कार्यों का परिचय दिया गया है ।

उपर्युक्त इन्दिरा गाँधी सम्बन्धी शतक काव्य इसी सन्दर्भ में राष्ट्रीयचेतनावर्द्धक हैं कि इसमें एक राष्ट्रीय स्तर के व्यक्तित्व को लेकर उसका स्तवन किया गया है । किन्हीं काव्यों में भारतीय संस्कृति के प्रति आदर प्रकट किया गया है । डॉ० उमाकान्त शुक्ल का 'कूहा' नामक काव्य 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसे

आदर्शों के प्रति निष्ठा व्यक्त करता है ।

## (ज) प्रकीर्ण

## २३- श्रमगीता

'श्रमगीता'[२५] श्रम की महत्ता पर प्रकाश डालने वाला शतक काव्य है । इसके प्रणेता डॉ० श्रीधर भास्कर वर्णेकर हैं । इसमें ११८ श्लोक हैं ।

काव्य में सर्वमान्य महात्मा गाँधी के माध्यम से व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के जीवन में श्रम की महिमा को कवि ने प्रतिपादित किया है । इसकी पृष्ठभूमि में कवि की राष्ट्र के प्रति कल्याण की कामना प्रेरणा रूप में निहित है । इसलिए इस काव्य को राष्ट्रीयभावनापरक शतक काव्यों में सम्मिलित किया गया है । काव्य में श्रम की महिमा गीता की शैली में गायी गयी है, अतः इस काव्य का नाम 'श्रमगीता'-अन्वर्थक ही है ।

---

### सन्दर्भ

१- विभूतिवन्दनास्तोत्रम्, मन्दोर्मिमाला नामक काव्य संग्रह में प्रकाशित, डॉ0 श्रीधर भास्कर वर्णेकर, स्वाध्याय मण्डल, आनन्दाश्रम, पारड़ी, १९५६
२- भारतशतकम्, शास्त्री (महादेव) देवभाषा प्रकाशन, दारागंज, प्रयाग
३- भारतशतकम्, पाण्डेय (श्री रामकैलाश) वाराणसेय संस्कृत संस्थान, सी २७/६४ जगतगंज, वाराणसी-२२१००१, द्वितीय संस्करण, १९८४
४- वही, ९,५८
५- मातृभूलहरी, डॉ0 वर्णेकरप्रणीत विवेकानन्दविजयम् नाटक में संकलित, अंक सप्तम, प्रकाशिका-विवेकानन्दशिलास्मारक समिति, १२ पिल्लेयार कोईल मार्ग टिप्लिकेन, मद्रास-५ जनवरी १९७२
६- भाति मे भारतम्, डॉ0 रमाकान्त शुक्ल, देववाणी-परिषद्, दिल्ली १९८०
७- जय भारतभूमे, डॉ0 शुक्ल (रमाकान्त) देववाणी-परिषद्, ६ वाणी विहार, नई दिल्ली, ११००५९, १९८१
८- भारतशतकम्- डॉ0 राजेन्द्र मिश्र, सर्वगन्धा पत्रिका में प्रकाशित, अक्टूबर तथा नवम्बर अंक, १९८४ माईजी मन्दिर, अशरफाबाद लखनऊ-२२६००३
९- शिवप्रतापविरुदावली- नामक खण्ड काव्य में प्रकाशित, हजारीलाल शास्त्री, मु0 पो0 घिलावड, जिला-सोनीपत, हरियाणा, श्रावणी २०३० विक्रम ।
१०- शिवराजविजयम्, हजारीलाल शास्त्री, शिवप्रतापविरुदावली-नामक खण्ड

काव्य में प्रकाशित, मु0 पो0 घिलावाड, जिला-सोनीपत, २०३० विक्रम

११- स्वातन्त्र्यवीरशतकम्, डॉ0 श्रीधर भास्कर वर्णेकर, उषा प्रकाशन, स्वाध्यायमण्डल पारड़ी, जिला-सूरत, १९५८

१२- शोकश्लोकशतकम्, बदरीनाथ झा, स्थल-विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर, १९५३

१३- श्रीगान्धिचरितम्, शारदा-सदन, ३८ राधाकृष्ण, खुरजा, उत्तरप्रदेश, १९६९

१४- गान्धिगौरवम्, डॉ0 शुक्ल (रमेशचन्द्र), संस्कृत परिषद्, अलीगढ १९७९

१५- जवाहरतरङ्गिणी, डॉ0 वर्णेकर (श्रीधर भास्कर) वि0 ना वाडेगांवकर उद्यम कमर्शियल मुद्रणालय, वेंकट हायकोर्ट रोड, धर्मपेठ, नागपुर- १, १९५८

१६-१७ इन्दिराविजयवैजयन्ती तथा इन्दिराप्रशस्तिशतकम्, श्री हजारीलाल शास्त्री,मु0 पो0 घिलावड़, जि0 सोनीपत, हरियाणा, २६ जनवरी १९७६

१८- इन्दिराकीर्तिशतकम्, श्रीकृष्ण सेमवाल, भारतीय भाषा सङ्गम, २१, नार्थ एवेन्यू, नयी दिल्ली १९-११-१९७६

१९. इन्दिराप्रशस्तितिलकम्, डॉ० रमेशचन्द्र शुक्ल, शारदा सदन, मुजफ्फरनगर, १९७६

२०. इन्दिराशतकम्, श्री रामकृपालु शास्त्री, प्रकाशक-रतिराम शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार मेरठ-२

२१. इन्दिराशतकम्, श्री रामकृष्ण शास्त्री अव्यय, श्रीराम प्रकाशन, १२२ श्री रघुनाथपुरम्, जम्मू-१८०००१, नवंबर १९८४

२२. इन्दिराविरुदम्, श्री विष्णुदत्त शर्मा, विश्वनाथ प्रकाशन, ११० निकट थाना, सदर, मेरठ, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९८४

२३. कूहा, डॉ० शुक्ल (उमाकान्त), देववाणी-परिषद् दिल्ली, १९८४

२४. इन्दिराप्रशस्तिशतकम्- राठी (शान्ति), प्रकाशक-मदनलाल जैन, सोनिपत, मुद्रक-निक्की प्रिण्टिंग प्रेस, सी/21 प्रेमनगर, एटलस रोड, सोनीपत (हरियाणा)

२५. श्रमगीता, डॉ0 श्रीधर भास्कर वर्णेकर, प्रकाशक-तुकाराम जी दादा, गीताचार्य, श्रमगिरि, पो0 भू0 बैकुण्ठ त0 ब्रह्मपुरी, जि0 चन्द्रपूर

# बीसवीं शती के संस्कृत दूतकाव्य

डॉ० नरेन्द्र देव

संस्कृत साहित्य में दूतकाव्य की स्वतन्त्र विधा का उद्भावन महाकवि कालिदास ने अपने महनीय खण्डकाव्य 'मेघदूत' से किया है। यह काव्य अपनी पूर्ण गरिमा एवं कल्पना प्रचुरता से प्रत्येक साहित्यानुरागी के हृदय में इतना गहरा पैठ जाता है कि पाठक पढ़ते-पढ़ते स्वयं किसी अभिनव दूतकाव्य की सृष्टि के लिए लालायित हो उठता है। यही कारण है कि आज से दो हजार वर्ष पूर्व विरचित मेघदूत के अनुकरण में प्रायः दो सौ से अधिक दूतकाव्यों का निर्माण हो चुका है।

बीसवीं शती को मेघदूत के अनुकरण में लिखे गये दूतकाव्यों के लिए एक नया कीर्तिमान कहा जा सकता है। इसके साथ ही देश में प्रचलित स्वातन्त्र्य प्राप्ति के प्रयास और स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय जन-जीवन की गतिवधियों का जैसा भाववाही चित्रण इस शती के काव्यों में मिलता है, वह भी आश्चर्यकारक है। ज्यों-ज्यों हमारे देश की ऐतिहासिक और भौगोलिक परिस्थितियों में परिवर्तन या परिवर्द्धन आता गया उसका साहित्यिक समीक्षण भी इस शती के दूतकाव्यों में सहज परिलक्षित होता है।

राष्ट्रीयता और सामाजिक कर्तव्य के प्रति जागरूक संस्कृत कवि जब दूतकाव्य की रचना में प्रवृत्त होता है तो निश्चित ही इसमें सात्त्विक सन्देश भी संयोजित कर देता है। मानवता के लिए जिस नैतिक शिक्षा की आज परम आवश्यकता प्रतीत होती है वह भी इन काव्यों से ओझल नहीं हुई है। चाहे कवि पूर्व का निवासी हो अथवा उत्तर या दक्षिण का-सभी की एक ही भावना इन काव्यों में मूर्त्तिमती हुई है।

मनुष्य मात्र के लिए चिरन्तन सत्य का सङ्केत-'सर्वे भवन्तु सुखिनः-' की विश्वकल्याण भावना इन काव्यों में अभिव्यक्त दिखायी देती है। साथ ही रचना-विधि में अनेक रूप से नवीनता लाने का जैसा प्रयास इस शती के आयाम में हुआ है, वह भी चिर स्मरणीय है। युगानुकूल प्रवृत्तियों को भिन्न-भिन्न परिवेशों में अङ्कित करने के लिए विप्रलम्भ शृङ्गार के अतिरिक्त हास्य रस को भी बहुधा कवियों ने अपनाया है। कुछ दूतकाव्य तो ऐसे भी बने हैं जिनमें स्वदेश की सीमा को लाँघकर विदेश की भूमि का वृत्तान्त भी अङ्कित हुआ है। इन्ही सब भावनाओं का सङ्कलित रूप निम्नलिखित बीसवीं शती के दूतकाव्यों की तालिका से परखा जा सकता है।

| काव्य नाम व पद्यसंख्या | कविनाम |
|---|---|
| १- हंससन्देश १७१ | अज्ञात केरलीय कवि |
| २- मानससंन्देश - | विज्ञभूरिवीर राघवाचार्य |
| ३- मेघदौत्यम् २०० | कविकीर्तित्रैलोक्यमोहन गुह |
| ४- श्रीकृष्णदूत - | श्रीसूर्यनारायण शर्मा |
| ५- शुकदूत (महाकाव्य) १० सर्ग | श्रीनन्दकिशोर चन्द्र गोस्वामी |
| ६- पिकदूत - | श्री अम्बिकाचरणदेव शर्मा |
| ७- कीरसन्देश १२३ | श्री विद्वान् सूर्यनारायण शास्त्री |
| ८- भृङ्ग-सन्देश ७३ | श्री माङ्गोट्टशेरिकृष्ण नम्बूतरिपाद |
| ९- मधुकरदूत - | चक्रवर्ती राजगोपाल |
| १०- अलकामिलनकाव्य दो सर्ग | श्री द्विजेन्द्रलाल शर्मा |
| ११- मेघप्रतिसन्देश १६४ | श्री मन्दिकल राम शास्त्री |
| १२- मुद्गरदूत १४८ | म० म० रामावतार शर्मा |
| १३- हनुमद्दूत १२१ | श्री नित्यानन्द शास्त्री |
| १४- हनुमत्सन्देश १२१ | श्री मधुसूदन तर्कवाचस्पति |
| १५- कामदूत २६ | श्रीविष्णुदत्त एवं हरिदत्त नौटियाल |
| १६- हंसदूत ८३ | कवि जयेश जे० बी० पल्लेवार |
| १७- अद्भुतदूत (महाकाव्य) ७४१ | श्री जग्गूबकुल भूषण |
| १८- राष्ट्रिय मेघदूत - | श्री वल्लभदास भगवान जी गणोत्रा |
| १९- स्वप्नदूत ७८ | श्री प्रबोधकुमार मिश्र |
| २०- प्रतिसन्देश ८ | श्री म० ना० जोशी |
| २१- देवदूत १३४ | श्री सुधाकर शुक्ल |
| २२- वचनदूत १२१ | पं० मूलचन्द शास्त्री |
| २३- पान्थः १०२ | प्रा० नृसिंह प्रसाद सेन |
| २४- पत्रदूत १६३ | डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी |
| २५- पुत्रदूत - | डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी |
| २६- पादत्राणदूत - | डॉ0 रुद्रदेव त्रिपाठी |
| २७- भारतसन्देश २८२ | डॉ० शिवप्रसाद भारद्वाज |

२७- भारतसन्देश २८२ डॉ० शिवप्रसाद भारद्वाज
२८- कर्गजशरदूत - श्री रवीन्द्र कुलकर्णी
२९- शुनकदूत ३० श्री के० के० कृष्णमूर्ति
३०- चकोरदूत ११७ पं० परमानन्द चतुर्वेदी
३१- रेडियोदूत ४७ श्री परमानन्द चतुर्वेदी
३२- शुकदूत ४० डॉ० एन० सी० शेठ
३३- कामदूत १६८ श्री एच० ए० शाण्डिल्य
३४- झञ्झावातदूत - श्री श्रुतिदेव शास्त्री
३५- दक्षिणानिलदूत - डॉ० भोलाशङ्कर व्यास
३६- मरुत्सन्देश २८१ पुलवर्ति श्रीशरभाचार्य
३७- मित्रदूत ९९ श्री दिनेशप्प्रसाद पाण्डेय
३८- सम्पातिसन्देश श्री कृष्णप्रसाद घिमिरे
(महाकाव्य) ३७६ (१२सर्ग)
३९- प्लवङ्गदूत ११३ श्री डा0 वनेश्वर पाठक
४०- गन्धदूत १६० डा0 परमानन्द शास्त्री
४१- मयूखदूत १११ प्रो० रामाशीष पाण्डेय
४२- हृदयदूत ११५ श्री हरिहर भट्ट
४३- मनोदूत - मठेश इन्दिरेश भट्ट
४४- भक्तिदूत २३ श्री कालीप्रसाद
४५- मयूरदूत - श्री धर्मधुरन्धर सूरि
४६- पिकसन्देश - श्रीदाधीच ब्रह्मदेव
४७- रामसन्देश १५३ श्री राजराजेश्वर तीर्थ
४८- चकोरसन्देश ११० श्री पेरुसूरि
४९- शारिकासन्देश
(सिंहली भाषा में) - मूल लेखक श्री राहुल संघराज
(संस्कृत अनुवादक) - श्री आर्यदास कुमार दास
५०- मित्रदूत ६२ डा0 इच्छाराम द्विवेदी
५१- दूतप्रतिवचनम् १०९ डा0 इच्छाराम द्विवेदी
५२- मृगाङ्कदूत १२९ डॉ० अभिराज राजेन्द्र मिश्र

| | |
|---|---|
| ५३- मलयदूत - | श्री प्रबोधकुमार मिश्र |
| ५४- द्विजदूत - | श्री श्रीजीव न्यायतीर्थ |
| ५५- तरङ्गदूत- | श्री कृपाराम त्रिपाठी |

उपर्युक्त तालिका में संगृहीत दूतकाव्यों की संख्या यहीं समाप्त नहीं होती, अपि तु इस दिशा में और भी दूतकाव्य लिखे गये हैं। संस्कृत के कवियों की भावना आत्म प्रशंसा से विमुख रहते हुए सेवा करने की भी सदा से रही है। और दूर-दूर के ग्रामों और नगरों में निवास करने वाले संस्कृत रचनाकारों की आर्थिक स्थिति भी उतनी सुदृढ़ नहीं होती है कि वे अपने साहित्य को मुद्रित करा कर समाज के समक्ष प्रस्तुत कर सकें।

बीसवीं शती के मध्यकाल में बहुत से उत्साहसम्पन्न विद्वानों ने संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया था, किन्तु उत्तरोत्तर बढ़ती महँगाई के कारण वे असमय में ही अस्त हो गयीं। उन पत्रिकाओं में जो अंश छप गया, उसी के आधार पर कुछ दूतकाव्यों का नाम निर्देश ज्ञात हुआ है, किन्तु पूरी रचना की स्थिति का परिज्ञान नहीं हो सका। इस दिशा में हमने अपने शोधग्रन्थ 'मेघदूत एवम् परवर्ती दूतकाव्य' में विस्तार से लिखा है, तथापि यह कहना दुस्साहस मात्र होगा कि बीसवीं शती में अब तक केवल इतने ही दूतकाव्य निर्मित हुए हैं।

विपुला पृथ्वी और अनन्त संस्कृतज्ञों की कृतियों का इदमित्थम् रूप में सङ्कलन अत्यन्त दुरूह कार्य है। विद्वज्जनों से हमारा अनुरोध है कि वे इस दिशा में और भी जो दूतकाव्य बने हों उनसे हमें कृपापूर्वक परिचित करायें।

# बीसवीं शती के समस्यापूर्ति-रूप संस्कृत काव्य और कवि

आचार्य पं0 सदानन्द त्रिपाठी 'दयालुः'

**'समस्यापूर्ति'** एक ऐसी विधा है, जिसका आश्रय लेकर प्राचीन साहित्यकारों ने अपनी प्रतिभा को उर्वरित ही नहीं किया, अपि तु उसके माध्यम से अपने वैदुष्य को उच्च शिखर तक पहुँचाने में भी सफलता प्राप्त की । 'समस्यापूर्ति' की प्रक्रिया के प्रारम्भिक दर्शन हमें वेदमन्त्रों में बहुधा प्राप्त होते हैं । ऐसे अनेक सूक्त वेदों में प्रस्तुत हैं, जिनके चतुर्थ चरणों में एक प्रकार की समानता है और मन्त्र के तीन चरणों में विविध प्रकार के वर्णनों का समावेश हुआ है । सम्भवतः उन्हीं से प्रेरणा लेकर संस्कृत कवियों ने 'समस्यापूर्ति' को आधार बनाकर उसे बहुत से आयामों में प्रस्तुत किया । यही कारण है कि शास्त्रीय लक्षण निर्धारण करने वाले प्राचीन काव्यशास्त्र के आचार्यों ने शब्दालङ्कार के एक प्रमुख भेद 'चित्रालङ्कार' के उपभेदों में इस विधा को स्थान दिया और भविष्य के रचनाकारों के लिए लक्षण भी निर्धारित किये ।

'शब्दकल्पद्रुमकार' ने **'समस्या'** शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है- **'समसनं उक्त्या संक्षेपणम्; सम् + असै + ण्यत् (संज्ञापूर्वकत्वात् वृद्ध्यभावः ।) ''समस्यते संक्षिप्यतेऽनयेति समस्या;'' अस्यु इर्क्षेपे शीव्रजेत्यादिना क्यप् ।।''** इस 'समस्या' शब्द के अन्य तीन पर्याय भी हैं- १. समासार्था २. समस्यार्था ३. समाप्त्यर्था ।

'अमरकोषकार' ने इस 'समस्यापूर्ति' का लक्षण उद्धृत करते हुए कहा है कि- **समस्या तु समासार्था** । (अमरकोष/प्रथमकाण्ड/श्लोक ७/प्रथमपाद ।) 'जो समासार्थ है वह 'समस्या' है । अर्थात् यह कवियों की काव्यरचना-शक्ति जानने के लिए संक्षेप में पढ़ी गयी रचना का नाम है ।

'अग्निपुराणकार' ने चित्रालङ्कार के सात भेदों में एक भेद ''समस्यापूर्त'' को महत्त्वपूर्ण स्थान देते हुए उसका निम्न प्रकार से लक्षण किया है-

सुश्लिष्टं पद्यमेकं यन्नानाश्लोकांशनिर्मितम् ।
सा 'समस्या' परस्यात्मपरयोः कृतिसङ्करात् ।।

(अग्निपु0 ३४३/३१)

अर्थात् विभिन्न श्लोकांशों से सुनियोजित पद्य 'समस्या' कहलाती है तथा इसके 'आत्मसङ्कर' अर्थात् पद्य के अंशों का सङ्कर और परसङ्कर अर्थात् 'अन्य पदों का मिश्रण या सङ्कर' ये दो भेद होते हैं।

'राजशेखर' ने कवि की आहोरात्रिक चर्या का निर्देश करते हुए लिखा है कि 'कवि भोजन के पश्चात् काव्यगोष्ठी का आयोजन करके उसमें कभी प्रश्नों का विभेदन और कभी काव्य समस्याओं की धारणा करे। १. काव्यसमस्याधारण, २. मातृकाभ्यास और ३. चित्रायोग रूप तीन आयामों से गोष्ठी में काव्याभ्यास सम्बन्धी बल प्राप्त होता है। (काव्यमीमांसा/दशम अध्याय)

महाकवि क्षेमेन्द्र समस्यापूर्ति के लिए 'चमत्कारविधायक' वाणी की नवार्थ चर्चा को आवश्यक मानते हुए पद, पाद और पादावशेष-सम्पूर्ति की अभिलाषा को सदा जागरित रखने का आग्रह करते हैं। यह अभ्यास पदसन्निवेश, वाक्यार्थशून्यता और श्लोक-परावृत्ति से करना चाहिए। ऐसा अभ्यास करने वाले कवि छायोपजीवी, पदकोपजीवी, पादोपजीवी आदि प्रारम्भ में होते हैं और क्रमशः अपने उन्मेष से कवित्वजीवी बनकर सकलोपजीवी बन जाते हैं।' -(कविकण्ठाभरण/प्रथम सन्धि)

कवि शिक्षा-कथन में इस विधा के सम्यग् ज्ञानार्थ क्षेमेन्द्र कहते हैं कि-

**वृत्तपूरणमुद्योगः पाठः परकृतस्यथ च।**

**काव्याङ्गविद्याधिगमः समस्यापरिपूरणम्** ॥ (कविकण्ठा०/द्वितीय सन्धि/३)

अर्थात् वह कवि वृत्तपूर्ति (छन्दःपूर्ति) का उद्यम करे और अन्य कवियों की रचनायें पढ़े। वह काव्य की अन्य विधाओं का ज्ञान प्राप्त करे और 'समस्यापूर्ति' का निरन्तर प्रयत्न करे।

'काव्यकल्पलता-वृत्तिकार' अमरचन्द्र यति ने समस्यापूर्ति में असम्भव समस्याओं की पूर्ति के लिए कतिपय उपाय दिखलाये हैं जिनमें कल्पादि-कल्पान्त वस्तु प्रतिपादन, लघु को दीर्घ और दीर्घ को लघु बनाने, तीनों जगत् के पदार्थों को किसी प्रकार विशेष से विपरीत बनाने, यदि शब्द, वात्सल्यादि और स्वप्नादि के द्वारा समस्याओं की पूर्ति का सोदाहरण विवेचन किया है।

-(काव्यकल्पलतावृत्ति/सप्तम स्तबक, चौखम्बा प्रकाशन संस्करण)

'वाग्भट (द्वितीय) ने 'काव्यानुशासन-प्रथमाध्याय' में ''समस्यापूर्ति'' के अनेक प्रकारों पाद, पादद्वय, पादत्रय, पदपरिवृत्ति तथा अर्थशून्यपदाभ्यास आदि पर सविस्तार प्रकाश डाला है।

'कविकल्पलताकार देवेश्वर' तथा 'हेमचन्द्राचार्य' ने अपने 'काव्यानुशासन' की 'स्वोपज्ञ टीका' में समस्यापूर्ति सम्बन्धी प्रकारों तथा रचना उपायों के वर्णन में पूर्वाचार्यों के सिद्धान्तों का ही अनुकरण किया है। इस विधा से सम्बन्धित सङ्कलन

'शार्ङ्गधरपद्धति' के 'समस्याख्यान' तथा प्रकीर्ण सुभाषित-ग्रन्थों में अधिकांश रूप में विद्यमान हैं, जो कि इसकी श्रीवृद्धि में सहायक हैं।

## चित्रालङ्कार के भेद-प्रभेद

पूर्वाचार्यों की सर्वमान्य घोषणानुसार जिस किसी भी अलङ्कार में उसकी रमणीयता तथा वैशिष्ट्य के उत्पादक तत्त्व निहित रहेंगे, वह अलङ्कार अवश्यमेव स्वपरिभाषित प्रणालियों के अनुसार भेद तथा प्रभेदों को प्राप्त होकर पर्याप्त सुविस्तार को नवीनतम आयामों के साथ प्राप्त करेगा। 'चित्रालङ्कार' अपने नाम को सार्थक करता हुआ १- चित्ताकर्षण, २- विन्यासवैचित्र्य ३- विस्मयोत्पादकता, ४- शब्दपरिवृत्त्यसहिष्णुत्व, ५- कुतूहलोत्पादक वाग्बन्ध, ६- वर्णविच्छित्ति, ७- कौतुक एवं ८- क्रीडादिगुणस्थिति आदि तत्त्वों के साथ स्वर, व्यञ्जन, पद और वाक्यादि की वैशिष्ट्यपूर्ण सुनिर्धारित विन्यास-प्रक्रिया, स्थानादिनियमन, संयोजना तथा पठन पद्धति जैसी सर्वोत्कृष्ट प्रणालियों के कारण ही उसी प्रकार अनेकानेक भेद और प्रभेदों को प्राप्त होकर चतुर चित्रकवियों की लेखनी से सुविस्तृतता को प्राप्त कर सका है। संक्षेपतः 'चित्रालंकार' के भेद-प्रभेदों की सूचना निम्नानुसार है-

| भेद | प्रभेद |
|---|---|
| (१) **दुष्कर चित्र (दण्डी)** | १- गोमूत्रिका २- अर्द्धभ्रम ३- सर्वतोभद्रादि। |
| (२) **सुकरचित्र (दण्डी)** | १- स्वर नियमन २- स्थाननियमन ३- वर्णनियमन ४- गति चित्र ५- प्रहेलिकाचित्र ६- च्युत चित्र ७- गूढ़ चित्र ८- प्रश्नोत्तर चित्र ९- ''समस्याचित्र'' १०- भाषाचित्र ११- आकारचित्रादि ॥ |

'चित्रालङ्कार' के पूर्वोक्त भेदों के पश्चात् विस्तारभयात् संक्षेपतः विवेच्य ''समस्या चित्र'' के प्रभेदों का नाम निर्देश मात्र करते हैं जिनकी संख्या अद्यावधि ज्ञात सन्दर्भों में निम्नवत् है- (१) मातृकाक्रमपूर्ति चित्र, (२) अक्षर-पंक्तिपूर्ति (३) असम्भव की सम्भव रूप पूर्ति, (४) द्विपाद और त्रिपादगत चित्र, (५) पूर्वार्द्ध समस्या, (६) तृतीय पाद समस्यापूर्ति, (७) पदैक समस्या, (८) आद्यन्त पाद समस्या, (९) चतुःपादादिगता सूत्रसमस्या, (१०) एकसूत्रान्त्य पादसमस्या, (११) समानार्थक शब्दपूर्ति रूप समस्या, (१२) पदपरिवृत्ति रूप समस्या, (१३) पादपरिवृत्ति रूप समस्या, (१४) पदपूर्तिरूप समस्या, (१५) चतुर्थ चरण पूर्तिरूप (पद्य एवं काव्य), (१६) भिन्न-भिन्न चरणपूर्ति, (१७) अन्य भाषा पद पूर्ति समस्या।

## समस्यापूर्तिरूप कृति-परिचय



संस्कृत-साहित्य अपनी पूर्ववर्ती साहित्यसम्पदा को सुरक्षित रखते हुए उसकी

निरन्तरता को आगे बढ़ाने में कभी निराश नहीं रहा है। साहित्यकारों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार साहित्य की तत्कालीन परम्पराओं को आत्मसात् करते हुए उसमें भी कुछ न कुछ अपनी प्रतिभा से नवीनता लाने में पूरा मनोयोग दिया। इस दृष्टि से यहाँ हम बीसवी शताब्दी की समस्यापूर्ति रूप कृतियों का और प्रकीर्ण रूप में विरचित पद्यों का दिङ्मात्र निदर्शन प्रस्तुत कर रहे हैं।

## महाकाव्यात्मक समस्यापूर्ति

पूर्ववर्ती जैनाचार्य द्वारा स्वीकृत उपर्युक्त प्रक्रिया का बीसवीं शती में अनुसरण प्रायः नहीं हुआ है।

## खण्डकाव्यात्मक समस्यापूर्तियाँ

खण्डकाव्यों के रूप में समस्यापूर्ति का लेखन पूर्व शताब्दियों की भाँति बीसवी शताब्दी में भी लब्धप्रतिष्ठ चित्रकवियों द्वारा किया गया। इस शती में लिखे गये प्रायः समस्यापूर्तिमूलक खण्डकाव्य कविकुलशिरोमणि महाकवि कालिदास-विरचित 'मेघदूत' के चतुर्थ चरण की पूर्ति के रूप में 'दूतकाव्य' की शैली में लिखे गये। इस आधुनिक काल २०वीं शताब्दी में 'मेघदूत' की समस्यापूर्ति से सम्बद्ध सन्देशकाव्यों के रूप में तीन खण्डकाव्य देखने को मिलते हैं। प्रथम नित्यानन्द शास्त्री (निवासी जोधपुर नगर, राजस्थान) का 'हनुमद्दूतम्, द्वितीय मधुसूदन तर्क वाचस्पतिजी (उड़ीसा) का 'हनुमत्सन्देशम्' तथा तृतीय पं0 मूलचन्द्र शास्त्री जी (मालथौन, जिला सागर, म0 प्र0 ) का 'वचनदूत' (जैनकाव्य)।

पूर्वोक्त 'हनुमद्दूतम्' काव्य में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम ने हनुमान् को दूत बनाकर जनकनन्दिनी सीताजी के पास भेजा है। और द्वितीय 'हनुमत् सन्देशम्' में स्वयं सीताजी ने हनुमानजी को दूत बनाकर श्रीराम के पास अपना विरहसन्देश प्रेषित किया है; तथा तृतीय 'वचनदूतम्'[१] में नेमिकुमार एवं राजिमती का चरित्रवर्णन है जिसमें पतिविरहिणी राजिमती नेमि के निकट अपने वचनों द्वारा अपनी आन्तरिक वेदना को सुनाती है।

'मेघदूत' के अन्त्यपाद को लेकर की गयी उत्कृष्ट, वैदुष्यपूर्ण समस्यापूर्ति से सम्बद्ध इन तीनों खण्डकाव्यों के एक-एक पद्य नमूने के रूप में सुविज्ञ पाठक जनों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं-

---

१. (क) यह हिन्दी अनुवाद सहित दो भागों में प्रकाशित हुआ है।
(ख) ऐसे अन्य दूतकाव्यों के लिए द्रष्टव्य-''मेघदूत एवं परवर्ती दूतकाव्य'' लेखक-डॉ० नरेन्द्र देव, सम्पादक-डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी, उज्जयिनी (म0 प्र0)।

'नीलीभूतं शिखरिशिरोत्तंसकैरिन्द्रनीलैः,
सौवर्णत्वात्तडिदुपमितामूर्मिकां धारयन्तम् ।
उच्चैर्ध्वानध्वनितशिखिनं वारिवाहभ्रमेण
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ।।'

(नित्यानन्द, हनुमद्दूतम् १/९)

'भीतभ्रान्ता दनुजवनिता तर्जना-भर्त्सनाभिः,
साध्वी गेया जनकतनया क्षीणकाया कदाचित् ।
अश्रौषीत्तां गिरमतिहितां स्वीयहृद्येव चक्रे,
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ।।'

(हनुमत्सन्देशम्, पूर्वार्द्ध, प्रथम पद्य)

'पूर्वस्नेहस्मृतिवशभवप्रेमलीनान्तरङ्गा,
क्वाहं क्व त्वं मयि गतदयो नो मनाग् हा दयालुः ।
लोकेऽपि स्याद् भृशमसुहृदि स्निग्धवृत्तिर्जनः कः,
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः ।।

(वचनदूतम् /१/१७)

## स्तोत्रकाव्यात्मक समस्यापूर्ति

भारतीय सनातन वैदिक संस्कृति में अनादिकाल से बहुदेववाद की उदात्त परम्परा प्रचलित है । तदनुसार भिन्न-भिन्न देवताओं की विभिन्न रूपों में सपर्या और स्तुति वैदिक विधान है, और सम्पूर्ण 'ऋग्वेद' ऐसा ही अभिराम सूक्त स्वरूप स्तुतियों से परिपूर्ण आदिम देवकाव्य है । इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर महाकाव्यों और खण्डकाव्यों की परम्परानुरूप अनेकानेक भक्तिरसानुयायी मनीषियों ने काव्यगत लक्षणों के अनुसार स्तोत्रकाव्यसर्जना का शुभारम्भ किया और देवी देवताओं के सहस्रनाम शतमष्टोत्तरनाम तथा त्रिशती नामों के आधार पर एक नाम को 'समस्यापूर्ति' के रूप में स्वीकार कर चित्रकाव्यमयी कृतियों का निर्माण किया है। पहले यथोपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार १६ वीं शती में कश्मीर के तान्त्रिक सिद्ध साहिब कौल ने जो 'देवीसहस्रनाम' के आधार पर १६ सर्गों में निबद्ध 'नामविलास' की रचना कुशल चित्रात्मकता के साथ सम्पन्न की थी, वर्तमान २० वीं शताब्दी में उसी परम्परा का निर्वाह करते हुए कुछ स्वनामधन्य विद्वानों ने भी स्तोत्रकाव्यों का प्रणयन

किया है, जिनका संक्षिप्त निदर्शन अधोलिखित है-

## (१) श्रीविष्णुचरितामृतम् (चित्रकाव्यम्) स्वामी श्री-लक्ष्मण शास्त्री सन् १९०८ ई0 में वर्तमान

निरञ्जन सम्प्रदाय के स्वामी मधुसूदन जी के शिष्य स्वामी श्री लक्ष्मण शास्त्री ने इस ग्रन्थरत्न की रचना महाभारतान्तर्गत 'विष्णुसहस्रनाम स्तोत्र' के १५७ पद्यों के आधार पर भगवान् श्री विष्णु के २४ अवतारों के मनोज्ञ चरित्र की प्रस्तुति के साथ-साथ चित्रकाव्यपरम्परा में भी स्पृहणीय ३७ सर्गों में पूर्ण की है।

श्री शास्त्री जी ने इसमें समस्यापूर्ति के रूप में अनुष्टुप् छन्द के प्रत्येक चरण के चौथे वर्णों के मेलन से 'विश्वं विष्णु' दो नाम निकलें, ऐसी चित्रकाव्यात्मक विद्वत्तापूर्ण प्रक्रिया अपनायी है।

## (२) ललितासहस्रकाव्यम्-श्री हरिशास्त्री दाधीच (वर्तमान काल, २० वीं शती)

सुरगवी के आशुकवि और तन्त्रशास्त्रमर्मज्ञ जयपुर (राजस्थान) निवासी श्री हरि शास्त्री जी ने 'ललितासहस्रनाम' को माध्यम बनाकर भगवती देवी ललिताम्बा के प्रत्येक नाम को 'समस्यापूर्ति' के रूप में गुम्फन करते हुए एक हजार पद्यों की रचना की है। इन पद्यों में भगवती ललिता के गुण, कर्म और भक्तजन सुखद चरित्रों का विशद वर्णन प्राप्त होता है।

## (३) ललितात्रिशती-

त्र्यम्बकेश्वर (महाराष्ट्र) के स्वामी श्री पूर्ण चैतन्य ब्रह्मचारी जी ने 'ललिता त्रिशती' के नामों से युक्त इस स्तोत्र की रचना की है जिसमें विविध छन्दों के द्वारा पद्यों की रचना की गई है। इसका एक पद्य उदाहरणार्थ इस प्रकार है यथा-

देवदानवादिजीवसंघसंवृतं बुधै-<br>
वैंधसाण्डमेव कञ्जमित्युदीर्यते शिवे।<br>
तत्त्वदीयवीक्षणाञ्चलेन केवलेन सं-<br>
जायतेऽत उच्यसे त्वमम्ब 'कञ्जलोचना' ॥ १८ ॥

यहाँ 'कञ्जलोचना' नाम की पूर्ति में पूरा पद्य निर्मित है।

## (४) भैरवलहरी



श्रद्धेय गुरुवर डॉ० श्रीरुद्रदेव त्रिपाठी जी ने श्रीबटुकभैरवलहरी की रचना

शिखरिणी छन्द में अष्टोत्तरशतभैरवनामावली के एक एक नाम को आधार बनाकर लिखीं है । इसका उदाहरण पद्य इस प्रकार है ।

सकामं स्मर्तृभ्यो दिशति रुचिमत्सिद्धिमतुलां,
भजद्भ्यो निष्कामं वितरति तथा मुक्तिममलाम् ।
अखण्ड-ब्रह्माण्ड-प्रथितमहिमोद्यद्द्युतिमयी,
यतः सर्वा सम्पद् विलसति सदा 'सिद्धिद'-विभौ ॥

यहाँ 'सिद्धिद' नाम की पूर्ति की गयी है ।

## जैन स्तोत्र काव्यों में समस्यापूर्ति

वर्तमान २० वीं शताब्दी में समादरणीय जैन मुनियों ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों जैसे- पुष्पदन्तरचित शिवमहिम्नःस्तोत्र को 'समस्या' के रूप में रखकर 'समस्या महिम्नःस्तोत्र' (श्री ऋषिवर्धनसूरि), शान्तिजिनमहिम्नःस्तोत्र (श्री सिद्धान्तसारज सन् १५१३ ई0) तथा ऋषभमहिम्नःस्तोत्र (विशालराज महाराज) आदि स्तोत्रकाव्यों में समस्यापूर्ति की वैदुष्यपूर्ण परम्परा को गतिशीलता पूर्वक अक्षुण्णता प्रदान की है। साथ ही भावी रचनाओं के लिए इस क्षेत्र में अपनी प्रतिभा के सम्यग् विकास के लिए पथ भी प्रशस्त किया है ।

इस २० वीं शती के समस्यापूर्ति मूलक जैन स्तोत्रों में 'कल्याण-मन्दिर स्तोत्र' के पूर्तिकर्ता के नाम-काल-आदि का उल्लेखपूर्वक सूचन निम्नवत् है-

| | नाम | कर्त्ता | पद्य | पूर्ति | समय |
|---|---|---|---|---|---|
| १- | विजयानन्दसूरीश्वरस्तवन- | चतुरविजयमुनि | ४९ | चतुर्थचरण | वर्तमान १९२५ ई0 |
| २- | पूज्यगुणादर्शकाव्य- | मुनि घासीलालजी | ४५ | चतुर्थचरण | वर्तमान १९२५ ई0 |
| ३- | कल्याणपाद-पूर्त्यात्मक स्तोत्र | पं0 गिरिधरशर्मा नवरत्न | ४५ | द्वितीयचरण | वर्तमान १९२५ ई0 |
| ४- | कालु-कल्याणमन्दिरस्तोत्र- | मुनि नथमल | ४५ | चतुर्थ चरण | वर्तमान १९२५ ई0 |
| ५- | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, |
| ६- | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, |
| ७-- | ,, | [illegible] स्वामी | ,, | ,, | ,, |

| ८-- | ,, | आचार्य तुलसी | ,, | ,, | ,, |
|---|---|---|---|---|---|

## भक्तामरस्तोत्र की समस्यापूर्तियाँ

जैन-सम्प्रदाय में पर्याप्त समादृत, आचार्य, मानतुङ्गसूरि द्वारा प्रणीत, **'भक्तामर-प्रणत मौलिमणिप्रभाणाम्'** से आरम्भ होने वाले, मन्त्रतन्त्रात्मकता से परिपूर्ण ४४ पदों के इस भक्तामरस्तोत्र के पाद और पादांश को लेकर १७ वीं शती से लेकर वर्तमान काल तक अधिकांश जैनाचार्यों ने समस्यापूर्तिमूलक स्तोत्रों की रचना की है।

बीसवीं शताब्दी में इस भक्तामर स्तोत्र पर जिन लोगों ने समस्यापूर्ति परक स्तोत्रों की रचना की है, उनकी नामावली निम्नलिखित है-

| | नाम | कर्त्ता | पद्य | पूर्ति | समय |
|---|---|---|---|---|---|
| १- | आत्मभक्तामर- | हीरालालहंसराज | - | चतुर्थचरण | बीसवीं शती |
| २- | सूरीन्द्रभक्तामर- | चतुरविजय | ४५ | ,, | ,, |
| ३- | वल्लभभक्तामर | विचक्षणविजय | ४४ | ,, | ,, |
| ४- | कालू-भक्तामर | कानमलस्वामी | ४६ | द्वितीयचरण | ,, |
| ५- | कालू-भक्तामर | सोहनलाल स्वामी | ४६ | चतुर्थचरण | ,, |
| ६- | हरिभक्तामर | कवीन्द्रसागर | - | ,, | ,, |
| ७- | भक्तामरशतद्वयी- | लालाराम शास्त्री | - | ,, | ,, |
| ८- | भक्तामरपाद-पूर्त्यात्मक-स्तोत्र | गिरिधरशर्मानवरत्न | १९२ | सर्वचरण | ,, |
| ९- | नेमिगुरुभक्तामर- | धर्मधुरन्धर सूरि | - | चतुर्थ चरण | ,, |
| १०- | नेमिवीरभक्तामर | बाबूराम जैन द्वयाश्रय | - | ,, | ,, |
| ११- | कर्त्तव्यषट्त्रिंशिका- | आचार्य तुलसी | - | कतिपयांश पूर्ति | ,, वर्तमान |

इसी प्रकार किसी काव्य अथवा सूक्ति के पद-पदांशों को आधार बनाकर भी बहुत सी समस्यापूर्तियाँ मुक्तकों के रूप में यत्र-तत्र उपलब्ध होती हैं। वस्तुतः कवि बनने के लिए समस्यापूर्ति सर्वप्रथम सोपान है। इसी के माध्यम से कवि प्रौढ़ता के उस सोपान तक पहुँच जाता है, जहाँ महाकवि पहुँचते हैं। प्रत्येक क्षेत्र में होने वाली कवि गोष्ठियों में अन्यान्य रचनाओं के साथ ही समस्यापूर्ति भी एक विशिष्ट स्थान रखती है। सामयिक पत्र-पत्रिकाओं तथा संस्थाओं के विवरणों में कवि सम्मेलनों

में पठित समस्या पूर्ति पक्षों का विस्तार से प्रकाशन होता है, उनमें कतिपय पूर्तियाँ अपने नये आयाम में भी प्रस्तुत होती हैं, जिनमें से कुछ निदर्शन रूप में प्रस्तुत हैं-

### ''रक्षेदक्षेमहारी हरिरमरवैरीडितः पीडितं माम्''

'प्रत्यक्षं निर्जराणां सकलसुरगणाध्यक्षमात्मप्रतीक्ष्यं,
संतक्ष्या क्षुद्रवेगः क्षतवहणमदः क्षीणयक्षेशदाक्ष्यः ।
विंशत्यक्षः क्षणेनाभजत समुचितां शिक्ष्यतां यस्य सद्द्राग्
रक्षेदक्षेमहारी हरिरमरवरैरीडितः पीडितं माम् ।।''

-कवितार्किकचक्रवर्ती श्रीमहादेवशास्त्रिमहाभागानाम्

### 'वीणा प्रवीणमिह वस्तु ममाविरस्तु'

'कुन्देन्दुसुन्दरवपुर्नवरत्नभूषं,
श्वेताम्बरं स्मितसुधाजनतापहारि ।
त्रैलोक्यपूज्यचरणं कलहंसयानं,
वीणा प्रवीणमिह वस्तु ममाविरस्तु ।।''

-पं0 श्री रामरूप पाठकः 'चित्रकविः'

### 'हिमवानद्य कम्पते'

'स्वस्थस्तुषारपातेऽपि कम्पते न कदापि यः ।
सोऽपि पातकिनां स्पर्शाद् हिमवानद्य कम्पते ।।''

पं0 श्री लक्ष्मीचन्द्रमिश्रस्य

### 'विन्दति सुखम्'

'शयाना हस्ताब्जे मधुरमुपधायाधरपुटं,
हरेरास्याम्भोजप्रसृतपवनावीजिततनुः ।
मुहुर्मन्दं वश्यङ्गुलिभिरपि संवाहितपदा,
तथाप्येषा वंशी स्वपिति नहि संविन्दति सुखम् ।।''

पं0 श्रीरामकुबेरमालवीयस्य

## 'मृगात् सिंहः पलायते'

'जटाटवीभ्रमद्गङ्गामृतपानमदोत्कटः ।
शिवस्येन्दुगताद् ध्वान्तो मृगात् सिंहः पलायते ।।'

-श्रीगोपीनाथटण्डनस्य

विषायते सुधा क्वापि विवस्वांश्च हिमायते ।
ईश्वरेच्छाबलात्क्वापि मृगात् सिंहः पलायते ।।'

-श्रीचन्द्रशेखरद्विवेदिनः

मृगोऽसौ मृगराजोऽहं न मे कस्तूरिकागुणः ।
त्रपाभारार्दितस्तस्मान् मृगात् सिंहः पलायते ।।

-अभिराजोपाह्वस्य डॉ० राजेन्द्रमिश्रस्य ।

'बलीयसी न सम्पत्तिः शक्तिर्नैव बलीयसी ।
बुद्धिर्बलीयसी विद्वन् मृगात् सिंहः पलायते ।।''

पं0 ब्रह्मानन्दपाण्डेयस्य

कस्तूरी जायते कस्मात् को हन्ति करिणां कुलम् ।
किं कुर्यात् कातरो युद्धे मृगात् सिंहः पलायते ।।'

पं0 श्री हेमराजपोडेलमहाशयस्य

## 'भारती जयति'

'अज्ञानध्वान्तहरा सुरमुनिवन्द्या सरोजमध्यस्था ।
कुन्देन्दुशुभ्रसुषमा स्मितवदना भारती जयति ।।'

पं0 सूर्यप्रसादमिश्रस्य

'प्रवहति कविता पूरो यस्यास्तिर्यग्विलोकनेनैव ।
श्वेताम्बुजस्थिता सा कविवन्द्या भारती जयति ।।'

श्रीचन्द्रशेखरद्विवेदिनः

## 'पिपीलिका चुम्बति चन्द्रबिम्बम्'

'प्रोत्तुङ्गशृङ्गे तुहिनाचलस्य जनं समालोक्य चरन्तमूर्ध्वम् ।
जल्पन्ति सर्वे वसुधास्थिता ये पिपीलिका चुम्बति चन्द्रबिम्बम्

-पं0 श्रीरामायणद्विवेदिनः

सतीवियोगेन विषण्णचेतसा शम्भोः शयानस्य हिमालये गिरौ ।
पिपासितोष्ठा हि सुधाभिशङ्कया पिपीलका चुम्बति चन्द्रबिम्बम् ।।

-श्री गणपतिशास्त्रिणः

## 'दमयन्ती'

'दमयन्त्यसुरारिवन्दना जनयन्ती निषधेन्द्रमन्मथम् ।
रमन्त्यधिकं पतिं स्वकं दमयन्ती मम मानसे स्थिता ।।''

पं0 वासुदेवशास्त्रिणः

## 'कोऽपि गोपतनयो नमस्यते'

'यस्य सर्वमुदरे विलीयते सन्ततं जगदिदं युगक्षये।
क्रीडया स रमयन् व्रजाङ्गनाः कोऽपि गोपतनयो नमस्यते ।।''

- पं0 जगन्नाथपाठकस्य

## 'क्षाराप्यहो ! परिणता मधुराम्बुधारा'

'स्वातीजलं फणिवरस्य मुखे निषिक्तं
सञ्जायते विषममेव विषं जगत्याम् ।
शुक्तौ प्रयाति मणितां नियतिप्रभावात्
क्षाराप्यहो ! परिणता मधुराम्बुधारा ।।

-श्री रामभरोसे शास्त्रिणः

नैव स्थिरं जगति किञ्चन चार्वचारु
सम्पर्क एव हि सतां गुणमातनोति ।

पाथोनिधेरधिगता विगुणापि मेघे
क्षाराप्यहो परिणता मधुराम्बुधारा ।।'
-श्री वेदमणिमिश्रस्य

## 'मृगात् सिंहः पलायते'

'बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो गुरुर्मूर्खकुशिष्यतः ।
पिपीलिकायाः हस्ती चेन्मृगात् सिंहः पलायते ।''
-श्रीएकेश्वरप्रसादनैथानि

'प्रभावेण तपस्याया आश्रमेषु महात्मनाम् ।
दृश्यते केलिवेलायां मृगात् सिहंः पलायते ।।''
-पं0 श्रीगोरखप्रसादपाण्डेयस्य

## 'यावन्न धत्ते पदम्'

'पौराणाम् परिषत्सु बान्धवजनेष्वानन्दसन्दोहद -
स्नेहोदारसुहृत्कथासु गृहिणीविस्रम्भवार्त्तास्वपि ।
तावद् भाति सदादरो नरमणेर्दैवाद् रसज्ञातले,
देहीत्यक्षरदुर्निबन्धरचना यावन्न धत्ते पदम् ।।'
-पं0 बटुकनाथशास्त्रिखिस्तेमहोदयस्य

## 'चित्तौड़ दुर्ग':

'नव्ये काले नवमतियुते वर्तमानेऽत्र मित्र-
बम्बाख्याता विततनभसो गोलकाः सम्पतन्ति ।
शस्त्रागारैर्नरपतिवरैः सर्वशूरैः समेतः ,
मौनीभूतो विगतसमयः सैव चित्तौड़दुर्गः ।।''
-पं0 श्रीमुरलीधरशुक्लस्य सीतामऊ (म0 प्र0) वास्तव्यस्य

'उग्रा घोरा विविधगुणिनस्ते प्रतापादिशूराः
शोभागाराः समरकुशलाः सत्यशीले दधानाः ।

धर्माधारा धवलयशसो यत्र जाताः सुवीराः

ख्यातिं यातो जयति भुवने चारु चित्तौड़दुर्गः ।।''

-पं0 श्री बालमुकुन्दशुक्लस्य लदूना (जि0 मन्दसौर) वास्तव्यस्य

## 'राजतां कालिदासः'

'सदसि सदसि नित्यं यस्य काव्यं नवीनं,

मनसि मनसि दिव्यं भावभव्यं विभाति ।

निधनमपि न हन्ता कीर्तिकायं स विद्वान्,

ह्यमरनवशरीरी राजतां कालिदासः ।।''

पं0 श्री कृष्णशर्म्मणः, सीतामऊ (म0 प्र0) वास्तव्यस्य

## 'विद्युल्लता'

अज्ञानान्धविजृम्भितान् कलिमलान् सम्मोहयन्ती त्विषा

संदीप्ताखिलशब्दशास्त्रनिवहे लुप्ता क्वचिल्लक्षिता ।

सच्चित्प्रावृषि मोदधायिनि परब्रह्मैकसंह्लादिनी

राधा पातु मुकुन्दमेघपटले प्रोद्भासिविद्युल्लता ।

विनयोपाह्वस्य डॉ०विंध्येश्वरीप्रसादमिश्रस्य

## 'वारिदः'

दिक्प्रांताननुनादयन् गिरितटानुल्लङ्घयन् रंहसा

द्राक् क्षोणीतलसंस्थितान् घनवनानाच्छादयन् मायया ।

प्रोषिद्भर्तृकदम्बकान् विधुमुखीसङ्गान् समुन्निद्रयन्

नीपान् कोरकसंहतिं प्रविकिरन् गर्जत्ययं वारिदः ।।

-डॉ० विन्ध्येश्वरीप्रसाद मिश्रः 'विनयः'

## 'हरतु विपदो नः प्रतिदिनम्'

'जगद्बीजन्त्वाद्यं वहति निगमोक्तं शयतले,

मिषाच्छंखस्यादौ दनुजवपुषो लब्धजनुषः ।

सिसृक्षुर्यो विश्वं प्रकृतिगुणसंचोदनकरः,
स देवो व्योमात्मा हरतु विपदो नः प्रतिदिनम् ।।'
-श्रीमहेश्वरनाथ रैणा, गणेशघाटीयः' श्रीनगरम् (जम्मू0)

## 'आर्योऽस्मि भारतयुवाऽहमनार्यजेता'

'भीष्मादिपूर्वजमहाजनिरार्यवर्त्ते
वर्त्ते च शङ्कर-कुमारिल-बुद्ध-शुद्धे ।
सौवर्णभूमिकणनिर्मितपुण्यदेह
आर्योऽस्मि भारतयुवाऽहमनार्यजेता ।।''
-श्रीमनोहरलालगौडः प्र0 व0 ओरियण्टल कालेजः, लवपुरम् (लाहौर)

## 'मृगात् सिंहः पलायते'

'अभिमन्युना समाक्रान्तं कुरुराजं पलायितम् ।
वीक्ष्य व्योम्नि जगुर्हाहा मृगात् सिंहः पलायते ।।'
-पं0 श्रीसूर्यप्रसादमिश्रस्य

## विनोद काव्यात्मक समस्यापूर्तियाँ

कवि काव्यकार के साथ-साथ एक कुशल मनोवैज्ञानिक भी होता है । वह अपने सुधी श्रोताओं और पाठकों के मनोविनोदार्थ भी यदा कदा लालित्यपूर्ण स्फुट रचनाओं की शिष्ट हास्य-व्यङ्ग्य के रूप में उपस्थापना करता है । पूर्व परम्परा का निर्वाह करते हुए अनेकानेक विद्वानों ने इस क्षेत्र में प्रचुर साहित्य सृजन किया । २० वीं शताब्दी में विनोद को केवल वाणीविलास ही नहीं, अपितु एक समस्या पूर्ति के रूप में रखकर इस विधा को पुष्पित-पल्लवित किया गया । यहाँ पर निदर्शन रूप में एक-दो स्फुट रचनायें, जिनमें विनोद के साथ-साथ समस्यापूर्ति भी की गयी है, प्रस्तुत की जा रही हैं-

अधोलिखित स्फुट कविताद्वय गुरुवर डॉ० रुद्रदेव जी त्रिपाठी की हैं, जिन्होंने प्रथम में महाकवि कालिदास के 'मेघदूतम्' के आदि पद्य के 'कश्चित्' शब्द को लेकर समस्यापूर्ति की है, और द्वितीय में सुभाषित के पदों को परिवर्तित करके

वर्तमान सन्दर्भों के मूल्यों में चारित्रिक न्यूनता का दिग्दर्शन कराया है-

(क) कश्चित् कामी प्रणयगुरुणा मोहमाप्तः कदाचित्,
बालामेकां पठनसमये पाठशालां प्रयान्तीम् ।
नानाभावैर्वचनरचना-सौष्ठवैश्चापि नित्यं,
पत्रैर्व्यङ्ग्यैर्व्यकलयदलं चेष्टितैः प्रार्थनैश्च ।।

(ख) मनसि वचसि काये पापहाला-प्रपूर्णा-
स्त्रिभुवनमपकारश्रेणिभिः पीडयन्तः ।
निजगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं,
निजहृदि विकसन्तः सन्त्यसन्तो ह्यनन्ताः ।।

## समस्यापूर्ति का व्यापक परिवेश

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, समस्यापूर्तियों का कोई एक निर्धारित क्षेत्र नहीं रहा है । उसी की पुष्टि में बीसवीं शती के आरम्भ से ही कुछ विद्वानों ने स्वतन्त्र रूप से समस्यापूर्ति नामक काव्यसंग्रह और पत्रिकायें भी प्रकाशित की हैं । ऐसे काव्यों के दो प्रकार होते हैं-१- अकेले एक कवि द्वारा निर्मित समस्यापूर्तियों का सङ्कलन और-२- विभिन्न कवियों द्वारा निर्मित समस्यापूर्ति रूप सङ्कलन । पत्रिकाओं में श्री अप्पाशास्त्री के सम्पादन में एक ''समस्या-पूर्तिः'' नामक पत्रिका १९०० ई0 से प्रारम्भ हुई थी । संस्कृत-चन्द्रिका साहित्यवाटिका, संस्कृतपद्यगोष्ठी, संस्कृतकाव्यमन्दकिनी, पद्यवाणी, काव्यकादम्बिनी, विद्वत्कला, मालव-मयूरः, गाण्डीवम्, अमरभारती, संस्कृतम्, संस्कृतभवितव्यम्, संस्कृत-साकेतः, अर्वाचीन संस्कृतम्, भारती तथा दूर्वा आदि पत्रिकाओं में प्रायः ऐसी रचनायें बहुसंख्य रूप में प्रकाशित होती रही हैं । इसके अतिरिक्त अन्य अनेक स्थानीय पत्रिकाओं तथा ग्रन्थों में भी समय-समय पर आयोजित कवि-सम्मेलनों में पढ़ी गयी समस्या-पूर्तियाँ प्रकाशित हुई हैं । मेरठ विश्वविद्यालय प्राध्यापक परिषद् द्वारा प्रकाशित स्मारिका में भी 'शेरते' आदि समस्याओं की अनेक कवियों द्वारा पूर्ति की गयी है । खुर्जा के (स्व०) पं० भीमसेन कौशिक, (स्व०) आचार्य श्रीब्रह्मानन्द शुक्ल, डॉ० कृष्णकान्त शुक्ल, डॉ० उमाकान्त शुक्ल, डॉ० विष्णुकान्त शुक्ल, जयपुर के (स्व०) भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, पं० कलानाथ शास्त्री, वाराणसी के (स्व०) पं० नारायण शास्त्री खिस्ते, डॉ० शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी,पं रतिनाथ झा, पं० मनुदेव भट्टाचार्य आदि अनेक कवियों की बहुत सी समस्या-पूर्तियाँ प्रकाशित तथा अप्रकाशित रूप से उपलब्ध हैं जिनके संकलन की आवश्यकता बनी हुई है ।

# आवश्यकता और अपेक्षा

संस्कृत साहित्य के वर्तमान रचनाकारों में आधुनिक भाषा साहित्य के अनुकरण का प्रभाव प्रायः बढ़ता जा रहा है। कवि सम्मेलनों में पद्य पाठकों की अपेक्षा गीत-गान का प्रचलन अधिक हो गया है। गीतों में भी शास्त्रीय गीति-प्रक्रिया को तो कोई स्थान ही नहीं मिलता,जबकि मात्रिक छन्दों में निर्मित गीतियाँ ही प्रमुख रूप से सुनने में आती हैं। शास्त्रीय छन्द निर्माण कला का भी प्रायः ह्रास प्रतीत होता है। कुछ ही बहु प्रचलित छन्द प्रयोग में लाये जाते हैं और उन्हें भी गाकर सुनाने में ही शौर्य समझा जाता है। संस्कृतेतर भाषाओं में प्रयुक्त घनाक्षरी,कवित्त, सवैया, सोरठा, चौपाई और दोहे आदि का संस्कृत में भी प्रयोग २० वीं शती के मध्य में कुछ कवियों ने किया है, किन्तु आज वह परम्परा भी शिथिल हो गयी है।

ऐसी स्थिति में अति दुरूह समस्यापूर्तियों के दर्शन तो सर्वथा दुर्लभ ही होते जा रहे हैं, परन्तु सामान्य प्रक्रियाओं में समस्यापूर्ति विधान अभी चिरजीवी दिखलाई देता है। आशङ्का है कि यह पद्धति भविष्य में विलुप्त न हो जाये, अतः गवेषकों को चाहिए कि समस्यापूर्ति के मार्ग को प्रशस्त करें; नये नये आयामों को उद्घाटित करें और समीक्षा पद्धति से समस्यापूर्ति साहित्य में निहित तथ्यों को प्रकाश में लायें। कल्पना, युक्ति, भावप्रवणता और काव्यकौशल द्वारा विरचित 'समस्यापूर्ति साहित्य' को क्रमशः सङ्कलित कर प्रकाश में लाने की आवश्यकता आज के युग में महत्त्वपूर्ण है, और यह अपेक्षा सम्पादनकुशल साहित्यकारों से ही की जा सकती है। इति शम्॥

# अर्वाचीन संस्कृत स्तोत्र साहित्य

डॉ० सुरेन्द्रनारायण त्रिपाठी

यह सर्वविदित तथ्य है कि किसी भी वाङ्मय की जो धारा अथवा जिस धारा का जो अंग आज के परीक्षा पाश बद्ध युग में पाठ्यक्रम में समाविष्ट हो जाता है, उसका सितारा देदीप्यमान हो उठता है । इस के विपरीत जिस धारा या अंग को उसमें स्थान नहीं मिलता वह सर्वाधिक देदीप्यमान रत्न होने पर भी खानमें दबा पड़ा रह जाता है । संस्कृत वाङ्मय का स्तोत्र साहित्य यद्यपि वैदिक युग से अद्यावधि विभिन्न रूपों में अक्षुण्ण है फिर भी उस पर उतना अधिक ध्यान या उसे उतना महत्त्व नहीं दिया गया जितना इष्ट था ।

यह निस्सदिग्ध है कि भारतीय संस्कृति का वास्तविक स्वरूप या जनमानस का सच्चा आकलन यदि सम्यक् रूपेण कहीं प्राप्त होता है तो वह स्तोत्र साहित्य में । जिस प्रकार क्षुत्पिपासा से व्यथित हो बालक माता पिता की ओर सकरुण दृष्टि से टकटकी लगाये देखता हैं, ठीक उसी प्रकार आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी या ज्ञानी जन परात्पर परमात्मा की ओर देखते हैं । जिस प्रकार दूरभाष यन्त्र से दूरस्थ व्यक्ति से संबन्ध स्थापित किया जाता है, उसी प्रकार स्तोत्र द्वारा परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है । यही कारण है कि आदि काल से अर्वाचीन युग तक स्तोत्र की रचना विभिन्न रूपों में होती आ रही है । ये मुक्त, प्रबन्धक, स्फुटकरूपेण अनवरत रूप से लिखे जा रहे हैं । भाषा भाव, छन्द अलंकार, ध्वनि रसादि कल्पना से साहित्य में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है । विस्तार भय से कतिपय प्रमुख स्तोत्र ग्रन्थों की ही चर्चा प्रस्तुत लेख में की जा रही है ।

इस धारा में टी0 रामलिंग दीक्षितार कृत नटेशस्तुति विशेष रूप से उल्लेखनीय है । दीक्षितार चिदम्बरपुराभिजन के हैं, इन की माता का नाम शिवकाम सुन्दरी तथा पिता का नाम मखीन्द्र था । यह स्तोत्र १९६७ में प्रकाशित हुआ, ग्रन्थ के अन्त में अपना परिचय देते हुए लेखक ने स्वयं कहा है -

''वसुन्धरालयविख्यातवैभवभूषित---चिदम्बराभिजनेन---मखीन्द्रात्मजेन शिवकामसुन्दरीगर्भसमुद्भवेन टी0 रामलिंगदीक्षितेन प्रणीतः नटेशस्तवः'' पृ0 (९७ )

प्रस्तुत स्तोत्र ग्रन्थ अनुष्टुप् मालिनी, शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित आदि छन्दों से सम्वलित है । कहीं पर वैदिक छन्दों का भी आनन्द मिलता है । शिव के 
अभिनयात्मक रूप की चर्चा विशद रूप में की गई है । अन्य देवों की अपेक्षा शिव

की चर्चा बहुलता से की जाती है ।

'सहस्रं वर्तन्ते जगति विबुधाः क्षुद्रफलदाः
न मन्ये स्वप्ने वा तदनुसरणं तत्कृतफलम् ।
हरिर्ब्रह्मादीनामपि निकटभाजामसुलभम्
चिरं याचे शम्भो शिव तव पदाम्भोजभजनम् ।।

कालक्रम की दृष्टि से १९७८ की रचना शिवताण्डवम् का स्थान है । प्रस्तुत स्तोत्र काव्य संस्कृत भारती में प्रकाशित है । इस के रचयिता श्रीभाष्यं विजयसारथी की जन्म तिथि १०- ३- ३६ है, इस में कुल १२ श्लोक हैं । श्लोक संख्या की दृष्टि से लघुकाव्य होने पर भी भाव बाहुल्य, प्रसाद गुणोपेत सानुप्रास रचना हृदयावर्जक है । श्रीजगन्नाथ- सुप्रभातम् (१९८०) रचयिता श्रीसुन्दरराजन् आइ० ए० एस० प्रशासनिक अधिकारी होने पर भी संस्कृत-साहित्यसेवाभिरत मनीषी कवि है, इन्होंने अनेक स्तोत्र एवं संस्कृत काव्यों की रचना की है । इस ग्रन्थ में कुल १६२ श्लोक हैं । चार चरणों में समाप्त है । १९८० में ही एक अन्य स्तोत्रपरक ग्रन्थ करडीशचरितामृतचम्पूप्रबधः नाम से प्रकाशित हुआ, यह हुबली से प्रकाशित है । इस के लेखक कन्दगल पर्वत सुधी हैं । इसमें कुल ९ स्तबक हैं । इसमें व्याकरण सम्मत प्रयोगों तथा कहीं पर सिद्धान्तों की झलक है । सर्वप्रधान देव शिव को माना है । अद्वैत दर्शन की प्रमुखता है । १९८२ में देववाणी-परिषद्, दिल्ली से राधाकृष्णरसायनम् प्रकाशित हुआ है । इसके लेखक ओट्टूर उण्णि नम्बूदिरीपाद का जन्म १९०४ में केरल में हुआ है । यह भागवत पुराण, मत्स्यपुराण, ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों पर आधारित है । केवल भक्तिपरक अंशों को ही पुराणों से लिया है । इस में २४ शीर्षकों से ५५६ श्लोक हैं । सभी अवस्थाओं में राधा की तुष्टि पुष्टि आदि भावनाएँ हैं । यमक, लाटानुप्रास उपमा रूपकोत्प्रेक्षा, विभावनातिशयोक्ति आदि अलंकारों का समीचीन प्रयोग हुआ है । ओज माधुर्य प्रसादादि गुणों का यथावसर प्रयोग हुआ है । विभिन्न छन्दों में प्रकृति चित्रण अत्यन्त स्मरणीय हैं ।

१९८३ में छायापतिशतकम् प्रकाशित हुआ है, इस लेखक विठलदेवमुनि सुन्दर राज शर्मा हैं । इसमें कुल १०८ श्लोक हैं, आदित्यहृदय प्रोक्त आदित्य के १०८ नामों पर आधारित है । सुन्दरराजशर्मा ने अन्य अनेक स्तोत्रग्रन्थ लिखे हैं यथा श्रीनिवासशतकम्, देवीशतकम्, वीराञ्जनेयशतकम्, शम्भुशतकम् आदि ।

इसी वर्ष देववाणी-परिषद् दिल्ली से ही 'बदरीशतराङ्गिणी' नामक एक अन्य स्तोत्रग्रन्थ प्रकाशित हुआ है जिसके लेखक श्री श्रीसुन्दरराजन् हैं । इसमें ११२ श्लोक हैं । इसमें महाभारतवर्णित सौगन्धिकोपाख्यान की चर्चा है । बदरीश क्षेत्र का काव्यमय वर्णन है । अनुष्टुप्, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, उपजाति, मालती, स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित

आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है । इसी वर्ष देववाणी-परिषद् से ही 'बदरीशसुप्रभातम्' का प्रकाशन हुआ है जिसके रचयिता डा० सी० आर० स्वामिनाथन् हैं जो अनेक ग्रन्थों के प्रणेता हैं । वसन्ततिलका, छन्द की बहुलता है, स्थान स्थान पर गीता तथा भागवतीय भावों का पुट है । इसमें व्याकरण की अवज्ञा न करते हुए काव्यरस का परिपाक पूर्णतः द्रष्टव्य है । सांख्य, न्याय, वेदान्त, मीमांसादि दर्शनों का प्रभाव सर्वत्र परिलक्षित है । ''श्रीनाथ ते बदरिकेश्वर'' चतुर्थ चरण से मुकुटायमान है । १९८५ में देववाणी परिषद् से प्रकाशित ''कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने'' स्तोत्र साहित्य में अविस्मरणीय ग्रन्थ है । इसके प्रणेता श्री रमेश चन्द्र शुक्ल आधुनिक संस्कृत कवियों में देदीप्यमान रत्न है । इस में कुल १११ श्लोक हैं । शीर्षक प्रायः प्रत्येक श्लोक के चतुर्थ चरण में मुकुटरूप में उपन्यस्त हैं ।

वि0 २०४३ में देववाणी-परिषद् से डा0 रामकिशोर मिश्र के 'गरुडध्वज सपादशतकम्' का प्रकाशन हुआ । इस में कुल १२९ श्लोक हैं । वसन्ततिलका छन्द है। विष्णुसहस्रनामान्तर्गत समागत विष्णु के नामों पर आश्रित है । ''तस्मै नमो भगवते गरुडध्वजाय'' मुकुटित है । १९८६ में डॉ० वरदाचार्य कण्णन् का लक्ष्मीशतकम् एक अपूर्व स्तोत्र ग्रन्थ है । ये हैदराबाद विश्वविद्यालय में गणित के आचार्य एवं अध्यक्ष है । साहित्य से पितृपरम्पराप्राप्त सम्बन्ध है । स्तोत्र विभिन्न छन्दों एवं अलंकारों से अलंकृत है । १९८७ में डॉ० स्वामिनाथन् का ही एक अन्य स्तोत्र ग्रन्थ षोडशाक्षरी स्तोत्र दे0 वा0 परिषद् से प्रकाशित है । यह तान्त्रिक परम्परा तथा बीजों पर आधारित है । इसी वर्ष इलाहाबाद वैजयन्त प्रकाशन से प्रभातमंगलस्तोत्रम् प्रकाशित हुआ है । इसके रचयिता डॉ० अभिराज राजेन्द्र मिश्र हैं । विभिन्न देवों की स्तुति के साथ आधुनिक सन्तों का भी गुणगान है । सन्तों की श्रृंखला में तुलसी, मेहता कबीर सूर का भी स्तवन है । हनुमदष्टकम् आदि अनेक स्तोत्र ग्रन्थ स्फुटित रूप से प्रकाशित हैं ।

अर्वाचीन शतकों शंकराचार्यस्तोत्र भी इसी कड़ी में एक रत्न है । गीर्वाण-सुधा में श्री0 भि0 वेलणकर का उमासुतस्तोत्र भी स्फुटित स्तोत्र है । डॉ० रमाकान्त शुक्ल का शिवस्तोत्र भी उनकी प्रतिभा का निदर्शन है ।

डॉ0 रसिक विहारी जोशी आचार्य संस्कृत विभाग दिल्ली वि0 वि0 की करुणाकटाक्षलहरी आदि अनेक स्तोत्र ग्रन्थरत्न हैं । 'स्मृतिगौरव', 'गीर्वाणसुधा' 'अर्वाचीनसंस्कृतम्' में शतशः स्तोत्र अनुदिन प्रकाशित हो रहे हैं । इसी श्रृंखला में लेखक का कृष्णमहिम्नस्तोत्र भी प्रकाश्यमान है । वाराणसेय शेवडे का विन्ध्यवासिनी काव्यम् ग्रन्थ काव्य नामक होते हुए भी स्तोत्र वाङ्मय का अनुपम रत्न है ।

# आकार-चित्रों के विशेष अध्ययन से अनुप्राणित
# बीसवीं शताब्दी के संस्कृत चित्रकाव्य

डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी

## चित्रकाव्य की समृद्ध परम्परा

संस्कृत-काव्य-मन्दाकिनी की धाराओं का अजस्र प्रवाह अनेक रूपों में व्याप्त है। वेदों से आविर्भूत होकर मुक्तकों तक बहने वाली इन धाराओं में सरलता, तरलता, उच्छलता, धीरता, गम्भीरता, सुन्दरता एवं नादात्मकला आदि का ऐसा विस्मयावह संनिवेश है कि उन सबका एकत्र आकलन नहीं किया जा सकता। साहित्यशास्त्र के मर्मज्ञ आचार्यों ने अलङ्कार-शास्त्र की परिधि में ऐसी कृतियों के सौन्दर्य से परिचित कराने के लिये अलङ्कारों का अङ्कन किया है तथा उनका शास्त्रीय स्वरूप-दर्शन विवेचित करके उन्हें '१-शब्द, २-अर्थ और ३-शब्दार्थोभयरूप' अलङ्कारों की संज्ञा दी है। शब्दालङ्कार के अनेक भेद एवं उनके उपभेदों की सङ्ख्या अतिविस्तृत होती रही है। 'लक्ष्यानुसारीणि लक्षणानि भवन्ति' इस अभियुक्तोक्ति के अनुसार काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थों में इनकी अभिवृद्धि की परम्परा देखी जा सकती है। इन्हीं भेदो में 'चित्रालङ्कार' भी एक भेद है और यह अपने प्रभेदों में 'चित्र-काव्य' रूप उपभेद से भी समृद्ध है।

## चित्रालङ्कार की विविधता

'चित्र-काव्य' में प्रयुक्त 'चित्र' शब्द का तात्पर्य 'आश्चर्य' है। अर्थात् जिस कृति में किसी-न-किसी रूप में आश्चर्यकारिता परिलक्षित हो, वह कृति 'चित्र-काव्य' कहलाती है। यह चित्रत्व मुख्यतः शब्द-संनिवेश रूप वैशिष्ट्य से संवलित होकर विविध रूपों में परिस्फुट होता है, अतः इसे शब्दालङ्कारों में स्थान दिया गया है किन्तु इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं रहा है कि ऐसी रचनाओं में अर्थ का अथवा रसादि का कोई स्थान नहीं है। इस प्रकार की रचनाएँ महाकाव्य से आरम्भ होकर स्फुट मुक्तकों में पर्याप्त रूप में प्रस्तुत हुई हैं। जिनकी विविधता में -१-स्वर, २-स्थान, ३-वर्ण, ४-गति, ५-प्रहेलिका, ६-च्युत, ७-गूढ, ८-प्रश्नोत्तर, ९-समस्यापूर्ति, १०-भाषा और ११-आकार-चित्रों की गणना होती है। इन अलङ्कारों के भेद-प्रभेदों

की इयत्ता के बारे में किसी भी आचार्य ने 'इयानेव' नहीं कहा है, अपि तु उन्होंने यही कहा है कि-

यन्नाम नाम यत् स्यात् तदाकृतिर्लक्षणं मतं तस्य ।

तल्लक्ष्यमेव दृष्ट्वाऽवधार्यमखिलं तदन्यदपि ।। ५ । ५ ।।

-काव्यालङ्कार (रुद्रट)

## आकार-चित्र रूप काव्य के भेद-प्रभेद

उपर्युक्त वैविध्य में हम यहाँ 'आकार-चित्र-रूप' काव्य के बारे में ही यह विवेचन करने का प्रयास करेंगे कि अकेले इस प्रभेद ने ही कितना बड़ा साम्राज्य-विस्तार किया है और बीसवीं शताब्दी के संस्कृत-कवियों ने किस-किस रूप में अपनी रचनाओं में इसे सँजोया है,सजाया है और सँवारा है ? किसी आकृति-विशेष को निर्धारित-चित्रित करके उसमें वर्णों का आलेखन या आकृति-'आकार-चित्र' कहलाती है । लेखन, पठन और वर्णश्लिष्टता से इसमें चित्रात्मकता व्यक्त होती है। हमने इस प्रकार की रचनाओं को क्रमशः '१-मङ्गलमय, २-वनवैभवमय, ३-आभरणमय, ४-शात्रास्त्रमय,५-प्राणि-शरीरमय तथा ६-प्रकीर्णवस्तुमय' चित्रों के आधार पर छह वर्गों में विभक्त किया है । इन वर्गों में चित्रित आकृतियों में पद्य अथवा पद्यों को बाँधने से-लिखने से प्रत्येक को 'बन्ध' भी कहा जाता है । इन सब की 'वर्गीकृत तालिका' पाठकों के परिज्ञानार्थ यहाँ प्रस्तुत की जा रही है-

**वर्ग** **उपवर्ग**

**१-मङ्गलमय चित्र-** (१) अक्षराकृति बन्ध, (२)प्रतीकाकृति बन्ध, (३) देवाकृति बन्ध, (४) पूजोपकरणाकृति बन्ध,

**२- वनवैभवमय चित्र-** (१) वन्यस्थलाकृति बन्ध, (२) वृक्ष-लताकृति बन्ध, (३) पुष्पाकृति बन्ध, (४) फलाकृतिबन्ध ।

**३- आभरणमय चित्र-** (१) मस्तकाद्याभरणाकृतिबन्ध, (२) कण्ठाभरणाकृति बन्ध, (३) भुजाभरणाकृति बन्ध, (४) कटि-चरणा-द्याभरणाकृति बन्ध ।

**४- शस्त्रास्त्रमय चित्र-** (१) शस्त्राकृति बन्ध, (२) अस्त्राकृति बन्ध, (३) शस्त्रास्त्रमिश्राकृति बन्ध, (४) रक्षोपकरणाकृति-बन्ध ।

**५- प्राणिशरीरमय चित्र-** (१) भूचराकृतिबन्ध, (२) खेचराकृति बन्ध, (३) जलचराकृति बन्ध, (४) सरीसृपाद्याकृतिबन्ध ।

**६- प्रकीर्णवस्तुमय चित्र-** (१) गृह एवं गृहोपकरणाकृति, (३) क्रीडोपकरणाकृति

बन्ध, (२) यान-वाहनाद्याकृति बन्ध, (४) वाद्योप-
करणाकृति बन्ध तथा (५) प्रकीर्णाकृति बन्ध ।

इसी दृष्टि से उपलभ्यमान इनके भेद प्रभेदों की सूची भी द्रष्टव्य है-

## १-मङ्गलमय चित्र

१- **अक्षराकृति-बन्ध-** ओम्, श्रीः, ह्रीं, ह्रीं नमः, ॐ नमः, नमः शिवाय ।

२- **प्रतीकाकृति बन्ध-** स्वस्तिक और उसके विभिन्न प्रकार । यथा-भद्रकावर्त, नन्द्यावर्त, गतप्रत्यागत, चतुर्महादेव, बन्धूक, कङ्कणमध्यस्थ, नन्दिकावर्त, चतुर्दल, अष्टदल, सबिन्दुक, अष्टबिन्दुक, नामगर्भ, स्तुतिगर्भ, अन्य बन्धगर्भ, स्वस्तिका तथा अन्य २५ प्रकार के पठन-प्रकारों से युक्त । तिलकबन्ध-शैव त्रिपुण्ड्र तथा रामानुज ऊर्ध्व पुण्ड्ररूप ।

३- **देवाकृति बन्ध-** सूर्य, चन्द्र, बालेन्दुरेखा, महादेव (शिवलिङ्ग), कालिका, सरस्वती, गणपति आदि की आकृति के बन्ध ।

४- **पूजोपकरणाकृति बन्ध-** आसन, कलश,दीप, दीपिका, चामर, छत्र, दर्पण, पताका, घण्टा, श ङ्ख, मत्स्ययुगल, शरावसम्पुट आदि विभिन्न भेद सहित ।

## २- वनवैभवमयं चित्र

१- **वन्यस्थलाकृति बन्ध-** सरोवर, वापी, कूप, तडाग, पर्वत, मेरु, सरसी एवं तदनुरूप अन्य भेद ।

२- **वृक्ष-लताकृति बन्ध-** कल्पलता, वृक्ष, कदली, केतकी, लता, पुष्पलता आदि ।

३- **पुष्पाकृतिबन्ध-** कमल-दो दलों से लेकर एक सहस्र दलों तक के सैकड़ों भेद-प्रभेद एवं कतिपय सूर्यमुखी आदि अन्य स्वतन्त्र पुष्प और कलिकाओं के बन्ध, पुष्प-गुच्छबन्ध आदि ।

## ३- आभरणमय चित्र

१- **मस्तकाभरणाकृतिबन्ध-** मुकुट, पगड़ी, टोपी आदि तथा महिलाओं के मस्तकाभरणरूप आकृतियों के बन्ध ।

२- **कण्ठाभरणाकृति बन्ध-** माला (पुष्पमयी, मणिमयी, सुवर्णश्रृंखलामयी, मिश्रवस्तुमयी, मध्यगुच्छरूप एवं अन्यान्य प्रकारयुक्त) , हार-चार पुष्पों से और मणियों, पत्रों, मध्ययोजकमणि, दिशास्थलयोजक, बन्धनस्थलयोजक एवं मध्यचन्द्रक आदि अनेक प्रकारों से मण्डित बन्ध ।



३- **भुजाभरणाकृति बन्ध-** केयूर एवं कङ्कण बन्ध । घटी-बन्ध ।

४- **कटि-चरणाद्याभरणाकृतिबन्ध-** काञ्ची, कटिपट्टिका, नूपुरादि बन्ध ।

## ४- शस्त्रास्त्रमय चित्र

१- **शस्त्राकृति बन्ध-** खड्ग और उसके विविध छोटे-बड़े प्रकार । अङ्कुश, गदा, मुद्गर, दण्ड, धनुष, पट्टिश, परशु, मुशल, हल आदि बन्ध ।

२- **अस्त्राकृति बन्ध-** भल्ल, त्रिशूल, बाण, वज्र, शक्ति आदि ।

३- **शस्त्रास्त्र-मिश्राकृति-बन्ध-** चक्र (चतुरर से बत्तीस अर तक की अनेक आकृतियों और विविध पाठ-प्रकारों से युक्त), सुदर्शन-चक्रबन्ध ।

४- **रक्षोपकरणाकृति-बन्ध-** स्फुर, ढाल, तूणीर आदि बन्ध ।

## ५- प्राणिशरीरमय चित्र

१- **भूचराकृति बन्ध-** गौ, वृषभ, अश्व, हस्ति आदि के बन्ध ।

२- **खेचराकृति बन्ध-** हंस, मयूर, काक, कपोतादि बन्ध ।

३- **जलचराकृति बन्ध-** मत्स्य, मत्स्ययुगल तथा कमठ बन्ध ।

४- **सरीसृपाद्याकृति बन्ध-** नाग (सर्प) तथा उसके अनेक प्रकार वाले एक मुख से बहुमुख तक के बन्ध ।

## ६- प्रकीर्ण वस्तुमय चित्र

१- **गृह एवं गृहोपकरणाकृतिबन्ध** - उलूखल, कपाट, गवाक्ष, तालवृन्त, निःसाल, प्रासाद, मठ, मन्थान, चतुष्किका-बन्ध । शृंखला तथा शृंङ्गाटकबन्ध ।

२- **यान-वाहनाद्याकृति-बन्ध-** दोलिका, शिबिका, रथ, विमानबन्ध (विविधाकृतियों में) ।

३- **क्रीडोपकरणाकृति बन्ध-** अष्टकोणफलक, चतुरङ्गपीठ, षट्कोणफलक, नवकोण क्रीडाफलक,शृङ्गाटकादिबन्ध ।

४- **वाद्योपकरणाकृतिबन्ध-** कांस्यताल, घण्टा, डमरु, मर्दल, मृदङ्ग, मुरज और उसके विविध प्रकार । वीणा तथा वंशी आदि-बन्ध ।

५- **प्रकीर्णाकृति बन्ध-** (क) विभिन्न रेखाङ्कनों द्वारा निर्मित आकृतियों में चित्र तथा वर्णविन्यासमूलक और विभिन्न छन्दों को माध्यम बनाकर बनाये गये चित्र-बन्ध। (ख) गति, गोमूत्रिका, सर्वतोभद्र और कामधेनुबन्ध ।

## आकार-चित्रकाव्य निर्माण की पृष्ठभूमि

वेद एवं आर्षकाव्य (रामायण तथा महाभारत) से प्रेरणा पाकर पद्यबद्ध

श्रव्यकाव्य के भेद-प्रभेदों में जिस अलङ्कृत रचनाशैली का आश्रय लिया गया उसमें क्रमशः आकार-चित्ररूप पद्यों को भी स्थान मिला था। महाकाव्यों के किसी एक सर्ग में एक-दो पद्य, खण्डकाव्य तथा मुक्तक काव्यों में कुछ अधिक और स्तुति-काव्यों में उससे भी अधिक संख्या में आकृति-मूलक चित्रों में पद्य प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति बीसवीं शती से पूर्व बहुत आरम्भ हो चुकी थी। महाकवि भारवि, महाकवि माघ, कुमारदास, राजानक रत्नाकर, शिवस्वामी, सोमेश्वर, वस्तुपाल, हरिश्चन्द्र, वेतान्तदेशिक, मेघविजय गणि, त्रिशूर तैक्काट नारायण मूष तथा हरिदास सिद्धान्त वागीश ने इस प्रवृत्ति को अपने-अपने महाकाव्यों में आश्रय दिया है।

## बीसवीं शताब्दी के चित्रकवि एवं उनके काव्य

यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि बीसवीं शती के विगत ९० वर्षों में संस्कृत-लेखन और साहित्य-रचना की प्रवृत्ति इतनी तीव्रता से बढ़ी है कि उसने पूर्ववर्ती रचाकारों की संख्या को बहुत पीछे छोड़ दिया है। प्रत्येक संस्कृतज्ञ किसी-न-किसी रूप में लेखन-प्रवृत्ति से जुड़ा हुआ है। प्राचीन संस्कृतज्ञ जो लिखते थे, उसे भी मातृका के रूप में लिखकर छोड़ देते थे। **'उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा'** की आशा में प्रकाश में लाने का कोई स्वयम्प्रयत्न नहीं करते थे। आज तो मुद्रणयुग की छाया में संस्कृतज्ञों ने केवल पत्र-पत्रिकाओं में अथवा प्रकाशक-विशेष के माध्यम से ही अपनी रचनाओं को समाज के समक्ष लाने की अभिरुचि नहीं दिखायी, अपितु अपनी गाढ़ी कमाई से जैसे-तैसे द्रव्य बचाकर भी अपनी कृतियों को प्रकाशित करने में वे कहीं पीछे नहीं रहे हैं।

चित्र-कवि का कविकर्म गाढ श्रम से साध्य है। अन्यापेक्षया वह काव्यरचना में अपनी बुद्धि का अधिक उपयोग करता है। उसकी रचना में वैदुष्य एवं प्रतिभा के साथ ही व्याकरण तथा कोश का ज्ञान भी पूर्ण महत्त्व रखता है। उसकी शब्द-चिन्ता, वर्ण-चिन्ता, अर्थ-चिन्ता और चित्र-चिन्ता गहरी शास्त्र-चिन्ता से ही निखरती है। इसी लिये कवितार्किकचक्रवर्ती पं० महादेव शास्त्री (श्री महेश्वरानन्द सरस्वती) ने लिखा है कि-

खेलत्कौशलमुल्लसत्पदघटाटोपं क्रम-व्युत्क्रम-
प्रोद्घाट्याक्षरगह्वरं सुघटितं व्युत्पत्ति-शक्तिप्रभम्।
नानार्थ-प्रतिरूपदर्शनसुधाधाराभिषेकोत्सवं,
काव्यं बन्धुरबन्ध-विभ्रमचरं कश्चित्कृती रोचयेत्॥



तथा बन्ध निर्माता के पाण्डित्य का निदर्शन इस प्रकार किया है-

सर्वो धातुगणः क्रियादि-विपुलो जिह्वाजिरे राजते,
विश्वास्तद्धितवृत्तयः प्रमुदिताः क्रीडन्ति कण्ठस्थिताः ।
कृत्संज्ञा विलसन्ति प्रत्ययघटाः स्वान्तान्तरालाम्बरे,
येषां ते विभवो भवन्ति कृतिनो बन्धोत्कटे कानने ।।

और ऐसे प्रौढ कवियों को धन्यवाद अर्पित करते हुए वे कहते हैं-

बन्धान् भावभरोत्तरङ्गहृदयान् विस्मेरतासंस्कृतान्
प्रत्यावृत्तिविलक्षणक्षणचणावर्णावलीर्बध्नतः ।
उद्घाट्यानुगुणां नयन्ति पदवीं ये सन्मनीषाजुष-
स्ते धन्याः कवयो जयन्ति जगतीं ते कुर्वते कीर्तिताम्।।

ऐसे दक्ष, परिश्रमी और सिद्ध, चित्रकवियों की इस शती में प्रारम्भ से ही आकार-चित्रात्मक काव्य-रचना में रुचि रही है । ऐसी काव्य-कृतियाँ काव्य-विधान के सभी क्षेत्रों में और प्रकीर्ण मुक्तकों के साथ ही काव्य-शास्त्र/अलङ्कारशास्त्र के ग्रन्थों में भी प्रस्तुत हुई हैं । यहाँ हम उनका यथोपलब्ध संक्षिप्त परिचय करा रहे हैं ।

(१) महाकाव्यों में हम हरिदास सिद्धान्तवागीश के 'रुक्मिणीहरण' को इस शती का प्रथम महाकाव्य मानते हैं । इसमें कतिपय आकृतिचित्रात्मक पद्य आये हैं जिनमें लता-बन्ध, वृक्ष-बन्ध जैसे नवीन बन्धों की भी सृष्टि हुई है और अन्य प्राचीन बहुप्रचलित चित्रबन्ध भी हैं ।

(२) त्रिशूर तैक्काट नारायण मूष ने 'यादवदानविजय महाकाव्य' में चित्रालङ्कारों का समावेश किया है और कतिपय आकारचित्रात्मक पद्य भी दिये हैं। कवि का जन्म १९०७ ई० में हुआ था ।

(३) आशुकवि श्रीनित्यानन्द शास्त्री ने 'रामचरिताब्धिमहाकाव्य' में पूर्वप्रवर्तित बन्धों की रचना-प्रक्रिया को नये रूप में आगे बढ़ाते हुए 'छत्र-बन्ध' आदि कुछ नये बन्धों की रचना की है ।

(४) श्रीवासुदेवानन्द सरस्वती ने 'दत्तपुराण' नामक महाकाव्य में परम्परा का निर्वाह करते हुए आकारमूलक चित्रबन्धों की रचना है । नामाङ्कन-पद्धति का अनुसरण एवं सर्वतोभद्र आदि गतिचित्रों के प्रति आपका मनोयोग स्पृहणीय रहा है।

महाकाव्यों के रचना-विधान में प्रायः 'सर्वतोभद्र, गोमूत्रिका एवं चक्रबन्ध के ही प्रयोग उपलब्ध होते हैं । कादाचित्क किसी कवि के प्रतिभा-विशेष से कोई नवीन उद्भावना द्वारा कुछ नये प्रयोग हुए हैं किन्तु वे संक्षिप्त ही हैं ।

खण्डकाव्यों में आकार-चित्रों को पूर्वापेक्षया कुछ अधिक प्रश्रय मिला है। उनमें भी जहाँ कथा-विशेष का निर्वाह है, वहाँ तो प्रसङ्गोपात्त दो-चार उदाहरण ही मिलते हैं परन्तु जिनमें प्रकरणगत प्रतिबद्धता नहीं थी, वहाँ विशेष औदार्य प्रकट हुआ है। इनमें खण्डकाव्य के लक्षण का बन्धन भी शिथिल कर दिया गया है और वर्णन को ही प्राधान्य देकर उनके परिमाण को भी समृद्ध किया गया है।

(१) भट्ट श्रीमथुरानाथ शास्त्री, जयपुर के 'साहित्य-वैभव' तथा 'जयपुर-वैभव' में आकारचित्रात्मक पद्धति को पर्याप्त महत्त्व मिला है। जयपुर-वैभव में कविवर श्री भट्ट जी ने 'चित्रचत्वर' नाम से एक स्वतन्त्र सर्गरूप खण्ड की रचना में बहुत-से चित्रबन्ध दिये हैं। बुद्धिबलोदय के प्रभाव से कुछ नये प्रकार भी इसमें प्रस्तुत हैं, जिनमें कमल, कण्ठहार, शिबिका, चक्र आदि विशेष स्पृहणीय हैं। एक उदाहरण 'शिबिका-बन्ध' का इस प्रकार है-

भास्वद्वंशावतंसं गुणगणगणनातङ्कतङ्कं ततङ्कं,
सापत्सापत्नपङ्क्तौ सकलकविकला-विश्रमास्थानभूमिम्।
सक्षेमं पालयन्तं विपुलजयपुरीमुल्लसद्भूरिभागां,
साधून् सम्मोदयन्तं हयवदनहरिर्मानसिंहं विपुष्यात्॥

वैसे इनके 'अलङ्कार-कलानिधि, गोविन्दवैभव तथा ईश्वरविलास काव्य और पद्यमुक्तावली' में भी ऐसे पद्य देखे जा सकते हैं।

(२) मुनि महेन्द्रकुमार (स्थानकवासी जैन-परम्परा के साधु) ने 'एकाह्निक पञ्चशती' नामक अपनी कृति में 'कमल-बन्ध' और 'षडर-चक्रबन्ध' आदि की रचना की है।

(३) कविचक्रवर्ती श्रीदेवीप्रसाद जी (काशी) के 'चित्रोपहार-काव्य' में भी ऐसे चित्रबन्ध प्रस्तुत हुए हैं।

(४) दक्षिण के कृष्णमूर्ति कवि ने 'कङ्कण-बन्ध' (एक अनुष्टुप्) में 'रामायण' की कथा का समावेश करके उसमें पठन-पद्धति के प्रस्तार से ६४ पद्यों की उद्भावना द्वारा एक अद्भुत प्रयोग किया है। इन्ही के अनुकरण में और भी प्रौढ़ता लाकर वेङ्कटेश कवि तथा चार्गनू भाष्यकार शास्त्री ने भी 'कङ्कणबन्ध-रामायण' की रचनाएँ की हैं।

(५) दाक्षिणात्य चावलि राम सूरि ने 'अलङ्कार-मुक्तावली' की निर्मिति द्वारा कङ्कण, हार, चतुःसर, शर और गुच्छबन्ध आदि के अभिनव रूप उपस्थित किये हैं। इनकी रचनाओं में शब्द विन्यास के साथ ही मौलिक चिन्तन भी बहुधा मुखरित हुआ है। साथ ही इसे काव्य-शास्त्र का रूप भी दिया गया है।

(६) दामोदर मिश्र कवि (सन् १९०० से १९४१) ने 'चित्र-बन्ध काव्य' की

रचना करके उभयविधा (१- चित्रबन्ध तथा उनके लक्षण) के द्वारा 'कमल-बन्ध' (विविध प्रकार), माला-बन्ध (३ प्रकार), खड्गबन्ध (५ प्रकार),- मेरु, चन्द्र, सूर्य, वृक्ष, कूप, सरोवर तथा असङ्ख्य-पद-बन्ध आदि की रचनाएँ की हैं। विषय को अधिक सस्ष्ट रूप से समझाने के लिये कवि ने 'प्रमोदिनी' नामक स्वोपज्ञ टीका भी इस काव्य पर की है। श्रीमिश्र जी ने इस सारस्वत-साधना के लिए बिल्वपत्रों का सेवन करके तपस्या भी की थी।

(७) श्रीरामरूप पाठक का 'चित्रकाव्य-कौतुक' काव्य भी उपर्युक्त काव्य की परम्परा में ही निर्मित है। कवि ने श्री मिश्रजी को अपना गुरु मानते हुए उन्हीं के लक्षणों का अनुसरण कर अनेक चित्रबन्ध-काव्यों का निर्माण किया है, साथ ही श्लिष्टाक्षर-संयोजन-वैशिष्ट्य, नामाक्षर-विन्यास-वैचित्र्य पूर्वक 'रामानुज-तिलक-बन्ध' (२ प्रकार), नन्दी-बन्ध, कमल, हार, प्रेममाला-बन्ध आदि नये बन्ध-प्रकार भी समाविष्ट किये हैं। इस पर स्वोपज्ञ-टीका भी है।

इसी प्रकार और भी कुछ कवियों की आकार-चित्रपद्यात्मक कृतियाँ मिलती हैं जिनका आकार तथा विषय-वस्तु का आधार विज्ञप्ति-काव्य, स्तोत्र-काव्य तथा प्रकीर्ण काव्यों की कोटि को अलङ्कृत करता है। यथा-

(१) मुनि भद्रङ्करविजय ने 'विज्ञप्ति-पत्र-काव्य' नामक दो लघुकाव्यों की रचना की है, जिनमें अपने परमगुरु प्रेमसूरिजी महाराज को विज्ञप्ति प्रेषित करते हुए क्रमशः ५ और ३७ चित्रबन्धों का निर्माण किया है। इन्हीं के 'भटेवा पार्श्वनाथ-चित्रस्तोत्र' एवं 'अजितशान्तिस्तव चित्रयोजना' के द्वारा इनके अभिनव चित्रकवि होने का प्रमाण स्वतः सिद्ध होता है।

(२) म० म० रामावतार शर्मा ने भी बहुत से चित्रबन्धात्मक पद्य लिखे थे, किन्तु उनका कोई स्वतन्त्र सङ्कलन प्रकाशित नहीं हुआ था। हम (रुद्रदेव त्रिपाठी) ने उनके स्वहस्ताङ्कित पद्यों को प्राप्त करके 'चित्रबन्धावतारिका' नामक पुस्तिका प्रकाशित की है। उसमें ५५ चित्रबन्धों का सम्पादन है। पद्य स्तुति रूप हैं तथा रचना-विधान में पर्याप्त नवीनता भी है।

(३) श्री हरिशास्त्री दाधीच (जयपुर) ने कुछ स्तुतियाँ लिखीं और 'अलङ्कार-कौतुक' में चित्रबन्ध काव्य की सरणि को आगे बढ़ाया है।

(४) करमलकर शास्त्री (इन्दौर) ने 'लोकमान्यालङ्कार' तथा अन्यान्य प्रशस्तिकाव्यों में नवीन प्रयोगों के साथ आकार-चित्रात्मक पद्यों को प्रस्तुत किया है। इनका एक सङ्ग्रह उज्जैन के सिन्धिया प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान में भी संरक्षित है।

(५) श्री श्रीजीव न्यायतीर्थ (बङ्गाल) एक महान् साहित्यकार के रूप में विख्यात हैं। आपकी साहित्य-सम्पत्ति बहुमुखी है। आपका 'सारस्वत-शतक' एक स्तुतिकाव्य है जिसमें पूजा-पद्धति के अनुसार उपकरणों के आकारों में ६५ पद्यों

का संयोजन करके नवीन दिशा प्रदर्शित की गयी है ।

(६) इन पङ्क्तियों के लेखक (डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी) ने अपने काव्य गायत्रीलहरी, बदरीशलहरी, बटुकभैरवलहरी और पुत्रदूत में प्रकीर्ण रूप से और 'गुरुगुणगर्भितचित्रबन्धाष्टक,विंशतिदलकमलबन्धरूपगायत्रीस्तव, भटेवापार्श्वनाथ-स्तव' आदि स्तवनों में अनेक चित्रबन्धों के नये-नये रूप प्रस्तुत किये हैं । अपने शोधप्रबन्ध 'संस्कृत-साहित्य में शब्दालङ्कार' में भी ऐसे अनेक चित्रात्मक-पद्य हैं जिनकी उद्भावना पूर्णतः नवीन है और साथ ही उनके लक्षण भी निर्मित किये हैं । सद्यः प्रकाश्यमान एक ग्रन्थ 'चित्रालङ्कार-चन्द्रिका' का भी हमने निर्माण किया है, जिसमें विस्तार से १० आलोकों में चित्रालङ्कारों की चर्चा एवं लक्षण-निर्मिति-पूर्वक सभी प्रकारों पर प्रकाश डालने का प्रयास हुआ है ।

(७) श्रीयुत वी० रामचन्द्रन् (इञ्जीनियर, दिल्ली) ने 'रामचरित-चित्रकाव्य' का निर्माण किया है, जिसमें प्राचीन तथा नवीन पद्धतियों के चित्रबन्धों की रचना है । कवि ने अपनी प्रतिभा से कुछ नये प्रकारों का उद्भावन भी इस काव्य में किया है ।

इस प्रकिया में विशेषतः यह स्मरणीय है कि चित्रालङ्कार के पद्यों का प्रयोग भारत के प्रत्येक क्षेत्र में हुआ है और भी आज किया जा रहा है । किसी भी प्रसङ्ग-विशेष पर चित्रकवि अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन के लिए मुक्तक-पद्यों के निर्माण में कभी पीछे नहीं रहा है । पहले जैसे राजसभाओं में कवि अपनी आश्चर्यकारी पद्यरचनाओं से श्रोताओं को मुग्ध करते थे उसी प्रकार जन्मदिन, विवाह, सम्मानसभा, काव्यगोष्ठी, अभिननदन-समारोह, वर्धापनमहोत्सव जैसे अवसरों पर लिखे गये चित्रकाव्यात्मक पद्यों की संख्या अति विस्तृत है । ऐसे कविवरों में से कतिपय कवियों का परिचय इस प्रकार है ।

(१) पं० रामचन्द्र मिश्र (प्राचार्य सं० महाविद्यालय, नाथद्वारा) ने विविध कमलबन्ध, हारबन्ध तथा यष्टिबन्ध गोस्वामी दामोदरलालजी, गोस्वामी गोविन्दजी के सम्बन्ध में लिखे हैं ।

(२) वहीं के पं० गिरिधारी लाल जी शास्त्री ने हारबन्धों के द्वारा मङ्गलाशंसन लिखे हैं ।

(३) पं० अमीरचन्द्र जी शास्त्री कविरत्न (दिल्ली) के प्रसङ्गोचित पद्यों में चित्रकाव्य को अच्छा आश्रय मिला है तथा आपने चित्रालङ्कार-साहित्य पर एक समालोचात्मक निबन्ध भी लिखा है, जो 'म० म० परमेश्वरानन्दशास्त्री स्मृति ग्रन्थ' में प्रकाशित है ।

(४) जैन मुनि शतावधानी श्रीनथमलमुनि ने अपनी जैनपरम्परा की प्रशंसा में कुछ नये बन्ध बनाये हैं और आपकी प्रेरणा से ही अन्य साधु-साध्वीगण भी इस ओर

प्रवृत्त हैं ।

(५) पं० हनुमत्प्रसाद जी शास्त्री ने प्रासङ्गिक विचारों से पूर्ण कुछ बन्ध लिखे हैं।

(६) डॉ० रसिकविहारी जोशी (दिल्ली) ने भागवत के गोपीगीत के पद्यों को चित्रबन्ध के रूप में सिद्ध करते हुए नाग-बन्ध और मुरज-बन्धों के विविध प्रकार स्पष्ट किये हैं । आपने कतिपय स्वतन्त्र चित्र-बन्धों की रचना भी की है ।

(७) वाराणसी से पूर्व में प्रकाशित 'अमर-भारती' संस्कृत पत्रिका में श्री वरखेडकर नारायणाचार्य ने 'श्रीः बन्ध' आदि बन्ध-चित्र प्रस्तुत किये ।

(८) उपर्युक्त पत्रिका में ही श्रीयुत पं० नरसिंहाचार्य ने पूर्णश्रम साध्य ३० दल वाले कमलबन्ध का प्रकाशन किया । इस बन्ध का पद्य दर्शनीय है-

मतिमदमलमर्त्या मर्त्यमध्ये मतं मद्

विमत मदमयं मत्कामदं मत्समः स्याः ।

मतिमदमद मत्वा मर्त्य मत्प्रेम धामन्

कमलमरुसमभीम श्रीमरुन्मध्वमन्त्रम् ।।

यहाँ 'म' अक्षर की ३० बार आवृत्ति और प्रत्येक अक्षरोत्तर उसका विन्यास विस्मयास्पद है ।

(९) पञ्चनद के सुदर्शन शास्त्री ने 'ऊर्ध्वपुण्ड्र-तिलक', शङ्ख और सुदर्शन-चक्र आदि बन्धों की रचना द्वारा एक नये द्वार का उद्घाटन किया है, जिसका अनुकरण परवर्ती कवि भी कर रहे हैं ।

इसी प्रकार अन्य अनेक कवि - स्व० गोस्वामी धनगिरि शास्त्री (सीतामऊ), स्व० पं० लक्ष्मीनारायण शास्त्री (कांकरोली), रङ्गनाथ शास्त्री (मैसूर), पं0 टी0 वी0 परमेश्वर अय्यर (दिल्ली), कतिपय जैनमुनि आदि इस दिशा में अपनी-अपनी नवीन कृतियों का प्रसाद प्रस्तुत कर आगामी चित्रकवियों के लिए दिशा-निर्देश करते रहे हैं।

इस साहित्य की विपुलता होते हुए भी कभी रसहीनता, कभी कृत्रिमता एवं कभी क्लिष्टता का कारण बताते हुए प्रायः समालोचक आचार्यो ने उपेक्षा ही दिखलाई है। यही कारण है कि इस विधा के समादर में विद्वानों का आग्रह नहीं के बराबर ही रहा है। हमने इस विधा पर अपने डी० लिट्० के शोध-प्रबन्ध 'शब्दालङ्कार-साहित्य का समीक्षात्मक सर्वेक्षण' में पर्याप्त विस्तार से विवेचन किया है तथा वहीं लक्षण और लक्ष्यमूलक साहित्य का परिचय भी कराया है। हमारा इस सम्बन्ध में निवेदन है कि-

एकत्र येऽद्भुतरसाप्लुतमञ्जु दृश्यं

श्रव्यंच काव्यमवलोकयितुं लषन्ति ।
अन्तर्निलीनबहुचित्रकवित्वपूर्णां,
ते चित्रपद्धतिमिमां परिशीलयन्तु ।। १ ।।

नहि कनकपरीक्षाऽऽस्वाद-गन्धादिभिः स्या-
दपितु भवति नित्यं घर्षणच्छेदनाद्यैः ।
सुमतिरपि तथैव प्रत्यहं रास-लास-
प्रहसन-परिलीनाऽप्यत्र चित्रे परीक्ष्या ।। २ ।।

घृष्टं घृष्टं वितरति सदा चन्दनं चारु गन्धं,
शाणोल्लीढो मणिरपि भवेत् कान्तिमान् मूल्यवाँश्च ।
शस्त्रं योद्धुर्भवति निशितं युद्धमध्ये प्रयोगात्,
बुद्धिस्तद्वज्जडिमहृतये चित्रकाव्येऽत्र शोध्या ।। ३ ।।

गैर्वाण्याश्चिररक्षणाय मनसा बद्धादरा धीधना-
स्त्यक्त्वा मोहमवाप्तशास्त्रनिवहं संरक्ष्यतां यत्नतः ।
तस्मिन् माऽस्तु मतिः कदापि विरसा क्लिष्टत्वदृष्ट्या वृथा,
क्लिष्टग्रावहृदो न किं सृतिमिता गङ्गा जगत्पावनी ?।४।

क्लिष्टं क्लिष्टमितीह यन्निगदितं लोकाननाच्छ्रूयते,
किं वा वाञ्छितसिद्धये प्रतिपदं सारल्यमेवेष्यते ? ।
भ्रान्तास्ते न विदन्ति यद्धि कठिनादिक्षो रसं निःसृतं,
नीत्वैवाखिलमिष्टवस्तुरचनं सञ्जायते भूतले ।। ५ ।।

संस्कृतं संस्कृतेर्मूलं विद्याः शाखाश्च पल्लवाः ।
काव्य-नाट्य-प्रकारा ये चित्रकाव्यं तु तत्फलम्।। ६ ।।

अतः-

पीयतां परम-मोद-निर्भरं, चित्रकाव्यगत-माधुरी बुधैः ।
संस्कृतेश्च परमोज्ज्वलं यशो, भूतले निरतमेव चीयताम् ।।७।।

इत्यलं पल्लवितेन ।

# विंशशतकस्य संस्कृतकथावाङ्मयम्

डॉ0 सौ0 कमल अभ्यङ्करः

मानवः निसर्गादेव कथाप्रियः । अतः जगति सर्वास्वेव भाषासु विपुलं कथाभाण्डारं दृश्यते । संस्कृतभाषाऽपि अस्मिन् विषये न अपवादभूता । प्राचीनकालादारभ्य संस्कृतसाहित्यस्य कथाकक्षः अतिसमृद्धः । तत्र बृहत्कथासदृश्यः लोककथाः, वेतालपञ्चविंशत्यादयः अद्भुतकथाः, पञ्च-तन्त्रोपमाः नीतिकथाः, तथा बाणस्य कादम्बरीसदृश्यः चित्तावर्जकाः दीर्घकथा अपि भवन्ति । बाणभट्टसमये संस्कृतभाषा अत्युच्चसम्मानस्थाने विराजति स्म । किन्तु वर्तमानसमये यदा संस्कृतभाषा 'मृतभाषा' इति धिःकृता भवति, अपि अस्मिन् कालेऽपि संस्कृतभाषा-कथाकक्षः समृद्धः? अस्यां मुम्बापुर्यामेव यत् कथासाहित्यं मया उपलब्धं, प्रायः तदेव आधारीकृत्य संस्कृतकथाविषये मया अत्र किञ्चित् लिख्यते ।

## निबन्धस्य विषयमर्यादा

अत्र आरम्भे एव निबन्धस्य विषयमर्यादा स्पष्टीकर्तुम् इष्यते मया । संस्कृतवाङ्मये तन्त्रदृष्ट्या 'कथा' इति निर्दिश्यमानाः, इदानीं 'उपन्यास' Novel इत्यस्मिन् वाङ्मयप्रकारे समावेष्टुं शक्याः, बाणस्य कादम्बरी-सदृशाः कथाप्रबन्धाः अत्र 'कथावाङ्मय' शब्देन न मम अभिप्रेताः । अपि तु एक-द्वि-प्रसङ्गयुतानां लघुकथानां सरलाः, अश्लिष्टाः, प्रामुख्येन गद्य-कथासंग्रहाः एव मया विवेचनार्थे गृहीताः भवन्ति ।

अपरं च एतासां कथानां विश्लेषणं, परीक्षणं वा नैव अत्र अभिप्रेतं-स्थलाभावात्, किन्तु अस्मिन् विंशतितमे शतकेऽपि कथालेखनविषये कियन्तः प्रयत्नाः संजाताः-प्रचलन्ति वा-तद्विषये दिग्दर्शनम् एव अत्र दृष्टं भवति ।

## विवेचनपद्धतिः

विषयस्य विवेचनसौकर्यार्थं कथानां त्रयः विभागाः मया कृताः ।

१- स्वतन्त्रं कथासाहित्यम् ।

२- भाषान्तरितं रूपान्तरितं वा कथासाहित्यम् ।

३- बालकथासाहित्यम् ।

## १- स्वतन्त्रं कथासाहित्यम्

अत्र आधुनिकसमयपण्डितायाः प्रतिभाशालिन्याः क्षमादेवी-राव-महोदयायाः नाम एव अग्रगण्यं भवेत् ।

### (अ) कथामुक्तावली

इत्येषः पञ्चदशलघुकथानां तस्याः संग्रहः भवति । अत्र 'प्रेमरसोद्रेकः' इत्यस्यां एकस्याः पालितायाः बालिकाया प्रेम चित्रितम् कथायाम् भवति। 'तापसस्य पारितोषिकम्' इत्येषा कथा पातिव्रत्यपुण्यात् नायिकायाः पतिः कथम् असाध्यरोगमुक्तः भवति, तद्दर्शयति । 'परित्यक्ता' कथा दाम्भिकस्य वशंगता काऽपि परित्यक्ता कथं दुःखं पतिविरहं सहते, अन्ते निष्पापान्तःकरणयोः पतिपत्न्योः मिलनं कथं भवति, तद्दर्शयति । 'मिथ्याग्रहणम्' इत्येतस्यां कथायां संशयकारणात् दूरीभूतायाः सख्याः प्रेम्णः पुनः प्राप्तिः वर्णिता । 'मायाजालम्' तथा 'स्वाप्निकव्यामोहः' इत्यस्मिन् कथाद्वये भारतीयसंस्कृतेः वैशिष्ट्यं पश्यामः । 'विधवोद्वाहसंकटम्' इत्यस्यां कथायां 'क्व गन्तव्यं कश्च सहायः याचितव्यः' इत्येवंरूपा विधवायाः करुणावस्था चित्रिता खलु । क्षणिकमोहवशात् प्राप्तस्य महतः अनर्थस्य परम्परा 'क्षणिकविक्रमः' इत्यस्यां कथायां दर्शिता, किन्तु अन्ते क्रमनिरासात् आनन्दपर्यवसायिनी एषा कथा । 'मत्स्यजीवी केवलम्' इत्यस्यां जातीयताभावनायाः विदारकं चित्रणं लेखिकया कृतम् ।

एवांविधाः विविधविषयाधारिता एताः पञ्चदशकथाः मुम्बापुरी-काश्मीर-अबू-महाबलेश्वरादीनां निसर्गरमणीयानां स्थानानां पार्श्वभूमौ आलिखिताः । अत्रस्थं काश्मीरवर्णनम् अप्रतिमं खलु । अत्र विविध-धर्मीयाणां, विविधस्तराणां, विविधपात्राणां चित्रणं याथातथ्यम् । विवाहिता-परित्यक्ता-विधवा-पतिव्रता-अभिसारिका-इत्यादिषु विविधा-

वस्थासु स्त्रीहृदयस्य आकुलता क्षमादेव्या समर्थतया सहृदयतया च आविष्कृता । विषय-आशय-तन्त्रदृष्ट्या अत्रस्थाः कथाः लक्षणीयाः । स्वदेशस्य तथा स्वसंस्कृतेः अभिमानः क्षमादेव्याः साहित्यस्य वैशिष्ट्यं भवति।

क्षमादेव्याः पद्यात्मक-कथासंग्रहद्वयं मया अत्र केवलं निर्दिश्यते ।

## (आ) कथा-पञ्चकम्

अस्मिन् संग्रहे अंतर्भूताः 'बालिकोद्वाहसङ्कटम्', 'गिरिजायाः: प्रतिज्ञा', 'हरिसिंहः', 'दन्तकेयूरम्', 'असूयिनी' इत्येताः पञ्च कथाः क्षमादेव्या प्रथमं आंग्लभाषायां प्रकाशिता । अनन्तरं संस्कृतभाषाविषये प्रेमोत्पादनं तथा आधुनिकतन्त्रेण कथाप्रस्तुतिकरणं इत्येताभ्यां प्रयोजनाभ्यां तया एताः कथाः संस्कृतभाषायामपि विरचिताः ।

## (इ) ग्रामज्योतिः

अयं क्षमादेव्याः अपरः पद्यात्मकः कथासंग्रहः । तस्मिन् स्वातन्त्र्य-युद्धकाले गुर्जरप्रान्तस्थानां ग्रामवासिनां त्यागं चित्रयन्त्यः 'रेवा', 'कटुविपाकः', 'वीरभा' इत्येताः सत्यकथाः भवन्ति । अत्रापि क्षमादेव्याः राष्ट्रभक्तिः आधुनिकताप्रीतिः, सामाजिकी विचारसरणिः-इत्यादीनां गुणानाम् अवश्यं प्रत्ययः आयाति ।

## (ई) संस्कृत-कथा-तरङ्गिणी (१९७०)

जबलपुरस्थः गोविन्द विश्वास भावे अस्य संग्रहस्य कर्ता । अस्यां तरङ्गिण्यां सप्तविंशतितमाः तरङ्गाः नाम 'शालग्रामापहरणम्', 'इक्षुमंत्रः', 'मित्रस्य निकषा विपद्' इत्यादयः सप्तविंशति कथाः विद्यन्ते। कथास्वेतासु काश्चित् लेखकेन बाल्यदशायां मातृमुखाच्छ्रुताः, काश्चिदपराः ग्रामीणजनमुखेभ्यः आकर्णिताः, द्वित्रास्तु पुनः प्रत्यक्षमनुभूताः। प्रत्येककथायाः आरम्भे तथा अन्तेऽपि कथासूत्रसूचकः तथा कथातात्पर्य निवेदयन् एकैकः श्लोकः भवति । अत्र एष ग्रन्थः पञ्चतन्त्रपरिपाटीम् अनुसरति । समयानुसारं कथाविषयपरिवर्तनं संजातम्। '[illegible] (धर्मवीरह) [illegible]' इत्यस्याम्

कथायां लेखकेन कथितः स्वानुभवः हास्यजनकः खलु- ''वैद्यराजस्य कथनानुसारं सः वृद्धः वरपितुः कुक्षौ प्रतिघटिकम् उष्णतामापकं यन्त्रं समानीय निखिलां रात्रिं जागरणम् अकरोत् । सूर्योदये यदा ज्वरः अपगतः तदा सः अवदत्, 'अहो, किं वक्तव्यम् ? यदा अखिलरात्र्यां घटिकायां वरपितुः कुक्षावुष्णतामापकं यन्त्रं मयाऽदीयत अतः प्रातः तदुष्णतामानं क्षीयमाणमभवज्ज्वरश्चापि तद्यंत्रस्पर्शवशान्नष्टोऽभवन्नूनमिति ।'-वराको वृद्धो नाजानात् यद् ज्वरनाशः सर्वौषधिपरिणामाददृश्यत । उष्णतामापकः केवलं उष्णतामापनं प्रदर्शयेन्न पुनर्ज्वरं नाशयेदुष्णतां वा न्यूनाधिकां कुर्यात् ।''

अस्मिन् विंशतितमे शतकेऽपि बाणशैलीमनुसरन्तीं रचनां कर्तुं समर्थः अयं लेखकः । उदा० वरपिता अकस्मात् हिमज्ववरेण पीडितः इति वार्ता प्रासरत् सर्वत्र- ''वार्तेयं क्षीरपाकसिद्ध्यर्थं चुल्ल्युपरि परिस्थापित-दुग्धकटाहे लवणकणपतनमिव, कमलिनीषु शिशिराघात इव, पर्वतेष्विन्द्र-वज्रप्रहार इव हीरकाणामुपरि तद्भञ्जकमत्कुणपातस्यापात इवोभय-पक्षीयाणां मनसां तापकारिण्यभवत् ।''

## (उ) ललितकथाकल्पलता (१९७६)

विरचयिता-गोस्वामी हरिकृष्ण शास्त्री । अत्र 'साकार स्वप्नः','फलत्यहो लक्षगुणं श्रमार्जितम्', 'बलिष्ठो लभते जयम्', 'हृदयसम्राज्ञी' इत्यादयः पञ्चदशकथाः अन्तर्भूता भवन्ति । कथानाम् स्वरूपं विविधप्रकारकम् । इदानीं भौतिकपरिवर्तनेन समं कथागताः प्रतिमाः, उपमाः अपि परिवर्तिताः । उदा०

१- कण्ठस्तु ध्वनिविस्तारकयन्त्रमिवाचरति च ।

२- यदा हि बालः पर्याप्तं यथेष्टं वा दुग्धं न लभते, तथा सः क्षणं मौनः सन्, पुनस्तथैव 'ग्रामोफोन' नाम्नो वाद्यस्य संगीतरिजीष (रेकॉर्ड) इव स्वसंगीतं पुनः प्रावर्तयत ।

३- स्वरस्य तीव्रतायास्तु हारमोनियम्वाद्यस्य तारसप्तकस्थ-पञ्चमस्वरोऽपि लज्जते स्म ।



ग्रन्थस्य भाषा सालंकृता, ओजोगुणवती सरणिः, तथापि

नातिकठिना। अयं कथासंग्रह उल्लेखनीयः खलु ।

## २- भाषान्तरितं-रूपान्तरितं कथासाहित्यम्

स्वतन्त्रकथाकक्षस्य अपेक्षया अयं कक्षः समृद्धतरः दृश्यते ।

एतत्तु सर्वविदितमेव यत् भारते गान्धिमहात्मेव रूसदेशे महात्मा टॉलस्टॉयः अभिपूज्यते । तेन प्रायः सर्वासु एव भाषासु तत्साहित्यम् अनूदितम् । संस्कृतभाषाऽपि न अपवादः अस्मिन् विषये । अस्मिन् कथाविभागे टॉलस्टॉय-कथानां द्वौ कथासंग्रहौ वर्तेते ।

### (अ) टॉलस्टॉय-कथासप्तकम्

भाषान्तरकारः डॉ० भागीरथप्रसादत्रिपाठी नाम 'वागीश' शास्त्री । चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९७० । अस्मिन् कथासंग्रहे 'त्रयो योगिनः', 'ननु भवेद् विलम्बो नैवान्यायः', 'कियती भूः' इत्यादयः सप्त कथाः अनूदिताः। अत्र संकलिताः कथाः न केवलं रोचकाः अपि तु वाचकानां मार्गदर्शिका अपि। इमाः कथाः श्रीशास्त्रिणा तादृश्या शैल्या भाषया च समुपन्यस्ताः यथा तास्तस्य मौलिक्यः रचनाः प्रतिभासन्ते। मूलकथासु टॉलस्टॉयेन प्रतिकथं धर्मतत्त्वं नीतितत्त्वं वा निहितं भवति। अतः श्रीशास्त्रिणा तत्र तत्र गीतोपनिषदादिवचनानि समुद्धृतानि सन्ति। एतानि परदेशीयानि आख्यानानि भाषान्तरकर्त्रा अत्र ईषद् दैशिकीकृतानि। उदा० 'ननु भवेद् विलम्बो नैवान्यायः' इत्यस्याम् कथायाम् 'ईवान दीमित्रिच अक्षयानक' एतन्नामको युवा अत्र भाषान्तरे 'हरिवंशपाल' इति नाम्ना समुल्लिखितः, 'मकार सेम्योनिच' इति अपरः 'बलराम' इति नाम्ना उल्लेखितः। प्रतिकथायाः अन्ते गीता-पञ्चतन्त्र-हितोपदेशादिभ्यः ग्रन्थेभ्यः साररूपाः श्लोकाः उद्धृताः। एता कथाः अयोध्यातः प्रकाश्यमानायां ''संस्कृतम्'' इति साप्ताहिकपत्रिकायां प्रकाशिता आसन् ।

### (आ) टॉल्स्टॉय कथा-दशकम्

व्याकरणवेदान्तशिरोमणिना कौण्डिन्य वेङ्कटेश्वर-सुब्रह्मण्य शास्त्रिणा प्रणीतमेतद् । अत्र टॉलस्टॉय-कथासंग्रहात् भाषान्तरिता 'वृथा क्रोधः',

'यत्र प्रेम तत्रेश्वरः', 'वृद्धौ', 'प्रश्नत्रयम्', 'देवपुत्रः', 'भ्रातरौ', 'मूढ इवानः', 'मुनित्रयम्', 'विश्रान्तिसदनम्', इत्याद्याः दश कथाः वर्तन्ते । अत्र प्रतिकथायाः आरम्भे कथायाः तात्पर्यं सारो वा श्लोकरूपेण प्रदत्तः पञ्चतन्त्रमनुसृत्य, सरलया भाषया - 'परं तस्याः उपदेशः बधिरकर्णजापसदृश एवाभवत्'-(कथा १-पृ० २) इत्यादयः वाक्यप्रयोगाः सम्यक् उपयोजिताः ।

## (इ) षेक्स्पियर-नाटककथा-चतुष्कम्

एतत् पुस्तकमपि कौण्डिन्य वेङ्कटेश्वर-सुब्रह्मण्यशास्त्रिणा प्रणीतम्, भारतीयशासनसय शिक्षणमंत्रालयस्य आर्थिक-साहाय्येन तेनैव प्रकाशितम्। अस्मिन् पुस्तके आंग्ल-साहित्यसम्राजः शेक्सपियरस्य 'The Merchant of Venice','The Tempest','The Winter's Tale' & 'The Taming of the shrew ' इत्यस्य नाटक-चतुष्टयस्य कथासारं 'वेनिस् नगरवणिक्', 'विनयनम्', 'हेमन्तकथा', तथा 'प्रकंपनः' इत्यस्मिन् नाटककथाचतुष्टये सुलभ-मधुर-संस्कृतभाषायां निवेदितमस्ति। नाटकानां सर्वविश्रुतत्वात् तेषां कथासारः सर्वविदित एव । कथासारनिवेदने नाटकगतं मूलं वातावरणं तथा नामानि अपि रूपान्तरकर्त्रा अपरिवर्तितानि । एतादृशैः ग्रन्थैः संस्कृतसाहित्यं समृद्धतरं कृतं खलु ।

(ई) कथामञ्जरी (१९५७)

श्रीअरविन्दाश्रमस्थायाः श्रीमातुः '(Belles Histories) वेल्ल्जिस्त्वार' समाह्वयस्य फ्रेंचभाषापुस्तकस्य संस्कृतरूपान्तरमेतद् । अनुवादकर्ता अरविन्दाश्रमस्य श्रीजगन्नाथः । कथामञ्जरीगताः कथाः न मनोरञ्जनमात्रप्रयोज़नाः किन्तु सद्गुणप्रेरणा-प्रदानसमर्थाः तथा विद्यार्थिनां चरित्रनिर्माणे उपयोगिन्यश्च सन्ति । लेखिकायाः एव श्रीमुखतो विनिर्गता वाग् विवृणोत्यासां रहस्यम्-'एतासां कथानां संकलन-स्योद्देश्यमिदमेव यदेतदनुशीलनेन बालाः स्वात्मानं वेत्तुं सत्यसौन्दर्ययोः सरणिञ्चानुसर्तुं शक्नुवन्तु इति ।'' अतः एतेषां महत्त्वं शाश्वतिकम् । अतश्चैताः सम्यगधीताः जीवनेऽनुशीलिताश्च न केवलं बालानामपि तु सर्वेषामेव श्रेयसे स्युः इति नात्र लेशोऽपि संदेहस्य । अत्र आत्मसंयमः, सत्साहसम्, प्रफुल्लता, स्वावलम्बनम्, धैर्यम्, अध्यवसायः, सरलजीवनम्,

दूरदर्शिता, सत्यनिष्ठा इत्येते विषयाः सुलभ-सरलाभिः अतिलघ्वीभिः कथाभिः उपदिष्टाः । सरलाऽपि अत्रस्था भाषा अतीव सुन्दरा । उदा0 ''सदनमेवाऽस्माकं मानसं यत्खलु वयं यथाकामं शुभ्रं शान्तं सुन्दरं सुमधुरस्वरसमन्वितं वा संविधातुं परिदेवनस्वनैर्विस्वरारावैश्च आकीर्णाम् अन्धकारावृतां भयावहां गुहामिव वा कर्तुं क्षमाः ।''-पृ0 ३

अस्मिन् पुस्तके बालानां सुखबोधाय, सुलभपठनाय अनेकत्र सन्धिरनादृतः । तथा अर्थबोधसौकर्याय पुस्तकस्य अन्ते शब्दकोषः विशेषविवरणञ्च उपन्यस्येते । एतत् शब्दकोषयुत-विशेषविवरणमतीव उपयुक्तं स्यात् ।

## (उ) विपञ्चिका

हिन्दीसाहित्यजगति सुविख्यातस्य मुन्शी प्रेमचंदमहोदयस्य पञ्च-हिन्दीकथानां अनुवादरूपः एष ग्रन्थः । अनुवादकः नागराजः । सुधर्मा-प्रकाशनम्, मैसूर-१९७६ । अत्र 'ज्येष्ठभ्रातृवर्यः', 'रसिकः सम्पादकः', 'धिक्कारः', 'निष्कारणं यशः','लाटरी' इति पञ्च अनूदिताः कथाः अन्तर्भूताः । 'ज्येष्ठभ्रातृवर्यः'-'बडे भाई साहब' इत्यस्याः कथायाः अनुवादः। निरन्तरम् अध्ययने मग्नोऽपि प्रतिवर्षम् अनुत्तीर्णः ज्येष्ठभ्राता--खेलनपरोऽपि कक्षायां प्रथमक्रमाङ्कं लब्धवान् कनिष्ठः भ्राताः इत्यनयोः विनोदपूर्णा एषा कथा, तादृगेव नर्मविनोदयुता अत्र नागराजेन सादरीकृता।

'लॉटरी' इति विषयम् अधिकृत्य, लॉटरीद्वारा पारितोषिकप्राप्त्यर्थं जनैः कृताः महत्प्रयत्नाः, तेषां अत्युच्चाः मनोरथाः, आप्तस्वकीयेषु उत्पन्नं वैरं, अन्ते निराशा-इत्यादिनां लेखकेन कृतं वर्णमतीव हास्योत्पादकं खलु। स्त्रीविषये पक्षपाती किन्तु अन्ते पश्चात्तप्तः रसिकसंपादकः तेन येन कौशलेन चित्रितः, तेनैव कौशलेन बालविधवाविषयम् उद्दिश्य विरचिता 'धिक्कारः' इति करुणकथाऽपि हृदयस्पर्शिनी खलु । अत्रस्थं विषयवैविध्यं, रुचिकरः नर्मविनोदश्च लक्षणीयौ खलु । प्रेमचन्दस्य वाङ्मयं लोकोक्तिप्रचुरम्, किन्तु नागराजेनापि कथानां मूलसौन्दर्यं भाषान्तरे अवतारितम् । ''तस्य रचनानां परिज्ञानाय मम प्रयत्नः प्रांशुलभ्ये फले

वामनस्य यत्नमनुकुर्यात् किल ।'' -पृ0 २.- इत्यादीनां संस्कृत-सुभाषितानां सहजः प्रयोगः अत्र दृश्यते । एतत् पुस्तकं संस्कृतभाण्डारं समृद्धतरं करोति, इति नात्र कापि संशीतिः ।

## (ऊ) कथारत्नाकरः

ग्रन्थकर्ता-बाक् कन्बे । (नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-६) अस्य ग्रन्थस्य द्वौ तरङ्गौ भवतः । किन्तु मया केवलं द्वितीयस्तरङ्ग उपलब्धः। बृहत्कथाधारितयोः क्षेमेन्द्र-सोमदेवयोः बृहत्कथामञ्जरी-कथासरित्सागरयोः कथांशान् गृहीत्वा रचिताः एताः गद्यकथाः इति स्वयं लेखकेन 'कथारत्नाकरप्रस्तावे' लिखिताभ्यां-

''सोमदेवमभीच्छामि क्षेमेन्द्रं च महाकविम् ।।१।।

वस्तुसारं समुद्धृत्य यदीयकृतितो मया ।

कथारत्नाकरो गद्यमयोऽधुना वितन्यते ।।२।।''

इत्येताभ्यां श्लोकाभ्यां स्पष्टं भवति । अयं कथारत्नाकरः मञ्जुलः, चमत्काराढ्यः, विविधरसवैचित्र्यरुचिरः, संतापापनुदः भवेत्, इति विश्वासः लेखकेन प्रकटीकृतः तत्रैव ।

अस्मिन् द्वितीयतरङ्गे 'दिग्विजयकथा', 'हलभूतिकथा', 'जीमूतवाहनकथा', 'शक्तिवेगकथा', 'सूर्यप्रभकथा', 'कलिङ्गसेनकथा' इति षट्कथाः भवन्ति । अत्र लेखकेन कृतं बाणशैल्याः अनुकरणं स्पष्टमेव। न केवलं दीर्घसमासयुता ओजोगुणवती शैली, अपि तु नैकपृष्ठावधि-विस्तृतानि वाक्यानि अपि पाठकानां सहनशीलतान्तकराणि खलु ।

## (ए) रघुवंशकथामञ्जरी

एषा पुस्तिका डॉ0 जी0 व्ही0 देवस्थलीमहोदयैः मेट्रिकपरीक्षायाः विद्यार्थिनां कृते विरचिता । एतद् रघुवंशस्य गद्यकथासारं भवति ।

## (ऐ) कथासरः

अयं वैशिष्ट्यपूर्णः कथासंग्रहः देववाणीमन्दिरस्य प्रकाशनम् । सम्पादक-श्री0 शि0 नेलापकरः (१९८२) । अत्र 'नर्मभरम्' नाम्नी

भासकवेः कर्णभारनाटकस्य कथा, 'रमते न मरालस्य' इति ऐतिहासिकी कथा, 'प्रतिविष्टस्य भेकस्य' इति ईसापवत् कथा, महापुरुषाणां चरितमनुसृत्य विविधाः कथाः, 'चन्दनपेटिका' वत् चमत्कृतिपूर्णाः कथाः तथा अपराः अपि भाषान्तरिताः-रूपान्तरिताः, विनोदपराः, करुणाः एकोनत्रिंशत्कथाः अत्र संकलिताः । विविधलेखकानां विविधाभिः शैलीभिः विनटितानां विषयवैविध्ययुतानां कथानाम् अयं संग्रहः उल्लेखनीयः खलु।

## (ओ) ईसब्नीतिकथाः

आबालवृद्धेषु लोकप्रियस्य Aesop's Fables इत्यस्य ग्रन्थस्य, सदाशिव काशीनाथ चितळेकृतस्य मराठी अनुवादस्य एतत् संस्कृतं भाषान्तरं विद्यते, नारायण बालकृष्ण गोडबोले इति भाषान्तरकर्त्रा द्विभागयोः कृतम् । (पाण्डुरङ्ग जावजी प्रकाशनम् । १९२३) प्रथमभागे षष्टि-यावत् कथानामनुवादः तथा द्वितीये भागे एकषष्टितः शताधिकपञ्च त्रिंशत्तमाः (१३५) कथाः अनूदिताः विद्यन्ते । वस्तुतः आबाल- वृद्धानां कृते वर्तमानस्य अस्य ग्रन्थस्य भाषा सरल-सुबोधा अपेक्षिता आसीत् । किन्तु भाषान्तरकर्त्रा स्वपाण्डित्यप्रदर्शनाय कोकिलकृते 'गातुः', वृद्धकृते 'जीनः', यमकृते 'शमनं', सिंहकृते 'पुण्डरीकः', शिवाकृते 'फेरवी' इत्यादीनां केवलं कोषगतानां शब्दानां हेतुतः प्रयोगाः कृताः इति प्रतीयते। एतेषाम् अपरिचित-दुर्बोध-शब्दानाम् उपयोजनात् तथा तृतीय-भूतकालवाचकक्रियापदानां प्रयोगात् कथाः एताः अपरिहार्यत्वेन दुर्बोधाः संजाताः । किन्तु अस्य शतकस्य प्रथमचरणे अस्य पुस्तकस्य निर्मितिः संज्ञाता । तदा संस्कृतं पण्डितानां भाषा मन्यते स्म । अतः अधिकाधिकं पाण्डित्यप्रदर्शनम् आवश्यकमेव आसीत् । अतः तत्कालं विचार्य नैतद् दोषकरं भवेत् ।

## (औ) कथाशतकम्

म्हैसूरतः एस0 वेंकटरामशास्त्रिणा विविधप्रादेशिकभाषाभ्यः संस्कृते अनूदिताः शततमाः कथाः प्रस्तुतपुस्तके संगृहीताः । (श्री0 भा0 वर्णेकर, अर्वाचीन संस्कृत साहित्य, पृ0 २३७ )

## (अं) श्रीश्रीरामकृष्णकथामृतम्

श्रीरामकृष्णपरमहंसानां शिष्येण श्रीमहेन्द्रनाथेन विरचितः अयं पञ्चखण्डात्मकः ग्रन्थः जगति नैकासु भाषासु भाषान्तरितः । तस्य प्रस्तुतसंस्कृतानुवादः श्रीजगन्नाथस्वामिना कृतः भवति । (शिरोमणि मुद्राशाला, ब्रह्मपुरम्, उत्कलक्षेत्रे मुद्रितः, १९५१) । (श्री0 भा0 वर्णेकर, अर्वाचीन संस्कृत साहित्य, पृ० २३९)

इदानीं तृतीयं विभागं प्रविशामः वयम् ।

# ३- बालकथासाहित्यम्

## (अ) बालनीतिकथाः-अष्टभागाः

रचयिता-वैद्यः, रामस्वरूपशास्त्री । सम्पा0 नन्दनन्दनसनाढ्यः । बालसंस्कृतम् प्रकाशनम्, मुबई-७७. । अस्य प्रथमभागस्य प्रस्तावनारूपे अधोनिर्दिष्टे श्लोके लेखकेन स्वभूमिका स्पष्टीकृता-

''श्रियां नाथं नमस्कृत्य नत्वा च सुरभारतीम् ।

कथये शिष्यबोधाय बालनीतिकथाः प्रियाः ।।''

'बालनीतिकथाः' इत्येतत् पुस्तकशीर्षकं प्रथमदर्शने एव सूचयति यत् एताः कथाः नीतिकथास्वरूपाः तथा बालकानां कृते विरचिता भवन्ति। नीतिकथानां प्रयोजनमनुसृत्य 'शिष्यबोधः' नाम बालकानाम् उपदेश-करणमेव अत्रापि उद्दिष्टं, इति कविना स्पष्टतया निर्दिष्टम् । सतीष्वपि नीतिकथासु, एताः कथाः बालकानां प्रियाः, मनोरंजनपरा भविष्यन्ति इति स्वविश्वासोऽपि तेन प्रकटीकृतः । कुतः प्राप्ताः एताः कथाः इति लेखकेन यद्यपि न निर्दिष्टम्, तथापि ताः कथाः पठिताः, श्रुताः, परिचिताः इति अवगम्यते । भाषा अतीव सरला । प्रतिकथायाः अन्ते कथायाः तात्पर्य निवेदयन् एकैकः सुभाषितरूपः, पठनसुलभः श्लोकः प्रदत्तो भवति । एताः कथाः बालकानाम् अवश्यं रुचिकराः तथैव उद्‌बोधकाः अपि भविष्यन्ति।

## (आ) नीतिकथाभाण्डारम्



एतत् पुस्तकं बालसाहित्येन प्राप्तः बहुमूल्यः उपहारः भवति । श्री

ए0 एन्0 भट्टस्य नीतिकथाभाण्डारात् पं0 राजनाथ द्विवेदी-महोदयेन संस्कृतभाषा-परिवर्तिताः एताः शतसंख्याकाः कथाः 'सुधर्मा'-दिनपत्रिकायां प्रकाशं गताः आसन् । अत्रस्थाः सर्वाः कथाः हृदयावर्जकाः, बालकैः अवश्यम् अध्येतव्याश्च । विहंगमावलोकनेनापि लक्ष्यते यत् मानव-पशु-पक्षिविषयकाः लघुतमाः, केवलं गद्यमय्याः एता कथाः । 'नीतिकथाभाण्डारम्' इति सार्थम् अभिधानम् ।

## (इ) रंजनकथामाला-प्रथमं पुष्पम्

लेखिका-डॉ0 कमल अभ्यंकर । देववाणीमन्दिरप्रकाशितम् । संस्कृत-भाषां लोकप्रियां कर्तुं, तथा 'संस्कृतभाषा क्लिष्टा, कठिना' इति तद्विषयकं भयं दूरीकर्तुम्, सरल-संस्कृतभाषायां विरचितानां विविधविषया-धारितानां तथा लोककथाधारितानां त्रिंशत्-कथानाम् अयं संग्रहः प्रस्तुत-निबन्धलेखिकायाः विनम्रः प्रयत्नः भवति । न केवलं बालानाम्, अपि तु सर्वेषामेव अयं संग्रहः रुचिकरः भवेत्, इति विश्वासः ।

## (ई) सुबोधकथासंग्रहः

ता0 द0 मंडलिक इत्यस्याः लेखिकायाः अयं कथासंग्रहः देववाणी-मन्दिरस्य प्रकाशनम् । अत्र हितोपदेशस्थाः एव द्वादशकथाः सरलभाषायां केवलं वर्तमानकाले सादरीकृताः । अतः बालानां कृते ताः सत्यमेव सुबोधा भवेयुः ।

## (उ) बालकथाकुञ्जः

'श्रीरामसुधासंस्कृतनिधि' द्वारा प्रकाशितम् श्री0 वेलणकर-महोदयानां एतद् लघु कथापुस्तकम् । कविना कुत्रापि श्रुतानां विविध-भाषासु पठितानां सप्तत्रिंशत् कथानाम् अयं सरलसरलः संग्रहः बालानां कृते कृतः ।

## (ऊ) बालसाहित्यसरिता-प्रथमा वीचिः

श्रीमती प्रमिल पारेख-विरचिते अस्मिन् कथापुस्तके प्रायः ईसापनीति-कथानां रूपान्तरस्वरूपाः सप्तदशकथाः ग्रथिताः भवन्ति ।

अयम् अस्य निबन्धस्य निष्कर्षः यत्, 'अपि अस्मिन् विंशतितमे

शतकेऽपि संस्कृतसाहित्यनिर्माणं भवति ?' इत्यस्य प्रश्नस्य एवं सुसष्टम् उत्तरम्,यत् अधुनापि शतशः संस्कृतग्रन्थानां निर्माणं भवति-तत्र कथा-साहित्यमपि विपुलम् । स्वतन्त्रं कथासाहित्यमपि महत् । समयपरिवर्त-नानुसारं विषयाः, प्रतिमा, उपमा अवश्यं परिवर्तिताः । तत्र आधुनिकतन्त्रस्य प्रयोगाः अपि दृश्यन्ते ।

भाषान्तरितं-रूपान्तरितं साहित्यं तु सुविपुलमेव । तत्र हिन्दी-मराठी प्रभृतिभ्यः न केवलं भारतीयभाषाभ्यः एव, अपि तु आंग्ली-फ्रेंच-रूसी-आदिभ्यः परदेशभाषाभ्यः अपि भाषान्तराणि जातानि । तैः संस्कृत-कथाभाण्डारं सुसमृद्धं संजातम् । भारतीयं वातावरणं संस्कृतभाषायाः सौंदर्यं कविभिः तत्र रक्षितम्, अवतारितम् इति प्रतीयते ।

बालकथासाहित्यनिर्माणमपि अविरतं यस्य वर्तमानकाले नितान्ता आवश्यकता वर्तते । एतद् तु उल्लेखनीयम् यत् 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' इति कवित्वस्य निकषः संप्रति परिवर्तितः ।

# बीसवीं शताब्दी का संस्कृत कथा साहित्य

डॉ0 लीना रस्तोगी

सर्वविदित है कि काव्यास्वादन से प्राप्त आनन्द को 'ब्रह्मानन्दसहोदर' कहा गया है । उस काव्य का निकष माना गया है गद्यविधा को- 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।' आज के मापदण्ड के अनुसार गद्य में सर्वप्रिय विधा है 'कथा'; अतएव प्रस्तुत निबन्ध में उसी का परामर्श है ।

बीसवीं सदी के संस्कृत कथा-साहित्य का सर्वेक्षण करने से पूर्व, प्राचीन साहित्य शास्त्रियों द्वारा की गयी गद्य की परिभाषा जानना अनुचित न होगा। साहित्यदर्पणकार ने मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय तथा चूर्णक ये चार विधायें गद्य में गिनायी हैं। उन्होंने गद्य की परिभाषा की है- ''वृत्तबन्धोज्झितं गद्यम्'' । काव्यादर्शकार गद्य के प्राणभूत तत्त्व के रूप में कहते हैं, ''ओजःसमासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्।'' ''वृत्तरत्नाकर'' में ''दण्डक'' नामक गद्यप्रकार का भी उल्लेख है, और वृत्तरत्नाकर के टीकाकार नारायण ने दण्डक के कई उपभेद भी दर्शाये हैं । बारहवीं शती के पुरान्तक ने ''श्यामलादण्डक'' नामक एक अन्य गद्यप्रकार की सृष्टि की, तो उन्नीसवीं शती के कृष्णम्माचार्य ने ''कोमलादण्डक'' की । फिर चूर्णिका, तूणक आदि कई अन्य गद्य प्रकार भी संस्कृत अध्येता के दृष्टिपथ में आते हैं ।

अब यह तो सुस्पष्ट है कि बीसवीं शती का गद्य उपरिनिर्दिष्ट सभी प्रकारों से बहुत दूर है । आज निबन्ध, उपन्यास, चरित्र, यात्रावृत्त, शोधपत्र, रिपोर्ताज तथा दीर्घ और लघु कथा आदि से गद्य साहित्य व्याप्त है और ''कथा'' की आज की संकल्पना भी पुरानी कथा या आख्यायिका से भिन्न है । प्राचीन काल में चारुमती (वररुचि) तरङ्गवती (श्रीपालित), मालती (हरिश्चन्द्र), शृङ्गारमञ्जरी (भोज) आश्चर्यमञ्जरी (कुलशेखर), मृगाङ्कलेखा (अपराजित) आदि आख्यायिकाओं का निर्देश मिलता है । पातञ्जलभाष्य में भी 'वासवदत्ता' 'सुमनोत्तरा' आदि आख्यायिकाएँ उल्लिखित हैं । फिर पञ्चतन्त्र, हितोपदेश या कथासरित्सागर सदृश रचनाओं में 'कथा' के बीज अवश्य मिलते हैं, परन्तु आज की कथा का ढाँचा इन पुरानी कथाओं से बहुत कुछ भिन्न है ।

वस्तुतः आधुनिक संस्कृत साहित्य का सर्वेक्षण ही दुष्कर है, संकलन तो बहुत

दूर है । अधिकांश संस्कृत रचनाएँ अप्रकाशित हैं । कुछ तो रचयिताओं की ''स्वान्तःसुखाय'' रचना करने की सङ्कोची प्रवृत्ति तथा कुछ प्रकाशन सुविधा या वितरण-सुविधा का अभाव इस साहित्य को सर्वपरिचित होने से रोकता आया है । जो रचनायें प्रकाशित हैं भी, वे या तो पुस्तकालयों में उपेक्षित पड़ी हैं या पण्डितों के घरों में कैद । फिर इतने विशाल, खण्डप्राय देश के एक कोने में प्रकाशित साहित्य दूसरे कोने तक उपलब्ध होने की सम्भावना भी क्षीण सी ही हैं । अतः इस लेख को परिपूर्ण नहीं कहा जा सकता । हो सकता है कइयों की कथाओं का समावेश इस लेख में न हो, परन्तु हर प्रान्त से उपलब्ध कथासाहित्य का विमर्श इसमें यथाशक्ति किया गया है ।

आधुनिक संस्कृत साहित्य का अध्ययन करते समय विदित होता है कि ललित रचनाकर्मियों का स्वाभाविक रुझान कथा लेखन की अपेक्षा नाटक या कविता (महाकाव्य, गीतिकाव्य या कविता सङ्कलन) की ओर अधिक है । उदाहरण के तौर पर, हरियाणा में २७ गुरुकुल हैं, अनेक संस्कृत पाठशालाएँ हैं, जहाँ प्राचीन प्रणाली द्वारा प्राचीन संस्कृत एवं संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखा गया है । वहाँ अनेक शोध निबन्ध-विशेषतः व्याकरणशास्त्र पर लिखे गये, छन्दोबद्ध चरित्र ग्रन्थ लिखे गये, कुरान का संस्कृत अनुवाद भी (सत्यदेव शास्त्री) किया गया, किन्तु कथालेखन की ओर घोर उपेक्षा दीखती है ।[१] 'मध्यप्रदेश में, जहाँ संस्कृत विद्वानों-रचयिताओं की कोई कमी नहीं', जहाँ डॉ0 हसूरकर, प्रो0 श्रीनिवास रथ, डॉ0 कवठेकर, डॉ0 चतुर्वेदी, डॉ0 भास्कराचार्य त्रिपाठी आदि प्रतिभाशाली बसते हैं, जहाँ केन्द्रीय साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिला है[२], वहाँ कथालेखन के प्रति कोई विशेष रुचि नहीं दीखती[३] । हाँ वहाँ भी उपन्यास अवश्य लिखे गये, जिनमें श्रीनाथ हसूरकर (श्रीपादशास्त्री के सुपुत्र) के पाँच[४] उपन्यास सुविख्यात हैं ।

उत्कल प्रदेश में भी यही दीखता है । वहाँ संस्कृत में कवितायें, नाटक, एकांकिकाएँ, चरित्रग्रन्थ आदि तो अनेकों रचे गये किन्तु गद्य में डॉ0 केशवचन्द्र दाश के उपन्यास (शीतलतृष्णा) के अतिरिक्त कोई विशेष मौलिक गद्य रचना दृष्टिपथ में नहीं आती । पत्रिकाओं में यत्र तत्र कुछ लघुकथायें हैं, परन्तु वे भी उल्लेखनीय नहीं । जिस उत्कल से छः संस्कृत पत्रिकाएँ निकलती हों,जहाँ से कई साहित्यसर्जकों की पचास के आसपास मौलिक संस्कृत रचनाएँ केवल विगत चालीस वर्षों में प्रकाशित हुई हों,[५] उस प्रदेश में कथा लेखन के प्रति उदासीनता समझ में नहीं आती । पश्चिम् बंगाल में भी स्थिति कुछ ऐसी ही है । बीसवीं शती में बंगाल में दो सौ के लगभग संस्कृत पुस्तकें लिखीं गयीं । कालिपद तर्काचार्य, हेमन्त कुमार तर्कतीर्थ, यतीन्द्रविमल चौधुरी, विश्वेश्वर विद्याभूषण, रमा चौधुरी, विष्णुपद भट्टाचार्य आदि अनेक स्वनामधन्य संस्कृत रचयिता वहाँ हुए, परन्तु कथा की अपेक्षा उनकी रचनायें नाटक या काव्य के रूप में ही हैं[६]। हो सकता है, गीर्वाणवाणी की

सहज-प्रवृत्ति ही छन्दोमयी हो, लयबद्धता के प्रति देवभाषा का स्वाभाविक रुझान हो।

आज देश के प्रत्येक प्रान्त से कई संस्कृत पत्रिकायें निकल रही हैं। उन में यथावकाश कथायें, वैचारिक लेख, कविताएँ आदि छप रही हैं। इस के अतिरिक्त राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, देववाणी-परिषद् (दिल्ली), राजस्थान संस्कृत अकादमी (जयपुर), भारतीय विद्याभवन (मुम्बई) आदि संस्थायें भी निरन्तर नवनवीन संस्कृत पुस्तकों का प्रकाशन करती जा रही है। कथालेखन के सन्दर्भ में राजस्थान, उत्तर प्रदेश, तथा महाराष्ट्र में स्थिति बहुत उत्साहवर्धक एवं सन्तोषजनक है। अकेले राजस्थान[७] में ही बीसवीं शती में निम्नलिखित ब्यौरे के अनुसार कथासृष्टि हुई :

| लेखक का नाम | कालखण्ड | विशेषताएँ | रचना |
|---|---|---|---|
| (१) सूर्यनारायण शास्त्री जयपुर | १८८३-१९६१ | व्याख्यान-वाचसपति, साहित्यभूषण | कई लघु कथाएँ, संस्कृत-रत्नाकर में |
| (२) गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी जयपुर | १८८९-१९६६ | विद्वत्शिरोमणि, कवीश्वर, भारत सरकार से सम्मानित, | पितुरुपदेशः, कश्चित्कविः आदि कथाएँ |
| (३) हरिनारायण शास्त्री जयपुर | १८८३ | आम्नायधुरन्धर, आगमरत्न, कवि-भूषण आशुकवि | सं०रत्नाकर तथा भारती में लघुकथाएँ |
| (४) मथुरानाथ शास्त्री जयपुर | १८८९-१९६४ | कविसार्वभौम, साहित्यवारिधि | सं० रत्नाकर तथा भारती में पचास कथाएँ 'कथानिकुञ्ज' प्रसिद्ध |
| (५) गिरिधरलाल व्यास उदयपुर | १८९३ | राजस्थान सं अकादमी से पुरस्कृत | ''भारती'' में कई कथाएँ |
| (६) गणेशराम शर्मा डूँगरपुर | १९०८-१९८० | अनेक भाषाविद् | ''कथाकुञ्ज'' प्रसिद्ध |

| | | | |
|---|---|---|---|
| (७) बुद्धिचन्द्र शास्त्री जयपुर | १९०४-१९६४ | | 'भारती', सं0 रत्नाकर में लघु-कथाएँ |
| (८) हरिकृष्ण गोस्वामी जयपुर | १९११- | राजस्थान सं0 अकादमी से पुरस्कृत | ''ललित-कथाकल्पलता'' प्रकाशित |
| (९) दीनानाथ त्रिवेदी ''मधुप'' जयपुर | १९१४-१९८३ | | ''भारती'' पत्रिका में कई लघुकथाएँ |
| (१०) नारायण शास्त्री काङ्कर जयपुर | १९३० | विधावारिधि राजस्थान में पुरस्कृत | कई कथाएँ प्रकाशित |
| (११) डॉ0 पुष्करदत्त शर्मा बीकानेर | | | कई कथाएँ प्रकाशित |
| (१२) डॉ0 शिवसागर त्रिपाठी जयपुर | १९३४ | उ0 प्र0 शासन, राजस्थान सं0 अकादमी तथा वाराणसेय वि0 से पुरस्कृत | आकाशवाणी से कई कथाएँ प्रसारित ''कथापन्चगव्यम्'' प्रकाशनाधीन |
| (१३) पद्मशास्त्री, व्यावर | १९३५ | | ''भारती'' में कई कथाएँ |
| (१४ ) मधुकर शास्त्री जयपुर | प्राच्यविद्या संस्थान (कोटा) में अधिकारी | | अनेक कथाएँ प्रकाशित |
| (१५) डॉ0 नन्दकिशोर गौतम जयपुर | | | सामाजिक समस्याओं पर आधारित कथाएँ |
| (१६) शिवदत्त शर्मा | | | ''अभिनव-कथानिकुञ्ज'' प्रकाशित |
| (१७) कात्यायनीदत्त शाण्डिल्य | | | अनेक कथाएँ प्रकाशित |

बीसवीं सदी में संस्कृत की श्रीवृद्धि की दिशा में भारत का उत्तर विभाग भी कम स्फूर्तिप्रद नहीं । वहाँ से भारतोदय (ज्वालापुर), परिजातम् (कानपुर) अर्वाचीनसंस्कृतम् (नयी दिल्ली)सङ्गमनी त्रैमासिक (इलाहाबाद), गाण्डीवं, संस्कृतामृतम्, सर्वगन्धा (लखनऊ), व्रजगन्धा आदि कई संस्कृत नियतकालिक पत्रिकाएँ निकलती हैं, जिनमें नित्य नये नये संस्कृत रचयिता प्रकाश में आ रहे हैं। कानपुर की डॉ० श्रीमती नलिनी शुक्ला का कथासङ्ग्रह ''कथासप्तकम्'', प्रयाग के अभिराज डॉ० राजेन्द्र मिश्र का कथासङ्कलन ''इक्षुगन्धा'' तथा डॉ० रामकिशोर मिश्र, मेरठ द्वारा लिखित ''किशोरकथावलिः'' इसके सशक्त परिचायक हैं कि संस्कृत की प्रवाहिता अक्षुण्ण रखने में उत्तर प्रदेश सदैव कृतिशील रहा है । डॉ० प्रशस्यमित्र शास्त्री (रायबरेली) सदृश लेखक सिद्ध करते हैं कि हास्य-व्यङ्ग्य विधा में भी संस्कृत लेखक पीछे नहीं है । ''संस्कृतामृतम्'' में उनकी कई विनोदी कथाएँ एवं स्फुट हास्य-पद्य छपते आये हैं।

महाराष्ट्र में सुरभारती (बम्बई), बालसंस्कृतम् (मुम्बई) संस्कृतभवितव्यम् (नागपुर), भारतवाणी (पुणे), शारदा (पुणे) आदि कई संस्कृत पत्रिकाएँ नियमित रूप से निकलती हैं, जिनमें आधुनिक विषयों पर लिखी कथाएँ हम पढ सकते हैं। इस दिशा में नागपुर के ''संस्कृतभवितव्यम्'' साप्ताहिक का बहुत योगदान है । डॉ० श्री० भा० वर्णेकरजी के सम्पादन में यह साप्ताहिक १९५० में प्रारम्भ हुआ । संस्कृतभवितव्यम् के कथाविशेषाङ्क विशेष रूप से उल्लेखनीय है । विशेषतः सन् १९५४ का ''संस्कृतविश्वपरिषद्विशेषाङ्क'', सन् १९५७ का ''उपनिषत्कथा-विशेषाङ्क'', सन् १९६१ का ''दीपावलिविशेषाङ्क,'' सन् १९७७ का ''दीपावलि-विशेषाङ्क'' तथा १९८० का ''लघुकथाविशेषाङ्क'' बहुत ही आकर्षक एवं वाचनीय बन पड़े हैं । ''संस्कृत-भवितव्यम्'' ने समय समय पर संस्कृतलघुकथा-प्रतियोगिताएँ भी आयोजित कीं, जिनमें भारत के कई प्रदेशों के प्रतिभावान् संस्कृत रचयिताओं ने सहभाग लिया। कहानी-प्रतियोगिता का यह प्रयास सचमुच बड़ा लाभकारी रहा ।

बीसवीं शती के कथा साहित्य के अध्ययन के पश्चात् कुछ तथ्य सामने आये। इस युग का परिवेश बदल रहा है । रस-परिपोष से अधिक महत्ता आज कथावस्तु को प्राप्त हुई । आज रुचि अलङ्कृत भाषा की नहीं, अपितु सरल, सुबोध शब्दावली में गुँथी संविद्धारा (Stream of consciousness) की है । वर्तमान विचारधारा अस्तित्ववाद एवं वास्तववाद में आस्था रखती है, और इस सब का सम्मिलित प्रभाव बीसवीं शती की संस्कृत कथाओं पर अटल रूप से दिखाई देता है ।

कालखण्ड की दृष्टि से (Chronologically) देखा जाये तो बीसवीं शती के पूर्व के गद्यलेखक बाणभट्ट की शैली से प्रभावित मालूम पड़ते हैं । उनके विषय भी मौलिक न होकर परजीव्य थे-जैसे ढुंढिराज व्यास की ''अभिनवकादम्बरी'', व्ही०

अनन्ताचार्य की ''चन्द्रापीडचरितम्'' आर0 व्ही0 कृष्णम्माचार्य का ''हर्षचरितसार'' अथवा अहोविल नरसिंहकृत ''त्रिमूर्तिकल्याणम्''. इत्यादि । किन्तु यह सारा गद्यप्रपञ्च कादम्बरीनिष्ठ था । जिसे सही अर्थ में, आज के मापदण्डानुसार ''कथा'' कहा जा सकेगा, ऐसी गद्यरचना बीसवीं सदी से ही प्रारम्भ हुई ।

पं0 क्षमा राव (१९००-१९५४) का संस्कृत कथासाहित्य में अतुलनीय योगदान है कि उन्होंने संस्कृत कथा साहित्य को एक नया आयाम देकर समृद्ध किया । उनकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित ''कथामुक्तावली'' के प्राक्कथन में के0 एम0 पणिक्करजी लिखते हैं, "The modern short story deals with living problems, seeks to throw light on a heightened emotion or a dramatic situation and tries to reflect the conditions of society. Pandita Kshama Rao can legitimately claim to be the pioneer in this field of Sanskrit. The collection now offered to the public is, so far as I Know, the first of its kind in India's classical language".

संस्कृत में लघु कथा का आयाम बीसवीं सदी में ही उद्घाटित हुआ । अब नूतन परिवेश में सुसज्जित कथाओं में निम्नलिखित विशेषताएँ दीख पड़ती हैं ।

## सामाजिक चेतना

आर्ष काव्यों से या किन्ही अन्य पूर्व सूरियों से प्रेरणा लेकर कथानक सजाने की परिपाटी छोड़कर इस शती के कथाकार अब सामाजिक चेतना के प्रति सजग हो चले हैं । समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार और कर्तव्यविमुखता से आज का लेखक पीड़ित है । आज की संस्कृत कथा में इस कचोटन का सजीव चित्रण दीखता है । सुदायः[८] नामक कथा में (लेखक का नाम छपा नहीं है) शासकीय चिकित्सालयों में दरिद्र रुग्णों के साथ होने वाले निर्मम व्यवहार का चित्रण है । इसी विषय पर ''को दण्डनीयः'' [८]यह कथा भी पढ़ने में आयी । डॉ0 नलिनी शुक्ला ने बड़ी ओघवती शैली में एक कर्तव्यच्युत सुरक्षाधिकारी तथा बहादुर और महावीर नामक कर्तव्यदक्ष प्रहरियों की कथा ''कर्तव्यनिष्ठा''[१०] में भी यही बात कही है कि आज का सामान्य मनुष्य निहित कर्तव्यों के पालन से विमुख होता जा रहा है । शैली गतिशील होने के कारण अन्त तक यह कथा उत्सुकता को बनाये रखती है और अपनी एक अमिट छाप छोड़ने में सफल रही है । अन्त में कर्तव्यतत्पर प्रहरीद्वय एवं उनके दो स्वामिनिष्ठ कुत्ते उस भ्रष्ट सुरक्षाधिकारी को कारावास भेजते हैं- प्राणों की बाजी लगाकर । यह दिखाकर लेखिका ने ''कान्तासम्मिततया'' कर्तव्यपूर्ति का भी सन्देश दिया है ।

एक हिन्दू को दूसरे से विभाजित करने वाले ''जातिभेद'' को लेकर भी बीसवीं सदी का संस्कृत कथाकार पीड़ित है । पं0 वैद्यनाथ शर्मा[११] (उत्कल) ने प्रतिपादन करने का प्रयास किया है कि आन्तरजातीय विवाह इस समस्या का समाधान कर

सकता है । उनके द्वारा लिखित कहानी ''भाग्यचक्रम्'' कमला (शूद्रा) तथा सुरेश (ब्राह्मण) नामक समाजसेवियों के सफल प्रेमविवाह का परिचय देती है ।

इसी प्रकार भवन निर्माणों में ठेकेदारों की बेइमानी, विद्यालयों में विद्या के नाम पर चलती हुई वणिज्या, न्यायालयों में वर्षों तक पड़े रहने वाले मुकदमें, दहेजप्रथा, धनिक-दरिद्र-संघर्ष आदि वर्तमानकालीन कई समस्याओं पर इस शती में संस्कृत में कथालेखन हुआ, जो संस्कृत में अदृष्टपूर्व था । इस शती के लेखन में वर्तमान स्थिति पर आक्रोश मुखर होता जा रहा है । लखनऊ के डॉ0 वीरभद्र मिश्र अपनी पत्रिका में सामाजिक असङ्गतियों एवं कुरीतियों पर सदैव पद्य में कशाघात करते रहते हैं,-और स्पष्ट है कि आज की संस्कृत कथा भी इस आक्रोश के प्रकटीकरण में पीछे नहीं ।

## राष्ट्रीय भावना

यूँ तो ''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ।'' सदृश वेदवचनों से या ''जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'' समान सुभाषितों द्वारा प्राचीन भारतीयों की राष्ट्रभक्ति प्रकट होती रही है, किन्तु इस शती की विशेषता है कि देशभक्ति पर लेखन अब प्रखर एवं मुखर हो रहा है । इसमें अधिकांश तो पद्यात्मक है किन्तु कथासाहित्य भी इस वृत्ति से अछूता नहीं । बंगलौर के श्री नागराज[१२] ने लोकमान्य तिलक, विवेकानन्द आदि महान् विभूतियों के चरित्र कथासदृश शैली में लिखकर देशभक्ति की भावना को बढ़ावा दिया है । भाषा बड़ी सुबोध, सरल एवं मन को छूने वाली है । उसी प्रकार डॉ0 रामकिशोर मिश्र (संस्कृत विभागाध्यक्ष, महामना मालवीय महाविद्यालय, खेकड़ा) द्वारा क्रान्तिकारी ऊधम सिंह पर लिखी कथा ''बलिदानम्''[१३] या सिन्धुराज दाहर की धर्मप्राण कन्याओं पर लिखी कथा ''प्रतिशोधः''[१४] इसी के द्योतक हैं ।

'दिव्यज्योति' पत्रिका के क्षमा राव विशेषाङ्क में छपी कथा ''मुहम्मदखानः'' एक मुस्लिम की भारतीयता दर्शाती है । उसी पत्रिका की एक अन्य कथा ''पाशदण्डः'' में क्रान्तिकारी सुधीर, कामिनी एवं रघुराज (काल्पनिक पात्र) ने अंग्रेजों के अत्याचारों का अहिंसक मार्ग से कैसे सामना किया, उसका हृद्य चित्रण है । उसी अङ्क की ''उपहार'' नामक कथा में प्राणों की बाजी लगाकर सीमा की सुरक्षा करने वाले वीर सञ्जय (काल्पनिक) का बड़ा सजीव रेखाङ्कन है । आश्चर्य की बात तो यह है कि किसी भी कथा के रचयिता का नाम नहीं दिया गया । इन सभी कथाओं में देशप्रेम की भावना ओतप्रोत है, और हर्ष की बात है कि इस प्रकार की राष्ट्रभक्ति पर कथाएँ संस्कृत गद्य-प्रांगण को निरन्तर समृद्ध बनाती आ रही है ।

# मनोविश्लेषण

हमारी प्राचीन मान्यता के अनुसार, कवि ''निरङ्कुश'' था और कुछ हद तक 'अतिशयोक्ति' का प्रयोग उसके काव्यनैपुण्य का परिचायक था, न कि कृत्रिमता का। उसी प्रकार, कथाओं के चरित्र भी चौखट में बंद (Typed) थे, जैसे 'धीरोदात्त' नायक या ''मुग्धा'' नायिका। परन्तु आज मान्यताएँ बदल रही हैं। आज की दुनिया भी विविधता से भरपूर है और सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति भी बहुढंगी। आज का वाचक मानस के अन्तस्तल को बींधने वाले तत्त्वों को साहित्य में ढूँढ़ता है और इसलिए, साहित्य में मनोविश्लेषण का समावेश अनिवार्य-सा हो गया है। इसका प्रतिबिम्ब संस्कृत कथा पर भी पड़ा।

प्राचीन साहित्य में भी मनोविश्लेषण को पर्याप्त स्थान था। मेघदूतादि काव्य इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। परन्तु यह भी सच है कि पूर्व कथाओं की तुलना में आज की कथा मनोविश्लेषणों पर अधिक तूल देती है। उदाहरण के तौर पर ''पृथ्वीदुहिता''[१५]। इस कथा में लेखिका ने सीताजी की व्यथा उजागर की है कि अभिन्नहृदय होते हुए भी, परित्याग के समय पति ने मुझे विश्वसनीय क्यों नही माना। क्यों चुपचाप लक्ष्मणजी के हाथों मुझे त्यागा ! इस कथा में घटना पक्ष है ही नहीं, केवल है उद्वेलित मन के आन्दोलन! और वे इतने प्रबल हैं कि पढ़ते पढ़ते वाचक भी अनायास आन्दोलित हो उठता है। ''विमातुः आत्मकथा''[१६] में एक स्नेहमयी विमाता की मनोदशा वर्णित है। अपने सौतेले शिशु को वह चाहती तो बहुत है किन्तु शिशु की बाल विधवा बूआ बच्चे को उससे तोड़ती है। हताश, उदास विमाता के मनोभावों को प्रकट करने में लेखक बहुत कुछ सफल हैं। ''स्त्रीहृदयम्''[१७] नामक कथा में अशरीरिणी प्रीति (Platonic Love) की उदात्तता दर्शायी गयी है।

इस प्रकार के मनोभाव-प्रकटीकरण में, वह भी संविद्-धारा (Stream of consciousness) के माध्यम से, पुरी के प्रा० केशवचन्द्र दाश सिद्धहस्त हैं। उनकी दीर्घकथा ''निकषा''[१८] इसका सशक्त उदाहरण है। अर्थात्, इसके भी दो पहलू हैं। Stream of Consciousness को सूचित करने में अनायास ही वाक्य कुछ खण्डित-से हो जाते हैं। उदा० - ''अनुस्वारायते टिट्टिभी। तथापि परिक्रमा न समाप्ता। सा परिक्रमते ----- सङ्क्रमते ----- आक्रमते। तथापि अभिक्रमस्य मार्गो न मिलति। केवलं परिचरणं ---परिभ्रमणम्---परिक्रमणम् --- प्रदक्षिणम्।''

कई विद्वान् इस प्रकार की त्रुटित-खण्डित शब्द-शैली को आस्वादन में बाधक मानते हैं तो कई उसे लेखन कौशल्य का सर्वोच्च बिन्दु कहते हैं। प्रज्ञाभारती डॉ० श्री० भा० वर्णेकर का कथन है कि मनोविश्लेषण अवश्य हो किन्तु वह भावार्थ को शबलित या दुर्बोध न करे। प्रस्तुत लेख में केवल यही दर्शाने की चेष्टा है कि इस

नूतन धारा में भी संस्कृत कथा आगे ही बढ़ रही है ।

## बदलते परिवेश

ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है, नित्य नयी सङ्कल्पनाएँ जन्म लेती हैं । जैसे लाटरी, क्लब, विभक्त परिवार पद्धति, अंगप्रत्यारोपण की शल्यक्रिया आदि । यद्यपि ये सङ्कल्पनाएँ भारतीय संस्कृति से मेल नहीं खातीं, तथापि हमारे जीवन में अपना अस्तित्व जताये बिना भी नहीं रहती । यथार्थ-चित्रण के आज के युग में संस्कृत कथा भी इस पूरे वातावरण को अपना चुकी है । तभी ''मायाजालम्''[१९] की मोहिनी पेरिस तथा कैरो की यात्रा करती है, उसी कथा की 'मन्दा' का भाई क्लब जाता रहता है, सुदाय[२०] की नायिका सुधा को लाटरी फलती है, ''एकाकिनैव गन्तव्यम्''[२१] का वृद्ध नायक विभक्त परिवार में उपेक्षित-सा, अकेलेपन में घुटता रहता है ।

विज्ञान की उपलब्धियों के विषय में भी बीसवीं शती का संस्कृत कथाकार अनजान नहीं है । ''नायं मे पुत्रः''[२२] का युवा नायक अशोक दुर्घटनाग्रस्त होता है, किन्तु मस्तिष्क के विद्युदालेख (E. E. G.) से पता चलता है कि मस्तिष्क नष्टप्राय होने पर भी उसकी मृत्यु नहीं, केवल स्पन्दनस्थगन (Cardial arrest) हुआ है। अतः किसी दायादहीन दस्यु के मस्तिष्क का प्रत्यारोपण कर उसे बचाया जाता है । किन्तु मूर्च्छावस्था हटने पर अशोक की नजर ही बदल जाती है (मस्तिष्क जो पापी का था!) और तब इतने दिनों के तनावों को धैर्य से झेलने वाली अशोक की माँ बुक्का फाड़कर रोती है ''मेरा बेटा तो अब मरा! नायं मे पुत्रः ।''

संक्षेप में संस्कृत कथा की विषयवस्तु का दायरा दिनों दिन विस्तृत होता जा रहा है ।

## नारीगत समस्याएँ

यह एक उत्साहवर्धक बात है कि आज के संस्कृत कथाकार को नारी जीवन की समस्याओं का उचित भान है । नारी के उत्पीड़न को आवाज देने वाली पहली कथा थी ''विधवोद्वाह-सङ्कटम्''[२३], जो लेखिका (पण्डिता क्षमा राव) की मृत्यु के पश्चात् प्रसिद्ध हुई । इस कथा में पारम्परिक महाराष्ट्रीय परिवार में, व्यक्तित्वहीन युवती बालविधवा का ससुराल वालों द्वारा होने वाला शोषण अत्यन्त प्रभाविता से चित्रित हुआ है । आज बाल विवाह होते नहीं और विधवा का पुनर्विवाह भी आज उतना दुष्कर नहीं । अतः बीसवीं सदी के इस अन्तिम चरण में कदाचित् यह कथा काल-बाह्य (outdated) लगे, किन्तु नारी के सन्त्रास को सर्वप्रथम शब्दाङ्कित करने का श्रेय तो पण्डिता डॉ0 क्षमा राव को देना ही पड़ेगा । उन्हीं की दूसरी कथा है ''परित्यक्ता''[२४] । यह किसी धनी मानी सेठजी की वन्ध्या वधू की त्रासदी है । वन्ध्यत्व से उद्विग्न बहू किसी धर्मकञ्चुकी सन्यासी को श्रद्धा से भजती है, परन्तु

उसका पापी इरादा जानते ही , जैसे तैसे शील बचाकर घर आती है; परन्तु अब पति भी उसे प्रश्रय नहीं देता । यह कथा एक कडुवा सत्य उजागर करती है कि दोष किसी का भी हो, दोषी सदैव नारी ही पायी जाती है ।

"किमहं पतिता ?"[२५] कथा में किसी बालविधवा मञ्जुला की पीड़ा गाथा है, जिसे समाज नोचता है, तो कृशाश्वपत्नी अपाला की अन्तर्वेदना "कोऽपराधो मम?"[२६] इस कथा में प्रकट हुई है । रोग ग्रस्त पति की सेवा करना पत्नी का तो धर्म है, किन्तु पत्नी (अपाला) कुष्ठरोगिणी होने पर पति द्वारा निर्ममता से त्यागी जाती है । अपाला का प्रश्न "कोऽपराधो मम ?" वाचक को निरुत्तर करता है।

विधवा, परित्यक्ता तथा रोगिणी स्त्री की तो बात ही क्या, आज की कमाऊ, सुहागन और पुत्रवती स्त्री भी किस प्रकार पिसती रहती है, इसका सजीव चित्रण मिलता है "कलरवश्चिन्ता च"[२७] इस कथा में । दो बच्चों की माँ नन्दिनी किसी शाला में अध्यापिका है । घर तथा शाला में दिनभर खटने पर भी, पत्नी, माता तथा पुत्रवधू की भूमिका वह पूर्ण रूपेण नहीं निभा पाती । वहाँ वृद्धा सास भी दुखी, कि बुढ़ापे में भी आराम नहीं । बच्चे भी आतङ्कित से । बीसवीं सदी के बिखरे हुए दाम्पत्य जीवन का हूबहू चित्रण इस कथा में है, जिसमें सास व बहू, दोनों की अगतिकताएँ मुखर हो उठी हैं ।

## शैली एवं भाषा

बीसवीं शती की कथा की भाषा धीरे धीरे बदलती रही है । इस निबन्ध के प्रारम्भ में ही उल्लिखित है कि इस शती का प्रारम्भिक गद्य बाणभट्ट की शैली से प्रभावित था । आधुनिक संस्कृत कथा की प्रणेत्री क्षमा राव भी इसका अपवाद नहीं। उदा0- "पञ्चविंशतेः वत्सरेभ्यः प्राक्कश्चित्तरुणो हरिर्नाम त्रयोदशवर्षीयां शारदामिव विशारदामनसूयामिवानसूयामल्पवर्षीयामपि परिणतवयस्कामिव सुवर्णमिव सुवर्णां सुगृहीतनाम्नीं सुनीतिं परिणीतवान् ।"[२८] पण्डिता क्षमाजी ने विशेषणों के प्रयोग में शैली तो बाणभट्ट की अपनायी, किन्तु दुर्बोधता नहीं आने दी। वस्तुतः उस समय के अन्य गद्य लेखक, श्री नारायण शास्त्री खिस्ते, (दिव्यदृष्टि के रचयिता), चक्रवर्ती राजगोपालाचारी (सङ्गरम् तथा विलासकुमारी के रचयिता) जग्गु अलवार अय्यंगार (जयन्तिका के लेखक), व्ही0 अनन्ताचार्य कोडम्बकम् (कथामञ्जरी तथा नाटककथासङ्ग्रह- इन पुस्तकों के रचयिता), "सरला" के लेखक हरिदास सिद्धान्तवागीश तथा "सुशीला" के रचयिता आर0 कृष्णम्माचार्य निर्विवाद रूप से बाण-शैली के अनुयायी थे । उनकी शब्दयोजना पूर्वकवि के समान ही चमत्कृतिपूर्ण तथा श्लेषयुक्त थी, परन्तु समासों का प्रयोग धीरे धीरे घटता जा रहा था । समय के साथ साथ लेखकों का ध्यान समासभूयस्त्व से हटकर सरलता की ओर बढ़ने लगा । पाठकों की रुचि भी ओजोगुण से प्रसादगुण पर टिकने लगी ।

पाठकों की क्षमता एवं रुचि को ध्यान मे रखते हुए कथा की भाषा सुगम से सुगमतर होने लगी । सुगमता या सरलता की इस यात्रा में कहीं कहीं गीवार्णवाणी का स्वाभविक डौल भी कुचला जाने लगा । संस्कृत की नियमबद्धता (Rigidity) को हटाकर, उसे प्रवाही बनाने के अभिनिवेश में कहीं कहीं नियमशैथिल्य भी बरता जाने लगा । फिर कहीं कहीं ऐसा भी हुआ कि लेखक अपनी मातृभाषा में सोचे, और उन्हीं वाक्यों को संस्कृत में अनूदित करके कथा के रूप में ढाले । इस प्रक्रिया में उस मातृभाषा की विशेषताएँ संस्कृत में उतर आना अनिवार्य ही था ।

इस शताब्दी के प्रथमार्ध के विभिन्नभाषी संस्कृत लेखकों ने अपनी मातृभाषा का प्रभाव संस्कृत पर पड़ने नहीं दिया और देववाणी की गरिमा तथा विशेषताओं को अक्षुण्ण रखा । विषयों में आधुनिकता एवं भाषा में सहजता होने पर भी संस्कृत की स्वाभाविकता को उन्होंने खरोंच नहीं आने दी । परन्तु १९६० के बाद यह चित्र बदल रहा है । अब तो मातृभाषा के मुहावरे भी संस्कृत में प्रवेश पा चुके हैं । उदा०- ''पार्श्वे न स्फुटिता कपर्दिकाप्यधुना''[२९] । (पास में फूटी कौड़ी भी नहीं) या ''न च काऽपि तेषां बालमपि वक्रं कर्तुमर्हति ।''[३०] (उनका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता), या ''बुद्धौ नायाति, इदं गृहं वा निरयं वा !''[३१] (समझ में नहीं आता यह घर है या नरक !)- स्पष्ट है कि लेखक सोच हिन्दी में रहे हैं और लिख संस्कृत में!

बदलते जमाने की नयी उपलब्धियों एवं संकल्पनाओं के साथ संस्कृत में नूतन शब्दावली का भी निर्माण हो रहा है जो संस्कृत के सौष्ठव में हितकारी ही कहा जायेगा । । जैसे Callbell के लिए 'आह्वानघण्टिका', Club के लिए 'सामाजिकक्रीडा-मण्डलं' इत्यादि । प्रयाग के अभिराज डॉ० राजेन्द्र मिश्र ने Call-girl के लिए ''काल-गरला'' यह अत्यन्त योग्य पर्यायशब्द सम्पादित किया है । उनका सङ्कलन ''इक्षुगन्धा'' उपलब्ध न हो सका, परन्तु कथा के अतिरिक्त उनका गीति-साहित्य पढ़ने से ज्ञात होता है कि उन्होंने चैत्रकम् (चैता), सूतगृहगीतम् (सोहर) आदि कई अर्थवाही शब्दों का निर्माण कर, संस्कृत की श्रीवृद्धि में योगदान दिया है ।

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी का जो कुछ सीमित संस्कृत कथा-साहित्य उपलब्ध हो सका, उसके आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं :-

(१) विषय, आशय, तन्त्र आदि सभी दृष्टिकोणों से बीसवीं सदी का संस्कृत कथा साहित्य अन्य किसी भी भाषा की टक्कर का है ।

(२) प्राचीन मान्यताओं के साथ साथ नये मूल्यों को भी बीसवीं शती की संस्कृत कथा प्रश्रय देती है ।

(३) इस साहित्य में अस्तित्ववादी विचारधारा, युगानुकूल बुद्धिवादिता तथा कहीं कहीं समाजवाद या साम्यवाद की झलक भी दिखाई देती है ।

(४) आर्थिक विषमता, सामाजिक असंगतियाँ, राजनयिक भ्रष्टता आदि पर आज की कहानीः साक्रोश प्रहार करती है ।

(५) सामाजिक चेतना, राष्ट्रभक्ति एवं भारतीय संस्कृति के अभिमान से यह साहित्य भरपूर है ।

(६) भाषा में बदलाव आ रहा है जो कुछ हितकर भी है तो कुछ संस्कृत की स्वाभाविक सुन्दरता का मारक भी ।

(७) हास्य-व्यङ्ग्य की कथाओं का प्रमाण अत्यल्प है ।

(८) लेखकों में कहीं कहीं उपनाम ग्रहण करने की वृत्ति पनप रही है-[जैसे दीनानाथ त्रिवेदी ''मधुप'' (१९१४-१९८३) -'भारती' में कई कथाओं के रचयिता, या, ''अभिराज'' डॉ० राजेन्द्र मिश्र- (इक्षुगन्धा के रचयिता)]

---

## द्रष्टव्य-

१- स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत साहित्य को हरियाणा का योगदानः डॉ० यज्ञवीर दहिया

२- डॉ० श्रीपादशास्त्री हसूरकर को, सन् १९८४ में-

३- स्वातन्त्र्योत्तरं मध्यप्रदेश-संस्कृत-साहित्यम्-डॉ० भास्कराचार्य त्रिपाठी

४- सिन्धुकन्या:, अजातशत्रुः, प्रतिज्ञापूर्तिः, चेन्नम्मा, दावानलः नामक पाँच उपन्यास

५- स्वाधीनताप्राप्त्युत्तरकालिक-संस्कृत-साहित्यं प्रति उत्कलीयानां योगदानम् ब्रजकिशोर स्वाईं

६- पश्चिमवङ्गे संस्कृतकृतेः सिंहावलोकनम्-श्रीसीतानाथ गोस्वामी

७- राजस्थान में संस्कृत सर्जना : डा० शिवसागर त्रिपाठी

८- ''दिव्यज्योति''-जुलाई १९९० शिमला से प्रकाशित

९- वही

१०- ''कथासप्तकम्''-डॉ० श्रीमती नलिनी शुक्ला, कानपुर से प्रकाशित

११- ''संस्कृत-भवितव्यम्''-संस्कृतविश्वपरिषद्-विशेषाङ्कः, १९५४ नागपुर से प्रकाशित

१२- ''भारतीयदेशभक्तचरितम्''-श्री नागराज, बंगलोर

१३- किशोरकथावलिः - मेरठ, १९८७ में प्रकाशित

१४- वही

१५ - संस्कृत-भवितव्यम्-दीपावलिविशेषाङ्कः-१९८०
पृथ्वीदुहिता-लेखिका श्रीमती विजया बांगरे

१६- ''संस्कृतभवितव्यम्'' दीपावलि-विशेषाङ्कः १९७७-नागपुर
लेखक-नारायणशास्त्री काङ्कर, जयपुर

१७- ''दिव्यज्योति'' जुलाई १९९०

१८- ''अर्वाचीनसंस्कृतम्'' १५ जुलाई १९८६

१९- ''कथामुक्तावली''-लेखिका क्षमा राव । बम्बई से मुद्रित १९५४

२०- ''किशोरकथावलिः''- डॉ0 रामकिशोर मिश्र, मेरठ से प्रकाशित १९८७

२१- ''संस्कृतभवितव्यम्''-लघुकथाविशेषाङ्क - १९८०
लेखक-वि0 के0 छत्रे, कल्याण

२२- संस्कृतभवितव्यम् - नवंबर १९७६
लेखिका-डॉ0 लीना रस्तोगी, उमरेड़, नागपुर

२३- कथामुक्तावली -पं0 क्षमा राव

२४- कथामुक्तावली

२५- संस्कृतभवितव्यम्-संस्कृतविश्वपरिषद्विशेषाङ्कः । १९५४
लेखक - श्री शिरोमणि पिचुमणि अंय्यंगार, सोयरपुर

२६- किशोरकथावलिः - डॉ0-रामकिशोर मिश्र

२७- कथासप्तकम्-डॉ0 नलिनी शुक्ला

२८- ''कथामुक्तावली '' की कथा ''क्षणिकविभ्रमः''-पण्डिता क्षमाराव

२९- कथा ''को दण्डनीयः''-दिव्यज्योतिः, जुलाई १९९०

३०- वही

३१- कथा-कलरवश्चिन्ता च-डॉ. नलिनी शुक्ला

## सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

(१) अर्वाचीन संस्कृत साहित्य — डॉ० श्री0 भा0 वर्णेकर

(२) संस्कृत साहित्य में राष्ट्रिय भावना — डॉ० हरिनारायण दीक्षित

(३) कथामुक्तावली — पण्डिता क्षमाराव

(४) कथासप्तकम् — डॉ० नलिनी शुक्ला

(५) किशोरकथावलिः डॉ० रामकिशोर मिश्र

(६) संस्कृतभवितव्यम्- विश्वपरिषद् विशेषाङ्क- १९५४

(७) संस्कृतभवितव्यम्- उपनिषत्कथाविशेषाङ्क- १९५७

(८) संस्कृतभवितव्यम्- दीपावलिविशेषाङ्क- १९६१

(९) संस्कृतभवितव्यम्- दीपावलिविशेषाङ्क- १९७७

(१०) संस्कृतभवितव्यम्- लघुकथाविशेषाङ्क- १९८०

(११) संस्कृतामृतम्, दिव्यज्योति, सर्वगन्धा, अर्वाचीनसंस्कृतम्, भारतोदय-:,

भारती, परिजातम्, शारदा, सुरभारती, बालसंस्कृतम्, भारतवाणी और इसी प्रकार की कई संस्कृत पत्रिकाएँ ।

(१२) Post Indepeadence Sasakrit Literatur in India.

विश्वभारती प्रकाशन

# बीसवीं शताब्दी का संस्कृत उपन्यास साहित्य

डॉ0 बनवारी लाल पाठक

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम पच्चीस वर्षों में बंगला साहित्य और पाश्चात्त्य तकनीक से प्रभावित कुछ संस्कृत लेखकों ने संस्कृत भाषा में आधुनिक शिल्प शैली के उपन्यास लिखने का बीड़ा उठाया। उपेन्द्रनाथ सेन (कलकत्ता) ने 'मकरन्दिका' (१८९४) 'कुन्दमाला' (१८९४) 'पल्लिच्छवि' (१८९५) तथा 'सरला' (१८९६) जैसे रोचक उपन्यास लिखे जो अर्धाधिक अंशों में बँगला उपन्यासों से प्रेरित, प्रभावित अथवा अनूदित थे। मौलिक उपन्यास लेखन की दिशा में सन् १८९५ ई0 में कलकत्ता निवासी मनुजेन्द्रदत्त ने सर्वप्रथम 'सतीछाया' उपन्यास लिखने का सत्प्रयास तो अवश्य किया था किन्तु यह उपन्यास पूर्णतः मौलिक नहीं था। यह लगभग पचास पृष्ठों का सामाजिक उपन्यास है जिसमें कालेज छात्रा इन्द्रप्रिया तथा इसकी पुत्री सतीछाया के व्यथापूर्ण जीवन की कहानी को कथावस्तु बनाया गया है। इसे उपन्यास परम्परा को जानने की दृष्टि देने के कारण केवल मौलिक उपन्यास जैसी झलक देने वाला उपन्यास कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त भी प्रतिवर्ष एक दो नये उपन्यास निकलते रहे और उपन्यास लेखन का उक्त क्रम ही निरन्तर चलता रहा।

## मौलिक उपन्यास

बीसवीं शताब्दी का द्वार खुलते ही मौलिक उपन्यास लिखने का शुभारम्भ हुआ। सामयिक प्रतिभाशाली साहित्यकार पं0 अम्बिकादत्त व्यास (जयपुर) मौलिक उपन्यास लेखन के अग्रदूत बने। आपका बंगालियों के जीवन से तथा बँगला की साहित्यिक परम्परा से घनिष्ठ और निकट का सम्बन्ध था। आपने 'शिवराजविजय' ऐतिहासिक मौलिक उपन्यास लिखा। यह उपन्यास तत्कालीन चक्रवर्ती संस्कृत पत्रिका 'संस्कृतचन्द्रिका' के सन् १९०१ ई0 वर्ष में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ। इसमें शिवाजी की वीरता, विजय व जीवन की घटनाओं को कथावस्तु बनाया गया है। इसकी भाषा शैली बँगला उपन्यासों जैसी और रूप विधान अद्यतन पाश्चात्त्य उपन्यासों जैसा है। यह पूर्ववर्ती गद्यकाव्य की विविध शैलियों व परम्पराओं पर आश्रित है। उपन्यास में नवीन-मौलिक अर्थों की उद्भावना देश-राजा-प्रजा-धर्म-देशसेवा-राष्ट्रभक्ति एवं स्वसंस्कृति के प्रति उत्कट अनुराग सभी की प्रतिभापूर्ण

अभिव्यक्ति की गयी है । उपन्यासकार को देश की पराश्रयता पर रोष है । जनजागरण व राष्ट्रीय चेतना के प्रति उत्सुकता है । उपन्यास में देश पर सर्वस्व न्यौछावर कर उसे स्वतन्त्र देखने का सन्देश भी है । अतः यह संस्कृत साहित्य का प्रथम मौलिक उपन्यास ही नहीं राष्ट्रीय ग्रन्थ भी है ।

प्रथक दशक में शिवराजविजय के पश्चात् कई अन्य ऐतिहासिक -सामाजिक-पौराणिक उपन्यास प्रकाशित हुए और कई रोमांस भी लिखे गये । उन्नीसवी व बीसवीं शताब्दी के मोड़ पर खड़े म0 म0 शंकरलाल नागर (गुजरात) ने शैवभक्ति का प्रचार-प्रसार करने के उद्देश्य से 'महेश्वरप्राणप्रिया' 'भगवतीभाग्योदयः' 'चन्द्रप्रभाचरितम्' 'अनसूयाभ्युदयम्' जैसे पौराणिक साहित्य एवं भारतीय संस्कृति परक उपन्यास लिखे । 'चन्द्रप्रभाचरितम्' एक रोचक रोमांस है । इसमें विद्यादान को समस्त कल्याणों का मूल बतलाया गया है । उपन्यासकार के जीवन दर्शन में उन्नीसवीं शताब्दी की साहित्यिक प्रवृत्तियों का सम्मिश्रण होते हुए भी कृतित्व को तत्कालीन प्रचलित श्रृंगारमयी परम्परा को तोड़कर भारतीय संस्कृति सम्बन्धी सदुपदेशों से अलंकृत किया गया है । भट्ट मथुरानाथ शास्त्री (जयपुर) के आगमन के साथ ही विविध प्रकार की जानकारी देकर पाठकों को संस्कृत उपन्यासों की ओर आकर्षित करने की प्रवृत्ति बल पकड़ती है । भट्ट जी ने स्वयं भी इसी दृष्टिकोण से 'आदर्शरमणी' (१९०५) उपन्यास लिखा । इस उपन्यास में भारतीय नारी के आदर्श स्वरूप का चारु चित्रण किया गया है जो विधवा होने पर भी समाज के आगे झोली नहीं पसारती और अपनी सन्तान को स्वावलम्बी हाथों से पालपोष कर योग्य बनाती है । इसी लीक पर भट्ट रमानाथ शास्त्री (बम्बई) ने भी 'दुःखिनी बाला' (१९०५) उपन्यास लिखा । इसमें आधुनिक मानव के राजसत्ता व स्वार्थ के लिए निष्ठुर बन कर निन्दनीय घृणित कार्य करने की प्रवृत्ति को प्रदर्शित किया गया है । भट्ट बलभद्र शर्मा (मथुरा) की 'वियोगिनी बाला' (१९०६) उपन्यास में समाज मे व्याप्त सामन्तवाद के अत्याचारों से सन्त्रस्त नारी की मूक वेदना मुखरित है तथा इनकी मौलिक उपन्यास लेखन कला व प्रतिभा भव्यता के साथ प्रस्फुटित है । उपन्यास के प्रारम्भ का वर्षा वर्णन अतीव रोचक है । नारी जीवन के विविध आयामों से प्रेरित होकर गोपाल शास्त्री (तमिलनाडु) ने 'अतिरूपचरितम्' (१९०८) चिदम्बर शास्त्री (तमिलनाडु) ने 'कमलाकुमारी' 'सती कमला' (१९०९) जैसे सामाजिक उपन्यास लिखे । इनमें सामाजिक साम्य-वैषम्य का यथार्थ चित्रण किया गया है । म0 म0 कुप्पूस्वामी शास्त्री (तमिलनाडु) ने भी 'सुलोचना' (१९०९) उपन्यास लिखकर सामाजिक उपन्यासों की श्रृंखला में एक भव्य कड़ी जोड़ी । इस समय ही ऐतिहासिक नारियों के साहसिक कार्यों से आधुनिक युग के नारी समाज को दिक्बोध कराने एवं नारी चरित्र की गरिमा का अंकन करने की दृष्टि से उपन्यासों के प्रणयन का सूत्रपात हुआ । सूर्यनारायण आचार्य (जयपुर) ने ''वीरमति'' (१९०९) ऐतिहासिक

उपन्यास इसी दृष्टिकोण से लिखा । इसमें विमाता के डाह की कहानी को आधार बनाया गया है । भट्टनारायण शास्त्री (तमिलनाडु) ने 'सीमन्तिनी' सामाजिक उपन्यास लिखा जिसका प्रकाशन 'हृदया' मासिक के तृतीय खण्ड में हुआ। परशुराम शर्मा महाराष्ट्र ने भी 'विजयिनी' (१९०९) उपन्यास उक्त प्रवृत्ति पर ही पल्लवित किया। आर0 कृष्णाचार्य (मद्रास) ने 'यतिव्रता' उपन्यास में आर्त नारी का, 'सुशीला' उपन्यास में मूक नारी की अन्तर्व्यथा का, 'पाणिग्रहणम्' उपन्यास में वैवाहिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया । ऐतिहासिक आधार पर भी 'वररुचिः' (१९०८) चन्द्रगुप्तः (१९०९) जैसे मनहर उपन्यास लिखे । प्रथम दशक में लिखे मौलिक उपन्यासों में उपदेश व आदर्शों की प्रधानता है । सामाजिक समस्याओं के वास्तविक चित्रण का वस्तुतः अभाव है । सामाजिक उपन्यासों में देशभक्ति, राष्ट्रप्रेम, देश की परतन्त्रता पर क्षोभ व देश के लिए बलिदान का सन्देश है । इतिहास के पृष्ठों से संचित कथानकों में इतिहास के साथ कल्पना का मधुर संयोग और उनका कलात्मक अंकन मिलता है ।

द्वितीय दशक में उपन्यास लेखकों और उपन्यास पाठकों की रुचि में परिवर्तन आया हुआ दृष्टिगत होता है । ऐतिहासिक के अतिरिक्त सामाजिक उपन्यास अधिक संख्या में लिखे गये हैं, जिनमें प्रेमतत्त्व को प्रधानता दी गयी है । चिन्तामणि माधव गोले ने 'मदनलतिका' (१९११) सरस कथा, तथा प्रो0 नरसिंहाचार्य पुणेंकर (मैसूर) ने 'सौदामिनी' (१९१४) रोचक उपन्यास इसी दृष्टि से लिखे हैं । श्री पुणेकर जीवन की विविधताओं को प्रतिबिम्बवत् अंकित करने वाले उपन्यासकार थे । अतः इन्होंने अपने उपन्यास 'सौदामिनी' को नवीन कृति कहा है । इसमें मगधराज शूरसेन एवं विदर्भ राजकुमारी सौदामिनी के प्रणय व परिणय की कथा को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है । राजगोपाल चक्रवर्ती (मैसूर) ने प्रतिभा एवं अध्ययन से उपन्यास के क्षेत्र में बलिष्ठ व्यक्तित्व स्थापित किया । ये मैसूर वि0 वि0 में संस्कृत विभागाध्यक्ष थे । आपने 'कुमुदिनी' 'विलासकुमारी' 'संगरम्' उपन्यास लिखे । 'कुमुदिनी' में ग्राम्य कथाओं के साथ काल्पनिक इतिवृत्त का भी विलास मिलता है । सभी उपन्यासों में इनकी निज शैली एवं कला आकर्षक रूप में अभिव्यक्त हुए हैं । यशस्वी उपन्यासकार जग्गू बकुल भूषण (बंगलौर) ने 'जयन्तिका' (१९१८) सामाजिक उपन्यास लिखा। यह ऐतिहासिक तथ्यों के स्पर्श से अलंकृत रोमांस है । सात सौ से अधिक पृष्ठों वाले इस उपन्यास का गद्य बाण से प्रभावित है । कथावस्तु कविकल्पित व मौलिक है । उपन्यास में सर्वत्र प्रेमतत्त्व की परिव्याप्ति, सौन्दर्य के प्रति आकर्षण, यथार्थ जीवन में प्रतिदिन अनुभव की जाने वाली मानवीय जीवन की चित्रावलियों का मनोवैज्ञानिक अंकन किया है । रामवर्मा बलिया तम्बुरान (केरल ) के 'वनमाला' उपन्यास का गद्य संयमित है; काल्पनिक उड़ानों में साहित्यिक प्रतिभा को प्रदर्शित किया गया है । आर्यप्रभा के सम्पादक नगेन्द्रनाथ सिद्धान्तरत्न (बंगाल) ने 'कल्याणी'

(१९१८) सामाजिक उपन्यास में सामाजिक दुर्नीतियों का मर्मस्पर्शी चित्रण मनोवैज्ञानिक आधार पर कर उपन्यास को एक नयी, दिशा दी है। वासुदेव लाटकर (कोल्हापुर) का 'पार्वती' (१९२०) उपन्यास, म0 म0 परमेश्वर झा (बिहार) का 'कुसुमकलिका' उपन्यास भी इस समय की महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। 'कुसुमकलिका' एक सुन्दर भावपूर्ण उपन्यास है। सुप्रसिद्ध उपन्यास लेखक मेधाव्रत का 'कुमुदिनीचन्द्र' (१९२०) इस दशक का एक रेखांकित करने योग्य उपन्यास है जो अजितगढ के स्वामी राजा केशरीसिंह के पुत्र एवं विजयनगर के राजा विजयसिंह की कन्या कुमुदिनी की ऐतिहासिक कथा पर आधारित है। राज्य लाभ के लालच से मनुष्य किस सीमा तक नृशंस हो सकता है, इस अभिव्यक्ति के अतिरिक्त तात्कालिक जीवन की सशक्त व्याख्या इसमें उपलब्ध है। उपन्यास स्वामी दयानन्द व महात्मा गांधी की विचारधाराओं से प्रभावित है। 'शुद्धिगंगावतारः' 'हिन्दूस्वराजस्य प्रभातकालः' भी इनके सुरुचिपूर्ण उपन्यास सुने जाते हैं।

तृतीय दशक में भारतीय इतिहास के उन पृष्ठों से, जो भारतीयों की वीरता के परिचायक हैं, कथानक लेकर ऐतिहासिक व सामाजिक उपन्यासों का सृजन किया गया और रोमांस भी लिखे गये। इस दशक के ख्यातिलब्ध उपन्यासकार कृष्णमाचार्य (आं0 प्र0) ने 'मन्दारवती' (१९२९) रोमांस लिखा। कादम्बरी शैली पर आधारित होते हुए भी यह आधुनिक उपन्यास की तकनीक पर संगठित है। इस घटनात्मक प्रणयपरक सामाजिक उपन्यास का गद्य निकष है, जिस पर उपन्यासकार खरा उतरता है। उपन्यास की नायिका मन्दारवती के चरित्र को उपन्यासकार ने बड़े कौशल से रचा है। उपन्यास में पाठक को पकड़े रहने की क्षमता है। म० म 0 नारायण शास्त्री खिस्ते वाराणसी का 'दरिद्राणां हृदयम्' (१९३०) सामाजिक उपन्यास भी युगोचित रचना है। इसमें जीर्णकुटी निवासी दरिद्र जुलाहा दम्पती से लेकर राजमहल के राजदम्पती तक का चित्रण किया गया है। तथा श्रमदान, चरखा, करघा उद्योग, हस्तशिल्प, स्वदेशी वस्त्र उत्पादन, गृहनिर्माण व विकास अल्पबचत जैसी योजनाओं पर प्रकाश डाला गया है। प्रौढ गद्य एवं प्रांजल भाषा में लिखा गया विज्ञान चिन्तामणि का 'प्रमीला' (१९३०) काव्यकण्ठ गणपति शास्त्री (तमिलनाडु) का 'पूर्णा' (१९३०) भी सुन्दर उपन्यास है। 'पूर्णा' अपूर्ण उपन्यास है किन्तु जितना भी है उसमें उपन्यासकार की उपन्यास कला पूर्णतः प्रस्फुटित है। श्रीमती राजम्मा मैसूर के 'चन्द्रमौलिः' उपन्यास में सामाजिक जीवन, कुरीतियों एवं दोषों का उद्घाटन और उनकी आलोचना करते हुए इनके निवारण के उपाय सुझाये गये हैं। देवेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय (कलकत्ता) ने 'बंगवीरप्रतापादित्यः' (१९३०) उपन्यास में इतिहास में टूटे फूटे खण्डहरों को नवीन रूप प्रदान कर उपन्यास कौशल का अच्छा परिचय दिया है। तात्कालिक राजनैतिक उथल पुथल एवं म्लेच्छों द्वारा पददलित भारत की दुर्दशा के भी सजीव

चित्र उकेरें हैं। उपन्यासकार उपन्यास के माध्यम से भारतीय जनता को अपने देश को स्वतन्त्र करने का मन्त्र देकर भारतीयों से राणा प्रताप जैसे बलिदान की अपेक्षा करता है ।

चतुर्थ दशक में ऐतिहासिक तथ्यों को सामाजिक दृष्टिकोण से तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति प्रवर्धित होती है । इस अवधि में ऐतिहासिक सांस्कृतिक-धार्मिक-सामाजिक आदि विविध प्रकार के उपन्यास लिखे गये हैं । उपन्यास शिल्पी इन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय (बंगाल) का प्राचीन कथ्यों व तथ्यों के आधार पर लिखा 'अष्टावक्रीयम्' (१९३२) उपन्यास उक्त प्रकार की रचना है । नारायण शास्त्री खिस्ते (वाराणसी) ने 'दिव्यदृष्टि' (१९३६) घटना प्रधान उपन्यास लिखा जिसमें आज के नवयुवक की परिवर्तित मनोवृत्ति को स्पष्ट किया है । उपन्यास में मूल समस्या पाश्चात्त्य शिक्षा व सभ्यता के अन्धानुकरण से भारतीय शिक्षित युवकों के नास्तिक होने की है । इन्हें किस भाँति आस्तिक बनाया जाय इसे ललितकुमार के चरित्र द्वारा प्रस्तुत किया गया है । सुबोध संस्कृत मे लिखा बालकुन्नन नम्बूद्री (केरल) का 'सुभद्रा' उपन्यास, उद्यान पत्रिका में छपा टी0 एस0 श्रीनिवास अय्यङ्गार शिरोमणि (तिरुपति) का चन्द्रकला (१९३६) उपन्यास भी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं । वृद्धिचन्द्र शर्मा (जयपुर) ने लीक से हटकर 'आदर्शदम्पती' (१९३७) उपन्यासिका लिखी । इसमें आधुनिक समाज में व्याप्त कुरीतियों बुराइयों, बेकारी, सट्टेबाजी, एवं मृत्युभोज पर किये जाने वाले अपव्यय जैसी सामयिक समस्याओं को उठाया गया है । इस समय कलकत्ता से प्रकाशित संस्कृत-साहित्य- परिषद्-पत्रिका मासिक में भी अनेक उपन्यास निकले । इसके सन् १९३५ ई. के अक्तूबर अंक मे छपा 'दास' उपन्यास भी एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है ।

पंचम दशक में भी ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की परम्परा अक्षुण्ण बनी रही। इस समय देश के समक्ष अनेक समस्याएँ थीं । इन्हें लक्ष्य करके उपन्यासों की रचना की गयी । जगद्राम शास्त्री (पंजाब) ने 'छत्रशालविजयम्' (१९४५) ऐतिहासिक उपन्यास में ओरछा युवराज विमलदेव के चरित्र तथा बुन्देलखण्ड के प्रतिष्ठाता राजा प्रतापरुद्रवर्मन् के गुणों की चर्चा की । वी0 अनन्ताचार्य कोडम्बक (मद्रास) ने 'उदयनचरितम्' (१९४७) उपन्यास ऐतिहासिक सत्यों के आधार पर लिखा । एम0 नरसिंहाचार्य (मैसूर) का वीररस प्रधान उपन्यास 'कीर्तिसेन' (१९४८ - ४९) महाराज संस्कृत कालेज मैसूर की पत्रिका में प्रकाशित हुआ । गंग उपाध्याय कलकत्ता ने 'सीमासमस्या' (१९५०) समस्यात्मक उपन्यास लिखा जिसमें एक वामपक्षीय तरुण का यथार्थ चित्रण किया गया है ।

षष्ठ दशक में रोमांस अधिक संख्या में लिखे गये । सांस्कृतिक-धार्मिक-सामाजिक-ऐतिहासिक उपन्यासों में दर्शन तथा बहुचर्चित कल्पना के समन्वय से युग की विविध प्रवृत्तियों के यथार्थ स्वरूप का चित्रण किया गया है । इस समय के

उपन्यासों में काम-कुण्ठा-वासना आदि को मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया गया है । इस दशक के प्रतिष्ठित उपन्यासकार म० म० हरिदास सिद्धान्तवागीश भट्टाचार्य (कलकत्ता) ने 'सरला' (१९५३) रोमांस लिखा । इसमें दहेज, अन्तर्जातीय विवाह, पुनर्वास आदि सामयिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है । नर नारी के अवचेतन मन की ग्रन्थियाँ किस भाँति जीवन को परिचालित करती हैं, इसे मनोवैज्ञानिक तथ्यों के प्रकाश में स्पष्ट किया है । आर0 राममूर्ति ने 'वीरलब्ध-पारितोषिकम् (१९५५) ऐतिहासिक उपन्यास लिखा जो चोल इतिहास की भूमि पर आधारित है । डा० भागीरथ प्रसाद त्रिपाठी (वाराणसी) का 'मंगलमयूख' (१९५६) उपन्यास जिसका अन्य नाम कादिम्बनी भी है, आधुनिक उपन्यास कला को दृष्टि में रखकर किया गया सुन्दर प्रयोग है । भट्ट मथुरानाथ शास्त्री (जयपुर) ने 'महाराजा मानसिंह' (१९५८) उपन्यास आमेर नरेश महामानी मानसिंह के ऐतिहासिक व्यक्तित्व को आधार बनाकर लिखा है । इसमें इनकी छवि को एक कुशल राजनीतिज्ञ एवं मुगल साम्राज्य के सूत्रधार के रूप में उभार कर ऐतिहासिक दृष्टि को एक अनूठा मोड़ दिया है । 'असमसाहसम्' भी आपकी अच्छी ऐतिहासिक प्रस्तुति है । प्रो0 रामस्वरूप शास्त्री (अलीगढ़) की 'त्रिपुरदाह-कथा' (१९५९) कथा साहित्य के एक नवीन आयाम को उद्घाटित करती है । इसका कथानक पौराणिक है जिसे दर्शन के एक निश्चित ढाँचे में ढालकर उपन्यास का रूप दिया गया है । इसमें शिव के त्रिपुर-दाह की कथा उपन्यस्त है । के0 एस0 कृष्णामूर्ति (मद्रास) ने रामभक्ति प्रवर्धक रचना 'वैदेहीविवाहम्' (१९५९) में सीता विवाह पर्यन्त श्री रामचरित्र की कथावस्तु के साथ साथ आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं धार्मिक तत्त्वों को भी रोचक शैली में व्यक्त किया है । इसे 'बाणस्य प्रतिबाण इव' की संज्ञा दी जा सकती है । श्रीनिवास शास्त्री (कलकत्ता) ने 'चन्द्रमहीपतिकमला' (१९५९) उपन्यास में पूँजीवाद एवं घूसखोरी की निन्दा आदि विषयों पर लेखनी चलायी है । राजनीतिक विचारधाराओं एवं गान्धीजी की कल्पना के अनुरूप सर्वोदयवाद का आकर्षक रूप अंकित किया है । प्रो० कलानाथ शास्त्री (जयपुर) ने 'जीवनस्य पृष्ठद्वयम्' (१९६०) उपन्यास में साम्प्रदायिक झगड़े, स्थानान्तरण से उत्पन्न बच्चों की शिक्षा समस्या, संस्कृत गृह शिक्षिकाओं की असुलभता, अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव, संस्कृत पत्रकारों की आर्थिक स्थिति का यथार्थ अंकन किया है । लीक से हटकर रचा गया यह उपन्यास सर्वतोभावेन एक सुन्दर रचना है । इस दशक में अधिकांश उपन्यासों की रचना पाश्चात्त्य उपन्यास की तकनीक पर ही की गयी है ।

सप्तम दशक में विविध विषयों पर उपन्यास लिखे गये । प्रमुखतः प्राचीन भारत के इतिहास तथा संस्कृति को आधार बनाकर उपन्यास साहित्य की रचना की गयी । राजनीतिक नेताओं, आदर्श पुरुषों, क्रान्तिकारियों निम्न उच्च समाज एवं वर्ग से कथानक चयन किये गये । सामाजिक उपन्यासों में प्रेम और प्रेम

विषयक समस्याओं को प्रधानता दी गयी है। समाजगत विविध समस्याओं को उठाया गया तथा उनके उचित समाधान भी प्रस्तुत किये गये। आधुनिक संस्कृत उपन्यास क्षेत्र की महान विभूति आनन्दवर्धन रत्नपारखी (दिल्ली) ने 'कुसुमलक्ष्मी' (१९६१) रोमांटिक टाइप का उपन्यास लिखा। उपन्यास का उद्देश्य आधुनिक कालीन प्रणय और उसकी उलझनों का चित्रांकन करना है जिसे विकास पंडित, कुसुमलक्ष्मी व उर्मिला साने के त्रिकोण प्रेम संघर्ष द्वारा चित्रित किया है। डॉ० रामकिशोर मिश्र (सोरों) ने 'अन्तर्दाहः' (१९६१) में विश्वविद्यालय सहशिक्षा स्तर पर प्रेम तथा प्रेम विवाह की समस्या पर सामाजिक दुःखान्त उपन्यास लिखा। इनका 'पारेगङ्गम्' उपन्यास भी प्रणय पर आधारित रचना है। डॉ० राम जी उपाध्याय (सागर) ने 'द्वा सुपर्णा' (१९६१) संस्कृति प्रधान सामाजिक उपन्यास में दहेज आदि सामाजिक कुरीतियों पर प्रकाश डाला। उपन्यास में ग्राम अभ्युदय, ग्राम विकास योजनाओं का प्रवर्तन, श्रमप्रतिष्ठा, दहेज त्याग, स्वदेशी वस्त्र प्रयोग, पशुपालन, विवाह विषयक भावनाओं में व्यापक दृष्टिकोण, मानव कल्याण व विश्वबन्धुत्व का संदेश देना लेखक को अभीष्ट है। वासुदेव शास्त्री औदुम्बकर (पूना) का 'प्रेमजालम्' (१९६२) उपन्यास विद्यानगर के महासचिव रामदेव राय तथा विजयपुर यवनराज आदिलशाह के मध्य संघर्ष को व्यक्त करता है। सुखान्त उपन्यास को कल्पना मिश्रित ऐतिहासिक आधार पर लिखा गया है। ना० सु0 रा0 गणात्ते (ऊट्टी) के ''अनुराधा'' उपन्यास में साहित्य और कला का शोभन संगम प्राप्य है।

डॉ० श्रीधर प्रसाद 'सुधांशु' (पीलीभीत) ने 'श्रूयते हि' (१९६४) उपन्यास भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन एवं नवयुवतियों के देशप्रेम को लक्ष्य कर लिखा। इसमें भारतीय नारी की दासता तथा विवशता एवं भारतीय समाज की तात्कालिक समस्याओं का भी चित्रण हुआ है। डॉ० प्रेम शंकर मिश्र (इटारसी) के कई उपन्यास पत्रिकाओं में छपे हैं। इनका 'सुभाषचरितम्' (१९६६) अपने ढंग का निराला उपन्यास है। इसमें भारतीय स्वतन्त्रता सेनानी व आइ० एन0 ए०.के सेनापति श्री सुभाषचन्द्र बोस का जीवन चरित्र उपन्यास शैली में निबद्ध है। इसमें सत्य तथा रचनाकार के कल्पित सत्य का सुरुचिकर समन्वय है। इसका अधिकांश पराधीन भारत की झाँकी है जो अंग्रेज जाति की संकीर्ण मनोवृत्ति को प्रकट करती है। असहयोग आन्दोलन के शब्दचित्र यथार्थ हैं। श्रीनिवास शास्त्री (कलकत्ता) ने 'सूर्यप्रभा किम्वा वैभवपिशाचः' (१९६८) उपन्यास में धनाढ्यों की धूर्तता, क्रूरता एवं ऐसे मनुष्यों के इतिवृत्त पर प्रकाश डाला है जिनकी दुष्टता ही दैनिक कर्म बन चुका है। इसके 'कृष्णतारा किं वा नवपल्लवम्' कल्पनामिश्रित उपन्यास में कृष्ण-तारा कलङ्किता नगरी को छोड़कर भारत की यात्रा करती हैं तथा सूर्यप्रभा को पत्र द्वारा भारत के प्राचीन राजाओं, नगरों, राजधानियों के उत्थान पतन का वर्णन भेजती रहती हैं। इनके 'सर्वाभ्युदयः किं वा सत्यं शिवं सुन्दरम्' उपन्यास में

भारतीय परम्परा में आदर्श शासन के स्वरूप का वर्णनात्मक दिग्दर्शन कराया गया है। उपन्यास का मूल उद्देश्य सर्वाभ्युदयवाद की प्रतिष्ठा करना है। श्री चन्दन मुनि (पंजाब) आध्यात्मिक जागरण की प्रेरणा से साहित्य सर्जन करने वाले स्रष्टा हैं। आपने औपन्यासिक शैली में 'अर्जुनमालाकारम्' (१९६९) 'प्रभवप्रबोधः' (१९७०) रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। इनमें कथा के माध्यम से जीवन मूल्यों का, जैन दर्शन का, धर्म के आर्दर्शों का, जैन धर्मानुयायियों द्वारा आत्मसात् प्रवृत्तियों का एवं इसके सर्वातिशायी महत्त्व का दिग्दर्शन कराया गया है। लेखक की दृष्टि कड़ी शब्दावली की रीढ़ तोड़ने पर आद्यन्त केन्द्रित रही है।

अष्टम दशक के उपन्यासकारों में उपन्यासों की रूपसज्ञा व बाह्य स्वरूप पर विशेष ध्यान देने की प्रवृत्ति प्रवर्धित हुई। धार्मिक - सांस्कृतिक - साहित्यिक संस्थाओं ने तथा शासन ने उपन्यास लेखकों को आर्थिक सहायता देकर युगानुरूप उपन्यास प्रकाशित करने को प्रोत्साहित किया। प्रायः उपन्यासों के कथानक धार्मिक, ऐतिहासिक और सामाजिक क्षेत्र व समाज से चुने गये हैं। डॉ० बिहारीलाल शर्मा (वाराणसी) के 'मंगलायतनम्' (१९७५) का कथानक जैन धार्मिक साहित्य से गृहीत है। यह महावीर वर्धमान के जीवन चरित्र पर आधारित है। जैन धर्म के सिद्धान्त व जैन दर्शन का यथावसर प्रयोग किया है। डॉ० कृष्णकुमार (गढ़वाल) ने 'उदयनचरितम् (१९८०) उपन्यास में प्राचीन इतिहास व लोकश्रुति से राजा उदयन संबधी सामग्री जुटाकर छठी शताब्दी के युग के पूर्व का सजीव चित्रण किया है। परमानन्द शास्त्री सहारनपुर का ''करुणा'' उपन्यास अपूर्ण होते हुए भी उल्लेख्य रचना है।

नवम दशक के उपन्यासकार विषय की विविधता तथा रचनाशिल्प की दृष्टि से काफी आगे निकल चुके हैं। उपन्यासकारों ने उस ओर दृष्टि डाली है जहाँ समाज का उपेक्षित वर्ग बसता है। ये उनका सामाजिक मूल्य भी भली भाँति आँक रहें हैं। इस समय के उपन्यासों में सामाजिक समस्या, जीवन के नवीन मूल्यों की स्थापना एवं समाज के यथार्थ चित्रण की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। आत्महत्या, परहत्या, उच्च हीन विचारग्रन्थि, दमित वासना, सम्मोहन, मानव के रहस्यमय व्यक्तित्व एवं कुण्ठाग्रस्त जीवन का यथार्थ और मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मक चित्रण किया जा रहा है। उपन्यासों की कथावस्तु भारतीय है किन्तु तकनीक, कथ्य और शैली में नित्य नये प्रयोग भी किये जा रहें हैं। डॉ० केशवचन्द्र दाश, द्वारिका प्रसाद, देवीदयाल शास्त्री, डॉ० श्रीनाथदास हसूरकर, डॉ० विश्वनारायण शास्त्री आदि नये हस्ताक्षर उभर कर आये हैं।

डॉ० केशव चन्द्र दाश (उड़ीसा) जीवन के तनाव को ढीला कर आनन्द विभोर कर देने वाले उपन्यासकार हैं। इनके अनेक उपन्यास सामने आये हैं। जिनमें गम्भीर दार्शनिकता, बुद्धिवाद व उच्च चिन्तन मिलती है। आपके 'तिलोत्तमा' (१९८२)

सामाजिक उपन्यास में तिलोत्तमा, भाग्यदत्त व नीलिमा व पुष्पवल्लभ के विवाह व प्रेम के कथानक को आधार बनाया गया है । कथानक मौलिक रोचक एवं सुगठित है । पुरातन मूल्यबोध के साथ परिवर्तित युगबोध को ध्यान में रखकर त्याग पर विचार करना और कुसंस्कार को संस्कार बनाने के लिये मार्गान्तरण करना तिलोत्तमा का सन्देश है । तकनीक की दृष्टिसे उपन्यास एक दम नवीनता लिये हुए है । 'शीतल-तृष्णा' (१९८३) दर्शन पर आधारित एवं टैकनीक की दृष्टि से पाश्चात्त्य शैली का उपन्यास है । इसमें नायक ऋत्विक् व नायिका ऋति के वैवाहिक जीवन की सफलता दार्शनिक भूमि पर विवेचित है । संस्कृत सरल व बोलचाल की है । यत्र तत्र उपन्यासकार बुद्धिवाद के घेरे में स्वयं फँस कर रह गया है । 'पताका' (१९८५) उपन्यास में स्वाधीनता संग्राम की कहानी प्रस्तुत की गयी है । इसका उद्देश्य परस्पर मैत्रीभाव एवं ऐक्य है । 'अञ्जलिः' सामाजिक उपन्यास में एक सेवारत युगल के जीवन की विभिन्न समस्याओं तथा उनके परिवार के बिखराव का चित्रण है । उपन्यास का लक्ष्य एक स्वस्थ परिवार का निर्माण और इसमें जीवन व जीविका के मिलन बिन्दु की खोज करना है ।

'शिखा' आधुनिक समाज की प्रवृत्तियों पर तथा पुरातन मूल्यबोध से बिछुड़ जाने के परिणाम पर आधारित उपन्यास है । इसमें आध्यात्मिक वातावरण में पोषित एक ब्राह्मण व ऐहिक सुख साधन में लिप्त पुत्र का कथानक है । शिखा प्रवृत्ति का प्रतीक है । संकल्प द्वारा मनुष्य दुष्प्रवृत्ति से निर्लिप्त रह सकता है । यह उपन्यास लेखन का उद्देश्य है । 'मधुयानम्' (१९८४) में उपन्यासकार ने 'साहस्यमेव जीवनस्य मधु' के आदर्शों को स्थापित करने का प्रयास किया है । 'प्रतिपद्' (१९८४) उपन्यास में नायक उद्धव का अविद्या या सांसारिकता में फँसने का कथानक है । वह इस अविद्या का प्रारम्भ अनध्याय की तिथि प्रतिपदा से करता है । 'अरुणा' (१९८५) उपन्यास में लेखक ने महानगरीय जीवन की नारकीयता व सिद्धान्तहीन उत्तम की प्राप्ति की कामना का प्रतिपादन नीलुदा वरुण, यामिनी, प्रो० रमण लल्लू आदि चरित्रों के द्वारा किया है । 'आवर्तम्' (१९८५) में फ्रायड का प्रभाव परिलक्षित होता है । वासना (सैक्स) उपन्यास का मूल बिन्दु है । इन्द्र और वृत्र के प्राचीन कथानक द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है कि वासना के सदुपयोग से सभ्यता बनती है, दुरुपयोग से नष्ट होती है । 'निकषा' उपन्यास मानव जीवन की समस्याओं पर आधारित है । जिजीविषा उपन्यास का प्रधान सूत्र है । 'ऋतम्' (१९८८) आधुनिक शिल्प का एक उत्तम उपन्यास है । उत्कृष्ट सत्य इसका विवेच्य है । नायिका अभिधा की विमर्शशील प्रवृत्ति उपन्यास का मुख्याकर्षण है । भाषा अत्यन्त सरल है । प्रतिपादन का ढंग नाटकीय है । आपके सभी उपन्यासों में व्यक्तिवादी चेतना अभिव्यक्त हुई है । ये मनोवैज्ञानिक शैली में लिखे गये हैं ।

द्वारिकाप्रसाद देवीदयाल शास्त्री (रायबरेली) साहित्यकार-युगल युगबोध का

लेखक है। इन दोनों ने मिलकर उपन्यास क्षेत्र में लेखनी उठाई है। इनका सम्मिलित प्रयास 'दिव्यज्योति' (१९८२) उपन्यास सामाजिक है जो दहेज प्रथा पर लिखा गया है। इसमें इनका दृष्टिकोण सुधारात्मक है। कथावस्तु-वर्णन-शिल्प की दृष्टि से यह एक सफल प्रयोग है। डॉ० श्रीनाथ हसूरकर (नीमच) अद्यतन साहित्यिक प्रवृत्तियों के साथ पदार्पण करने वाले उपन्यासकार हैं। इनका 'अजातशत्रु' (१९८४) उपन्यास कथ्य एवं कला दोनों दृष्टियों से मनमोहक रचना है। आपको अर्वाचीन युग की उपन्यास विधा का प्रभावोत्पादक स्वर साधक कहा जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त लेखक डॉ० विश्वनारायण शास्त्री (गौहाटी) का 'अविनाशि' (१९८९) उपन्यास ऐतिहासिक है। इसका आधार सप्तम शतक के पूर्वार्ध में घटित रचना है जो कामरूप (आसाम) नरेश कुमार भास्कर वर्मा द्वारा हर्षवर्धन के साथ गौडाभियान (बंगाल) की महत्त्वपूर्ण घटना को लेकर लिखा गया है। उपन्यास सप्तम शती के भारत की सांस्कृतिक परम्परा का प्रतिबिम्ब है। आधुनिक ढंग से लिखे गये इस उपन्यास की भाषा एवं भावाभिव्यक्ति पूर्णतः क्लासिकल है।

मौलिक उपन्यासों का प्रकाशन दिनों दिन बढ़ता ही जा रहा है क्योंकि प्रचलित प्रतिष्ठित संस्कृत पत्रिकाओं को उच्च स्तर बनाये रखने के लिए इसकी आवश्यकता प्रतीत होती है।

## अनूदित-रूपान्तरित उपन्यास

विवेच्य शताब्दी में भारत की प्रान्तीय भाषाओं तथा अंग्रेजी साहित्य से भी उत्तम उपन्यासों को संस्कृत में अनूदित किया गया है, जिससे आधुनिक उपन्यास साहित्य समृद्ध हुआ है। बंगला भाषा का उपन्यास साहित्य भावुकता एवं रोचकता पूर्ण है। इन विशेषताओं से प्रभावित होकर मूल उपन्यासों के संस्कृत में अनुवाद किये गये हैं। इनकी कथावस्तु व शैली पर संस्कृत कथानकों का निर्माण किया गया है और इनके संक्षिप्त रूपान्तर भी किये गये हैं। मुख्यतः रवीन्द्र - बंकिम - शरद- रमेशचन्द्र दत्त - हरिप्रसाद शास्त्री के बँगला उपन्यासों को अनूदित किया गया है। बीसवीं शती के प्रारम्भ में संस्कृत के प्रसिद्ध मासिक 'संस्कृत-चन्द्रिका' की तूती बोल रही थी। इसमें ही बँगला उपन्यास साहित्य के अनुवादित उपन्यास प्रचुर मात्रा में प्रकाशित हुए थे। इस मासिक के सम्पादक अप्पाशास्त्री राशिवडेकर (कोल्हापुर), जो कि समकालीन संस्कृत पत्रिकारिता के भीष्म पितामह थे, ने बंकिमचन्द्र के 'इन्दिरा' (१९०४) 'देवी कुमुद्वती' (१९०३) 'लावण्यमयी' (१९०६) 'कृष्णकान्तस्य निर्वाणम्' (१९०७) उपन्यासों को संस्कृतचन्द्रिका में प्रकाशित किया। सुख्यात रूपान्तरकार श्रीमती रेणुदेवी (बंगाल) द्वारा बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के राधा (१९२२) दुर्गेशनन्दिनी (१९२२ - २३) 'रजनी' (१९२८ - २९) 'राधारानी' (१९३० - ३१) के संस्कृत रूपान्तर कलकत्ता से प्रकाशित संस्कृत - साहित्य -

परिषद् - पत्रिका में निकले । इनमें हृदयस्पर्शी, मधुर तथा सरल संस्कृत का प्रयोग किया गया है । ए० राज गोपाल चक्रवर्ती (मैसूर) का 'शैवालिनी' (१९१७) उपन्यास भी बँगला उपन्यास का सरल संस्कृत रूपान्तर है । इनके अन्य उपन्यास भी बंगला उपन्यासों की शैली पर लिखे गये हैं । श्रीशैल ताताचार्य (काञ्ची) ने बंकिम के 'दुर्गेशनन्दिनी' 'क्षत्रियरमणी' (१९०८) उपन्यास व हरिचरण भट्टाचार्य (बंगाल) ने बंकिम के 'कपालकुण्डला' को 'कपालकुण्डलम्' (१९१८) शीर्षक से सरस - सरल संस्कृत में अविकल अनूदित किया है । विधुशेखर भट्टाचार्य (बंगाल) ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा लिखित कथा के आधार पर 'जयपराजयम्' (१९०६) उपन्यास लिखा। इनका 'चन्द्रप्रभा' (१९१५) उपन्यास भी बँगला साहित्य से अनूदित रचना है । बँगला उपन्यास साहित्य से अनुवादित अन्य उपन्यासों में डॉ० परशुराम शर्मा (पूना) का 'वाल्मीकिविजयः' (१९६२) उपन्यास जिसमें विश्वबन्धुत्व, एकता, समता, आत्मदाह व राजनीतिज्ञों की अहंमन्यता का सुन्दर वर्णन है, प्रो० रविनाथ त्रिपाठी 'कलकत्ता' का ब्राह्मणकन्या (१९६६) उपन्यास जिसमें प्रचीन व नवीन सामाजिक विचारधाराओं की यथार्थ अभिव्यक्ति मिलती है, हरेकृष्ण शास्त्री (जयपुर) का 'उद्वेजनी' (१९६१) उपन्यास व रुद्रदत्त पाठक (गया) का 'सम्मेलन-मन्दिरम्' (१९६२) उपन्यास उल्लेखनीय हैं । बंगला साहित्य से अनूदित या रूपान्तरित उपन्यास संस्कृत उपन्यास साहित्य के प्रति जनरुचि और जनजागरण के परिणाम थे ।

तमिल तेलुगु भाषा साहित्य के प्रमुख उपन्यासों को भी संस्कृत में अनूदित किया गया जिनमें लेखकों के यथार्थ मनोभावों को सहज तथा स्पष्ट शब्दावली में रखने का प्रयास किया गया है । मुडम्बै श्रीनिवासाचार्य (तमिलनाडु) ने तमिल साहित्य से कथ्य और भाव लेकर 'मणिमेखला' 'कैरविणी' 'प्रवालवल्ली' रोमांस लिखे । दोरा स्वामी के तमिल उपन्यास का देशिक तिरुमलैय ताताचार्य (तिरुपति) ने 'मेनका' (१९३०) शीर्षक से परिष्कृत संस्कृत में अनुवाद किया जो 'उद्यानपत्रिका' मासिक में क्रमशः प्रकाशित हुआ । तेलुगु साहित्य से यरसूरि मल्लिकार्जुन राव (राजमुन्द्री) ने सूरन कवि की 'कलापूर्णोदय' विलक्षण रचना को 'संस्कृत-कलापूर्णोदय' (१९५६) उपन्यास रूप में मौलिक से कहीं अधिक रोचक ढंग से प्रस्तुत किया । कलभाषिणी वेश्या और मणिकंधर का प्रणय इसकी मूल कथावस्तु है ।इसमें आन्ध्र-केरल-कश्मीर-महाराष्ट्र प्रदेश निवासियों की सभ्यता संस्कृति और सामाजिक जीवन के यथार्थ चित्र मिलते हैं । 'भारतमुद्रा' संस्कृत पत्रिका में भी केरल भाषा में लिखे अनेक उपन्यासों को संस्कृत में प्रस्तुत किया गया है । जिनमें माबम्बु कुजुकुट्ट का उपन्यास 'महाप्रस्थानम्' (१९८३) महत्त्वपूर्ण कृति है।

आधुनिक सुधारवादी संस्कृत साहित्यिकों ने मराठी साहित्य से भी उपन्यास रत्न चुने और उन्हें रोचक आकर्षक सरल संस्कृत में अनूदित किया है । ना० चि०

केलकर के मराठी उपन्यास को वासुदेव लाटकर (कोल्हापुर) ने 'बलिदानम्' (१९४०) शीर्षक से भावानुवर्तिनी भाषा में प्रस्तुत किया। इसमें हिंसाप्रधान शाक्त धर्म के पतन तथा अहिंसावादी बौद्ध धर्म के उत्थान का आकर्षक चित्रण है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य के अनुपम उपन्यासों को भी संस्कृत में अनूदित करने के लिए अनुवादक प्रवृत्त हुए हैं। इनका झुकाव कला के विचार से नहीं विषय के आकर्षण के कारण हुआ है। इस श्रृंखला में अनन्ताचार्य (कांची) का 'संसारचक्रम्' (१९०६) ना0 सु0 रा0 गवोत्त (नीलगिरि) का 'पीतः सरोवरः' उल्लेख्य उपन्यास है। संसारचक्रम् उपन्यास मंजुभाषिणी पत्रिका में छपा, पश्चात् पुस्तकाकार रूप में भी प्रकाशित हुआ है।

अंग्रेजी साहित्य से भी अनेक उपन्यास नाटक संस्कृत के रूप में भाषान्तरित अनूदित व रूपान्तरित किये गये हैं और इनके कथासार भी औपन्यासिक रूप में प्रकाशित हुए। विदेशी साहित्यकारों में विशेषतः शेक्सपियर के नाटकों के आधार पर उपन्यासों को लिखा गया है। ए0 आर0 राजराजवर्मा कोइतम्बुरान (केरल) ने 'उद्दालचरितम्' पी0 के0 कल्याणराम शास्त्री (मद्रास) ने 'कनकलता' (१९०८) उपन्यास लिखे। कुलमणि देवकोटा (नेपाल) ने जर्मन उपन्यासकार स्टीफेन ज्वीग के उपन्यास को 'विराट्' (१९६२) यज्ञनारायण दीक्षित (गुन्टूर) ने टेनीसन के 'इनाक अरडिन' के आधार पर उपन्यास 'अन्नपूर्णा' (१९६६) लिखा। सामाजिक उपन्यास विराट् भारतीय कर्मयोग के सिद्धान्त पर आधारित उत्कृष्ट रचना है।

संस्कृत नाटकों के कथासार भी उपन्यास के रूप में लिखे गये हैं। लक्ष्मणसूरी (तमिलनाडु) ने 'महाभारतसंग्राम' (१९०४) 'रामायणसंग्रह' 'भीष्मविजयः' (१९०४) श्रीमती क्षमाराव (पूना) ने 'नैषधीयं गद्यामृतम्' (१९५५) डॉ० वे० वरदाचार्य (तिरुपति) ने 'शकुन्तलाचरितम्' उपन्यास लिखे। 'शकुन्तलाचरितम्' उपन्यास को ऐतिहासिक व कल्पनाजन्य घटनाओं के सहयोग से अत्यन्त रोचक व सरस बनाया गया है। भारतीय नारी जीवन में जिसे एक बार हृदय समर्पित कर देती है उस पर आजीवन अटल रहती है - यह दिखाना उपन्यास का उद्देश्य है। इन उपन्यासों के लेखन - प्रकाशन से नवीन शैली के मौलिक उपन्यास लेखन के लिए प्रशस्त राजमार्ग मिला है।

सम्प्रति नवोदित प्रतिभाएँ इस क्षेत्र में अवतरित हो रही हैं और अनूदित उपन्यास साहित्य की अभिवृद्धि कर रही है। इन उपन्यासों से उपन्यास पाठकों की संख्या में द्रुत गति से वृद्धि हुई है तथा इनके प्रकाशन में भी निरन्तर क्षिप्रता आती चली जा रही है।

# बीसवीं शताब्दी की वैशेषिक सूत्रों की संस्कृत टीकाएँ

डॉ0 शशिप्रभा कुमार

भारतीय आस्तिक षड्दर्शनों में अन्यतम वैशेषिक दर्शन का मूल महर्षि कणादकृत वैशेषिक सूत्र हैं जो दार्शनिक सूत्रग्रन्थों में प्राचीनतम (५०० ई0 पू0 के लगभग) माने जाते हैं । अतः वैशेषिक परम्परा का विकास पिछले ढाई हजार वर्षो की लम्बी अवधि में प्रथित है । इस सुदीर्घ विकास क्रम में अनेकानेक ग्रन्थरत्नों ने इस दर्शन की मान्यताओं को आगे बढ़ाया किन्तु वैशेषिक सूत्र ही इस दर्शन की प्राचीनतम मूल रचना है, इसमें कोई सन्देह नहीं । यद्यपि कालक्रमानुसार इन सूत्रों की संख्या और स्वरूप में अनेक परिवर्तन हुए हैं- भिन्न-भिन्न संस्करणों में उद्धृत वैशेषिक सूत्रों की संख्या में पर्याप्त असामंजस्य है तथा नवीन दार्शनिक मान्यताओं को प्रामाणिक बनाने के लिए अनेक सूत्र बाद में प्रक्षिप्त किये गये भी प्रतीत होते हैं किन्तु इससे वैशेषिक सूत्रों का प्रतिपाद्यगत माहात्म्य कदापि कम नहीं होता । जिस भाँति व्याकरण और वेदान्त शास्त्र सूत्रों के बिना नहीं पढ़े जा सकते, उसी भाँति न्याय और वैशेषिक दर्शन का अध्ययन मूलभूत सूत्रों के बिना सम्भव नहीं, इसीलिए प्राचीन दर्शन ग्रन्थों का प्रचार वर्तमान काल में पुनः प्रचलित हो रहा है । इसी तथ्य का स्पष्ट निदर्शन वैशेषिक सूत्रों पर बीसवीं शताब्दी में लिखी गयी कतिपय संस्कृत टीकाएँ हैं जिनका दिग्दर्शन प्रस्तुत निबन्ध का प्रतिपाद्य है ।

विगत ढाई शताब्दियों से प्रवर्तमान वैशेषिक परम्परा में इन सूत्रों पर प्राचीनतम उपलब्ध व्याख्या प्रशस्तपाद का 'पदार्थधर्मसंग्रह' ही है, यद्यपि उससे पूर्व भी अनेक व्याख्याओं के संकेत मिलते हैं- जैसे-वाक्य, श्रायस्ककृतव्याख्या, रावणभाष्य, कटन्दी, आत्रेयभाष्य, भाष्य वृत्ति, भारद्वाजवृत्ति आदि [१]; किन्तु इनमें से कोई भी प्राप्य नही है । इन प्राचीन अनुपलब्ध व्याख्याओं के अतिरिक्त अतीत में वैशेषिक सूत्रों पर प्रणीत अनेक अन्य महत्त्वपूर्ण संस्कृत व्याख्याएँ प्रकाशित भी हो चुकी हैं, जिनमें सर्वप्रमुख शङ्करमिश्रकृत 'उपस्कार' हैं; साथ ही भट्टवादीन्द्रकृत 'कणादसूत्रनिबन्ध', बड़ौदा से प्रकाशित 'चन्द्रानन्दवृत्ति', मिथिला विद्यापीठ से प्रकाशित 'अज्ञातकर्तृक व्याख्या', जयनारायणकृत 'विवृति', चन्द्रकान्त तर्कालङ्कार कृत 'भाष्य' एवं पं0 रघुदेव का 'व्याख्यान' उल्लेख्य हैं । वर्तमान शताब्दी में वैशेषिक

सूत्रों पर अंग्रेजी व हिन्दी में रचित व्याख्याओं एवं शोध ग्रन्थों के अतिरिक्त देववाणी संस्कृत में जो व्याख्याएँ लिखित एवं प्रकाशित हैं, उनका संक्षिप्त विवरण एवं वैशिष्ट्य विवेचन निम्नलिखित है-

## (१) वैशेषिक दर्शन-'रसायन'-व्याख्या[२]

बीसवीं शताब्दी में प्रणीत वैशेषिक-सूत्र-व्याख्याओं में यह प्राचीनतम एवं सर्वप्रथम है। इसके प्रणेता तर्कार्णव पण्डितरत्न श्री उत्तमूर वीरराघवाचार्य हैं। विद्वान् व्याख्याकार ने प्रशस्तपाद भाष्य, व्योमवती, न्यायकन्दली, किरणावली आदि सभी प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन-मनन करके अपनी कृति में उनका प्रचुर उपयोग भी किया है। श्री वीरराघवाचार्य ने वैशेषिक सूत्रपाठ में संशोधन भी किया है एवं अनेकत्र सूत्रों के लुप्त अंश भी प्रकाशित किये हैं। महान् श्रम एवं प्रयासपूर्वक उन्होंने 'सूत्रयाथात्म्यशोधनम्' शीर्षक के अन्तर्गत न्यायभाष्य, उपस्कार, कन्दली, किरणावली व्योमवती एवं विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी द्वारा स्वीकृत सूत्रपाठ[३] इत्यादि से पाठ भेदों का निदर्शन कराके प्रामाणिक सूत्रपाठ प्रस्तुत किया है। इसमें कुल सूत्रसंख्या ३७३ है।

'सूत्रमात्रावलम्बे च निरालम्बेऽपि खेलतः'[४] शंकर मिश्र के इस वचन से व्यक्त होता है कि वैशेषिक सूत्रों पर उनसे पूर्व कोई पूर्ण पदानुक्रमयुक्त टीका उपलब्ध नहीं थी और सम्पूर्ण वैशेषिक साहित्य का अवगाहन करके हम कह सकते हैं कि 'उपस्कार' के पश्चात् भी वैशेषिक सूत्रों पर ऐसी कोई टीका नहीं मिलती जो सूत्रकार की स्थिति एवं विचारों को पुनरनुप्राणित कर सके। अतः श्री वीरराघवाचार्य की 'रसायन' व्याख्या वैशेषिक सूत्रों के लिए वस्तुतः 'रसायन' की भाँति ही पोषक-वर्धक है, इसमें कोई सन्देह नहीं, जैसा कि स्वयं लेखक के वचनों से प्रमाणित है-

''शास्त्रेऽत्रैवमिदंवित्सु शैथिल्यञ्चारुचिं हरत्।
विधत्ते पुष्टिमिष्टार्थान् वैशेषिकरसायनम्॥''[५]

'रसायन' व्याख्या के आरम्भ में अंग्रेजीं व संस्कृत दोनों भाषाओं में विस्तृत भूमिका दी गयी है जिसमें वैशेषि दर्शन का माहात्म्य प्रतिपादित किया गया है तथा सूत्रकार एवं उनके अनुयायियों द्वारा प्रवर्तित ग्रन्थों व सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है। अत्यन्त संक्षिप्त विषय सूची तथा अकारादिक्रम से सूत्र सूची भी संकलित है। प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर भी प्रतिपाद्य विषय का संकेत दिया गया है तथा प्रत्येक आह्निक के अन्त में एक कारिका के द्वारा आह्निकगत विषयों का उपसंहार किया गया है। व्याख्या के अन्तर्गत आने वाले सूत्रपदों, वैशेषिक आचार्यों तथा ग्रन्थों के नामों को रेखाङ्कित किये जाने से अध्येताओं को बहुत सुविधा रहेगी।

'रसायन' व्याख्या की शैली शास्त्रीय,प्राञ्जल एवं गुरु-गम्भीर है। इसमें

वैशेषिक सिद्धान्तों की असाधारणता प्रतिपादित करने के लिए मतान्तरों के आक्षेपों का परिहार करते हुए, सूत्रों के गाम्भीर्य-संरक्षण के द्वारा सूक्ष्म एवं सारदर्शिनी प्रक्रिया अपनाई गयी है, यथास्थल सन्दर्भ शुद्धि भी की गयी है। इस व्याख्या का प्रतिपाद्यगत वैशिष्ट्य निम्न स्थलों पर अवलोकनीय है-कार्य-कारण-भाव[६] सामान्य-विशेष-समवाय पदार्थो का निरूपण[७] वायु की अतीन्द्रियत्व-सिद्धि[८] अनुमान-हेत्वाभास प्रकरण,[९] आत्मा की आगमनिरपेक्ष सिद्धि[१०] परमाणु-सद्भाव-स्थापना,[११] अवहननादि लौकिक कर्मो की स्वीकृति[१२] यमनियमादि योगाङ्गों का निरूपण[१३], परमाणुओं की पाक प्रक्रिया[१४], निर्विकल्पक व योगज प्रत्यक्ष[१५], अभाव की गति[१६], शब्दादि की अनुमानगम्यता[१७], सुख दुःख विवेक[१८], आम्नाय का प्रामाण्य[१९], ईश्वर की सिद्धि[२०], आदि। अतः कुल मिलाकर संक्षेप में इस व्याख्या के विषय में, स्वयं व्याख्यकार के शब्दों में यही कहा जा सकता है कि-

> ''वैशेषिकरहस्यार्थाः मतान्तरविलक्षणाः।
> सूत्रैर्व्युत्पाद्य रक्ष्यन्ते शैलीशुद्धिश्च दर्श्यते ॥''[२१]

## (२) वैशेषिकसूत्रवैदिकवृत्तिः[२२]

'इस वृत्ति के रचयिता निखिलशास्त्रनिष्णात पं0 स्वामी हरिप्रसाद हैं। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, यह महर्षि कणादकृत सूत्रों की वेदानुसारिणी वृत्ति है। इसमें कोई भूमिका, विषयसूची अथवा सूत्रानुक्रमणी नहीं है। इसके अनुसार भी वैशेषिक सूत्रों की कुल संख्या ३७३ है एवं इसमें 'उपस्कार' के सूत्रपाठ का ही अनुसरण किया गया है।

'वैदिक' वृत्ति में अनेकशः श्रुति, उपनिषद् स्मृतियाँ,अन्य दर्शनशास्त्र तथा वैशेषिक दर्शन के अन्य आचार्यो की सम्मतियाँ स्पष्टतः उद्धृत की गयी हैं। प्रत्येक आह्निक के अन्त में एक कारिका के द्वारा आह्निकगत विषय का निर्देश किया गया है। प्रतिपाद्य की दृष्टि से वृत्ति के विशिष्ट स्थल निम्नलिखित हैं-

(क) सूत्र १.१.४ की व्याख्या में अभाव की पदार्थत्व चर्चा के अवसर पर उदयनाचार्य, वाचस्पति मिश्र एवं मानमनोहरकार आदि आचार्यों के मत उद्धृत किये गये हैं।[२३]

(ख) सूत्र १.१.६ की व्याख्या में सामान्य गुणों एवं विशेष गुणों का विवेचन है एवं कारिकावली उद्धृत की गयी है।[२४]

(ग) सूत्र १.१.१० के अन्तर्गत सूक्ष्म वायु में आकाश से स्थूल वायु व आकाश के आरम्भ की चर्चा की गयी है।[२५]

(घ) इस वृत्ति की सर्वातिशायिनी विशेषता यह है कि इसमें वैशेषिक दर्शन का वैदिकत्व प्रतिपादित किया गया है[२६]।

(ङ) पृथिवी-विवेचनावसर पर पृथिवी का कृष्ण रूप स्वाभाविक सिद्ध किया गया है व इसमें श्रुति का प्रमाण भी दिया गया है ।[२७]

(च) अग्नि के रूप की चर्चा करते हुए यह मत व्यक्त किया गया है कि अग्नि का स्वाभाविक रूप लोहित होता है । यही वैदिक मान्यता है, जबकि नव्य नैयायिक अग्नि का भास्वर शुक्ल रूप मानते हैं ।[२८]

(छ) काल-सिद्धि एवं विशद व्याख्या के स्थल पर भी श्रुतिप्रामाण्य उपन्यस्त किया गया है ।[२९]

(ज) शब्द की गुणत्व-सिद्धि अत्यन्त युक्तिपूर्वक, विस्तार से की गयी है।[३०]

(झ) वेदप्रामाण्य से शब्द की अनित्यता प्रतिपादित की गयी है ।[३१]

(ञ) मन की सिद्धि के स्थल पर यह मत प्रकट किया गया है कि वैदिक मतानुसार वैशेषिकों को भी मन का मध्यमपरिमाणत्व ही स्वीकार्य है, अणुपरिमाणत्व नहीं ।[३२]

(ट) आत्मा के गुणों का निरूपण करते समय वृत्तिकार ने यह विचार व्यक्त किया है कि आत्मा के ज्ञानादि अनित्य गुण मनोयोगविशिष्ट आत्मा के ही हैं, नित्य कूटस्थ आत्मा के नहीं ।[३३]

(ठ) आत्म-नानात्व-सिद्धि के प्रसंग में विद्वान् लेखक ने श्रुति प्रमाण भी प्रस्तुत किया है ।[३४]

"ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः।-यजु०१९/४६

तथा

"चेतनश्चेतनानाम् ।" -कठोप०५/१३

(ड) परमाणु निरूपण के अवसर पर व्याख्याकार ने यह मान्यता प्रकट की है कि वैशेषिक, न्याय एवं मीमांसा दर्शन जिसे 'परमाणु' नाम से जानते व मानते हैं, सांख्ययोग और वेदान्त दर्शन में उन्हें ही 'गुण' नाम से कहा गया है तथा श्वेताश्वतर शाखा के अनुयायी उसे ही लोहित, शुक्ल, कृष्ण नाम से अथवा प्रकाश, क्रिया व आवरणशक्ति के नाम से पुकारते हैं ।[३५]

(ढ) कारण-विवेचन के अवसर पर सभी दर्शनों की मूलकारण विषयक मान्यताओं में समन्वय स्थापित किया गया है ।[३६]

(ण) वैशेषिक दर्शन में भी वैदिक त्रैतवाद की स्थापना की गयी है ।[३७]

(त) वैशेषिक दर्शनसम्मत जलीय,वायव्य एवं तैजस शरीरों की भी वैदिक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है और उन्हें क्रमशः 'पानीयमण्डलस्थसत्त्वानां शरीरं' 'वायुमण्डलस्थसत्त्वानां शरीरं' तथा 'तेजोमण्डलस्थसत्त्वानां शरीरं' कहा गया है ।[३८]

(थ) करकादिपात में भी वैदिक प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं।[३९]

(द) वस्तुतः ब्रह्मानन्द का उपभोग ही मोक्ष है, यही वैदिक मान्यता है, तथापि वह दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति होने पर ही संभव है। अतः दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति को ही अपवर्ग कह दिया गया है।[४०]

(ध) ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणों को श्रद्धापूर्वक दान देने के गृहस्थों के कर्त्तव्य में भी वैदिक प्रमाण उद्धृत किया गया है।[४१]

(न) वेदविहित कर्मों की व्याख्या करते हुए मांसादि को दुष्ट भोजन कहकर व्याख्याकार ने अनेक श्रुतियों के प्रमाणों द्वारा पशुहिंसा को शास्त्र प्रतिषिद्ध, अवैदिक कर्म सिद्ध किया है।[४२]

(प) वैदिक प्रमाणों के द्वारा आत्मा की सापेक्ष अणुत्व-सिद्धि की गयी है, यद्यपि वैशेषिक दर्शन में नित्य आत्मा को विभु माना गया है। 'तदभावादणु मनः' (वै0 सू0 ७.१.२३) इस सूत्र की व्याख्या शंकरमिश्र आदि सभी व्याख्याकारों ने 'मन' द्रव्य के सन्दर्भ में की है, किन्तु प्रस्तुत वृत्ति के लेखक ने सयुक्तिक स्थापित किया है कि मन मध्यमपरिमाण है एवं जीवात्मा अणुपरिमाण तथा अपने मत की पुष्टि में उन्होंने श्रुति वचन भी उद्धृत किये हैं।[४३]

(फ) वैंशेषिक असत्कार्यवाद का विवेचन करते हुए वैदिक वृत्तिकार ने सांख्यसम्मत सत्कार्यवाद के साथ उसका अविरोध स्थापित किया है एवं यह विचार व्यक्त किया है कि व्यवहार-वैलक्षण्य होने पर भी वैदिक दर्शनों में वस्तुतः परस्पर कोई विरोध नहीं है।[४४]

(ब) अलौकिक प्रत्यक्ष-निरूपण के अवसर पर पं0 हरिप्रसाद ने प्रतिपादित किया है कि प्रत्यगात्मा का ही मानस प्रत्यक्ष संभव है,परमात्मा का तो केवल आत्मा को ही साक्षात्कार हो सकता है, मन की गति वहाँ तक संभव नहीं।[४५]

(भ) प्रायः वैशेषिक दर्शन को प्रत्यक्ष व अनुमान-इन दो ही प्रमाणों में विश्वास रखने वाला माना जाता है किन्तु वैदिक वृत्ति में इस धारणा को भ्रान्तिमूलक बताकर यही सिद्ध किया गया है कि सूत्रकार शब्द प्रमाण को भी स्वीकार करते हैं , अतः वैशेषिक दर्शन प्रमाणत्रयवादी है।[४६]

(म) भारतीय दर्शनों में कुल आठ प्रमाणों की चर्चा हुई है और वैदिकवृत्ति में यह सद्ध किया गया है कि इन आठों प्रमाणों की संख्या के विषय में परस्पर आपाततः मतभेद होने पर भी वस्तुतः ये आठों प्रमाण वैदिक ही हैं।[४७]

इस भाँति वैदिकवृत्ति के वैशिष्ट्योद्भासक उक्त स्थलों के संक्षिप्त संकेतों से सुव्यक्त हो जाता है कि महर्षि कणाद ने जिस अद्भुत अर्थज्ञान का प्रवर्तन किया है, उसका यहाँ वैदिक रीति से परिष्कार एवं पोषण किया गया है-

''कणादेन प्रणीतेयमर्थज्ञानोदकप्रपा ।
मया हरिप्रसादेन वृत्त्या सम्यक् परिष्कृता ।।[४८]

## (३) वैशेषिकदर्शन 'ब्रह्ममुनि' भाष्यम्[४९]

इस भाष्य के रचयिता स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्त्तण्ड हैं जिन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रणयन किया है, जैसा कि इस भाष्य के आरम्भ में मुद्रित 'ब्रह्ममुनिकृतगन्थसंख्या ५८' से स्पष्ट है । इस भाष्य के अनुसार भी सूत्रों की संख्या ३७३ ही है, तथा इसमें भी 'उपस्कार' के सूत्रपाठ का ही अनुसरण किया गया है। भाष्य के आरम्भ में सबसे पहले प्रमुख प्रतिपाद्य विषयों का निर्देश करके उनके अनुसार सूत्रों का वर्गीकृत उल्लेख किया गया है जो अतीव उपयोगी है । तदनन्तर ग्रन्थगत प्रतिपाद्य विषयों का सूत्रक्रमानुसार निर्देश 'विषयसूची' में है एवं उसके बाद उन सूत्रों की सूची दी गयी है जिनमें अन्य व्याख्याकारों द्वारा किये गये भाष्यों की आलोचना है । भाष्य की समाप्ति पर अकारादि वर्णानुक्रम से सूत्रसूची दी गयी है । इस भाँति गंभीर अध्येता की दृष्टि से इस भाष्य की उपादेयता बहुगुणित हो गयी है।

भाष्यकार ने 'प्राक्कथन' में अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि 'वैशेषिक' आदि नाम अथवा दर्शनविद्या के सभी नाम यौगिक हैं एवं वेदों के उपाङ्ग होने से अङ्गीभूत वेदों के साथ ही प्रकट हुए हैं, अतः सभी दर्शन समानकालीन हैं, उनमें पौर्वापर्य की कल्पना अनुचित है । तत्पश्चात् वैशेषिक दर्शन के अन्य आचार्यों एवं सिद्धान्तों की चर्चा करते हुए यह मत प्रतिपादित किया गया है कि कणाद के सूत्रों में ही ईश्वर का निर्देश है, अतः वैशेषिक दर्शन अनीश्वरवादी नहीं है । इसी स्थल पर यह भी स्पष्ट किया गया है कि यद्यपि वैशेषिक दर्शन में समवायि, असमवायि और निमित्त ये तीन कारण माने गये हैं किन्तु निमित्तकारण को निमित्त नाम से नहीं अपितु 'वैशेषिक' नाम से अभिहित किया गया है,[५०] अन्य दर्शनों के प्रभाववशात् उसे 'निमित्त' कह दिया जाता है । तत्पश्चात् वहीं कारण के विषय में दो विवरण तालिकाएँ दी गयी हैं जिनके अन्तर्गत प्रथमतः कारणप्रक्रिया से एवं फिर वस्तुप्रक्रिया से विचार किया गया है ।[५१]

इस भाष्य की शैलीगत एवं प्रतिपाद्यगत विशेषताएँ निम्न स्थलों पर अवलोकनीय हैं-

(क) विद्वान् भाष्यकार ने सूत्रों के अर्थबोध के लिए पूर्वापर सूत्रों के सन्दर्भ भी संकेतित किये हैं ।[५२]

(ख) यत्र-तत्र पाद टिप्पणियों में व्याकरणिक संकेत भी दिये गये हैं ।[५३]



(ग) स्थान-स्थान पर संहिता, उपनिषद् एवं अन्यान्य दर्शनों से उद्धरण भी

दिये गये हैं जो भाष्यकार के बहुश्रुत होने का प्रमाण हैं ।[५४]

(घ) सूत्रान्तर्गत प्रत्येक पद का अन्वयानुसार संकेत करके (सूत्र-पदों को काष्ठक में रखा गया है) व्याख्या की की गयी है ।

(ङ) यथास्थल सूत्रपाठ के औचित्य-अनौचित्य के विषय में भी आवश्यक निर्देश दिये गये हैं ।[५५]

(च) अनेक स्थानों पर लौकिक उदाहरणों द्वारा शास्त्रीय विषयों को स्पष्ट किया गया है, जैसे 'उत्क्षेपण' को 'मुषलोत्थापन' से, 'अवक्षेपण' को 'मुषलादि के अधःपतन' से आदि आदि ।[५६]

(६) प्रथम आह्निक के द्वितीय सूत्र में आये 'अभ्युदय' पद की व्याख्या करते हुए भाष्यकार ने स्पष्ट किया है कि इसका अर्थ सांसारिक सुख-ऐश्वर्य है, न कि तत्त्वज्ञान या स्वर्ग, जैसा कि शंकर मिश्र अथवा जयनारायण ने किया है ।[५७]

(ज) यहीं पर स्वामी ब्रह्ममुनि ने 'धर्म' शब्द का आशय व्यक्त करते हुए लिखा है कि धर्म न केवल सांसारिक सुख-ऐश्वर्य है, न केवल मोक्षमार्ग चिन्तन, अपितु उभय-सहभावस्वरूप है ।[५८]

(झ) आत्मा का निरूपण करने वाले सूत्र में सिद्ध किया गया है कि सूत्रकार परमात्मा को भी मानते हैं तथा जीवात्मा को भी । तदनुसार परमात्मा विभु है । जीवात्मा अविभु, एकदेशी व शरीरवर्ती होने से अणु है ।[५९]

(ञ) ब्रह्ममुनिभाष्य में अनेकशः शङ्करमिश्र, जयनारायण एवं चन्द्रकान्त आदि के भाष्यों की असमीचीनता भी दर्शायी गयी है ।[६०]

इस भाँति उक्त स्थलों के अवलोकन से स्पष्ट है कि यह भाष्य अत्यन्त वैदुष्यपूर्ण है । स्वयं भाष्यकार के अनुसार उनके इस भाष्य का प्रयोजन सरल भाषा से कठिन सूत्रों का परस्पर अर्थसंगति के द्वारा विषय-स्फुटीकरण हैं और अन्य व्याख्याकारों द्वारा किये गये अयथार्थों का प्रतिपादन भी, अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि अपने इस प्रयोजन में वे पूर्णतः सफल रहे हैं ।

## (४) वैशेषिकदर्शन 'वेदभास्कर' भाष्यम्[६१]

इसके प्रणेता पं0 काशीनाथ शर्मा हैं । भाष्य के आरम्भ में विस्तृत अंग्रेजी भूमिका है जिसमें वैशेषिक दर्शन का महत्त्व एवं परिचय निरूपित है । तदुपरान्त अंग्रेजी व संस्कृत दोनों में विषय-सूची दी गयी है जो क्रमशः विषयानुसारिणी एवं अध्यायक्रमानुसारिणी है । अन्त में परिशिष्ट रूप में सूत्रभाषाविवृति होने से इसकी उपादेयता द्विगुणित हो गयी है । प्रथम अध्याय की आरंभिक चतुःसूत्री की विस्तृत व्याख्या में भाष्यकार ने समस्त दर्शनों के विषय में अपना दृष्टिकोण भली भाँति स्पष्ट कर दिया है । अन्य दर्शनों के सिद्धान्त भी यथास्थल समाविष्ट किये गये हैं,

उद्धरणों की बहुलता है, भाषा सहज एवं प्राञ्जल है ।

प्रायः वैशेषिक सूत्रों पर उपलब्ध प्राचीन भाष्य एवं टीकाएँ परम्परागत शास्त्रीय पद्धति से ही सूत्रों का स्पष्टीकरण करते हैं किन्तु प्रस्तुत भाष्य की विशेषता यह है कि 'पदार्थ' विद्यास्वरूप काणाद दर्शन की व्याख्या यहाँ वर्तमान विज्ञान को साथ लेकर की गयी है । संभव है कि प्राचीन परिपाटी के पण्डितों को यह भाष्य न जँचे, चूँकि कुछ शास्त्रीय मान्यताओं की नूतन रीति से व्याख्या की गयी है तथा कुछ प्राचीन पदार्थों का अभिनव वैज्ञानिक पदावली में वर्णन किया गया है । संस्कृत टीका एवं हिन्दी भाषा विवृति में भी साथ-साथ या पादटिप्पणी में वैज्ञानिक परिभाषाएँ या आंग्ल पर्याय दिये गये हैं जिनसे वैशेषिक दर्शन की वैज्ञानिकता व्यक्त होती है । तद्यथा-

(क) प्रथम सूत्र में आया 'अथ' शब्द मंगलार्थवाची नहीं है और मंगल की शिष्टाचार-कल्पना भी वृथा ही है ।[६२]

(ख) प्रत्यक्ष निरूपण में भाष्यकार ने प्रतिपादित किया है कि मणि, यन्त्रादि के द्वारा परिष्कृत प्रत्यक्ष भी लौकिक ही है ।[६३]

(ग) 'विशेष' एवं 'वैशेषिक' पदों की वैज्ञानिक व्याख्या एवं पर्याय दिये गये हैं ।[६४]

(घ) वैशेषिक दर्शन के प्रवर्तक साक्षात् वामदेव महेश्वर ही कणाद कहे गये हैं, न कि कपोत की भाँति गली में पड़े हुए कणों को खाने वाला कोई कपोलकल्पित सामान्य भिक्षुक । 'कणाद' शब्द की दो नयी व्युत्पत्तियाँ भी दी गयी हैं-

''वमति सृष्ट्यादौ कणान्परमाणूनिति वामदेवोऽहङ्कारः ।
अत्ति आत्मसात्करोति कणान्परमाणून्सर्गान्त इति कणादोऽहङ्कारः।''[६५]

(ङ) पदार्थ छः ही हैं, सातवें पदार्थ अभाव की मान्यता भ्रान्त, उत्प्रेक्षामात्र है-उसका ज्ञान में ही अन्तर्भाव हो जाने से अभाव बुद्धि विशेष है, उसके पदार्थान्तरत्व मे कोई प्रमाण नहीं है ।[६६]

(च) वेदभास्करभाष्य में धातुओं को पार्थिव कहा गया है, तैजस नहीं[६७] जब कि वैशेषिक दर्शन में धातुओं को तैजस ही माना जाता है ।

(छ) तम कोई नया द्रव्य नहीं, प्रकाश का अभाव मात्र है-'प्रकाशाभावो हि च्छाया न द्रव्यम् ।[६८]

(ज) अदृष्ट एवं धर्म की क्रमशः 'दैव' एवं 'भाग्य' के रूप में निष्पत्ति की गयी है और उनके वैज्ञानिक पर्याय भी दिये गये हैं ।[६९]

(झ) यहाँ भी वैशेषिक दर्शन को ईश्वरवादी सिद्ध किया गया है ।[७०] अतः जो लोग इस दर्शन पर अनीश्वरवाद का आरोप लगाते हैं, उनका मत सर्वथा खण्डित

ही जानना चाहिए ।

(ञ) जैसा कि 'वेदभास्कर' नाम से ही स्पष्ट है, यहाँ जो भी मत व्यक्त किया गया है, वेद से प्रमाणित किया गया है एवं वेदविरोधी किसी तथ्य का प्रतिपादन नहीं किया गया ।

इस भाँति, वेदविद्या के आधार पर वैज्ञानिक सिद्धान्तों के साथ संगति स्थापित करते हुए इस भाष्य में वैशेषिक सूत्रों की व्याख्या की गयी है ।

## (५) 'सुगमा' वैशेषिक सूत्रवृत्तिः[७१]

इसके लेखक स्व0 देशिक तिरुमलै ताताचार्य शिरोमणि हैं । उनकी इस कृति का सम्पादन श्री रंगनाथाचार्य ने किया है व अपने सम्पादकीय में उन्होंने वृत्ति वैशिष्ट्य को व्यक्त किया है । इस वृत्ति में कुल सूत्रों की संख्या ३७४ है व सूत्रपाठ 'रसायन' भाष्य के अनुसार ही है ।

उक्त वृत्ति अपने नाम के अनुरूप ही 'सुगमा' है चूँकि यह अति सरल सुबोध वाक्यों से सूत्रगत वेदों के अर्थ को उद्‌घाटित करती है । आरम्भ में विद्वान् व्याख्याकार ने संस्कृत भूमिका के अन्तर्गत सूत्रकार, सूत्रान्तर्गत विषय एवं उन विषयों का महत्त्व प्रकट किया है । संस्कृत विषय सूची में प्रत्येक आह्निक के विषयों का पृथक्-२ निर्देश किया गया है । वृत्तिकार ने मत व्यक्त किया है कि यद्यपि सूत्रकार ने छहों पदार्थों के निरूपण हेतु प्रतिज्ञा की थी किन्तु द्रव्य, गुण, कर्म, इन तीन का नी प्रमुखतः प्रतिपादन करके मानो अन्य पदार्थों की अप्रधानता ही सूचित की है । उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि वैशेषिक सूत्रों में किया गया विषय-निरूपण अव्यवस्थित, दुर्ग्रह, संगतिहीन, असार व पुनरुक्त है[७२] यह कथन एक सीमा तक मान्य होने पर भी इन सूत्रों में क्रम संगति व व्यवस्था दिखाई जा सकती है । तदनुसार उहोंने भूमिका में ही सूत्र-संगति-क्रम प्रदर्शित किया है ।

वृत्तिकार की भाषा-शैली सरल व स्पष्ट है, अधिक शास्त्रीय नहीं। तथापि, सूत्रों के अल्पाक्षर होने से उनमें अन्तर्निहित पूर्वापर संगति को व्यक्त करने में यह सर्वथा सक्षम है । सूत्रों के आरम्भ में सूत्रगत पदों का अन्वय, समास विग्रह एवं तत्पश्चात् अर्थसंकेत किया गया है । प्रथम आह्निक के अन्त में प्रकरण विभाग की विधि दी गयी है जो अत्यन्त उपयोगी है । बीच-बीच में 'अवसितं वायुप्रकरणम्' 'अवसितम् दिक्प्रकरणम्' आदि संकेतों द्वारा एवं अनेक स्थलों पर सूत्रों से पूर्व प्रकरण-सूचना देकर विषय को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है ।

'सुगमा' वृत्ति का प्रतिपाद्यगत वैशिष्ट्य निम्न स्थलों पर उल्लेखनीय है-

(क) उत्क्षेपणादि कर्मभेदों के लक्षण एवं पञ्चविध कर्मों के विभाजन अवसर पर[७३] वृत्तिकार की विद्वत्ता द्रष्टव्य है ।

(ख) प्रथम अध्याय, प्रथम आह्निक के द्वादश सूत्र में आये 'सापेक्ष' और 'निरपेक्ष' शब्दों की व्याख्या क्रमशः 'तन्त्वन्तरसंयुक्त' तथा 'तन्त्वन्तरसंयोगरहित' कहकर की गयी है जो अतीव समीचीन है ।[७४]

(ग) 'कारणे कालाख्येति' (२.२.९) सूत्रांश की व्याख्या करते हुए 'सर्वकार्यकारणम्' कहकर मानो सूत्रकार के अभीष्ट अर्थ को ही सूचित कर दिया गया है ।[७५]

(घ) तम के निरूपक सूत्र (५.२.२१) में वृत्तिकार ने अतीव सरल, छोटे-छोटे वाक्यों से सिद्ध किया है कि तम न तो द्रव्य है, न गुण, न ही कर्म; अपि तु प्रकाशाभाव ही है ।[७६]

(ङ) 'युतसिद्धि' शब्द की व्याख्या प्रायः अन्य सभी टीकाओं में 'अमिश्रित, असम्बद्ध' कहकर ही की गयी है, यद्यपि युत शब्द यु धातु से बना है जो मिश्रण एवं अमिश्रण दोनों अर्थों को व्यक्त करती है । इसीलिए प्रस्तुत वृत्ति में इन दोनों अर्थों को स्वीकार कर[७७] इस शब्द की व्याख्या की गयी है ।

संक्षेप में 'सुगमा' वृत्ति के विषय में यही कहा जा सकता है कि वृत्तिकार अपने निम्न प्रयोजन में पूर्णतः सफल रहा है-

येऽपि सुकुमारमतयस्तेऽप्यक्लेशं कणादसूत्राणाम् ।
भावं बुद्ध्यन्तामिति वृत्तिमिमां वितनुमः सुगमाम् ।।[७८]

## निष्कर्ष

इस भाँति, बीसवीं शताब्दी में लिखित वैशेषिक सूत्रों की उपर्युक्त पाँचों संस्कृत टीकाओं का 'स्थालीपुलाकन्याय' से यत्किञ्चिन्मात्र परिचय हो जाता है । इनके वास्तविक माहात्म्य एवं वैशिष्ट्य को व्यक्त कराने के लिए तो इनका पृथक्-पृथक् गम्भीर अध्ययन अपेक्षित है, यहाँ केवल संकेत ही दिये गये हैं ।

प्रायः आजकल धारणा पायी जाती है कि मूल दार्शनिक ग्रन्थों के पठन-पाठन की प्राचीन परम्परा विनष्ट होती जा रही है, अतः वर्तमान युग में प्रचलित भाषाओं में ही गहन दार्शनिक सिद्धान्तों का सार-संकलन प्रस्तुत कर दिया जाता है अथवा मूल ग्रन्थों के हिन्दी अंग्रेजी आदि भाषाओं में अनुवाद-व्याख्या कर दिये जाते हैं, संस्कृत टीकाओं की परम्परा व प्रचलन अपेक्षाकृत कम होता जा रहा है । किन्तु उक्त पाँचों टीकाओं के समीक्षण से यह सर्वथा सुस्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक युग में भी संस्कृत माध्यम से दार्शनिक ग्रन्थों की व्याख्या की पद्धति प्रवर्तमान है, अतः न तो संस्कृत भाषा को 'मृत' कहना समीचीन है और न ही इन दार्शनिक परम्पराओं को 'विनष्ट' कहना संगत है । यह सत्य है कि संस्कृत ग्रन्थों के रचनाकार विरल हैं और शास्त्रीय ग्रन्थों की संस्कृत में रचना तो विरलतर है । अतः इस बीसवीं शताब्दी

में भी वैशेषिक दर्शन एवं संस्कृत भाषा को जीवन्त बनाये रखने के लिए जिन आचार्यों ने महनीय प्रयास किये हैं, वे वस्तुतः अभिनन्दनीय हैं ।

---

१. मिश्र नारायण, पृ0 ११-१८ प्रथम संस्करण वै0 द0 ए0 अ0
२. मद्रास से १९५८ में प्रकाशित (उससे पूर्व यह व्याख्या श्री वेंकटेश्वर शोध-संस्थान की पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी थी ।
३. प्र0 पा0 भा0 (न्यायकन्दली सहित), बनारस, १८९५
४. उपस्कार, पृ0 ३
५. वै0 द0 रसायन व्या0, पृ0 ३०८
६. वै0 द0 रसायन व्या0, पृ0 ३६-४०
७. वही, पृ0 ४०-५२
८. वही, पृ0 ५७ - ६६
९. वही पृ० १११-११९
१०. वही, पृ0 १२७ - १३८
११. वही, पृ0 १४१- १४६
१२. वही, पृ0 १६०-१८०
१३. वही पृ0 २०५
१४. वही, पृ0 २१२-२१८
१५. वही, पृ0 २५०-२५६, एवं २७०-२७७
१६. वही, पृ0 २६२-२७०
१७. वही, पृ0 २८०-२८८
१८. वही, पृ0 २९३-३००
१९. वही, पृ0 ३०६-३०८
२०. वही, पृ0 ३०६
२१. वही, पृ0 २
२२. निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से १९६१ में प्रकाशित
२३. वै0 सू0 वैदिक वृत्ति, पृ0 ४-५
२४. वही, पृ0 ७-८
२५. वही, पृ0 १०

२६. वही, पृ0 १८-१९

२७. वही, पृ0 २७

२८. वही, पृ0 २८

२९. वही, पृ0 ४४-४५

३०. वही, पृ0 ४८-५४

३१. वही पृ0 ५४-५९

३२. वही, पृ0 ७७ - ७८

३३. वही, पृ0 ८०

३४. वही, पृ0 ८७

३५. वही, पृ0 ८९

३६. वही

३७. वही पृ0 ९०-९१

३८. वही, पृ0 ९५

३९. 'गर्भो यो अपाम् -'(ऋ० १.५.१४.२) तथा 'अग्ने गर्भो अपामसि'-
(यजु0 १२.३६)-वही

४०. वही, पृ0 ११६-११७

४१. वही पृ0 १२२

४२. 'पशून् पाहि' (यजु0 १.१) 'गां मा हिंसीः' (यजु० 13.43) आदि, वही पृ0
१२४ पृ0 ११३

४३. वही, पृ0 १४६-४७

४४. वही, पृ0 १७३

४५. वही, पृ0 १७७

४६. वही, पृ0 १८३-१८४

४७. वही, पृ0 १८६

४८. वही, पृ0 २०१

४९. प्रथम संस्करण, आर्यकुमार महासभा, आत्माराम रोड, बड़ौदा से सितम्बर,
१९६२ ई0 में प्रकाशित।

५०. 'अग्नेर्वैशेषिकम्।' -वै0 सू0 १०.२.७ ब्रह्ममुनिभाष्य, पृ0 १२७

५१. 'वै0 द0 ब्र0 मु0 भा0, प्राक्कथनम्।

५२. द्रष्टव्य-वै0 सू0 (ब्र0 मु0 भा0) ८.१.१, ७.१.१५, ७.२.२२ एवं ७.२.२३

५३. वै0 सू0 ब्र0 मु0 भा0 पृ0 २, २२, व ६१

५४. वही, सूत्र १.१.३, पृ0 २., ४.२.११, पृ0 ६३, ६.१.२,पृ0 ७८, ६.१.४, पृ0 ७९, एवं ६.१.१६, पृ0 ८६

५५. वही, सूत्र २.२.६, पृ0 ३१; ३.३.१७, पृ0 ४५ एवं ६.१.१४, पृ0 ८१

५६. वही, सूत्र १.१.७, पृ0 ४-५

५७. वै0 द0 ब्र0 मु0 भा0, सूत्र १.१.२, पृ0 १-२

५८. वही

५९ वही, सूत्र ७.२.२२-२३, पृ0 ९४-९५

६०. वही, सूत्र १.१.१३, पृ0 ६-७, २.१.११, पृ0 २२-२३-; २.२.६, पृ0 ३१

६१. प्रथम संस्करण, जनवरी, १९७२ में स्वयं लेखक द्वारा सरकाघाट, मंडी, हिमाचल प्रदेश से प्रकाशित ।

६२. वै0 द0 वे0 भा0, भा0 पृ० ६६

६३. Lense Telescope & such other devices.– वही, पृ0 १५

६४. विशेष=Physical Elements. वैशेषिक= Physical Science दर्शन का वैशेषिक मार्ग= INDUCTIVE Method of Investigation. वही, पृ0 ५१

६५. वही, पृ0 ५२

६६. वही, पृ0 ७४

६७. वही, पृ0 १०९

६८. वही, पृ0 १८२

६९. Extrinsic Energy, Intrinsic Energy वही पृ0 १८५

७०. वही, पृ0 २४८- २५२

७१. गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, प्रयाग से सन् १९७९ में प्रकाशित (लेखक के मरणोपरान्त)

७२. ''अतिविरसमसारं मानवार्ताविहीन प्रविततबहुवेलप्रक्रियाजालदुःखम् ।
उदधिसममतन्त्रं तन्त्रमेतद् वदन्ति।।' किरणावली, पृ0 ४

७३. वै0 सू0 वृत्तिः, पृ0 ५

७४. वही, पृ0 ७

७५. वही, पृ0 ३९

७६. वही, पृ0 ८३

७७. वही,पृ0 १०३ (७.२.१३ )

७८. वही पृ0 १

# बीसवीं शताब्दी का दर्शन

## स्वामी विवेकानन्द के परिप्रेक्ष्य में

डॉ0 वेदवती वैदिक

नवीन भारत के निर्माण में वैचारिक क्रान्ति का शंखनाद जिन महान् विभूतियों ने किया उनमें सर्वोपरि स्थान राजा राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, महर्षि दयानन्द, बंकिमचन्द्र चटर्जी, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अरविन्द घोष और महात्मा गाँधी का है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के मेरुदण्ड उपनिषद् और श्रीमद्भगवद्गीता को ही इन सभी क्रान्तिकारी विचारकों ने अपने विचारों की आधार शिला बनाया। यद्यपि औपनिषदिक वाङ्मय पर आधृत शंकर-अद्वैत दर्शन में भी जीवन दर्शन एवं व्यावहारिक दर्शन के तत्त्व निश्चितरूपेण उपलब्ध होते हैं परन्तु इन परवर्ती चिन्तकों ने अद्वैत वेदान्त के आत्म दर्शन एवं जीवन दर्शन का समन्वय इस प्रकार से प्रस्तुत किया जिससे संपूर्ण मानवजाति की अन्तश्चेतना का उद्बोधन हुआ और नयी चिन्तन पद्धति एवं वैचारिक-क्रान्ति का सूत्रपात हुआ।

''वह ताल नहीं, एक जलाशय है। वह कोई घड़ा या सुराही नहीं, पक्का पीपा है। वह कोई मीनिका या हरिमीन नहीं बल्कि लाल आँखों वाली बड़ी भारी शफरी मछली है। वह साधारण सोलह पंखुडी वाला कमल नहीं, वह तो शानदार सहस्रदल कमल है।''[१] ये उद्गार थे स्वामी रामकृष्ण परमहंस के अपने प्रिय शिष्य नरेन्द्र के प्रति। उन्होंने कहा, ''साधारण आत्माएँ संसार को शिक्षा देने का दायित्व अपने ऊपर लेने से डरती है। एक क्षुद्र तिनका अपने आप तैर सकता है, परन्तु यदि कोई पक्षी उसके ऊपर बैठ जाता है तो तत्काल डूब जाता है। परन्तु नरेन्द्र भिन्न प्रकार की वस्तु है। वह एक महान् वृक्ष के तने के सदृश है जो गंगा के वक्ष पर मनुष्यों और पशुओं को अपने ऊपर लाद कर पार ले जाता है''।[२] सर्वधर्मसमन्वयी गुरु ने अपने प्रिय शिष्य के व्यक्तित्व का सार कितने सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। चिन्तन और आवेग की अन्तर्धारा ने ही रामकृष्णपरमहंस और विवेकानन्द को एक दूसरे की ओर उन्मुख किया। रोम्याँ रोलाँ उन दोनों की तुलना, ''मोजार्ट और बीटाबेन से करते हैं और कहते हैं, ''दोनों ने मिलकर सर्वव्यापी आत्मा की ऐश्वर्यशाली सिम्फनी को सिद्ध किया है [३]।''

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के इस अद्वितीय मेधावी शिष्य ने अपने ओजस्वी व्याख्यानों एवं सारगर्भित उपदेशों से उपनिषन्मूलक अद्वैत वेदान्त के उत्कृष्ट

सिद्धान्तों को विश्व के क्षितिज पर स्थापित कर भारत के मस्तक को उन्नत किया वे कहते थे कि, ''वेदान्त के उत्कर्षकारी विचारों को शास्त्रीयता के उस खोल से मुक्त किया जाये जिसमें वह शताब्दियों से बंदी हैं । वेदान्त का ज्ञान दीर्घकाल से गुफाओं और वनों में छिपा रहा है । यह भार मेरे ऊपर पड़ा है कि उसे उसके निर्वासन से निकालूँ और उसे पारिवारिक सामाजिक जीवन में पहुँचाऊँ ---अद्वैत का ढोल सब स्थानों में, बाजारों में, पर्वतों और मैदानों में---गूँजेगा ।''[४]

वेदान्त को वे सार्वभौमिक मानते थे और कहते थे कि, ''वेदान्त के सिद्धान्त शाश्वत हैं जो अन्य व्यक्तियों तथा अवतारों के सहारे बिना स्वयं अपनी नींव पर खड़े हैं । केवल वेदांत को ही सार्वभौमिक धर्म माना जा सकता है क्योंकि वह सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है व्यक्तियों का नहीं । किसी व्यक्ति पर आधारित धर्म को समस्त मानव-जातियाँ आदर्श नहीं मान सकतीं--वेदान्त की प्रामाणिकता मानव के चिरन्तन स्वभाव में है । उसकी नैतिकता मनुष्य की पूर्ववर्तमान, पूर्व प्राप्त आध्यात्मिक एकता पर आधारित है ।''[५]

वेदान्त दर्शन का एक ही विषय है-एकत्व की खोज । वह क्या है जिसके जान लेने पर सब कुछ जाना जा सकता है ? जिस प्रकार मिट्टी के ढेले को जान लेने पर मिट्टी से बनी सभी वस्तुएँ जान ली जाती हैं[६] उसी प्रकार 'आत्मा' को जाने लेने पर सब कुछ जान लिया जाता है । आत्मा ही सर्वव्यापी है जो नाम रूप उपाधि के कारण अनेक प्रतीत हो रहा है । समुद्र की तरंगों को देखो, एक भी तरंग समुद्र से पृथक् नहीं । फिर भी तरंग पृथक् क्यों प्रतीत होती है ? नाम और रूप के कारण। नाम-रूप के नष्ट हो जाने पर वह पुनः समुद्र ही हो जाती है । अतः वस्तुतः मुझमें और तुममें कोई अंतर नहीं है । सभी एक हैं । अपना-पराया, यह मेरा है, यही द्वैत ज्ञान मिथ्या है । जब मिथ्या ज्ञान का नाश होता है, विवेक का उदय होता है तब बोध होता है कि, ''मैं ही यह परिवर्तनशील जगत् हूँ और मैं ही अपरिणामी, निर्गुण, नित्य, पूर्ण आनन्दमय हूँ ।''

संपूर्ण प्रकृति आत्मा के सामने रखी हुई एक पुस्तक के समान है । उसका एक के बाद दूसरा अध्याय पढ़ा जा रहा है । पुनः एक नया दृश्य उपस्थित होता है। पढ़ने के बाद उसे उलट दिया जाता है । फिर एक नया अध्याय सामने आता है, परन्तु आत्मा जैसी थी वैसी ही रहती है-वही अनन्तरूप । परिणाम प्रकृति का होता है आत्मा का नहीं । जन्म-मृत्यु प्रकृति में है, पुरुष में नहीं । फिर भी अज्ञ लोग सोचते हैं कि 'हम मर रहे हैं, हम जी रहे हैं, प्रकृति नहीं ।' प्रश्न उठता है कि क्या आत्मा की अपरोक्षानुभूति संभव है, उत्तर सकारात्मक होगा । पूर्णशुद्ध स्वरूप आत्मा मानों एक पहिया है और शरीर-मन रूप भ्रांति दूसरा पहिया । ये दोनों कर्मरूपी लकड़ी से जुड़े हैं । ज्ञान मानो कुल्हाड़ी है जो जोड़ने वाली लकड़ी को काट देती है। जब आत्मा रूपी पहिया रुक जाता है, तब आत्मा यह सोचना छोड़ देती है कि वह

आ रही है या जा रही है, तब वह देखती है कि वह पूर्णरूप है। पर शरीर मनरूपी पहिये में पूर्व कर्मों का वेग शेष रहता है। जब तक पूर्व कर्मों का वेग पूरी तरह से समाप्त नहीं हो जाता तब तक शरीर और मन का अस्तित्व रहता है। वेग समाप्त होने पर ही इनका विनाश संभव है, तभी आत्मा देहमुक्त हो जाती है। अतः प्रत्यनुभूति ही धर्म का सार है।

व्यावहारिक जीवन में मनुष्य यदि यह अनुभव करे कि एकमात्र आत्मा ही विद्यमान है तो उसे ज्ञान हो जायेगा कि सभी एक हैं। जब मनुष्य सभी में स्वयं को और स्वयं में सभी को देखना प्रारंभ करेगा तभी उसके मन का विस्तार होगा। तभी समग्र विश्व आत्ममय हो जायेगा और फिर सभी प्रकार के द्वन्द्व और संघर्ष समाप्त हो जायेंगें। तभी वह स्वयं के सुख की चिंता के प्रति उदासीन हो सर्वश्रेष्ठ कर्मी हो जायेगा। विवेकानन्द के अभिमत में यदि आज इस महान् सत्य के एक बिंदु की भी उपलब्धि कर सकें तो उसके लिए यह संपूर्ण जगत् कोई दूसरा ही रूप धारण कर लेगा। सब झगड़ा समाप्त हो शान्ति का राज्य आ जायेगा। यह घिनौना उतावलापन, यह स्पर्धा जो हमें अन्य सबों को ठेलकर आगे बढ़ निकलने के लिए बाध्य करती है इस इस संसार से उठ जायेगी। इसके साथ-साथ सब प्रकार की शांति, घृणा, ईर्ष्या एवं सभी प्रकार का अशुभ सदा के लिए चला जायेगा।[७]

पतंगे जिस प्रकार दीपक की लौ पर टूट पड़ते हैं उसी प्रकार मनुष्य सुख पाने की आशा में अपने को बार बार झोंकता रहता है। इन्द्रियाँ भोगों की ओर निरंतर आकर्षित रहती हैं। मनुष्य इच्छाओं की तृप्ति के लिए विषय भोगों की ओर मृगमरीचिका की भाँति खिंचा रहता है। परन्तु वासना के उपभोग से कभी वासना की निवृत्ति नहीं होती अपितु घृताहुति के द्वारा अग्नि के समान वह तो और बढ़ती जाती है।[८] इन्द्रियविलास, बौद्धिक आनन्द और सभी प्रकार के सुख के संबन्ध में यही बात सत्य है। सभी मिथ्या है-माया के अधीन है। जीवन का अर्थ इन्द्रिय और इन्द्रिय भोग की अपेक्षा कुछ और भी है। जीवन का सार है पूर्णता की ओर जाना। इसी को प्राप्त करना जीवन का उद्देश्य है।

वेदान्त का उपदेश है- 'जगत् को ब्रह्मस्वरूप देखो'। वेदान्त जगत् की भर्त्सना नहीं करता। इसमें वैराग्य का अर्थ शुष्क आत्महत्या नहीं, अपितु जगत् को ब्रह्मरूप देखना ही है। जगत् को जिस भाव से देखा जाता है, जाना जाता है वैसा ही वह प्रतिभासित होता है। उसका त्याग करना और उसके वास्तविक रूप को पहचानना ही वेदान्त का लक्ष्य है। उसे ब्रह्मरूप देखना चाहिये। जब यह कहा जाता है कि पत्नी का त्याग करो, संतान का त्याग करो तो इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि बाल-बच्चों को रास्ते में फेंक दो। यह तो पैशाचिक काण्ड है- यह धर्म नहीं है। तो फिर क्या अर्थ है ? उनमें ईश्वर का दर्शन करो। वेदान्त यही कहता है कि जगत् की जिस रूप में कल्पना की है उसे छोड़ो। जिसमें अत्यधिक आसक्त थे वह

तो मिथ्या जगत् है-उसे छोड़ना चाहिए ।

मनुष्य के सभी दुःख अविद्या अज्ञान जनित हैं । विवेकानन्द के अभिमत में अज्ञान कुछ नहीं बहुत्व की धारणा है अर्थात् मनुष्य मनुष्य से भिन्न है, पुरुष स्त्री से, युवा शिशु से और राष्ट्र राष्ट्र से भिन्न है । ऐसा बोध ही दुःखों का कारण है । यह भेद वास्तविक न होकर भासित होता है । सभी के अन्तस्तल में वही एकत्व विराजमान है । यदि मनुष्य-मनुष्य में, जाति- जाति में, ऊँच-नीच, धनी-दरिद्र, नर-नारी, मनुष्य और पशु में एकत्व देखा जाये तो सभी एक हैं । जो व्यक्ति इस प्रकार एकत्वदर्शी हो जाता है उसे फिर मोह नहीं होता क्योंकि वह सभी के आभ्यन्तरिक सत्य को जान लेता है । वे अब क्यों दुःखी होंगे ? वे अब किसकी काम-वासना करेंगे । वे सारी वस्तुओं के अन्दर वास्तविक खोज करके ईश्वर तक पहुँच गये । जो जगत् का केन्द्रस्वरूप एवं एकत्वस्वरूप है वही अनन्त सत्ता, ज्ञान और आनन्द है ।

विवेकानन्द के अभिमत में परमार्थ तत्त्व तर्कना का नहीं अपितु प्रत्यक्षानुभूति का विषय है । इसीलिए कठोपनिषद् में यम नचिकेता को बार-बार सावधान करते हुए कहते हैं कि ''नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः न मेधया-----।''मन को वृथा तर्कों से चंचल नहीं करना चाहिए । धर्म केवल प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय है । धर्म को लेकर ये सब झगड़े मारामारी, तर्क-वितर्क तभी जायेंगे जब हम समझ लेंगें कि धर्म ग्रन्थों या मंदिरो में नहीं है । इन्द्रियों से उसका अनुभव नहीं हो सकता धर्म पर । धर्म पर धाराप्रवाह वक्तृता देने वाले पण्डित यदि अपरोक्षानुभूति से रहित हों तो उनमें और एक बिल्कुल अज्ञ जड़वादी में कोई अंतर नहीं है । हम सब नास्तिक हैं। यह क्यों नहीं मान लेते ? धर्म के सत्य, केवल बौद्धिक सम्मति देने मात्र से हम धार्मिक नहीं बन जाते । शब्द योजना के सुन्दर कौशल, आलंकरिक शब्दों में वर्णन करने की क्षमता, शास्त्रों के श्लोकों की अनेक प्रकार से व्याख्या-ये सब केवल पंडितों के आमोद की बातें हैं, धर्म नही । हमारी आत्मा में जब प्रत्यक्षानुभूति आरंभ होगी तभी धर्म का प्रारंभ होगा । दूसरों से घृणा करने का मानव को कोई अधिकार नहीं। हम सभी असली में भाई-भाई हैं । यही प्रत्यक्षानुभूति जब होगी तभी हम नीतिपरायण होने की आशा कर सकते है ।[९]

संसार के विभिन्न धर्मों की भिन्नता का पुराणविद्या, कर्मकाण्ड, सामाजिक मूल्यों-मान्यताओं, धर्म एवं दर्शन संबन्धी विभिन्न परंपराओं का विश्लेषण करते हुए उन्होंने कहा कि ये मत-मतान्तर वैमत्य बने रहेंगे । परन्तु वे मानव जाति के आध्यात्मिक एकीकरण में बाधक नहीं हैं । ''हमारे मन बर्तनों की भाँति हैं, हम सभी ईश्वर प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं । पर ईश्वर जल की भाँति है जो हर आकार के बर्तन में भरा जा सकता है । प्रत्येक पात्र में ईश्वर का स्वरूप भिन्न हो जाता है फिर भी वे सर्वत्र एक ही हैं । घट-घट में विराजमान हैं ।[१०]

प्रत्येक धर्म का परम उद्देश्य यही है कि आत्मा में ही परमात्मा का दर्शन कराया जाये। गीता में श्री कृष्ण ने कहा, 'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।'' अर्थात् मैं इस जगत् में मणियों के भीतर सूत्र की भाँति वर्तमान हूँ।' पृथक्-पृथक् मणियाँ एक एक धर्म हैं और प्रभु ही सूत्र रूप से उन सबमें वर्तमान है। बहुत्व में एकत्व का होना सृष्टि का विधान है। मनुष्य मात्र में एक ही जीवनधारा प्रवाहित है। यद्यपि मूलतः सभी धर्म एक ही हैं परन्तु विभिन्न देशों की विभिन्न परिस्थितियों के कारण उनके बाह्य रूपों में भिन्नता आ जाती है। इस लिए प्रत्येक को अपना व्यक्तिगत धर्म चुनने की स्वतंत्रता है। परन्तु मनुष्य को अपने भीतर का आध्यात्मिक दीप जलाना चाहिए। तब पाप और अपवित्रता का तामिस्र भाग जायेगा। फलस्वरूप आत्मा का उदात्त रूप प्रकट होगा।

जीवात्मा और परमात्मा के परस्पर संबंध की व्याख्या करते हुए स्वामी विवेकानन्द मुण्डकोपनिषद् के अत्यन्त सुन्दर पक्षी रूपक का नवीन विश्लेषण करते हुए लिखते हैं कि, ''एक ही वृक्ष पर दो पक्षी है; एक ऊपर एक नीचे। ऊपर का पक्षी स्थिर निर्वाक् और महान् है, अपनी ही महिमा में विभोर है। नीचे की डाल पर जो पक्षी है वह कभी तिक्त फल खा रहा है, एक डाल से दूसरी डाल पर फुदक रहा है। पर्यायक्रम से कभी अपने को सुखी और कभी दुःखी समझता है। कुछ क्षण बाद नीचे के पक्षी ने एक बहुत कटु फल खाया और स्वयं को धिक्कारते हुए ऊपर की ओर दृष्टिपात किया और दूसरे पक्षी को देखा-वह अपूर्व सुनहले परवाला पक्षी न तो मीठे फल खाता था और न कडुवे, अपने को न तो दुःखी समझता है और न सुखी परन्तु शांतभाव से अपने में ही विभोर है। उसे अपनी आत्मा को छोड़कर कुछ भी दिखाई नहीं देता। नीचे का पक्षी इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए व्यग्र हुआ परन्तु शीघ्र ही भूल गया और फिर फल खाने लगा। थोड़ी देर बाद ही फिर उसने एक बड़ा कडुवा फल खाया, जिससे मन को बड़ा दुःख हुआ। उसने फिर ऊपर दृष्टि डाली और उसके पास जाने की चेष्टा की, फिर भूल गया, कुछ क्षण बाद फिर ऊपर देखा। कई बार ऐसा ही करते हुए, वह ऊपर के पक्षी के बिल्कुल निकट पहुँच गया और देखा कि उसके परों से ज्योति का प्रकाश फूटकर उसकी देह के चतुर्दिक् विकीर्ण हो रहा है। उसने एक परिवर्तन का अनुभव किया-मानो वह मिलने जा रहा है, वह और भी पास गया, देखा उसके चारों तरफ जो कुछ था सब अन्तर्हित हो रहा है। नीचे का पक्षी मानो ऊपर वाले पक्षी की एक घनीभूत छाया मात्र था। केवल प्रतिबिंब था। वह स्वयं स्वरूपतः ऊपर वाला ही पक्षी था। नीचे वाले पक्षी का मीठा और कडुवा फल खाना और एक के बाद एक सुख और दुःख का बोध करना-सब मिथ्या-सब स्वप्न मात्र हैं; वह प्रशांत, निर्वाक् महिमामय शोकदुःखातीत ऊपर वाला पक्षी ही सर्वदा विद्यमान था।[१२]

इस रूपक से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मानव जीवन में अनेकानेक प्रयत्न

करने पर भी सांसारिक भोग विषय इन्द्रियों को अपनी ओर उसी प्रकार आकर्षित करते हैं जैसे मरुभूमि में मृगमरीचिका मृगों को। यथार्थ के धरातल पर पाँव रखते ही सारे आदर्श छूमंतर हो जाते हैं एवं संकल्प धराशायी। परन्तु नीचे वाले पक्षी की भाँति प्रारंभ में सफलता न भी मिले तो कोई बात नहीं। आदर्श बहुत दूर हों और हम बहुत नीचे तो भी एक उच्च आदर्श अपने समक्ष रखना होगा। विचार ही कार्य-प्रवृत्ति का नियामक है। मन को सर्वोच्च विचारों से भर लो, दिन-मास पर्यन्त इसी प्रकार चिंतन करो। असफलता स्वाभाविक है। अतः प्रारंभ में जिस मनुषय से सबसे अधिक स्नेह करते हो उसमें स्वयं को देखो। तत्पश्चात् धीरे धीरे सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति 'आत्ममय' हो जाएगा। निरन्तर, अध्यवसाय से संपूर्ण जगत् ब्रह्ममय हो जाता है।

विवेकानन्द का दर्शन कर्म के लिए प्रेरित करता है। मनुष्य को एक स्वामी की तरह कार्य करना चाहिए न कि दास की तरह। 'दासवत् कर्म करने से प्रेम नहीं होता इसीलिए वह सच्चा कर्म नहीं हो सकता। स्वार्थ के लिए किया गया कार्य दास कार्य है। सच्चे प्रेम से किया गया कार्य आनन्ददायक है। यथार्थ सत्, यथार्थ प्रेम, यथार्थ ज्ञान-तीनों सदा परस्पर संबद्ध हैं। वस्तुतः ये एक ही में तीनों हैं। ये उस अद्वितीय सच्चिदानंद के ही तीन पक्ष हैं।'

विवेकानन्द के अभिमत में कर्मयोग का अर्थ है-मौत के मुँह में भी जाकर बिना तर्क-वितर्क किये सबकी सहायता करना, भले ही तुम लाखों बार ठगे जाओ पर मुँह से एक बात तक न निकालो और तुम जो कुछ भले कार्य कर रहे हो उनके संबंध में सोचो तक नहीं। निर्धन के प्रति किये गये उपकार पर गर्व मत करो और न उससे कृतज्ञता की आशा करो बल्कि उल्टे तुम्हीं उसके कृतज्ञ होओ।[१३] कर्म का रहस्य समझाते हुए उन्होंने कहा, ''साधन और सिद्धि को एकरूप समझो'' अर्थात् साधना काल के साधन में ही मन प्राण अर्पण कर कार्य करो क्योंकि उसकी चरम अवस्था का नाम सिद्धि है। जब कर्म करो तब अन्य किसी बात पर विचार मत करो और उस समय उसी में शरवत् अर्थात् जैसे शर लक्ष्य को बींध देता है, तन्मय हो जाओ।

आत्मा के एकत्व का मार्ग है बड़ा कठिन-छुरे की धार पर चलने के समान दुर्गम; फिर भी निराश मत होओ, उठो, जागो और अपने चरम आदर्श को प्राप्त करो।[१४] यही स्वामी विवेकानन्द का भी विश्व को संदेश था। इसीलिए पश्चिम में भी उनके बहुत प्रशंसक थे। शिकागो की धर्मसंसद् समाप्त होने के बाद किसी ने पूछा था कि विवेकानन्द ने-भारत के एक अज्ञात साधु ने, जिसने न तो कोई विद्वत्तापूर्ण निबंध पढ़ा और न जिसके पास कोई प्रशंसात्मक परिचय पत्र थे-कैसे इतना गहरा प्रभाव डाला। उत्तर था-''क्योंकि जहाँ अन्य सब प्रतिनिधि अपने-अपने धर्म के ईश्वर की चर्चा करते रहे, केवल विवेकानन्द ने सबके ईश्वर की बात की।''[१५]

उन्होंने स्वयं एक बार कहा था-''निस्संदेह मुझे भारत से प्यार है पर प्रत्येक दिन मेरी दृष्टि अधिक निर्मल होती जाती है । हमारे लिए भारत या इंगलैंड या अमेरिका क्या ? हम तो उस ईश्वर के सेवक हैं जिसे अज्ञानी मनुष्य कहते हैं । जड़ में पानी देने वाला क्या सारे वृक्ष को नहीं सींचता है ।''

रोम्याँ रोलाँ शब्दो में, ''स्वामी विवेकानन्द के शब्द महान् संगीत हैं, बोथोवन शैली के टुकड़े हैं, हैंडल के समवेत गान के छंद प्रवाह की भाँति उद्दीपक लय हैं। शरीर में विद्युत्स्पर्श के से आघात की सिहरन का अनुभव किये बिना मैं उनके इन वचनों का स्पर्श नहीं कर सकता जो तीस वर्ष की दूरी पर पुस्तकों के पृष्ठों में बिखरे पड़े हैं और जब नायक के मुख से निकले होंगे तब तो न जाने कैसे आघात एवं आवेग पैदा हुए होंगे ।''

विवेकानन्द के शब्द आज भी समाज में वही आवेग पैदा करने में समर्थ हैं क्योंकि उनके व्यावहारिक दर्शन का आधार है आत्मा का एकत्व और मनुष्यों के प्रति ही नहीं अपितु संपूर्ण प्राणियों के प्रति दयाभाव । दया ही मानव जाति के समस्त सत्कर्मो का पथप्रदर्शक है और ये सब, 'मैं ही विश्व हूँ, यह विश्व एक अखण्डस्वरूप है' इसी सनातन सत्य के विभिन्न भाव मात्र हैं ।

---

१. गोस्पेल ऑफ श्री रामकृष्ण परमहंस पृ0 ७९३ ,,

२. श्रीरामकृष्ण कथामृत द्वितीय खं० पृ0 ४२.

३. रोम्याँ रोलाँ, ''लाइफ ऑफ विवेकानन्द''पृ0 ५२.

४. कर्मयोग पर व्याख्यान, वही पृष्ठ २१९.

५. लेक्चर्स फ्राम कोलंबो टू अल्मोड़ा पृ0 १६७.

६. ''यथा सोम्यैकेन पृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्----।'' छां0 उप0 ६.१.४

७. विवेकानन्द साहित्य, द्वितीय खंड, अद्वैताश्रम, कलकत्ता, द्वि0 सं0 १९७२. पृ0 ४१

८. न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ।।'' विष्णुपुराण ४.१०.२३.

९. अक्तूबर १८९६ को लंदन में दिये गये भाषण से उद्धृत

१०. ''विश्व धर्म का आदर्श'', विवेकानन्द साहित्य, तृतीय खं0 पृ0 १४७

११. गीता ७.७



१२. मुण्डकोपनिषद् ३.१.१-२

१३. ''कर्म का रहस्य'' विवेकानन्द साहित्य, खण्ड तीन पृ0 ३७

१४. ''उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत । क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गंपथस्तत्कवयो वदन्ति ।'' कठोपनिषद् १.३.१४

(१५) नरवणे विश्वनाथ, 'आधुनिक भारतीय चिन्तन (दिल्ली १९६४) पृ० ११५

# आकाशवाणी पर संस्कृत कार्यक्रम

आचार्य पण्डित आद्याचरण झा

(१) यह लगभग २५ - २६ वर्ष प्राचीन स्मृति का एक सुखद संस्मरण है जो वर्तमान कालीन हर्ष - विषादात्मक स्थिति से सम्बद्ध है। १९६४ - ६५ ई. मे स्व. लालबहादुर शास्त्री के प्रधानमंत्री काल में श्रीमती इन्दिरा गाँधी सूचना प्रसारण मन्त्री थीं। उनके प्रमुख सचिव थे प्रख्यात प्रशासक एवं शिक्षाविद् डॉ० आदित्यनाथ झा, आई. सी. एस.। संयोगवश नयी दिल्ली स्थित उनके निवास स्थान पर हम दो तीन व्यक्ति मिलने गये।

(२) वे वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय (वर्तमान सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय) के प्रथम कुलपति के रूप में संस्कृत-जगत् में अनेक ऐतिहासिक कार्य करके आये थे, जब वे उत्तर प्रदेश के मुख्य सचिव पद से भारत के प्रथम संस्कृत विश्वविद्यालय को संचालित करने के लिये तत्कालीन मुख्यमन्त्री डॉ० सम्पूर्णानन्द जी के द्वारा साग्रह भेजे गये थे। डॉ० झा के कुछ कार्य आज भी उनके कीर्तिस्तम्भ के रूप में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी में विद्यमान हैं।

(३) यही ध्यान में रखकर - प्रसंग वश हम लोगों ने श्री झा से कहा कि ''क्या संस्कृत में भी समाचार प्रसारण की व्यवस्था नहीं हो सकती''वे कुछ गंभीर हो गये तथा दूसरे दिन अपराह्ण में आने कहा। बिहार की यात्रा स्थगित कर दूसरे दिन यथासमय पहुँचने पर बड़ी प्रसन्नता से तुरन्त कहा कि ''सफलता मिल गयी, श्रीमती इन्दिरा गान्धीं ने स्वीकृति दे दी, और प्रधानमंत्री श्री शास्त्री जी ने अनुमोदन कर दिया। दो तीन दिनों के बाद प्रतिदिन प्रातः ७ से ७.५ तक पाँच मिनटों का संस्कृत समाचार बुलेटिन का प्रसारण होगा।''

आकाशवाणी के प्रसंग में हम संस्कृत प्रेमियों का यह प्रथम उल्लास कारण बना। उस प्रसन्नता का वर्णन आज भी असंभव है। यह संस्कृत में प्रसारण की मंगलमय वेला थी।

(४) जब श्रीमती इन्दिरा गान्धी स्वयं प्रधान मन्त्री हुईं तो पुनः सन्ध्या ६.१० से ६.१५ तक पाँच मिनट का दूसरा संस्कृत बुलेटिन प्रसारण करने का आदेश दिया। वे दोनों प्रसारण आज भी नियमित चल रहे हैं।

यदि सत्यकथन पाप नहीं है तो आकाशवाणी से संस्कृत समाचार प्रसारण के कार्यक्रम का सारा श्रेय श्रीमती गान्धी को है।

(५) वैसे आकाशवाणी से संस्कृत में काव्यपाठ की परम्परा बिहार के पटना राँची केन्द्रों से १९५७ - ५८ से ही चल रही है। बाद में भागलपुर-दरभङ्गा केन्द्रों की स्थापना के बाद वहाँ से भी यह क्रम किसी न किसी रूप में आज भी जारी है।

(६) १९६१ - ६२ के बाद पटना आकाशवाणी केन्द्र के नाटक विभाग के प्रभारी श्री जर्नादन राय तथा सहायक केन्द्र निदेशक प्रख्यात नाटककार - शिक्षाविद् श्री चतुर्भुज के सत्प्रयास से महीने में एक संस्कृत नाटक का प्रसारण होने लगा। प्रत्येक मास में पटना-राँची केन्द्र से संस्कृत में 'समाचार - समीक्षा' का प्रसारण होने लगा। प्रति सप्ताह एक बार स्कूली बच्चों के साथ 'संस्कृत पाठ' का क्रम भी चलने लगा। इन कार्यक्रमों में इन पंक्तियों का लेखक (आद्याचरण झा) अविराम गति से सम्बद्ध रहा। मेरी संस्कृत-समाचार-समीक्षा बहुचर्चित हो गयी। आकाशवाणी के वे अनेकानेक अनुबन्ध पत्र आज भी मेरी पुरानी संचिका में सुरक्षित हैं। मैं बिहार के केन्द्रों से ही सम्बद्ध रहा, अत एव अन्य केन्द्रों का मुझे ज्ञान नहीं है। सम्भव है अन्य आकाशवाणी केन्द्रों से भी ऐसा होता रहा हो। हाँ दिल्ली मुख्य केन्द्र से प्रातः सायं संस्कृत समाचार बुलेटिन का प्रसारण आज भी पूर्ववत् चल रहा है।

(७) इसके बाद की स्थिति चिन्तनीय है। बिहार के केन्द्रों से 'संस्कृत समाचार समीक्षा' - प्रसारण एकदम बन्द हो गया। बच्चों का संस्कृत पाठ भी त्रैमासिक कर दिया गया। संस्कृत नाटक प्रसारण की भी यही स्थिति है। जो पूर्व में आकाशवाणी केन्द्र के पदाधिकारी थे, बदल गये, सेवानिवृत्त हो गये।

(८) संयोगवश मैं १९८७ - ८८ में पटना आकाशवाणी केन्द्र की परामर्शदात्री समिति का एक मनोनीत सदस्य था। प्रति तीन महीने पर निश्चित रूप से बैठकें होती रही, मैं भाग लेता रहा, यात्रा भत्ता मिलता रहा लेकिन प्रबल प्रयास - प्रसाद के उपरान्त भी 'संस्कृत में समाचार समीक्षा' का पुनः प्रसारण नहीं करा सका। संस्कृत काव्यपाठ का समय भी नही बढाया जा सका !! इसका अवसाद ही शेष है। सभी स्थानों से नयी शिक्षानीति से संस्कृत निष्कासन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। क्या उसके घातक पंजों से संस्कृत को मुक्ति मिलेगी!!

(९) कुछ उत्साही कर्मठ संस्कृत विद्वानों तथा संस्कृतानुरागियों के अखण्ड श्रम प्रयास से संस्कृत माध्यम का कार्यक्रम आकाशवाणी से चलता है। अब तो दूरदर्शन से भी यदा कदा संस्कृत काव्य पाठादि होते हैं। समाचार प्रसारण तो नही हो सका है। अब तो अप्रिल १९९१ से संभावित ''प्रसार भारती'' स्वायत्त निगम से सुरभारती के लिये कुछ आशा की जाय क्योकि संस्कृतज्ञ सदा आशावादी रहे हैं।

(१०) इस सन्दर्भ में अत्यधिक कर्मठ उत्साही आचार्य डॉ0 रमाकान्त शुक्ल तथा उनके सहयोगी विद्वानों के सत्प्रयास से राजधानी में संस्कृत का अलख जगाया जा रहा है-यह गौरव की बात है।

(११) डॉ० शुक्ल पूर्ण स्वस्थ रहते हुए यजुर्वेदीय मन्त्रानुसार ''जीवेम शरदः, शतं भूयश्च शरदः शतात्'' हों, यही जगदम्बा से प्रार्थना है।

१.९.१९९० आद्याचरण झा

# बीसवीं शताब्दी के कतिपय संस्कृत नाटक

श्री सुखनन्दन त्यागी

काव्यकला, कला की चरम परिणति है और काव्य की अत्यन्त रमणीय विधा है नाटक। वस्तु, नेता तथा रस के आधार पर इस रमणीय काव्य के दस भेद तथा अठारह उपभेद किये गये हैं।[1] रस आनन्द एवं उसके परिपाक के लिए नाट्याचार्यों ने नाना गतियाँ बतलायी हैं, जिनमें हस्त, पाद दृष्टि आदि परिगणित है। चाक्षुष प्रत्यक्ष होने के कारण रसात्मक वाक्यरूप काव्य 'दृश्य' कहा जाता है; वहीं उसके अभिनेता में अभिनेय रामादि चरित्रों के रूप में आरोप के कारण 'रूपक' माना गया है। इस अभिनय चातुर्य के कारण एक ऐसी स्थिति उपस्थित हो जाती है कि हम यह भी भूल जाते हैं- कि हम नाट्यशाला में बैठे हैं अथवा नाट्यशाला हमारे चारों ओर। इस प्रकार 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' उक्ति पूर्णतः सत्य प्रतीत होती है।

नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य भरतमुनि ने इस रमणीयता को ध्यान में रखते हुए ही ऋग्वेद से पाठ्य-सामग्री, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रसों को ग्रहण करके ब्रह्मा की सृष्टि 'नाट्यवेद' नामक 'पंचमवेद' की उत्पत्ति का वर्णन किया है।[2] अतः दृश्य श्रव्य होना तथा वस्तु की साकारता को प्रदर्शित करना ही नाटक की गरिमा है। आदि नाट्य प्रणेता भरतमुनि का मत है कि-'नाटक शोकाकुल एवं श्रमातुर जनों के लिए शान्ति प्रदान करने वाला होता है।[3]

---

१- साहित्यदर्पण, ६.३-६.

२- सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नं सर्वशिल्पप्रवर्त्तकम्।
नाट्याख्यं पञ्चमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम्॥
जग्राह पाठ्यं ऋग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि॥ -नाट्यशास्त्रम्, १.१६-१७

३. दुःखार्तानां श्रमार्त्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनाम्।
विश्रामजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति।
विनोदजननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति॥- वही, १/३

बीसवीं शताब्दी में रचे गये अनेक संस्कृत नाटकों की शृंखला निम्न द्रष्टव्य है। विषय विस्तार के भय से इनका संक्षिप्त परिचय देना ही उपयुक्त होगा ; जो इस प्रकार है-

## परिजातहरणनाटकम्

पाँच अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री रामनाथ शिरोमणि हैं इस नाटक की रचना सन् १९०२ ई0 में में हुई तथा प्रकाशन १९०४ में कलकत्ता से हुआ है। इस नाटक में कृष्ण-रुक्मिणी प्रसङ्ग के परिजातहरण की पौराणिक कथा को निबद्ध किया गया है।

## पार्वतीपरिणयम्

श्री शङ्कर लाल महेश्वर ने इस नाटक की रचना सन् १९०२ ई0 में ही की थी। इसका प्रकाशन सन् १९११ ई0 तथा सन् १९१९ ई0 में हुआ। इस नाटक में पाँच अङ्क हैं। यह भी पौराणिक नाटक है। इसमें पार्वती और शिव के विवाह की झाँकी प्रस्तुत की गयी है।

## गणेशपरिणयम्

सात अङ्कों में पार्वती सुत गणेश के विवाह को काल्पनिक ढंग से प्रस्तुत करने वाले श्री वैद्यनाथ शर्मा ने इस नाटक की रचना सन् १९०४ ई0 में की थी। इसका प्रकाशन सन् १९६० ई0 में काशी से हो चुका है। यह भी पौराणिक नाटक है।

## चैत्रयज्ञम्

सन् १९०४ ई0 में रचे गये इस नाटक के रचयिता श्री वैद्यनाथ वाचस्पति भट्टाचार्य हैं। पाँच अङ्कों वाले इस नाटक में दस यज्ञों की कथा वर्णित है। इस नाटक का प्रकाशन सन् १९०७ ई0 मैसूर से हुआ है।

## कृष्णचन्द्राभ्युदयम्

महामहोपाध्याय शीघ्रकवि शङ्करलाल शास्त्री ने इस नाटक की रचना की। इसमें पाँच अङ्क हैं। इस नाटक की रचना सन् १९०४ ई0 में की गयी तथा इसका प्रकाशन बम्बई से सन् १९७३ ई0 में हुआ है। इस नाटक में एक योग्य सारथी, उचित परामर्शदाता, मित्र, राजदूत, महान् योद्धा, भक्तवत्सल तथा संसार के सबसे बड़े दार्शनिक श्रीकृष्ण के चरित्र को नव्य रीति से प्रस्तुत किया गया है।

## कमलाविजयनाटकम्

पाँच अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री वेंकटरमणाचार्य हैं। इस नाटक

की रचना सन् १९०९ ई० में हुई थी। इसका प्रकाशन मैसूर से सन् १९३८ ई0 में हो चुका है। इस नाटक में ब्रह्मा तथा कमला के प्रणय-प्रसङ्ग को चित्रित कर, सतीत्व महिमा को मुखरित किया गया है।

## अमरमङ्गलम्

आठ अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता पं0 पंचानन तर्करत्न हैं। यह नाटक सन् १९१३ ई0 में लिखा गया और इसका प्रकाशन सन् १९३७ ई0 में वाराणसी से हुआ। इस नाटक में महाराणा प्रताप के वीर पुत्र अमरसिंह की चित्तौड़-विजय विषयक देशभक्तिपूर्ण शौर्यकथा को अंकित किया गया है।

## अबदलमर्दनम्

सात अङ्कों में सम्पन्न होने वाले इस नाटक के प्रणेता श्रीचिन्तामणि रामचन्द्र शर्मा 'सहस्रबुद्धे' हैं। इसकी रचना सन् १९१६ ई0 में की गयी। इसका प्रकाशन सन् १९१६ ई0 में ही बंगलौर से हो चुका था। इस नाटक में छत्रपति शिवाजी की शौर्यपूर्ण गाथा को अंकित किया गया है।

## रतिविजयम्

सन् १९१९ ई0 में रचे गये तथा सन् १९२१ ई0 में बम्बई से प्रकाशित इस नाटक के रचयिता श्री के0 एस0 रामस्वामी शास्त्री हैं। पाँच अङ्कों वाले इस नाटक में कालिदास के 'कुमारसम्भवम्' की रतिकथा को नूतन ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

## प्रतापविजयम्

श्री मूलशंकर माणिकलाल 'याज्ञिक' प्रणीत इस नाटक में नौ अङ्क हैं। इसकी रचना सन् १९२६ ई0 में हुई तथा सन् १९३१ ई0 में प्रयाग से इसका प्रकाशन हो चुका है। इस नाटक में मेवाड़ नरेश महाराणा प्रताप के शौर्य को रूपकायित किया गया है।

## प्रतिराजसूयम्

पवित्र नामक सोमयज्ञ से आरम्भ होने वाले और सौत्रामणि से समापन होने वाले 'राजसूय' नामक यज्ञ में विजयी होने वाले युधिष्ठिर के धर्मपरायण चरित्र को मुखरित करने वाले इस नाटक के प्रणेता श्रीमन्महालिङ्ग शास्त्री हैं। इसमें सात अङ्क हैं। और इसकी रचना सन् १९२८ ई0 में हुई है। इसका प्रथम संस्करण १९२९ ई0 में मद्रास से प्रकाशित हुआ था जो सर्वथा अनुपलब्ध है। अगस्त १९५७ ई0 में साहित्य चन्द्रशाला, पूना से प्रकाशित होने वाला द्वितीय संस्करण सहज उपलब्ध है।

## संयोगितास्वयंवरम्

हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान तथा राजकुमारी संयोगिता के प्रणय प्रसङ्ग को आधार मानकर सन् १९२८ ई0 में एक मूलशंकर मणिकलाल 'याज्ञिक' ने ''संयोगितास्वयंवरम्'' नामक नाटक की रचना की । सात अङ्कों वाले इस नाटक का प्रकाशन सन् १९५० ई0 में बड़ौदा से हुआ है ।

## वीरप्रतापनाटकम्

महाराणा प्रताप के जीवन की शौर्यपूर्ण गाथा को सात अङ्कों में चित्रित करने वाले इस नाटक के प्रणेता पं0 मथुराप्रसाद दीक्षित हैं । यह नाटक सन् १९२९ ई0 में रचा गया और सन् १९३७ ई0 में लवपुर, (लाहौर) पंजाब से प्रकाशित हुआ है ।

## वीरपृथ्वीराजविजयनाटकम्

पं0 मथुराप्रसाद दीक्षित प्रणीत छह अङ्कों वाले इस दुःखान्त नाटक में हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की जीवनगाथा को पूर्णतः चित्रित किया गया है । यह नाटक सन् १९२९ ई0 में रचा गया । इसका प्रकाशन सन् १९३७ ई0 में पंजाब से हुआ है।

## छत्रपतिसाम्राज्यम्

दस अङ्कों में शिवाजी के चरित्र रूपी कथ्य को समेटने वाले ऐतिहासिक 'छत्रपतिसाम्राज्य' नामक नाटक के प्रणेता स्व0 मूलशङ्कर माणिकलाल 'याज्ञिक' हैं । यह नाटक सन् १९२९ ई0 में रचा गया और उसी वर्ष बड़ौदा से प्रकाशित भी हुआ है ।

## दुर्गाभ्युदयनाटकम्

सात अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता पं0 छज्जूराम शास्त्री हैं । यह नाटक सन् १९२९ ई0 में रचा गया और सन् १९३१ ई0 में दिल्ली से प्रकाशित हुआ है ।

## शङ्करविजयनाटकम्

छह अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता पं0 मथुराप्रसाद दीक्षित हैं । यह नाटक सन् १९३१ ई0 में लिखा गया और उसी वर्ष पंजाब से प्रकाशित भी हुआ । इस दार्शनिक नाटक में तर्क के माध्यम से शङ्कर के भिन्न-भिन्न प्रतिपक्षों के साथ हुए वाद विवाद की चर्चा की है तथा अन्त में शंकर की विजय भी दर्शायी गयी है ।

## अद्भुतांशुक-नाटकम्

कौशिकवंशीय श्री जग्गू बकुल भूषण ने आठ अङ्कों वाले इस नाटक की रचना सन् १९३१ ई0 में की थी, जिसका प्रकाशन सन् १९३३ ई0 में प0 बंगाल से हुआ। इस नाटक की रचना महाभारत के आख्यान पर आधृत 'वेणीसंहार' के पूर्व की कथा को आधार मानकर की गयी है ।

## भारतविजयनाटकम्

पं0 मथुराप्रसाद दीक्षित ने सात अङ्कों वाले इस नाटक की रचना सन् १९३७ ई0 में की थी । इसका प्रकाशन सन् १९४८ ई0 में लखनऊ से हुआ है । इस नाटक में भारत भूमि की रक्षा हेतु मर मिटने वाले अमर वीर शहीदों की शौर्य गाथा को चित्रित किया गया है ।

## कलिप्रादुर्भावम्

सात अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री वाइ0 महालिङ्ग शास्त्री हैं । यह नाटक सन् १९३९ ई0 में तञ्जौर से प्रकाशित हुआ । इस नाटक में मनुष्य पर पड़ने वाला कलियुग का प्रभाव प्रस्तुत किया गया है ।

## भक्तसुदर्शनम्

छः अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता पं0 मथुराप्रसाद दीक्षित हैं । इसकी रचना सन् १९४२ ई0 में की गयी । इसका प्रकाशन सन् १९४५ ई0 में पंजाब से हो चुका है । इस नाटक का इतिवृत्त देवीभागवतम् के तृतीय स्कन्ध के १२ अध्यायों से ग्रहण किया गया है । इसमें भवानी दुर्गा के परम भक्त राजकुमार सुदर्शन की चरितगाथा को चित्रित किया गया है ।

## वंगीयप्रतापम्

आठ अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री हरिदास सिद्धान्तवागीश हैं । यह नाटक सन् १९४२ ई0 में रचा गया और इसका प्रकाशन सन् १९४५ ई0 में कलकत्ता से हुआ । इसमें जैसोर नरेश विक्रमादित्य के पुत्र प्रतापादित्य की शौर्यपूर्ण जीवनगाथा को चित्रित किया गया है ।

## भूभारोद्धरणम्

पाँच अङ्को वाले इस नाटक के प्रणेता पं0 मथुराप्रसाद दीक्षित हैं । सन् १९४३ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९४५ ई0 में पंजाब से हुआ है । इस नाटक में गान्धारी के शाप से एक ही दिन में हुए सम्पूर्ण यादव वंश के विनाश की कथा वर्णित है ।

## उद्गातृदशाननम्

इस नाटक के प्रणेता श्री वाइ0 महालिङ्ग शास्त्री हैं । सन् १९४३ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९५८ ई0 में तञ्जौर से हुआ है । इस नाटक में लंकेश्वर रावण के शौर्यपूर्ण कार्यों को प्रस्तुत किया गया है । इसमें सात अङ्क हैं ।

## मेवाड़प्रतापम्

छः अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री हरिदास सिद्धान्तवागीश हैं । सन् १९४४ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९४७ ई0 में कलकत्ता से हुआ है । इस नाटक में मेवाड़धरानरेश महाराणा प्रताप के पराक्रम एवं शौर्यपूर्ण कार्यों को प्रस्तुत किया गया है ।

## शिवाजीचरितम्

दस अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री हरिदास सिद्धान्तवागीश हैं । सन् १९४५ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९५४ ई0 में कलकत्ता से हुआ है । इस नाटक में शिवाजी के राजतिलक पर्यन्त कथ्य को बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है ।

## नारीजागरणम्

सात अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता पं0 श्री गोपाल शास्त्री 'दर्शनकेसरी' हैं। सन् १९४५ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९६६ ई0 में हुआ है । इस नाटक में जनहित, देशोन्नति, सत्साहित्य का विकास तथा समाज सुरक्षा की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए नाटककार ने 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का उद्घोष किया है ।

## सुभाषसुभाषम्

छः अकों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री यतीन्द्र विमल चौधुरी हैं । सन् १९४८ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९५४ ई0 में कलकत्ता से हुआ है । इस नाटक में नेता जी सुभाषचन्द्र बोस के वीरभावों तथा शौर्यपूर्ण कार्यों को प्रस्तुत किया गया है ।

## लक्ष्मीस्वयंवरम्

पाँच अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता डॉ0 वी0 राघवन् हैं । सन् १९४८ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९५२ ई0 में वाराणसी से हुआ है । इस नाटक में ऐश्वर्योन्मत्त देवेन्द्र की पराजय तथा भगवान् विष्णु द्वारा लक्ष्मी को वरण करने की कथा प्रस्तुत की गयी है ।

## ययातिदेवयानीचरितनाटकम्

सात अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री वल्लीसहाय कवि हैं । सन् १९५० ई० में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९६६ ई० में तञ्जौर से हुआ है । इस नाटक में पौराणिक ययाति और देवयानी की प्रणय कथा को मुखरित किया गया है ।

## परिवर्तनम्

पाँच अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता डॉ० कपिल देव द्विवेदी आचार्य हैं । सन् १९५० ई० में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९५२ ई० में लखनऊ से हुआ है । इस नाटक में जनहृदयों में जागृत होने वाली स्वाभाविक क्रान्ति को प्रस्तुत किया गया है ।

## काश्मीरसन्धानसमुद्यमः

आठ अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री नीरपाजे भीमभट्ट हैं । सन् १९५२ ई० में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९५४ ई० में बंगलौर से हुआ है । इस नाटक में कश्मीर की नैसर्गिक सुषमा का मनोहारी चित्रण प्रस्तुत किया गया है ।

## भारतविवेकम्

बारह अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री यतीन्द्रविमल चौधुरी हैं । सन् १९५२ ई० में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९५८ ई० में कलकत्ता से हुआ है । इस नाटक में स्वामी विवेकानन्द के साहसिक कार्यो को प्रस्तुत किया गया है।

## क्रान्तियुद्धम्

पाँच अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री वासुदेव शास्त्री वागेवाडीकर हैं । सन् १९५२ ई० में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९५७ ई० में पूना से हुआ है । इस नाटक में भारतीय स्वातन्त्र्य समर की कथा को बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है ।

## हैदराबादविजयम्

दस दृश्यों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री नीरपाजे भीमभट्ट हैं । सन् १९५२ ई० में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९५४ ई० में बंगलौर से हुआ है । इस नाटक में स्वतन्त्र भारत के केन्द्रीय शासन तथा हैदराबाद के निज़ाम के मध्य हुए सैन्य संघर्ष की कथा को प्रस्तुत किया गया है ।

## देशबन्धुप्रियम्

दस अङ्कों वाले इस नाटक के रचयिता श्री यतीन्द्रविमल चौधुरी हैं । सन् १९५६ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९५९ ई0 में कलकत्ता से हुआ है । इस नाटक में देशबन्धु चित्तरंजनदास के देशभक्ति पूर्ण कार्यों को प्रस्तुत किया गया है ।

## भारतलक्ष्मीः

दस अङ्कों वाले इस रूपकं के प्रणेता श्री यतीन्द्रविमल चौधुरी हैं । सन् १९५७ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन्, १९५९ ई0 में कलकत्ता से हुआ है । इस नाटक में वीराङ्गना 'झाँसी की रानी' लक्ष्मीबाई की शौर्यकथा को रूपकायित किया गया है ।

## नलदमयन्त्यम्

दस अङ्कों वाले इस इस नाटक के प्रणेता श्री कालीपादाचार्य हैं । सन् १९५८ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९६० ई0 में मैसूर से हुआ है । महाभारत के वनपर्व के ५०-७८ वें अध्यायों तक की कथा 'नलोपाख्यान' पर आधृत राजा नल तथा भीमसुता दमयन्ती के प्रणय-प्रसङ्ग को इस नाटक में चित्रित किया गया है ।

## महिममयभारतम्

पाँच अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री यतीन्द्रविमल चौधुरी हैं । सन् १९५८ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९६० ई0 में कलकत्ता से हुआ है । इस नाटक में भारतवर्ष की अतीतकालीन तथा वर्तमानकालीन महिमा और गरिमा को प्रस्तुत किया गया है ।

## भारतहृदयारविन्दम्

पाँच अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री यतीन्द्रविमल चौधुरी हैं । सन् १९५८ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९६० ई0 में कलकत्ता से हुआ है । इसमें राष्ट्रभक्त श्री अरविन्द के राष्ट्रीय भावों को प्रस्तुत किया गया है ।

## भास्करोदयम्

पन्द्रह अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री यतीन्द्रविमल चौधुरी हैं । सन् १९५८ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९६१ ई0 में कलकत्ता से हुआ है । इस नाटक में कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ टैगोर की जीवन कथा को वर्णित किया गया है ।

## मेलनतीर्थम्

दस अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री यतीन्द्रविमल चौधुरी हैं । सन् १९५९ लिखे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९६१ ई0 में कलकत्ता से हुआ है । इस नाटक में अथर्वा ऋषि, अगस्त्य मुनि, सम्राट् अशोक, अकबर, स्वामी विवेकानन्द, टैगोर, गान्धी और नेहरू आदि के विचारों को प्रस्तुत किया गया है ।

## भारतजनकम्

सोलह अङ्को वाले इस नाटक के प्रणेता श्री यतीन्द्र विमलचौधुरी हैं । सन् १९६० ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९६० ई0 में ही हो चुका है । इस नाटक में महात्मा गाँधी के जीवन-संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है ।

## आनन्दराधम्

दस-अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री यतीन्द्रविमल चौधुरी हैं । सन् १९६१ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९६२ ई0 में कलकत्ता से हुआ है । इस नाटक में राधा और कृष्ण के किशोर प्रेम की छवि को अंकित किया गया है ।

## पाणिनीयनाटकम्

नौ दृश्यों वाले इस नाटक के प्रणेता श्रीगोपाल शास्त्री 'दर्शनकेसरी' हैं । सन् १९६२ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९६४ ई0 में वाराणसी से हुआ है । इस नाटक में महर्षि पाणिनि कृत व्याकरण- शास्त्र की महत्ता को निरूपित किया गया है ।

## देशदीपम्

नौ दृश्यों वाले इस नाटक की प्रणेत्री श्रीमती रमा चौधुरी हैं । सन् १९६३ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९६५ ई0 में कलकत्ता से हुआ है । इस नाटक में अमर वीर, शहीद, एक कृषक पुत्र तथा युवा छात्र की राष्ट्रभक्ति को प्रस्तुत किया गया है ।

## चाणक्यविजयम्

सात अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री विश्वेश्वर विद्याभूषण काव्यतीर्थ हैं। सन् १९६६ ई0 में लिखे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९६६ ई0 में ही हो चुका है । इस नाटक में आचार्य चाणक्य के साहसिक कार्यो को प्रस्तुत किया गया है ।

## सुसंहतभारतम्

छः अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता पुल्लेल श्री रामचन्द्र रेड्डी हैं । सन् १९६२ ई0 में लिखे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९७२ ई0 में सागर से हुआ है । इस नाटक में भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की स्थिति को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है ।

## श्रीकृतार्थकौशिकम्

छः अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता स्व0 श्रीकृष्ण जोशी हैं । सन् १९६९ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९७५ ई0 में लखनऊ से हो चुका है । इस नाटक में पुरातन भारतीय नरेश गाधि तथा उसके पुत्र विश्वामित्र (कौशिक) के चरित्र को प्रस्तुत किया गया है ।

## शङ्करशङ्करम्

पाँच अङ्कों वाले इस नाटक की प्रणेत्री श्रीमती रमा चौधुरी हैं । सन् १९७० ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९७२ ई0 में कलकत्ता से हुआ है । इसमें शिवजी के भोलेपन तथा उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति को प्रकट किया गया है ।

## विवेकानन्दविजयम्

दस अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता डॉ० श्रीधर भास्कर वर्णेकर हैं । दि0 ४ जुलाई १९७१ ई0 को इस नाटक की रचना हुई । इस नाटक का प्रकाशन विवेकानन्द शिला स्मारक समिति (मद्रास) द्वारा सन् १९७२ ई0 में हुआ । इस नाटक में स्वामी विवेकानन्द का अमेरिका आदि देशों में धर्म प्रचार कर भारत प्रत्यागमन वर्णित है।

## बांगलादेशोदयम्

दस अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री रामकृष्ण शर्मा हैं । सन् १९७२ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९८० ई0 में दिल्ली से हुआ है । इस नाटक में बाँग्लादेश के उदय की घटना को प्रस्तुत किया गया है ।

## छत्रपतिः श्रीशिवराजः

पाँच अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता श्रीराम भि0 वेलणकर हैं । सन् १९७३ में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९७४ ई0 में बम्बई से हुआ है । इस नाटक में शिवाजी के अदम्य उत्साह एवं शौर्य को चित्रित किया गया है ।

## शिवराजाभिषेकम्

सात अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता डा0 श्रीधर भास्कर वर्णेकर हैं । सन् १९७४ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९७४ ई0 में ही पूना से हुआ है । इस नाटक में छत्रपति शिवाजी के राज्याभिषेक-महोत्सव की घटना को प्रस्तुत किया गया है ।

## सेतुबन्धम्

दस-अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री गोस्वामी बलभद्रप्रसाद शास्त्री हैं । सन् १९७९ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९८० ई0 में बरेली से हो चुका है । इस नाटक में विभिन्न संस्कृतियों एवं धर्मों के सागरों पर सेतु निर्माण का कार्य दर्शाया गया है ।

## अभिनवहनुमन्नाटकम्

नौ अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता डॉ0 रमेश चन्द्र शुक्ल हैं । सन् १९८२ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९८२ ई0 में ही दिल्ली देववाणी परिषद् आर-६ वाणी विहार, नयी दिल्ली-११००५९ से हुआ है । इस नाटक में पवनपुत्र हनुमान् की शालीनता, शौर्यसम्पन्नता तथा निर्भीकता को नूतन ढंग से प्रस्तुत किया गया है ।

## मेनकाविश्वामित्रम्

आठ अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता डा0 हरिनारायण दीक्षित हैं । सन् १९८३ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९८४ ई0 में दिल्ली से हुआ है । इस नाटक में राजर्षि विश्वामित्र तथा अप्सरा मेनका की प्रणय-कथा को प्रस्तुत किया गया है ।

## अनसूयाचरितनाटकम्

नौ अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री विष्णुदत्त त्रिपाठी हैं । सन् १९८४ ई0 में रचे गये इस नाटक का प्रकाशन सन् १९८४ ई0 में वाराणसी से हुआ है । इस नाटक में महर्षि अत्रि की पत्नी अनसूया के माध्यम से सांस्कारिक धार्मिक तत्त्वों की शिक्षा प्रदान की गयी है ।

## कर्णाभिजात्यम्

दस अङ्कों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री गोस्वामी बलभद्र प्रसाद शास्त्री हैं । सन् १९८८ ई0 में रचे गये इस इस नाटक का प्रकाशन सन् १९९० ई0 में बरेली

से हुआ है इस नाटक में कर्ण की उत्पत्ति तथा तन्निमित्त हुए आभिजात्यादि संस्कारों को प्रस्तुत किया गया है ।

## शिञ्जिनीयम्

दस अंकों वाले इस नाटक के प्रणेता श्री अ0 सी0 सुब्बुकृष्ण श्रौती हैं । इस नाटक का प्रकाशन ए0 एस0 पावकी श्रीनिवासन् ने १९९० में मद्रास से किया है। इस नाटक में तमिल के प्रसिद्ध महाकाव्य 'शिलप्पदिकरम्' की कथावस्तु को नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

बीसवीं शताब्दी में संस्कृत नाटक की अनेक नयी विधाएँ भी प्रकाशित हुईं । इनमें रेडियोनाटक या ध्वनिरूपक तथा एकांकियों का विशेष स्थान है । इस युग में लम्बे नाटकों की अपेक्षा लघु नाटक-नाटिकाएँ अधिक लोकप्रिय हुए । इनका आकाशवाणी केन्द्रों से प्रसारण तथा विविध मंचों पर मंचन भी हो चुका है । डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी, पं0 ओगटि परीक्षित शर्मा, डॉ० बी0 आर0 शास्त्री, डॉ० राजेन्द्र मिश्र, डॉ० रमाकान्त शुक्ल, डॉ० राधा वल्लभ त्रिपाठी, डॉ० हरिदत्त शर्मा, श्री भि0 वेलणकर, डॉ० सुधीकान्त भारद्वाज, डॉ० मथुरादत्त पाण्डेय, डॉ० भवानीशंकर त्रिवेदी तथा अन्यान्य लेखकों के अनेक संस्कृत नाटक उल्लेखनीय हैं । इन पंक्तियों के लेखक ने भी 'मरीचिकामारीच' नामक एक पाँच अंकों का नाटक लिखा है । आशा है, विद्वज्जन बीसवीं शती के संस्कृत नाटकों के मूल्यांकन की ओर ध्यान देंगे।

# बीसवीं शताब्दी के संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना

डॉ० महावीर अग्रवाल

''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'', ''वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः ''यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि'' का शंखनाद करते हुए वैदिक ऋषियों ने राष्ट्रीय चेतना को मुखरित कर ''ओम् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्'' इस राष्ट्रीय प्रार्थना से मानव मात्र के हृदय में वैभवशाली, सुखी, समृद्ध, अखण्ड राष्ट्र की भावना जागृत की थी, आगे चलकर रामायण एवं महाभारत में राष्ट्रीयता का यह स्वर और अधिक प्रबल होता होता गया और पुराणकार ने ''गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ने भारतभूमिभागे'' कहकर इस भारत देश को स्वर्ग से भी महान् बताया, तो भारत के ऐतिहासिक स्वर्णयुग के महान् काव्यशिल्पी महाकवि कालिदास ने ''अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः'' का ओजस्वी वाणी में सिंहनाद कर भारतीयों के अन्तःकरणों में अपनी मातृभूमि के प्रति गौरव की भावना जागृत कर राष्ट्र की एकता को सुदृढ बनाने का स्तुत्य कार्य किया। राष्ट्रीय अखण्डता एवं एकता की यह अजस्र धारा सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में प्रवाहित ही नहीं होती रही अपि तु उत्तरोत्तर प्रबल होती रही है। जब हमारा यह भारत देश परतंत्रता की जंजीरों में बँधा हुआ था तब एक ओर भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव, रामप्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर आज़ाद मातृभूमि की बलिदेवी पर हँसते-हँसते अपने जीवन सुमन अर्पित कर रहे थे तो दूसरी ओर सुरभाषा के आराधक अपनी वाणी से राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के गीत गा गाकर सम्पूर्ण राष्ट्र को संगठित कर रहे थे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनन्तर यह स्वर और अधिक सशक्त रूप में भारतीय गगन में गूँजने लगा। जिन हुतात्माओं ने अपने यौवन राष्ट्र के लिए न्यौछावर कर दिये थे सभी भारतीय भाषाओं के साहित्यकार उनके जीवन चरित्रों को गा गाकर अपनी वाणी को सार्थक करने लगे। इस कार्य में संस्कृत के समुपासक सबसे आगे रहे; उनका हृदय राष्ट्रीयता के भावों से ओतप्रोत रहा। किसी राज्य विशेष अथवा भाषा विशेष के कवियों ने तो मुख्य रूप से उसी प्रान्त के महा-पुरुषों का गुणगान करना, उसी राज्य के ऐतिहासिक सांस्कृतिक स्थलों का चित्रण करना उपयुक्त समझा, किन्तु संस्कृत तो सम्पूर्ण देश की भाषा थी, वह तो कोटि-कोटि भारतीयों का प्राण

थी,फिर उसकी धारा कुनदीवत् संकुचित होकर कैसे प्रवाहित हो सकती थी । वह तो भगवती भागीरथी के विशाल प्रवाह के समान अपने सम्पूर्ण वेग से प्रवाहित होती रही है । प्राचीन काल में कवि जहाँ नायक नायिका के प्रणयगीत गाने में अपनी कविता की सार्थकता समझते थे वहाँ स्वातन्त्र्योत्तर युग के कवियों ने प्रेयसी के नूपुरों की मधुर ध्वनि न सुनकर सब ओर से देशभक्ति के स्वर को ही सुना । सन् १९४७ से लेकर अद्यावधि संस्कृत भाषा में सहस्रों काव्य ग्रन्थों की रचना हुई जिनमें अनेक उत्कृष्ट महाकाव्य, नाटक, गीति काव्य, चम्पू काव्य आदि सम्मिलित है । पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों निबन्धों और कविताओं का तो कहना ही क्या है । इस बृहत् साहित्य का प्रधान स्वर राष्ट्रीयता का ही रहा है । कतिपय उदाहरणों से इस सत्य को पुष्ट करना चाहूँगा । गुरुकुल वृन्दावन के यशस्वी स्नातक महाकवि द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री ने एक महाकाव्य की रचना की जिसका "स्वराज्यविजयं महाकाव्यं" नाम ही इस सत्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि काव्य में राष्ट्रीयता की भावना कूट-कूट कर भरी होगी । कवि का जन्म, शिक्षा, दीक्षा सब उत्तर प्रदेश में हुए किन्तु उसका अनुराग भूमि के कण कण से है । वह सम्पूर्ण देश को एक अखण्ड राष्ट्र मानकर काश्मीर के प्रति अपने भावसुमन समर्पित करते हुए कहता है-

अस्ति स्वस्तिसमा समस्तसुषमाऽलंकारभूता भुवः
या साक्षात्सुषमैव विग्रहवती संसारसारोपमा ।
यत्रोत्तुङ्गतरङ्गकोमलरवा कल्लोललीलाकुलाः
स्वच्छन्दाः परितो वहन्ति विततास्ते निर्मला निर्झराः ।।

कश्मीर की प्राकृतिक सुषमा,वहाँ की रमणियों का अनवद्य सौन्दर्य प्राचीन काल से संस्कृत कवियों का ध्यान आकृष्ट करता रहा है । यह कवीन्द्र भी वहाँ की ललनाओं के हृदयहारी सौन्दर्य का वर्णन हुए कह उठता है-

कस्तूरी तिलकं ललाटपटले, नैषा मृगांकच्छविः
आभा या मुखमण्डले हृदयजा सैवास्ति नेन्दुद्युतिः ।
भ्रान्त्या किं ग्रसितुं ममाननमहो ! राहो ! समुद्वेल्लसि
यत्रेत्थं प्रमदाजनः स्ववदनं राहोर्ग्रहाद्रक्षति ।।

कवि महाराष्ट्रकेसरी बालगंगाधरतिलक, गुजरात की भूमि के अमररत्न महात्मा गान्धी, पंजाब के अमर सपूत लाला लाजपतराय,बंगाल के महान् क्रान्तिकारी नेता जी सुभाष आदि महापुरुषों के गौरव गान में सुध-बुध खो बैठता है । उसकी आँखों में केवल अखण्ड भारत का दिव्य मानचित्र है । देशभक्तों का आह्वानं करते हुए कवि कहता है-

प्रियदेशभक्ता ! मम भारतीया ! इदं स्मृतेः पत्रमपि स्वचित्ते।
विधाय नित्यं प्रियमातृभूमेः नमत्प्रणामानुररीकुरुध्वम् ।।

संस्कृत का कोई कवि ऐसा नहीं होगा जिसको नगाधिराज हिमालय और पतितपावनी भागीरथी ने आकृष्ट न किया हो । ये हमारी राष्ट्रीय एकता के जाज्वल्यमान प्रतीक है । 'गान्धीचरितम्' के रचयिता आचार्यप्रवर ब्रह्मानन्द शुक्ल गंगा आदि सरिताओं का और रामायणी कथा का गुणगान करने में अपनी वाणी को सार्थक करते हैं । कवि वरेण्य डॉ० वर्णेकर स्वातन्त्र्य वीरों का आह्वान करते हुए प्रातः सायं भारतमाता की आराधना का ही सदुपदेश देते हैं-

आसिन्धु सिन्धुपर्यन्तां निःसपत्नां निरीतिकाम् ।
धर्मसंस्कृतिसम्पन्नां ध्यायेद् भारतमातरम् ।।

आधुनिक युग के संस्कृत कवियों ने भारत देश की देवता के रूप में वन्दना की है । माँ भारती के अमर सपूत डॉ० रमाकान्त शुक्ल की देश प्रेम में डूबी हुई कविता 'भाति मे भारतम्', 'भारतजनताऽहम्' 'अहं स्वतन्त्रतां भणामि' किस भारतवासी के हृदय में राष्ट्रभक्ति की भावना संचरित नही करती । डॉ० रमाकान्त शुक्ल की दूरदर्शन पर प्रस्तुत 'भाति मे भारतम् 'नामक रचना, जिसे करोड़ों देशवासियों ने श्रद्धापूरित अन्तःकरणों से देखा और सुना, संस्कृत साहित्य गगन में सदैव अमर रहेगी और देशवासियों के हृदय में राष्ट्रभक्ति की उत्कट भावना को जगाती रहेगी । कवि का प्रत्येक पद्य और उसका प्रत्येक शब्द हृदयस्पर्शी है । भारतवर्ष का गौरवपूर्ण अतीत और वर्तमान इस कृति के श्रवण मात्र से नेत्रों में जगमगाने लगता है । भारतवर्ष ने सदा विश्वबन्धुत्व का सन्देश मानव मात्र को दिया है । ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' इस देश की मनीषा का मूल मन्त्र रहा है । महाकवि ने इस भावना को उद्बुद्ध करते हुए कहा-

विश्वबन्धुत्वमुद्घोषयत्पावनं,
विश्ववन्द्यैश्चरित्रैर्जगत्पावयत् ।
विश्वमेकं कुटुम्बं समालोकयद्
भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।।

भारत की प्राकृतिक सुषमा एवं पवित्रता की श्रीवृद्धि में इस देश में कल-कल निनाद पूर्वक प्रवहमान सरिताओं का स्थान शीर्षस्थ है । गंगा, यमुना, आदि नदियों के

मनोहारी रूप को देखकर कवि की वाणी फूट पड़ती हैं-

जाह्नवी-चन्द्रभागा-जलैः पावितं

भानुजा-नर्मदा-वीचिभिर्लालितम् ।

तुगंभद्रा-विपाशादिभिर्भावितं

भूतले भाति मेऽनारतम् भारतम् ।।

महर्षि दयानन्द, महात्मा गांधी सदृश महापुरुषों को जन्म देने वाली गुजरात भूमि, स्वामी विवेकानन्द, योगी अरविन्द के जन्म से सुपावन बंग भूमि, नानक जैसे दिव्य पुरुषों की क्रीडास्थली पंजाब आदि राज्यों से भारत का ललाट सदा भास्वर रहा है। कविवरेण्य शुक्ल की ओजस्वी वाणी इस गौरव को इस प्रकार मुखरित करती है-

श्रीदयानन्द-गान्ध्युज्ज्वलं गुर्जरं,

स्वर्णवङ्गं विवेकारविन्दोज्ज्वलम् ।

नानकाद्युज्ज्वलं पञ्चतोयं दधद् ,

भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।।

यह देश धरती का स्वर्ग है । कोयल की कूक, भ्रमरों की मधुर गुंजार, मयूरों का नर्तन, शुकसारिका की मीठी आवाज सदा हमारे हृदयों को मुग्ध करते रहते हैं । कवि हृदय भी इस दृश्य पर झूम उठा और सहसा बोल उठा-

कोकिलैः कूजितं षट्पदैर्गुञ्जितं,

केकिभिर्नृत्यपारङ्गतैर्नादितम् ।

सारिका-कीर-वाद-प्रवादैर्युतं,

भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।।

प्रा0 एच0 ए0 शाण्डिल्य अपनी भारत-वन्दना नामक कविता में भारतीय एकता का कितना सुन्दर वर्णन प्रस्तुत कर रहे हैं-

यस्या वक्षसि भान्ति पूतपयसो गोदावरी-नर्मदा-

गंगा-सिन्धु-सरस्वती-प्रभृतयो नद्यस्तु पुण्याभिधाः ।

आसां रम्यतरे जनैर्विरचिता राजन्ति देवालयाः,

सैषा भारतवासिनां वसुमती भूयात्सदा वन्दिता ।।

यस्याः पादतलं समुद्रसलिलैराक्षाल्यते सर्वदा,

या गृह्णति सदा त्रिवर्णलसितामुच्चैर्ध्वजां संस्तुताम् ।

अंगेषु प्रतिभाति रत्नखचिता सिंहाधिरूढेव या,
सैषा भारतवासिनां वसुमती भूयात्सदा वन्दिता ।।

संस्कृत अकादमी, मध्य प्रदेश द्वारा प्रकाशित ''दूर्वा'' में राष्ट्रीय एकता का यह स्वर प्रो० श्री निवास रथ की रसमयी कविता में अपनी सम्पूर्ण भव्यता से मुखरित हो रहा है-

अनेक-भाषा-विचारधारा-धर्मकथा-पूजाऽनुरञ्जिता,
एकसूत्रतागुणविभूषिता भारतीयसंस्कार-संहिता,
विश्वशान्ति-सन्देशशालिनी, भवतु भूतले सदा विजयिनी,
अभयदायिनी भारतजननी ।

भारत माता के चरणों में अपने श्रद्धा सुमन समर्पित करते हुए कवि ने ऐसी रसमयी भावपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है, जो हृदय वीणा के तारों को झंकृत कर राष्ट्रीयता के भावों में डुबा देती है-

मातस्ते चरणारविन्दयुगलं वारान्निधिः सेवते,
बाहू ते विततौ परापरसमुद्रान्तस्तरङ्गस्पृशौ ।
मध्यालङ्कृतिमातनोति सततं सा विन्ध्यमालाऽखिला,
काञ्चीरिङ्गभङ्गिसङ्गतसरिल्लोलोर्मिमालाऽऽकुला ।।

शीर्षे ते मुकुटायते हिमगिरिः सर्वोन्नतस्तेजसा,
काश्मीरोद्भवकुङ्कुमेन तिलकं जागर्ति शोभाऽऽस्पदम् ।
सूर्याचन्द्रमसौ सदैव वहतस्ते कर्णपूरश्रियं,
मातर्निर्झरवारिमञ्जुलवपुर्मन्दस्मितं पातु नः ।।

इस देश का अतीत अत्यन्त गौरवशाली रहा है । इस देश में बोली जाने वाली विविध भाषा, वेशभूषा, सभ्यता, संस्कृति, गिरि, पर्वत, सरित, सागर आदि ने राष्ट्र की एकता को सुदृढ़ रखा है । प्रत्येक भारतीय स्वयं को तभी कृतकृत्य समझता है जब वह देश के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सभी दिशाओं में प्रवहमान गंगा, यमुना, गोदावरी, कावेरी आदि पवित्र नदियों में अवगाहन कर उनके पवित्र तटों पर स्थित देवालयों में अर्चना कर लेता है । वह इस देश के कण-कण को देव समझकर पूजा करता है और समय आने पर उसकी रक्षा में अपने प्राणों की हवि समर्पित करने में सदैव अग्रणी रहता है । कितना महान् है यह देश जहाँ वेदों का मधुर स्वर गूँजा,

जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता का उपदेश दिया, जहाँ वाल्मीकि,व्यास,कालिदास जैसे अमर कवि हुए । ऐसे देश में जन्म लेने वाले हम सब धन्य हैं । कवि का भारत के प्रति अगाध प्रेम दर्शनीय है-

वेदवाग्भासुरा यत्र विश्वम्भरा,
ऋग्यजुस्सामकाथर्वसंवर्धिता,
विश्वभाषासु या सर्वसम्मानिता,
देववाणी शुभा यत्र वाक्संस्कृता ।
यत्र वाल्मीकिना क्रौञ्चशोकाश्रुणा,
लोकवृत्ताद्भुतं काव्यमुद्भासितम्
व्याससम्पादितं यत्र गीताऽमृतं रक्ष
सर्वात्मना रक्ष तद् भारतम् ।।

कवि अपना तन, मन, धन, सब कुछ राष्ट्र देवता के चरणों में समर्पित करते हुए कह उठता है-

यत्र सूर्योदये यत्र चन्द्रोदये सान्ध्यपूजाक्रिया सर्वसाधारणी,
तत्र मे मानसं तत्र मे जीवनं भारतस्योदयायास्तु सर्वार्पणम्।।

जयतु भारतम् !

# NEW POETRY IN SANSKRIT

PROF. DEVA DATTA BHATTI

Modern Sanskrit poetry has undergone a tremendous change, during the last few years, its age long set traditions notwithstanding. Sanskrit traditionally has been bound strictly by undefiable rules of grammar and poetics, leaving every little scope for discretion of the author.

The Sanskrit grammar does not permit even a slight chnge in the language and in its structure. Similarly, the Sanskrit poetics, founded by Bharata and his predecessors, very vividly specified and limitised the areas of plot, nature, style and contents of Sanskrit poetry, which were religiously adhered to.There are differences with regard to the basic theories of poetry, but there is not much difference with regards to its outer form.

With the inception of new poetry or anti-poetry in English literature in the west the Indian English and the modern Indian languages started being influenced by the western wind. The infection caught Indian English first and the modern Indian languages, later. But the Sanskrit writings remained immune to this influence at least upto the seventh decade of the century, when grardually the new style of experimentalistic poetry overpowered the age long tradition. Consequently, some poets started composition of poetry in the novel style, fore saking the yoke of traditional rules, set by Bharata and others. The new style makes its emphatical appearance in the anthology of poem of the author of this paper, itself in seventies.

However, soon after the style finds acceptance with other eminent Sanskrit poets, notably Prof. Deva Datta Bhatti, Dr. Harsha Deva Madhava of Ahmedabad and Dr. Prashasya Mitra Shastri of Raie Bareli in India, in early eighties. But the world's first Sanskrit book in experimentalistic style named 'IRA' by Prof. Deva Datta Bhatti (author of this paper) Published from Delhi,

came in 1984, and the second book named 'SINIWALI' by the same author was publisehed from Agra in 1986. Both these books created a stir in the Sanskrit literary world and received recognition at national and inter-national levels. In addition to it, some miscellaneous writing in new poetry have appeared in the Indian press. Now we can add some more, in this context. To cap them there are Dr. Veda Prakasha Vidya Vachaspati of V.V.R.I. Hoshiarpur, Dr. Inder Mohan Singh of Panjabi University Patiala and Dr. Om Prakash Sharma of Sanskrit College Nabha.

The new style in Sanskrit poetry has blessings of the world stature Sanskrit scholars, traditionist and modern, like Pandit Charu Deva Shastri of Delhi and Pandit Vishwa Nath Shastri of Punjab, on the one hand and Dr. Satya Vrata Shastri of Delhi, Dr. Ram Chandra Dwivedi of Rajasthana, Dr. Dharmemdra Kumara Gupta and Dr. Shyama Deva Parashara of Panjab, Dr. Shiva Prasada Bhardwaja of Uttara Pradesha, Dr. Baldeva Singh of Himachala Pradesha and Dr. Mrs. Veda Kumari Ghai of Jammu and Kashmir, on the other. In fact, the recognition accorded to the new Sanskrit poetry is all due to the invaluable and willing patronage provided by these great scholars to it.

The pivotal role played by the agencies like the Govt. of Punjab, Languages Department, All India Radio and the magazines like 'Vishwa Sanskritam', 'Bharato-dayah' and 'Divya Jyotih' to promote and popularise the new style is highly commendable.

These scholars, agencies, magazines and thous-ands of admirers have the major share in shaping the destiny of new poetry. We Should be indebted to them for their dynamism and largeheartedness in recognising the new style.

Still the new poetry in Sanskrit is yet to make its impact on the Sanskrit world yet to prove its authenticity and worth, as at present it is passing through the pangs of its birth. The fact that some scholars are criticising the new poetry, vigorously, can not be ignored.

Now ultimately, what necessitated the dawn of new

style on the romantic horizons of Sanskrit poetry, is some thing that requires deep insight. The birth of this novel style lies deep in the seed of modern age, wherein there are no kings, queens, princesses, palaces, pools, forests, gardens and there is no liesure and relevance to talk of moon, moonlight, wine and women and their limbs, when we are in grip of terrorism and lead a tense and uneasy life. The modern man is in no mood to swing with the romantic ropes, particularly when he is destined to starve. The un-employment, poverty, aimlessness and lack of moral and national character have lead him to utter disgust and despair. Consequently, the classical subjects, objects, codes and charaters and the standatrds of comparison have faded away and lost relevance for him. He is now faced with problems. His mind is packed with new ideas born of the new scientific and technological developments around him. He faces a grim challange from atomic and nuclear weapons and pollution. He has lost his mental peace.He fails to cope with the fast, competetive and artificial contemporary life. With all these things in the back ground he is at unrest to express himself on modern issues. This is why the age old values in Sanskrit poetry have been forced to yield to the new values. Thus, the new poetry took birth.

In the new style the maetres have no place, sense gets precedence over style. The labour hither to applied to maintain the metrical order rhyme and rhythm, is now applied to highten its sense and brighten its structure. The labour and attention to maintain and adhere to the rules of poetics is now spent and diverted to better expression and simple and able language.

For an experimentalistic poet, the physical beauty is no object and has no appeal. For him the lotus, the moon the mouth are merely objects alike. Every word has only one meaning, one shade and style. There is no problem of difficulty of language. There are no figures of speech like Shlesha, Virodha, Anuprasa and Yamaka. The simplicity and naturalness of language and expression have lead the reader to an easy and comfortable position.

There is no denying the fact that some sort of

obscenity has taken place in the new poetry in other languages. But fortunately in Sanskrit it has not stepped in so far. We should be careful to check such lapses. We should express ourselves on issues like social unrest, aimlessness, nationalism, loyalty, duty, mercy, co-operation, co-existence, co-hesion, brotherhood, common heritage and spirit of sacrifice etc. We should stop to preach issues like terrorism, communalism, regionalism and casteism etc. At the same time, we should not forget the old values enshrined in our priceless literature like Dharma (Righteousness), Ahimsa (Non violence) and Matribhubhakti (patriotism). In this way, we will be able to remove the stigma from Sanskrit literature of its being antique in form and content.

In modern poetry the standards of comparisons (Upamanas) have changed. The contents have changed. The old objects have lost utility and existence. They are irrelevant in the present context. In my 'IRA' and 'SINIWALI' I have composed poem on contemporary issues, like social evils, frustrations, social injustice, corruption, exploitation, hollowness and duplicity of man.

Regarding the size of new poetry, the western literary view seems to preavail that it is much more difficult to write a good long poem then to write a good short one. I, along with other new poets, beg to differ with this belief. In my humble view the size of a poem in new style must be short or normal. It must not be lenghty. People have no time to read voluminous poems. We should be pithy and crisp. It is rather a test for an author to show brevity. Moreover a poem should not only be good, but as far as possible perfect in itself, with not a single syllable dispensable and out of tune. Patanjali, the greatest interpretter of Panini, wrote "The grammarians feel the thrill of a son's birth over reducing a part of a syllable".

ARDHAMATRA LAGHAVENA PUTROTSAVAM MANYANTE VAIYAKARANAH.

To me lengtthy poems are a sign of uncontrollable thoughts of the poet, whereas the short poems are indicative of his command and control over the

language.

The new poetry in Sanskrit is generally short and meaningful. It has no room for idle description and futile narration.

In his poem- IRA the aurthor has successfully expressed an ocean of irrepressible thoughts in one line along-----

"UDVELLITE CHA BHAVABDHAU IRA ME SARGALA KRITA"

In his another poem Kargala he has revealed his revolting mind----"KARGALA ! KATHAM TVAM VIVARNAH !" O piece of paper ! Why have you grown pale? Is it on seeing my radient face ?

There is a narration of racing life in the poem 'PRACHI-PRATICHYAU'. One friend says to another------

"MAMOPALABDHIRASTI-------SAMACHARPATRANAM PRATHAMA PANKTI,PARAM ME SHVASAH AYASTAH, VAPUSTRUTYATI."

Friend: my achievement is to be the frontline of newspapers but I feel bodyache and I pant.

Similarly other poems of 'IRA' like Antarvatni, Daridrata, Pathitah-Pathah, Mookabhasha, Pratikshe-Tavottaram, Sarvakarasya Samagri, Kranti etc. raise slogan of revolt and challange against social injustice, inequality and corruption in society.

In 'Siniwali' also, poems like Bhratarah, Janasammardah, Adhunikah, Vayam, Koyam Yugah, Asthavasheshah, Ahutih, etc, reveal the bitter reaction of the poet against terrorism and blood suckers of society.

In a poem, Krayah, I have referred to the falling standards of morality in man-------

SATYASANDHATVAM NISHTHAM NIRVYAJATVAM ARJAVAM CHA KRETUM ICCHHASI CHET ? KRINIHI KUKKURAM EKAM MANAVESHU NEDAM LABHYATE.

If you want to buy sincerety, loyality, honesty and simplicity, buy a dog, since all this is missing in man.

There is another poem Vayam ----------

ASHLILA CHITRABHANJI PUSTAKANI SMO VAYAM,

YANI GITA VARANENA PARIVRTITANI SANTI

We are like a blue book with a wrapper of Gita.

There is a poem-Prema in SINIWALI where love is defined as fountain of self beauty and a beautiful translation of the language of mind---------

PREMA ATMASAUNDARYASYA UTSAH

MANASO BHASHAYAH CHA MADHVANUVADAH,

Referring to the disintegration among men, I remarked in my poem-7 in Siniwali-------

PRANTANAM MITHAH SAMVADAH DESHO BHAVATI,

KIM VAYAM VADAMAH ?

The states talking to one another is a country. Do we talk ?

There is a lack of foresight at the helm of affairs. So I have requested foresight to go to the Red Fort on August 15 (Independence Day of India) there will be a hero for her to cap.

YAHI SHONADURGAM, AGASTAMASASYA PANCHA DASHEHANI, PRATARAVRINISHVA VARAMEKAM.

(Poem-1, Siniwali)

There is another poem number eleven in Siniwali-

APADAH APAH SANTI, MANAVAH YAVAD APAD-GRASTO BHAVATI TAVAT SWACCHHO BHAVATI APADI AKROSHAH BALIMA KHALU APADASTVAPAH SANTI.

Meaning that calamitities are the water that cleanses man on whom it falls. So there should be no anger or bitter reaction when they come. They should be welcommed by all who want to be purified.

Dr. Harsha Deva Madhava in his poem–Sikatah tells that sand is not only sand but some thing more-

SIKATASU JALAM BHOOTVA KASYAPI VASASYAR-THAH-NIVASO ROMANAGARE YUDDHAM CHA POPENA.

SIKATASU GARBHASTHA- SHISHUVAT, SAMUDRAH SHWASITI.

SIKATASU JALASYA DUSVAPNAM HARINO

BHOOTVA PASHYET CHET KOPI:

He means that to live as water in sand is like living in Rome and keeping enmity with Pope. In sands, ocean lives like an embryo (foetus) in Womb. If one like a hind sees the baddreams of water in sands.

I have been able to cite only a few examples over here, because of the paucity of space. However, I would humbly request the galaxy of International scholars kindly to refer to my book 'IRA' and 'SINIWALI'and other random poems of others published elsewhers.

So in Sanskrit a gap of new poetry has been abridged. The Sanskrit having attained the status of mother of all languages (Idno-European) has now acquired a new status in the modern world literature.

I trust, the richness of Sanskrit will further prove its fertility and much more novel and fair form of literature will be forthcoming.

I further trust that this oldest and richest language will continue to lead the world langauges as in yore. Sanskrit has all the potentialities and worth to produce more and better varieties. Only the creative artist needs tapping this inexhaustible source.

# आधुनिकसंस्कृतवाङ्मयस्य वैशिष्ट्यम्

डा0 रमेशकुमार लौ

वाङ्मयं खलु लोकस्याप्रतिहतं चक्षुरित्यामनन्ति मनीषिणः। संसरति संसारे साहित्यस्यापेक्षितं लक्ष्यमुपजीव्यञ्च परिस्थितिवशात् परिवृत्तिमायाति। पुरा यथा रामायण-महाभारत-बृहत्कथा-त्रिस्रोतसा काव्यभूमयः प्रायः सेचिता आसन् नैवेदानीं तथा। अद्यत्वे तु नैके नूतना विषया उपजीव्यतापदमाप्नुवन्ति। स्वातन्त्र्यहेतोः प्रवृत्तमान्दोलनं राष्ट्रियभावानामभिवृद्धिमकरोत्, तेन भारतमहिमानं राष्ट्रनेतॄणां चरितानि चालम्ब्य बहुधा प्रवृत्तं संस्कृतकाव्यम्। अनेके संस्कृतकवयः स्वरचनासु सामाजिकपृष्ठभूमिम् अवातारयन्। विविधभावना एव प्रकटीकर्तुम् आविर्भवन्ति काश्चन गीतयः। केषुचित् प्रबन्धेषु यात्रावर्णनमधिक्रियते। अन्यभाषाणां प्रमुखाः कृतयोऽपि संस्कृतेऽनूदिता महिमानं भजन्ते तद्यथा गीताञ्जलेः, रामचरितमानसस्य, शेक्सपियररचितनाटकानाञ्च कृतानि संस्कृत-रूपान्तराणि। श्रीपरमेश्वर अय्यर महाभागेन भाषान्तरसूक्तीनां संकृत-पद्यरूपान्तरणं ''सदाशयसमुच्चये'' विधीयते। व्यङ्ग्यमपि नूतनरूपेण पुरस्क्रियते। यथा श्रीमदुमाकान्तशुक्लेन स्वकीये परीष्टिदर्शने सूत्र-विवृतिशैल्या अनुसन्धानप्रक्रियाया वर्तमानं सदोषं स्वरूपं विशदीक्रियते।

आधुनिकसंस्कृतसाहित्यं प्राचीनपद्धत्या नवीनपद्धत्या चोभयथा-विविधं प्रवर्तते। तद् यथा महाकाव्येषु रामचरितमाश्रित्य 'सीताचरितम्' (रेवाप्रसाद द्विवेदी) 'जानकीजीवनम्' ('अभिराज' राजेन्द्रमिश्रः) सुगम-रामायणम् (रमेशचन्द्रशुक्लः) शिवाजीमधिकृत्य 'क्षत्रपति-चरितम्' (उमाशंकर शर्मा) 'शिवराज्योदयम्' (श्रीधरभास्करवर्णेकरः) जवाहर-लालनेहरुम् अङ्गीकृत्य 'श्रीनेहरूचरितम्' (ब्रह्मानन्दशुक्लः) 'जवाहर-ज्योतिः' (रघुनाथप्रसादःचतुर्वेदः) 'नेहरूयशःसौरभम्' (गो0 बलभद्र

प्रसाद शास्त्री) भारतमाहात्म्यम् आलक्ष्य 'पूर्वभारतम्' (प्रभुदत्त स्वामी), 'विशालभारतम्' (श्यामवर्ण द्विवेदी) 'स्वराज्यविजयम्' (द्विजेन्द्रनाथः), अन्येषु तावत् 'श्रीतिलकयशोऽर्णवः (माधव श्रीहरि अणे), 'विश्वभानुः'- स्वामिविवेकानन्दस्य चरितम् (पु० कृ० नारायण पिल्लै) 'लेनिनामृतम्' (पद्म शास्त्री), 'क्रिस्तुभागवतम्' (पी० सी० देवस्सिया) 'गणपति-सम्भवम्' (प्रभुदत्त शास्त्री) 'थाईदेशविलासम्' (सत्यव्रत शास्त्री)- 'गोस्वामितुलसीदासचरितम्' (हरिप्रसाद द्विवेदी), 'अमृतमन्थनम्' (स्वयंप्रकाश शर्मा) इत्यादीनि । एतानि तावत् प्रायेण १९६० उत्तरम् एव प्रकाशितानि । एतत्तु दिङ्मात्रोदाहरणम् । स्फुटमेव संस्कृत-काव्यरचना इदानीन्तनीषु प्रतिकूलास्वस्थास्वपि परिमाणदृष्टया वस्तु-निवेशदृष्ट्या वा सातिशयतां भजते इति !

खण्डकाव्येषु मुक्तकेषु वा आधुनिककवीनां सामयिकभावनाः सुतरां सम्मुखमायान्ति । श्रीजगन्नाथपाठकस्य 'कापिशायनी' गज़ल-रुबायी-आदिरीत्या प्रणयभावानां किमपि माधुर्यमातनोति । तद्यथा -

''वंशं पृच्छ धनञ्च पृच्छ सुतरां विद्यामितः पृच्छ वा
यत्किञ्चिन्मयि तद् वदामि न ततः सङ्कोचलेशो मयि ।
किन्त्वेतत्परिपीडितं नु हृदयं लब्धं मयाहो कुतो
मित्रैतत्कृपया न पृच्छ शतशः प्राणैरिदं रक्षितम् ।''

प्रो० उमाकान्तशुक्ल-कृत 'मङ्गल्या' काव्ये आर्यासु नूतनोपमानानि विचित्रा भावभङ्गिमाश्च श्रुतिपथमायान्ति । तद्यथा-

'हस्ते चषकश्चषके मदिरा तस्यां च वीक्षितं मदिरम् ।
रचयसि भाग्यमहो मे रसिके मदिरास्रजः सर्वाः ।।'

तस्यैव 'चाङ्गेरिका' नामकाव्ये नवीना अन्योक्तयः विभावनीयाः सताम् । अन्यान्यपि कानिचित् काव्यान्यत्र उल्लेखनीयनानि- ''गीतिकादम्बरी'' (अमीरचन्द्र शास्त्री), 'अन्योक्तिस्तबकम्' (श्रीकृष्ण सेमवालः), ''स्फूर्ति-सप्तशती'' (शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी)

'सुरश्मिकाश्मीरम्' (श्री सुन्दरराजः) 'भाति मे भारतम्' (रमाकान्त शुक्लः) इत्यादीनि ।

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' इति श्रूयते । आधुनिककवीनां तत्र कषणे विशेषः आग्रहो दृश्यते । तत्र 'लघुकथा'-'उपन्यास'-'ललित निबन्ध' - 'संवाद'- 'यात्रावर्णन' - 'व्यङ्ग्या' दयः अभिनवा प्रवृत्तयः स्फारीभवन्ति । पं० अम्बिकादत्तव्यास- पं० क्षमाराव-भट्टमथुरानाथ-शास्त्रि आदिभिः उपन्यास-कथादीनां रचनाविधीनां या प्रवर्तना कृता तस्याः सम्यङ् निर्वाहो विधीयते अद्यापि । किञ्चित् परिगणनमत्र समुचितं तद्यथा- 'दयानन्दर्षिचरितम्' (विद्यानिधि शास्त्री) 'कुमुदिनीचन्द्रः' (मेधाव्रताचार्यः) 'कुसुम-लक्ष्मीः' (आनन्दवर्धन रत्नपारखी) 'कौमुदी-कथाकल्लोलिनी' (रामशरण त्रिपाठी), 'द्वा सुपर्णा' (रामजी उपाध्यायः), 'करडीशचरितामृतचम्पूः' (कन्दगल्लपर्वतसुधी) इति । निबन्धेषु च 'प्रबन्धमञ्जरी' (हृषीकेश भट्टाचार्यः), 'सेतुयात्रावर्णनम्' (टी0 के0 गणपतिशास्त्री)' 'पूर्णकुम्भः' (विष्णुकान्तशुक्लः) इति ।

विंशशत्या आदित एव संस्कृतनाटकेषु राष्ट्रियभावानामुद्भावनं भारतदुर्दशाचित्रणञ्च मुख्यरूपेण दरीदृश्यते । तदानीन्तनकविषु पं0 मथुरा-प्रसाद दीक्षितः (तस्य 'वीरप्रतापम्' 'भारतविजयम्'), महालिङ्ग शास्त्री ('कालिप्रादुर्भावः'), विष्णुपादभट्टाचार्यः ('काञ्चनकुञ्चिकम्'), कालीपद तर्काचार्यः ('दस्युरत्नाकरम्'), श्री0 भि0 वेलणकरः (स्वातन्त्र्य-लीलानाटकम्') इत्यादयः अन्यतमाः । आधुनिककविषु डा0 यतीन्द्र विमल-चौधुरीमहोदयस्य संस्कृतनाट्यनिधिसम्भरणे योगदानं सुवर्णाक्षरैरुट्टंकनीयम् । लोकेषु संस्कृत-नाटक-प्रचलनार्थम् डा0 वे0 राघवन्-महाभागः श्लाघ्यम् अतिविशिष्टं यत्नं समपादयत् ।

अन्यसंस्कृतकाव्यभेदानां तुलनया नाटकानां ग्रन्थरूपेण स्वतन्त्र प्रकाशनं नितरां न्यूनम् । दृश्यकाव्यत्वात् प्रयोगाभाव एव व्यक्तमत्र कारणम् । किन्तु संस्कृतपत्रिकाषु नाटकानां पर्याप्तं स्थानं दृश्यते । तदिहाभिनवनाटकप्रवृत्तीनां परिचयाय 'संस्कृतप्रतिभायाः' कतिपयाङ्केषु प्रकाशितानाम् समीक्षितानां वा नाटकानाम् उल्लेखो निदर्शनमात्रमिति विधीयते-

## (क) पौराणिकवस्तुपराणि नाटकानि-

'शिविवैभवम्' (जग्गुशिङ्गरार्यः , १९६१)

'पद्मावती' (कोलाचल य० ना० दीक्षितः, १९६८)

'मणिहरणम्' (जग्गुबकुलभूषणः, १९७३)

'कामशुद्धिः' (वे० राघवः, १९६४, आकाशवाण्या प्रसारितम्)

## (ख) ऐतिह्यवस्तुपराणि नाटकानि-

'श्रीशिववैभवम्' (वि० या० बेकिल्,१९६७)

'चाणक्यविजयम्' (विश्वेश्वर विद्याभूषणः, १९६७)

'बंगलादेशविजय-' व्यायोगः (पद्म शास्त्री, १९७३)

## (ग) लघूनि संगीतपराणि नाटकानि -

'कुचेलवृत्तम्' (देवकी मेनन्, १९६१, पाश्चात्त्य ओपेराशैल्या गीतात्मकसंवादपरम् ।)

'विद्युन्माला' (को० ल० व्यासराज शास्त्री, १९६४)

'शूर्पणखाभिसारम्' (वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्यः, १९७3)

## (घ) नूतनकल्पितवस्तुपराणि नाटकानि-

'विवाहविडम्बनम्' (श्रीजीवन्यायतीर्थः,१९६१)

'शक्तिशारदम्' (यतीन्द्रविमल चौधुरी, १९६१)

'सनातमधर्मसर्वस्वम्' (सदाशिवतीर्थः, १९६४)

'कालिदास-महोत्साहम्' (हरिरामचन्द्रदिवेकरः १९६५; भारत-दशावलोकनार्थं कालिदासमहोत्सवे स्वयं कालिदासस्यागमनमत्र वस्तु।)

'नारीजागरणम्' (श्रीगोपालशास्त्री, १९६८)

'मेघदूतोत्तरम्' (श्री० भि० वेलणकरः, १९६८)

'भूपो भिषक्त्वं गतः' (गणेश शास्त्री लोण्ढे, १९६८)

'रत्नाङ्गुलीयकम्' (विघ्नेश्वर शर्मा, १९७२)

'रहस्यमयी' (नाटिका-के0 रा0 जोशी, १९६९)

संस्कृत-नाट्यप्रयोगे दिल्लीस्थया देववाणी-परिषदा प्रतिवर्षं संस्कृत-संगीतनाटकसमारोहरूपेण स्तुत्यः प्रयासो विधीयते, तत्र डा0 रमाकान्त-शुक्लमहाभागस्य 'पण्डितराजीयम्' 'पुरश्चरणकमलम्' इति नाटकद्वयस्य नयीदिल्लीस्थ-श्रीराम सेण्टराख्ये प्रेक्षागृहे मनोहारी अभिनयः मञ्चितः (द्र0 अर्वाचीनसंस्कृतम् ६. १. १९८४) । एतदतिरिक्तं डा0 रमाकान्त शुक्लस्य 'पण्डितराजजगन्नाथस्य' १२-१२-१९६९ तारिकायां तथा ७-८-१९७० तारिकायां, 'दाराशिकोहस्य' २७-३-१९७० तारिकायां, ' चक्रानुसरणस्य १९.६.१९७० तारिकायाम्,- 'चक्रव्यूहस्य' ११-१२-१९७० तारिकायां, 'विक्रमोर्वशीयस्य' १-३-१९८३ तारिकायाम् 'आलोकिनी' त्यस्य च ध्वनिरूपकस्य २९-१०-१९८९ तारिकायां प्रसारणमभूत् । एतेषा-ध्वनिनाट- कानां प्रकाशनमर्वाचीनसंस्कृते जातम् ।

आधुनिकनाटकेषु नाट्यशास्त्रनियमानां पालनं पञ्चसन्धि-समन्वग्रादिकं न दृश्यते । प्राकृतभाषाप्रयोगोऽपि परिहृतः । प्रायेण स्थान-कार्य-दशान्वितयः परिपाल्यन्ते । रेडियो-दूरदर्शन-द्वारा संस्कृतनाटकप्रयोगस्य भूयान् अवकाशः विद्यते ।

प्रायो विंशतिसंख्याकासु संस्कृतपत्र-पत्रिकासु सततं प्रकाश्यमानं साहित्यमुपचितिमातनोति । तत्र समाचाराः, सामयिकचर्चाः, सम्पादकीयानि, श्रद्धाञ्जलयः, संस्मरणानि, बालकथाः, विनोद-कणिकाः इति विविधरीत्या प्रवहति साहित्य-सरित् ।

एतयातिसंक्षिप्तालोचनया सष्टमेवेदम् आधुनिके युगे संस्कृत- प्रयोगे रचनाकौशले च देशकालानुरूपमेव साहित्यम् इति । लौकिक-भाषाणाम् अपेक्षया न किञ्चिदपि परिहीयते तत्र यत्तु स्पृहणीयम् ।

# आधुनिकसंस्कृतकाव्यस्य प्रगतिशीलत्वम्

डॉ0 श्रीनिवास मिश्रः

संस्कृतसाहित्ये ये सन्ति वेदाः, वैदिकसाहित्यम्, पुराणानि, महाकाव्यानि, नाटकानि, कथासाहित्यं वा प्रायः सर्वत्र प्राचीनवादिता, पुरातनविचाराः, परंपरां प्रति बद्धमूलता दरीदृश्यते । साहित्य-शास्त्रपण्डितैः आचार्यैः याः व्यवस्थाः ये च नियमाः निर्मिताः तानधिकृत्यैव महाकाव्यानि रचितानि, नाटकग्रन्थाः लिखिता, कथासाहित्यञ्च निर्मितम् । नाटकेषु च प्रायः राज्ञाम्, अधिनायकवादिनां प्रभूणां, स्वामिनामुच्चवर्गाणाञ्च चरितानि, वैभवविलासाः, विक्रमणानि प्रणयलीलाः वा प्रभूतेन वर्णिताः । कांश्चित् कवीन् विहाय प्रायः सर्वेषामेव ईदृशी स्थितिरदृश्यत ।

किन्तु आधुनिककविगणैः 'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्' इत्यादि कालिदाससरणिमनुकुर्वद्भिः पुराणपरंपरामनपेक्ष्य. 'साहित्यं समाजस्य दर्पणं भवती' ति सिद्धान्तमनुसरद्भिः स्वकीयेषु काव्येषु आधुनिकाः विचाराः वर्तमानसमस्याः, जनचेतनाः राष्ट्रीयभावनाः, नारीजागरणं, सर्वहारासंस्कृतिः, देशभक्तिः, भावात्मकैकता इत्यादयो विविधाः विषयाः समावेशिताः । वर्तमानसमये देशे विविधाः सामाजिक-आर्थिक-राष्ट्रीयसमस्या अहर्निशं समस्तमपि राष्ट्रं व्याप्य स्थिताः संतिष्ठन्ति । अत एव काव्यमपि तत्परं कवयोऽपि तद्विचारकाः इति नास्त्याश्चर्यम् । डा0 श्रीधरभास्कर वर्णेकरः, श्री ब्रह्मानन्दशुक्लः, डा0 रमेशचन्द्र शुक्लः, डा0 राजेन्द्र मिश्रः, डा0 रेवाप्रसाद द्विवेदी, डा0 परमानन्द शास्त्री इत्यादीनां कवीनां काव्येषु एता एव राष्ट्रीयसमस्याः, वर्तमानजीवनदर्शनमालोक्यते।

अस्मिन्नालेखे द्वित्रिकान् कवीनधिकृत्य तेषां काव्येषु अत्यंतसंक्षेपेण

आधुनिकता, प्रगतिवादिता परिदृष्टा भविष्यति । प्रथमं तावत् श्री रेवाप्रसादद्विवेदिमहाभागानां 'सीताचरित' मधिकृत्य किञ्चिद्विवेचनीयम्। ग्रन्थारम्भ एव परंपराप्राप्तकाव्यप्रयोजनान्युपेक्षयता तेनोद्घोषितम्-

न यशसे न धनाय, शिवेतरक्षतिकृतेऽपि च नैव कृतिर्मम ।
इयमिमां भरतावनिसंस्कृतिं सुरगवीं च निषेवितुमुद्गता ।।

(सीताचरितम्)

सीताचरितमहाकाव्यस्य नारीपात्राणि परंपरागतानि न सन्ति । अस्मिन् महाकाव्ये सीता न कस्यापि दयापात्रम्, नापि सर्वसहा । अपितु अन्यायं प्रति विद्रोहिणी, कर्तव्यं प्रति जागरूका स्वाभिमानिनी सीता वर्तते। राज्याभिषेकानन्तरं पुनः सीतापरित्यागकारिणं रामं भर्त्सयन्ती सीता कथयति-

किन्तु देव ! यदि सौख्यवारिभिः शीतमस्ति तव राज्यमक्षयम् ।
तेन मादृशविगीतवृत्तिना जन्तुना किमिह तापकारिणा ।।

(सीताचरितम्)

अस्मिन् महाकाव्ये आधुनिकनारीप्रतीकभूता सीता सरला, लज्जाशीला वधूरेव न, अपि तु स्वाधिकारान् प्रति सुदृढा, अन्यायं मर्दयन्ती स्वाभिमानवती सीता वर्तते । न केवलं सीता, अस्मिन् काव्ये उर्मिलापि मुखरा, विद्रोहिणी च दृश्यते । वनगमनसमये स्वयमपि वनं गन्तुमिच्छन्ती सा सीतां ब्रवीति-यद् भगिनि सीते ! निमिवंशकन्या इमाः यथा राजभवनमिदं सहैव आयातास्तथैव वनमपि सर्वाभिरस्माभिः सहैव गन्तव्यम् । इन्द्रियसुखापेक्षया यदि यशः श्रेष्ठं वर्तते तर्हि किमेतैः विभवैः? कण्टकापूर्णा भूरियमस्माकं माता, अस्माकं शरणम् । अन्यत्र पुनः विद्रोहिणी उर्मिला कथयति-यदि पुरुषो मर्यादामुल्लंघ्य आचरति तर्हि अबलापि सती नारी विश्वकल्याणाय प्रबला सबला च कथं न भवतु । अबलापि नारी सर्वं कर्तुं क्षमा । अतः सीताचरितप्रणेता महाकवि-रुद्घोषयति-

विपिनभुवि पुरत्वमत्र जज्ञे यदि किल केवलमेव रामपत्न्या ।

किमिव पुरपुरन्ध्रयो न कुर्युर्जनपदसीम्नि रुचिर्यदिं श्रमेषु ।।

(सीताचरितम्)

इत्थं नूतनमान्यताः नवीनप्रतीकाश्च सीताचरितमहाकाव्यस्य सौन्दर्यश्रियं द्विगुणमभिवर्धयन्ति ।

कविमूर्धन्यानामभिराजराजेन्द्रमिश्रमहाभागानां विविधेषु काव्यग्रन्थेषु नाट्येषु च वर्तमानसमाजप्रतिबिम्बनं बहुशः दरीदृश्यते । 'आर्यान्योक्तिशतके' मानवानुपेक्ष्य कुक्कुरान् (अल्सेशियन डाग) प्रति स्नेहपरान् जनान् प्रत्यपदेशेन व्यंग्योक्तिपूर्वकं निर्दिशति युवा कविः-

धन्या सा सदुपस्था सुरशुनकी सरमा न मनोर्भार्या ।

यन्मनुजैस्सेव्यन्तेऽनिशमिह तत्सुभगसन्ततयः ।।

(आर्यान्योक्तिशतकम्)

आधुनिकजनप्रतिनिधयः (एम0 एल0 ए0) जनानां कार्याण्युपेक्ष्य, तेषां हितानि निरादृत्य स्वार्थानेव केवलं साधयन्ति, तान् विधायकान् प्रति व्यंग्योक्तिः

कुरु कुरु तावदभीष्टं साधय स्वार्थं मन्त्रिपदमवाप्य ।

यावन्नास्यपदस्थो रे खल ! पल्लवय स्वकीयान् ।।

(आर्यान्योक्तिशतकम्)

यावत् स्वार्थसिद्धिर्भवति तावत्तत्साधकान् (स्वार्थसाधकान्) जनाः सम्मानयन्ति, पोषयन्ति, सत्कुर्वन्ति । स्वार्थसिद्धेरनन्तरं तान् स्वार्थसिद्धिहेतुभूतान् तिरस्कुर्वन्ति, उपेक्षयन्तीत्यहो प्राणिनां स्वार्थपरता !

दधिघृततक्रपयोभिस्तोषितवत्यनिशं सकलगृहं या ।

पश्य जरद्धेनुस्सा व्यर्थेति वधिकाय दीयते ।।

(आर्यान्योक्तिशतकम्)

इत्थं विविधैरन्यापदेशैः पूर्णमिदं काव्यं वर्तमानसमाजस्य अवस्थां

तस्य दोषानाविर्भावयति ।

अलीगढ़नगरस्थानां कविवर्याणां परमानन्दशास्त्रि - महाभागानां विविधानि काव्यानि अधुनातनज्वलन्तसमस्याभिरनुस्यूतानि, वर्तमान-जीवन- दर्पणपूर्णानि सन्ति । तेषां 'गन्धदूतम्' खण्डकाव्यमेव प्रथमं पश्यामः । मद्यपान-समस्या साम्प्रतं सम्पूर्णं समाजं विरूपं कुर्वती आस्ते । मेघदूतस्य सरण्यां विरचितेऽस्मिन् गन्धदूते काव्ये दिल्लीस्थं मद्यपमेकं परित्यज्य तस्य भार्या स्वमातृगृहे वाराणसीं गता वर्तते । द्रव्यसंपद्विलोपात् सर्वैः त्यक्तः स मद्यपः आत्महत्यां कर्तुमना एकस्यां पुष्करिण्यां सौम्यसुखदं परागपूर्णमामोदभरं कमलं ददर्श । तमेव कमलगन्धं दूतरूपेण परिकल्प्य स्वप्रियां प्रति वाराणसीं प्रेषयति । मार्गगतानां फरीदाबाद-मथुरा-आगरा-फिरोजाबाद-इटावा-कानपुर- इलाहाबाद-प्रभृतिनगराणां व्यवसायान् उद्योगान् प्राकृतिकस्थितिञ्चावलोकयन् स गन्धदूतः ज्ञानभूमिं काशीनगरीं प्राप्य मद्यपप्रियामनुनयति । 'गन्धदूत' काव्यमाध्यमेन कविना न केवलं मार्गस्थानां नगराणां विविधं लोकप्रियं वर्णनं कृतमास्ते अपितु समाजे सर्वदोषावहां जीवनसुखविनाशयित्रीं सुरां निन्दयता तेनोद्घोषितम्-

सम्पर्कादप्यहह वलवद् वारुणी तिग्मरश्मेः,
स्थानं रूपं हरति च महो मानवाः के वराकाः ।
वारस्त्रीवद् हरति सततं स्वास्थ्यमर्थं च तेषा-
माधिं व्याधिं विषममुपदां लाति चास्वादितैव ।।

(गन्धदूतम्)

दम्पत्योर्यद् विघटनकरं यत्र नाशो गृहस्य,
विश्वासस्य प्रतिनिरसनं दुर्गतिः शुभ्रकीर्तेः ।
त्यागः स्त्रीणां रतिरपि रुजां मङ्गलानां प्रवासः,
लोकोपेक्षा निकृतिरिति तन्मद्यमित्येव नाम ।।

(गन्धदूतम्)

इत्थं 'कान्तासम्मिततयोपदेशयुक्' रीत्या मद्यपानरूपं समाजदोषमुद्घाट्य तन्निकृतिरुपदिष्टा ।

अद्य 'कुर्सीमोहः' देशस्य समाजस्य च पतनावस्थायाः प्रमुखं कारणं वर्तते । एकदा भारतीयसंसदः, मन्त्रिपदस्य, विधानसभासदस्यतायाः वा देवदुर्लभं सौविध्यं सम्मानं सुखञ्च येन प्राप्तं तत्परिहर्तुं न कोऽपि स्वेच्छ येच्छति । परिहृतं वा पुनः पुनः अनुचितसाधनैरप्यधिगन्तुमिच्छति। आधुनिकनेतुः केवलं कुर्सीरक्षा एव प्रमुखो धर्मः, प्रधानं च कर्तव्यम् । 'कुर्सीरक्षार्थं' समाजं देशं शोषयन्नयं नेता किं किमकार्यं नैव कुरुते ! कानि कानि पापानि नैवाचरति ! मेघदूतस्यैव सरणिमनुसरता विरचिते 'वानरसन्देश' नामकेऽस्मिन् खण्डकाव्ये सत्ताभ्रष्टो कश्चिन्नेता वानरं दूतं परिकल्प्य पुनः 'कुर्सी' प्राप्त्यर्थं दिल्लीं प्रेषयति । 'कुर्सी'भ्रष्टो नेता स्वकीयं भाग्यं निन्दयन् प्रलपति-

यस्मात् कालान्मम विमुखतां भाग्यदोषाद् गतासि,
तस्मात् सर्वैरपि हि पयसो मक्षिकेवापनीतः ।
वार्ता कश्चिज्जगति कुरुते नापि पृच्छत्यहो मे,
नार्चन्तीह क्वचिदपि जनाः सूर्यमस्तं प्रयातम् ।।

(वानरसन्देशः, श्लोकः १४६)

'कुर्सीं' प्राप्तुं जनतासाहाय्यमावश्यकं किन्तु इदानीं मम मिथ्याभाषणैः क्रुद्धा भूता जनता न मां विश्वसितीत्युद्विग्नमनाः नेता कुर्सीं कथयति-

त्वामायातुं भवति जनता सेतुरस्मादृशानां,
मिथ्याघोषैः सततमियताऽनेहसा लालिता या ।
तोषं धत्ते न पुनरधुना भाषणाश्वासनौघैः,
काष्ठस्थाली पचति न हि भोः भूयसेति ब्रुवाणा ।।

(वानरसन्देशः, श्लोकः १६६)

अनेन माध्यमेन कविना मार्गस्थाः प्रदेशाः, नगराणि, तेषां सौन्दर्यं, दिल्ल्यां प्रविश्य गान्धेः समाधिः, शान्तिवनं, विजयघाटः इत्यादीनां

हृदयाह्लादि वर्णनं कृतं वर्तते ।

आपातकालानन्तरं यदा केन्द्रशासने कांग्रेसदलं पराजितं जनतादलञ्च (पार्टी) शासनारूरढमभवत् तत्कालीना राजनीतिक-सामाजिकदुर्दशा महाकविना परमानन्दशास्त्रिणा स्वकीये 'जनविजयं' नामके महाकाव्ये सजीवं चित्रिता वर्तते । भारतीयजनतात्यन्तं बलवती वर्तते । मतदानमाध्यमेन सा कुशासनं दूरीकृत्य सुशासनं स्थापयितुं सक्षमा-इत्यस्ति वर्णनाविषयः 'जनविजय'-महाकाव्यस्य ।

इदानीमस्माकं देशः जातिवाद-क्षेत्रवाद-भाषावाद - प्रभृतिभिर्दोषैः-संकुचितः खण्डत्वं च प्रयातः । सर्वमेतद्दर्शं दर्शं दूयमानचेताः कविः 'भारत- शतकम्' नामके काव्ये चिन्तयति योऽस्माकं देशः 'शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः' इति सिद्धान्तमनुसरन्नासीत् स एवेदानीं जाति-धर्म-क्षेत्र-भाषादिरूपेषु विभक्तः सीदन्नास्ते-

अद्वैतं गवि पण्डिते शुनि गजेऽप्युद्घोष्य गीतागुरु-
रेकीभावमबोधयद् भुवि नृणां वैविध्यभाजामपि ।
जातिक्षेत्रकुलादिधर्मविषये मर्त्या विभक्ता मिथो,
हा ! सीदन्ति गतास्तथापि कलहं मुग्धास्तितिक्षां विना।।
(भारतशतकम्, श्लो0 ५७)

यस्मिन् देशे-'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' इति सिद्धान्तः प्रतिपालित आसीत् तस्मिन्नेव देशेऽद्य नारीणां का का दुर्दशा न भवति-

'पूज्यन्ते वनिता हि यत्र विबुधास्तत्रारमन्ते सदा'
यत्रासौ परिपालितो हि पुरुषैः सिद्धान्त आसीत् पुरा ।
मैत्रेयी-जनकात्मजा-द्रुपदजा-सावित्र्युमा-भारती-
गार्गीत्यादियशःप्रभाधवलितं राराजते भारतम् ।।
(भारतशतकम्, श्लोकः ७३)

संजातं स्खलनं गते तु दिवसे नार्यो बहु न्यक्कृताः,
पुसां दोषभराद् विपत्करमभूत् कन्यापितृत्वं ततः ।

नारी-शोषण-शीलभङ्ग-छलना लोभाद् वधूनां वधो
मर्त्याः किं नु चरन्ति नात्र दुरितं नारीषु हा ! साम्प्रतम्।।
(भारतशतकम्, श्लो0 ७४)

'चीरहरणम्' नामके महाकाव्ये द्रौपदी-दुर्दशा-माध्यमेन भारतीयनारीणां परम्परागतं दौर्गत्यं पुरुषाणाञ्च प्रभुत्वं विविधं वर्णितं महाकविना ।

अद्यतनसंस्कृतकाव्ये सर्वाधिकमहत्त्वपूर्णा वर्तते- 'सर्वहारासंस्कृतिः'। अस्माकं संविधानस्य केन्द्रीयप्रान्तीयशासनस्य चैष प्रथमो धर्मः यत्समाजे ये सन्ति निर्धनाः, श्रमिकाः, हरिजनाः उपेक्षिताः, अकिञ्चनास्तेषामुदरं भ्रियेत, ते प्राप्नुवन्तु देहाच्छादनार्थं वस्त्राणि निवासार्थमावासांश्च (रोटी,कपड़ा और मकान) । तेषां पीडितानां कृते सौहार्दं, सहानुभूतिः अद्यतनसंस्कृतकवितायाः प्रथमं लक्ष्यम् । अत एव स्वां कवितां संबोधयन निर्दिशति महाकविः परमानन्दशास्त्री -

कालस्ते कवितेऽस्त्यकिंचनजनं संसेवितुं साम्प्रतम्

'भारतशतकम्' काव्ये तेनोद्घोषितं यावत् पीडितानां हरिजनानं क्षुत्पीडितानां श्रमिकाणां, दुर्गतानाञ्च नारीणामुन्नतिर्नैव भविष्यति नै तावद्भारतसमृद्धिः सम्भवा-

ये केऽपि श्रमिकाः स्त्रियो हरिजना अर्थेन हीनाः जनाः,
कर्तव्यं प्रथमं तु कष्टहरणं तेषां समर्थैः सदा ।
शक्तिं स्वास्थ्यमियादनेन विधिना त्यागेन देशः सताम्,
अङ्गेष्वामयपीडितेषु किमपि स्वस्थं कथं स्याद्वपुः ।।
(भारतशतकम् श्लोकः ९९)

एतत्कथ्यते यदिदानीं देशे निर्धनो निर्धनतरो भवति धनिकश्च धनिकतर जायते । अत एव कश्चिदूयमानचेताः निर्धनो धनिकं नेतारं पृच्छति 'जनविजय' महाकाव्ये-

कियच्चिरं हन्त कियच्चिरं रे प्रवर्धते च क्षयति प्रकामम्
(जनविजयम्, १५/१६)

अस्माकं धर्मसंस्कृतिभाषाणामैक्येऽपि इमे नेतारः भेदमुत्पाद्य स्वार्थान् साधयन्ति । कश्चिद्देशभक्तः नेतारमेतदेव पृच्छति-

कियच्चिरं संस्कृति-धर्म-भाषा-जाति-प्रथा-वर्गविभेद-भावान् ।
उद्दीप्य लोकं विपथे विनीय स्वनेतृतायाः क्रियतेऽभिमानः ।
(जनविजयम्, १५/२५)

इत्थं स्पष्टमेतद् यदद्यतनसंस्कृतकाव्ये देशस्य समाजस्य चाधुनातनसमस्या उद्घाट्य तासां समाधानमपि निर्दिष्टं वर्तते ।

# आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र की प्रवृत्ति

डॉ० आनन्द कुमार श्रीवास्तव

संस्कृत साहित्य की धारा वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक निरन्तर प्रवहमान है। साहित्य के अङ्गभूत काव्य, दर्शन, व्याकरण आदि सभी क्षेत्र निरन्तर चिन्तन प्रवाह से समृद्ध हो रहे हैं। संस्कृत काव्यशास्त्र इसका अपवाद नहीं है। वह भी अन्य शास्त्रों की भाँति प्राचीन है। उसके बीज वैदिक वाङ्मय में दृष्टिगत होते हैं किन्तु स्वतंत्र शास्त्र के रूप में सर्वप्रथम हमें भरतमुनि का नाट्यशास्त्र ही उपलब्ध होता है। तदनन्तर काव्यशास्त्रियों की अविच्छिन्न परम्परा भामह, दण्डी, वामन, उद्भट, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, रुय्यक, विद्यानाथ, भोज, महिमभट्ट, कुन्तक, मम्मट, विश्वनाथ, हेमचन्द्र, जयदेव, क्षेमेन्द्र, राजशेखर, शारदातनय, भानुदत्त, रूपगोस्वामी, अप्पय दीक्षित, पण्डितराज जगन्नाथ के रूप में दिखायी देती है किन्तु पण्डितराज के पश्चात् का संस्कृत काव्यशास्त्र प्रायः अपरिचय के घनान्धकार में आच्छादित रहा। वस्तुतः सत्रहवीं शताब्दी के पश्चात् का संस्कृत साहित्य प्रायः उपेक्षित ही रहा है, उसका उचित मूल्याङ्कन नहीं हुआ। विशेषतः संस्कृत काव्यशास्त्र के क्षेत्र में पण्डितराज को अन्तिम मूर्धन्य आचार्य स्वीकार कर लिया गया और उत्तरवर्ती काव्यशास्त्र की समीक्षा नहीं की गयी।

प्रस्तुत सन्दर्भ में आधुनिक युग से तात्पर्य 'पण्डितराजोत्तर युग' से है। पण्डित राज के पश्चात् लगभग दो सौ आचार्यों ने काव्यशास्त्रीय मौलिक ग्रन्थों अथवा टीका ग्रन्थों की रचना की। जिस प्रकार भरत से लेकर पण्डितराज तक संस्कृत काव्यशास्त्र की अजस्र धारा प्रवाहित होती रही है, उसी प्रकार पण्डितराज के पश्चात् भी काव्य के विश्लेषण की अविच्छिन्न परम्परा दिखाई देती है। अनेक लेखकों ने काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया। कुछ ने काव्यशास्त्र के किसी अङ्ग विशेष का ही निरूपण किया तो कुछ आचार्यों ने प्राचीन अथवा अर्वाचीन ग्रन्थों की टीकायें लिखकर काव्यशास्त्र को जीवित रखने का प्रयास किया।

पण्डितराज के पश्चात् आचार्यों में काव्यशास्त्र लिखने की प्रवृत्ति पूर्वकाल की अपेक्षा अधिक दिखाई देती है। सम्भवतः इस युग में लक्षण ग्रन्थों की रचना ही विद्वत्ता का सूचक मानी जाती थी और इसी के द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त करना सम्भव

था । अत एव काव्यशास्त्र की रचना किसी नये सिद्धान्त की स्थापना के लिये नहीं की गयी अपितु 'बिना काव्यशास्त्र लिखे प्रतिष्ठा नहीं मिलेगी' केवल इस औपचारिकतावश ही काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों की रचना हुई । यही कारण है कि इन ग्रन्थों में प्रायः पिष्टपेषण ही उपलब्ध होता है ।

यह सुदृढ तथ्य है कि पण्डितराज के पश्चात् कोई भी ऐसा लेखक नहीं हुआ जिसे मौलिक सिद्धान्तों के प्रतिष्ठापक आचार्य भरत, भामह, वामन, आनन्दवर्धन एवं कुन्तक की श्रेणी में अथवा काव्यशास्त्र को समन्वित रूप प्रदान करने वाले मम्मट, विश्वनाथ एवं पण्डितराज प्रभृति आचार्यो की श्रेणी में रखा जा सके । किसी टीकाकार ने भी लोल्लट, शङ्कुक भट्टनायक एवं अभिनवगुप्त प्रभृति आचार्यो की भाँति कोई नयी व्याख्या नहीं प्रस्तुत की ।

प्रायः सभी लेखक अपने पूर्ववर्ती लेखकों से अधिकांश ग्रहण करतेहैं और उसमें परिष्कार कर अपने ढंग से नवीन रूप में प्रस्तुत करते हैं । यदि निष्पक्ष रूप से देखा जाय तो किसी भी आचार्य की स्वकीय उद्भावना अत्यल्प मात्रा में ही होती है । यदि आचार्य पूर्ववर्ती शास्त्रकारों का ही लक्षण प्रस्तुत करता है तो ठीक है क्योंकि लक्षण तो भिन्न नहीं हो सकते, किन्तु लक्षण की शब्दाबली उसकी विशदता, प्रस्तुतीकरण, यही लेखक का अपना होता है । पण्डितराजोत्तर आचार्यो के समक्ष लगभग दो सहस्र वर्षो का परिपक्व काव्यशास्त्र था । उन्होंने उसका मन्थन कर सार प्रस्तुत किया । अत एव पण्डितराज के पश्चात् काव्यशास्त्र की शब्दावली एवं प्रस्तुति अधिक सरल एवं विशद दिखाई देती है ।

पण्डितराजोत्तर आचार्यो का अनुशीलन करने पर कुछ सामान्य विशेषतायें दृष्टिगत होती हैं-(१) प्रायः सभी आचार्यों ने अपनी वंशावली,जन्म स्थान, निवास स्थान जन्मकाल, गुरु एवं अभीष्ट देव का उल्लेख किया है । फलस्वरूप आचार्यो के कालनिर्धारण एवं परिचय के लिए किसी बहिःसाक्ष्य की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

(२) आचार्यों ने काव्यशास्त्रीय तत्त्वों पर प्रायः परम्परागत ढंग से ही विचार किया है । कुछेक को छोड़कर उनमें आधुनिकयुगीन चेतना का अभाव सा परिलक्षित होता है । काव्यशास्त्रियों ने उसे आत्मसात् करते हुए विवेचन नहीं किया है ।

(३) प्रायः आचार्यों की ग्रन्थरचना का उद्देश्य 'बालबोधाय' रहा है ।[१] यही कारण है कि आचार्यों ने समीक्षा (खण्डन-मण्डन) शैली का आश्रय न लेकर सीधे लक्षण व लक्ष्य का स्वरूप उपन्यस्त कर दिया है और यह उचित भी था क्योंकि अनेक प्रकार से आलोचना होकर अब तक काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का स्वरूप पूर्णतः निर्धारित हो चुका था और पुनः शास्त्रार्थ में उलझने की आवश्यकता नहीं रह गयी थी ।

इसके विरीत कुछ प्रगाढ़ पाण्डित्य पूर्ण ग्रन्थ भी उपलब्ध होते हैं । विश्वेश्वर

पण्डित कृत अलङ्कारकौस्तुभ ग्रन्थ ऐसा ही है, जिसमें आचार्य ने नव्य न्याय की भाषा में अलङ्कारों का विवेचन प्रस्तुत किया। पण्डितराज ने रसगङ्गाधर में जिस नैयायिक भाषा का बीजारोपण किया वह विश्वेवर पण्डित में चरमोत्कर्ष पर दिखायी देता है। इसके अतिरिक्त अच्युतराय मोडककृत साहित्यसार भी प्रौढ काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है।

(४) पण्डितराज के 'निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपम्' प्रतिज्ञा ने परवर्ती आचार्यों को अत्यधिक प्रभावित किया है। प्रायः सभी आचार्य स्वरचित लक्षण के साथ-साथ स्वरचित लक्ष्य रूप उदाहरण भी प्रस्तुत करते हैं। इससे काव्यशास्त्र के साथ-साथ उनकी कविप्रतिभा का भी परिचय मिल जाता है और वे अनुरूपतम लक्ष्य उपस्थापित करने में भी समर्थ होते हैं। इससे पूरी कृति आचार्य की अपनी हो जाती है। स्वनिर्मित उदाहरण प्रस्तुत करने के कारण ही प्रायः आचार्य अपने नामों के आगे कवि शब्द का भी प्रयोग करते हैं। यथा नरसिंह कवि (नञ्जराजयशोभूषण), विद्याराम कवि (रसदीर्घिका), कृष्ण कवि (मन्दारमरन्दचम्पू) इत्यादि।

(५) आचार्य विद्यानाथ ने काव्यशास्त्र में 'यशोभूषण' की जिस परम्परा का श्रीगणेश किया था, वह पण्डितराजोत्तर युगीन आचार्यों की प्रवृत्ति के रूप में दिखाई देती है। काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का लक्षण लिख कर आचार्यों ने स्वरचित उदाहरणों में अपने आश्रयदाताओं का गुणगान किया है। इससे काव्यशास्त्र के साथ-साथ काव्य व नाटकादि का प्रणयन भी हो जाता है और एक ही पात्र के जीवन से समस्त उदाहरण देना, यह इन ग्रन्थों की बहुत बड़ी देन है। कुछ आचार्यों ने ग्रन्थ नाम अपने आश्रयदाताओं के नाम के आधार पर रखे, यथा-नञ्जराजयशोभूषण, रामवर्मयशोभूषण, बोधवर्म-यशोभूषण, यशवन्तयशोभूषण, रघुनाथभूपालीय, रामचन्द्रयशोभूषण इत्यादि। कुछ आचार्यो ने ग्रन्थ-अभिधान सामान्य रखे पर समस्त उदाहरणों में अपने आश्रयदाताओं की ही प्रशंसा की, यथा-अलङ्कारमञ्जूषा, अलङ्कारकौस्तुभ (कल्याण सुब्रह्मण्यकृत), अलङ्कारग्रन्थ, अलङ्कारकलानिधि, अलङ्कारनिकष, वृत्तालङ्कार-रत्नावली, गुणरत्नाकर, अलङ्काररत्नाकर, अलङ्कारमञ्जरी, शिवार्थालङ्कारस्तव इत्यादि। कुछ ने आंशिक रूप से अपने आश्रयदाताओं की प्रशस्ति की,यथा-काव्यविलास, प्रकाशोत्तेजिनी टीका। श्रीकृष्ण परब्रहमतन्त्र प्रभृति संन्याासी आचार्यो ने स्वरचित उदाहरणों में अपने अभीष्ट देव का ही गुणगान किया है।

(६) आचार्यों के ऊपर चन्द्रालोक एवं कुवलयानन्द का प्रभाव दिखाई पड़ता है। प्रायः आचार्य एक ही कारिका के पूर्वार्द्ध में लक्षण एवं उत्तरार्ध में लक्ष्य निबद्ध करते हैं। यथा-काव्यदर्पण, रसमीमांसा आदि।

(७) कुछ आचार्य महाकाव्यादि वाङ्मय के माध्यम से काव्यशास्त्रीय तत्त्वों

की व्याख्या करते हैं, यथा-मन्दारमरन्दचम्पू, रामोदयम् महाकाकाव्य (इलचूररामस्वामीकृत), रामसुन्दर-महाकाव्य (सुन्दरदेव वैद्यकृत) इत्यादि ।

(८) पण्डितराजोत्तर युग में अलङ्कारशास्त्र व नाट्यशास्त्र की दोनों भिन्न धारायें पुनः एक हुई सी दिखाई देती हैं । आचार्यगण कविराज विश्वनाथ की भाँति एक ही ग्रन्थ में अलङ्कारशास्त्र व नाट्यशास्त्र दोनों का ही समान रूप से निरूपण करते हैं । कृष्ण कवि ने तो मन्दारमरन्दचम्पू में अलङ्कार शास्त्र व नाट्यशास्त्र के अतिरिक्त छन्दःशास्त्र एवं कविशिक्षा का भी विवेचन किया है ।

(९) प्रायः आचार्यों ने अभीष्ट मत प्रस्तुत करने के अनन्तर अन्य पूर्वाचार्यों के मतों का भी उल्लेख किया है । इससे एक स्थल पर ही तुलनात्मक अध्ययन हो गया है ।

यह उल्लेखनीय है कि काव्यशास्त्र लिखने की प्रवृत्ति आधुनिक युग में भी किसी एक प्रान्त में नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष में दिखाई देती है। वैसे तो आधुनिकयुगीन सभी आचार्य पूर्वाचार्यों की अपेक्षा अल्पप्रसिद्ध अथवा अप्रसिद्ध ही प्रतीत होते हैं किन्तु कुछ आचार्य जैसे विश्वेश्वर पण्डित, अच्युतराय 'मोडक', आशाधर भट्ट, नरसिंह कवि, राजचूडामणि दीक्षित, भट्ट देव शंङ्कर 'पुरोहित', हरिदास सिद्धान्तवागीश, श्रीकृष्ण कवि, नागेश भट्ट, रेवाप्रसाद द्विवेदी, ब्रहमानन्द शर्मा आदि आधुनिक युग के सम्मान्य प्रतिनिधिभूत आचार्य हैं ।

---

१- अनायासेन बालानां रसास्वादनहेतवे ।
विद्यारामः करोत्येतां मनोज्ञां रसदीर्घिकाम् ।। रसदीर्घिका, पृ० १
बलरामेणाकाशं कलिन्दकन्या यथाऽऽनायि ।
गङ्गारामेण तथा रसमीमांसापि बालमनः ।। रसमीमांसा, पृ० १

# संस्कृत में अद्यतन हास्य-व्यंग्य साहित्य

डॉ० सुद्युम्न आचार्य

संस्कृत में अन्य रसों के साथ-साथ हास्य व्यंग्य प्रधान काव्यों तथा प्रबन्धों का भी प्रणयन होता रहा है। नाटकों में विदूषक के कथन तथा अन्य हास्य रस से आप्लावित रचनाएँ प्रायः दृष्टिगोचर होती रही हैं।

पर आधुनिक युग में हास्य प्रधान कविताओं ने संस्कृत जगत् को नया आयाम प्रदान किया है। संस्कृत के अनेक ख्यातनामा कवियों ने वर्तमान युग की समस्याओं तथा परिस्थितियों पर हास्य रचनायें लिखकर जन-मन को आकर्षित किया है। **'हासो विलासः खलु जीवनस्य'** इस उक्ति को ध्यान में रखते हुए आधुनिक घटनाओं का हास्य पूर्ण कथन अत्यन्त मनोरम तथा आकर्षक बन पड़ा है। आधुनिक युग में हास्य की प्रत्येक विधा, चाहे वह इंग्लिश की Satire या Parody हो अथवा हिन्दी का चुटकुला या व्यंग्य हो, इन सभी पर संस्कृत कवियों ने उत्कृष्ट रचनायें प्रस्तुत की हैं। राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि सभी पर ये कवितायें उपलब्ध हैं। प्राचीन कथा या इतिहास पर आधारित नवीन हास्य रचनाएँ तो हैं ही, नवीन विषयों पर भी ऐसी रचनायें कम नहीं हैं।

ऐसे कवियों तथा रचनाकारों में श्री म० स० आपटीकर, पं टी० वी० परमेश्वर अय्यर, डा० बाबूराम अवस्थी , डा० हरिदत्त शर्मा, श्री तेजोमित्र आचार्य, डा० रमापति मिश्र आदि अनेक विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं। डा० मिथिलेश कुमारी मिश्रा ने बृहद् राष्ट्रभाषा परिषद् (पटना) में अनुसन्धान कार्य करते हुए दर्जनों हास्य नाटक, एकांकी तथा कविता के द्वारा जनमानस को प्रमुदित किया है।

इसके साथ ही श्री वैद्य रामसरूप शास्त्री ने बालसंस्कृतम् पत्रिका के माध्यम से, श्री० भि० वेलणकर महोदय ने गीर्वाणसुधा के द्वारा, श्री दिवाकर शर्मा ने दिव्य ज्योति के द्वारा तथा श्री रामरत्न शास्त्री ने संस्कृतामृतम् पत्रिका के द्वारा स्वरचित तथा अन्यरचित हास्य रचनाओं के प्रकाश से निरन्तर संस्कृतजगत् की सेवा की है।

इसके साथ ही डा० रुद्रदेव त्रिपाठी (उज्जैन) ने 'मालवमयूर' पत्रिका के माध्यम से संस्कृत हास्य व्यंगय के क्षेत्र में अत्यधिक उल्लेखनीय कार्य किया है। उधर डा० वीरभद्र मिश्र (लखनऊ) 'सर्वगन्धा' पत्रिका में अपनी नवोन्मेषशालिनी

हास्य रचनाओं से सब के मन को आकर्षित करते रहे हैं। वास्तव में सभी विषयों में आपकी सूझ एवं विषयवस्तु को प्रस्तुत करने की कला अपने आप में बेजोड़ है। इनके साथ ही डा0 शम्भुनाथ आचार्य तथा डा0 इच्छाराम द्विवेदी भी इस क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य कर रहे हैं।

इस क्षेत्र में डा0 भास्कराचार्य त्रिपाठी सचिव, म0 प्र0 संस्कृत अकादमी, भोपाल का योगदान अत्यन्त श्लाघनीय रहा। आपकी 'कदर्थितोऽधिकारी' आदि हास्य रचनायें तथा 'अजातशी' खण्डकाव्य संस्कृतजगत् में अत्यधिक चर्चित हैं। आपकी ये रचनायें संस्कृत कविसम्मेलनों में बार बार सुनी जाती हैं।

डा0 वनेश्वर पाठक (राँची) की गम्भीर हास्य रचनाओं को गिनाये बिना इस विधा के विद्वानों की सूची कदापि पूर्ण नहीं हो सकती। उनके **'हीरोकाव्यम्'** आदि अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

इस विषय के अति प्रसिद्ध तथा समर्थ कवि डा0 राजेन्द्र मिश्र प्रयाग विश्वविद्यालय के योगदान को बार बार स्मरण करना आवश्यक है। आपके बिना कोई कवि सम्मेलन पूर्ण नहीं माना जा सकता। आपकी अनेक स्वरबद्ध काव्य रचनायें सुनने को बार बार जी चाहता है। हास्य क्षेत्र में 'चतुर्थीशतकम्', 'सुभाषितोद्धार शतकम्' 'नव्यभारतशतकम्' आदि काव्य तथा चतुष्पथीयम्, रूपरुद्रीयम् नाट्य-पञ्चगव्यम् आदि एकांकी-संग्रहों के दसों एकांकी डॉ0 मिश्र की हास्य व्यङ्ग्यकृतियों का सौष्ठव प्रदर्शित करते हैं।

इस क्षेत्र में सहृदय हृदय संवादिनी रचना के धनी डॉ0 रमाकान्त शुक्ल (दिल्ली) के कर्तृत्व को कौन नहीं जानता। आपकी अनेक रचनायें तथा पण्डित-राजीयम्, पुरश्चरणकमलम्, आदि नाटकों में उल्लिखित हास्य संस्कृत को पूर्णता प्रदान करते हैं। निश्चय ही अर्वाचीनसंस्कृत में आपके हास्य अनूठे हैं। तथा वर्तमान एवं भावी पीढ़ी के लिए अमूल्य निधि है। डॉ0 शुक्ल की पहचान यद्यपि समूचे राष्ट्र में 'भारतयशोगायक' के रूप में है तथापि उनकी कविताओं में यथावसर तीखे व्यङ्ग्यका पुट दीखता है। 'वदत नेतारो मनाक्' शीर्षक कविता तो प्रत्यक्षर दुस्सह प्रहार करती है।

हास्य-जगत् में डा0 प्रशस्यमित्र शास्त्री (रायबरेली) का योगदान भी कम नहीं है। आपने सभी विषयों पर हास्य रचनाओं के माध्यम से संस्कृत-जगत् की बड़ी सेवा की है। आपकी रचनाएँ 'गाण्डीवम्' आदि पत्रिकाओं में वर्षों से प्रत्येक अंक में प्रकाशित होती रही हैं तथा पाठक इसे बड़े चाव से पढ़ते रहे हैं। उदाहरण के लिए चुनाव के समय मतपेटिका पर यह रचना ध्यान देने योग्य है:-

दीनं करोति राजानं विद्वांसं मूर्खमेव च।
माहात्म्यं मतपत्रस्य को न जानाति भारते ॥

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् ।
राजयोगप्रदात्री सा नमस्या मतपेटिका ।।

प्रस्तुत लेखक की भाषाशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र जैसे विषयों पर बहुत सी गद्य एवं पद्य में हास्य रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं । इन गम्भीर विषयों पर हास्य अपने आप में एक अभिनव प्रयोग रहा है । इस विषय में **'अम्रितान्मा अमृतं गमय'** आदि गद्य तथा 'ब्रह्मचारी सभापति' आदि पद्य निदर्शन हैं । इनका संग्रह **'रोचन्तां शब्दभूमयः'** नामक पुस्तक में प्रकाशित है ।

# विमानकाव्यः बीसवीं शती की नवीन संस्कृत काव्य-विधा

'अभिराज' डा0 राजेन्द्र मिश्र

भारतीय-वाङ्मय एवं संस्कृति में विमान का प्रकरण अत्यन्त प्राचीन है । रामायण में पुष्पक का, श्रीमद्भागवत में सौभ तथा अन्यान्य पुराणों में ऋषियों-महर्षियों की तपश्शक्ति से निर्मित अनेक विलक्षण विमानों का हृदयग्राही वर्णन उपलब्ध होता है जिनकी विस्तृत चर्चा यथावसर की जायेगी । विमान शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में भी अनेकशः हुआ है, परन्तु वहाँ अर्थभेद है । द्वितीय मण्डल के ४० वें सूक्त में महर्षि गृत्समद सोम एवं पूषा का स्तवन करते हुए कहते हैं-

सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथविश्वमिन्वम् ।

विषूवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ।।

इसी प्रकार तृतीय मण्डल, तृतीय सूक्त के चौथे मंत्र में भी अग्नि की प्रशंसा करते हुए विश्वामित्र कहते हैं-

पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम्।

आ विवेश रोदसी भूरिवर्पसा पुरुप्रियो मन्दते धामभिः कविः ।।

प्रथम मंत्र में प्रयुक्त 'विमान' शब्द की व्याख्या करते हुए आचार्य सायण लिखते हैं-

विमानं परिच्छेदकं सर्वमानमित्यर्थः ।

दूसरे मंत्र के संदर्भ में सायण पुनः लिखते हैं-

विमानं विमीयतेऽनेन फलमिति विमानं यज्ञादिकर्मसाधनम् ।

उपर्युक्त मंत्रों में विमान शब्द क्रमशः रथ एवं अग्नि के विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ है । परन्तु उसका अभिप्राय विमान अथवा वायुयान के ही वैशिष्ट्य की ओर इङ्गित करता है । 'रजसो विमानं' का अर्थ है- लोकों को नापने वाला (सातवलेकर) 'वाघतां वयुनं विमानं' का भी अर्थ है- स्तोताओं के मार्ग को नापने वाला (सातवलेकर) ।

इस प्रकार वेदप्रयुक्त विमान शब्द का मूल तात्पर्य वही सिद्ध होता है जो आज लोकप्रचलित है अर्थात् मार्ग को नापने वाला ! अध्यात्म एवं कर्मकाण्ड परक अर्थ

तो भाष्यकारों द्वारा स्वमतपोषण के लिये भी निकाले जा सकते है । इसका अर्थ यह हुआ कि विमानन प्रक्रिया ऋग्वेदकाल में भी भारत में विद्यमान थी ।

कोष की दृष्टि से यह शब्द अनेकार्थक तथा उभयलिङ्गी (पुं०क्लीब) व्योमयान[१] देवयान तथा देवरथ शब्द विमान के पर्याय हैं । सार्वभौमगृह अथवा सप्तभूमिक गृह को भी विमान[२] कहते है । कालिदास दोनो अर्थों में विमान शब्द का अनेकशः प्रयोग करते हैं-

नेत्रा नीताः सततगतिना यद्विमानाग्रभूमी-

रालेख्यानां सलिलकणिकादोषमुत्पाद्य सद्यः ।। -उत्तरमेघ

भुवनालोकनप्रीतिः स्वर्गिभिर्नानुभूयते ।

खिलीभूते विमानानां तदापातभयात्पथि ।। -कुमार०२.४५.

अभिज्ञानशाकुन्तल के सप्तम अंक में, स्वर्ग से हेमकूट पर्वत की ओर लौटते, महाराज दुष्यन्त के रथ का वर्णन भी शत-प्रतिशत विमानावतरण के समान ही है। प्रकट होते पर्वत शिखरों से पृथ्वी का नीचे उतरना, पत्रजाल से वृक्षशाखाओं का प्रकट होना, नदियों का विस्तार तथा पृथ्वी का क्रमशः ऊपर उठना-ये अनुभूतियाँ विमान के अवतरण की ही हैं।[३] कालिदास की ही तरह बाणभट्ट भी कादम्बरी के शूद्रकवर्णन में 'विमानीकृतराजहंसमण्डलः' शब्दावली द्वारा अपना विमान-परिचय प्रकट करते हैं । परन्तु विमान-सम्बन्धी ये समस्त उल्लेख रामायण एवं पुराणसन्दर्भो की अनुवृत्ति मात्र हैं । आदि कवि वाल्मीकि-प्रणीत रामायण में पुष्पक विमान का सांगोपांग-वर्णन सम्भवतः इस प्रकरण का मूलस्रोत है । रामायण के साक्ष्यानुसार पुष्पक पर्वत के समान (विशाल) तथा 'कामग' (automatic) था। उसका आकार-प्रकार देख कर राम एवं लक्ष्मण भी विस्मित हो उठे थे-

तत्पुष्पकं कामगमं विमानम् उपस्थितं भूधरसं निकाशम् ।

दृष्ट्वा तदा विस्मयमाजगाम रामः स सौमित्रिरुदारसत्त्वः ।।

-युद्धकाण्ड १२१.३०

पुष्पक विमान में सूर्य के समान चमक थी । उसकी गति मन जैसी थी । उसकी वेदिकाएँ (Seats) वैदूर्य मणि से गुँथी तथा स्वर्णनिर्मित थीं । उसमें कूटागार (रहस्यमय कक्ष) बने थे । विमान श्वेत पताकाओं तथा ध्वजों से समलंकृत था । उसमें सुवर्णकमल-मण्डित स्वर्णहर्म्य बने थे । उसके गवाक्षों में मोती तथा माणिक पिरोए गए थे तथा उन पर क्षुद्रघण्टिकाएँ लटक रही थीं । उसमें विशाल घण्टे भी लटक रहे थे, जिनकी टंकार मिठास भरी थी । विश्वकर्मा ने उसे सुमेरु पर्वत के शिखर की आकृति में ढाला था । विमान की फर्श पर स्फटिक जड़े थे तथा चित्र-विचित्र

वैदूर्यों से निर्मित श्रेष्ठ आसन स्थापित थे । उसकी फर्श पर बहुमूल्य आस्तरणं (बिछौना) बिछा था । वह विमान सर्वथा 'अनाधृष्य' अर्थात् दुर्घटना के संकट से मुक्त था[४] ।

पुष्पक अधिष्ठाता की इच्छा का अनुवर्तन करता था । उड़ान भरते समय वह 'महानाद' उत्पन्न करता था[५] । पुष्पक में प्रवेश द्वार आगे की ओर था[६] । विमान में राजहंसों की आकृतियाँ थी । वह जनशून्य होते भी, स्वामी के आदेशमात्र से कहीं भी जाने में समर्थ था ।

अब्रवीत्तु तदा रामस्तद् विमानमनुत्तमम् ।
वह वैश्रवणं देवमनुजानामि गम्यताम् ।।
ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद् विमानमनुत्तमम् ।
उत्तरां दिशमुद्दिश्य जगाम धनदालयम् ।।

पृथ्वी पर उतरते समय विमान की गति मन्द हो उठती थी-

क्रोशार्धं प्रकृतिपुरः सरेण गत्वा
काकुत्स्थः स्तिमितजवेन पुष्पकेण । - रघुवंश १३.७९

कृष्णद्वैपायन-प्रणीत श्रीमद्भागवत पुराण में महर्षि कर्दम-निर्मित माया विमान तथा भूतभावन शिव की कृपा से प्राप्त शाल्व के विध्वंसक सौभविमान का विलक्षण वर्णन प्राप्त होता है । इन सन्दर्भों को मात्र संयोग कह कर टाला नहीं जा सकता । क्योंकि पुराणोक्त विमानों का यह सन्दर्भ आधुनिक वैमानिक तकनीक से आश्चर्यजनक रूप से जुड़ा प्रतीत होता है । विमानों के वे सन्दर्भ काल्पनिक नहीं हो सकते ।

महर्षि कर्दम ने देवी देवहूति को सुख देने के लिये अपने तपोबल से जिस विमान का निर्माण किया था वह सर्वकामदुह् सर्वरत्नसमन्वित, मणिस्तम्भों तथा दिव्य उपकरणों से युक्त, पट्टिकाओं पताकाओं, चित्र-विचित्र मालाओं, दुकूल-क्षौम कौशेय वस्त्रों से शोभित था । उसमें पृथक् सौवर्ण कक्ष थे जो कि पर्यङ्क (पलंग) व्यजन (पंखे) तथा आसनों से श्रीमण्डित थे । यत्र-तत्र उसमें विद्रुम (मूँगे) से बनी वेदिकाएँ तथा महामरकत से बने स्थण्डिल (चबूतरे) थे । उसमें विहारस्थान, विश्राम, संवेश (शयनकक्ष) प्राङ्गण, अजिर आदि की व्यवस्था थी । विमान में स्थापित कृत्रिम हंस एवं पारावत इतने सजीव थे कि उन्हें जीवित समझ कर बाहरी हंस एवं पारावत, उनसे घुलमिल कर कलरव कर रहे थे[७] ।

महर्षि कर्दम ने इस विलक्षण विमान में सौ वर्षों तक विहार किया तथा समस्त वैमानिक (देवों) को विमानसुख में पीछे छोड़ दिया[८] इस कथन से स्पष्ट है कि अन्यान्य लोगों के पास थी विमान हुआ करते थे ।

श्रीमद्भागवत के ही दशम स्कन्ध (अ0 ७६) में शाल्व के सौभ नामक लौहनिर्मित युद्धक विमान का अद्भुत वर्णन मिलता है । भगवान् आशुतोष के निर्देश से यह विमान मय दानव ने शाल्व के लिये निर्मित किया था । यह विमान देव, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, नाग एवं राक्षस-सबके लिये अभेद्य तथा कामग था । यह विमान पूरा का पूरा लौहमय था ।[९]

सौभ नामक वह संहारक विमान इच्छाचारी (कामगं) होने के साथ ही साथ 'तमोधाम' तथा 'दुरासद' भी था । ये दोनों शब्द आधुनिक विमानतंत्र की दृष्टि से बड़े महत्त्व के हैं । तमोधाम का तात्पर्य संभवत यह है कि विमान धुएँ के गुबार में स्वयं अदृश्य हो उठता था दुरासद का अर्थ है - पहुँच से बाहर ! आज भी ऐसे सुपरसानिक युद्धक विमान बन रहे हैं जो 'राडार' की पहुँच से बाहर हों । सौभ विमान शिला, द्रुम, अशनि (वज्र) सर्प, धारासार, पाषाणखण्ड, धूल एवं प्रचण्ड आँधी उत्पन्न करने में समर्थ था[१०] । वह विमान कभी भूमि पर तो कभी आकाश, में कभी पर्वत शिखर पर तो कभी जल में दीखता था -

क्वचिद्भूमौ क्वचिद्व्योम्नि गिरिमूर्ध्निजले क्वचित् ।
अलातचक्रवद्भ्राम्यत् सौभं तद् दुरवस्थितम् ।।

उपर्युक्त सन्दर्भो द्वारा, भारतवर्ष में विमान विद्या के अस्तित्व का सप्रमाण विवेचन किया गया है । यह इस देश का दुर्भाग्य है कि संस्कृतज्ञान से विरहित तथाकथित वैज्ञानिक एवं इतिहासज्ञ प्रत्येक आविष्कार का श्रेय पाश्चात्त्यों को देते हैं तथा प्राचीन भारतीय वाङ्मय में उपलब्ध साक्ष्यों को कोरी कल्पना मान लेते हैं। परन्तु कल्पना सर्वथा निर्मूल नहीं होती है । उसका भी कहीं न कहीं, ठोस आधार होता है । यदि प्राचीन भारत में विमान विद्या नहीं थी, विमान नहीं थे- तो यह शब्द कोष में आया ही क्यों ? कोष का एक भी शब्द ऐसा नहीं है जो व्यवहार सिद्ध न हो !

११ वीं शती ई0 में धारानरेश भोज ने भी समराङ्गणसूत्रधार में विमानविषयक पुष्कल जानकारी प्रस्तुत की है । धर्मयुग में प्रकाशित एक आलेख में महाराष्ट्र के तलपदे--बन्धुओं द्वारा, राइट-बन्धुओं से पूर्व ही विमान बना लेने का सप्रमाण विवेचन प्रस्तुत किया[११] जा चुका है । तलपदे बन्धुओं ने, बम्बई नगर के सागरतट (चौपाटी) पर अपना विमान उड़ा कर दिखाया भी था । परन्तु ब्रिटिश हुकूमत में जैसे जगदीशचन्द्र वसु का प्राप्तव्य श्रेय मार्कोनी को मिल गया, ठीक उसी प्रकार तलपदे-बन्धु भी राइट-बन्धु से पीछे रह गये विमान निर्माण का श्रेय प्राप्त करने में ।

आज विमानतंत्र विकास की पराकाष्ठा पर है । युद्ध, संकट, नागरिक यातायात-सभी क्षेत्रों में विमान आज की विश्वसंस्कृति का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है । विभिन्न देशों की विमाननिर्माता यंत्रशालाओं द्वारा अधिकाधिक

सुविधासम्पन्न यात्रीविमान बनाए जा रहे हैं जिन पर बैठकर यात्रा करना स्वयं में एक कल्पनातीत विलक्षण अनुभव है। यही कारण है कि विमानयात्रा भी आधुनिक भारतीय वाङ्मय का एक विशिष्ट पहलू बन गयी है।

स्वातंत्र्योत्तर संस्कृत कविता में भी विमानकाव्य एक नई एवं विशिष्ट विधा बन कर उभरा है। जैसे खण्डकाव्य, अपनी विशिष्ट प्रकृति के ही कारण, दूतकाव्य,सन्देशकाव्य, स्तोत्रकाव्य, अन्योक्तिकाव्य, तथा शतककाव्य कहा जाता है ठीक उसी प्रकार उसे 'विमानकाव्य' भी कहा जा सकता है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के अनन्तर अनेक संस्कृत विद्वानों एवं मनीषियों ने विभिन्न सन्दर्भों में, विमान द्वारा विदेश यात्राएँ की हैं। इन्हीं संस्कृत-मनीषियों में से कुछ सहृदय कवियों ने, विमान यात्रा के अनुभवों को सरस कविता में निबद्ध किया है। कुछ कवियों ने विमानयात्रानुभव को लेकर मुक्तक कविताएँ लिखी हैं[१२] तो कुछ ने सम्पूर्ण (खण्ड) काव्य! प्रस्तुत आलेख में ऐसे तीन विमानकाव्यों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है- डॉ0 प्रभाकरनारायण कवठेकर-प्रणीत[१३] भूलोकविलोकनम्, डॉ0 राधावल्लभत्रिपाठि-प्रणीत[१४] धरित्रीदर्शनम् तथा अभिराज डॉ राजेन्द्रमिश्र-प्रणीत[१५] विमानयात्राशतकम्।

भूलोकविलोकनम् को हम एक लम्बी कविता कह सकते हैं। परन्तु डॉ० राधावल्लभ त्रिपाठि[१६] - प्रणीत धरित्रीदर्शनम् अथवा धरित्रीदर्शनलहरी पाँच उन्मेषों में विभक्त एक पञ्चाशिकाकोटिक खण्डकाव्य है। प्रत्येक उन्मेष में ग्यारह मन्दाक्रान्ताएँ हैं जिससे यह काव्य 'मेघदूतसहोदर' प्रतीत होता है। रोचक बात तो यह है कि काव्य का प्रारंभ भी कवि मेघदूत की ही शैली में करता है-

कश्चिद् यात्रापरिगतरुचिर्भारते पान्थ आसीद्
विश्वस्मिन् यो भ्रमणरसिको द्रष्टुमुत्को धरित्रीम्।
प्राच्याधीतौ कलितरुचितो दिष्टयोगं नियोगं
लेभे गन्तुं प्रथितसुभंगं प्राच्यशर्मण्यदेशम्॥

धरित्रीदर्शनम् के प्रथम उन्मेष में कवि का विमानदर्शन, विमानारोहण तथा विमानप्रस्थान-वर्णन, द्वितीय में विमान से धरित्रीदर्शन विषयक रोचक उत्प्रेक्षाएँ, तृतीय में रात्रि-आगमन तथा विमान-यात्राओं के अशनपानादि का वर्णन, चतुर्थ में विमान से प्रभातोदयदर्शन, प्रभातविषयक नद्यानवद्य उत्प्रेक्षाएँ तथा पंचम उन्मेष में विमान का पूर्वी जर्मनी के हवाई अड्डे ५र अवतरण वर्णित है।

विमानयात्राशतकम् में कवि, नई दिल्ली (भारत) से बालीद्वीप की राजधानी डेनपसार तक अपनी विमानयात्रा का विवरण प्रस्तुत करता है[१६]। यह यात्रा तीन खण्डों में विभक्त है-

१- एयर इण्डिया विमान से दिल्ली-सिंगापुर, २- सिंगापुर के विमान से सिंगापुर-जकार्ता तथा ३- गरुड इण्डोनेशिया विमान से जकार्ता-डेनपसार। यह काव्य विमानों की आन्तरिक साजसज्जा, विमानगवाक्ष से दीखते मेघाच्छादित आकाश, सूर्योदय, सागर एवं प्रकृति के विलक्षण वर्णनों से ओतप्रोत है । काव्य की समाप्ति बाली वसुन्धरा एवं डेन्पसार नगर के वर्णनों से होती है ।

प्रयाणवेला में विमान, हवाई पट्टी पर वृत्ताकार घूमता हुआ अचानक ही जमीन से ऊपर उठता है । प्रभूत ऊँचाई पर पहुँचते ही विमान सर्वथा गतिहीन एवं निःस्तब्ध सा लगने लगता है मानो-विश्वामित्र द्वारा प्रेरित एवं देवराज इन्द्र द्वारा धर्षित (अतएव कुण्ठित गति) त्रिशंकु हो :

रिङ्गन् रिङ्गन् वलयपरिधौ भूमिभागे विमानः
स्थानात्तस्मादुपरि सहसैवोत्थितश्चान्तरिक्षे ।
क्रान्त्वा भूमिं प्रगुणितरयो भूय एवोन्मुखः खे
श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः ।।
गत्वा चोर्ध्वं वियति विपुलेऽसौ विमानो ललम्बे
निःस्तब्धत्वं गत इव यथा विस्मृतश्वास आसीत् ।
नो संसर्पन् नियतगमनः पृष्ठतश्चाग्रतो वा
विश्वामित्रप्रतिहतरयः सम्पतन् वा त्रिशङ्कुः ।।

-धरित्रीदर्शनम्ः प्रथमोन्मेष ७.८

मध्येयानं कृतस्थाने घोषयत्येव चालके ।
युगान्तघर्घरारावोऽकस्मादेव समुत्थितः ।।
ततस्तूर्णतमैर्वेगैर्धावमानं महाजवम् ।
विमानं वसुधां हित्वा नभोमण्डलमाययौ ।।
ऊर्ध्वस्कन्धं स्फुरद्गत्या निमेषैरेव कैश्चन ।
चन्द्रतारकमध्यस्थं विमानं तद् बभौ ततः ।।
एवमादिषु पूर्णेषु विमानं तन्निराकुलम् ।
निश्चलं तन्नु निष्कम्पं जातं शमितघर्घरम् ।।

-विमानयात्राशतकम् १३-१७.

प्राभातिक प्रकाश में बादलों की पीठ पर उड़ते विमान का दृश्य कुछ और ही होता है । डॉ० त्रिपाठी को हजारों दूध की नदियाँ बहती सी दीखती हैं । विमानयात्राशतककार को नीले आकाश में कट-छँट कर संचरण करते बादल, हरित दूर्वास्थली मे घास चरते मेषशावक प्रतीत होते हैं-

किं सञ्जातस्सघनतिमिरे पूर्णिमायाः प्रकाशः
स्फीतं किं वा प्रवहति तथा दुग्धकुल्यासहस्रम् ।
नीचैरेषा धवलधवला लक्ष्यते मेघमाला
राशीभूतः प्रसृत इव किं त्र्यम्बकस्याट्टहासः ।।

-धरित्रीदर्शनम् :चतुर्थोन्मेष, ४।

विमानाधस्तले कीर्णा असंख्या श्वेतवारिदाः : ।
दूर्वास्थल्यामभासन्त चरन्तो मेषशावकाः ।।
कदाचित्कीर्णमेघालीं संविदार्य सरत्पुनः ।
यानं बभौ शरत्काले कासकान्तारपारगम् ।।
विमाने सम्मुखीने वै मेघखण्डाः पलायिताः ।
यथा जाङ्गलिकं दृष्ट्वा पलायन्ते भियाऽर्भकाः ।।
उपरिष्टादधस्ताद्वा वामदक्षिणपार्श्वतः ।
अक्षता जर्जरा मेघा यानमाहत्य विक्रुताः ।।
क्वचित्पुनर्घनीभूतमेघसन्दोहमध्यगम् ।
नालुलोके यदा यानं मुक्ततारापथं चिरम् ।।
तदा हिन्दोलनभ्रान्त्या विमानं चालयन् कृती ।
मेघपाशविमुक्त्यर्थं प्रयासान् कृतवान् स्वयम् ।।

-विमानयात्राशतकम् ५२-५८

विमान के उड़ने तथा उतरने के क्रम में, पृथ्वी का जो दृश्य दीखता है वह विलक्षण होता है । वह 'गूँगे का गुड़ है' सर्वथा अनाख्येय़ तथा अनुभवमात्र-संवेद्य! उन अनुभवों को विमानयात्राशतक में विश्वसनीय ढंग से व्यक्त किया गया है -

विमानेऽवनतीभूते स्फुटं जातं महीतलम् ।
चित्रकृत्तूलिकाऽऽकृष्टालेख्यसाधनिकोपमम् ।।

यथाऽऽलेख्ये क्वचिद्गाढैर्वर्णयोगैर्महीधरम् ।
वर्णविस्तारणैर्वीथीं मालभूमिञ्च गह्वरम् ।।
रेखया सरितं वक्रां विहगं हर्म्यमन्दिरम् ।
चित्रकारो विनिर्माति वस्तुना कल्पनेन च ।।
विमानादेवमाभाति नीचैः स्थितमहीतलम् ।
वैधातृकं महच्चित्रं न भूतं भावि नोऽथवा ।।

विमान के आरोहावरोह-क्रम में यात्रियों को पेटी बाँधने तथा सावधान रहने का निर्देश दिया जाता है । परिचारिकाएँ रक्षाकवच का प्रयोग भी प्रदर्शित करती हैं। बीच-बीच में भी पृथ्वी से विमान की ऊँचाई तथा अन्य महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी जाती हैं । यात्रियों के नाश्ते, भोजन एवं मनोरञ्जन का पूर्ण प्रबन्ध विमान में रहता है । दोनों ही रचनाकार इन तथ्यों का संकेत करते हैं-

आरूढश्च प्रमुदितमनाः प्रेर्यमाणो विमानं
स्थानं नीतः श्रमविगमकं यानबालाप्रदिष्टम् ।
यानाध्यक्षो गमनसमयं चाथ संघोष्य यातॄन्
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ।।
एते प्राप्ता ननु वसुमतीं सावधाना भवन्तः
सन्तिष्ठेरन् भवतु भवतां मङ्गला चैव यात्रा ।
यानाध्यक्षो मुदितमनसा घोषयामास चेत्थं
प्रह्वीकुर्वन् सपदि वसुधां नीयमानं विमानम् ।।

-. धरित्रीदर्शनम् : प्रथमपञ्चमोन्मेष ।

अथोवाच गिरा मृद्व्या चालकान्यतमो युवा ।।
प्रमादो नैव कर्तव्यो यानमुद्याति साम्प्रतम् ।। ११
बन्ध आसन्दिकालग्नो नियन्तव्यः प्रयत्नतः ।
वातायनं पिधातव्यं लोकनीयं न वा बहिः ।। १२
निमेषैरेव पश्यामः कुवालालम्पुरं वयम् ।
जुघोषेति लसद्वाचा वायुयानप्रबन्धकः ।।

कवि, विशेषकर संस्कृत का कवि अनलंकृत भाषा का प्रयोग नहीं ही करता है । अलंकार, बिम्ब, कल्पना, स्वभावोक्ति एवं वक्रोक्ति के बिना उसे अपनी अभिव्यक्ति अधूरी प्रतीत होती है । इन दोनों विमानकाव्यों में, इस दृष्टि से, आलंकारिक-समृद्धि पराकाष्ठा पर पहुँची दीखती है । डॉ० त्रिपाठी ने मेघदूत की पंक्तियों को, यथोचित भावपरिवर्तन के साथ प्रभूत मात्रा में आहृत किया है[१८] जो कि जैन दूतकाव्यकारों की परम्परा रही है । नये परिप्रेक्ष्य में मेघ की वे पंक्तियाँ सुन्दर प्रतीत होती हैं । कहीं-कहीं शंकराचार्य, भवभूति एवं अथर्ववेद के भावों की भी छाया, कवि ने प्रतिभाशिल्प के साथ ग्रहण की है-

माता वा स्यात् कुतनयजनेः किं कदाचित्कुमाता ?? ३.९

स्थित्वा यानेऽनिमिषमनिशं रात्रिरेव व्यरंसीत् ।। ३.१०

माता भूमिर्विनततनयः सोऽस्मि चास्या धरित्र्याः ।। ५.१०

मेघपटल को चीर कर आगे बढ़ते विमान के सन्दर्भ में धरित्रीदर्शन के कवि ने अद्‌भुत उत्प्रेक्षाएँ सँजोई हैं । बादलों पर चलता विमान क्षीरसागर पर तिरती नाव सा अथवा यश की पताका सा प्रतीत होता है-

'किं क्षीराब्धेरुपरि च शनैः स्यन्दमानैव नौका
राशेराहो ह्युपरि यशसां धूयमाना पताका ?
मेघानां स क्षितिजपुलिनादास्तृतायां विमानो
मध्ये गच्छन् रवविरहितो लक्ष्यते कृष्यमाण : ।। ४.५..

विमानयात्राशतककार को विमान, रूई के ढेर में फुदकती तितली सा, हिमराशि पर उड़ता पुष्पक सा अथवा कैलासशिखर पर अठखेलियाँ खेलता नन्दीवृषभ सा प्रतीत हुआ-

तूलराशौ यथा काचित्तित्तली प्लवते सुखम् ।
तादृशी सुषमा नूनं वायुयानस्य संबभौ ।। ६१
हिमराशौ यथोड्डीनं भवताद् देवपुष्पकम् ।
तादृशी ननु विच्छित्तिर्वायुयानस्य संबभौ ।। ६२
यथा वा शुभ्रकैलासे वल्गते शम्भुवाहनः ।
तादृशं ननु सौन्दर्यं वायुयानस्य संबभौ ।। ६३

विमानयात्राशतक के कवि ने एक विलक्षण अनुभव को रेखांकित किया है और वह है निरभ्र आकाश में सागर के ऊपर से विमान का आगे बढ़ना ! आकाश एवं प्रशान्त महासागर का रंग एक होने के कारण कवि को एक विचित्र अनुभव हुआ-

नीलाम्भोधिरधोभागे नीलाकाशश्च शीर्षके ।

ज्ञातुं नाशाकि यत्नैर्भोः कियद् व्योम कियज्जलम् ?? ५०

उच्चैर्नीचैश्च सर्वत्र नीलाम्बरमभासत ।

एकरूपं जलं व्योम हन्त सर्वं विलक्षणम् ।। ५१.

यह प्रसंग अब यहीं समाप्त होता है । मुझे पूर्ण विश्वास है कि 'विमानकाव्य' की यह विधा संस्कृत काव्यशस्त्रियों को मान्य होगी -अपनी नवीनता एवं विलक्षणता के कारण । भविष्य में संस्कृत कविता,. अन्यान्य विमानकाव्यों से समृद्ध हो, यही मेरी आशंसा है ।

---

१- व्योमयानं विमानोऽस्त्रीत्यमरः । १.१.४८.

व्योम्नि यान्त्यनेन । करणे ल्युट् । कृष्णमित्र ।

२- विमान्ति वर्तन्तेऽस्मिन् देवा विमानम् । अधिकरणे ल्युट् कृष्णमित्र ।

३- शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी

पर्णाभ्यन्तरलीनतां विजहति स्कन्धोदयात् पादपाः ।

सन्तानैस्तनुभावनष्टसलिला व्यक्तिं भजन्त्यापगाः

केनाऽप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वमानीयते ।। - शाकु ०७.८.

४- सविस्तर द्रष्टव्य रामायण, युद्धकाण्ड १२१.२३-३०.

५- राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपात विहायसम् ।

अनुज्ञातं तु रामेण तद् विमानमनुत्तम् ।

हंसयुक्तं महानादमुत्पपात विहायसम् ।। युद्ध0 १२३.१.

६- अवतीर्य विमानाग्रादवतस्थे महीतलम् ।। युद्ध0 १२७ .६०

७- प्रियायाः प्रियमन्विच्छन् कर्दमो योगमास्थितः ।

विमानं कामगं क्षत्रस्तर्ह्येवाविरचीकरत् ।।

सर्वकामदुधं दिव्यं सर्वरत्नसमन्वितम् ।

सर्वर्द्ध्युपचयोदर्कं मणिस्तम्भैरुपस्कृतम् ।।

स्रग्भिर्विचित्रमाल्याभिर्मञ्जुशिञ्जत्षडङ्घ्रिभिः ।

दुकूलक्षौमकौशेयैर्नानावस्त्रैर्विराजितम् ।।

हंसपारावतव्रातैस्तत्र तत्र निकूजितम् ।

कृत्रिमान्मन्यमानैः स्वानधिरुह्याधिरुह्य च ।।

विहारस्थानविश्रामसंवेशप्राङ्गणाजिरैः ।
यथोपजोषं रचितैर्विस्मापनमिवात्मनः ।। श्रीमद्भागवत ३.२३.१२-२१

८- भ्राजिष्णुना विमानेन कामगेन महीयसा ।
वैमानिकानत्यशेत चरँल्लोकान् यथानिलः ।। वही, ४१

९- देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
अभेद्यं कामगं वव्रे स यानं वृष्णिभीषणम् ।। श्रीमद्भागवत १०.७६.६

१०- स लब्ध्वा कामगं यानं तमोधाम दुरासदम् ।
ययौ द्वारावतीं शाल्वो वैरं वृष्णिकृतं स्मरन् ।। ८
शिला द्रुमाश्चाशनयः सर्पा आसारशर्कराः ।
प्रचण्डश्चक्रवातोऽभूद् रजसाऽऽच्छादिता दिशः ।। ११
-श्रीमद्भागवत १०.७६.

११- यह निबन्ध धर्मयुग में छठे दशक के किसी अंक में प्रकाशित हुआ है ।
मैंने स्वयं इसे पढ़ा है । -लेखक

१२- डॉ० रमाकान्तशुक्ल (वैमानिकम्) डॉ0 हरिदत्त शर्मा (चल चल विमानराज रे !) तथा डॉ० चन्द्रभानु त्रिपाठी (उर्वशी नाटिका में)

१३- दूर्वा, म0 प्र0 संस्कृत अकाद्मी भोपाल ।

१४- दूर्वा तथा सन्धानम् (संस्कृत परिषद् सागर वि0 वि0 १९८८)

१५- अर्वाचीनसंस्कृतम्, जुलाई ८७ अंक तथा पञ्चकुल्या (वैजयन्त प्रकाशन इलाहाबाद) में संकलित ।

१६- डॉ0 त्रिपाठी हम्बोल्ट यूनिवर्सिटी (पूर्वी जर्मनी) में अभ्यागत आचार्य के रूप में आमंत्रित थे ।

१७- डॉ0 राजेन्द्र मिश्र भारत सरकार द्वारा दो वर्षो के लिये बालीद्वीप- स्थित उदयन यूनिवर्सिटी में अभ्यागत आचार्य नियुक्त रहे । यह यात्रा उसी सन्दर्भ में थी ।

१८- सम्मुखीनं विमानं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श । १.५

# Modern Christian Literature in Sanskrit

Prof. Satya Vrat Shastri

When the Christian missionaries descended on India in the last century they found Sanskrit still the medium of higher thought and culture. People of upper castes who mattered most used it widely. The missionaries of the time thought that if they were to make any impact on Indian society, they would have to learn the language of higher castes and render their writings in it to be accessible to them. Once the Brahmins or others who had the upper hand in society were drawn to Christianity, it would be easier for them, the missionaries, to spread the message of Christ among the common people who would feel attracted towards it, having found their superiors taking to it. With this idea in view they took to the study of Sanskrit, wrote its grammars, compiled its dictionaries, prepared its text books. With all this equipment they took to the translation of the *Bible* into Sanskrit, *the Old and the New Testaments*, the *Sermon on the Mount*, and so on. They also composed many an original work in Sanskrit, in verse and prose, on Lord Christ. The result : A whole class of Christian literature in Sanskrit grew over a period of time. It would be worth its while to have a close look at it. And this is what is precisely attempted in the pages to follow.

The activity in the field of the translation of the *Bible* into Sanskrit began as early as 1808. The *New Testament of Our Lord and Saviour Jesus Christ* was translated into Sanskrit from the original Greek by the missionaries at Serampore under the superintendence of William Carey in three volumes, the third volume making its appearance in 1811, three years after the publication of the first. This was followed by the Sanskrit translation of the *Old and the New Testaments*, again from Serampore in 1821. In 1845 the Baptist Mission

Press, Calcutta published the *Book of the Prophet Isaiah* in Sanskrit. In 1860 appeared the *Bible for the Pandits* with the first three chapters of *Genesis* 'diffusively and unreservedly' commented in Sanskrit and English by J.R. Ballantyne from London. The translations started in the nineteenth century continued in the twentieth century as well. The Bible Society of India brought out the latest reprint of *the New Testament* in Sanskrit : *Prabhuṇā Yisukhristena Nirūpitasya Niyamasya Granthasaṁgrahaḥ* as late as in 1962. Attempts were made alongside translating the *Old and the New Testaments*, certain portions thereof. The Calcutta Baptist Missionaries brought out from Calcutta in 1843 the translation from Hebrew into Sanskrit of the *Book of Genesis* and the part of *Exodus*. Two collections of the *Proverbs* of Solomon in Sanskrit appeared from the School Book Society's Press, Calcutta and The Baptist Mission Press, Calcutta in 1842 and 1846 respectively.

The Baptist Mission Press in Calcutta has been very active in bringing out Christian literature in Sanskrit translation. It brought out the collection of the Gospels of four Christian saints in a single volume : *Khṛṣṭa caritam : Arthato* (?) *Mathi-Marka-Luka-Yohanair Viracitaṁ Susaṁvāda-catuṣṭayam* in 1878. It also brought out separate volumes on the *Gospels* of *Mathi*; *Mark* and *Luk*. The one on Mathi under the title *Māthilikhitaḥ Susaṁvādaḥ* appeared in 1877 and the ones on Mark under the title *Mārkalikhitaḥ Susaṁvādaḥ* and *Satyadharmaśāstram : Mārkalikhitaḥ Susaṁvādaḥ: Arthato* (?) *Prabhor Yiṣukhṛstīya-caritra-darpaṇam* appeared in 1878 and 1884 respectively. The *Gospel* of *Luk* came out under the tittle *Lūkalikhitaḥ Susaṁvādaḥ* in 1878. *The Gospel* of St. *John* came out in Sanskrit under the title : *Yohana-likhitaḥ Susaṁvādaḥ* not from the Baptist Mission Press, Calcutta but from the Basel Mission Press, Mangalore in 1876.

Of the portions of the *Bible* it is the Sermon on the *Mount* that has attracted good notice of the Sanskritists. There are at least three independent translations of it into Sanskrit by Lachmi Dhar Shastri published by him from Delhi in 1928. One, two from

the Bible Society of India, Bangalore, by K.P. Urumese from Trichur, the last two published in 1974. The *Sermon* also appears in a succint form in every creative work on Christ in Sanskrit. A very interesting work in the field of translation is the *Khristayajñavidhiḥ*. The work is a translation in Sanskrit of the *Ordo Missae* in Latin by Ambrose Sureschandra Roy and was published from Calcutta in 1926. Apart from translations there has been a lot of original composition on Christianity in Sanskrit both in the nineteenth and the twentieth centuries. About half a dozen smaller works like the *Īśvaroktaśāstradhārā* (The course of Divine Revelation) by John Muir, the *Parama-stava,* a hymn in verse on God, *Paulacarita*, a short life of apostle Paul in verse, the *Khṛstasaṅgīta,* the history of Jesus Christ in verse, the same *Khṛṣṭadharmakaumudī* by J.R Ballantyne, which is a comparison of Christianity with Hindu Philosophy, in prose and a critical review of *Khṛṣṭadhar makaumudisā mālocana* in prose again by Brajalal Mukhopadhyaya.

The twentieth century too has seen many an original publication on Christ and Christianity, the latest and the biggest of which is the *Kristubhāgavatam*, a Mahākāvya in Sanskrit in thirty three cantos with a thousand and six hundred stanzas on the life of Lord Christ by P.C. Devassia which won him in 1980 the coveted Sahitya Akademi award in Sanskrit. The thirty three cantos of the Kāvya correspond to the number of the years of the Lord's life. Although in narratting the story of the Lord the author relies on the versions of the Gospels and some reputed biographies of Christ and is faithful to incidents as recorded there, yet he shows his freedom and imagination as a poet to introduce poetic elements which however do not dilute the authenticity of the narrative. The poem is simple and straightforward, composed in the much-valued Vaidarbhī style.

The Mahākāvya, the greatest so far, on Lord Christ in Sanskrit has, as the author himself points out in the Preface, many allusions to and illustrations from the Hindu Purāṇas and Epics. This the author ascribes to his growth in an atmosphere of Sanskrit literature

which could not but appear even in a work on Christ. Another great influence on the author in this was His Eminence Joseph Cardinal Parecattil, the Archbishop of Ernakulam who, he says, believes that the Church in India must have its roots in the culture and the tradition of the land. A Sanskrit scholar, he has played an important role in the Indianization of the Church.

The stanzas in the Mahākāvya have a flow of their own which cannot but charm a reader. A stanza or two from canto XVII dealing with the *Sermon on the Mount* could well be reproduced here by way of specimen :

*bhikṣā tvayā dakṣiṇahastadattā*
*na jñāyatāṁ vāmakareṇa te sā* ।
*dānasya caivaṁ nibhṛtaṁ kṛtasya*
*pitā phalaṁ dāsyati guptadarśī* ॥[1]

"When you give alms, do not let the left hand know what your right hand has done. For the alms-giving thus done in secret, your Father who sees in secret shall reward you."

*yūyaṁ mā sañcinuta nidhim ātmārtham urvyāṁ hi yasmāt*
*kīṭādyās taṁ kṣayam upanayanty atra muṣṇanti caurāḥ* ।
*svarge tān sañcinuta vibhavān ye hi tair na hriyante*
*vittaṁ yasmin bhavati bhuvane tatra cittaṁ ca vaḥ syāt* ॥[2]

"Do not lay up for yourself treasures on earth, where moths and other insects consume them, and where thieves break in and steal them; but lay up those treasures in heaven where they are not consumed by them, for, where your treasure is, in that world will your heart also be."

Of the smaller Kāvyas on Lord Christ could be mentioned *Sree Yesusourabham* by Soma Varma Raja which has 67, 70, 78, and 86 stanzas in its first, second, third and fourth cantos respectively. The Kāvya closes with five hymns of which the first is a prayer, a string of seven stanzas called the *Bhajanasaptakam*, the second, a hymn to the Sacred Heart, the third, the praise of Christ, the fourth, the *hymn to Christ* and the fifth, the *Bhaktajijīvisā*, an expression of the

desire of the devotee to see the Master and to live according to his tenets. In its 301 stanzas in mellifluous Sanskrit the author sums up the whole story of the *Bible*. Though following the Biblical narrative faithfully, he takes reasonable licence in versification. The reactions of the multitude gathered at the foot of the Cross, Christ's enemies, his devotees, the sorrowful women and the good men and their addresses to the crucified are all presented in the present work with deftness. Both the genius and the originality of the author are reflected in this part and the words of the spectators on Calvary sink deep into the heart:

*Kruśa paramaviśālo 'py ugrarūpaṁ tvadīyaṁ*
*manasi kalayato bhīḥ pāpinaḥ kasya na syāt* I
*tvam asi kaṭhinapīḍābhogaparyāyavācī*
*nikhilajananiṣevyo divyasaṅgena jātaḥ* II[3]

"O wide cross ! Who will not be frightened to see or think about you. You have become another word for grave pain. But now you are a thing of worship, for you have carried our Lord on you."

In the lamentation of Mary, the Mother of Lord Christ, a note of intense sorrow is struck. The words therein betray in full the motherly pangs. It looks while writing about this the poet had at the back of his mind the description of the lamentation of Rati in the *Kumārasambhava* and that of Aja in the *Raghuvaṁśa* of Kālidāsa. Not only is the whole setting the same, even the metre is so:

*gatasaṁjñam avekṣya vihvalā*
*Mariyā svāṅkagataṁ nijātmajam* I
*vilalāpa sabāṣpalocanā*
*samaduḥkhān akhilāṅś ca kurvatī* II[4]

"Mary saw the lifeless body of her son on her lap. She was overcome with grief. She cried shedding tears, making all present there equally sorry."

The expression *vilalāpa sabāṣpalocanā* cannot but remind one of the *Raghuvaṁśa's vilalāpa sabāṣpagadgadam*[5] and *samaduḥkhān akhilāṅś ca kurvatī* of the *Kumārasambhava's vilalāpa vikīrṇamūrdhajā*

samaduḥkhām iva kurvatī sthalīm. So do the lines kṛpaṇo mama dairghyam āyusaḥ. kaṭhinaḥ khalv iha dattavān v idhiḥ[6] of Kumārasambhava's na vidīrye kaṭhināḥ khalu striyaḥ[7]

Kālidāsa's influence on the author is also noticeable in the stanza in the beginning of his work :

*kva me nirviṣayā buddhiḥ*
*kva śrīyeśumahākathā* I
*mohād bhavāmy āruruksur*
*āmayāvi mahāgirim* II[8]

"Where is the intellect devoid of the knowledge of the subject matter and where is the great magnificent story of Jesus. It is an attempt, like that of a sick man trying to climb a high mountain."

This clearly is inspired by the well-known *Raghuvaṁśa* verse:

*kva sūryaprabhavo vaṁśaḥ*
*kva cālpaviṣayā matiḥ* I
*titīrṣur dustaraṁ mohād*
*uḍupenāsmi sāgaram* II[9]

"Where is the race sprung from the sun and where is my intellect of limited scope. It is under a delusion that I am desirous of crossing, by means of a raft, the ocean so difficult to cross."

A spirit of the divine and a sense of devotion pervade the whole of the *Sreeyesusourabham* which is indeed a happy blend of simplicity and profundity. It reflects the glorious and the heavenly personality of Lord Christ in a most impressive manner and amply reveals the poet in the author whose Khaṇḍakāvya—it is to this category that his work belongs according to rhetoricians—makes a very pleasant reading. There are Similes, Metaphors and Fancies here which do tickle the Sahṛdaya, the connoisseur and add further charm to the work.

The author is in the habit of twisting some of the foreign words to give them a different look, not necessarily Sanskritic, to make them fit into Sanskrit diction.

Abraham he puts as Abraha, David as Dāvida, Gabriel as Gabriyet, Elizabeth as Yelīšvā, Mary as both Merī and Mariyā, Augustus Caeser as Agastasīsara, Christ as Iso and Yesu, Herod as Heroda, Judea as Yūdāya, Messiah as both Mihisa and Misiha, Nazareth as Nasratama, Jerusalem as Jasrela, Magdelene as Magdalanā and so on.

Only those writers can compose works in Sanskrit who have thorough knowledge of its literature. The writers of the works on Christ and Christianity, even though devout Christians, inheriting or adopting the Sanskrit tradition as they did, could not keep themselves away from it even while dealing with themes not part and parcel of it. By sheer habit sometimes they would use old words to denote new ideas. The use of the world *vaidika* in the poem under reference in the sense of a Christian priest is a case in point. An extension of this word is Vaidikāšrama in the sense of a Christian Seminary :

*Vaṭavātūradešīya-*
*vaidikāšramacoditaḥ* I
*karomi nūtanākhyānaṁ*
*yešusaurabhasaṁjñitam* II[10]

"Impelled by the friends in the Vatavathur Seminary I compose this Kāvya, the *Sreeyesusourabham*."

It was again the force of the Sanskrit tradition that weighed with the present author to start his Kāvya on the life of Lord Christ with an invocation to goddess Sarasvatī :

*yā tu saṅgītasāhityakalācaitanyarūpiṇī* I
*satām ādhārabhūtāṁ tāṁ vande vidyādhidevetām* II [11]

"I salute the goddess of learning who wields the authority over music, literature and art. She is the support of all good-natured people and poets."

It is the influence of Sanskrit tradition again that makes the author refer to the celestial Ganges in the context of Holy Mary carrying lord Christ :

*talpaṁ gavadanībhadraṃ citpuṁso garbhadhāriṇī* I
*sā 'dhyuvāsāñjasā Merī haṁsīvābhranadītaṭam* II [12]

"Mary who was carrying the son of god in her womb was lying in the manger as the swan lies in the celestial Ganges."

The description in the work of the regions becoming bright and gentle breeze blowing at the birth of Christ is apiece with similar descriptions which have become a type now in Sanskrit literature :

*praseduḥ kṣaṇam evāśā marutaś ca sukhā vavuḥ* I
*babhūvur nirmalāś cāpaḥ kūpeṣv api sarahsv api* II [13]

Like the other poems on Christ's life, this poem too has the *Sermon on the Mount* in brief.

Another smaller original work in Sanskrit prose on the life of Lord Christ is the *Yeśucaritam* by J. Marcel who styles himself as Marsalācārya. The work he divides in five Adhyāyas, in beautiful, chaste Sanskrit which has a classical ring about it. The entire life of the Lord is put here succintly in an easy and fluent style. Two small paragraphs from this will be sufficient to form an idea of its Sanskrit :

*sa yadā svasmai dattaṁ Yiśāyasya pustakam udaghāṭayat tadā tatredaṁ likhitam avartata. Īśvaro mayy avasthitaḥ....... viṣādavidīrṇāntaraṅgān sukhaytiuṁ baddhānāṁ muktim andhānāṁ darśanaṁ ca pradātum........ māṁ prajighāya saḥ.* [14]

"When he opened the book of Yisāya given to him he found it written there. The Lord is in me. He has sent me to provide happiness to the sad and to give release to the bound and sight to the blind."

*paran tu bho śrotāraḥ yuṣmān idaṁ vaktum abhyutsahe ye yuṣmabhyaṁ druhyanti teṣām api hitam eva tanuta. yuṣmān śapanti ye tebhyo 'py āśiṣam eva datta. ye yuṣmān apavadanti teṣām api hitam prārthayadhvam. yas tava ekasmin kapole praharati tasmai kapolam anyam api pradarśaya.......yo vā ko vā bhavatu tāvako yācakaḥ, dehi tasmai. mā abhivāñcha tatpratyādānam. kiñ ca yuṣmān prati yādṛśam ācāram abhilasatha, tādṛśo bhavatu yuṣmākam api itareṣv ācāraḥ.....*

"But O you the listeners, I feel like telling—Even those who are hostile to you, you do good to them too. Those who curse you, them too you bless. Those who denounce you, you pray for their welfare too. To the one who slaps you on one cheek, you show him the other one. Whosoever may ask you for something, give that to him. Don't care for any return for it. Moreover, the kind of treatment you want for yourself, meet the same to others."

The next work which is not an original composition in Sanskrit but very much looks like so is the *Mahātyāgī* of M.O. Avara. The work was originally composed in Malayalam but was translated from it into Sanskrit by K.P. Narayana Pisharoty. The work in verse meaning literally the Man of Sacrifice Is a poetic reflection on the seven last words uttered by Jesus Christ from the Cross. The Malayalam original had attained great popularity and had for some three decades been the text book for examinations in the Universities of Madras, Travancore and Kerala. It was its success that had prompted the author to arrange for its Sanskrit translation. "He wanted to see the story of Christ portrayed in the great classical language of India."

The *Mahātyāgī* is a fine work of poetry in 163 stanzas. The thought in it is so serene, the language so imaginative and the versification so meticulously correct. The environments of the crucifixion of Christ have been so poetically treated here that those who read the work cannot but have their eyes moistened. The lines which portray the effect of the words "Forgive them, o Father, because they know not what they do" are the best in this work of which the following four lines bear reproduction :

*kāruṇyārdramate kṣamasva bho*
*aparādhaṁ kṛtaṁ ebhir īdṛśam* |
*yad ime na viduḥ svakarma vā*
*na ca vā tvatkaruṇām api prabho* || [16]

The work being a Kāvya, a poem, it affords the author ample scope for the flight of his imagination. The arms of Christ stretched on the Cross the poet

takes as indicative of the readiness on the part of Christ to embrace or as wings to soar aloft to carry all misery of mankind on his shoulders:

*nijapārśvayuge bhujadvayaṁ*
*śubhadāyi praviṣārayan bhavān* I
*kruśadāruṇi kiṁ nu vartate*
*jagadāśleṣaṇabaddhakautukaḥ* II
*athavā naralokagāṁ vyathām*
*akhilāṁ skandhatale tvam udvahan* I
*pravitatya patatrayor dvayaṁ*
*dharaṇīto ḍayituṁ kim udyataḥ* ?[17]

The Sanskrit expression in the poem has a classical ring about it

*mihiraḥ kiraṇair nijaiḥ śubhair*
*jagadandhatvam apākaroty asau* I
*dyutim asya mahātmanaḥ kathaṁ*
*punar īkṣeta divāndhakauśikaḥ* II[18]

"While the sun with its powerful rays takes away the blindness of the earth, how can owl which cannot see during daytime see the greatness of the Great Light?"

Like the poet of the *Sreeyesusourabham* the poet of the *Mahātyāgī* too Sanskritizes many foreign words by just twisting them. The classic example of this is the word *kruśa* which can be formed from the Sanskrit root *kruś*, to cry, for the English cross. The same he does with the words *paradise* which he puts in Sanskrit as *parudīśa* and *pelican* which he puts in Sanskrit as *palikka*. The idea of the Lord he expresses by the words *īśa, īśitā, īśvara* and so on. The influence of classical Sanskrit Kāvyas is so penetrating on him that he adopts a non-Sanskrit word *iṅgāla* for charcoal used in one of them, the *Naiṣadhīyacarita* of Śrī Harṣa.

Since the approach of the Christian scholars in India, as pointed out at the very start of the present discussion, was to confront the non-Christian local people, particularly the educated ones among them,

through their own medium, the medium for which they had special adoration, to enter into them, to bring them round to their view, they took to composing such works as approximated to the old Hindu Sanskrit works in nomenclature and style. Such works are the *Kristāyana*, the *Girigītā* and the *Kristunāmasahasram* modelled as they are, as can be seen from their names on the *Rāmāyaṇa*, the *Bhagavadgītā* and the *Viṣṇu sahasranāma* respectively. There is reported to be a *Kriṣṭopaniṣad* also composed in the typical Upaniṣadic *style*.

From what has been said above, it should be clear that there has grown in Sanskrit a considerable corpus of Christian literature both in original and in translation. The literature, though composed primarily to reach the Sanskrit-knowing intelligentsia to motivate it to Christianity, has a lot to commend itself even as work of art and consequently deserves wide notice not only in india but also beyond its shores.

## BIBLIOGRAPHY

1. *The New Testament of our Lord and Saviour Jesus Christ*; trnslated into Sanskrit from original Greek by the Missionaries at Serampore, 3 Volumes, Serampore, 1808-1811.

2. *The Holy Bible containing the Old and the New Testaments*, translated into Sanskrit from original by the Missionaries at Serampore, Serampore, 1821.

3. *The Book of the Prophet Isaiah in Sanskrit,* The Baptist Mission Press, Calcutta, 1845.

4. *The Bible for the Pandits,* the first three Chapters of *Genesis* commented in Sanskrit and English by J.R. Ballantyne, London, 1860.

5. *Prabhuṇā Yīśukhriṣṭena nirūpitasya Nūtanadharmaniya- masya Granthasaṁgrahaḥ* (The New Testament in Sanskrit), The Bible Society of India, Bangalore, 1962.

6. *The Book of Genesis* and part of *Exodus* in

Sanskrit,translated from Hebrew by the Calcutta Baptist Missionaries, Calcutta, 1843.

7. *The Proverbs of Solomon in Sanskrit*, School Book Society's Press, Calcutta 1842.
8. *The Proverbs of Solomon in Sanskrit* (translated from Hebrew), Baptist Mission, press Calcutta, 1846.
9. *Khṛṣṭacaritam : Arthato (?) Māthimārkalūkayohanair viracitaṁ Susaṁvādacatuṣṭa- yam,* Baptist Mission Press, Calcutta, 1878.
10. *Māthilikhitaḥ Susaṁvādaḥ*, Baptist Mission Press, Calcutta, 1877.
11. *Mārkalikhitaḥ Susaṁvādaḥ*, Baptist Mission Press, Calcutta, 1878.
12. *Satyadharmaśāstram : Mārkalikhitaḥ Susaṁvādaḥ*, Baptist Mission Press, Calcutta, 1884.
13. *Lūkalikhitaḥ Susaṁvādaḥ*, Baptist Mission Press, Calcutta, 1878.
14. *The Gospel of St. John in Sanskrit; Yohanalikhitaḥ Susaṁvādaḥ*, Basel Mission Press, Mangalore,1876.
15. *Bhagavato Jīsasah Pārvatī Śiksā* (Translation in Sanskrit of the *Sermon on the Mount*), by Lachmi Dhar Shastri, Pulished by the translator, Delhi, 1982.
16. *Giriprabhāṣaṇam* (Translation in Sanskrit of the *Sermon on the Mount)*, The Bible Society of India, Bangalore, 1974.
17. *Girigīta* (Translation of the *Sermon on the Mount in Sanskrit*), by K.P. Urumese, Published by the translator, Trivandrum, 1974.
18. *Khṛṣṭayajñavidhiḥ* : The Ordo Missae Translated into Sanskrit from Latin by Ambrose Sureschandra Roy, Calcutta, 1926.
19. Īśvaroktā Śāstradhārā (*The Course of Divine Revela*

tion), by John Muir, Baptist Mission Press, Calcutta, 1846.

20. *Paramātmastava* (A Christian hymn in Sanskrit verse), Mission Press, Allahabad, 1853.
21. *Paulacaritam*, Calcutta, 1850.
22. *Khṛṣṭasaṅgītā* or "the Sacred History of Our Lord Jesus Christ in Sanskrit verses", Calcutta, 1842.
23. *Khṛṣṭadharmakaumudī* by J.R. Ballantyne, London, 1859.
24. *Khṛṣṭadharmakaumudīsamālocana* by Brajalal Mukhopa-dhyaya, Calcutta, 1894.
25. *Kristubhāgavatam,* by P.C. Devassia, Jayabharatam, Trivandrum, 1977.
26. *Sreeyesusourabham* by Soma Varma Raja, Geetha Prakashan, Cochin, 1974.
27. *Yeśucaritam* by J.Marcel, Second Edition, L.F.I. Press, Ernakulam, 1969.
28. *Mahātyāgī* by M.O. Avara (Translated into Sanskrit from original Malayalam) by Narayana Pisharoty, Published by the author (M.O. Avara), N. Perur 1976.
29. *Kristāyana* by Guru Gyan Prakash (Fr. Proksh S.V.D.) (Though in Hindi it has a last verse of every Chapter in Sanskrit),
30. *Kristunāmasahasram* by I.C. Chacko. Still in manuscript.
31. *Kristopaniṣad.* Details not available.

---

1. XVII 40. 2. XVII.52. 3.IV.48.4.IV.52

5. VIII.436. IV.47. IV.58. I.2.

9. I.2.10. Perliminary verses, verse 12.11. ibid., verse 1.

12. II. 38.13. II. 44.14. p. 9.15. p.13.



16. verse 7.117. verses 54-55.18. verse 94

# "Scientific literature in "Modern Sanskrit" with reference to Social Sciences (Education, Psychology & Methodology)".

DR. R. N. Aralikatti

1. That the Sanskrit language is a creative language even to this day, adding new achievemnts to its long and rich record of the past, has been rightly shown by the surveys undertaken in this field by late Dr. V. Raghavan's "Modern Sanskrit Literature" (1957) and by Dr. S.B. Varnekar's Marathi book "Arvachin Sanskrit Sahitya" (1963) The creative urge of many modern writers in Sanskrit in various fields today will testify that Sanskrit has been a living language with creative literature both literary and scientific. The aim of the present paper is limited surveying the scientific literature in modern Sanskrit with reference to social sciences like Education (or Pedagogy), Psychology, Methodoogy etc., since this has been virgin field for scholars trained in Sanskrit and these disciplines. The Saṇskrit commission, appointed by Govt. of India under the chairmanship of Dr. S.K. Chatterji rightly observes in its report (1956-57) (pp. 128) "The subject of Sanskrit Pedagogy (teaching), although important, has not engaged the attention of the authorities or scholars adequately. While in the west, the question of teaching the foreign and classical laguages has exercised the minds of educationists and several studies have been published on the methods to be followed in that connection, in India, Sanskrit Scholars, despite their enthusiasm, have unfortunately not directed sufficient attention to this subject. If due attention is paid to this question by recognizing "Sanskrit

Teaching" as a special subject of study and investigation many new ideas would suggest themselves and experiements could be carried on in teaching along the lines of modern researches." In partial fulfillment of the above suggestion, there have been a few studies on "Pedagogy and its allied sciences"-some based on original investigation and some on the model of the literature produced in English on these subjects. Here is a brief survey of such scientific literature in Sanskrit, produced in post independence era i.e. from 1949-1985, The author, the title, the publishers, the date of publication, the content & style, and the special features of ten such books published from all over India, are covered in this brief survey in sequential order. The select extract from the books are given in the appendix to demonstrate the style and language of the authors of these books.

"*Sanskritānus'īlanavivekaḥ*" (The problems of Sanskrit Teaching) by Pt. G.S. Huparikar Shastri is published by The Bharat Book stall, Kolhapur in 1949. The book consists of two parts—the first part in Sanskrit (100 pages) second one in English (560 pages). The Sanskrit section has 8 chapters. The first chapter deals with Questionaire eliciting the opinions of Sanskrit teachers on problems of Sanskrit teaching. The second one deals with the deplorable condition of Sanskrit studies and the ways and means to improve them.The third chapter presents a comparison of Eastern and Western method of study. The fourth chapter deals with the relative superiority of Eastern methodology over the Western one. The fifth chapter expounds the method of teaching Sanskrit prose and the sixth one with that of poetry. The seventh one presents models of lessons and the eighth deals with the significance of words. This is perhaps the first attempt in writing a book in Sanskrit on Sanskrit Methodology as early as 1949 when science of Pedagogy in India was not developed. The author Pt. Huparikar Shastri (the teacher of the present writer for his B.ED. degree in 1954-1955) has a

rare combination of both traditional and modern scholarship in Sanskrit and has taught Sanskrit both in Arts Colleges and Training Colleges. He has dwelt upon wider problems of Sanskrit studies both in Arts and Trainding colleges and also upon the higher Western methods of investigation, historical, comparative and philological and critical methods as used by the scholars in the East and the West. He has searched for theoritical basis of the methods of teaching in the Sanskrit Shastras and literature. According to him, there exists in the theories of पद, वाक्य and प्रमाण--- grammar, Meemansa and the logic, a sound, consistant and universal methodology which compares favourably with the western methodology. According to him, Western methods though good in some respects, have their own limitations and the traditional methods of the Shastris, not withstanding a few flaws in them, are well worthy of the appreciative notice of the modern scholars. He is of the openion that a happy combination of the best parts of the Estern and Western methods in the study and teaching of Sanskrit in its 3 diamensions–language, literature and Shastras will ensure better results (Vide the quotation in the appendix). The presentation of the matter and scientific facts in a clear, luncid and idiomatic at times shastric Sanskrit language is one of the special fetures of the author. His Scholarship in both the disciplines (Sanskrit and Pedagogy) is clearly evident on every page of the book. Any Sanskritist, apart from professional teacher, cannot but enjoy its reading as a scientific as well as a literary piece of work. (Vide extracts in Appendix for style and language)

2. The next book published on the Subject is *Bhāratasya Sanskritika Nidhiḥ* by Dr. Ramji Upadhyaya published by Gandhi Vishwa Parishad, Dhana Sagar (M.P) in 1958. The book with 510 pages has 14 chapters. It survays the cultural heritage of India including (Sanskrit) language, literature,

ancient system of education etc. and as such can be classified under Educational Sociology or Culture which in one way belongs to the discipline of education in its wider sense. The book has been divided into following 15 chapters--(1) Introduction (2) Sanskaras (3) Four stages (4) Social system (Verna–Vyavastha) (5) Necessities and luxuries (6) Vocation (7) Entertainments (8) Political life (9) Philosophical tendencies (10) Religious tendencies (11) Architecture (12) Sciences (13) Poetry (14) Influence of foreign countries (15) Conclusion. In the appendix reference to vocabulary is added. In the words of author himself, his motivation in writing this book in Sanskrit has been to vindicate that the Sanskrit language is not the dead language and to repudiate that enough literature (on modern topics) is not produced in that language. He has attempted to write the book in simple and contemporary Sanskrit. Occasionally he has followed the Hindi syntax and style. He has not insisted on Sandhis (conjoing words). He has adequately quoted the original texts, giving these references etc. in the foot notes. The books can be easily understood even by a general reder with minimum knowledge of Sanskrit up to S.S.L.C. level. Since it covers a wide range of subjects, like literature, art, sculpture etc. apart from religion and philosophy the interest of a general reader is sustained throughout. (vide extracts in Appendix for style & language).

3. The third book in sequential order is "*Manovijñāna-mīmānsā*" by Acharya Vishveshvar Siddhanta Shiromani, Prof. Gurukul Vrindavan, published by Atmaram & sons, Kashmiri gate Delhi, in 1959. The book with 316 pages has been divided into 25 chapters. The chapterisation is as follows (1) Definition & scope of psychology (2) Nature of mind (3) Nervous system (4) Stimulus response bonds (5) Distincts (8) Play (9) Learning (10) Attention (11) Habit (12) Volition (13) Character (14) Feeling (15) Perception (16) Memory (17) Imagina-

tion (18) Thinking (19) Emotions (20) Inteligence (21) Personality (22) History of Psychology (23) Schools of Psychology (24) Psycho-analysis (25) Dreams. From the above, it is evident that the book covers almost all the important topics in General Psychology that could be applied to education. The special feature of the book is that each *topic* is summarised in simple Sanskrit verses in Anustup metre which help students to memorize them – a special characteristic of Sanskrit Learning. For details, appendix at the end may be refered both for language and style of the author. Although the author has not quoted or cited references from English authors or books it is evident that he has adapted or translated most of the important definitions or concepts from standard texts in English on the subject. At the end of each chapter, he has given questions on the topics discussed in that chapter. For language and style of the author, the extract at the end may be refered.

The next Book under survey in sequential order is "*Svapna Vijñānam*" by Pt. Ramasvarupa Shastri of Aligharh University published by Aligarh University in 1960. The took with 72 pages discusses 14 topics. Introduction – svapna according to Nyaya, Causes of dream & nature of dream, dream – stage & its nature, Vaisheshik systems and dream, Sāmkhya system & dreams, Nyāya system and dreams, Illustrations nature and fruit of bad dreams, ways to overcome bad dreams, good dreams & *Agnipurāṇa*, Vedānta- darashana dream, dreams as described in *Māṇḍūkyopaniṣad*, Yoga darshan and dreams, the prīmary objective and conclusion.

It is a rare treatise in Sanskrit dealing with original philosophical thoughts pertaining to "A science of dreams". Here Shastriji presents comparatively and synthetically the phenomena of Dreaming. As Dr. Siddheshwar Varma, rightly says in his review. "Sanskrit authorities have not cared to handle minor concepts like dream, intellect, memory etc.

synthetically and comparatively, though on major concepts like unity, Realisation etc. synthetic presentations are copiously available. The author lucidly explains the various human states like waking etc. first and then proceeds to define a dream (P.7) as that consciousness of an object which arises when the functioning of the senses has been withdrawn and which originates from the impressions of the waking state. These immediate conditions of the dream, however, are further traced to wider principles, e.g. to the falsity (मिथ्यात्व) of the Vedata and to the *Avidyā* of the *Vaišeṣika*. A very lucid and interesting exposition of the phenomena of dreaming, on the basis of Vaisesika then follows. But, above all, the treatment of this phenomena from the standpoint of the Sankhya is by far the most interesting and has been happily expounded by some stories (P.13 ff). The treatment from 'Yoga' standpoint brings a wealth of psychological terms in this connection. The author further draws on materials from poets, folklore and Sanskrit. The language of the work is highly ornate and rhetorical and often too much pedantic or Shastric. The author should have considered the views of Sigmund Freud & others in which case it would have struck a modern note. Poor documentation or lack of proper division of the subject and arrangement of paragraphs has been the main draw back of this book.

5. The next book under survey in sequential order is *Arvācina Manovijñānam* by Pt. Mamaraja Dutta Kapil, published in Sampurnanand book-series (N0 3) Varanaseya Sanskrit Vishwavidyalaya in 1964. The book in 395 pages, has 16 chapters. They are-- (1) Nature of psychology, (2) Nervous system & development, (3) Influence of heredity & environment, (4) Reflex action and Instincts, (5) Nature of consciousness, (6) Nature of attention (7) Sensation (8) Perception (9) Habit and learning (10) Nature of thinking (11) Nature of imagination (12) Nature of Memory (13) Feelings and emotion

(14) *Volitional* acts (15) Personality (16) Abnormal psychology. In each of the above chapters the author has incorporated the view of Indian schools of phylosophy & psychology enabling the readers to have a comparative and caritical view. He has profusly quoted from standard texts in psychology in English in the footnotes and has given appropriate references too therein. The book reveals author's thorough acquaintance with Indian philosohies and entire Sanskrit literature as evidenced, in the profuse citation in the footnotes. His style and language are more ornate (shastric style) though modern simple Sanskrit is also employed here and there. The book can be considered a as a contribution to the Sanskrit literature on this scientific subject.

6. The next book, under survey, is "*Abhinava Manovijñānam*' by Dr. Prabhudnyal Agnihotri (Rtd. Vice-Chancellor, Jabalpur University) published in Smpurnananda granthamala (6) Sampurnanand Sanskrit University in 1965. The book with 258 pages has 25 chapters.

   They are :- (1) Nature of psychology (2) Branches of psychology (3) Relation of psychology with other sciences (4) Nervous system (5) Consciousness (6) Mental process (7) Attention (8) Sensation (9) Perception (10) Learning (11) Memory (12) Imagination (13) Thinking (14) Feeling (15) Emotions (16) Reflex action and instincts (17) Volitional acts (18) Habit (19) Intelligence test (20) Sleep & dream (21) Personality (22) Causes of difference in Personality (23) Unconscious mind (24) Indian view about unconscious mind (25) History of Psychology. The author has added at the end the technical vocabulary from English to Sanskrit and Sanskrit to English. In each chapter too, he has given the appropriate teachnical word in English in the footnote to avoid any possible misconception or wrong use of the teachnical words. The book is adequately illustrated with diagrams, tables, graphs etc. which add to the value of the

book as a modern scientific book with necessary visual representation. The author who combines in himself the arudite scholarship in Indology and discipline of Education shows his thorough command over the subject. His Language is simple but idiomatic (Sanskrit) and his style, precisely scientific and modern. The extracts from his works at the end may be referred. (He has chaired Vedic section of A.I.O.C. in Nov. 1985)

7. The next book, Under survey in sequential order is *Anusandhāna Paddhatiḥ* (pp.50) by Dr. Bhagiratha Prasad Tripathi published in Sampurnanda book series (8) by Varanaseya Sanskrit Vishvavidyalaya Varanasi in 1970 (Vaikramabda 2026). The book with 50 pages, contains the following 24 topics which are discussed in brief sequential order. The topics are: (1) Meaning of research (2) Pcocess (3) Scientific method (4) Eligibility (5) Training in research (6) Selection of the topic (7) Collection of data (8) Nature of the text (9) Style of presentation (10) Nature of research (11) Disitnction between criticism and research (12) Introductory part of the research (13) Act of research (14) Present position (15) Real nature of research (16) Some deficiencies (17) Historical research (18) History and etymological explanation (19) Power of thinking (20) Thinking not a science but an art (21) How to think correctly (22) Imagination and originality (23) Joy of research (24) Continuing one's research. At the end the select bibilography of English books on Research methodology is given. The book can be viewed in two parts-the first one from I to 18 topics deals with all the principls of Research Methodology in brief and the second one deals, with the ways and means of correct thinking and cultivation of originality and research in briefest possible manner. The author has established his reputation as researcher by his research work and a polyglot knowing many European languages too and has brought to bear upon his works his erudite scholarship and vast

experience in this field. He has highlighted the importance of looking at data from various angles and critically evaluating its worth, with creative out looks. Perhaps the book is first of its kind to acquint traditional Sanskrit scholars with modern scientific principles of research methodology and is thus a significant contribution to Sanskrit literature on the subject. For Language and style, the extracts from the books at the end in the appendix may be referred.

8. The next book under survey, in sequential order,is *Śikśhā—Manovijñānam* by Pt.V.S. Venkataraghava -char, Principal Kendriya Sanskrit Vidyapeetha, Tirupati (Rtd.), published Under secular subject series (1) by the K.S. Vidyapeetha, Tirupati in 1971. The book with 344 pages is divided into ten chapters. They are:-
(1) Definition & scope of education psychology (2) Biological basis-the heredity and enviroment. (3)The nervous system. (4) Human beheviour-Instincts (5) Learning (6) Thinking (7) Intelligence (8) Personality (9) Group-psychology (10) Psychology in ancient India. The book has 3 appendices-one about technical vocabulary, the second references to authors and names cited in the text, the third topic wise list of content for ready reference, As the author rightly states it is the first attempt at writing educational psychology in Sanskrit. Major important aspects of the subject have been covered. The noteworthy feature of the book is that it has incorporated rare photoes of all the important psychologists of various schools of psychology. The book, has been written in easy flowing style in Sanskrit and is thus a contribution to the vast ocean of Sanskrit literature.

शिक्षा सम्बन्धि मनोविज्ञानं प्रतिपादयन्नयं ग्रंथः संस्कृतभाषायां विरचितः इदंप्रथमतया आत्मानं आविष्करोतीति प्रमोदस्थानम् । अतिविपुलसंस्कृत ज्ञानसागरेण इयं शिक्षामनोविज्ञानसरिदिदानी संगमं प्राप्नोतीति सन्तोष्टव्यमेव ज्ञानवृद्धिपक्षपातिभिः विद्वद्भिः ।

For the language and style of the author the

extracts at the end may be refered. The limitations of the book are evident that much of the information and many of the theories propounded here are outdated and the book may not appeal to an advanced student of modern psychology from the point of view of contents. Viewing it as a first attempt in Sanskrit in early seventies, the book has its own place in the history of Sanskrit literature on modern social sciences like psychology.

9. The next book under survey in sequential order is "*Prācīn Bhāratīya Mano-vidyā*" by Pt. Dinesh Chandra Bhattacharya Shastri, of Calcutta University, published by Nagendra Prajñā Mandir Calcutta in 1972. The book with 374 pages has been divided into 22 chapters. They are: (1) Introduction (2) Nature of mind (3) The soul and the human person (4) A general account of attributes and modification of mind (5) The cognitive modification of mind (6) Emotional modification of mind (7) Volitional modification of mind (8) The unperceived modification (9) Perception-definition of determinate perception (10) Indeterminate perception (11) Extraordinary perception (12) Intuitive perception of self. (13) Perception of time, space, negation of Universals (14) Intuitive knowlede (15) Mediate cognition (16) Theories of error (17) Hallucination-fancy (18) States of consciousness (19) Psychological types (20) Psychology of Education (21) Psychological saying (22) A general Survey.
At the end errata and bibliography with abbreviations are added.
From the contents, detailed above, the book may appear to be one belonging to the field of Philosophy. This is obvious because psychology has been a part of philosophy not only in India but even in European countries till the end of eighteenth century. It is treated as a different discipline only in recent time—from the date of establishment of Laboratory for experimental psychology by Windt in Leipzig. This is also perhaps the first attempt to write a systematic treatise on Indian psychology in a comprehensive manner.

In all Indian schools (of philosophy) epistomology known as प्रमाणशास्त्र. occupies an important place and it forms an indispensable prolegomenon to metaphysics (प्रमेयशास्त्र). The author of the present work has fully exploited the available materials as recorded in works of Indian Philosophy of various schools. He has tried to interpret them in the light of his researches for long years in the ancient and modern thought on the subject. Many psychological findings as embedded in India's philosophical literature would strike a modern mind as extraordinarily modern. The author has dealt with the psychology of emotions as speculated in the literary aesthetic experience of delight known as 'Rasa' theory and these have not superceded by modern psychology which is more behaviour or laboratory oriented. The author has reviewed the opinions of each and every important school of Indian Philosophy both astika and nastika, in course of his discussion of each topic, in the book. Prof. Satkari Mukharji, has lightly stated in his foreword, "the author's style of presentation is reminiscient of the celebrated classics. Prof. Shastri's achievement and his super command over Sanskrit language would receive wide appreciation at the hands of all Sanskrit scholars. The learned author has made compreshensive survey of all the Indian schools of psychology and has shown many common principles underliying the different systems against the back-ground of western psychologists like Freud and others. His profuse citations from vast Sanskrit literature on every page, giving their reference in the footnotes reveals the authors erudite scholarship and research acumen. For Language and style, the extracts from the work at the end (in the appendix) may be referred.

10. "*Mānascikitsāvijñānabhūmikā*" by Dr. Haradwarilal Shrama, Retired Director, Pscyhological Laboratory, Allahabad, and published by Lal Bahadur Shastri, K.S. Vidyapeeth, New Delhi in 1981 is a book on

psychology written in simple and chaste Sanskrit. It is divided in 8 Chapters-(I) Introduction, (II) Nature of Mind, (III) Ideas of Jung, (IV) Common among the three the Freud, Jung and Adler, (V) The mental diseases of mind, (VI) The methods of Treatment of mind, (VII) The classification of mental diseases and the methods of their treatment. (VIII) mental Health-An Indian View.

From the above broad contents of the Chapters in the books, it would be clear that the books deals with school of psycho- analysis of Freud and others in particular. It analyses the main tenents of the three main advocates of this School highlighting the diagnosis and the treatment of mental diseases as propounded by various psychologists. A Comparative view of the Indian Concepts in this field is given in brief at the appropriate places and at the end. Thus the book fulfills the long felt desideratum - production of Book in Sanskrit on Modern Sciences like Psychology. The Language is simple and chaste and hence at once captivating. The style is illustrated from the passage cited at the end.

In Pursuance of the recommendation of the Sanskrit Commission, Govt. of India established Kendriya Sanskrit Vidyapeetha at Tirupati in 1962 and the Dept. of Pedagogy and training wing started functioning from the very inception, with a view training traditional Sanskrit Pandits in modern methods of teaching and acquinting them with current trends in Education based on reseach findings. It is very recently i.e. since 1983-84, that the Dept. has started the post graduate study and research leading to Masters and Doctorate degrees in Sanskrit education. And in course of these years, the following research studies and investigations on various aspects of Sanskrit Padagogy have been duly approved by the educationists and researchers in the field of education and the following dissertations have been duly approved and the candidates have been awarded degrees. Though

dissertations have not been published as yet they do deserve to be mentioned here in such a survey.

(1) A diagnostic study of difficulties experienced by the teachers in teaching Sanskrit poetry by Shri L.N. Pandey (M.Ed. 1984)
(2) A study of reading achievement apropos vocabulary in Sanskrit of VII class students of Tirupati by Kum. C. Kumari (M.Ed. 1984)
(3) A diagnostic study of common spelling erros in Sanskrit of High school pupils in Tirupati by Shri N. V. Manikyalrao (M.Ed. 1984).
(4) A study of attitude of Sanskrit and New Sanskrit undergraduates towards modernisation by Shri M.Chandrasekhar (M.Ed. 1984)
(5) A study of moral judgements of High school pupils in Chittoor Dt. by Kum. R. Geetavani (M.Ed.1984).
(6) A study of guidance needs of the oriental school students (ix & x) in Chittoor & West Godavari Dt. by Kum.C. Ranganayakamma (M.Ed.1985)
(7) A study of difficulties experienced by the teachers in teaching Sanskrit prose (M.Ed.1985) by Sri Ravindra Prasad.
Apart from this, Lal Bhadur Shastri Delhi Vidyapeetha has also contributed couple of dissertations in Sanskrit- Use of Audio–visual Aids in Sanskrit teaching- by Shri V.Muralidhar Sarma and "Influence of mother Tongue (Telugu) on Sanskrit pronunciation' by Shri J.Bhanumoorthy, "Effectiveness of co- corricular activities in the development of students of Delhi Schools" by Kirtikant Sarma, need to be metioned. Apart from the unpublished but approved dissertations, Shri P.Nagmuni Retd. Lecturer in Pedagogy, Tirupati Vidyapeetha is working on "Programmed learning" with reference to Sanskrit Teaching and Mr.V. Muralidhar Sharma of Delhi Vidyapeetha, is working on "Micro-teaching as applied to Sanskrit."
The books on philosophy of Education, general

principles of teaching methodology, Administration of Educacion and teaching methodology of Sanskrit Sahstras etc. are being written in Sanskrit by the staff of the Pedagogy Department, Tirupati Vidyapeetha including the writer of the present articles.

From the brief survey of the scientific literature in Sanskrit with reference to Education, Psychology, Methodology etc. it is evident that the creative urge to produce scientific literature in Sanskrit on modern discplines has not died down and Sanskritists have taken up this challange. Is it not a matter of pleasure and pride for Sanskritist and Sanskrit world that these new streams (rivers) of knowledge join great ocean of Sanskrit literature ?

## Appendix

## Specimen quotations to demonstrate the style and language of these Scientific writers in Sanskrit-

### (1) संस्कृतानुशीलनविवेकाख्यग्रन्थात् पं0 जी0 एम0 हुपरीकर-प्रणीतात् ग्रंथात्-(pp.14, Edn. 1949)

प्राच्यानामध्यनाध्यनपद्धतिर्बहुशो मुखाधिष्ठिता, न केवलं ग्रंथाधिष्ठिता, तेषां न तथा पल्लवग्राहिपाण्डित्ये समादरः यथा विद्यते मूलग्राहिपाण्डित्ये येन ते ग्रंथगतं प्रधानविषयं यथायथं प्रवक्तुं पारयन्ति। एषैव प्राच्यविद्वद्गुणसम्पद् अतन्द्रितेन मनसा परिरक्षणीयेति सुतराम् आवश्यकम् । नात्रास्मासु प्राच्यपण्डितगुणैकपक्षपातित्वं स्वदोषनिगूहनपरत्वं वा आरोपयन्तु मनीषिणः । प्राच्यगुणेष्विव प्रतीच्यगुणेष्वपि वयं बद्धादराः । यथा पाश्चात्त्यपण्डिताः संस्कृतग्रंथाध्ययने सारग्राहिणीं विचिकित्सापद्धतिं समवलम्व्य स्थलकालेतिवृत्तादिविमर्शपूर्वकं गवेषणापूर्णान् सिद्धान्तान् उपयादयितुमीशते न तथा पौरस्त्यपण्डिताः ।

प्राच्यविद्वांसो विश्लेषणपद्धतिमाश्रित्य काव्यगतश्लोकानामेकैकशो रसभावालङ्कारविवरणे मतिप्रकर्षमाविष्कुर्वन्ति । पाश्चात्त्यरसज्ञास्तु अन्यादृशीमेव काव्यसमीक्षापद्धतिं प्रकटयन्ति । संश्लेषणपद्धत्या तस्य तस्य कवेः काव्यजातमालोड्य शब्दान्तर्हिता विविधप्रवृत्तीः संपरीक्ष्य च तस्य तस्य मनसो मूलाधिष्ठानं संकलनेन अभिव्यक्तुं काव्यरसमास्वादयितुं च ते क्षमाः । पौरस्त्यविद्वांसश्च मूलग्रंथविवेचने निपुणतमाः सन्तोऽपि ग्रन्थसम्बधिनः स्थलकालेतिवृत्ताद्यानुषङ्गिकविषयान् न जानन्ति न वा तत्र समवदधते अतः दृष्टिसङ्कोचं दूरीकुर्वाणा वितततालोकं विदधाना च प्रतीच्यानामध्ययनाध्यापनपद्धतिः पौरस्त्यपण्डितैरवश्यमभ्युपगन्तव्या ।

## (2) डॉ० रामजीउपाध्याय प्रणीतात् 'भारतस्य सांस्कृतिक निधिः' इत्यस्मात् ग्रंथात् (pp. 48, edn. 1958)

पुरा योग्यविद्यार्थिनां प्राप्तये गुरवः सदैव प्रयत्नशीला बभूवुः। प्रतिभा-शालिन्या शिष्यपरम्परया आचार्यः परिश्रमेणार्जितं स्व ज्ञाननिधिमक्षुण्णं कर्तुमियेष । कालिदासानुसारं तु विनेतुरद्रव्यपरिग्रहोऽपि बुद्धिलाघवं प्रकाशयति। वैदिककाले विद्याप्राप्तिसमर्थां प्रतिभां दृष्ट्वैवाचार्यः विद्यार्थिनः स्वीकरोतिस्म । निष्प्रतिभास्तु गुरुगृहं परित्यज्य कृषौ वस्त्रनिर्माणे वा नियोजिताः । विद्यार्थिनो मनोवृत्तिं परीक्ष्यैव व्यवसाय-नियोजनमक्रियत । उपनिषत्सु विद्यार्थिनां स्वीकरणात्प्राक् तेषां परीक्षणस्य वृत्तानि लभ्यन्ते।

प्रथमं तावत् गुरुभिः सह संलापात् प्रागेव तपसो वार्ता दृश्यते । (छां0 8-7-3) पिप्पलादस्तु कौसल्यस्य ब्रह्मनिष्ठत्वं दृष्ट्वैव तम् आत्मविद्याया दानाय स्वीचकार । कठोपनिषदि नचिकेतसः परीक्षायाः वर्णनं दृश्यते ।

## (3) आचार्यविश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणिप्रणीतात् 'मनोविज्ञान-मीमांसा'ख्यग्रन्थात्

(a) व्यक्ताव्यक्तमनोव्यापाराणां वैज्ञानिकमध्ययनं मनोविज्ञाने विधीयते इति प्रतिपादितचरम् । तत्र सामान्यतो व्यक्ता मनोव्यापाराः एव

मनोवृत्तिपदेनाभिधीयन्ते । मनोवृत्तिः सर्वा अपि सामान्यरूपेण ज्ञानात्मिका वेदनात्मिका क्रिया चेति त्र्यंशा भवति । रात्रौ कदाचिन्मन्दान्धकारे पथि सर्पवत् परिपतिता रज्जुरपि सर्पवदवभासते । तदा ततः सर्पोऽयमिति ज्ञानं तन्मूलिका च भयस्य वेदनानुभूतिर्वा तन्निमित्ता पलायनक्रिया चेति त्रयमपि युगपदेव उत्पद्यते । अस्मिन्नुदाहरणे मनोवृत्तेः त्रयोऽप्यंशाः स्फुटं प्रतीयन्ते ।

(b)दृश्यन्ताम् अनुष्टुप्छन्दोग्रथिताः सरलतथ्यप्रतिपादकाःश्लोकाः

लोकव्यापारसाफल्यसमुत्कर्षविधायकम् ।
मनोविज्ञानशास्त्रं वै सर्वलोकोपकारकम् ।।१।।
व्यक्ताव्यक्तमनोनिष्ठा विज्ञाताज्ञातहेतुका ।
विवेचनीया व्यापाराः सर्वे शास्त्रेऽत्र सम्मताः ।।२।।
वस्तुवृत्तसमाहारो वर्गीकरणमेव च ।
अनुस्यूतस्य सूत्रस्यानुसन्धानं तदन्तरा ।।३।।
परीक्षाद्यै प्रयोगैश्च नियमस्यावधारणम् ।
अध्ययनस्य पञ्चाङ्गो विधिर्वैज्ञानिको मतः ।।४।।
निरीक्षणम् अन्तर्दृष्टिः परीक्षा तुलना तथा ।
मनोविश्लेषणं चेति पञ्चात्र विधयो मताः ।।५।।
संवेदनं च प्रत्यक्षं स्मरणं कल्पना तथा
विचारश्चेति ज्ञानाख्या मनोवृत्तिस्तु पञ्चधा ।।६।।

## (4) पं0 रामस्वरूपशास्त्रिप्रणीतात् ''स्वप्नविज्ञानाख्य'' ग्रंथात् (pl -15)

अथ खल्वपरोक्षं हि विदुषां शेमुषीजुषां विदितवेदितव्यानां कृत-कर्तव्यानां समुचितसुकृतान् निखिलवस्तुतत्त्वालोचिनां सदसद्विवेकिनां यत् विधातुर्विविधवैदग्धीसुविधिरचनारचिते सप्रपञ्चेऽस्मिन्प्रपञ्चे न ह्यकारणकं किञ्चित् उद्भवितुं शक्नोति इति हेतोर्निखिलमपि

जगत्सकारणकं विद्यते, तदन्तर्गतवस्तुजातं जडं सचेतनं चेत्युभयप्रकारं साकारन्निराकारं सप्रसारन्निप्रसारं स्तोकप्रचारमस्तोकप्रचारञ्च सन्निमित्त-कारण-जन्यमवश्यमेवाङ्गीकर्तव्यं नियमतस्तदपेक्षितत्वात् ।

## (5) पं0 मामराजदत्तकपिलप्रणीतात् 'अर्वाचीन-मनोविज्ञान' ग्रंथात् (p. 2, Edn. 1964)

मनोविज्ञानस्य परिभाषायां विचार्यमाणायां संक्षेपतः इदमुच्यते मनो-ऽधिकृत्य यद विज्ञानं प्रवर्तते तन्मनोविज्ञानम् । किन्तु अनेनैव मनोविज्ञानस्य व्याख्या न तावत् स्फुटीभवति यावत् वयं समस्तपदयोः मनोविज्ञानयोः पृथक्तः सविस्तरं विचारं न कुर्मः । ननु किं मनोविज्ञानं शास्त्रं न भवति ? अत्रोच्यते-नास्ति मनोविज्ञानं शास्त्रम् । सर्वाणि शास्त्राणि विज्ञानपदवीं भजन्ते, न तु सर्वाणि विज्ञानानि शास्त्रपदेन व्यवहर्तुं शक्यन्ते । विज्ञानपदस्य इदं वैशिष्ट्यम् अग्रे वक्ष्यामः । प्रथमतः शास्त्रपदस्यैव व्याख्या क्रियते । शासनात् शास्त्रम् । चंद्रकीर्तिना मूलमाध्यमिककारिकाटीकायामुक्तम् ''तच्छासनात् त्राणगुणाच्च शास्त्रमेतद्द्वयं चान्यमतेषु नास्ति'' (मू0 मा0टी0 1-3) । आचार्य कुमारिल भट्टेनापि शास्त्रशब्दस्येत्थं स्पष्टीकरणं कृतम् । तथा हि

प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा ।
पुंसा येनोपदिश्येत तच्छास्त्रमभिधीयते ।। (श्लोकवार्तिकम)

## (6) डॉ0 प्रभुदयाल अग्निहोत्रीप्रणीतात् 'अभिनव-मनोविज्ञान' ग्रंथात् (pp.2,Edn.1965)

अनवरतं परिवर्तनं विश्वस्य सामान्यः स्वभावः । अस्मिन् परिवर्तने मानवो न केवलम् उदासीनो द्रष्टा भवति अपितु स स्वयं परिवर्तनं निदधाति । बाह्याः परिस्थितयः प्रतिक्षणं तस्य स्थितिं परिवर्तयितुं तस्य शक्तिसन्तुलनं नाशयितुं वा चेष्टन्ते । मानवश्च प्राणपणेन शक्तिसन्तुलनं स्थिरीकर्तुं प्रवर्तते । शक्तिसन्तुलनस्थापनायै आत्मनो यथास्थानं स्थापनायै वा स अनेकाः व्यक्ता अव्यक्ताश्च चेष्टाः करोति । मनोविज्ञाने एतासां

चेष्टानामध्ययनं विधीयते; तच्चातीवोपयोगि । साम्प्रतं पदार्थ-विज्ञानेन अस्माकं ज्ञानं बाह्यवस्तुविषये विवर्धितम्, तथापि मनश्चेष्टा-स्वभावविषयकं ज्ञानं अद्याप्यपूर्णमेव । मनोविज्ञानं मानवप्रकृति-चेष्टादिविषयकज्ञानोपार्जनस्य साधनम् । न च मानसिकक्रियाणां सम्यग् ज्ञानं बिना तासु नियन्त्रणं शक्यम् ।

## (7) भागीरथप्रसादत्रिपाठिप्रणीतात् 'अनुसन्धान पद्धतिः' इत्याख्यग्रंथात् (pp.3, Edn. 1970)

पाश्चात्त्यदेशेषु प्रदास्यमानः ''डाक्टर'' इत्युपाधिः पूर्वं चर्च (Church) उपदेशकानां 'फादर' इत्यभिधेयानाम् अध्यापकानां कृते दीयते स्म । Thesis निबन्धशब्दस्य मूले ग्रीकभाषायाः थे इति धातुर्विद्यते। संस्कृतभाषायां च धा धातुर्निश्चेयः । ग्रीकभाषायां ''थे'' इति धातुः धारणार्थकः, संस्कृतभाषायामपि तथा । उपाधिधारकाणामध्यात्मविषय-पण्डितत्वात् उपाधिश्चायमध्यात्मविषयको भवति स्मेति संस्कृत-भाषायामपि आत्मविषयकचिन्तनस्यार्थे ''अनुसन्धान'' इति शब्दप्रयोगः उपनिषत्सु तत्त्वानुसन्धानपरः । स च समाम्नायधारक एव ।

## (8) पं0 व्ही 0 एस्0 वेंकटराघवाचार्य-प्रणीतात् 'शिक्षा-मनोविज्ञान' ग्रंथात् (pp.38,Edn.1971)

शिक्षामनोविज्ञानं सामान्यमनोविज्ञानसिद्धान्तानुपयुङ्क्ते शि-क्षायाम् पाठशालारूपवातावरणेन पाठ्यचर्यया च बालानां शक्तिः आचरणं च कथमन्यथा जायते इति विचारयति । समीचीनवातावरणोत्पादनेन उचितपाठ्यचर्याकल्पनेन च बालानां शक्तिः सम्यक् विकसिता जायते । अध्यापनमध्ययनम् इतीदमुभयमपि समीचीनं क्रियते अनेन मनोविज्ञानेन। शिक्षितं च यथा स्थिरं स्यात् तथा कल्पयति इदं मनोविज्ञानम् । बालानां शक्तिः विद्यावगमे कियती वर्तते इति अवबोधयति; शिक्षानियमानुसारं अध्यापयितुमुपाध्यायमुद्योजयति । बालानां बुद्धिपरीक्षामुपलब्धिपरीक्षां च कृत्वा कक्षायां स्थितान् विभिन्नबुद्धिस्तरान् बालानध्यापयितुम् उपाध्यायस्योपकरोति । बालेषु चिन्तन-कल्पन-युक्त्यनुसन्धानादिकौशलं वर्धयितुमिदमेव शिक्षामनोविज्ञानं साहाय्यमाचरति । शिक्षामनोविज्ञान

वानेवाचार्यः अध्यापनप्रणालीः सम्यगवगत्याध्यापयितुं शक्तः स्यात् । सः एव शिष्येषु अनुकम्पावान् स्यात् । अयमेवाचार्यः बालानां व्यवहारान् सर्वानगत्य तेषां वैयक्तिकधर्मविकसने चोपकुर्यात् । संग्रहेणैवं वक्तुं शक्यं बालमनःकमलमुकुलविकासे शिक्षामनोविज्ञानवानेवाचार्यः सहस्रभानुर्भवतीति ।

## (9) पं0 दिनेशचंद्रभट्टाचार्यप्रणीतात् 'प्राचीनभारतीय मनोविद्या' ग्रंथात् (pp.51,Edn.1972)

इंद्रस्येदमिति व्युत्पत्त्या इंद्रस्य संघातेश्वरस्य कर्तुः करणमिन्द्रियम्। कर्तुः आत्मनः बुद्धेर्वा ज्ञानादिकरणत्वेन इंद्रियाणि कल्प्यन्ते । उक्तं च 'न च केवलात् आत्ममनःसन्निकर्षादेव रूपाद्यवगमः अन्धादीनामभावा' दिति। यद्यप्येषा प्राभाकराणामुक्तिः तथाप्येतत्सर्वेषामेव नैयायिक-वैशेषिक-मीमांसक-सांख्य-वेदान्तिप्रभृतीनां प्रायशः सम्मतमेव । अधिकं तु पञ्चकर्मेन्द्रियाणि वचनादानादीनि क्रियासाधनानि वाक्पाणिपाद-पायूपस्थाख्यानि सांख्यवेदान्तिप्रभृतिभिः अङ्गीकृतानि । आयुर्वेदेऽपि दशेन्द्रियाणि बुद्धीन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय-भेदेनोक्तानि । जैनमतेऽपि दशेन्द्रियाणि न एकादश । सांख्य-पातञ्जल-रामानुजादिमतेषु एकादशत्वेऽपि न भौतिकत्वमिन्द्रियाणामपि त्वाहङ्कारिकत्वमेव ।

## (१०) हरद्वारीलालशर्मप्रणीतात् 'मनश्चिकित्सा-विज्ञान' नामकात् ग्रंथात्-(pp.23,Edn.1981)

## आधुनिकानां विचाराः-

फ्रॉयडवादस्य वैज्ञानिकता सर्वैः एव स्वीकृता । स्वतन्त्रेषु सशक्तेषु च तर्केषु प्रतिष्ठितः अयं प्रकामं कामसिद्धान्तः । कामः देहजो भवति । देह-सारैः शरीरान्तस्थितैश्च रसैः अहरहः सिच्यमानः अयं कामः सर्वदैव प्रवर्धते, नियमयति च मनसो व्यापारान् उत्तेजयति च शरीरधातून् । कथमस्य शमनं भवेत् ? इत्येक एवास्ति प्रश्नः । नवीनैः उन्मुक्तभोग-सिद्धान्तः सर्वत्र अङ्गीकृतः । स्वीकरणेन समुद्भूता आधुनिका संस्कृतिः, अर्वाचीना योरोपीयसभ्यता च । किन्तु उन्मुक्तभोगवादस्य परिणामान्

मनसि आलोच्य कैश्चित् विचारकैः इदमपि चिन्तितं यन्नास्ति अयं कामसिद्धान्तः लोकानां कल्याणाय, नास्ति वा इदं परमं सत्यं यत् फ्रॉयडमहोदयोऽवादीत् मनुष्यविषये । परिणामतः इयम् इदानीं स्थितिः प्रवर्त्तते-सन्ति फ्रॉयड-महोदयम् अनुवर्तमानाः केचित् चिन्तकाः, येषां मते यत् फ्रॉयडः अवादीत् तत्सत्यमेवावादीत् ।

सन्ति च नवफ्रॉयडवादिनः अनेके सिद्धान्ताः इदानीं प्रचलिताः । ते फ्रॉयडमहोदयम् अनुसरन्तोऽपि इतस्ततः किंचित् परिवर्तन अनुमोदयन्ते।

सन्ति च फ्रॉयडविरोधिनो राद्धान्ताः ये मनश्चिकित्साविज्ञानस्य नूतनान् कानपि आधारान् प्रतिपादयन्ति । मनोरुजां तेषां व्याख्यापि अपूर्वा, चिकित्साविधयश्च नूतनाः सन्ति ।

सन्ति चान्ये अत्याधुनिकाः मनश्चिकित्साविज्ञानविधयः अश्रुतपूर्वाः अपि विज्ञानसम्मताः ।

एतेषां सर्वेषां व्याख्यानं नात्र सम्भवति । संक्षेपेण, साररूपेण च एते अत्र संगृह्यन्ते ।

यच्चास्ति सर्वेषां सारभूतं आधारभूतञ्च तत्तु इदमेव-अस्ति मनः । तन्मनः चेतनाचेतनरूपं द्विविधम् । महानस्ति अस्य विस्तारः, तद् अनूभूतीनां संस्कारावशेषसहस्रैः निर्मितम् । शरीरेण सह नद्धपरिवेशे च समाजशक्तिभिः सह संघर्षे संलग्नम् । विभजनाच्च हेतोः अविभक्तमपि विभक्तमिव अन्तर्द्वन्द्वात्मकेषु संघर्षेषु रतम् अत एव व असुखम् अस्वास्थ्यं च अनुभवति, स्वास्थ्याय सुखाय च मानसोपचारविधिभिः पुनरपि एकं प्रविभक्तं भवतीति ।

# आधुनिकसंस्कृतस्य समर्चनायां संस्कृतपत्रपत्रिकाणां विशिष्टं प्रदानम्

डॉ0 रूपनारायणपाण्डेयः

वर्तमानकाले संस्कृतजगति नवनवसाहित्यसंरचनायां संलग्ना अनेकाः पत्रपत्रिका विराजन्तेतराम्, तासु सुधर्मा-संविद्-संगमनी-सागरिका-विश्वभाषा-दिव्यज्योतिः-परिजातम्-भारतोदय-अर्वाचीनसंस्कृतम्-प्रभृतिपत्रिकाः समाश्रित्य लघुलेखेऽस्मिन् तासां विशिष्टं प्रदानमत्र संक्षेपेण यथामति मन्दमतिना मया प्रस्तूयते । आधुनिकसंस्कृते साम्प्रतं विविधानि काव्यानि, कथाः, नाटकानि, समीक्षाः, शोधप्रबन्धाः, बहुविधाः शास्त्रीयाः ग्रन्थाः, अनेकविधेष्वाधुनिकविषयेषु च प्रभूता ग्रन्था मौलिका अमौलिकाश्च प्राणीयन्त प्रणीयन्ते च, तेषाम् अनेकेषां काव्यादिग्रन्थानां प्रथमं प्रकाशनं संस्कृतपत्रपत्रिकास्वेव जातम् ।

संस्कृतस्य दिनपत्रिका सुधर्मा यद्यपि वार्ताप्रधाना वर्तते, तथाप्यस्यामप्यनेकानि मधुराणि काव्यानि प्राकाश्यं नीतानि; तेषु कानिचन सन्ति-श्रीजगन्नाथस्य (मैसूरवासिनः) 'स्वागतम्' श्री एम0 के0 सुन्दरेशशर्ममहाभागस्य 'कृष्णरायविजयम्', श्रीसीताकान्ताचार्यदेवशर्मणः 'देवर्षेर्नारदस्य मोहः', श्री ना0 व0 निगमान्तमहोदयस्य 'अजामिल-चरितम्', पण्डितदिगम्बरमहापात्रस्य 'दुर्नीतिपुराणम्', 'मानसहंस-विहारः' च, श्री एम्0 एम्0 दवेमहाभागस्य 'सुरसभा स्वप्नदृष्टा', श्रीकेशवचन्द्रदाशस्य 'प्रीतिनैवेद्यम्', श्री के0 एन्0 नम्बूदिरिमहोदयस्य 'इन्दिरा प्रियदर्शिनी', विद्वद्वर्यस्य बालगणपतिभट्टस्य 'सद्वाणीशतकम्', श्रीसुन्दरराजन्महाभागस्य 'सुरश्मिकाश्मीरम्' 'इन्दिरागीतिः' च, श्री वि0 वेङ्कटराम-

भट्टस्य 'भामिनीमाधवकथानिदानम्', वटोदरस्थस्य पं० या० वि० देवासकरमहाभागस्य 'भारतो भास्वरो देशः' 'राष्ट्रपितुर्गुरुः' 'सोऽयं पञ्जाबकेसरी' च, अभिराजस्य डा० राजेन्द्रमिश्रस्य 'गलज्जलिका', पं० रामकृष्णशास्त्रिणः (सुप्रभातसम्पादकस्य) 'राष्ट्रधर्मोऽभिवर्धताम्', श्रीधीरेन्द्रनाथप्रामाणिकस्य 'संन्यासी', श्रीहर्षदेवमाधवस्य 'चूतकलिके', डा० प्रशस्यमित्रशास्त्रिणः 'ममाप्यस्ति गुरुर्भवान्'-प्रभृतयो हास्यकविताः, प्रो० रामचन्द्रस्य 'जगदम्बापराधक्षमापनस्तोत्रम्', डा० उमारमणझा-महोदयस्य 'भारतोदयः', डा० नारायणशास्त्रिणः 'शुभं समेषां जन-नायकानाम्', प्रो० हरिश्चन्द्ररेणापुरकरस्य 'हन्तेन्दिरार्या सहसा जगाम' च। सुरभारत्याः काव्यसाहित्यं सततं मौलिकाभिरनूदिताभी रचनाभिश्च सवंर्धयन्त्यां संविदितिनामत्रैमासिकपत्रिकायां प्रकाशितानि बहूनि काव्यानि विलसन्ति, कानिचिदत्रोल्लिख्यन्ते-श्रीमतो ज० व्यं० पल्लेवार-महोदयस्य 'शिवायनम्' इत्यैतिहासिकं काव्यम्, डा० सत्यव्रतशास्त्रिणः 'जर्मनी उज्ज्वलभूमिः' इति यात्राकाव्यम्, श्रीजयेशस्य 'हंसदूतम्', डा० सूर्यप्रसादमिश्रस्य 'कुलपतिश्रीकन्हैयालालमाणिकलालमुन्शिनां जीवन-सौरभम्', श्रीविश्वनाथकेशवछत्रेशास्त्रिणः 'श्रीमती इन्दिरागांन्धि-महोदया- नामभिनन्दनम्', श्रीमंछारामशास्त्रिणः 'ब्राह्मञ्च तेजः कुरुते न किङ्किम्', श्रीभाईशङ्करपुरोहितस्य 'मुम्बापुरी' , डा० भास्कराचार्यत्रिपाठिनः 'प्रवासी न दृष्टो मरालः', श्रीगजेन्द्रशंकरलाल-पाण्ड्यामहाभागस्य 'कः श्रेयान्', श्रीरामचन्द्रगाडगीलस्य च 'मुन्शिगौरवम्', श्रीनिष्ठलसुब्रह्मण्यस्य 'श्रीशक्तिनुतिः' । प्रयागस्य गौरवभूतायां 'संगमन्यां' त्रैमासिक्यां श्री कल्याणाकवेः 'गीतगङ्गाधरम्', श्रीजयनारायणघोषालस्य 'पार्वतीगीतम्', श्रीहरिचरणविद्यारत्नभट्टा-चार्यस्य 'अमरकाव्यम्' इत्यादीनि प्रकाशितानि काव्यानि रागकाव्यपरम्परां वितन्वन्ति । विश्वभाषायां डा० केशवचन्द्र-दाशस्य, डा० परमानन्दशास्त्रिणः, डा० नरेन्द्रअवस्थिमहाभागस्य, प्रो० रामेश्वरशर्मणः, श्रीत्रिपाठिनः यमुनेशचातकस्य, श्रीचक्रधारीशास्त्रिणः, पं० गुलामदस्तगीरस्य, डा० प्रशस्यमित्रशास्त्रिणः, श्रीराजेश्वरशास्त्रिणः, श्रीद्वारकाप्रसादशास्त्रिणः, प्रो० ई० पी० भरतपिषारटिमहाभागस्य, गुरुवर्यस्य डा० राजेन्द्रमिश्रस्य च मनोहारिण्यो रचनाः संस्कृतमुक्त-

काव्यसम्पदं संवर्धयन्त्यो विराजन्तेतराम् । 'दिव्यज्योतिः' इति मासिक्यां विगतपञ्चत्रिंशद्वर्षेभ्यो बहूनां कविवर्याणां भावपूर्णाः काव्यरचनाः प्राकाश्यं नीताः, तासु काश्चनोल्लिख्यन्ते- श्रीजगत्रविशास्त्रिणः 'मातृवन्दना-सप्तपदी', श्री हरिश्चन्द्रस्य निस्तन्द्रस्य 'उग्रवादः' (३१/१), डा0 जगदीशशर्मणः 'इयं शरद्' (३१/२), श्रीकृष्णनारायणपाण्डेयस्य 'मानव-धर्मो मानवता' (३१/३), श्रीसन्तोषवर्मणः 'चाटुकारितायाः महिमा' (३१/४), डा0 राजेन्द्रमिश्रस्य 'प्रवालरत्नाष्टकम्' (३३/४), श्रीचक्र-धारीशास्त्रिणः 'शिमलानगरी' (३३/९), श्रीलोकनाथमिश्रस्य 'अम्बिका-स्तोत्रम्', प्रो0 हरिश्चन्द्ररेणापुरकरस्य 'रक्तहीना क्रान्तिः' (३४/५), डा0 सत्यदेवनिगमालंकारस्य 'भावात्मिका भारती' (३४/७), श्रीशुकदेवमुनेः 'टरव्यूहः' (३४/९), कु0 कुसुमलतायाः 'तव मित्रतायाः पूर्वम्' (३४/९), च ।

आधुनिकदेवाणीकाव्यसाहित्यस्य सम्पत्तौ प्रतिष्ठितमासिकपत्रस्य पारिजातस्य पुष्पाणि बहूनि सन्ति, तेषु विशिष्टपरिमलोपेतानि कानिचिदत्र निर्दिश्यन्ते-दिवंगतस्य डॉ० रघुनाथशर्मणः 'गणपतिवन्दना', श्रीवैद्य-रामस्वरूपशास्त्रिणः 'तद् गृहं देवमन्दिरम्', श्रीमतीकमलारत्नम्-महा-भागायाः 'अहम्', आचार्यसोमदत्तवाजपेयी-महाभागस्य 'उषास्वप्नः', श्री एन्0 सुन्दरम्-महोयदस्य 'उद्यानमन्दारकः', (१/१) श्री म0 स0 आपटी-करस्य 'शरन्नवोढा समागतेयम्', (१/४) डॉ० वनेश्वरपाठकस्य 'कालिदासो ब्रवीतु (१/५), डॉ० चन्द्रशेखरद्विवेदिनः 'भारतं भारतं भातु भूमौ सदा' (१/७) डा0 मुंशीरामशर्मणः सोमस्य 'महात्मा गान्धी' (१/७), डा0 शिवदत्त-शर्मचतुर्वेदिनः 'दिव्या संस्कृतभाषा वसुधा-शृङ्गारभूता' (१/८) श्री जगन्नाथस्य 'लेखोक्तिलहरी' (१/१०), आचार्य-हरिनारायण-सारस्वतस्य 'वागधीशि कविते नमोऽस्तुते', (२/६), डा0 नलिनीशुक्लायाः 'शिशवो नवयुगनिर्मातारः' (२/८), श्रीमत् प्रभुदत्तस्वामिनः 'मौर्यचन्द्रोदयम्' इति महाकाव्यम् (२/८-५/४), डा0 मायाप्रसादत्रिपाठिनः 'स्फुरति न अधरं स्फुटति न वाणी', श्रीअनन्त-राममिश्रस्य 'गङ्गागौरवम्' (२/९), डा0 मल्लिकार्जुन परड्डीमहोयदस्य 'धन्यः स एव शिक्षकः' (२/१०), डा0 प्रशस्यमित्रशास्त्रिणः 'एष

मुद्रणराक्षसः' (२/११), आचार्यरमाशङ्कर-मिश्रस्य 'घनयामिनी (३/३), डॉ0 उमारमणझामहाभागस्य 'शोकाञ्जलिः' (३/४), डॉ0 रमाकान्त शुक्लस्य 'मोदतां मे सदा पावनं भारतम्' (३/९-१०), आचार्यकेशव-देवशुक्लस्य 'श्रीचन्द्रचूडचरणं शरणं करोमि' (३/१२), डॉ0 रेवाप्रसाद-द्विवेदिनः 'अयि मम कुक्षे!' (३/१२), डॉ0 मिथिलेशकुमारीमिश्रायाः 'कर्षति कस्य मनो न हि चिन्ता' (३/१२), डॉ0 आशारामत्रिपाठिनः 'मधुरः संसारः' (३/१२) डॉ0 कैलाशनाथ द्विवेदिनः 'शारदी ज्योत्स्ना (४/४), पं0 टी0 वी0 परमेश्वर अय्यरस्य 'उद्वाहाष्टकम्' (४/६), श्रीओमप्रकाशठाकुरस्य 'को नु विज्ञातुमर्हति' (४/६), प्रो0 एच0 ए0 शाण्डिल्यस्य 'शङ्कराष्टकम्' (४/८), आचार्य-बाबूराम अवस्थि-महाभागस्य 'सुनयना न हर्षति रे' (६/३-४), डा0 अभिराजराजेन्द्रमिश्रस्य 'वामनावतरणम्' (सप्तदशसर्गात्मकं महाकाव्यम्) (६/११-१२,७/१२), डॉ0 कृष्णकान्तशुक्लस्य च 'पवित्रे स्वदेशे जनिं कामयेऽहम्' (८/७)।

अशीतिवर्षेभ्यो 'भारतोदये' प्रतिमासं नूतनाः काव्यरचनाः प्रकाशिताः भवन्तिः, तासु काश्चन रचनाः प्रस्तूयन्ते-डॉ0 बलवीरदत्त-शास्त्रिणः 'हा इन्दिरे !' (७४/६), श्री एन्0 डी0 कृष्णनुन्निमहोदयस्य 'भारतसुप्रभातम्' (७७/६), श्रीरामस्वरूपशास्त्रिणः 'वन्दनीयाः के सन्ति' (७७/१०-११), डॉ0 सुधासहायस्य 'चायकाव्यम्' (७७/१२), डॉ0 बलवीरदत्तशास्त्रिणः 'हरिश्चन्द्रमहाकाव्यम्', आचार्य अक्षयवटप्रसाद-शुक्लस्य 'भारतवन्दना' (७८/१२), श्रीसन्तरामशास्त्रिणः च 'यजुर्वेदमन्त्रात्मकं काव्यम्' (७९/१-३) डॉ0 शशिधरशर्मणश्च 'शारदाभ्यर्थनम्' ।

'सागरिकायां' डा0 रेवाप्रसादद्विवेदिनः 'सीताचरितम्' (७/१), रेवाभद्रपीठकाव्यम्' (२६/३) च, 'संस्कृतचन्द्रिकायाम्' श्री अन्नदाचरण-तर्कचूडामणेः 'तदतीतमेव' (५/८), श्री अप्पाशास्त्रिराशिवडेकरस्य 'पञ्जर-बद्ध शुकः' (११/१-४) च, 'मित्रगोष्ठ्याम्' श्री शारदाचरण-मित्रस्य 'भारतगौरवम्' (१/९), 'सूनृतवादिन्याम्' श्री अप्पाशास्त्रि-

महाभागस्य 'तिलकस्य कारागृहनिवासः', 'शारदायाम्' श्रीशालिग्राम-शास्त्रिणः 'प्रबोधनम्' (१९७४), श्री विजयचन्द्रशर्मणः 'उद्बोधनगाथा' (जुलाई १९७५), श्री श्रीधरभास्करवर्णेकर महोदयस्य 'शिवराज्योदयम्', पं0 राजारामशुक्लस्य च 'यात्रोत्सवः' ,'प्रज्ञाने' च पं0 रामकुबेर-मालवीयस्य श्रीमालवीयमहाकाव्यम्' (१९६५-६६) इत्यादयो विशिष्टा काव्यग्रन्थाः प्रकाशिताः सुरभारतीकाव्यसम्पत्तिं सवंर्धयन्ति । भगवतो भूतभावनस्य शिवस्य नगर्या वाराणस्या गौरवभूते 'गाण्डीवे', 'सूर्योदये' (मासिकपत्रे,) 'सारस्वतीसुषमायाम्' (त्रैमासिके), 'भारत्याम्' (मासिक्यां), 'संस्कृतसाकेते' (पाक्षिके), 'संस्कृत-भवितव्ये' (साप्ता-हिके), प्रतिभायाम् (षाण्मासिक्याम्) विश्वसंस्कृते (त्रैमासिके) 'प्रतिभायाम्' (षाण्मासिक्याम्), 'विश्वसंस्कृते' (त्रैमासिक्याम्), 'संस्कृतसम्मेलने' (त्रैमा0), 'गुञ्जारवे' (त्रैमा0), 'संस्कृतसमाजे' (त्रैमा0), 'ऋतं (षाण्मासिक्याम्), 'स्वरमङ्गलायाम्' (त्रैमा0), 'उत्कलोदये', 'सर्वगन्धायाम्', 'गीर्वाणसुधायाम्', 'श्रीपण्डिते', 'युगगत्याम्' (साप्ताहिके पत्रे), 'संस्कृतामृते', 'ब्रजगन्धायाम्' (त्रैमासिक्याम्), 'दूर्वायाम्', 'शोधप्रभायाम्', 'लोकसंस्कृते' (त्रैमा0), 'बालसंस्कृते', 'भारतमुद्रायाम्', 'कामधेनु-पत्रिकायाम्', 'अनादिवाक्-पत्रिकायाम्', 'गैर्वाण्याम्' चेत्यादिषु संस्कृतपत्रपत्रिकासु नूतनाः कविताः, नवीनानि गीतानि, मधुराणि सुभाषितानि, अन्योक्तयश्चापरिमिताः प्राकाश्यं नीताः, नीयन्ते च ।

कथाः, कथानिकाः, खण्डकथाः, लोककथाः, लघुकथा, बालकथाः, नाटकानि, नाटिकाः, पुस्तकसमीक्षाः, लेखाः, शोधलेखाः, अनुवादाश्च संस्कृत पत्रिकासु चासंख्याताः प्रकाशिताः । अत्र निदर्शनरूपेणे सुधर्मादीनां काश्चन विशिष्टाः रचना उद्ध्रियन्ते । इदमप्यवधेयमस्ति यदत्रोद्धृता रचना एव नोत्कृष्टाः, ताभ्योऽपि उत्कृष्टतराः समुल्लसन्ति तत्तत्पत्र-पत्रिकासु याभी रचनाभिः सुरभारत्या आधुनिकं साहित्यं नितरां विभाति, प्रचीनां गौरवमयीं ग्रन्थरचनाप्रवृत्तिं च पुष्णाति । 'सुधर्मायाम्' श्रीजगन्नाथस्य 'ऋजुरोहितम्' (१२/१२४), 'ग्रन्थभाष्यम्' (१३/१३४), 'गजेन्द्रपुराणम्' (१२/१), 'पक्षिपोतः' (१२/६६), 'दृश्यभाष्यम्'

(१५/१७५), श्री टि. वि. सत्यनारायणस्य 'आधुनिकगद्यसाहित्यम्' (१२/१७४), 'जयं पराजयेऽपि' (रूपकम्) (११/१६८) च, श्री ह. गोपालाचार्यस्य 'श्रीमद्रहस्यत्रयसारार्थबोधिनी', श्रीईशस्य 'कुचेलविजयम्' 'ध्रुवविजयम्' (११/१५६), डॉ० एम. ई. रङ्गाचार्यस्य 'श्रीरामकृष्ण - उपनिषत्', श्री जी. ए. एस. एस. सोमयाजुलुशर्ममहाभागस्य 'कर्नाटकसाहित्यदर्शनर्म्', श्री के. सूर्यनारायण रेड्डिमहाभागस्य 'पुरुषार्थपरिशीलनम्' (१३/१६१), श्री अम्मेंबल-नारायणशर्म-महोयदस्य 'दक्षिणापथसन्दर्शनम्' (१२/४४), 'अरण्यानी कृपावृष्टिः' (१६/३१७), कृषिविज्ञानम् (१९/१०) च, स्वामीब्रह्मानन्देन्द्रसरस्वतीमहाभागस्य 'चारुदेवचरितम्' (नाटकम्) (१२/२०८), 'मोहजित्' (१३/९), 'पापं प्रयश्चित्तं च' (१३/७८) च, श्री केशवचन्द्रदाशस्य 'तिलोत्तमा' (उपन्यासः) (१३/९), 'मधुयानम्' (१५/१६३), ' संस्कृते लघुकथायाः आधुनिकी प्रवृत्तिः' (१६/१) 'अरुणा' (१६/१०४), 'अञ्जलिः' (१६/३२१) चः, डॉ० गोपराजुराम-महाभागस्य 'संस्कृतनाटकेषु भावाभिव्यक्तिः' (१४/६३) श्रीमती अनन्तलक्ष्मी नटराजन्-महाभागायाः 'गीतगोविन्दगुलिका' (१६/९५), श्री एस. हेमलतायाः 'रमाया पुत्थलिका' (रूपकम्) (१३/१), श्रीमती एन. आर. गिरिजाम्बायाः 'बृहत्कथाप्राप्तिः' (१३/६३), श्रीअक्षयवट-पाठकस्य 'तुलसीविरचितम्-रामचरितमानसम्' (१४/३३), श्री के. श्रीनिवासन-महोदयस्य 'लवङ्गीजगन्नाथम्' (रूपकम्) (१३/१०८), श्री कालूरिहनुमन्तरावस्य 'सीताहरणम्' (नाटकम्) (१४/१३३) श्री ए. शिवरामशर्मणः 'आन्ध्रानां संस्कृत-सेवा', श्री के. एन. वरदराज अयय्ङ्गार्यस्य (सुधर्मासम्पादकस्य) 'वार्तासम्पादनं कर्म' (१५/१), श्री के. एस. नागराजन्-महोदयस्य 'गुरुशापम्' नाटकम् (१५/१), कु. रमारावमहोदयायाः 'वनधनम्' (१४/२२०) च 'संविदि' श्री जनक एम. दवेमहोदयस्य 'शंकरविजयम्' इति नाटकम् (१२/४), श्री गजेन्द्र शंकरलालशंकरपण्ड्या-महाभागस्य 'शाकुन्तलनृत्यनाटिका' (१२/४), श्री परड्डीमलिकार्जुनस्य 'प्रेमविजयः' (१३/१), श्री वी. गुरुमूर्तेः 'भारतीयसमैक्यम्' (नाटकम्) (१३/३४), श्री बी0 नागसुन्दरम्-महोदयस्य 'रामायणसारः' (१३/२), श्री भाई शंकर पुरोहितस्य

'कर्मवीरः सरदार वल्लभभाईपटेलः' (१२/४), 'पण्डितः जवाहरलालः' (१३/१) च, श्री ए0 वेंकटेश्वरस्य 'संस्कृतवाङ्मये परमाणुयुगविज्ञानम्' (१२/४), श्रीचन्द्रदेवशर्मणः 'शिक्षा-प्रणाली-पर्यवेक्षणम्' (१३/२) श्री उदयनाथझामहोदयस्य 'न्यायसूत्ररचनाकालः' (१३/२) श्री मंछाराम-द्विवेदिनः 'पाणिनीयव्याकरणस्यातिशायितत्वम्' च । संगमन्याम्-श्री बटुकनाथखिस्ते-महाभागस्य 'तन्त्रप्रामाण्यविचारः' (१४/२), 'कैशिकीवृत्तिः' (१६/३), संस्कृतसाहित्ये नूतनोदाहरणान्वेषणम्' (१८/३) च, श्री अनङ्गहर्षमात्रराजस्य 'तापसवत्सराजम्' (१५/१), श्री मूलशंकरयाज्ञिकस्य 'प्रतापविजयनाटकम्' (१९/१), डॉ० मिथिलेश कुमारी मिश्रामहोदयायाः 'शङ्कनीया न दीनता' (१७/१), डॉ० प्रभातशास्त्रिणः 'पार्वतीगीतस्य भूमिका' (१४/२), ' गीतगिरिशम्' (१६/३), 'संगीतरघुनन्दनम्' (१६/३), 'रामगीत-गोविन्दम्' (१६/४), 'गीतगङ्गाधरम्' (१६/४), 'गीतपीतवसनम्' (१६/४) 'पार्वतीगीतम्' (१६/४) च, डॉ० श्रीमती सावित्री दुबे-महाभागायाः 'अद्वैतवेदान्त-पदार्थनिरूपणम्' (१४/३-४), डॉ० उमारमणझा-महोदयस्य 'कौलाचारः' (१५/१) 'उदयनाचार्यः' (१९/१) च, डॉ० रमाशङ्कर तिवारी-महाभागस्य 'काव्यनिरूपणम्' (१५/४) 'कविनिरूपणम्' (१६/२) 'काव्ये भोग्यं सौन्दर्यम्' (१७/१) 'अभिनवगुप्तस्य रसनिरूपणम्' (१७/४), 'भट्टनायकस्य रसनिरूपणम्' (१८/१) च, डॉ० भगवतशरणशुक्लस्य 'व्याकरणशास्त्रे जातिस्वरूप-विमर्शः' (१८/१) 'स्त्रीप्रत्ययप्रकरणाध्यनम्' (१९/१) च, श्रीवीरेन्द्र- शास्त्रिणः 'पाश्चात्त्यविदुषां वैदिकवाङ्मयसेवा' (१८/४) डॉ० यदुनाथ प्रसाद दुबे-महोदयस्य 'मेरुतुङ्गाचार्यस्य कृतित्वम्' (१७/२), 'हेमचन्द्राचार्यः' (१८/२), प्रो० डॉ० शा० ग० मोघेमहोदयस्य 'मेघदूतस्य टीकाकारः कृष्णपतिः' (१६/१) 'सुश्रीमाधवीमिश्रा-महोदायाया 'देहात्मविवेकः' (१६/२), 'भक्तेर्वैशिष्ट्यम्' (१७/१) च। 'सागरिकायाम्'- श्रीपाद दामोदरसातवलेकरस्य 'वैदिकसोमः' (प्रथमवर्षे), डॉ० रामजी उपाध्यायस्य 'राजेन्द्रप्रसादचरितम्', डॉ० गोपीनाथकविराजस्य शाक्तदृष्ट्या सृष्टितत्त्वविमर्शः, श्री रामगोपालमिश्रस्य 'संस्कृतपत्रकारिता' (प्रथमवर्षे), श्रीशिवचन्द्र-

भट्टाचार्यस्य 'शब्दार्थ-प्रत्ययः' (द्वितीयवर्षे), श्री शंकरलाल स्वर्णकारस्य 'शृङ्गारवापिका नाटिका' (चतुर्थवर्षे), डॉ० सिद्धनाथशुक्लस्य 'ऋग्वेदव्याख्याया उद्भवो विकासश्च' (७), श्री प्रह्लादकुमारस्य 'ऋग्वेदेऽलङ्काराः' (९), डॉ० गजानन शास्त्री मुसलगाँवकरस्य 'आत्मनो विभुत्ववादः गौतम-सम्मतः' (१०), डॉ० रसिकविहारी जोशी-महाभागस्य 'भासकर्तृत्वे शंका', गुरुवर्यस्य डॉ० ब्रह्ममित्रअवस्थी-महाभागस्य 'संङ्करक्षितः तदीयः सुबोधालङ्कारश्च' (१२), श्री वसन्तवल्लभभट्टस्य 'कूर्माचलेषु संस्कृत-साहित्यवर्धनम्' (१७), डॉ० विद्यानिवासमिश्रस्य 'संस्कृतसाहित्य- वैशिष्ट्यम्' (२०), श्री वनेश्वरपाठकस्य 'अर्वाचीनसंस्कृते राष्ट्रिय-भावना' (२१), श्रीसुब्रह्मण्यशास्त्रिणः 'शब्दशक्तिविचारः' (२२), श्रीभगीरथप्रसाद त्रिपाठिनः संस्कृतवाङ्मये 'बृहत्त्रयीलालित्यम्' (२५), डॉ० कैलाशनाथद्विवेदिनः 'सप्तद्वीपवती पृथ्वी' (२६/३), डॉ० रेवाप्रसादद्विवेदिनः 'मम कविता' (२६/३), श्रीइन्द्रमोहनसिंहस्य च 'संस्कृत-वाङ्मये नेहरूमहाभागः' (२७/२) । विश्वभाषायां डॉ0 भगीरथ प्रसादत्रिपाठिनः 'भारतवर्षे संस्कृतभाषाया अनिवार्यत्वं किमर्थम्?' (२/४), डॉ० भक्तिसुधामुखोपाध्यायायाः 'मिलनसेतुः' (३/१), प्रो० ई० पी0 भरतपिषारटि-महाभागस्य 'एकदन्तः' (३/२), श्रीराजारामशुक्लस्य 'प्रियाशा' (शेक्सपीयररचित- 'मर्चेंट आफ वेनिस' इत्यस्य कथानके आधृतम्) (३/२), डॉ० श्रीधर भास्करवर्णेकरस्य 'मदीया संस्कृतकाव्य-प्रवृत्तिः' (३/३), डॉ0 ग0 बा0 पलसुलेमहाभागस्य 'क इह शिवकारे न रमते' (३/३), चौ0 श्रीनारायणसिंहस्य 'शुकनासोपदेशः', श्रीजगन्नाथस्य 'बालजगत्' इति स्थायिस्तम्भे च प्रकाशिताः सर्वा बालकथाः। 'दिव्यज्योतिः' इति पत्रिकायाम्- डॉ0 रुद्रदेवत्रिपाठिनः 'सत्यान्वेषणयात्रा' (३०/१२), प्रा० केशवशर्मणः 'झञ्झाः' (शेक्सपियर- प्रणीतस्य 'टैम्पेस्ट' नाटकस्य संस्कृतरूपान्तरम्) (३१/५), डॉ० केशवचन्द्रस्य 'शिखा' (३१/१०), श्रीमदाचार्यदिवाकरदत्तस्य 'फलादेश-कल्पतरुः' (३२/६), आचार्यकेशवशर्मणः 'संस्कृतकोष-वाङ्मयम्' (३२/११), क्षमाजयन्ती-कथानिका विशेषाङ्कस्य च सर्वाः कथाः (३४/१०-११), 'प्रियदर्शिनी'

(३४/१२) च। 'पारिजाते' - डॉ० प्रकाशमित्रशास्त्रिणः 'अस्मदीयम्' (१/१-८/१०), श्री शिवबालकद्विवेदिनः 'अभिनवभारते संस्कृतम्' (१/१), श्री बाबूराम अवस्थिनः 'अबलोद्धारः' (१/३), डॉ० विश्वम्भर-द्विवेदिनः 'कालिदासः- मानवतादर्शस्रष्टा महाकविः' (१/७), 'अथातो धर्मजिज्ञासा' च (२/७), डॉ० कमला रत्नम्-महोदयायाः 'विक्रमवेताल-नाटिका' (१/७-१/९), श्री विजयतिवारिमहोदयस्य 'गुरोर्वाणी गरीयसी' (१/९), डॉ० योगमाया अवस्थि- महोदयायाः 'ऋग्वैदिकजीवने गौः, (१/११), 'अभिराजस्य' डॉ० राजेन्द्रमिश्रस्य 'जिजीविषा' (२/१), डॉ० नलिनी शुक्ला-महाभागायाः 'कलरवश्चिन्ता च' (२/२), श्रीमती उमाअवस्थिनः 'युवराजः शुभे मुहूर्ते' (२/४), डॉ० राकेशकुमारद्विवेदिनः 'पाणिनिप्रतिपादितं वर्णध्वनि-स्वरूपम्' (२/१२), डॉ० मुंशीरामशर्मणः 'सोमस्य' 'पराधीनता' (३/१-२), डॉ० शम्भुनाथशर्मशास्त्रिणः 'कालि-दासस्य राष्ट्रदृष्टिः' (३/४), डॉ० ब्रह्मानन्दत्रिपाठिनः 'चमत्कारि-सर्वेक्षणम्' (४/१-२), डॉ० आनन्दकुमारश्रीवास्तवस्य 'अष्टाध्याय्यां केचन अविभक्तिकादयः प्रयोगाः' (४/१-२), डॉ० प्रशस्यमित्रशास्त्रिणः 'भार्यावशीकरणोपायाः' (४/८), श्री द्वारिकाप्रसादशास्त्रिणः 'सहयोगः' (५/३), डॉ० मिथिलेशकुमारीमिश्रायाः 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' (६/११-१२), डॉ० परड्डीमल्लिकार्जुनस्य 'बलिदानम्' (७/१०), श्री माधवाचार्यस्य 'विभाजनम्' (८/१-२) डॉ० जयदेवजानी 'रसराज'-महोदयस्य च 'आत्मजयाचनम्' (८/१०)।

आधुनिकसंस्कृते बालसाहित्यस्य स्वल्पता विद्यते। तस्य संरचनायां संवर्धनायां च संलग्नाः बालसंस्कृत- चन्दामामा (संस्कृतम्)-लोकसंस्कृत-विश्वभाषाप्रभृत्यः पत्रिकाः खलु नितराम् अभिनन्द्यसत्त्वाः सन्ति। लेखस्य लघुकलेवरत्वात् तासु पत्रिकासु प्राकाश्यं नीतस्य बालसाहित्यस्य दिङ् मात्रेणापि परिचयो न दीयते। इदमेवोच्यते यदत्रैतासां पत्रिकाणां विशेषेण 'चन्दमामा'-पत्रिकायाः प्रयासो महान् वर्तते, तथापि बालानां कृते प्रत्येकं पत्रिकासु विशेषस्तम्भो देयः तथा च तत्र बालोपयोगिनो वैज्ञानिका आधुनिकाश्च विषया अपि निधातव्याः येन संस्कृते वैज्ञानिकसाहित्यं समृद्धं भवेत्।

लेखविरामात् प्राग् 'अर्वाचीनसंस्कृतस्य' सुरभारतीसपर्यापि दिङ्मात्रेण द्रष्टव्यास्ति । आधुनिकसंस्कृतसाहित्यस्य प्रकाशनार्थं संवर्धनार्थं संरक्षणार्थं चास्याः पत्रिकायाः प्रवर्तनं श्रीमता डॉ० रमाकान्त शुक्ल-महाभागेन विहितम् । अत्र विपुलं साहित्यं प्रकाशितं विराजतेतराम् । मया सद्यः प्रकाशिताः काश्चन रचना अत्र उदाह्रियन्ते- डॉ० केशवचन्द्र दाशस्य 'ऋतम्' (उपन्यासः) श्रीरामकैलाशपाण्डेयस्य 'भारतम्', मम सहपाठिनः, डॉ. सुधाकराचार्यत्रिपाठिनः 'उज्जयिनीमुपसर', श्री ई० पी० भरतपिषारटिमहोदयस्य 'स्वप्नकन्या', आचार्यरमेशचन्द्रशुक्लस्य 'श्री वेदव्यासणीतब्रह्मसूत्रस्य सरलश्लोकेषु विवृतिः', डॉ० रमाशङ्कर तिवारी-महोदयस्य 'काव्ये सब्लाइमनामधेयम् उदात्तम्' (१०/२), डॉ० राजेन्द्र मिश्रस्य 'देववाणी-हुंकार शतकम्' श्रीशिवकुमारमिश्रस्य 'दयानन्दसूक्ति-सप्तशती', डॉ०, रमाकान्त शुक्लस्य 'स्वागतं पयोद ते' (१०/३) 'आलोकिनी' च, डॉ0 इच्छारामद्विवेदिनः 'गीतमन्दाकिनी',श्री शिवकुमारमिश्रस्य गान्धिसूक्तिसप्तशतीं (१०/४) डॉ0 रमेशचन्द्र शुक्लस्य 'श्रीनेहरूवृत्तम्', श्री श्रीसुन्दरराजस्य 'भाव्यं शुभं भावि हि भारतस्य', डा0 केदारनारायणजोशिमहाभागस्य 'वसन्त-सौरभम्' (११/१) , डॉ0 रामेश्वरदत्तशर्मणः 'व्यवहारगीता'(११/२), डॉ0 सत्यव्रशास्त्रिणः 'श्रीगान्धिचरितरचनाशिल्पम्', प्रो० बटुकनाथ-शास्त्रीखिस्तेमहाभागस्य 'निर्वाचनावसरे', डॉ० भास्कराचार्य- त्रिपाठिनः 'निर्वाचनात् प्राक्', प्रो० लक्ष्मीचन्द्रकौशिकस्य 'मङ्गल्या-समीक्षणम्' (१२/१), डॉ० रमाकान्तशुक्लस्य 'उत्तरमङ्गलम्' (१२/१), डॉ० प्रकाशपाण्डेयस्य 'धारणा', डॉ० हर्षदेवमाधवस्य जापानदेशीयानि 'तान्का' काव्यानि (१२/२), डॉ० कृष्णमुरारीशर्मणश्च 'वसन्तगीतम्' (१२/२) ।

अतीव संक्षेपेणात्राधुनिकसंस्कृतसाहित्यस्य समर्चनायां संस्कृत-पत्र-पत्रिकाणां विशिष्टं प्रदानं स्मृतम् । वस्तुतः साम्प्रतं विद्यमानं समग्रं संस्कृत-साहित्यं प्रायशः संस्कृत-पत्र-पत्रिकासु प्रथमं प्राकाश्यं नीतं सम्पूर्णतोंऽशतो वा, न केवलं प्राकाश्यं नीतम्, अपितु तस्य प्रणयनस्य प्रेरणापि संस्कृत-पत्र-पत्रिकाभिः, तासां सम्पादकवर्यैश्च प्रदत्ता । जयतु संस्कृतम् !

# संस्कृत-पत्र-पत्रिकाः

डॉ() चित्तरंजनदयालसिंह कौशलः

सम्मान्याः ! प्रबुद्धाः ! संस्कृतज्ञाः ! विश्वविश्रुते लोकतन्त्रे भारते पत्रपत्रिकाणाम् उपयोगित्वम् सुविदितमेव । लोकतन्त्रस्य अयम् चतुर्थः स्तम्भः परिगण्यते । जनानाम् जागरूकतायै सम्यग्रूपेण प्रबोधनार्थञ्च सर्वत्र भूरिशः विविधभाषामाध्यमैः पत्रपत्रिकाः प्रकाश्यन्ते । ''राष्ट्रे जागृयाम वयम्'' इत्येतदर्थम् पत्र-पत्रिकाणां बहुविधम् उपयोगित्वं स्वतः सिद्धम् भवति । तत्र च विशेषेण संस्कृत- संस्कृति-प्रसारणार्थम् संस्कृत-संस्कृति-विषयम् अवलम्ब्य संस्कृतमाध्यमेन प्रकाशितानां पत्र-पत्रिकाणाम् उपयोगिता स्फुटा । संस्कृत-पत्र-पत्रिकाणाम् माध्यमेनैव अद्यापि कन्याकुमारीतः प्रारभ्य हिमालयं यावत् भारतम् सांस्कृतिकम् ऐक्यम् अनुभवति । सर्वेषु प्रान्तेषु संस्कृतम् जीवितम्, पठितम्, लिखितम्, मुद्रितम्, प्रकाशितम् व्यवहृतञ्च अक्षिलक्ष्यीक्रियते । 'संस्कृतम् मृतम्' इति परिवादोऽपि क्रियात्मकतया सप्रमाणं खण्ड्यते । संस्कृतज्ञानाम् संस्कृतगिरा निर्मिताः नवीनाः रचनाः संस्कृतरसरसिकानाम् हृदयम् आनन्दयन्ति । संस्कृतक्षेत्रे यत्र यत्र यत् यत् कार्यम् प्रचलति तत् संस्कृत-पत्र-पत्रिकाणाम् अध्येतारः स्वगृहे एव अवगच्छन्ति 'संस्कृतम् खलु अभृतम्' इति अनुभवन्ति प्रामाणिकतया संस्कृतप्रेमिणः संस्कृत-पत्र-पत्रिकाणाम् नियमितवाचकाः । नवीनान् लेखान् संपठ्य संस्कृतमयान् भावान् विज्ञाय 'संस्कृतम् खलु विश्वभाषा' इति भावनया अभिभूय विश्व-शान्तये संस्कृतप्रसारकर्मणि निरताः भवन्ति सहृदयाः जागृताः जनाः। संस्कृत-पत्र-पत्रिकाणाम् उपयोगित्वम् मनसि अवधृत्य गृहेषु संस्कृत-पत्रक्रयणम् अवश्यम् कर्तव्यम् । भिवानीमध्ये श्री कृष्णप्रणामी-संस्कृत-महाविद्यालये विश्व-संस्कृत-प्रतिष्ठान-द्वारा समायोजिते समारोहे ''संस्कृत-पत्रक्रयणम्'' इति नाम्ना एकः प्रस्तावः पारितः आसीत् । स चेत्थम्-

"भारतीयाः गृहस्थाः अनेन प्रस्तावेन इदम् अनुरुद्ध्यन्ते यत् प्रतिगृहस्थं स्वगृहे न्यूनान्न्यूनम् एकम् प्रकाश्यमानम् पत्रम् पत्रिकां वा संस्कृतस्य अनिवार्यतया ग्राहकत्वेन आनाययेत् । संस्कृतस्य गृहे च बहिश्च सुखद-वायुमण्डल-निर्माणाय इदम् अत्यावश्यकम् वर्तते ।" इति ।

अस्मिन्नवसरे संस्कृत-पत्रकारितायाः इतिहासोऽपि संक्षेपेण विवेच्यः। एकोनविंशतितमशताब्द्याः प्रथमखण्डे अंग्रेजी-शासनम् प्रायः सम्पूर्णे भारते प्रस्थापितं जातम् । शीघ्रमेव मेकालेलार्डस्य क्लर्क-निर्माणपरा शिक्षा-योजना सर्वत्र प्रसारिता । एकस्मिन्नेव क्षणे संस्कृतम् अर्धचन्द्रम् दत्त्वा निस्सारितम् । संस्कृत-विद्यायाः राज्याश्रयः समाप्तिं गतः । नवशासने शिक्षायाः माध्यमभूता आङ्ग्लभाषा एव निश्चिता । विकटेऽस्मिन् काले नवीनोपायैः संस्कृतभाषां पुनरुज्जीवयितुम् संस्कृत-पत्र-पत्रिकाणाम् परम्परा सर्वप्रथमम् नवषष्ट्युत्तराष्टादशशतके (१८६९) वर्षे प्रारब्धा। प चाशदुत्तराष्टादशशतके (१८५०) वर्षे लब्धजन्मना बटुहृषीकेश-महोदयेन 'विद्योदयः' इत्याख्यम् संस्कृतमासिकपत्रम् प्रारब्धम्। स्वलोकाभिमुख-प्रवृत्त्या ओजपूर्णया भाषया च एतत् प्रशंसनीयम् पत्रम् सर्वत्र सुप्रसिद्धिंगतम् । हृषीकेशभट्टाचार्यः मूलतः बङ्गीयः आसीत् परं पञ्चाम्बु-विश्वविद्यालयस्य संस्कृत-विद्यालये यदा सः प्राध्यापको जातः तदा पञ्चाम्बुविश्वविद्यालयस्य रजिस्ट्रार-पदे विराजमानानाम् कुल-सचिवानाम् डॉ० लिट्नरमहाभागानां प्रोत्साहनेन लाहौरतः पत्रमिदम् प्रकाशितम् । यदा भट्टाचार्यः पुनः कलकत्तां प्राप्तः तदा एतत्पत्रम् कलकत्तातः प्रकाशताम् अभजत् । अस्य सम्पादकीय-लेखानाम् संग्रहः प्रबंधमंजरीनाम्ना पण्डित-पद्मसिंहशर्मणा सम्पादितः । इत्थमेव काञ्चीस्थलस्य सुप्रसिद्धाः विशिष्टाद्वैतवादिनः प्रतिवादिभयंकर-मठाधिपतयः अनंताचार्याः "मञ्जुभाषिणी" इत्याख्याम् मासिकीम् संस्कृतपत्रिकाम् प्रारब्धवन्तः । ते अनेकशास्त्रप्रवीणाः न्यायवेदान्ता-दिशास्त्रीय-ग्रन्थ-सम्पादकाः आसन् । मंजुभाषिणी-पत्रिकायाम् चित्रकाव्यानि उपन्यासाश्चेति सर्वम् मुद्रितम् ।

अस्यामेव परम्परायाम् सुविख्यातवाणीविलासप्रेस-द्वारा आर0 कृष्णमाचार्याणाम् सम्पादकत्वे "सहृदया" इत्याख्या संस्कृत-पत्रिका

प्रकाशिता । अस्याः सम्पादकाः पौरस्त्यपाश्चात्त्य-विद्यानाम् विद्वांसः आसन्। शेक्सपीयर-नाट्यकारस्य आङ्गलरचनानाम् परिचः संस्कृतपण्डितेभ्यः अनया पत्रिकया एव प्रदत्तः । एषा सुन्दर-संस्कृत-पत्रिका एकोनविंश-शताब्याम् पञ्चविंशतिवर्षावधिं यावत् निरन्तरम् प्रकाशिता-ऽभवत् । कोल्हापुरतः अप्पाशास्त्री राशिवडेकरः संस्कृतचंद्रिका-नाम्नीम् मासिक-पत्रिकाम् सम्पादितवान् । पण्डितेन अम्बिकादत्तव्यासेन विरचितस्य शिवराज-विजयाख्यस्य ऐतिहासिकोपन्यासस्य सर्वप्रथमम् प्रकाशनम् अस्यामेव पत्रिकायाम् जातम् । एतैः शास्त्रिवर्यैः ''सूनृतवादिन्'' इत्याख्यम् संस्कृतसाप्ताहिकम् पत्रमपि प्रारब्धम् । दौर्भाग्यात् ते यौवने एव दिवंगताः । तदनन्तरम् तत्पत्रप्रकाशनमपि निरुद्धम् । सम्पूर्णभारते प्रसिद्धिङ्गताः जयपुरस्य संस्कृत-विद्वांसः महामहोपाध्यायाः पण्डितगिरिधरशर्माणः चतुर्वेदिनः स्वविद्यार्थिकाले एव स्वाभाविकोत्साहेन चतुरधिकैकोनविंशतिशततमे (१९०४) ईस्वीये वर्षे ''संस्कृत-रत्नाकरः'' इत्याख्यं मासिकं प्रारब्धवन्तः । अस्य मासिकस्य संचालकैः सुप्रसिद्ध कल्याण-पत्रिकायाः विशेषांकसदृशाः सर्वगुणसम्पन्नाः बृहदाकाराः विशेषांकाः प्रकाशिताः । संस्कृतमासिकानाम् इतिहासे ईदृशम् उदाहरणम् दुर्लभम् ।

अस्मिन्नेव काले बंग-भंग-आन्दोलने कलकत्तायाः ''पद्यवाणी'' काशीतः ''मित्रगोष्ठी'' तथा ''संस्कृतभारती'' प्रयागतश्च ''शारदा''-इत्येषाम् संस्कृतपत्राणाम् कार्यमपि ऐतिहासिकम् । काशीक्षेत्रतः विद्यासुधानिधिः ''पण्डितः'' ''अच्युतः'' ''सुप्रभातम्'' ''वल्लरी'' ''सूर्योदयः'' ''अमरभारती'' एताः पत्रिका अपि प्रकाशिताः । अन्यक्षेत्रेषु कोचीनतः ''विज्ञानचिंतामणिः'' ढाकातः ''प्रतिभा'' सिंधहैदराबादतः ''कौमुदी'', मथुरातः ''संस्कृतभास्करः'', लाहौरतः ''उद्योतः'', श्रीनगरतः ''श्रीः'', नडियादतः ''पीयूषपत्रिका'' आगरातश्च ''कालिंदी'' इत्येताः संस्कृतपत्रिका अपि यथासमयम् प्राकाश्यं नीताः । बनारसतः संस्कृतकालेज-द्वारा प्रारब्धा ''सारस्वतीसुषमा'', आन्ध्र-साहित्यपरिषत्पत्रिका, ''मैसूरसंस्कृतकालेजपत्रिका'', कलकत्तायाः ''संस्कृतसाहित्य-परिषत्पत्रिका'', ''संस्कृतमण्डलपत्रिका'' चेति

संस्थाभिः प्रकाशिताः एता पत्रिकाः अधिकतरम् स्थैर्यम् वहन्ति । बेलगाँवतः प्रकाशिता ''मधुरवाणी'', अयोध्यायाः ''संस्कृतम् साप्ताहिकम्'', कलकत्तायाः ''मंजूषा'', तिरुवाडीस्थानस्य ''उद्यानपत्रिका'' चैता संस्कृतपत्रिकाः विविधकष्टानि सोढ्वापि संस्कृतम् सेवन्ते ।

परतन्त्रताकालेऽप्येतासां संस्कृतपत्रिकाणां माध्यमेनैव भारतस्य एकात्मतायाः अखण्डाभिव्यक्तिः जाता । भारतवर्षस्य मूलभूतमैक्म् आंगलभाषायाः साहाय्यं विना निर्विवादरूपेण सिद्धम् । भिन्न-भिन्न-प्रान्तनिवासिनः विद्वांसः संस्कृतमधिकृत्य परस्परम् एकत्र भवितुम् शक्नुवन्ति । नवशिक्षाप्राप्तविद्वांसः राष्ट्रभक्ताश्च संस्कृस्य वैशिष्ट्यम् वैज्ञानिकत्वम् च विज्ञाय नि र्भ्रान्ताः उत्साहिनश्च सञ्जाताः । 'संस्कृतम् न मृतम्' वस्तुतः 'संस्कृतम् अमृतम्' इति भावः हृदयेषु जागरितो जातः। एषः सर्वः संस्कृत-पत्र-पत्रिकाणाम् प्रभावः एव । एषा सर्वा संस्कृतपत्रपत्रिकाणाम् उपयोगिता । वर्तमानेऽपि बहूनि संस्कृत-पत्राणि प्रकाशताम् यान्ति । तत्रादौ सुधर्मापत्रिकायाः विषये प्रस्तूयते किञ्चित् । संस्कृतस्य प्रचार-प्रसारार्थं ये कार्यक्रमाः सम्प्रति अनुष्ठीयन्ते तेभ्यः सर्वेभ्यः दैनिक-संस्कृत-पत्रस्य प्रकाशः अतीव उपयोगी प्रभविष्यति यतो हि भाषा प्रतिदिनम् अभ्यासस्य विषयः । दशदिनानि अथवा मासं वर्षं वा अभ्यस्ता अपि अनन्तरम् अप्रयुक्ता च भाषा विस्मृता भवति । संस्कृतज्ञानां स्वाभाषया निरन्तरसम्पर्कस्थापने संस्कृतदैनिकम् अति उपकारि सेत्स्यति। तेन च संस्कृतस्य प्रचारे प्रसारे विकासे च महद् वरदानम् । संस्कृत-दैनिकस्य ''सुधर्मा'' इत्यस्य प्रकाशनम् श्री वरदराजअय्यंगारमहोदयानां महता त्यागेन संस्कृतं प्रति निष्ठया च कर्णाटके महीशूरपुरीतः (मैसूरतः) विंशतिवर्षेभ्यः अधिककालार्थं प्राचलत् । किन्तु संस्कृतजगतः पूर्ण-सहकाराभावात्, धनाभावात्, तस्य रुग्णत्वात् अन्यान्यकारणाच्च तस्याः प्रकाशनम् विगते वत्सरे स्थगितम् अभूत् । इत्थम् इदानीम् संस्कृतलोकस्य कल्याणार्थम् समग्रराष्ट्रस्य ऐक्यार्थम् विश्वशान्त्यर्थम् चापि संस्कृतस्य दैनिकपत्रम् नितराम् अपेक्षितम् तिष्ठति ।

विश्वस्य संस्कृतदिन-पत्रिकायाः संस्थापकाः साधकाः सम्पादकाः

सञ्चालकाः श्रीवरदराजाय्यङ्गार्याः अगस्तमासस्य पञ्चतारिकायाम् भानुवासरे (५.८.९०) महाविष्णोः पदसन्निधिं प्राप्ताः इति भवन्तः जानन्त्येव । "तेन विना तृणमपि न चलति" इति जानन्तोऽपि वयं लौकिकाः मायाग्रस्ताः विषीदामः, दुःखमनुभवामः, शोकं प्रकटीकुर्मः । वर्तन्ते परस्सहस्राः संस्कृतपण्डिताः, प्राध्यापकाः, किन्तु यत्कर्तुमन्यः कोऽपि न धैर्यमकरोत्, तन्महत्कार्यम् अय्यङ्गार्यमहोदयैः कृत्वा दर्शितम् । तेषु सत्त्वशक्तिः अप्रतिमा अवर्तत । तयैव ते तादृशं महत्कार्यम् साधितवन्तः। सर्वत्र एकमेव ध्येयम्, संस्कृत-भाषासंवर्धनम् भारतसंस्कृतिरक्षणञ्च । सुधर्मापत्रमाध्यमेन संस्कृतस्य दैनन्दिनप्रयोगः प्रदर्शितः । एषः सर्वथा व्यावहारिकः प्रयासः स्तुत्यः एव । १९७० ईस्वीये प्रारब्धम् पत्रमिदं भविष्यति अपि प्रतिदिनम् प्रकाशितम् भवेत् एतदर्थम् संमिल्य प्रयासः करणीयः ।

हरियाणा-प्रदेशे अपि एकपात्राभिनयरीत्या सततम् संस्कृतप्रसारं कुर्वन्तः प्रो0 सत्यदेववर्माणः हितसाधिका-इत्याख्यम् संस्कृतपाक्षिकं यमुनानगरतः प्रकाशयन्ति । अस्य पत्रस्य प्रकाशनम् १९८८ ईस्वीय-वर्षे दिसम्बरमासस्य पञ्चदशतारिकातः नियमितम् प्रचलति । प्रतिदिनम् आर्थिकानि कष्टानि जरीजृम्भन्ते । एकैकस्यापि वस्तुनो मूल्यं दिने दिने वर्धते । धनलाभमपश्यन्तो लेखकाः नातीवोत्साहिनः । एवं सत्यपि अनुरोधेन, प्रचोदनेन, प्रार्थनेन, याचनेन येन केनापि मार्गेण च लेखकानाम् ग्राहकाणां च हृदयं वशीकृत्य पाक्षिकमिदम् प्रचाल्यते ।

विश्वभाषा इत्याख्यम् विश्वसंस्कृत-प्रतिष्ठानस्य मुखपत्रम् वर्तते । अस्य प्रधानसम्पादकः पण्डितः गुलामदस्तगीर- अब्बास-अली-विराजदारो ऽस्ति । एषा अन्ताराष्ट्रिया त्रैमासिकी संस्कृत-पत्रिका विश्वे संस्कृतम् विश्वभाषापदे स्थापयितुम् प्रयतते । "अर्वाचीनसंस्कृतम्" इत्याख्यम् अर्वाचीनसंस्कृत-परकं त्रैमासिकं पत्रम् श्रीमतां विद्वद्वरिष्ठानाम् कविमल्लानां श्रीशारदाम्बावरदपुत्राणाम् डॉ0 रमाकान्त शुक्ल-महाभागानाम् सम्पादकत्वे देववाणी-परिषद् द्वारा दिल्लीतः नियमितरूपेण प्रकाश्यते । अर्वाचीनानाम् संस्कृतविदुषाम् अर्वाचीनाः संस्कृतरचनाः अर्वाचीनसंस्कृतपत्रिकायाम् दृग्गोचरीभवन्ति ।

सरलसंस्कृतम् व्यवहार्यम् । संस्कृतम् अद्यापि जनसामान्यस्य व्यवहारभाषा भवितुमर्हति यदि जनाः संस्कृतभाषणे भीतिं लज्जां च परिहरेयुः । संस्कृतव्याकरणम् किञ्चिदिव सरलमपि करणीयम् । सन्धयः समासाश्च संस्कृताध्ययनविषये दुरूहताम् समुत्पादयन्ति । समस्तासु अर्वाचीनभाषासु प्रत्येकं शब्दः पृथक्तया लिख्यते । अनेन अध्ययनं सुकरं भवति । यदि अस्माकम् सम्पूर्ण-वाङ्मयम् अनेन विधिना पुनर्लिखितं स्यात् तर्हि संस्कृताध्ययनम् अत्यन्तं सरलं भविष्यति । अन्यच्च आधुनिकं विज्ञानम् संस्कृते न विद्यते । अतः संस्कृताध्ययनस्य किमपि क्षेत्रं नास्ति। संस्कृत-पत्रपत्रिकासु विद्वज्जनैः वैज्ञानिकान् विषयान् समाश्रित्य लेखनं कार्यम् । मन्ये कार्यमिदम् सुकरं नास्ति । यतो हि संस्कृतज्ञाः प्रायः वैज्ञानिकाः न भवन्ति, नैव वैज्ञानिकाश्च संस्कृतज्ञाः । एतदर्थम् प्रथमम् वैज्ञानिक-विषयेषु सामान्यलेखाः लेखनीयाः । वैज्ञानिकानाञ्च जीवनपरिचयः वैज्ञानिकसाहित्यस्य इतिहासश्च संस्कृते प्रस्तोतव्यः । प्राचीनकाले ये वैज्ञानिकविषयाः गणित-ज्यौतिष-आयुर्वेद-यन्त्रशास्त्राणि च भारते अभूवन्, तेषाम् नूतनदृष्ट्या समीक्षणञ्च कार्यम् । ततः आधुनिकविषयेषु भौतिकविज्ञान-रसायनविज्ञान-जीवविज्ञान-वनस्पति विज्ञानादिषु तेषाञ्च विविधासु शाखासु प्रशाखासु अनूदिताः मौलिकाश्च ग्रन्थाः विरचनीयाः । इत्थं संस्कृतपत्रपत्रिकासु अवतीर्णम् विज्ञानं लोकदृष्टिं संस्कृतं प्रति आकर्षेत् । इयमेव संस्कृतपत्रपत्रिकाणाम् उपयोगिता । संस्कृतस्य संस्कृतपत्रपत्रिकाणाम् च प्रसाराय इदमुपरि संक्षेपेण यत्किञ्चित् मया निवेदितम् ।

अत्राहम् इदमपि लेखितुकामोऽस्मि यत् प्रादेशिकभाषासु हिन्दीभाषायाम् आङ्गलभाषायाञ्च यानि समाचारपत्राणि प्रकाशितानि भवन्ति तेषां व्यवस्थापकैः सह सम्पर्कम् विधाय अयमपि उद्योगः कर्तव्यः यत् तेषु पत्रेषु कतिपयस्तम्भाः सरलया ललितया च संस्कृतभाषया केषांचिद् लोकप्रियाणाम् विषयाणां प्रकाशनाय विनियोक्तव्याः । यदि तेषां पत्राणाम् कतिपयेषु स्तम्भेषु संस्कृतं भविष्यति तदा तत्पत्रपाठकेषु बहूनाम् तत्र दृष्टिपातो भविष्यति । क्रमेण च तद्द्वारा बहूनां रुचेः जागरणं सम्पत्स्यते । इत्थम् अयमपि प्रकारः संस्कृत-प्रचाराय सफलो भवितुमर्हति। संस्कृतपत्रपत्रिकाः तत्सम्पादकाश्च अस्यां दिशि बहुकार्यम् कर्तुम्

शक्नुवन्ति । ममायम् अनुभवो विश्वासश्च विद्यते यद् इदानीमपि संस्कृत-शिक्षायाम् जनतायाः आदरो वर्तते । जनता संस्कृतं शिक्षितुम् कामयते । परं संस्कृतशिक्षायाः युगानुरूपा व्यवस्था नास्ति । संस्कृते नवयुगस्य विषयाणाम् सन्निवेशो नास्ति । संस्कृते सरलानाम् रुचिवर्धकाणां नूतनग्रन्थानां रचना न जायते । एतत्सर्वम् संस्कृतपत्रपत्रिकाणाम् माध्यमेन एव कर्तुं सम्भवम् । इदमेव संस्कृतपत्रपत्रिकाणाम् उपयोगित्वम्।

इदम् सर्वं कार्यजातं हिन्दीभाषायाः आङ्गलभाषायाः भाषान्तराणां वा अध्यापकाः अध्येतारश्च न करिष्यन्ति, इदं तु संस्कृतस्य पण्डितैः , संस्कृतस्य विद्यार्थिभिः संस्कृतोपजीविभिः साधुप्रभृतिभिरेव च कर्तव्यम् भविष्यति । अतो मे भवत्सु विनयपूर्णा इयम् अभ्यर्थना विद्यते यत् सर्वे निद्रां विमुच्य परावलम्बनवृत्तिं परित्यज्य कर्तव्यभावनां पुरस्कृत्य, कालप्रातिकूल्यम् अनाक्षिप्य, ''सर्वम् भाग्यात् प्रवर्तते'', ''सर्वमीश्वरो घटयति'' इत्येवं विधाम् अकर्मण्यताप्रदां धारणाम् अवधीर्य

उत्थातव्यम् जागृतव्यम् योक्तव्यं भूतिकर्मसु ।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः ।।

इति व्यासोक्तिं पाथेयीकृत्य च सोत्साहाः कटिबद्धाः सन्तो द्रुततरं प्रवर्तन्ताम् येन सुरभारती संसारे प्राप्तपदा भूत्वा आत्मनोऽक्षय्यकोषेण विश्वमानवान् तर्पयन्ती भारतवर्षम् जगद्गुरुपदे पुनः प्रतिष्ठापयितुं प्रभवेत् । इति ।

अन्याः अपि संस्कृतपत्रपत्रिकाः भारतवर्षे प्रकाश्यन्ते । उपलब्धानाम् संस्कृतपत्रपत्रिकाणाम् एका सूची प्रस्तूयते । अत्रचेत् संशोधनम् अपेक्ष्यते, तर्हि विद्वद्भिः करणीयम् ।

## संस्कृत-पत्र-पत्रिकाणां सूची

अस्यां सूचौ प्रथमं पत्रिकायाः नाम तदनु च प्राप्तिस्थानम् दीयेते

(१) सुधर्मा (दैनिकी पत्रिका) । ५६१, रामचन्द्र-अग्रहारम्, श्री-कण्ठ-पावरप्रेसः, मैसूरः, ५७०००४

(२) संस्कृतभवितव्यम् (साप्ताहिकी पत्रिका )। संस्कृतभवनम्, पश्चिमन्यायालय-मार्गः, नागपुरम्, ४४०००१

(३) गाण्डीवम् ( साप्ताहिकी पत्रिका ) गाण्डीवकार्यालयः, सम्पूर्णानन्दसंस्कृत विश्वविद्यालयः, वाराणसी, २२१००२

(४) युगगतिः। ( साप्ताहिकी पत्रिका ) गोरक्षपुरम् बक्शीपुरम्, २७३००१

(५) शारदा।(पाक्षिकी पत्रिका) २, झेलम पत्रकारनगरी, पुणें, १६

(६) संस्कृतसाकेतः (पाक्षिकी पत्रिका ) । साकेतकार्यालयः, अखिलभारतीयविद्वत्समितिः, अयोध्या (उ० प्र०)

(७) संस्कृतश्रीः(पाक्षिकी पत्रिका ) श्रीरामपुरम्, २२, वीरेश्वरसम्पर्कमार्गः, श्रीरङ्गम्

(८) गैर्वाणी (मासिकीपत्रिका) एन0 आर0 एअरविजयप्रेसः, चित्तूर, आन्ध्रप्रदेशः ५१७००१ संस्कृतभाषाप्रचारिणी सभा

(९) सूर्योदयः (मासिकी पत्रिका ) भारतधर्ममहामण्डलम्,जगतगंजः 'लहुराबीरः', वाराणसी

(१०) भारती (मासिकी पत्रिका ) भारती-भवनम् बी-१५, नवकालोनी, जयपुरम्, ३००२०१

(११) संस्कृतामृतम् १४१८, बाजार गुलियानः, दिल्ली, ११०००६

(१२) पारिजातम्(मासिकी पत्रिका )१०५/१९४, प्रेम-नगरम्, कर्णपुरम्, २०८००१

(१३) गीर्वाणसुधा(मासिकी पत्रिका )इन्दिरा-निवासः, अ0 गो0 स्ट्रीटमार्गः, मुम्बई ४००००४

(१४) दिव्यज्योतिः (मासिकी पत्रिका ) आनन्दलॉजः, जाखू, शिमला- १

(१५) भारतोदयः(मासिकी पत्रिका )गुरुकुलमहाविद्यालयः, ज्वालापुरम्,हरिद्वारम्, उत्तरप्रदेशः, २४९४०५

(१६) बालसंस्कृतम् (मासिकी पत्रिका) मनीलालमेहतामार्गः, लालबहादुरशास्त्रीपथः,घाटकोपरः, मुम्बई नगरम्, ४०००८६

(१७) प्रणवपारिजातः (मासिकीपत्रिका) श्रीसीतारामवैदिक-महाविद्यालयः, ७२, पी0 डब्ल्यू0 डी0 मार्गः, कलकत्ता-३५

(१८) शारदा (मासिकी पत्रिका ) पो0 बा0 ७५०, शारदाकार्यालयः पुणें, ४११०३०

(१९) चन्दामामा (मासिकी पत्रिका) डाल्टन एजेंसी, वाडाल्पलनी, मद्रास- २६

(२०) सर्वगन्धा (मासिकी पत्रिका) माईजीमन्दिरम्, अशरफाबादम्, लक्ष्मणपुरम्, लखनऊ, उत्तर प्रदेशः, २२६००३

(२१) संस्कृतसाहित्यपरिषत्पत्रिका (मासिकी पत्रिका) १६८/१, राजादीनेन्द्रस्ट्रीटमार्गः, श्यामबाजारः, कलकत्ता,प० बंगाल-प्रदेशः

(२२) संस्कृतप्रचारकम् (मासिकीपत्रिका) ५५०, आनन्दविहारः, मौजपुरम्, दिल्ली, ११००२३

(२३) ललिता (मासिकी पत्रिका) कविभारती, किशोरविद्या-निकेतनम्, वी-२/२३६ ए, भदैनी, वाराणसी

(२४) मंजूषा(मासिकी पत्रिका )क्षितीशचन्द्रचट्टोपाध्यायः, द्वारा-४ भूपेन्द्र वसु एवैन्यु, कलकत्ता-४

(२५) श्रीः (मासिकी पत्रिका) नित्यानन्दशास्त्री, सुन्वारबागः, श्री नगरम्, काश्मीरः

(२६) भारतश्रीः (मासिकी पत्रिका) श्रीधरशास्त्री, भारतीपरिषद्, प्रयागः

(२७) साम्मनस्यम् (मासिकी पत्रिका) गुजरातसंस्कृतपरिषद्, हिमजनसमाजकल्याणकेन्द्रम्, पालडी, अहमदाबाद, गुजरातः

(२८) उद्यानपत्रिका (मासिकी पत्रिका) ११३, साउथमाडल-स्ट्रीटमार्गः, तिरुपतिः आंन्ध्रप्रदेशः

(२९) सत्यानन्दम् (मासिकी पत्रिका) १, इब्राहिमपुररोडमार्गः, यादवपुरम्, कलकत्ता, ७०००३२

(३०) भारतमुद्रा (द्वैमासिकी पत्रिका) पुरनाट्टुकारा त्रिचूरः, केरलम्, ६८०५५१

(३१) मालवमयूरः ( द्वैमासिकी पत्रिका) रुद्रदेवत्रिपाठी, मन्दसौरः, मध्यप्रदेशः

(३२) वेदान्तसन्देशः( द्वैमासिकी पत्रिका ) स्वामी मनोहरदासः, २/१३२, वलागंज,कानपुरम्

(३३) लोकसंस्कृतम् (त्रैमासिकी पत्रिका) संस्कृतकार्यालयः, श्रीअरविन्दाश्रमः, पाण्डीचेरी, ६०५००२

(३४) सारस्वती सुषमा (त्रैमासिकी पत्रिका) सम्पूर्णानन्दसंस्कृत-विश्वविद्यालयः, वाराणसी २२१००२

(३५) सागरिका (त्रैमासिकी पत्रिका )सागरिका-समितिः, गौरनगरम्, सागरः, मध्यप्रदेश

(३६) अजस्रा (त्रैमासिकी पत्रिका ) अखिलभारतीय-संस्कृतपरिषद्, महात्मागांधी-मार्गः, हजरतगंजः, लखनऊ, उत्तरप्रदेशः

(३७) परमार्थसुधा (त्रैमासिकी पत्रिका) सार्वभैमसंस्कृत-प्रचारकार्यालयः, ३८/११०, हौजकटोरा, वाराणसी ( उ० प्र० )

(३८) विश्वसंस्कृतम् (त्रैमासिकी पत्रिका) विश्वेश्वरानन्द-वैदिकशोधसंस्थानम्, साधु-आश्रमः, होशियारपुरम्, पंजाबः १५१०२१

(३९) संस्कृतसम्मेलनम् (त्रैमासिकी पत्रिका) श्रीरामनिरञ्जन-मुरारकासंस्कृतमहाविद्यालयः चौक पटना , बिहारः

(४०) गुञ्जारवः (त्रैमासिकी पत्रिका) कालेश्वरमन्दिरम्, घुमेरगल्ली, अहमदनगरम्, महाराष्ट्रप्रदेशः

(४१) विश्वभाषा (त्रैमासिकी पत्रिका) विश्वसंस्कृतप्रतिष्ठानम्, दुर्ग रामनगरम् वाराणसी ।

(४२) अर्वाचीनसंस्कृतम् (त्रैमासिकी पत्रिका) देववाणी-परिषद्, दिल्ली, ६ वाणी विहारः, नयीदिल्ली, ११००५९

(४३) उत्कलोदयः (त्रैमासिकी पत्रिका) ए/९९, सेक्टर-१३, राउरकेला (उत्कलः) उड़ीसा ७६०००९

(४४) संविद् (त्रैमासिकी पत्रिका) भारतीयविद्याभवनम्, कुलपति के0 एम0 मुंशी मार्गः, मुम्बई ।

(४५) संगमनी (त्रैमासिकी पत्रिका) संस्कृतसाहित्यपरिषद्, दारागंजः, प्रयागः

(४६) स्वरमंगला (त्रैमासिकी पत्रिका) राजस्थानसाहित्य-अकादमी, उदयपुरम्, राजस्थानम्, ३१३००१

(४७) दिग्दर्शिनी (त्रैमासिकी पत्रिका) उत्कलसंस्कृत-गवेषणासमाजः, पुरी, उड़ीसा ७५२००१

(४८) मनीषा (त्रैमासिकी पत्रिका) श्री कामेश्वर-सिंह दरभंगा, संस्कृतविश्वविद्यालयः, दरभंगा, बिहारः

(४९) मनीषासूत्रम् (त्रैमासिकी पत्रिका) दारागंजः, प्रयागः, इलाहाबादः उत्तर-प्रदेशः, २११००१

(५०) कामधेनुः (त्रैमासिकी पत्रिका) भारतविद्यापीठम्, पो0 ओ0 इरनेल्लूर त्रिचूर, (केरल) ६८०५०१ ।

(५१) दूर्वा (त्रैमासिकी पत्रिका) मध्यप्रदेश-संस्कृत अकादमी, चार बंगला मार्गः, सिविल लाइन भोपालः, मध्य प्रदेशः, ४६२००२

(५२) ऋतम् (त्रैमासिकी पत्रिका) अखिलभारतीयसंस्कृतपरिषद्, हजरतगंजः, लखनऊ नगरम्, उत्तरप्रदेशः, २२६००१

(५३) श्रेयः (त्रैमासिकी पत्रिका) डा0 रामदत्तभारद्वाजः, सी0 ३/३१ ए, राजौरी गार्डनः, नवदेहली-११००२६

(५४) प्राच्यभारती (षाण्मासिकी पत्रिका) असमसंस्कृतसमितिः, काहिलीपाड़ा, गुवाहाटी, आसाम-प्रदेशः

(५५) भास्वती (षाण्मासिकी पत्रिका) संस्कृतविभागः, काशीविद्यापीठः, वाराणसी, उत्तरप्रदेशः

(५६) संस्कृतप्रतिभा (षाण्मासिकी पत्रिका) साहित्य-अकादमी, रवीन्द्रभवन फीरोजशाह रोड, नवदेहली-११०००१ ।

(५७ ) सुरभारती (षाण्मासिकी पत्रिका) उस्मानिया यूनिवर्सिटी कैम्पस, हैदराबाद, ५००००७

(५८) शोधप्रभा (षाण्मासिकी पत्रिका) श्री लालबहादुरशास्त्रि केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठम्, शहीदजीतसिंहः मार्ग, कटवारियासरायः नवदेहली- ११००१६

(५९) प्राच्यज्योतिः (षाण्मासिकी पत्रिका) संस्कृतप्राच्यविद्या-संस्थानम्, कुरुक्षेत्रविश्वविद्यालयः, कुरुक्षेत्रम्, १३२११९

(६०) भारतीयविद्या (षाण्मासिकी पत्रिका) भारतीयविद्याभवनम्, कुलपति के0 एम0 मुंशी मार्गः, मुम्बई-४००००७

(६१) संस्कृत-वीणा (षाण्मासिकी पत्रिका) शारदोद्यानम्, हरियाणाप्रदेशः १३२११८

(६२) एनल्स ऑफ भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट पूना, ४११००२

(६३) जनरल ऑफ ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट बड़ौदा, गुजरात प्रदेशः

(६४) द जनरल ऑफ गंगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीच्यूट इलाहाबादः उत्तरप्रदेशः

(६५) द जनरल ऑफ संस्कृत अकादमी, ओस्मानिया-विश्वविद्यालयः, हैदराबादः, आन्ध्र-प्रदेशः

(६६) द जनरल ऑफ द मैसूर ओरियण्टलिस्ट्स, ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट मैसूरः, कनार्टक प्रदेशः

(६७ ) नवप्रभातम् (नवीनं दैनिकम्) ११७ /८१, ए, न्यूब्लाकः शारदानगरम् कानपुरम्, उत्तरप्रदेशः, २०८०२५

## बीसवीं शताब्दी की संस्कृत-पत्र-पत्रिकायें

# 'ऋतम्' और 'अजस्रा'

डॉ० शशि तिवारी

लखनऊ में अखिल भारतीय संस्कृत परिषद् नामक संस्था का जन्म स्वर्गीय आचार्य नरेन्द्र देव, स्वर्गीय डॉ0 सम्पूर्णानन्द और स्वर्गीय प्रोफेसर को0 अ0 सुब्रह्मण्य अय्यर की प्रेरणा और संरक्षण में वर्ष १९५१ में हुआ था। तब से ही यह संस्था संस्कृत भाषा और साहित्य के अध्ययन, शोध और प्रकाशन से सम्बद्ध बहुविध कार्यों में संलग्न हैं और आज भारतवर्ष की संस्कृत-शोध-संस्थाओं में इसका विशेष स्थान है। परिषद् के पास संस्कृत, पाली और प्राकृत के ग्रन्थों और पाण्डुलिपियों का एक दुर्लभ और अमूल्य संग्रह है जो परिषद् के पुस्तकालय के रूप में परिषद्-भवन में सभी संस्कृत प्रेमियों और विद्यार्थियों के लिए सुलभ है।

लखनऊ की संस्कृत-परिषद् ने संस्कृत भाषा और साहित्य के विकास में जो योगदान दिया है उसके कुछ उल्लेखनीय पक्ष हैं-संस्कृत,पाली और प्राकृत के दुर्लभ ग्रन्थों का सम्पादन और प्रकाशन, पाण्डुलिपियों के सूची-ग्रन्थों का निर्माण और प्रकाशन, संस्कृत के शोध-ग्रन्थों और मौलिक रचनाओं का प्रकाशन, संगोष्ठी और भाषणों का आयोजन, अभिनन्दन-ग्रन्थों द्वारा संस्कृत विद्वानों का सम्मान, संस्कृत नाटकों का मञ्चन और संस्कृत में छात्र और छात्राओं द्वारा शोध कार्य का नियोजन। अभी तक तीस से उपर ग्रन्थों का प्रकाशन इस संस्कृत-परिषद् द्वारा किया जा चुका है इनमें प्रमुख ग्रन्थ हैं। (१) इंगलिश संस्कृत डिक्शनरी, श्री मोनियर विलियम्स, भूमिका डॉ0 सम्पूर्णानन्द द्वारा (२) नलोपाख्यानम्, संपादक-डॉ0 जगदम्बा प्रसाद सिन्हा (३) संस्कृतसूक्तिसंग्रह, संकलयिता-डॉ0 सत्यव्रत सिंह; (४) वेदान्त-परिभाषा,व्याख्याकार-श्री आनन्द झा; (५) गोपीनाथ कविराज अभिनन्दन ग्रन्थ; (६) स्टडीज़ इन एन्शियण्ट इन्डियन सील्स्, डा0 के0 के0 थपरियाल; (७) धीकोटिदकरणम्, सम्पादक-डा0 कृपाशंकर शुक्ल; (८) बीजगणितावतंसः, सम्पादक-डा0 कृपाशंकर शुक्ल; (९) श्रीकृतार्थकौशिकम् (नाटकम्); पं0 श्रीकृष्ण जोशी; (१०) सुधाभोजनम् (नाटकम्), डा0 अशोक कुमार कालिया; (११) शर्मण्यदेशः सुतरां विभाति (काव्यम्) , डा0 सत्यव्रत शास्त्री; (१२) लक्ष्मीतन्त्रः धर्म और दर्शन, डा0 अशोक कुमार कालिया; (१३) अवधूतसिद्धकृतम् भक्तिस्तोत्रम्, सम्पादक-पं0 गोपीनाथ कविराज; (१४) वर्सज एट्रीब्यूटड टु मुरारि,

प्रो0 लुडविक स्टर्नबाख; (१५) अननोन वर्सज एट्रीब्यूटेड टु क्षेमेन्द्र, प्रो0 लुडविक स्टर्नवाख; (१६) धर्मशास्त्र कोश; (१७) परिषद् के हस्तलिखित ग्रन्थों के सूची ग्रन्थ (कई खण्डों में); (१८) लुडविक स्टर्नवाख अभिनन्दन-ग्रन्थ। परिषद् ने ६६० पृष्ठों का बृहद् और भव्य 'गोपीनाथ कविराज अभिभन्दन ग्रन्थ' वर्ष १९६७ में महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज को समर्पित कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया था तथा वर्ष १९७९ में पोलेण्ड के वयोवृद्ध भारतीय-विद्या-विशेषज्ञ प्रो0 लुडविक स्टर्नवाख के सम्मान में दो बृहद् खण्डों में 'लुडविक स्टर्नवाख अभिनन्दन ग्रन्थ' प्रकाशित कर स्वयं को कृतकृत्य किया था।

परिषद् ने आज से लगभग बीस वर्ष पूर्व 'ऋतम्' नाम से एक शोध पत्रिका (जर्नल) का अर्धवार्षिक प्रकाशन प्रारम्भ किया और चौदह वर्ष पूर्व 'अजस्रा' नाम्नी संस्कृत त्रैमासिकी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया था। अब तक इन दोनों ही पत्रिकाओं में अनेक भारतीय और विदेशी प्राच्यविद्याविदों के शोध पत्र, आधुनिक संस्कृतज्ञों द्वारा विरचित संस्कृत लेख-कविता कथा रूपकादि और तत्कालीन प्रकाशित संस्कृत पुस्तकों की विस्तृत और तत्त्वगर्भित समीक्षायें प्रकाशित हो चुकी है।

## ऋतम्

अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्,महात्मा गाँधी मार्ग, हजरतगंज, लखनऊ द्वारा 'ऋतम्' नामक शोध पत्रिका का प्रकाशन जुलाई १९६९ से प्रारम्भ हुआ। जनवरी १९७० में प्रथम खण्ड का द्वितीय अङ्क प्रकाशित हुआ। प्रथम सम्पादकीय में ही पत्रिका को त्रैभाषिक घोषित किया गया और साथ ही पत्रिका के प्रकाशन के तीन उद्देश्यों का निर्देश भी किया गया- (१) भारतीय विद्या के विविध क्षेत्रों में, विशेषकर उनमें जिनका सम्बन्ध संस्कृत, पालि और प्राकृत भाषा तथा वाङ्मय से है, शोध कार्य को प्रेरित और पोषित करना, (२) अखिल भारतीय संस्कृत परिषद् के हस्तलिखित ग्रन्थ-संग्रह में विद्यमान संस्कृत, पालि और प्राकृत के दुर्लभ तथा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों को क्रमशः प्रकाश में लाना, तथा (३) भारतीय विद्या और उसकी उन्नति में रुचि रखने वालों को परिषद् के कार्यकलाप तथा संस्कृत-सम्बन्धी अध्ययन और भारतीय विद्या के क्षेत्र में होने वाले शोध कार्यो से सम्बद्ध समाचार अवगत कराते रहना। प्रथम अंक से ही 'ऋतम्' के आवरण पृष्ठ पर 'दिव्या गीर्वाणभारती' आदर्शवाक्य से युक्त परिषद् के प्रतीक चिह्न को स्थान दिया गया है।

वर्ष १९६९ में गठित ऋतम् के सम्पादक मण्डल में उच्च कोटि के बारह विशिष्ट विद्वान् थे- (१) डॉ0 अनन्त लाल ठाकुर, वैशाली इन्स्टीट्यूट; (२) डा0 ए0 सी0 बनर्जी, आचार्य और अध्यक्ष, गोरखपुर विश्वविद्यालय; (३) डॉ0 बाबूराम सक्सेना, इलाहाबाद, (४) श्री ब्रजबासी लाल, निदेशक,पुरातत्त्व विभाग (५) डा0

डी0 एन0 शास्त्री, निदेशक प्राच्यविद्या संस्थान, दिल्ली (६) श्री गोपाल चन्द्र सिंह, सेवानिवृत्त न्यायमूर्ति (७) डा0 हेमचन्द्र जोशी,गोरखपुर विश्वविद्यालय; (८) डॉ0 सत्यव्रत शास्त्री, दिल्ली विश्वविद्यालय; (९) डॉ0 सत्यव्रत सिंह, भूतपूर्व उपकुलपति संस्कृत विश्वविद्यालय, (१०) डॉ० ए0 सिद्धेश्वर भट्टाचार्य,बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, (११) प्रो० को0 अ0 सुब्रह्मण्य अय्यर, भूतपूर्व कुलपति, लखनऊ विश्वविद्यालय, (१२) डा0 जे0 पी0 सिन्हा, लखनऊ विश्वविद्यालय । वर्ष १९७९ से कुछ दूसरे विद्वान् भी सम्पादक मण्डल में सम्मिलित किये गये- डॉ0 विश्वनाथ बनर्जी, विश्वभारती विश्वविद्यालय, शान्तिनिकेतन; डॉ0 जी0 सी0 त्रिपाठी, प्राचार्य गंगानाथ झा संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद; डा0 के0 वी0 शर्मा, अडयार पुस्तकालय मद्रास; डा0 एन0 पी0 उन्नी, केरल विश्वविद्यालय, त्रिवेन्द्रम । परन्तु प्रारम्भ से ही मुख्य सम्पादक डा0 जे0 पी0 सिन्हा रहे । कालान्तर में ग्यारहवें खण्ड से डॉ० अशोक कुमार कालिया ने सहायक सम्पादक का कार्यभार वहन किया ।

'पण्डित गोपीनाथ कविराज अभिनन्दन-ग्रन्थ' और 'प्रो0 लुडविक स्टर्नवाख अभिनन्दन ग्रन्थ' के अतिरिक्त संस्कृत परिषद् ने 'ऋतम्' के विशेषांक के रूप में भी अब तक तीन विशाल और विद्वत्तापूर्ण अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं । पाँच अङ्कों (II-VI, जुलाई १९७० से जनवरी १९७५) को समाहित करता हुआ ऋतम् का विशेषांक 'प्रो0 को0 अ0सुब्रह्मण्य अय्यर अभिनन्दनग्रन्थ' के रूप में सर्वप्रथम आया था । इसके प्रमथ भाग में ऋषिकल्प तपस्वी और मनीषी गुरुदेव प्रो0 अय्यर के जीवन, कृतित्व, चिन्तन और अध्यापन को लेकर संस्कृत विद्वानों के लेख और कविताओं का सङ्कलन है, तो द्वितीय भाग में देश और विदेश के प्राच्य विद्याविदों के लगभग एकतालीस शोधपूर्ण लेखों का संग्रह है । लेख वेद, साहित्य, भाषा, व्याकरण, पुरातत्त्व, दर्शन आदि अनेक विधाओं से सम्बद्ध है । पुस्तक समीक्षा के अन्तर्गत प्रो० को0 अ0 सुब्रह्मण्य अय्यर के भर्तृहरिपरक ग्रन्थ (Bhartṛhari, A study of the Vākyapadiya In the Light of the Ancient Commentaries) की डा0 बाबूराम सक्सेना कृत विशद मीमांसा ने निश्चय ही इस अभिनन्दन ग्रन्थ को अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध कर दिया । 'ऋतम्' का दूसरा (खण्ड XI-XV) विशेषाङ्क पुनः पाँच अंकों को समाहित करता हुआ जुलाई १९७९से जुलाई १९८३ के लिए 'डा0 बाबूराम सक्सेना अभिनन्दन ग्रन्थ' के रूप में आया । संस्कृत तथा भाषा विज्ञान के विश्वविश्रुत विद्वान्, प्रयाग विश्वविद्यालय के पूर्व संस्कृत-प्राचार्य तथा प्रयाग और रायपुर विश्वविद्यालयों के भूतपूर्व कुलपति डॉ0 बाबूराम सक्सेना के सम्मानार्थ प्रस्तुत यह अभिनन्दन ग्रन्थ एक श्रेष्ठ ग्रन्थ के कलेवर और सज्जा से सम्पन्न है । ग्रन्थ का प्रथम भाग प्रोफेसर सक्सेना के व्यक्तित्व और कृतित्व से सम्बद्ध संस्मरणों से सज्जित है तो द्वितीय भाग में तिरसठ शोधलेख सङ्कलित हैं, जिसके लेखक वर्ग में सम्पूर्ण भारत वर्ष के परमप्राच्यविद्याविशेषज्ञ ही नहीं,अपितु ऑक्सफोर्ड

विश्वविद्यालय, नीदरलेण्ड, युनाइटेड किंगडम, सोवियत रूस के विद्वान् भी सम्मिलित हैं। डा० जे० खोण्डा, डा० लोकेश चन्द्र, डा० एस० ए० डाँगे, डॉ एस० एम० कात्रे, श्री० आर० एल० टुरनेर (डा० सक्सेना के गुरु), डा० रामगोपाल, डा० जी० वी० देवस्थली जैसे अनेकानेक विशिष्ट विद्वानों के लेखों ने इस ग्रन्थ को गौरवान्वित और अमूल्य बना दिया है। लेख प्राच्यविद्या के सभी महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों से सम्बद्ध हैं। 'ऋतम्' के तीन अङ्कों (XVI-XVIII) का एक विशेषाङ्क जुलाई १९८४ से जुलाई १९८६ तक के लिए अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्, लखनऊ के संस्थापक मन्त्री तथा ऋतम् के प्रवर्तक श्री गोपाल चन्द्र सिंह जी की स्मृति में प्रकशित हुआ 'श्रीगोपालचन्द्र-सिंह स्मृत्यङ्क'। ६०४ पृष्ठों का यह विस्तृत आकर्षक और विद्वत्तापूर्ण विशेषाङ्क परिषद् के संस्थापक और प्रेरणास्रोत आदरणीय जज साहब के अभिनन्दनार्थ तैयार किया जा रहा था किन्तु नियति ने उसे स्मृति-ग्रन्थ बना दिया। सत्य ही यह ग्रन्थ विद्वत्तापूर्ण लेखों से अलङ्कृत होकर 'गागर में सागर' उक्ति को चरितार्थ करता हुआ श्री सिंह की स्मृति को चिरकालीन रखेगा-इसमें किंचित् सन्देहावकाश नहीं है। स्मृत्यङ्क के प्रथम भाग में श्री गोपालसिंह के प्रति अभिनन्दन और श्रद्धाञ्जलि के रूप में विद्वानों द्वारा प्रस्तुत छब्बीस संस्मरण लेख हैं, तो द्वितीय भाग में प्राच्य और पाश्चात्त्य संस्कृतज्ञ विद्वानों के गहन चिन्तन, गम्भीर अध्ययन और मौलिक शोध को प्रदर्शित करने वाले, विविध विषयों से सम्बद्ध विद्वत्तापूर्ण उनसठ शोधपत्र संगृहीत हैं। ग्रन्थ के तीसरे भाग में पुस्तक समीक्षा के अन्तर्गत भारतीय विद्या के बाइस विशिष्ट ग्रन्थों की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। ग्रन्थ के अन्त में शोध लेखकों के शैक्षिक परिचय से ग्रन्थ की गरिमा में निश्चय ही वृद्धि हुई है। दर्शनीय है कि ऋतम् के इस विशेषाङ्क में विदेशी विद्वानों का योगदान भारतीय विद्वानों से कम नहीं है। सम्प्रति ऋतम् का एक विशेषाङ्क प्रकाशनाधीन है।

प्रतिष्ठित विद्वानों के शोधपरक गम्भीर लेख किसी भी शोधपत्रिका के उच्च स्तर के प्रतीक होते हैं। ऋतम् एक ऐसी ही शोधपत्रिका है जिसमें भारतीय विद्या के विविध क्षेत्रों से सम्बद्ध, देश और विदेश के अनेकानेक विद्वानों के लगभग तीन सौ शोधपत्र अब तक छप चुके हैं। डा० अनन्त लाल ठाकुर, प्रो० डा० जे० खोण्डा प्रो० लुडविक स्टर्नवाख, डा० सत्यव्रत सिंह, डा० एस० एस० सरकार, डा० वी० वरदाचारी, प्रो० को० अ० सुब्रह्मण्य अय्यर, डा० आर० सी० भट्टाचार्य, डा० जी० एल० चतुर्वेदी, डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ, डा० एम० एम० शर्मा, जे० एम० डी० मोरा, एस० जी० कान्टावाला, मिनोरु हारा, डा० आर० सी० द्विवेदी, डा० जी० वी० देवस्थली, डा० एन० पुरी, प्रो० वी० वी० मिराशी, डा० एस० पाण्डे, डा० रनजीत सरकार, डा० वी० जी० रहुरकर, डा० एस० जी० लाडू, डा० एस० एस० जानकी, डा० सत्यव्रत शास्त्री, डा० एन० पी० उन्नी, डा० भोलानाथ तिवारी, डा० आर० एम० त्रिपाठी, डा० के० के० थपरियाल, डा० लोकेश चन्द्र, डा० एम० ए० महेण्डले,

डा0 ए0 एन0 जानी, डा0 सूर्यकान्त, डा0 सिद्धेश्वर वर्मा, श्री बटुकनाथ शास्त्री, डा0 सत्यदेव चौधुरी, डा0 डी0 एन0 शास्त्री, डा0 एस0 एम0 कात्रे जैसे उच्च कोटि के भारतीयविद्याविदों के शोधपत्र ऋतम् के विभिन्न अकों में समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। वेद, उपनिषद् और और दर्शन से सम्बद्ध विषयों के अतिरिक्त व्याकरण, व्युत्पत्ति, संस्कृत काव्य, काव्यशास्त्र, भारतीय प्राचीन इतिहास,पाली, प्राकृत, अवेस्ता, तन्त्र साहित्य, भाषाविज्ञान आदि के सूक्ष्म विषयों के गवेषणापरक लेख ऋतम् के अङ्कों की विशेषता रहे हैं। पिछले बीस वर्षों में प्रकाशित शोधपरक सन्दर्भ ग्रन्थों और संस्कृत मौलिक ग्रन्थों में से कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की समीक्षायें ऋतम् में निकल चुकी हैं, यथा गृह्यमन्त्र और उनका विनियोग, डा0 कृष्णलाल, समीक्षक डा0वी0 एम0 आप्टे ; महासुभाषित संग्रह - सम्पादक-डा0 लु0स्टर्नवाख, समीक्षक- पी0 एल0 भार्गव; भाषा और भाषिकी, डॉ0 देवीशङ्कर द्विवेदी, समीक्षक-उदय नारायण तिवारी,डा0 धर्मेन्द्र नाथ शास्त्री कृत 'संस्कृत शिक्षा की नवीन योजना' ,समीक्षक, डा0 सत्यव्रत शास्त्री, इण्डियन काव्य लिटरेचर (तीन खण्डों में), डा0 ए0 के0 वारडेर, समीक्षक-डा0 जे0 पी0 सिन्हा, विण्टरनिट्ज के हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर (प्रथम भाग ) का अनुवाद अ0-वी0 श्रीनिवास शर्मा, समीक्षक-डा0 जे0 पी0 सिन्हा; ऋग्वेदीय आप्रीसूक्त, डा0 शशि तिवारी, समीक्षक-डा0 प्रीति सिन्हा; मल्लिनाथ-मनीषा सं0 डॉ0 पी0 जी0 लाले, स० डॉ० प्रीति सिन्हा, पाणिनि, जार्ज कारडोना, समीक्षक-डा0 जे0 पी0 सिन्हा, ध्वन्यालोक, सम्पादनकर्ता-डा0 के0 कृष्णमूर्ति, समीक्षक -डा0 जे0 पी0 सिन्हा इत्यादि।

अन्ततः कह सकते हैं कि 'ऋतम्' पत्रिका प्राच्य विद्या से सम्बद्ध बहुपक्षीय शोध की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है और संस्कृत-जगत् में अपनी स्वतन्त्र पहचान बना चुकी है।

## अजस्रा

'अजस्रा' नामक संस्कृत-त्रैमासिकी पत्रिका का प्रकाशन अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्, लखनऊ से जुलाई १९७७ से प्रारम्भ हुआ था। इसके एक वर्ष के चारों अङ्क क्रमशः जुलाई, अक्टूबर,जनवरी और अप्रेल में प्रकाशित होते हैं। आवरण पृष्ठ पर कभी संस्कृत परिषद् का प्रतीक चिह्न अङ्कित होता है तो कभी कोई प्रासङ्गिक चित्र, रेखाचित्र या किसी संस्कृत विद्वान् का फोटो। पत्रिका अजस्रा का आदर्श वाक्य है 'दैवीं वाचमुद्यासं शिवाम् अजस्रां जुष्टां देवेभ्यः' (लौ0 गृ०सूत्रभाष्ये ४३ का0)। पत्रिका के प्रथम अङ्क के सम्पादकीय में संस्कृत भाषा और साहित्य की भारतीय समाज में आवश्यकता की विशद समीक्षा करते हुए पत्रिका के उद्देश्य पर भी प्रकाश डाला गया है-'आज संस्कृत के संवर्धन की अनेक योजनायें हैं, कई कार्य हैं, विविध पत्रिकायें भी हैं। किन्तु ये सब पर्याप्त नहीं हैं इसलिए समय के आह्वान

के अनुसार लक्ष्मणपुर स्थित संस्कृत परिषद् द्वारा 'अजस्रा' नाम्नी संस्कृत पत्रिका सञ्चालित की जा रही है। आशा करते हैं कि अजस्रा निरन्तर नवयुग को अनुरूप सामग्री प्रस्तुत करके पाठकों का मनोविनोद करेगी और उपयोगी प्रकाशन द्वारा जन श्रेय को सम्पादित करेगी।' ''पत्रिकेयं नवलेखकानाम् उत्साहपरिवर्धन-संरक्षणोन्मुखीकरणेषु प्रभूतं योगं विधाय प्राचीनसंस्कृतक्षेत्राणां प्रकाशनरक्षणविधौ पर्याप्तां कर्तव्यतां विनियोज्य प्राचीननवीनमार्गयोः सेवाकार्यधुरं परिणद्धकन्धरा वक्ष्यतीति दृढं विश्वसिमः।'' अजस्रा के प्रवेशाङ्क पर टिप्पणी करते हुए डा0 बाबूराम सक्सेना ने लिखा था-'अजस्त्रा का प्रथम अंक देखकर खुशी हुई।' इसी प्रकार डा0 एस0 जी0 कान्टावाला, श्री के0 वी0 शर्मा और डा0 घनश्याम तिवारी ने भी प्रशंसा प्रदर्शित करते हुए पत्र भेजे थे, जिनको प्रथम वर्ष के द्वितीय अङ्क में स्थान दिया गया था।

अजस्रा के सम्पादक-मण्डल के सदस्य रहे-डा0 अशोक कुमार कालिया, डा0 मातृदेव त्रिवेदी, पं0 राम नारायण त्रिपाठी, पं0 शारदाचरण दीक्षित और डा0 सत्यव्रत सिंह। सम्प्रति अशोक कुमार कालिया मुख्य सम्पादक पद पर कार्य कर रहे हैं और डा0 मातृदेव त्रिवेदी और पं0 रामनारायण त्रिपाठी सम्पादक मण्डल के सदस्य हैं।

परिषद् द्वारा प्रकाशित 'अजस्रा' त्रैमासिक संस्कृत मञ्जूषा का एक विशेषांक स्व0 प्रो० को0 अ0 सुब्रह्मण्य अय्यर की स्मृति में जनवरी १९८१ में प्रकाशित किया गया था, जिसमें चौथे वर्ष के द्वितीय और तृतीय अङ्क समाहित किये गये थे। 'अय्यरस्मृत्यङ्कः' को पञ्चम विश्व संस्कृत सम्मेलन के अवसर पर निकाला गया था। इसके आवरण पृष्ठ पर प्रो0 अय्यर का चित्र अंकित है। यह अङ्क १११ पृष्ठों से युक्त है और इसमें पूर्वा और उत्तरा नामक दो भाग हैं। प्रथम भाग में गुरुवर अय्यर की संस्तुति, उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि और स्मृतियाँ है जिसे उनके सम्पर्क में आने वाले विशिष्ट संस्कृत विद्वानों के संस्मरणों से अलङ्कृत किया गया है। दूसरे भाग में अजस्रा की नियमित सामग्री के अन्तर्गत संस्कृत लेख और संस्कृत गीत निबद्ध हैं जिसमें सुप्रसिद्ध केरलीय कवि कुमारन् आशान् द्वारा रचित कविता का डा0 पी0 एम0 जोसफ कृत पद्यरूप संस्कृतानुवाद उल्लेखनीय है। डा0 वेदुल सुब्रह्मण्य शास्त्री, वाल्टेयर और म0 अ0 मेहेन्दले, पूना के लेख शोधपरक हैं। डा0 सत्यव्रत सिंह ने अपने लेख में कुमारसम्भव महाकाव्य के मौल श्लोक का व्याख्यान्तर प्रस्तुत किया है तो कलकत्ता की जयश्री चट्टोपाध्याय ने कुमारसम्भव में रामायण साम्य का दिग्दर्शन कराया है। यह विशेषाङ्क भावभीनी श्रद्धाञ्जलियों और सरस कविताओं तथा चिन्तनपरक लेखों के कारण विद्वानों द्वारा बहुशः अध्येय रहा है। वर्ष १९८२ में अजस्रा के पञ्चम वर्ष के चारों अङ्कों का एक विशेषाङ्क 'श्रीगोपालचन्द्रसिंह अभिनन्दन विशेषांक 'के रूप में प्रकाशित हुआ था। श्री सिंह के चित्र से आवरण

पृष्ठ को दीप्तिमान् करते हुए इस अङ्क में १५३ पृष्ठ हैं । इसके 'पूर्वम्' भाग में डा0 सत्यव्रत सिंह द्वारा रचित 'वर्धापनाष्टकम्', पं0 शारदाचरण दीक्षित विरचित 'अभिनन्दनम्' गीत,प्रो0 बटुकनाथशास्त्री खिस्ते कृत कविता 'सुरभारतीसमुन्नायकः श्री गोपालचन्द्रसिंहः', पं0 रामनारायण त्रिपाठी द्वारा प्रणीत गीत 'जयति बुधगणे सिंहगोपालचन्द्रः' इत्यादि कवितायें और श्री सिंह के संस्कृत प्रेम को दर्शाने वाले अनेक विद्वत्प्रणीत संस्मरण संगृहीत है । उत्तर भाग डा0 बाबूराम सक्सेना, डा0 अतुलचन्द्र वन्द्योपाध्याय प्रभृति विद्वानों की रचनाओं से सम्पन्न हैं । संस्कृत गीतिकाओं के अतिरिक्त नरेन्द्रप्रताप श्रीवास्तव रचित कथा 'दुहिता समुद्रस्य' इस अङ्क को सरस और आकर्षक बना देती है । अजस्रा का यह विशेषाङ्क एक अभिनन्दन-ग्रन्थ की भव्यता से ओतप्रोत है । सम्प्रति अजस्रा का एक विशेषाङ्क डा0 सत्यव्रत सिंह की स्मृति में प्रकाशनाधीन है।

अजस्रा में प्रकाशित सामग्री में मनोरंजन और ज्ञान का अद्भुत सम्मिश्रण है । यही कारण है कि एक ओर इसमें गम्भीर और सूक्ष्म विषयों पर लेख निकलते हैं, तो दूसरी ओर सरस कविताओं और मनोरंजन कथाओं व रूपकों को भी उचित स्थान दिया जाता है । प्रकाशित लेखों के लेखक-वर्ग में भारत के सभी भागों के विशेष संस्कृत विद्वानों को देखा जा सकता है यथा-प्रो0 को० अ0 सुब्रह्मण्य अय्यर,डा0 सत्यव्रत सिंह, डा0 कृष्ण लाल, (स्व0) श्री कपिलदेव द्विवेदी,डा0 पुरु दाधीच, अयोध्याचन्द्र दास, प्रो0 ब्रजवल्लभ द्विवेदी, डा0 विश्वनाथ मुखोपाध्याय, डा0 प्रीति सिन्हा, पं0 दीवि श्रीनिवास दीक्षित, डा0 मातृदत्त त्रिवेदी, डा0 अशोक कुमार कालिया, डा0 चतुर्वेदी, डा0 शशिनाथ झा, रामजियावन पाण्डेय, डा0 कैलाशनाथ द्विवेदी, डा0 रामशंकर मिश्र इत्यादि । 'भारविमधिकृत्य' शीर्षक से महाकवि भारवि के 'किरातार्जुनीयम्' के नामकरण तथा कई प्रकरणों के औचित्य पर डा0 सत्यव्रत सिंह द्वारा विस्तृत समीक्षात्मक लेख कई अङ्कों में प्रकाशित हुए हैं । लेखों के विषय वेद, दर्शन, साहित्य आदि कई विधाओं से सम्बद्ध हैं । अजस्रा की कथाओं की समीक्षा करें तो हम पाते हैं कि प्रायः लघु कथायें ही प्रकाशित हुई हैं; यथा-नरेन्द्रप्रताप श्रीवास्तव की 'रक्तपुष्पीयम्','स्नेहासेचनम्', 'स्वर्णामलकम्' और 'भारती कवेर्जयति', पं0 शारदाचरण दीक्षित की 'विजितं भिक्षुणा' पं रामनारायण त्रिपाठी की 'पञ्जीप्रथा'। प्रकाशित रूपकों या नाटिकाओं के अन्तर्गत (स्व0) कपिल देव द्विवेदी का 'करपटपरित्यागः' डा0 अरुणोदय न0 जानी का 'विवाहः', डा0 ओमप्रकाश तिवारी का 'मन्थराचरितम्' और डा0 बाबूराम अवस्थी का 'मन्त्रदानम्' उल्लेख योग्य हैं । अजस्रा पत्रिका का मुख्य योगदान संस्कृत के आधुनिक कवियों को प्रकाश में लाना माना जा सकता है । 'अजस्रा' के प्रारम्भिक दस अङ्कों में पं0 रामनारायण त्रिपाठी के बृहत् काव्य 'शशिकला' का क्रमशः प्रकाशन अजस्रा की विशेष उपलब्धि है । दूसरे विशेष काव्य जो अजस्रा में प्रकाशित हुए, उनमें डा0 हर्ष नारायण का

'तात्त्विकी धर्मजिज्ञासा' और 'अनर्थकं जगज्जालम्', जगन्नाथ का 'भावना' तथा पं.श्रीकृष्ण जोशी का 'पाश्चात्यदर्शनमञ्जूषा' परिगणनीय हैं। डा0 स्वामीनाथ पाण्डेय के व्यङ्ग्य गीत 'देहि वरं में'' तथा 'बन्धो !' और रामस्वरूप शास्त्री के बालगीत 'बाल्ये सौख्यम्' के अतिरिक्त प्रकाशित सांस्कृत कविताओं के प्रमुख कवियों के नाम हैं-डा0 अशोक कुमार कालिया, डा0 घनश्याम तिवारी, ओमप्रकाश पाण्डेय, सोमदत्त वाजपेयी, रमेश शास्त्री, डा0 कृष्णलाल, डा0 बाबूराम अवस्थी, एन0 सुन्दरम्, पं0 रामनारायण शास्त्री, डा0 शिवदत्त शर्मा चतुर्वेद, नन्दकिशोर पाण्डेय, डा0 शशिनाथ झा, हर्षनारायण, वैद्य डा0 रामस्वरूप शास्त्री, पं0 दीवि श्रीनिवास दीक्षित, वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य, हर्षदेव माधव, टी0 वी0 परमेश्वर अय्यर। कई बार प्रसिद्ध हिन्दी कविताओं और वैदिक सूक्तों की पद्यात्मक संस्कृतच्छाया भी प्रकाशित हुई हैं जैसे-डा0 सत्यव्रत सिंह द्वारा ऋग्वेद १/१ का, डा0 जगदम्बाप्रसाद सिन्हा द्वारा सूरदास के पद्यों का, रमेश शास्त्री द्वारा इकबाल के गीत 'हिन्दोस्ताँ हमारा' का, परड्डी मल्लिकार्जुन द्वारा कबीर के सुभाषितों का और रमेश शास्त्री द्वारा जयशंकर प्रसाद के गीत 'बीती विभावरी जाग री' का पद्यानुवाद किया गया है। पुस्तक समीक्षा के अन्तर्गत नयी संस्कृत-सम्बद्ध पुस्तकों की समीक्षा और 'वातायनम्' शीर्षक से भारत और संस्कृत-जगत् के विशेष समाचार अजस्रा के स्थायी स्तम्भ हैं।

कह सकते हैं कि अखिल भारतीय संस्कृत परिषद् की पत्रिका 'अजस्रा' अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल है, और यही कारण है कि इस में प्रवाहित होती हुई संस्कृत रचनाओं की अजस्र धारा से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा जा सकता है।

# अर्वाचीनसंस्कृते १९९०
# यावत्प्रकाशिता लेखा रचनाश्च

चन्द्रमौलिः शुक्लः

'देववाणी-परिषद्, दिल्ली' संस्थायाः त्रैमासिकं पत्रम् 'अर्वाचीनसंस्कृतम्' १९७९ तमेशवीयेऽब्दे प्रारब्धम् । १-२-१९७९ ई० तारिकायामस्य पञ्जीकरणार्थमावेदनपत्रं प्रस्तुतम् । ६-४-१९७९ तारिकायां च एफ-२ (ए/३३९) प्रेस/सी. सी. एस./७९ संख्यकं घोषणापत्रमनुमतभूत् । अर्वाचीनसंस्कृतस्य प्रवेशाङ्कः ५-६-१९७९ तारिकायां मुद्रितः १५ जुलाई १९७९ तारिकायां च प्रकाशितोऽभूत् । तदनु १५-१०-१९७९ तारिकायां प्रथमवर्षस्य द्वितीयोऽङ्कः प्रकाशितो जातः । इत्थं प्रथमवर्षे केवलमङ्कद्वयमेव प्रकाशिमभूत् । अतः परं प्रतिवर्षं जनवरी-अप्रैल-जुलाई-अक्टूबर-मासानां प्रत्येकं १५ दिनांकेऽस्य प्रकाशनं जातम् । सप्तमवर्षीयौ द्वितीयतृतीयावङ्कौ संयुक्तरूपेण १५ अप्रैल १९८५ तारिकायां प्रकाशितावभूताम् । सप्तमवर्षीयश्चतुर्थोऽङ्कः ३१ अक्टूबर १९८५ तारिकायां प्रकाशितोऽभूत् । अष्टमवर्षीयः प्रथमोऽङ्कः ३० जनवरी १९८६ ई० तारिकायां प्रकाशितोऽभूत् । नवमवर्षीयः प्रथमोऽङ्कः २६ जनवरी १९८७ तारिकायां प्रकाशितोऽभूत् । द्वादशवर्षीयश्चतुर्थोऽङ्कश्च ७ नवम्बर १९९० तारिकायां प्रकाशितोऽस्ति। शेषे सर्वेऽप्यङ्का यथातिथि प्रकाशिता जाताः । अस्य पञ्जीकरणसंख्या आर. एन. ३४५५४/७९ अस्ति। घोषणापत्रमनुरुध्य अंग्रेजी-हिन्दी- संस्कृत-भाषासु रचिता लेखाः संस्कृतभाषानिबद्धा रचनाश्चात्र प्रकाशिताः जाताः। प्राधान्यं संस्कृतभाषाया एवास्ति । १९९० यावत् ४५ पुटकेषु, ३२९६ पृष्ठेषु[१] सम्पादकीयान्यतिरिच्य १०० समीक्षकात्मकाः

---

१. मूलपृष्ठसंख्या ३१०८ + अतिरिक्तपृष्ठ सं0 ६ + चित्रमयपृष्ठ सं0., ४ + आवरणपृष्ठ सं0 १७८ = योगः ३२९६

शोधपराः सूचनापराश्च लेखाः २२८ संख्याकाश्च संस्कृतरचनाः प्रकाशिताः । रचनासु खण्डकाव्य- पुराणकाव्य-गद्यकाव्य-गद्यप्रबन्ध- नाटक-ध्वनिनाटक-अष्टक-शतककाव्य - स्तोत्रकाव्य - गीत - गजल - मुक्तक - कथा- ललितनिबन्ध- अनुवादकाव्य - समस्यापूर्ति - यात्राकाव्य - स्फुटक- वितादिविविध - काव्यरूपाणि विद्यन्ते । अर्वाचीनसंस्कृते प्रकाशिता नैका रचनाः स्वतन्त्रग्रन्थरूपेणापि प्रकाशिताः जाताः । अर्वाचीनसंस्कृतस्य संस्थापकप्रधानसम्पादको डॉ० रमाकान्त शुक्लमहाभागोऽस्ति यो हि विगतद्वादशवर्षेभ्यः पत्रमिदमग्रे नयति । अस्य पत्रस्य परामर्शदातृमण्डलस्य वर्तमानसदस्याः सन्ति - आचार्य रमेशचन्द्र शुक्लः, आचार्य श्रीनिवास रथः डॉ० कृष्णकान्त शुक्लः, डॉ० राजेन्द्र मिश्रः, डॉ० उमाकान्त शुक्लः तथा च डॉ० विष्णुकान्त शुक्लः । अस्मिन् पत्रे अर्वाचीनसंस्कृत-रचनास्तत्सम्बद्धा लेखाश्च प्रकाश्यन्ते । साम्प्रतिकैरनेकैर्लेखकै रचनाकर्तृ- भिश्चात्र सहयोगः क्रियते । १९९० ई० पर्यन्तमर्वाचीनसंस्कृते प्रकाशितानां लेखानां मौलिकरचनानां च सूची लेखकनामनिर्देशपुरस्सरम् अत्र प्रस्तूयते-

## समीक्षात्मक लेखाः

१. विंश्यां शताब्द्यां रचितानां संस्कृतमहाकाव्यानामितिहासलेखनस्यावश्यकता (डॉ० रमाकान्त शुक्लः) १/१, जुलाई १९७९
२. 'क्षत्रपतिचरित'-मीमांसा (डॉ० रामसुरेश पाण्डेयः) १/१, जुलाई १९७९
३. 'शिवराज्योदय-समीक्षा' (डॉ० रमेशचन्द्र शुक्लः) १/१, जुलाई १९७९
४. 'सीताचरित'- समीक्षणम् (डा० कृष्णकान्त शुक्लः) १/१, जुलाई १९७९
५. श्रीस्वामिविवेकानन्दचरितस्य महाकाव्यत्वम् (डॉ० श्रीमती शशि तिवारी) १/१, जुलाई १९७९
६. 'दयानन्ददिग्विजय' - वैशिष्ट्यम् (श्रीमती शशि कुमार) १/१, जुलाई १९७९
७. श्रीनेहरूपरकसंस्कृतमहाकाव्येषु मानवमूल्यानि (डॉ0 रमेशचन्द्रशुक्लः) १/२, १५ अक्टूबर, १९७९
८. 'जवाहरदिग्विजय' महाकाव्ये नायकपरिकल्पनम् (डॉ० राजेशकुमार भारद्वाजः) १/२, १५ अक्टूबर, १९७९

९. कविरत्न ब्रह्मानन्द शुक्ल और उनका 'नेहरूचरित' महाकाव्य
(डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी) २/१, १५ जनवरी १९८०

१०. गोस्वामिबलभद्रप्रसादशास्त्रिकृतं 'नेहरूयशःसौरभम्'
(डॉ० रमेशचन्द्र शुक्लः) २/१, १५ जनवरी १९८०

११. जवाहरज्योतिर्महाकाव्यस्य समीक्षणम्
(डॉ० रमेशचन्द्र शुक्लः) २/२, १५ अप्रेल १९८०

१२. 'श्रीनेहरूचरित'- 'नेहरूयशःसौरभ'- महाकाव्ययोः सूक्तिविधानम्
(डॉ० रमाकान्त शुक्लः) २/२, १५ अप्रेल १९८०

१३. डॉ० सी० आर० स्वामिनाथ-कृतरचनात्रयस्य समीक्षणम्
(डॉ० रमाकान्त शुक्लः) २/३, १५ जुलाई १९८०

१४. भाति मे भारतम् (समीक्षा) (डॉ० रमेशचन्द्र शुक्लः)
३/१, १५ जनवरी १९८१

१५. श्रीमदपयप्दीक्षितचरितस्य पूर्वभूमिः (डॉ० हरिनारायण दीक्षितः)
३/१, १५ जनवरी १९८१

१६. 'दयानन्दचरित'- समीक्षा (डॉ० रमेशचन्द्र शुक्लः) ३/२, १५ अप्रैल १९८१

१७. 'क्रिस्तुभागवत'- समीक्षा (डॉ० रमे शचन्द्र शु क्लः) ३।3 जु लाई१९८१

१८. 'श्रीकृष्णचरित'- समीक्षा (डॉ० जयकुमार जैनः) ३/४, १५ अक्टूबर १९८१

१९. 'जानकीजीवन'- समीक्षा (डॉ० कौशलचन्द्र मिश्रः)
३/४, १५ अक्टूबर १९८१

२०. 'श्रीद्वारकाधीशमहाकाव्य'-समीक्षा (डॉ० रमाकान्त शुक्लः)
३/४, १५ अक्टूबर १९८१

२१. निर्माणाधीनं महाकाव्यं 'श्रीनेहरूचरितम्' (डॉ० रमाकान्त शुक्लः)
३/४, १५ अक्टूबर १९८१

२२ 'सुगमरामायण'- समीक्षा (डॉ० रमाकान्त शुक्लः) ४/१, १५ जनवरी१९८१

२३. 'सुगमरामायण'- विमर्शः (डॉ० रमेशकुमार लौ) ४/१, १५ जनवरी
१९८१

२४. अर्वाचीनसंस्कृतरचनानामध्ययनाध्यापनयोः प्रासङ्गिकता
(डॉ० श्रीमती शशि तिवारी) ४/१, १५ जनवरी १९८२

२५. शिवराजविजये राष्ट्रियभावना (डॉ० हरिनारायण दीक्षितः)
४/१, १५ जनवरी १९८२

२६. मुनिश्रीज्ञानसागरकृतिसु समाजो राजनीतिरर्थश्च (डॉ० किरण टण्डनः)
४/२, १५ अप्रैल १९८२

२७. 'भाति मे भारतं' मिति काव्ये राष्ट्रियभावना (डॉ० हरिनारायण दीक्षितः)
४/२, १५ अप्रैल १९८२

२८. अर्वाचीनसंस्कृतगद्यसमीक्षणम् (डॉ० कैलाशनाथ द्विवेदी)
४/२, १५ अप्रैल १९८२

२९. कतिपया उल्लेखनीया अर्वाचीनसंस्कृतरचनाः (डॉ० रमाकान्त शुक्लः)
४/२, १५ अप्रैल १९८२

३०. राधाकृष्णरसायणप्रणेता (डॉ० सी० आर० स्वामिनाथन्)
४/३, १५ जुलाई १९८२

३१. श्रीओट्टूरउण्णिनम्बूदिरीपादविरचितं 'राधाकृष्णरसायणम्'
(डॉ० रमाकान्त शुक्लः) ४/३, १५ जुलाई १९८२

३२. स्वातन्त्र्योत्तरं संस्कृतकाव्यम् (डॉ० रमेशचन्द्र शुक्लः)
४/३, १५ जुलाई १९८२

३३. 'सेतुबन्ध' नाटक-समीक्षा (आचार्य लक्ष्मीचन्द्र कौशिकः)
४/३, १५ जुलाई १९८२

३४. 'भाति मे भारतम्': काव्यदर्शनम् (डॉ० शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी)
४/४, १५ अक्टूबर १९८२

३५. 'एक विश्वास और' इत्येतस्मिन् काव्ये मामकीनो विचारः
(आचार्य रमेशचन्द्र शुक्लः) ५/१, १५ जनवरी १९८३

३६. ग्रन्थसमीक्षणम् (रमाकान्त शुक्लः) ५/३, १५ जुलाई १९८३

३७. श्रीपादपरागशुद्धिपत्रम् (सम्पादकः) ५/४, १५ अक्टूबर १९८३

३८. श्रीपादसप्ततेः श्रीपादपरागाख्या व्याख्या (डॉ० सी० आर० स्वामिनाथन्)
५/४, १५ अक्टूबर १९८३

३९. पुस्तक-समीक्षा (सम्पादकः, डॉ० रमाकान्त शुक्लः)
५/४, १५ अक्टूबर १९८३

४०. देववाणी-परिषदोऽष्टमसङ्कल्पनादिवसे मुख्यातिथेः श्री पी० के० थुंगन, महाभागस्याभिभाषणम् (श्री पी० के० थुंगन, उपशिक्षामंत्री, भारत-सर्वकारस्य) ५/४, १५ अक्टूबर १९८३

४१. पुस्तकपरिचयः (डॉ० रमाकान्त शुक्लः) ६/१, १५ जनवरी १९८४

४२. 'जयभारतभूमे'- काव्यस्य मूल्याङ्कनम् (डॉ० हरिनारायण दीक्षितः) ६/२, १५ अप्रेल १९८४

४३. गन्धदूतस्य समीक्षा (डॉ० रमेशचन्द्र शुक्लः) ६/२, १५ अप्रेल १९८४

४४. विंशशताब्दीयसंस्कृतवाङ्मयाय पञ्चाम्बुप्रदेशस्य योगदानम् (डॉ० शिवप्रसाद भारद्वाजः) ६/२, १५ अप्रेल १९८४

४५. विशशताब्दीयरामकाव्यपरम्परायां 'श्रीरामविलापः' (डॉ0 रमाकान्त शुक्लः) ६/२, १५ अप्रेल १९८४

४६. महाकविमुनिश्रीज्ञानसागरस्य संस्कृतकाव्येषु गीतानि (डॉ० किरण टण्डनः) ६/२, १५ अप्रेल १९८४

४७. नवप्रकाशनचर्चा (डॉ० रमाकान्त शुक्लः) ६/२, १५ अप्रेल १९८४

४८. प्रकाशनचर्चा (डॉ० रमाकान्त शुक्लः) ६/३| १५ जुलाई १९८४

४९. प्रकाशनचर्चा (डॉ० रमाकान्त शुक्लः) ६/४, १५ अक्टूबर १९८४

५०. अभिनवप्रकाशनचर्चा (डॉ० रमाकान्त शुक्लः) ७/१, १५ जनवरी १९८५

५१. भारतस्य महामहिमोपराष्ट्रपतिश्रीरामस्वामीवेंकटरामन्-महाभागां सन्देशः (श्री आर० वेंकटरामन्) ७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

५२. प्रधानमन्त्रिणः सूचनापरामर्शदातुः श्री० एच० वाई० शारदाप्रसाद महा-भागस्य सन्देशः ७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

५३. सहर्षमभिनन्दनम् (आचार्य विश्वनाथ शास्त्री) ७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

५४. सन्देशः (डॉ० जयमन्त मिश्रः) ७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

५५. राजतां मोदतां तद्विशिष्टं महः (डॉ० कृष्णकान्त शुक्लः) ७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

५६. सन्देशः (श्री स० रामकृष्णन्) ७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

५७. सन्देशः (श्री सी० आर० पट्टाभिरामन्) ७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

५८. सन्देशः (श्री ईश्वर भाई पटेलः, श्री एन० एम० कंसारा) ७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

५९. श्रीयुतः शात्तपुर-रामकृष्ण स्वामिनाथः (श्री अ० कुप्पुस्वाम्यार्यः)
७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

६०. डॉ० स्वामिनाथः एक दिव्यं जीवनम् (आचार्य रामदयालु शास्त्री)
७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

६१. एकोऽपि कर्मभिरनेकः डॉ० स्वामिनाथ (डॉ० हर्षनाथ मिश्रः)
७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

६२. डॉ० सी० आर० स्वामिनाथन् : स्वातन्त्र्योत्तर सस्कृत प्रगति के सूत्रधार
(डॉ० मण्डन मिश्रः) ७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

६३. श्रीपादसप्ततेः डॉ० स्वामिनाथकृता 'श्रीपादपराग' व्याख्या
(आचार्य सोहनलाल शास्त्री) ७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

६४. डॉ० सी० आर० स्वामिनाथ-प्रणीतस्य 'श्रीबदरीशसुप्रभात' स्तोत्रकाव्यस्य
समीक्षा (आचार्य रमेशचन्द्र शुक्लः) ७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

६५. भव्यं व्यक्तित्वम् (आचार्य वि० वेङ्कटाचलम्) ७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

६६. Dr. C. R. Swaminathan : A Real Scholar (Prof. N. H. Ansari)
७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

६७. शुभाशंसा (श्री वी० आर० शर्मा) ७/२३, १५ अप्रेल १९८५

६८. अभिनन्दनोक्तिः (प्रो० एन० एस० रामानुजताताचार्यः)
७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

६९. क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे (श्री शास्तृल विश्वनाथ शर्मा)
७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

७०. संस्मरणम् (डॉ० उमारमण झा) ७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

७१. डॉ० स्वामिनाथन् के प्रति (श्री त्रिलोकीनाथ धर)
७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

७२. मूर्तिमयी वेदसंस्कृतभक्तिः (श्री नटुविल पषेटन्तु नारायणन् नम्पूतिरिः)
७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

७३. विद्याविनयसम्पन्नाः स्वामिनाथाः (श्री साम्बदीक्षितः)
७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

७४. देववाणी-परिषद्वार्तासु स्वामिनाथः (श्रीमती रमा शुक्ला)

७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

७५. कविचूडामणेः स्वामिनाथमहोदस्य कर्णभूषणम् (श्री भरत पिषारटिः)
७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

७६. स्वामिनाथरचनापरिचयः (डा० रमाकान्त शुक्लः)
७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

७७. सहृदयवयस्यः स्वामिनाथः (डॉ. टी. एन. धर्माधिकारी)
७/२-३, १५ अप्रेल १९८५

७८. Message (V. S. Mani Iyer) ७/२- ३, १५ अप्रैल १९८५

७९. देववाणी - परिषदः सप्तमेऽष्टमे च संयुक्तवार्षिकाधिवेशने महासचिवेन प्रस्तुतं वार्षिकविवरणम् आयव्ययविवरणम् च (डॉ० रमाकान्त शुक्लः)
७/४, ३१ अक्टूबर १९८५

८०. भवतामभिमतम्(पत्रम्) (पं8 वसन्त गाडगीलः) ७/४, ३१ अक्टू बर,१९८५

८१. भवतामभिमतम् (पत्रम्) (वन्दना सेलूकरः) ७/४, ३१ अक्टूबर, १९८५

८२. पं० रामशरणशास्त्रिकृत- 'कौमुदीकथाकल्लोलिनी' - समीक्षणम्
(डॉ० चन्द्रभानु त्रिपाठी) ८/४, १५ अक्टूबर, १९८६

८३. अर्वाचीनसंस्कृत साहित्ये प्रतिबिम्बिताः समकालीना घटनाः
(श्रीमती शशिप्रभा गोयल) ९/१, २६ जनवरी १९८६

८४. 'लक्ष्मीशतके' उदाहृतानामाख्यानकानां संग्रहः (प्रो० वरदाचार्य कण्णन्)
९/१, २६ जनवरी, १९८६

८५. ज्ञानमूर्तिः श्रीचारुदेवशास्त्री (डॉ० रमाकान्त शुक्लः)
९/२, १५ अप्रैल १९८६

८६. काव्ये 'सब्लाइम' नामधेयम् उदात्तम् (डॉ० रमाशंकर तिवारी)
१०/२, १५ अप्रैल १९८८

८७. नवप्रकाशन चर्चा- श्री रेवाभद्रपीठकाव्यम् (श्री सदाशिवकुमार द्विवेदी)
१०/३, १५ जुलाई १९८८

८८. श्री ग़ान्धिचरित-वैशिष्ट्यम् (डॉ० रमाकान्त शुक्लः)
११/२, १५ अप्रैल १९८९

८९. भवतामभिमतम् (प्रो० परमानन्द शास्त्री) ११/३, १५ जुलाई १९८९

९०. भवतामभिमतम् (कमलापति मिश्रः) ११/३, १५ जुलाई १९८९

९१. श्री गान्धिचरितस्य रचनाशिल्पम् (डॉ० सत्यव्रत शास्त्री) १२/१, १५ जनवरी १९९०

९२. 'मङ्गल्या'-समीक्षणम् (आचार्य लक्ष्मीचन्द्र कौशिकः) १२/१, १५ जनवरी १९९०

९३. सागरे समायोजिता आधुनिकसंस्कृतसाहित्यसंगोष्ठी (डॉ० सूर्यप्रकाश व्यासः) १२/१, १५ जनवरी, १९९०

९४. क्व गच्छानि क्व यानि ? (डॉ० कृष्णनारायण पाण्डेयः) १२/२, १५ अप्रैल १९९०

९५. स्वरमंगलायाः श्री नेहरूविशेषांकः (नवप्रकाशनचर्चा) (श्री अरविन्दनाभ शुक्लः) १२/२, १५ अप्रैल १९९०

९६. काव्योन्मेषः (नवप्रकाशनचर्चा) (श्री श्री० भि० वेलणकरः) १२/२, १५ अप्रैल १९९०

९७. जीवनमुक्तकम् (नवप्रकाशनचर्चा) (डॉ० रमाकान्त शुक्लः) १२/२, १५ अप्रैल १९९०

९८. 'भाति मे भारतं' वीक्ष्यं (संकलयित्री कु0 वन्दना मिश्रा) अस्मिन् शीर्षके संकलिताः अभिमतदातारो विद्वांसः-

डॉ० करुणापति त्रिपाठी, डा० नगेन्द्रः, डा० मण्डन मिश्रः, डा० रामकरण शर्मा, प्रो० रेवाप्रसाद द्विवेदी, डा० देवीदत्त शर्मा, डा० मारुतिनन्दन पाठकः, डॉ० रमेश चन्द्र रस्तोगी, श्री हरिमाधवशरणः, श्री एस. बी. वेलणकरः, प्रा० हरिश्चन्द्र रेणापुरकरः, डा० प्रकाश पाण्डे, डा० पुष्पा दीक्षिता, डा० दीपक घोषः, श्री दीनदयाल चतुर्वेदी, डा० विशम्भर मिश्रः 'वागीशः', श्री विश्वनाथ शास्त्री, श्री मुकुल शर्मा, डा० लक्ष्मीनारायण अग्रवालः, डा० राधेश्याम शर्मा, श्री अनन्तराम गौड़ः, स्निग्धा, अज़दक, श्री आर० के० नरूला, श्री चन्द्रभान शर्मा, डा० रवीन्द्र नागरः, याज्ञिकसम्राट् पं० लालनकृष्ण शास्त्री ।

९९. देववाणी-परिषद्वार्ता प्रायः प्रत्येकमङ्के (डा० रमाकान्त शुक्लः, श्रीमती रमा शुक्ला, डा० रवीन्द्र नागरः)

१००. संस्कृत-जगद्वार्ता (प्रायः प्रत्यङ्कम्) (ले. श्रीमती रमा शुक्ला,- डा० रवीन्द्र नागर- डा० विन्ध्येश्वरीप्रसाद मिश्रादयः)

(अत्र सूच्यां सम्पादकीयस्य परिगणनं न कृतम्)

## मौलिकरचनाः

अस्यां सूच्यां प्रायः कविता एव सन्ति । अन्यथाभावे कोष्ठकेषु साहित्यविधायाः संकेतः क्रियतेः-

१. सप्तपदी (पं० कं० न० वदरराज अयंगारः) २/२, १५ अप्रैल १९८०

२. भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् (संक्षेपः)
(डा० रमाकान्त शुक्लः) २/२, १५ अप्रैल १९८०

३. देववाणी-वसन्तः (पं. बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते) २/२, १५ अप्रैल १९८०

४. भारतवन्दनम् (डा० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदः) २/२, १५ अप्रैल १९८०

५. राजधान्याः सुषमावणनम् (डा० जगदीशदत्त दीक्षितः) २/२, १५ अप्रै ल१९८०

६. महामाये ! (डा० राजेन्द्र मिश्रः) २/२, १५ अप्रैल १९९८०

७. अहम् नेता ! (पण्डितविष्णुकान्तशुक्लः) २/२, १५ अप्रैल १९८०

८. ते के न जानीमहे ! (डा० कृष्णकान्त शुक्लः) २/२, १५ अप्रैल १९८०

९. दुराशा (डा० शिवप्रसाद भारद्वाजः) २/२, १५ अप्रैल १९८०

१०. अयि केसरिन् ! (डा० सुधाकराचार्य त्रिपाठी) २/२, १५ अप्रैल १९८०

११. शिक्षा च का यत्र न संस्कृतं स्यात् ? (वैद्य रामस्वरूप शास्त्री)
२/२, १५ अप्रैल १९८०

१२. आचाररूपकम् (पं. रघुनाथप्रसादचतुर्वेदः) २/२, १५ अप्रैल १९८०

१३. रसिकता सिकता कणिका कुतः (आचार्य आनन्द झा) २/२,१५ अप्रैल १९८०

१४. गीर्वाणवाणीस्तवः (श्री विशुद्धानन्दशास्त्री) २/२, १५ अप्रैल १९८०

१५. कर्णभूषणम् (नाटकम्) (डा० सी० आर० स्वामिनाथन्)
२/३, १५ जुलाई १९८०

१६. ध्वस्तं कुसुमम् (डा० सी० आर० स्वामिनाथन्) २/३, १५ जुलाई १९८०

१७. नरबलिप्रबन्धः (डा० सी० आर० स्वामिनाथन्) २/३, १५ जुलाई १९८०

१८. 'भूतले 'भाति मेऽनारतं भारतम्' (काव्यम्) (डा0 रमाकान्त शुक्लः)
२/४, १५ अक्टूबर १९८०

१९. श्रीमदप्पयदीक्षितचरितम् (डा० हरिनारायण दीक्षितः) ३/१, १५ जन0 १९८१

२०. सदाशयसमुच्चयः (पं0 टी0 वी0 परमेश्वर अय्यरः) ३/२, १५ अप्रैल
१९८१

२१. आभाणकमञ्जरी (पं0 टी0 वी0 परमे श्वरझय्यरः) ३/३, १५ जुलाई १९८१

२२. सुरभारती विजयते (डा० रमाकान्त शुक्लः) ३/३, १५ जुलाई १९८१

२३. संस्कृतवागष्टकम् (श्री उमाकान्त शुक्लः) ३/४, १५ अक्टूबर १९८१

२४. अन्योक्तिस्तबकम् (कविरत्नश्रीकृष्णसेमवालः) ४/२, १५ अप्रैल १९८२

२५. जीवनं सारभूतम् (डा० कृष्णकान्त शुक्लः) ४/२, १५ अप्रैल १९८२

२६. संवेदनं निवेदनं च (श्री मथुरादत्त जोशी) ४/२, १५ अप्रैल १९८२

२७. अन्धकारः (श्री हर्षदेव माधवः) ४/२, १५ अप्रैल १९८२

२८. भारते भासतां भारती संस्कृतिः (डा० वनेश्वर पाठकः) ४/३, १५ जुलाई १९८२

२९. अभिनवहनुमन्नाटकम् (नवाङ्केषु) (डा० रमेशचन्द्र शुक्लः) ४/४, १५ अक्टूबर १९८२

३०. भाति मे भारती भारतेऽनारतम् (आचार्य वेदानन्द झा) ४/४, १५ अक्टूबर, १९८२

३१. व्यवधानम् (अध्यापक केशवचन्द्र दाशः) ४/४, १५ अक्टूबर १९८२

३२. पं. टी० वी० परमेश्वर अय्यर-प्रणीतानि स्तबकाष्टके वर्गीकृ चतुस्त्रिशदष्टकानि (साहित्यकौतुकम्) । अष्टकानां शीर्षकानि इत्थं सन्ति १. श्रीरुद्राष्टकम् २. श्रीकृष्णाष्टकम् ३. श्रीमद्भारताष्टकम् ४. राष्ट्रनेत्रष्टकम् ५. सैनिकाष्टकम्, ६. विद्वदष्टकम्, ७. भिक्षुकाष्टकम्, ८. द्रविणाष्टकम्, ९. वस्त्राष्टकम्, १०. भोजनाष्टकम्, ११. वेश्माष्टकम्, १२. ख्रिस्तुदेवाष्टकम् १३. श्रीकालिदासाष्टकम्, १४. श्रीरामाष्टकम्, १५. श्रीगान्ध्यष्टकम्, १६. श्रीदयानन्दाष्टकम्, १७. श्रीविनोबाष्टकम्, १८. चलच्चित्राष्टकम्, १९. पत्रिकाष्टम्, २०. निद्राष्टकम्, २१. प्रेमाष्टकम्, २२. योषाष्टकम्, २३. पादपाष्टकम्, २४. ग्रामाष्टकम्, २५. पुर्यष्टकम्, २६. सिंहाष्टकम्, २७. हंसाष्टकम्, २८. गर्दभाष्टकम्, २९. करीन्द्राष्टकम्, ३०. काकाष्टकम्, ३१. दानाष्टकम्, ३२. धर्माष्टकम्, ३३. भक्त्यष्टकम्, ३४. मोक्षाष्टकं च ।
(प्रणेता- पं0 टी0 वी0 परमेश्वर अय्यरः) ५/१ जनवरी १९८३

३३. स्फूर्तिसप्तशती (आर्याभागः) (अत्र ५४ शीर्षकेषु ६१९ पद्यानि संकलितानि। अष्टमं शीर्षक विहाय सर्वत्र आर्याच्छन्दः प्रयुक्तम् । शीर्षकनामानि यथा- १. राधा २. कृष्णद्वैपायनः, ३. मङ्गलम्, ४. प्रतिभा, ५. उपनिषत्, ६. गीता ७. लोकमान्यतिलकः, ८. महात्मा गान्धी, ९. श्रद्धा १०. स्मृतिलीला, ११. संस्कृतभाषा चिरं जयति, १२. सहृदयसम्बुद्धिः १३. सहयोगः १४. कथा,

१५. दृश्यावलिः, १६. औदार्यम्, १७. एकान्ताः, १८. मेघमाला, १९. मेघाः, २०. वेदना, २१. सिद्धस्थानम्, २२. स्वरलहरी, २३. सा काऽपि, २४. दूरे अन्तिके, २५. ऊर्जा विद्युत्, २६. रतिः, २७. जीवनम्, २८. संघर्षः, २९. आह्वानम् ३०. भाषा विवशा, ३१. विवशता, ३२. प्रेरणा, ३३. वैज्ञानिकधारा, ३४. कुण्ठा ३५. निषेधकाव्यायितम् ३६. पुरातनं सुन्दरं भवति, ३७. सांस्कृतिकी रात्रिमासूते, ३८. मिश्रणवेला, ३९. उपेक्षा, ४०. क्रोधशक्तिः, ४१. कृपाणधारा, ४२. धैर्यम्, ४३. कामः, ४४. परिचय-महिमा, ४५. निन्द्यतायामाशा, ४६. बहुमतम्, ४७. अवमूल्यनम्, ४८. नैपुण्योद्घोषः, ४९. परस्परम्, ५०. धिक्तान्, ५१. किन्तु-शतकम् ५२. आर्या, ५३. आशा, ५४. तिथिः)

(प्रणेता- डा० शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी) ५/२, १५ अप्रैल, १९८३

३४. राजस्थानम् (डा० रमाकान्त शुक्लः) ५/२, १५ अप्रैल, १९८३

३५. देववाणी संस्कृतम् (श्री लक्ष्मणप्रसाद गौतमः) ५/२, १५ अप्रैल, १९८३

३६. स्फूर्तिसप्तशती (समस्यापूर्तयः, नानाच्छन्दांसि, गीतानि च) अत्र ४२ (५५-९६ शीषसंकलितानि सन्ति । शीर्षकनामानि यथा- ५५. परिवेशः, ५६. वारिवाहः, ५७. शरन्नितान्तम् ५८. वसन्तः ५९. वाणी- विलसितम्, ६०. राजते राजनीतिः, ६१. वसुन्धरा, ६२. गणयति, ६३. लम्पटाः| ६४. कालिदासः, ६५. प्रणामाञ्जलिः, ६६. यज्ञोपवीतम्, ६७. वन्दामहे, ६८. प्रीतिमुत्पादयन्तु, ६९. भवानी, ७०. चातुरी, ७१. वेदाभिधानं महः ७२. का कथा, ७३. नारी, ७४. गुणानां गणः, ७५. परीक्षा, ७६. न हसितमथो नापि रुदितम्, ७७. सङ्गमः, ७८. नामापि न ज्ञायते, ७९. को विहातुं समर्थः, ८०. अनुकरणम् ८१. वन्दामहे ८२. दयामयी, ८३. दर्शनम्, ८४. सुषमापारावारम्, ८५. संस्कृत-स्नेहिनां कुर्महे स्वागतम्, ८६. क्रान्तिकारिणीकविता, ८७. संस्कृत-कविता, ८८. धिङ् मेघ !, ८९. सर्वं जानीमः, ९०. महतां महत्त्वम्, ९१. धन्या धरा ममेयम्, ९२. नूतनम्, ९३. तानि पदानि, ९४. समयप्रवाहः ९५. किं चिन्त्यते, ९६. सविनयम् च)

(प्रणेता डा० शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी) ५/३, १५ जुलाई १९८३

३७. पूर्णकुम्भः (ललितनिबन्धसंग्रहः)

(अत्र दश ललितनिबन्धाः संकलिताः तद्यथा- १. सहारनपुरस्य घण्टागृहशृंगाटकम्, २. एकं वरयात्रा-दर्शनम्, ३. काल-महिमा, ४. पूर्णकुम्भः ५. नैनीतालश्रीः ६. न सः पुनरावर्तते, ७. श्री वेङ्कटेश-मन्दिरम् ८. विवेकानन्दशिला, ९. अहमपि भारतीयः ? १०. पञ्च च मे ।)

(रचयिता - पं. विष्णुकान्त शुक्लः) ५/३ १५ जुलाई १९८३

३८. श्रीपादसप्ततिः (स्तोत्रकाव्यम्, ७१ शार्दूलविक्रीडितानि)

(मेल्पत्तूरभट्टतिरि श्रीनारायणभट्टपादः) ५/४ १५ अक्टूबर १९८३

३९. अहं स्वतन्त्रता भणामि (डा० रमाकान्त शुक्लः) ५/४, १५ अक्टूबर, १९८३

४०. श्रीबदरीशतरङ्गिणी (११२ पद्यानि)
(श्री श्रीसुन्दरराजः) ६/१, १५ जनवरी, १९८४

४१. सुरभिकाश्मीरम् (१०८ पद्यानि)
(श्री सुन्दरराजः) ६१, १५ जनवरी, १९८४

४२. कामयेऽहम् (डा० कृष्णकान्त शुक्लः) ६/१, १५ जनवरी १९८४

४३. अष्टकद्वयम् (श्रीश्रद्धाष्टकं स्वतन्त्रताष्टकं च)
(डा० उमाकान्त शुक्लः) ६/१, १५ जनवरी १९८४

४४. उज्जयिनीयं जयति (डा० रमाकान्त शुक्लः) ६/१, १५ जनवरी, १९८४

४५. ईहे (श्रीसुन्दरराजः) ६/२, १५ अप्रैल, १९८४

४६. भाति मौरीशसम् (डा० रमाकान्त शुक्लः) ६/२, १५ अप्रैल, १९८४

४७. समयानुसारं चलतु (श्री गणपति शुक्लः) ६/३, १५ जुलाई, १९८४

४८. गीतवल्लरी (अत्र १४ गीतानि सङ्कलितानि, यथा १. निखिलवाङ्मयदेवते! जय, २. प्रभातगीतिः, ३. गायत्री-गानम्, ४. जलदोपालम्भगीतम्, ५. प्रावृड्गीतम्, ६. एहि नन्दलाल ! ७. परुषं प्रीतिविधानम्, ८.नववर्षगीतम्, ९. उद्बोधनम्, १०. कथं जातम्, ११. वद विधुवदने ! १२. पश्य मुकुरे क्षणं नु वदनं स्वम्, १३. क्षणिका, १४. अहो ! अद्य यूनां गतिः का नु जाता !)
(प्रणेता - डा० विन्ध्येश्वरीप्रसाद मिश्रः 'विनयः') ७/३, १५ जुलाई १९८४

४९. पुरश्चरणकमलम् (नाटकम्)
(डा० रमाकान्त शुक्लः) ६/३, १५ जुलाई १९८४

५०. पण्डितराजीयम् (संस्कृतरेडियोनाटकम्)
(डा० रमाकान्त शुक्लः) ६/३, १५ जुलाई, १९८४

५१. अभिशापम् (ध्वनिनाटकम्)
(डा० रमाकान्त शुक्लः) ६/४, १५ अक्टूबर १९८४

५२. हरियाणासंस्कृतसाहित्यसौरभम्
(पं० रामेश्वरदत्त शर्मा) ६/४, १५ अक्टूबर, १९८४

५३. कश्चित् (गजलगीतिः)
(डा० बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञानम्') ६/४, १५ अक्टूबर १९८४

५४. प्रियया विना (गजलगीतिः)

(डा० विन्ध्येश्वरीप्रसाद मिश्रः 'विनय') ६/४, १५ अक्टूबर १९८४

५५. कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने (१११ पद्यात्मकं स्तोत्रकाव्यम्)

(आचार्य श्रीरमेशचन्द्र शुक्लः) ७/१, १५ जनवरी, १९८५

५६. श्लोकमञ्जरी

(अत्र १. मङ्गलम्, २. अन्योक्त ३. समस्यापूर्तयः- इति त्रिषु वर्गेषु इमा रचनाः संकलिताः सन्ति - १. मङ्गलम्, मारुतिस्तुतिः, नुतिषोडशी, पिक-पञ्चदशी, रङ्गपञ्चकम्, वसन्तोल्लासः, शरद्वर्णनम्, शकुन्तविलसितम्, अन्योक्तयः समस्यापूर्तयः- भद्रमूर्तिः, गजाननं वन्दे, स्मरामि, वागीश्वरी पातु वः, सज्ज्ञानचर्चासुधा, वसतु मे वदने सुरभारती, भिन्नरुचिर्हि लोकः, न जानीमहे, विद्युल्लता, वारिदाः)

(प्रणेता - डा० विन्ध्यश्वरीप्रसाद मिश्रः 'विनय') ७/१, १५ जनवरी १९८५

५७. इन्दिरा-गीतिः (६७ पद्यानि)

(श्री श्रीसुन्दरराजः) ७/१, १५ जनवरी, १९८५

५८. धातस्त्वया किं कृतम्

(डा० उमारमण झा) ७/१, १५ जनवरी, १९८५

५९. हन्तेन्दिरार्या सहसा प्रयाता ! (३४ पद्यानि)

(प्रा० हरिश्चन्द्र रेणापुरकरः) ७/१, १५ जनवरी १९८५

६०. कूहा (११६ पद्यात्मकं खण्डकाव्यम्)

(डा० उमाकान्त शुक्लः) ७/१, १५ जनवरी, १९८५

६१. श्रीस्वामिनाथ- प्रशस्तिः

(श्री वि. रघुराम शास्त्री) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

६२. स्वामिनाथरचनात्रयसमीक्षणम् (पद्यात्मकम्)

(आचार्य रमेशचन्द्र शुक्लः) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

६३. श्रीस्वामिनाथ ! भवतामपि सुप्रभातम्

(कविरत्न कृष्णप्रसाद शर्मा घिमिरे) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

६४. वर्धते स्वामिनाथः (श्री श्रीसुन्दरराजः) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

६५. डॉ० स्वामिनाथानां शासनसेवानिवृत्तिसमये

(डॉ० प्रभाकर नारायण कवठेकरः) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

६६. श्लोकनवकम् (डा० स० सु० जानकी) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

६७. डा० स्वामिनाथं प्रति (श्री श्री० भि० वेलणकरः) ७/२-३,१५ अप्रैल १९८५

६८. दिवास्वप्नः (महाकविः अक्कित्तम्) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

६९. आर्याऽऽर्यः (पं० आनन्द झा) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

७०. श्री स्वामिनाथः सुधीः (डा० रमाशंकर त्रिपाठी) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

७१. कुसुमाञ्जलिः (पं० मोतीलाल 'पुष्करः' ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

७२. डा० सी० आर० स्वामिनाथमहोदयाय उपहारप्रसूनानि
(प्रो० बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

७३. जयतात् स्वामिनाथः (श्री भरत पिषारटिः) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

७४. स्वामिनाथं नमामि (डा० उमाकान्त शुक्लः) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

७५. शुभाशंसा (आचार्य रमेशचन्द्र शुक्लः) ७/२-३ १५ अप्रैल १९८५

७६. श्रीस्वमिनाथाभिनन्दनम् (श्री रत्नेश्वर झा) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

७७. श्रीस्वामिनाथं नुमः (आचार्य विष्णुकान्त झा) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

७८. शुभाशंसनम् (डा० व० रा० लक्ष्मीकान्त शर्मा) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

७९. कस्य नो हितचिन्तकाः (आचार्य देवव्रतः) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

८०. अभिनन्दनम् (डा० उमारमण झा) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

८१. आशंसा (प्रो० पी० सी० वासुदेवन् एलयत्) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

८२. स्वामिनाथो विपश्चित्
(डा० इच्छाराम द्विवेदी) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

८३. अभिनन्दनपत्रम् (समर्पकाः श्रीएकरसानन्दसंस्कृतमहाविद्यालयप्राध्यापकाश्छात्राश्च) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

८४. अभिनन्दनपत्रम् (मद्रपुरीस्थसंस्कृतविद्यासमितिनिर्वाहकप्रभृतयः)
७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

८५. अभिनन्दनपत्रम् (श्रीलालबहादुरशास्त्रिकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठपरिवारः)
७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

८६. श्रीस्वामिनाथाय पत्रम्
(कविरत्न श्री अमीरचन्द्र शास्त्री) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

८७. श्री स्वामिनाथाय पत्रम्

(शीघ्रकविः गोस्वामी हरिकृष्ण शास्त्री) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

८८. श्रीस्वामिनाथाय पत्रम्

(प्रो० के० पी० उर्मीस) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

८९. अभिनन्दनम्

(हरिद्वारपञ्चपुरीस्थाश्रमवर्तिनो विद्वांसस्तथा श्रीभगवानदास संस्कृत-महाविद्यालयस्याध्यापकाः) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

९०. नववर्षीयमभिनन्दनम्

(श्री जीवदेव शर्मा) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

९१. स्वागतपत्रम्

(आचार्य रामविलास शुक्लः) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

९२. विरुदसंमाननपत्रम् (गो० सुन्दरम्) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

९३. स्वामिनाथरचनावली

(अत्र २५ रचनाः संकलिताः, यथा १. पशुपतिपञ्चास्यस्तवः २.जीर्णोपधाकनम्, ३. काकग्राही, ४. वेदविद्भ्यो नमः, ५. व्यासस्तुतिः, ६. देशिकरूपिण्ये मात्रे नमः, ७. आचार्यस्तवमणिमाला, ८. आचार्य-सूक्तिमुक्तावली, ९. जयति जयेन्द्रः, १०. श्री राघवः पद्मभूषणम्, ११. श्रीपाददामोदरसात-वलेकराभिनन्दनम्, १२. शंकर एकेडमी, १३. गुरुपवनपुरेशस्तवः, १४. गुरवे नमः, १५. वात्सल्यम्, १६. शिवाय नमः| १७.

१९. वंशीविलासः, २०. जयन्तु नृहरेर्नखाः, २१. शिशु-विलासः, २२. नीरदोऽस्मि न तु शारदाभ्रकः, २३. कलिविलासः, २४. वातेशानन्दलहरी, २५. गणेशाय नमः इति)

(रचयिता - डा० सी० आर० स्वामिनाथन्) ७/२-३, १५ अप्रैल १९८५

९४. महाप्रयाणम् (६७ पद्यात्मकं सांग्लहिन्द्यनुवादं काव्यम्)

(कविरत्न श्रीकृष्ण सेमवालः) ७/४, ३१ अक्टूबर १९८५

९५. देवीन्दिराऽन्तर्हिता

(प्रो० रेवाप्रसाद द्विवेदी) ७/४, ३१ अक्टूबर १९८५

९६. देववाणी-परिषद्, दिल्ली-सप्तमाष्टमसंयुक्तवार्षिकाधिवेशनावसरे अध्यक्षीयमभिभाषणम् (४० पद्यानि) (आचार्य रमेशचन्द्र शुक्लः) ७/४, ३१ अक्टूबर १९८५

९७. रक्ष तं भारतम्

(श्री श्रीनिवास रथः) ८/१, ३० जनवरी, १९८६

९८. नवभारतपुराणम् (१-६ अध्यायाः)

(डा० रमेशचन्द्र शुक्लः) ८/१, ३० जनवरी १९८६

९९. भारतं भजामः

(श्री अरविन्दनाभ शुक्लः) ८/१, ३० जनवरी १९८६

१००. राष्ट्रदेवते !

(डा० रमाकान्त शुक्लः) ८/१, ३० जनवरी, १९८६

१०१. ज्योत्स्ना मेघासनमधिशयिता

(डा० उमाकान्त शुक्लः) ८/१, ३० जनवरी, १९८६

१०२. इह तमसां राज्ये !

(डा० लीना रस्तोगी) ८/१, ३० जनवरी, १९८६

१०३. दंश - वेदना

(डा० भास्कराचार्य त्रिपाठी) ८/१, ३० जनवरी, १९८६

१०४. मुक्तकानि

(डा० रमेशकुमार लौ) ८/१, ३० जनवरी, १९८६

१०५. क्व कालिदासस्य जगाम भारती

(डा० बच्चूलाल अवस्थी) ८/१, ३० जनवरी १९८६

१०६. सा गीर्वाग् रमतां सदा मम मनः

(कु० सुस्मिता शुक्ला) ८/१, ३० जनवरी १९८६

१०७. कालातीतः

(डा० सी० आर० स्वामिनाथः) ८/१, ३० जनवरी, १९८६

१०८. कविर्मानवश्च

(डा० रामसुरेश पाण्डेयः) ८/१, ३० जनवरी, १९८६

१०९. देशरक्षा कथम् ?

(पं० विष्णुकान्त शुक्लः) ८/२, १५ अप्रैल, १९८६

११०. विमानवातायनतः

(डा० प्रभाकर नारायण कवठेकरः) ८/२, १५ अप्रैल १९८६

१११. नवभारतपुराणम् (८-११ अध्यायाः)

(आचार्यरमेशचन्द्रशुक्लः) ८/२, १५ अप्रैल, १९८६

११२. श्रीनिवासरथाभिनन्दनपत्रम्

(डा० भास्कराचार्य त्रिपाठी) ८/२, १५ अप्रैल, १९८६

११३. भारतजनताऽहम्

(डा० रमाकान्त शुक्लः) ८/३, १५ जुलाई १९८६

११४. निकषा (लघूपन्यासः)

(प्रो० केशवचन्द्र दाशः) ८/३, १५ जुलाई, १९८६

११५. कीदृशी स्वतन्त्रता ?

(अभिराज डा० राजेन्द्र मिश्रः) ८/३, १५ जुलाई १९८६

११६. किमर्थम् ?

(डा० राधावल्लभ त्रिपाठी) ८/३, १५ जुलाई १९८६

११७. रमाकान्तशुक्लाय पद्यपत्रम् (१)

(प्रा० हरिश्चन्द्र रेणापुरकरः) ८/४, १५ अक्टूबर १९८६

११८. रमाकान्तशुक्लाय पद्यपत्रम् (२)

(डा० रामकिशोर मिश्रः) ८/४, १५ अक्टूबर १९८६

११९. कविकुलगुरुवाणी

(डा० बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञानम्') ८/४, १५ अक्टूबर १९८६

१२०. श्रीगरुडध्वजसपादशतकम् (१३० पद्यात्मकं स्तोत्रकाव्यम्)

(डा० रामकिशोर मिश्रः) ८/४, १५ अक्टूबर १९८६

१२१. लक्ष्मीशतकम् (१०८ पद्यात्मकं स्तोत्रकाव्यम्)

(डा० वरदाचार्य कण्णन्) ८/४, १५ अक्टूबर, १९८६

१२२. संस्कृत वाणी (कविरत्न ओमप्रकाश ठाकुरः) ९/१, २६ जनवरी १९८७

१२३. कोऽहम् (प्रो० सत्यव्रत शास्त्री) ९/१, २६ जनवरी १९८७

१२४. भारत्यर्चनम्

(डा० कैलाशनाथ द्विवेदी) ९/१, २६ जनवरी, १९८७

१२५. आतंकवादः पुनरुग्रवादः द्वावेव संसारविनाशकौ तौ

(श्री रामेश्वरदत्त शास्त्री) ९/१, २६ जनवरी, १९८७

१२६. श्रीगङ्गावन्दनम्

(डा० रामकिशोरमिश्रः) ९/१, २६ जनवरी १९८७

१२६. शिमला

(आचार्य श्रीनिवास रथः) ९/१, २६ जनवरी, १९८७

१२८. अहं स्वतन्त्रता भणामि (१६ पद्यानि)

(डा० रमाकान्त शुक्लः) ९/१, २६ जनवरी, १९८७

१२९. मैं स्वतन्त्रता तुम्हें पुकारती

('अहं स्वतन्त्रता भणामि'- कवितायाः हिन्दी पद्यानुवादः)

(पद्यानुवादकर्त्ता- डा० कृष्णमुरारिः शर्मा) ९/१, २६ जनवरी, १९८७

१३०. मा भव

(श्री मधुर शास्त्री) ९/१, २६ जनवरी, १९८७

१३१. रौति ते भारतम् ।

(डा० रमाकान्त शुक्लः) ९/२, १५ अप्रैल, १९८७

१३२. षोडशाक्षरीस्तोत्रशतकम्

(डा० शा० रा० स्वामिनाथः) ९/२, १५ अप्रैल १९८७

१३३. अनात्मवादः खलु दुःखमूलम्

(प्रा० हरिश्चन्द्र रेणापुरकरः) ९/२, १५ अप्रैल, १९८७

१३४. श्री नूतनसत्यनारायणकथा

(डा० रमेशचन्द्र शुक्लः) ९/२, १५ अप्रैल १९८७

१३५. कालिदास-प्रशस्तिः

(डा० रमाशंकर तिवारी) ९/२, १५ अप्रैल १९८७

१३६. प्रौढसखीसङ्गमसङ्गीतम्

(कविपुण्डरीकः श्री सम्पूर्णदत्त मिश्रः) ९/२, १५ अप्रैल १९८६

१३७. आशीविषः

(प्रो० देवदत्त भट्टिः) ९/२, १५ अप्रैल १९८७

१३८. अन्योक्तिद्वयम् (शुक उवाच तथा श्येन उवाच)

(डा० बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञानम्) ९/२, १५ अप्रैल १९८७

१३९. मिहिरावली दृष्ट्वा

(अभिराज डा० राजेन्द्र मिश्रः) ९/२, १५ अप्रैल, १९८७

१४०. श्रीबदरीशस्तुतिः

(डा० उमारमण झा) ९/२, १५ अप्रैल, १९८७

१४१. हैमन्तिकप्रार्थनम्

(डा० दीपक घोषः) ९/२, १५ अप्रैल, १९८७

१४२. रामगिरि-परिसरः

(डा० प्रकाश पाण्डे) ९/२, १५ अप्रैल, १९८७

१४३. मामका भारतीयाः क्षणं श्रूयताम्

(डा० राजदेव मिश्रः) ९/३, १५ जुलाई १९८७

१४४. भारतीयः स एवात्र संकीर्त्यते

(डा० शम्भुनाथ आचार्यः) ९/३, १५ जुलाई १९८७

१४५. विमानयात्राशतकम्

(अभिराज डा० राजेन्द्र मिश्रः) ९/३, १५ जुलाई १९८७

१४६. श्रीवैष्णवीदेवीयात्रावर्णनम्

(डां० उमारमण झा) ९/३, १५ जुलाई १९८७

१४७. श्रीगान्धिचरितम् (गद्यप्रबन्धः १-३ परिच्छेदाः)

(प्रो० चारुदेवः शास्त्री) ९/३, १५ जुलाई १९८७

१४८. श्रीगान्धिचरितम् (४-६ परिच्छेदाः)

(प्रो० चारुदेवः शास्त्री) ९/४, १५ अक्टूबर, १९८७

१४९. मेघप्रबोधनम् (क्रूरहृदय मेघ !)

(डा० रमाकान्त शुक्लः) ९/४, १५ अक्टूबर, १९८७

१५०. हिमगिरे !

(श्री देवदत्त भट्टिः) ९/४, १५ अक्टूबर, १९८६

१५१. मातरमाहुः

(श्री देवदत्त भट्टिः) ९/४, १५ अक्टूबर १९८७

१५२. नववर्ष-शुभकामनाः

(डा० उमारमण झा) १०/१, १५ जनवरी, १९८८

१५३. ऋतम् (उपन्यासः)

(डा० केशवचन्द्र दाशः) १०/१, १५ जनवरी १९८८

१५४. शोषः पोषश्च

(कविरत्न श्री अमीरचन्द्र शास्त्री) १०/ १, १५ जनवरी, १९८८

१५५. कथंकथा

(डा० बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञानम्') १०/१, १५ जनवरी १९८८

१५६. अकालजलद !

(डा० रमाकान्त शुक्लः) १०/२, १५ अप्रैल १९८८

१५७. ज्वलति हन्त पञ्चापप्रदेशः

(डा० परमानन्द शास्त्री) १०/२, १५ अप्रैल १९८८

१५८. भारत-वन्दना

(कविरत्न ओमप्रकाश ठाकुरः) १०/२, १५ अप्रैल १९८८

१५९. राष्ट्रवन्दनम्

(डा० मल्लिकार्जुन परड्डी) १०/२, १५ अप्रैल १९८८

१६०. भारतम्

(कवीश रामकैलाश पाण्डेयः) १०/२, १५ अप्रैल १९८८

१६१. उज्जयिनी

(डा० हरिहर त्रिवेदी) १०/२, १५ अप्रैल १९८८

१६२. उज्जयिनीमुपसर

(डा० सुधाकराचार्य त्रिपाठी) १०/२, १५ अप्रैल १९८८

१६३. स्वप्नकन्यका

(श्री ई0 पी0 भरतपिषारटिः) १०/२, १५ अप्रैल, १९८८

१६४. पल्लव कम्पसे किम् ?

(आचार्य वेदानन्द झा) १०/२, १५ अप्रैल १९८८

१६५. श्रीवेदव्यासप्रणीतब्रह्मसूत्रस्य सरलश्लोकेषु विवृतिः

(आचार्य रमेशचन्द्र शुक्लः) १०/३, १५ अप्रैल १९८८

१६६. देववाणीहुंकारशतकम् (१०२ पद्यात्मकम्)

(अभिराज डा० राजेन्द्र मिश्रः) १०/२, १५ जुलाई १९८८

१६७. दयानन्दसूक्तिसप्तशती (७१९ पद्यात्मकं सूक्तिकाव्यम्)

(श्री शिवकुमार मिश्रः) १०/३, १५ जुलाई १९८८

१६८. स्वागतं पयोद ते !

(डा० रमाकान्त शुक्लः) १०/३, १५ जुलाई १९८८

१६९. गीतमन्दाकिनी

(डा० इच्छाराम द्विवेदी) १०/४, १५ अक्टूबर १९८८

१७०. यवद्वीपसाहित्यशतकम् (१०२ पद्यात्मकम्)

(अभिराज डा० राजेन्द्र मिश्रः) १०/४, १५ अक्टूबर १९८८

१७१. गान्धिसूक्तिसप्तशती (७०२ पद्यात्मकं सूक्तिकाव्यम्)

(श्री शिवकुमार मिश्रः) १०/४, १५ अक्टूबर, १९८८

१७२. भवतु प्रभातः

(श्री मधुर शास्त्री) १०/४, १५ अक्टूबर, १९८८

१७३. तत्स्मितम् ।

(डा० दयानन्द भार्गवः) १०/४, १५ अक्टूबर, १९८८

१७४. श्रीनेहरूवृत्तम् (११४ पद्यात्मकं काव्यम्)

(डा० रमेशचन्द्र शुक्लः) ११/१, १५ जनवरी १९८९

१७५. भाव्यं शुभं भावि हि भारतस्य

(श्री श्रीसुन्दरराजः) ११/१, १५ जनवरी १९८९

१७६. नेहरुं तं स्मरामः

(डा० रमाकान्त शुक्लः) ११/१, १५ जनवरी १९८९

१७७. वसन्त-सौरभम्

(डा० केदार नारायण जोशी) ११/१, १५ जनवरी १९८९

१७८. दूतप्रतिवचनम् (१-३२ मन्दाक्रान्तापद्यानि सहिन्द्यनुवादानि)

(डा० इच्छाराम द्विवेदी) ११/१, १५ जनवरी १९८९

१७९. बालीप्रत्यभिज्ञानसार्धशतकम् (१५१ पद्यात्मकम्)

(अभिराज डा० राजेन्द्र मिश्रः) ११/२, १५ अप्रैल १९८९

१८०. दूतप्रतिवचनम् (३३-६२ पद्यानि)

(डा० इच्छाराम द्विवेदी) ११/२, १५ अप्रैल १९८९

१८१. ब्रूते सत्यं शिवं सुन्दरम्

(डा० परमानन्द शास्त्री) ११/२, १५ अप्रैल १९८९

१८२. राष्ट्रैक्यगीतम्

(डा० नलिनी शुक्ला) ११/२, १५ अप्रैल १९८९

१८३. व्यवहार-गीता

(डा० रामेश्वरदत्त शर्मा) ११/२, १५ अप्रैल १९८९

१८४. सङ्गीतर्नसुधाषोडशी

(डा० विन्ध्येश्वरीप्रसादमिश्रः 'विनय':) ११/२, १५ अप्रैल १९८९

१८५. एकं सद् बहुधा विलोक्यते भारतम्

(डा० रमाकान्त शुक्लः) ११/२, १५ अप्रैल १९८९

१८६. विक्रमोर्वशीयस्य ध्वनिनाट्यरूपान्तरम्

(डा० रमाकान्त शुक्लः) ११/३, १५ जुलाई १९८९

१८७. आलोकिनी (ध्वनिनाटकम्)

(डा० रमाकान्त शुक्लः) ११/३, १५ जुलाई १९८९

१८८. अद्यत्वे

(डा० विष्णुकान्त शुक्लः) ११/४, १५ अक्टूबर १९८९

१८९. दाराशिकोहीयम् (ध्वनिनाटकम्)

(डा० रमाकान्त शुक्लः) ११/४, १५ अक्टूबर १९८९

१९०. उत्तरमङ्गलम्

(डा० रमाकान्त शुक्लः) १२/१, १५ जनवरी १९९०

१९१. भारतं नाम विश्रुतम्

(श्री श्रीसुन्दरराजः) १२/१, १५ जनवरी १९९०

१९२. निर्वाचनावसरे

(प्रो० बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते') १२/१, १५ जनवरी १९९०

१९३. निर्णचनात्प्राक्

(डा० भास्कराचार्य त्रिपाठी) १२/१, १५ जनवरी, १९९०

१९४. केचन प्रश्नाः

(डा० कपिलदेव पाण्डेयः) १२/१, १५ जनवरी १९९०

१९५. सन्ध्यामाह विधुः

(डा० परमानन्द शास्त्री) १२/१, १५ जनवरी, १९९०

१९६. मदीयं मनो मोदते संस्कृतेन

(डा० चन्दनलाल पाराशरः) १२/१, १५ जनवरी, १९९०

१९७. तुभ्यं नमः

(डा० शम्भुनाथ आचार्यः) १२/१, १५ जनवरी १९९०

१९८. दूरदर्शने प्रस्तुतं 'भाति मे भारतम्'

(डा० रमाकान्त शुक्लः) १२/१, १५ जनवरी १९९०

१९९. उड्डीयते विमानम्

(डा० हरिदत्त शर्मा) १२/२, १५ अप्रैल १९९०

२००. वसन्त-गीतम्

(डा० कृष्णमुरारिः शर्मा) १२/२, १५ अप्रैल १९९०

२०१. वसन्त-गीतिः

(डा० विन्ध्येश्वरीप्रसादमिश्रः 'विनयः') १२/२, १५ अप्रैल १९९०

२०२. मातुः स्तवकः

(डा० बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञानम्') १२/२, १५ अप्रैल १९९०

२०३. जाबालिपुरं चल !

(डा० रमाकान्त शुक्लः) १२/२ ,१५ अप्रैल १९९०

२०४. परिहास-प्रहेलिका :

(डा० सुधीकान्त भारद्वाजः) १२/२ १५ अप्रैल १९९०

२०५. यतो यतोऽपि गम्यते

(डा० भगवतीलाल राजपुरोहितः) १२/२ , अप्रैल १९९०

२०६. धारणा (चेतोदार्शनिकी कथा )

(डा० प्रकाश पाण्डे) १२/२, १५ अप्रैल १९९०

२०७. आन्दोलनम् (कथा)

(डा० इच्छाराम द्विवेदी ) १२/२, १५ अप्रैल १९९०

२०८. जापानदेशीयानि 'तान्का' काव्यानि

(डा० हर्षदेव माधव ) १२/२ , १५ अप्रैल १९९०

२०९. 'सौरि सरे'ति महावाक्यम्

(डा० रामेश्वरदत्त शर्मा ) १२/२ ,१५ अप्रैल १९९०

२१०. मावमंस्थाः सखे !

(डा० परड्डी मल्लिकार्जुनः) १२/२, १५ अप्रैल १९९०

२११. असंख्यातवर्षाणि जीवनम्

(डा० परमानन्द शास्त्री) १२/२, १५ अप्रैल १९९०

२१२. प्रिया (डा० हर्षदेव माधवः) १२/३, १५ जुलाई १९९०

२१३. मेघदूतः

(डा० ताराशंकर शर्मा ) १२/३, १५ जुलाई १९९०

२१४. तिस्रो रचनाः (१. वर्षन्त्यनलं यदि मित्रकराः , ॠ गजलिका, 3. सत्यं बन्दीकृतं कन्दरे )

(डा० परमानन्द शास्त्री ) १२/३, १५ जुलाई १९९०

२१५. श्रीलाललालित्यम्

(श्री बटोही झा ) १२/३,१५ जुलाई १९९०

२१६. मित्रदूतम् ( १०९पद्यात्मकं दूतकाव्यम् )

(डा0 इच्छाराम द्विवेदी ' प्रणवः' ) १२/३, १५ जुलाई १९९०

२१७. वदत नेतारो मनाक् !

(डा० रमाकान्त शुक्लः) १२/४, ७ नवम्बर १९९०

२१८. नेतृकथा

(डा० भगवतीलाल राजपुरोहितः ) १२/४, ७ नवम्बर १९९०

२१९. नेतृशतनामावलिः

(डा० इच्छाराम द्विवेदी ) १२/४, ७ नवम्बर १९९०

२१९. ग्रीष्म-सौरभम्

(डा० केदारनारायण जोशी ) १२/४, ७ नवम्बर १९९०

२२०. वर्षा-श्रीः

(डा० केदारनारायण जोशी ) १२/४, ७ नवम्बर १९९०

२२१. ययातिशर्मिष्ठीयम् (एकाङ्करूपकम्)

(डा० रामकिशोर मिश्रः ) १२/४, ७ नवम्बर १९९०

२२२. व्रजदर्शनम्

(श्री बटोही झा ) १२/४, ७ नवम्बर १९९०

२२३. अपण्डितोऽहम्

(श्री प्रभाचार्यः पं0 पी0 बी0 आचार्यः) १२/४, ७ नवम्बर १९९०

२२४. आह्वानम्

(श्री प्रभाचार्यः) १२/४, ७ नवम्बर १९९०

२२५. धन्या धरायां कलमालिनीयम्

(डा० कैलाशनाथ द्विवेदी ) १२/४, ७ नवम्बर १९९०

२२६. संस्कृतज्ञा मृताः सन्ति, न मृतं संस्कृतं तथा

(डा० रामेश्वरदत्त शर्मा ) १२/४, ७ नवम्बर १९९०

२२७. सत्यभक्त- दोहावली

(श्री शान्तप्रकाशः सत्यदासः ) १२/४, ७ नवम्बर १९९०

२२८. अभिनवमोहमुद्गरम्

(श्री श्रीसुन्दरराजन्) १२/४, ७ नवम्बर १९९०

# 'संस्कृतसम्मेलनम्'[१] पत्रस्य संक्षिप्तप्रगतिविवरणम्

श्री चन्द्रदीप शुक्लः

यद्यप्यस्याः सुरभारत्याः प्रचुरप्रचारस्तु समस्ते भारते, मिथिला-मगधौ स्वपाण्डित्यवैशिष्ट्ये बहुलोकविश्रुतौ, इति न तिरोहितम् प्रेक्षावतां संस्कृतविदुषाम् । संस्कृतभाषायाः समुन्नतये, तस्याः प्रचाराय च सर्व-प्रथमम्, नवत्युतरैकोनविंशतितमे (१९९०) विक्रमाब्दे सम्मेलनस्य पूर्वसंस्थापकानां स्व0 म0 म0 पूज्यपादाचार्याणां पं0 हरिहरकृपालु-द्विवेदिनां तत्त्वावधाने आषाढपौर्णमास्यां बिहारराज्ये संस्कृतसाहित्य-सम्मेलनस्य संस्थापनाभूत् । यस्य प्रधानकार्यालयः पटनानगरस्थ-मुरारकासंस्कृत-महाविद्यालयभवने अस्ति ।

राज्येऽस्मिन् सम्मेलनमिदं विदुषां साहाय्येन यथा कथञ्चित् शैशवावस्थातो व्यपगतेषु कियत्सु वर्षेषु विद्वज्जनप्रसादात् वर्तमान संस्कृतप्रचारपरं प्रान्तीयस्वरूपं सम्प्राप्तम् । वि0 सं0 २००६ तमे वर्षे पूज्यपादानां महामहिमद्वारकापीठाधीश्वराणां श्रीमच्छङ्कराचार्याणां सान्निध्ये प्रथममधिवेशनं महायज्ञावसरे पटनानगरे गाँधीसरोवरेऽभूत् ।

व्यतीतेषु कियत्सु वर्षेषु अखिलभारतीयसंस्कृतसाहित्य-सम्मेलनेनास्य (दिल्ली) सम्बद्धता राज्यनिबन्धनञ्च सञ्जातम् । कार्येऽस्मिन् म0 म0 गिरिधरशर्मचतुर्वेदानां डॉ0 मण्डनमिश्रमहोदयानां प्रोत्साहनं श्लाघनीयम् आसीत् । एवञ्चेदानीं राज्यव्यापिभावं सम्पादयत् संस्कृतोन्नतये प्रयतमानमद्यावधि वर्तते ।

---

१. संस्कृत-सम्मेलनम् (त्रैमासिकं पत्रम्)- प्रधान सम्पादकः-श्री चन्द्रदीप शुक्लः प्रकाशकम्-बिहारसंस्कृतसम्मेलनम्, मुरारकासंस्कृतमहाविद्यालयः, पटना सिटी चौक, पटना (बिहार)

अद्यावधि व्यतीतेषु वार्षिकाधिवेशनेषु विविधसमारोहेषु पूज्यपादाः शङ्कराचार्याः न्यायमूर्तयः विशिष्टनेतृवर्गाः, शिक्षाशास्त्रिणः, महामहिम-राज्यपालादयश्च समये-समये समागत्य सम्मेलनं प्रोत्साहितवन्तः । तेषु श्रीमाधव हरि अणे श्रीमदनन्तशयनम् अय्यङ्गारलोकसभाध्यक्षमहोदयः प्रमुखा आसन् ।

सम्मेलनमिदम् अभिनन्दनसम्मानादिसमारोहेण भू0 पू0 के0 शिक्षोपमन्त्रिणं श्रीभक्तवत्सलम्, भू0 पू0 के0 गृहमन्त्रिणं स्व0 दातार महोदयं,म0 म0 श्री गाडगिलमहोदयादिकं स्वकीयेन परिमितसाधनेन सममन्यत ।

परस्परं संस्कृतमाध्यमे विचारविनिमये इदानीं संस्कृतप्रचारार्थं पत्रं तुं प्रशस्तं साधनं लोकाः मन्यन्ते । अत एव लोकानुरोधं पुरस्कृत्य त्रैमासिकी ''संस्कृतसम्मेलनम्'' नाम्नी पत्रिका अद्यावधि (२७ ) तमे वर्षे सम्पद्यत इति हर्षस्य विषयः । संस्कृतसम्मेलनेन कतिपये विशेषाङ्का अपि प्रकाशिताः । सम्प्रति सितम्बरमासांङ्कः (१९९०) पूर्वाध्यक्षाणामाचार्य स्व0 ब्रह्मदत्तद्विवेदिनां स्मृत्यङ्करूपेण प्रकाशमानो वर्तते ।

सम्मेलनस्य प्रचारकार्ये श्रीबालगोविन्दमालवीय-श्रीदुर्गाप्रसाद-शर्म-एस0 वी0 सोहोनी पद्मश्रीविष्णुकान्तझाप्रभृतीनां विदुषां प्रोत्साहनं स्मरणीयमस्ति ।

वर्तमानसमये संस्कृतपत्रस्य ग्राहकाणामभावात् अर्थाभावच्च वस्तुतः पत्रस्य प्रकाशनक्षमं नातिश्रेष्ठं, तथापि यथाशक्ति नियमितः प्रदर्शनेनापि पत्रस्यास्य शोभनं सम्पादनमस्ति । केन्द्रीयसर्वकारेणापि पत्रस्यास्य विकासार्थं द्रव्यं दीयते । इति धन्यवादार्हा राजकीयाधिकारिणः शिक्षाविभागीयाः ।

# "'संस्कृतदुंदुभिः'" प्रगतियात्रा

श्री वि0 ह0 मुरकुटे

महाराष्ट्र राज्य स्थित मराठवाडा विभाग में इतिहास प्रसिद्ध एलोरा की गुफाओं के पास में बसा हुआ महानगर है औरंगाबाद । यहाँ मराठवाडा संस्कृत प्रचार सभा नाम की पंजीकृत संस्था गत २० सालों से कार्यरत है । शुक्ल यजुर्वेद संहिता का विकृतियों के साथ अध्ययन-अध्यापन, शालेय स्तर तक संस्कृत पाठांतर वर्ग तथा लेख्य परीक्षाओं के लिए संस्कृत वर्ग, सुभाषित पाठांतर परीक्षायें तथा प्रासंगिक कार्यक्रम इत्यादि कार्य यथाशक्ति चल रहा है ।

शासन के संबन्धित कार्यालय तथा अधिकारी मंत्रिगण से संपर्क रखते हुए संस्कृत प्रसार के लिए साग्रह निवेदनादि हम करते रहते हैं । संस्कृतज्ञ तथा संस्कृत प्रेमियों से संपर्क बनाने का, संपर्क कायम रखने का यथासमय प्रयत्न करते रहते हैं। मासिक तथा प्रसंगिक सभा चलती है ।

मराठवाडा विभाग में संस्कृत अध्ययन-अध्यापन की लंबी परंपरा रह चुकी है। सर्वाधिक संस्कृत पाठशालायें इसी विभाग में मिलती हैं । परंतु उदासीनता, राजनीति आदि के कारण संस्कृत का प्रचलन कम होता गया । परिणामतः संस्कृतज्ञ लोग या शिक्षक मिलना दूभर हो गया । अतः पुनरेकवार जागरण के लिए, सबसे विस्तृत मात्रा में संपर्क रखने के लिए, संस्कृताभ्यास के प्रति रुचि उत्पन्न हो तो इस हेतु से नियतकालिक चलाने का हम सदस्यों ने सन् १९८७ में विचार निश्चित किया तथा सन् १९८७ के रक्षाबंधन के पुनीत पर्व पर 'संस्कृतदुंदुभिः' नामक मासिक पत्रिका का प्रथम मुद्रण किया । १००० प्रतियाँ मुद्रित होती हैं परन्तु धनाभाव में-एक सार्वत्रिक कारण-केवल ४ पन्ने ही मुद्रित कर सकते हैं तथा छपाई की दृष्टि से, रूप सज्जा की दृष्टि से, इसे आकर्षक रूप में प्रस्तुत करने में अभी तक असमर्थता का ही अनुभव हो रहा है ।

परंतु भारत भर में पत्रिका पहुँचाते रहते हैं । विगत ३ सालों में दक्षिण में उडुपी से लेकर जम्मू काश्मीर तक के प्रदेशों से उत्साहवर्धक प्रशंसा पत्र यदा तदा आते रहते हैं जिन्हें हम यथावकाश पत्रिका में छापते रहते हैं ।

वार्षिक शुल्क रु0 १५.०० है । आजीवन सदस्यता रु0, २५१.०० है । अब तक २५० ग्राहक तथा १२ आजीवन सदस्य है । अन्य अंकों का वितरण स्वेच्छा तथा

अपेक्षा भाव से करते हैं। बीच में एकाध संस्कृत प्रेमी विशेष धनराशि का दान भी दे देता है।

मैं और मेरे मित्र श्री अशोक देव शुक्ल यजुर्वेद घनपाठी वेदपाठी ये दो नाम संपादक के रूप में अंकों पर मुद्रित होते हैं। श्री देव कार्यालयीन व्यवस्था और आर्थिक व्यवहार देखते हैं। विनायक मुरकुटे अंकलेखन-संपादन-प्रेषणादि कार्य यथामति करते हैं। हम दोनों भी स्थानिक माध्यमिक विद्यालयों में अध्यापक हैं।

इस मासिक में संस्कृत भाषा की सरलता, सुगमता प्रतीत हो ऐसा ही लेखन स्तर रखने का प्रयत्न करता हूँ। पाण्डित्यपूर्ण चमत्कृतिपूर्ण भाषाविष्कार प्रदर्शित नहीं करते। संस्कृत भाषा न जानने वाला सामान्य जन भी पचास प्रतिशत समझ सके ऐसी विधा रखते हैं। प्राचीन इतिहास, विज्ञान, तत्त्वज्ञान, शास्त्रग्रंथ आदि मराठी या हिन्दी भाषाओं में भी प्रसंगोपात्त लिख देते हैं। इसमें लोक मानस को आकर्षित करना यह स्पष्ट हेतु है।

सशुल्क ग्राहकों की संख्या शनैः शनैः बढ़ती दिखाई देती हैं। किसी प्रकार की शासकीय साहयता प्राप्त नही है। संस्कृत मुद्रण यंत्रों की अनुपलब्धता तथा समय-मनुष्याभाव के कारण मुद्रण दोष यत्र तत्र रह जाते हैं जिसके लिए संस्कृत पण्डितों से हम सदैव क्षमाप्रार्थी है। परंतु जो ज्ञानी हैं वे समझ जाते और जो अज्ञ हैं उनके लिए तो एक ही बात है।

संस्कृत भाषा का प्रचार होता रहे इसी हेतु से यथामति, यथाशक्ति पत्रिका प्रकाशन या अन्य काम करता रहूँगा अवश्य।

धन्यवाद

वि0 ह0 मुरकुटे

# साम्प्रतिक संस्कृत पत्रिकाओं एवं कविसम्मेलनों में हास्य-व्यंग्य

डॉ0 प्रशस्यमित्र शास्त्री

स्वतंत्रता के बाद केन्द्रीय सरकार एवं अनेक प्रान्तीय सरकारों द्वारा संस्कृत भाषा के प्रोत्साहन के निमित्त आवंटित धनराशि सहायता प्राप्त कर विभिन्न स्थानों से संस्कृत पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारंभ किया गया। इनमें कुछ पत्रिकायें जैसे कि दिल्ली से अखिल भारतीय संस्कृत महासम्मेलन के तत्त्वावधान में प्रकाशित होने वाली 'संस्कृत- रत्नाकर', गुरुकुल ज्वालापुर से प्रकाशित 'भारतोदय' एवं गुरुकुल काँगड़ी से प्रकाशित 'गुरुकुल-पत्रिका', जयपुर से प्रकाशित 'भारती' आदि ऐसी भी थी जिनका स्वतंत्रता से पूर्व ही प्रकाशन प्रारंभ हो चुका था किन्तु सर्वकार द्वारा प्रदत्त अनुदानों ने इनकी पृष्ठसंख्या एवं साज सज्जा तथा मुद्रण आदि में परिष्कार उत्पन्न किया।

विगत दस वर्षो में उत्तर भारत के अनेक प्रदेशों में जैसे कि दिल्ली, उत्तर प्रदेश राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा बिहार में प्रदेशीय सरकारों ने संस्कृत भाषा के प्रोन्नयन एवं विकास के लिए संस्कृत अकादमियों की स्थापना की। इन अकादमियों के सहयोग से भी संस्कृत पत्रिकाओं के प्रकाशन एवं विभिन्न स्थानों पर संस्कृत सम्मेलनों के आयाजनों में संस्कृत प्रेमियों ने अभिरुचि प्रदर्शित की।

जिस प्रकार भारतवर्ष की अनेक विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं में हास्य व्यंग्य की विधा को सम्मान एवं प्रोत्साहन किया गया उस प्रकार का प्रोत्साहन एवं प्रकाशन संस्कृत भाषा की पत्रिकाओं के प्रारंभ में नहीं दृष्टिगोचर हुआ। यही कारण है कि आज से दस पन्द्रह वर्ष पूर्व संस्कृत पत्रिकाओं में व्यंग्यात्मक कविताएँ बहुत क्रम दिखाई पड़ती हैं जबकि व्यंग्य लेखों का तो नितरां अभाव है। इसका मुख्य कारण संस्कृत लेखकों का पाण्डित्यपूर्ण लेखन या आधुनिक समसामयिक समाज को उपेक्षित करके मध्ययुगीन कालिदास भारवि के लेखन के तर्ज पर साहित्य निर्माण ही मुख्य विषय रहा।

दस वर्ष पूर्व प्रकाशित संस्कृत पत्रिकाओं में जहाँ वैदिक साहित्य, कालिदास या किसी भी प्राचीन महाकवि पर आलोचना या उनकी पुस्तकों पर समीक्षात्मक लेख पढ़ने को पर्याप्त मिल जायेगें वहीं नये विषय पर या आधुनिक सन्दर्भ पर

लेखन बहुत कम मिलेगा। पद्य या गीत भी प्राचीन शास्त्रीय छन्दों पर ही प्रकाशित मिलेगें जब कि नये छन्दों या अभिनव तर्ज़ों पर कम ही गीत प्रकाशित हुए दिखाई पड़ते हैं। किन्तु इधर दस बारह वर्षों में प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं को देखकर ऐसा नहीं कहा जा सकता। इधर तो अनेक रचनाकारों ने अभिनव प्रयोगों से संस्कृत की श्री वृद्धि की है।

## कवि-सम्मेलनों का आकर्षण

संस्कृत अकादमियों की स्थापना से निश्चित ही संस्कृत भाषा के कविसम्मेलनों के आयोजनों को प्रोत्साहन मिला है। इससे जहाँ दूसरे प्रदेशों के संस्कृत कवियों को दूर दूर जाकर अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन का अवसर प्राप्त हुआ है वहीं उनके रचना चिन्तन पर भी सामयिकता की स्पष्ट छाप है।

मुझे भी अनेक प्रदेशों में कवि-सम्मेलनों में जाने का अवसर प्राप्त हुआ। वहाँ मैने अनुभव किया कि संस्कृत के प्रेमी पत्रिकाओं में किसी रचना को पढ़ने और समझने की अपेक्षा उस रचना को रचनाकार के मुख से सुनने में ज्यादा आनन्द का अनुभव करते हैं। यही कारण है कि डॉ० रमाकान्त शुक्ल की भारत विषयक कुछेक रचनाएँ तथा डॉ० राजेन्द्र मिश्र के अनेक शृङ्गार रस पूर्ण गीत उन्हीं से श्रोताओं ने बार बार सुनने की इच्छा प्रकट की। वस्तुतः कविसम्मेलनों में रचनाकार का श्रोताओं से साक्षात् तादात्म्य हो जाता है। यह संस्कृत के लिए शुभ लक्षण हैं।

अभी तक लोग संस्कृत को एक मध्ययुगीन या कर्मकाण्ड की भाषा इसलिए भी समझते आये हैं कि लेखकों एवं रचनाकारों ने साधारण संस्कृत प्रेमी को उसके मन के अनुकूल कुछ न दिया था। श्रोता तो अपने आसपास की घटनाओं को साहित्य या भाषा में खोजता है और जब वह नही पाता है तो निराश हो जाता है। यही कारण है साहित्य को समाज का दर्पण बनने के लिये वर्तमान से जुड़ना पड़ता है।

## हास्य-व्यंग्य की न्यूनता

यद्यपि विगत दस पन्द्रह वर्षों में आधुनिक संस्कृत में नये प्रयोग पर्याप्त हुए हैं किन्तु हास्य व्यंग्य के क्षेत्र में कुछ कम ही लोग आये हैं। लखनऊ में डॉ० वीरभद्र मिश्र ने अपनी पत्रिका सर्वगंधा (जो आजकल बंद है) के माध्यम से कुछ व्यंग्य लेखन अवश्य प्रस्तुत किया किन्तु वह भी निदर्शन काल है। कविसम्मेलनों में भी इक्के दुक्के व्यंग्यकवि अवश्य मंच पर प्रकटित होते हैं किन्तु उनका भी कोई स्थायी योगदान नही बन पाया है।

मैने विगत दस वर्षों में हास्य-व्यंग्य के सामयिक सन्दर्भों पर अनेक पत्र पत्रिकाओं में पद्य एवं गद्य लिखा जो कि प्रशंसित हुआ तथा अब पुस्तक रूप में भी प्रकाशित हो गया है किन्तु रोचक गंभीर हास्य व्यंग्य का आज भी संस्कृत भाषा में

अभाव है ।

आज की संस्कृत रचनाओं को मंच पर उपस्थित करके अपनी जादुई वाणी और चिन्तन को उत्कृष्ट भावनाओं के साथ ही प्राचीनता और अर्वाचीनता के सम्मिश्रण से जिन लोगों ने उसे साधारण जनता में आकर्षक बनाया है उनमें डॉ० रमाकान्त शुक्ल (दिल्ली) डॉ० राजेन्द्र मिश्र (प्रयाग) प्रो० श्रीनिवास रथ (उज्जैन) डॉ० भास्कराचार्य त्रिपाठी (भोपाल) डॉ० हरिराम आचार्य (जयपुर) प्रमुख हैं । हास्य व्यंग्य को इन लोगों ने मेरे दुर्बल कन्धों पर रखं छोड़ा है। किन्तु अपने इन अग्रज भाइयों के आदेश पर मैं भी इनके साथ मंच पर इसलिऐ स्थान बना लेता हूँ कि व्यंग्य में लिखने वाले अत्यल्प हैं । अतः ''एरण्डोऽपि द्रुमायते'' वाली कहावत मेरे लिऐ अनुकूल जान पड़ती है ।

# A DINKUM GLIMPSE INTO HARIDĀSA'S DRAMATIC GENRE

Professor Dr. Asoke Chatterjee Shastri

Mahāmahopādhyāya Haridāsa Siddhāntavāgīśa, a twentieth century Bengali poet and dramatist has trudged in the various apartments of Sanskrit literary edifice and thus he has a fairly bulky volume under his arm.

Among the diverse fields he has endeavoured into, namely, the epic, Sanskrit rhetoric, scriptural injunctions, etc., his historical dramas are attended to here, chronologically which are :

1. *Vaṅgīya Pratāpam*, 1918 A.D.
2. *Śivāji Caritam*, 1942 A.D.
3. *Mivāra Pratāpam*, 1945 A.D.

Vaṅgīya Pratāpam reflects the life style of young Pratāpāditya, a warrior of Jessore (now in Bangladesh). His royal adventures are the pivot round which the drama moves.

The author of this drama, Mm. Siddhantavāgliśa claims that though this is dramatic projection of the life and activities of Vaṅgīya Pratāpa, it (the drama) does not buttress history.

The drama was for the first time enacted in the author's native village at his own residence and had received warm approval in 1349 B.S. and was subseqently reenacted in Calcutta for a considerable number of times and was equally accepted and appreciated by the audience.

A noted Sanskrit scholar of Mithilā, had placed this drama in the highest order among the present-day Sanskrit ones the type written hitherto.

Some selected parts of this drama have been in the prescribed texts of the undergraduate classes of the Sagar and the Visva Bharati Universities.

Next in order of chronology comes out of his pen *Śivāji Caritam*, a similar but massive work of art with play within play in ten acts in 1942 A.D.

In the preface of the drama there is a confession of the author that he rides off on historicity to enhance the entertainment value of the drama, but, none the less, the author portrays history so far as the characters are concerned.

Our dramatist laments over the cynicism of some historians who have deracinated Śivāji from the latter's base, befitting a hero, constructed by other historians.

*Śivāji Caritam* is followed by *Mivāra Pratapam*, a drama full and by, the creation of Haridāsa, dates some time in between the months of October-November, 1945 A.D. Its constituents are the heroic exploits of Rāṇā Pratāpa-his hard struggle to maintain the sovereignty of his state, against resourceful mighty Emperor, Akbar.

What warmed up the inspiration of Haridāsa to set his hand into this work is the applause he received for his previous work, *Vaṅgīya Pratāpam* from the learned circle and the respectable lovers of drama.

## A retrospect :

Nostalgia generating from the love of his mother-land and her past glories prompts Haridāsa to pick and choose the glorious characters of the past that figure up in his three historical plays, *Vaṅgīya Pratāpam, Śivāji Caritam* and *Mivāra Pratāpam* .

Haridāsa's acumen in history precludes him from distorting historical facts while sketching the lives of the protagonists of his three dramas save in case of *Śivāji* Caritam.

His point of view in the drama *Vaṅgīya Pratāpam* is to contradict the view that the Bengalies, as a class, are non-martial; and also, Haridāsa having had a sentimental yearning for a glorious past of India; to make the present generation share the feeling with him.

Thus Haridāsa prefers his theme on the lives of the three great heroes of India, viz, Pratāpāditya of

Bengal, Rāṇā Pratāpa of Mewar and Śivāji of Mahārāṣṭra. The stages and phases of their (these three great heroe's) conflict with the great Mughals the ingredients of his dramas.

Much ink has been spilt over the lives of Rāṇā Pratāpa of Mewar and Śivāji of Mahārāṣṭra, so many authors have, in the meanwhile, presented in Sanskrit the life sketches of the Rāṇā of Mewar and Śivāji, but, so far, very few dramatists have based their themes on Pratāpaditya of Bengal.

Vicinity of Haridāsa's temporary residence to the capital (formerly) of Pratāpāditya, Jessor, might be incidental to the birth of *Vaṅgīya Pratāpāditya* or *Vaṅgīya Pratāpam*, perhaps more so are the poems and balladries indulged in the praise of Pratāpāditya. Haridāsa's sentimental yearning, as said before for a past spirited, glorious Bengal, has failed him to afford Pratāpāditya's fall in his fight with the Mughals. Thus his *Vaṅgīya Pratāpam* practically ends in mediasres, his pen stops at the stage where Pratāpāditya over-powers Māna Siṃha.

With regard to the schemetism, Haridāsa rigidly follows the traditional style and the structural pattern of his three historical dramas, afore-mentioned, evinces faithfulness to his predecessors and path-finders in Sanskrit dramaturgy.

He flawlessly brings in (Sanskrit) dramatic emotions (Rasas and Bhāvas), five interludes (Pañca Sandhi), prologues and epilogues (seems to be in Greek model) and or concluding act.

Episodes (Patākās) have been meticulously incor-porated in the permitted number of acts with their proper appellations, and suitable imaginary sub-plots have been introduced in the dramas as well.

Haridāsa's careful and cautious introduction of scenes (Garbhaṅkas) and *Ākaśabhāṣitam* or the Prākṛt dialect for the dialogue of the ladies bespeaks his faithfullness to the masters too.

Senacan element (horror and murders) is com-pletely absent in his dramas, even the pronouncement

of imprecations, death, war, amorous sport, etc. for they are forbidden in the Saṇskrit dramatic grammar.

Haridāsa seems to be off the track of the pedants while he holds India to be the pioneer in the civilisation and culture and while he depicts the social, political and economic life of the people in the Mughal period.

From him we know about the prevalance of the absolute monarchy, despotism in the Mughal regime.

Sayesta Khan, as depicted by Haridāsa, is the solitary exception among the rulers, he appreciates the qualities in the Hindus who are peace-loving, honest and god-fearing. Yet they can successfully counter violence.

As rulers Mughal's injustice to and inhuman treatment with the Hindus and disorder in the State have been highlighted in Haridāsa's dramas. Particularly in *Śivāji Caritam* we find unrestrained price hike of the commodities, absence of control over distributions, unabated coercion and importunity, particularly, of the tax collectors.

Religious practices are said to have been badly obstructed resulting in the untold economic suffering of the priestly class Brahmins. Wives of the Brahmins are often kidnapped and abducted.

In provincial administration the Mughal monarchs depend on appointed deputies. These deputies are generally unscrupulous and oppressors.

Appointed spies of the monarchs convey secret information, pertaining to the reactions of the subjects on the governance, to the kings. These spies often misrepresent facts to their lords. Security of life and property are denied to the Hindus.

Haridāsa points out defects and drawbacks of the Hindus. They are disunited and are more so on the issue of self-interest. Treachery is the characteristic feature of the Indians as reflected and represented in the characters of Murarddana Simha, Bhavananda Majumdar, Surendra Nath Ghosal and other Hindus.

Defence arrangement of the Mughals, as has been painted by the author, consists in the existence of

forts with trenches around them. With regard to armoury, the author mentions the names of canons, bombs, etc. The Rajputs also are more or less equally equipped. Tribals of Mewar on the other hands have as their military hardware, spears and trident types of weapons.

Armours of the Hindu and Muslim soldiers bear the names of their respective regions and they are identified by the different dresses they put on. The Muslim soldiers fail to withstand physically monsoon falls of India.

The high official (Hindu) gives a signal by sounding a flute when he wants to talk to the king while the latter is in the harem

In *Mivāra Pratāpam* a practice has been mentioned which an Indian royal ambassador follows: he presents before the hostile king, whip, chains, and sword symbolising retreat, defeat, and war respectively.

While a Hindu king is coronated he is offered crown, sceptre and a garland indicative respectively of supremacy, governance and care and love for the subjects.

War begins with the sound of the bugle, medium of communication is Sanskrit between Hindu kings and Mughal emperor.

Caste system referred to by Haridāsa in his dramas under discussion does not deserve attention, it is some what misleading, other habits and practices of the Hindus of those days, as said by Haridāsa, is polygamy, there has been a wave of *Vaiṣṇavism* in Bengal during Vaṅgīya Pratāpāditya's time.

Want of accord among the Hindus is the cause of Mughal supremacy and the latter's permanent establishment in India. Gods' united power could successfully encounter mighty Mahiṣāsura, a Hindu scriptural myth, referred to by Haridāsa in this context, allegorises the truth that united we stand and divided we fall.

Śivāji's tact and trickery are a historical element and they are certainly not Haridāsa's contrivances, nor

they can pass for a product of the author's pragmatic view and the argument adduced therefore is merely an apology to justify Śivāji's actions and quite conspicuously Haridāsa is careful lest Śivāji loses the position where the latter has been placed by the dramatist. He has carefully followed history and we notice a decline of this trend in *Mivāra Pratāpam* and *Vaṅgīya Pratāpam*, vis-a-vis, author's taking recourse to the contrivance of imaginary scenes and bringing in imaginary personalities.

We want the Sanskrit scholars to get away from punditry and to broaden their perspective for an effective cultivation of this valuable language and literature to cater to the tastes and liking of all classes of readers of the world.

A boldness is a must to deviate from existing Sanskrit dramatic grammar to make the Sanskrit dramas, nay, the literature, more flexible to fit in with the developed and advanced dramaturgy so that they may have universal appeal and may thus become popular.

Haridāsa's attempts are comedies par excellence and judged in the above context they admit of certain defects.

The end of the inner conflict has been projected through an impressionistic technique - a death of a bird - without bringing in incidents dramatically adequate for its consummation - it's just the precipitation (*Vaṅgīya Pratāpam*, Act II).

Śivāji's emotion to insinuate his compatriots or compeers is not sufficiently justified by dramatic action (*Śivāji Caritam*, Act I).

All these dramas are full of suspense and awe and of course a considerable dramatic relief is an obvious corollary. Introduction of a proper jester is a must to accomplish the job, instead Haridāsa brings in dullard Brahmins, traditional and trite device to provide relief. And their presence also is scarce in the drama (*Mivāra Pratāpam*, Act IV and in other dramas too) and this deficiency has not been counterbalanced by the creation of striking comic situations. His humour

conception is dull and insipid.

Conflict between physical existence and spiritual essence or between aspiration and limitation is man's life and the triumph of aspiration over limitation in a drama is a comedy.

Comedy ends in a marriage bell, solution of a problem, victory in a war for a legitimate cause, etc., and looked at from this point of view Haridāsa's dramas are comedy as has been mentioned before. Notwithstanding the fact that Haridāsa has attempted to balance the flow of the dramatic air by introducing dance and songs, complete absence of love episode takes away much of the romantic fervour even of an opera. Perhaps dallying in slender and graceful love of Pārvatī, in *Kumārasambhava* and that of Śakuntalā in *Abhijñāna Śākuntala* and the sweetness and sonority of presentation of Kālidāsa offer an aroma of grandeur and majesty of effects to the dramas.

The dramatic emotion always falls short of dramatic action in the absence of scene or episode incorporating conflicts with arms, there is no exhibition of battle field (active) and the furniture of war motivating action and so the dramas are considered to be decadent comedies.

Besides, Haridāsa seems to seek an escape, he chooses remote incidents to get away from the hard task of exposing present day dramatic emotion and dialogues (cf. Barnard Shaw in St. Joan and T.S.Eliot Murder in the Cathedral).

From this angle of vision Dr. Birendra Nath Bhattacharya (*Śaraṇarthi Saṃvāda*) and Srījiva Nyāyatīrtha *(Caṇḍatāṇḍava)* are bold enough atleast in selecting their themes.

Proper projection of the heroes and highlighting their characters depend much on the movement of the satellite characters of a drama. In Haridāsa's dramas such characters are highly individualised, their movements are always necessarily centrifugai and not centripetal.

Female characters are all highly typical to be

singled out, in an epic-like drama the female characters are mostly of comman place type, they more often than not lose their Importance for their little heroic endeavour among galaxy of heroes sacrificing their lives in the battle, but nonetheless, the role played by Kamalā in the *Mivāra Pratāpam* Act II attracts the attention of the audience. Her wonderful prudence saves her from losing her chastity.

Versification is massive and irregular – in the *Ṛgveda* even a particular metre (tetra metre) has been followed in the style of presentation uniformly in major number of Maṇḍalas, on this score we find Haridāsa gallops.

Any way Mahāmahopādhyāya Haridāsa *Siddhantavāgīśa* is undoubtedly the path finder in the field of Sanskrit literature inasmuch as he is the first Bengali scholar who has ventured to produce dramatic works with historical theme.

His attempts in this field deserve our gratitude and admiration.

# काङ्करार्षेयो राष्ट्रवेदः

प्रो0 डॉ0 सुधीरकुमार गुप्तः

१. यात्राविलासादिविश्रुतकृतीनां प्रणेतृभिर्विद्यावाचसति-कविशिरोमणि- गद्यसम्राडाद्युपाधि-विरुदविभूषितैर्महामहोपाध्यायैः श्री नवलकिशोरकाङ्करहाभागैराचार्यै राष्ट्रवेदम् विरच्य परमाभिनवः प्रयोगो व्यधीयत । इयं कृतिस्ताँश्चतुरो वेदान् अनुहरति ये केषाञ्चिन् मतेन सृष्टिप्रारम्भकाले मानवोत्पत्तेः प्रत्यक् सृष्टेः प्राग् अव्यक्तवाग्रूपेण ऋक्सा-मच्छन्दोयजुरित्यभिहितस्थित्यादीनां व्यक्तवाच्यृग्वेदसामवेदाथर्ववेद-यजुर्वेदेतिनामभिरग्न्यादित्यांगिरोवायुनाम वहतामृषीणां माध्यमेन प्रकाशं प्राप्ताः । ते चत्वारो वेदा अपौरुषेया मन्यन्ते । आधुनिकास्तान् मानवानां रचना इति घोषयन्ति । महामहोपाध्याय-पण्डितमधुसूदन ओझा-महाभागमतेन वैदिका ऋषयः प्रजापतेर्ब्रह्मणो वा महो ज्ञानं वानुभूय स्वगिरा काव्यरूपेण रचयामासुः । एवं चत्वार इमे वेदास्तथैव मानवानां कृतयः सन्ति यथा कालिदासादीनां रघुवंशादयः सन्ति । मानवस्यानुभवो ज्ञानं शक्तिश्च सीमितानि भवन्ति । अतः स यत्किमापि लिखति वा रचयति वा, तत्सर्वमपि सीमितं भवति । प्रतीयते यत्पण्डित-मधुसूदनओझामहाभागा एवमेव मन्यन्ते यद् वेदेष्वपि सीमितं ज्ञानं वर्तते-मानवीयं वैज्ञानिकं च। इन्द्रविजयेति ग्रन्थे तेन खलु इन्द्रादीनां देवानां विभिन्नदेशानां मानवनृपरूपेण व्याख्या विहिता विद्यते । अनेनेदमायाति यद् वैदिकभाषायां मानवानां स्तुतिवृत्तादिकं यदि कस्मिंश्चिद् ग्रन्थे निबद्धं स्यात् तर्हि स ग्रन्थोऽपि वेदेति नाम्नाभिधास्यते । मतमिदमङ्गीकृत्य पण्डित- नवलकिशोरकाङ्करमहाभागै राष्ट्रवेदोऽयं निर्मितो वा दृष्टो वा ।

२. केषुचित् पुरातनवेदमन्त्रेषु 'मन्त्रकृत्' पदस्य प्रयोग उपलभ्यते। ये खलु ऋषीन् मन्त्रार्थानां द्रष्टृन् मन्यन्ते, न रचयितॄन् ते त्वस्य पदस्य 'मन्त्रार्थद्रष्टा-इति भावमर्थं वा गृह्णन्ति । अन्येऽस्य मन्त्राणां रचयिता वा निर्माता वा कर्त्ता वेत्यर्थं विदधति । तमेव पन्थानं स्वीकरोति मधुसूदनीयः

सम्प्रदायः । यतो राष्ट्रवेदस्यास्य ग्रन्थस्य रचयिता वा निर्माता वा कर्त्ता वा आचार्यो नवलकिशोरकाङ्करोऽस्ति, अतः स एव वेदस्यास्य ऋषिर्मन्त्रकर्त्ता वास्ति ।

३. राष्ट्रवेदस्य रचनायै कथमनुभूतिः सञ्जातेत्यात्मनिवेदने समुपवर्णितमृषिणानेन । एकदा स स्वगुरुं पण्डितमधुसूदनओझा-नामानं पूजयितुं नमस्कर्तुं चागच्छत् तदावासे । तत्र बहवः पण्डिता उपस्थिता आसन् । श्रीनवलकिशोरकाङ्करः कमपि मन्त्रं विरचय्य गुरुवरं स्वकीय-मदर्शयत् । तं मन्त्रं दृष्ट्वा स परां मुदमाप्तवान् । अस्मिन्नेवावसरे पण्डित-मोतीलालशास्त्र्यपि तत्रागच्छत् । प्रसंगतः स पृष्टवान् मधुसूदनम्-किमद्यापि वैदिकभाषायां मन्त्राणां रचना विधातुं शक्यते । पण्डित-मधुसूदनोऽकथयत् - ''वेदः खलु द्विविधो ज्ञेयो वैज्ञानिकः शाब्दिकश्च तत्र शाब्दिकवाग्विवर्तः शब्दमयः शाब्दिको वेदः, आर्थिकवाग्विवर्तो विज्ञानमयो विज्ञानवेदः । शब्दग्रन्थो वेदस्य शरीरम्, विज्ञानञ्च तदात्मा । सोऽयं विज्ञानवेदस्त्ववश्यमपौरुषेय ईश्वरप्रजापतिरूपत्वात् । किन्त्वपौरुषेय-वेदप्रत्ययजनकः शब्दग्रन्थः पौरुषेयः । शब्दार्थयोस्तादात्म्यसिद्धान्तादु-भयोर्वेदशब्देनैव व्यवहारः । नितरामाचामीकृतनिशेषवाङ्मयाम्बुधयो विज्ञानवेदविदो महर्षय एव शाब्दिकीं मन्त्ररचनां विधाय मन्त्रकर्तृत्वं बिभ्रति स्म । अतः साम्प्रतमपि यदि कश्चित् परमेशानुग्रहात् तादृशाभिनवनिर्मितमन्त्रेण स्वेष्टमुपतिष्ठते न तर्हि किमप्यत्याहितमुपै-त्यपौरुषेयप्रसङ्गः ।''[१] श्रीमोतीलालशास्त्रिमहाभागस्यागमनात् पूर्वं श्रीनवलकिशोरीयमन्त्रेण प्रीतो मधुसूदनस्तं प्राशंसत् अवदच्च - ''अवश्यमेवायं काङ्करः कस्यचन मन्त्रद्रष्टुर्महर्षेरन्ववाये लब्धजन्मा । समये समागते निश्चप्रचमेष नूतनां मन्त्ररचनामपि कर्त्तुं प्रभविष्यतीति चिरञ्जीव्यादयम्'' । मधुसूदनीयोक्तिभिः प्रेरितः, कैश्चिदन्यैश्च श्रीगिरिधरशर्मचतुर्वेदादिभिः प्रचोदितः कविरयं राष्ट्रवेदविममं व्यरचयत्।

४. आत्मनिवेदनेऽनेनर्षिणा वर्णितेऽस्मिन् वृत्ते त्विदं नो लिखितं यदिदानीं विस्मृतस्यैकस्य नूतनस्य गुरवे प्रस्तुतस्य, तेन च प्रशंसितस्य मन्त्रस्य रचनायां प्रवृत्तिः कथं सञ्जाता, मोतीलालशास्त्रिमहाभागेन चायमप्रासङ्गिकः प्रश्नः कथमकारि यत् ''पूज्यपादाः ! वेदशास्त्रं खल्वपौरुषेयमित्यस्ति मीमांसादिदर्शननिदर्शनम् । तत्किं नाभिनव-

मन्त्ररचनायां तद्भङ्गव्यासङ्गः समायास्यति'' ।[२] उभयत्र केनापि कारणेन भवितव्यम् ।

५. अत्रैका पृष्ठभूमिः प्रतीयते । पण्डितमोतीलालशास्त्रिपौत्रेण श्रीप्रद्युम्नशास्त्रिमहाभागेन स्वकीये लेखेऽभाणि[३] यत्पण्डितमधुसूदनओझा खलु स्वकीयेन गुरुणा पण्डितशिवकुमारेण निर्दिष्टो वादिष्टो वा यत्स तादृशं प्रयासं कुर्याद् येन महर्षिदयानन्दीयमतप्रचारादिकं धराशायि स्यात्। मधुसूदनेन च तथैवायतत । तस्य शिष्या अपि तस्मादनुभूतिं गृहीत्वा, तस्यामेव संस्कृत्यां संस्कृताः स्वभावतस्तथैवाकुर्वन् कुर्वन्ति च तत्सम्प्रदायस्थितिं यावच्च तथैव करिष्यन्ति । दयानन्दो वेदान् अपौरुषेयानेद मन्यते। तन्मते ऋषीणां मन्त्रनिर्मातृत्वं न सङ्गच्छते । मधुसूदनीयं मतमेतस्माद् विरुद्धमस्ति । प्रतिभाति यदस्यां पृष्ठभूमौ श्रीनवलकिशोरकाङ्करमहाभागेन नूतनो मन्त्रो व्यरचि मोतीलालशास्त्रिणा प्रश्नोऽकारि, मधुसूदन-ओझामहोदयेन वेदस्य स्वरूपस्य व्याख्यानं विधाय पण्डित-नवलकिशोरायाशीः प्रदत्ता । कविरयं प्रभूतान् मन्त्रान् व्यरचयत्, परमत्र प्रथमेऽनुवाके केवलं शतमन्त्रा एव संगृहीताः प्रकाशिताश्च सन्ति। ऋषिरयं पूर्व मन्त्रेषु स्वराङ्कनमप्यकरोत् परं 'स्वरानां केवलं यज्ञक्रियासु प्राधान्यं मन्यमानो मन्त्रेष्वेषु महर्षिप्रणीतमन्त्राणां शङ्कातङ्कां सम्भावयन्' 'विना स्वराङ्कनमेव मन्त्रान् मुद्रापितवान् ।'

६. अत्र यज्ञकर्मसु स्वराणां प्राधान्यमिति वचः पाणिनेः 'यज्ञकर्मण्य-जपन्यूङ्खसामसु' इति सूत्रं नानुसरति । अनेन यज्ञकर्मणि मन्त्राणामेक-श्रुतिस्वरेणैवोच्चारणं विधीयते । पतञ्जलिना 'दुष्टः शब्दः' इति व्याकरणस्य गौणप्रयोजनस्य व्याख्याने प्रस्तुतस्येन्द्रशत्रोराख्यानस्य स्थूलपृषतीतिपदस्य व्याख्यानस्य चालोके स्वराणां मन्त्रार्थज्ञाने योगं प्रतिपादयन्ति विद्वांसः । तत्र बहूनां पदानां स्वरभेदेनार्थभेदोऽपि दर्शितः । वेङ्कटमाधवोऽपि स्वरभेदेनार्थभेदं स्वीकरोति । दयानन्दोऽपि सौवरे वेदार्थज्ञानाय स्वाज्ञानमनिवार्यं नियामकञ्च मन्यते । स उदात्तादिस्वरानप्यपौरुषेयान्मन्त्रैः सार्धं चाभिव्यक्तिमापन्नान् मन्यते । राष्ट्रवेदे ये प्रयोगाः सन्ति, तेषामर्थबोधः स्वरज्ञानेन विनैव सुतरां सञ्जायते। तथैव च स्वरनिर्देशं विनैव डॉ. नारायणकाङ्करमहाभागैर्व्याख्या विहिता विद्यते । एवं रचनैषा स्वरविषयके उपरिप्रदत्ते दयानन्दस्य उभे मते खण्डयति ।

## विषयाणां क्रमः

७. अस्मिन् राष्ट्रवेदे प्रस्तुतायाः सामग्याः क्रमोऽयमस्ति-भूमिका, आत्मनिवेदनम्, सूक्तनाम, ऋषिदेवताच्छन्दोविनियोगनिर्देशाः, मन्त्रः, पदपाठः, काङ्करभाष्यम्, सरलार्थः, हिन्दीभाषानुवादश्च ।

## राष्ट्रवेद-भूमिका

८. इयं डॉ० रामचन्द्रद्विवेदिना लिखितास्ति । स तत्र लिखति यत् 'न केनाप्याचार्येण स्वविचारानुसारिणी कस्यचनापि वेदग्रन्थस्य व्याख्या व्यलेखि ।'[४] लेखोऽयं तस्य वेङ्कटमाधवस्य चात्मानन्दस्य च दयानन्दस्य च वेदभाष्याणां, डॉ० रेलेमहोदयस्य, डॉ० मनोहरलालगुप्तस्य चतुर्वेद-स्वाम्यादिभ्योऽनुभूतिं गृहीत्वा स्वामीगङ्गेश्वरानन्देन कारितस्य कृष्णपर-कस्यानुवादस्य चापरिचयं बोधयति । मधुसूधनओझामतानुसारमेवात्र डॉ० द्विवेदी वेदस्य द्वैविध्यं वर्णयति- ज्ञानात्मको वेदोऽपौरुषेयः,शाब्दिकश्च पौरुषेयः । सर्वेषामयं प्रत्यक्षोऽनुभवो यत्पुरुषो यत्किमपि चिन्तयति, वदति, लिखति वा, तत्सर्वं तस्य स्वकीयज्ञानादेव प्रादुर्भवति ।

अन्येभ्यो गृहीतं ज्ञानमप्यात्मसात् क्रियते जनैः । अतो ज्ञानात्मको वेदः शाब्दिकात्पृथक् सत्तां धारयितुमसमर्थः । एवमुभौ पौरुषेयौ वा अपौरुषेयौ वा । श्रीमधुसूदनस्य डॉ० रामचन्द्रद्विवेदिनश्चायं विचारो पुरुषसूक्तादीनां वर्णनेन न संगच्छते । पूर्वनूतनर्षीणां व्याख्यानं पुरुषसूक्तादिगतवेदोत्पत्तेरालोके विधातव्यम् ।

## आत्मनिवेदनम्

९. अत्रर्षिणा कविना राष्ट्रवेदरचनाया इतिहासः प्रदर्शितः । तस्य विवरणमुपरि दत्तमस्ति ।

## सूक्तानि

१०. अस्मिन् वेदे तु एकादश सूक्तानि - श्रेयः - गुरु - मातृभू - राष्ट्र - राष्ट्रपति - गान्धि - नेहरू - इन्दिरा - कृषक - दिष्ट - अभीष्टनामानि सन्ति । एषु क्रमशः सप्त, द्वादश, दश, सप्तदश, षोडश, पञ्च, अष्टौ, अष्टौ, षड्, षड् मन्त्राः सन्ति । ग्रन्थसमाप्तौ श्लोकत्रय उपसंहारो विहितोऽस्ति । एवमत्र केवलं मन्त्राणामेकशतमस्ति ।

## छन्दांसि

११. अस्मिन् वेदे छन्दसां चतुर्विंशतिः प्रयुक्ता विद्यते । तत्र त्रिष्टुप्, भूरिक् त्रिष्टुप्, गायत्री, अनुष्टुप्, जगतीति पञ्चछन्दसां प्रामुख्यमस्ति । एतेषां निचृद्भूरिगादिभेदैः सह उष्णिक् - पङ्क्त्योर्भेदानामपि प्रयोगो विद्यते । एतेषां सर्वेषां छन्दसां विवरणमेवमस्ति-

छन्दसां नामानि मन्त्रनिर्देशाः

अनुष्टुप्- ३/४, ६, ४/९, ५/९, ८/२, ८, १०/४ - ६, ११/४
= १०

उष्णिक् - २/१, ९/६, = २

परोष्णिक्- ३/८, ५/७ = २

(मुद्रितः पाठः - पर उष्णिक्)

पुर उष्णिक् - ४/१३ , १४, ५/४, ९/३ = ४

गायत्री - २/९, १२, ३/२, ४/११, १२, १६, ५/३,
१६, ६/५, ९/१, २, ४, ५, ७, १२/५ - ६
= १६

विराड् गायत्री - ३/३ = १

भूरिग् गायत्री - ४/६ = १

त्रिपाद् विराड् गायत्री - ४/१५ = १

अतिपात् निचृत् त्रिपाद् गायत्री - ९/८ = १

जगती - ३/५, ४/३, १७, ६/३, ८/३, ५, ६,
१०/३, ११/३, = ९

अतिजगती - ८/६ = १

ज्योतिष्मती जगती - ७/४ = १

निचृत् जगती - २/६, ५/५ (ग्रन्थे न निर्दिष्टम्) १०/१, २ =४

त्रिष्टुप् - १/१ - ६, २/२, ३/२, ४/२, ५, ६, १०, ५/१, २, ८,
११-१५, ६/१-२, ७/५, ८/१, ४, ११/१ = २६

निचृत् त्रिष्टुप् - २/६, ४/४ = २
भूरिक् त्रिष्टुप् - १/६, २/३, ४, १०, ११, ५/६, १०, ६/३ = ८
आस्तारपंक्तिः - २/८ = १
पथ्या पङ्क्तिः - ७/१ = १
सतः पङ्क्तिः - ११/२ = १
वृहती - २/५, ४/१, ८ = ३
पथ्या बृहती - ३/६, ९, १० = ३
महाबृहती - ६/४ = १
सतो बृहती - ७/२ = १

१२. अपौरुषेयेषु पुरातनवेदमन्त्रेषु प्रयुक्तेषु छन्दःस्वक्षरगणना-लक्षणमेव संगच्छते । तदेवात्राप्यभिप्रेतमस्ति । यथा

परावति पारयति द्रुहोऽस्मे ब्रह्मशंसिता ।
जोहवीमि त्वा त्वोतास मातः स्योनमिरस्यसि ।। (३/४)

इति राष्ट्रवेदीयमन्त्रे प्रतिपादमष्टाक्षरत्वलक्षणमेव संगच्छते, न तु 'पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयो'रि त्यादिकं लौकिकानुष्टुब्लक्षणम्। गायत्री- त्रिष्टुप्-जगती-बृहती-छन्दसां लौकिकप्रयोगेष्वादरो न प्रतिभाति। एवमास्तारादिपंक्तिभेदा अपि वैदिकान्येव छन्दांसि सन्ति । एतेषां सर्वेषामुदाहरणानि उपरिनिर्दिष्टेषु स्थलेषु ग्रन्थे द्रष्टव्यानि । अत्र तेषां प्रदानमनावश्यकम् । ऋषिकविस्तु छन्दसामेतेषां वैदिकानां प्रयोगे सुतरां प्रावीण्यं धारयति ।

## विनियोगः

१३ यथा कर्मकाण्डीयग्रन्थेषु श्रौतसूत्रादिषु वेदमन्त्राणां कर्मसु विनियोगो विहितस्तथैव राष्ट्रवेदस्थमन्त्रसूक्तानामपि विनियोगा ऋषिणा काङ्करमहाभागेन विहिताः सन्ति । सूक्तक्रमेण ते विनियोगा इमे सन्ति-

१. श्रेयः सूक्तम्- राष्ट्राभ्युदयमहासवे प्रथमेऽहनि श्रेयस्कामो जपेत्।

२. गुरुसूक्तम्- वेदानुशीलनसवे सांफल्यकामो नित्यं जपेत् ।

३. मातृभूसूक्तम्- सर्वेषु लोककल्याणकार्यारम्भेषु सिद्धिकामो जपेत्। राष्ट्रपर्वसु ध्वजारोहणेऽपि विनियुज्यते इदम् ।

४. राष्ट्रसूक्तम्-सर्वेषु राष्ट्रकर्मसु सदा देशभक्तिकामो जपेत् ।

५. राष्ट्रपतिसूक्तम्-सूक्तेऽस्मिन् भारतराष्ट्रपतेः प्रभूतं नैसर्गिकं वर्णनमस्ति । बहुवारं मन्त्रद्रष्टा राष्ट्रपतेरायुष्कामनां कुरुते, तञ्च वरान् याचते । बहुफलदातृत्वेनेदं सूक्तं बहुविधं विनियुज्यते । तदेवम्

१- राष्ट्रपर्वसु सर्वे शुभंयवः समुत्थाय जपेयुः ।

२- मृत्युदण्डभीतो जनः सूक्तमेतदसकृज्जपत्यन्वहम्।

३- पुष्टिकामः (बृहदश्व) (५) अनया ऋचा नित्यं व्युष्टिषु तमुपासते।

४- समुत्पन्नेषु देशोपद्रवेषु आत्मरक्षार्थम् 'अण्व्यो हिन्वन्ति', 'वृत्रहन्तम्', 'भवानो जेन्य' (३,९,१३) आभिस्तिसृभिराज्यं जुहुयादुभयोः सन्ध्ययोः ।

६. गान्धिसूक्तम्-राष्ट्रोपद्रवशान्तिकर्मणि गान्धिजयन्त्युत्सवादिषु च प्रथमं जपेदिदं सूक्तम् ।

७. नेहरूसूक्तम्-राष्ट्रे नवनवोद्योगारम्भे साफल्यकामो जपेत् ।

८. इन्दिरासूक्तम्-सर्वकर्मसु समुन्नतिकामः शश्वत् जपेत् ।

९. कृषकसूक्तम्-धान्यवपनमहामखे प्रथमेऽहनि निर्विघ्नतोपलब्धि-कामो जपेत् ।

१०. दिष्टसूक्तम्-स्वाभ्युदयप्राप्तिकामः प्रतिदिनं जपेत् ।

११. अभीष्टसूक्तम्-सम्प्रदायानुसारं बहुविधं विनियुज्यते सूक्तमिदम्-

(I) श्रेयस्कामो जपेदिदं प्रातः ।

(II) कन्योद्वाहे पितरौ तद्बान्धवाश्च 'सञ्जास्पत्यं'० १ ' यं नरो' (२), 'प्र ते करत्' (३) आभिस्तिसृभिः कन्यां शुभाशिषा संयोजयतः ।

(III) सर्वकामप्राप्त्यर्थमभीष्टदेवतायै तिस्र आहुतीर्जुहुयादाज्येन पयसा

चाह्वोर्मुखे

(IV) अन्तिमा राष्ट्रगायत्री सद्बुद्धिकामोऽसकृज्जपति ।

१४- विनियोगैरेतैरिदमनुमातुं सुकरमस्ति यत् सामान्यजना लौकिककर्मादिषु साफल्याय वेदस्यास्य मन्त्रान् जपेयुः । ते सिद्धिं लप्स्यन्ते। सिद्धिस्तु कर्माधीना न तु भावनामात्राधीना । परमेते विनियोगास्तु दुर्बलमनसां जनानां मानसिकीं शक्तिं साफल्ये विश्वासं च प्रजनय्य तान् शान्तान् स्थापयितुं क्षमाः सन्ति । एतेषामयमपरो लाभो यत् सामान्यजना ऋग्वेदादीनां मन्त्राणां ज्ञानप्रयोगादिकं च न कामयिष्यन्ते । तेषां प्राचीनवेदानामध्ययने स्मृतिकारैः सर्वेभ्योऽधिकारो न दत्तः । ते दुर्बोधा अपि सन्ति । पातञ्जलमतालोके तेषां पाठः सस्वरमभीष्टः, नो चेत् प्रयोक्तुरनिष्टं भवति। राष्ट्रवेदे एतादृशी कापि बाधा वा विप्रतिपत्तिर्वा न विद्यते । अस्याध्ययने सर्वेषामधिकारः । एवमयं वेदो दयानन्दस्य मतमिदं यत्पुरातनवेदाध्ययने सर्वेषामेवाधिकारोऽस्ति खल्वप्रत्यक्षं निराकरोति । स्मृतिकारादीनां मतमिदं च सुष्ठु समर्थयते यत्सर्वे जना वेदाध्ययनाधिकारिणो न सन्ति ।

## पदपाठः

१५- मन्त्राणामष्टासु विकृतिषु काङ्क्ररार्षेये वेदे मन्त्राणां पाठेन सह केवलं पदपाठ एव प्रदत्तो वर्तते, यतः स एव मन्त्रार्थावबोधे किञ्चित् साहाय्यं प्रददाति । अन्या विकृतयः खलु प्राचीनापौरुषेयवेदमन्त्राणां पाठानां विनाशात् पाठभ्रंशाद्वा रक्षार्थमेवोद्भाविता वर्तन्ते । अतो मुद्रापितेषु मन्त्रपाठेषु पदपाठभिन्नविकृतीनामवकाशो न विद्यते । एवं सति काङ्क्ररर्षिमहोदयेनात्र घन-जटापाठादयो न प्रात्ताः सन्ति ।

१६- अपौरुषेयमन्त्राणां पदपाठे मन्त्रे प्रयुक्तानि पदानि पृथक् स्वतन्त्ररूपेण प्रदर्श्यन्ते, प्रगृह्यसंज्ञकपदानि इतिशब्दस्य प्रयोगेण द्योत्यन्ते, समासानां पूर्वोत्तरपदयोर्मध्ये नामोपसर्गयोर्मध्ये, आश्रितवाक्येषु च क्रियोपसर्गयोर्मध्ये चावग्रहस्य प्रयोगः क्रियते । एतत्सर्वमस्य राष्ट्रवेदस्य मन्त्राणां पदपाठेऽपि कृतमस्ति । उदाहरणमेकमेव पर्याप्तम् । श्रेयःसूक्तस्य

सप्तमो मन्त्र एवमस्ति-

यं श्लिष्यन्ती शुभमते सा पराम्बा
पर्जन्यं वा विद्युत्सुभगा मदन्ती ।
स्पृधः स्तभायन्नुदानड् भुवं
द्यां विष्णुः स नः स्यादवसेऽध पूर्वथा ॥ (१/६)

अस्य पदपाठ एवं प्रत्तोऽस्ति-

यम् श्लिष्यन्ति । शुभमते । सा पराऽअम्बा । पर्जन्यम् । वा । विऽद्युत् । सुऽभगा । मदन्ती इति । स्पृधः । स्तभायन् । उत्ऽआनट् । भुवम् । द्याम् । विष्णुः । सः । नः । स्यात् । अवसे । अध । पूर्वऽथा ।

अत्रेत्यवग्रहयोः प्रयोगः सुस्पष्टः । राष्ट्रवेदेऽस्मिन् काङ्करभाष्यालोके सरलानामत्र मन्त्राणां पदपाठो नात्यावश्यकः ।

## काङ्करभाष्यम्

१६. काङ्करभाष्यस्य मूलं तु, यथा तेनात्मनिवेदने लिखितमस्ति, ऋषिणा श्रीनवलकिशोरकाङ्करमहाभागेन लिखितमभूद् यतो "वैदिक भाषायाः काठिन्यातिशयान्मन्त्रभाष्यमपि नितान्तमपेक्षितम्भूत्" । भाष्यमिदं 'सायणानुहारि' 'विद्वत्तल्लजैकगम्यं' चासीत् । अतस्तत्पुत्रः डॉ० नारायणशास्त्री काङ्करः संस्कृतसरलार्थेन हिन्दीभाषानुवादेन चापि ग्रन्थमेतं सुसंस्कृतवान् । अस्य हिन्दीभाषानुवादस्य डॉ० एम0 एम0 लवाणिया-महाभागेनांग्लभाषायामनुवादो विहितः । एतत् सर्वं काङ्करभाष्यस्यान्ते तद्भागत्वेन प्रत्तमस्ति ।

१७. संस्कृत भाषायां निबद्धे सुसरले स्पष्टे बोधगम्ये च काङ्करभाष्ये अन्वयक्रमेण मन्त्रगतानां पदानामर्थो व्याकरणप्रक्रिया यथावश्यकं व्याख्या च प्रत्ताः सन्ति । भाषात्र लौकिकं सरलं संस्कृतम् ।

## शैल्यादयः

१८. वैदिकभाषा लौकिकसंस्कृताद् बहुत्र भिन्नास्ति । प्रातिपदिक-रूपाणि क्रियारूपाणि चैवं प्रभूतं भेदं वहन्ति यत्पाणिनिना स्वव्याकरणे 'बहुलं छन्दसि' सूत्रस्य बहुशः प्रयोगः कृतो वर्तते ।[५] अन्येषु बहुषु सूत्रेष्वपि

वैदिकप्रयोगेषु भेदप्रदर्शनाय 'भाषायाम्', 'छन्दसि', 'मन्त्रे' इत्यादिशब्दाः प्रयुक्ताः सन्ति । राष्ट्रवेदे भाषायाः प्रयोगे पुरातनमन्त्रेषु प्रयुक्तानां वैदिकप्रयोगाणां सत्ता प्रतिपदं वरीवर्त्ति । यथा श्रेयःसूक्तस्य प्रथमे मन्त्रे उपो, दाशति, गेहसत्, अस्मे, द्वितीये मन्त्रे, उ, आहु, रोदसी, उनप्, तृतीये मन्त्रे स्वमहिना, पदेभिः, सधस्थम्, भक्तासः, वदामसि प्रभृतिशब्दानां प्रयोगा वैदिका एव । सर्वेषु अत्रत्येषु मन्त्रेषु एतादृशाः प्रयोगा दरीदृश्यन्ते। एतादृशानां सर्वेषां प्रयोगाणां व्याकरणप्रक्रिया चार्थादिकं च मन्त्राणां ग्रन्थस्थे काङ्करभाष्ये सरलतमया भाषया निर्दिष्टे स्तः । अत्र सौष्ठवं तु पुरातनमन्त्रभाषावत् सुतरां विद्यते । परं बार्हस्पत्यदर्शने 'भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि'' इति मन्त्रभागे[६] संकेतिता अर्थसमृद्धिरत्र नास्ति। न च सेष्टा श्रीकाङ्करर्षिणा यतोऽत्र तद्गुरु शब्देषु अपौरुषेयं वेदविज्ञानां नास्ति। अतो यः खलुः वैदिकभाषायाः प्रयोगादिक- जानाति, तत्कृते ग्रन्थस्यास्य रोचका मन्त्राः सर्वत्र विशेषं काठिन्यं न धारयन्ति । काङ्करभाष्येण तदवबोधः सर्वेभ्यः पाठकेभ्यः सरलीकृतः । अस्य वेदस्य भाषायाः सौष्ठवप्रयोगादीनां परिचयायात्र कानिचिद् उदाहरणानि प्रदीयन्ते । राष्ट्रसूक्ते राष्ट्रमहिमानं प्रतिपादयतानेनर्षिणा दृष्टमस्ति-

> ''तुविग्रीवो देश वरुणो भरे
>
> रामो न रक्षांसि हन्तवा उ ।
>
> त्वमद्भुत द्युम्नमधिगो गयं
>
> पृत्सु स्तवानः पुष्टिमांविथो नः ।। (४/४)

अस्य सरलार्थ एवं प्रत्तोऽस्ति कविपुत्रेण डा0 नारायण-शास्त्रिकाङ्करेण-''हे भारतदेश ! त्वं समुन्नतग्रीवो बहुमुखश्चासि । अतोऽत्र समागच्छतः शत्रून् दूरादेव वीक्ष्य तान् प्रतिगमयसि, आत्मनीत्या च त्वमत्र विभिन्नवर्गानावृणोषि । यथा समुन्नतकन्धरो भगवान् रामो राक्षसान् दूरत एव विलोक्य हन्ति स्म तथैव त्वमपि हंसि सम्प्रति । आदियुगादेव त्वदीयं नाम शास्त्रेषु प्रचलितत्वात् तव अजन्मता ब्रह्मवत्

स्वयंसिद्धा विद्यते । प्रतिपक्षिणो रोद्धुं त्वमप्रतिहतगत्या गच्छसि, अस्माभिः स्तूयमानश्च सङ्ग्रामेषु अस्माकं प्राणान् धनभवनादिकञ्च सर्वं रक्षसि ।'' यादृश्यः कल्पनातिशयोक्त्यादयो लौकिककविकर्मसु लक्ष्यन्ते तादृश्य एवात्रापि विद्यन्ते । एवमेवान्यत्रापि दृश्यन्ते । राष्ट्रपतिसूक्ते प्रथममन्त्रे पश्यत्यृषिरयम्-

''यत्रा हि संविश्वा यजूंषि नग्मुर्यत्रा सामानि सकला ऋचश्च ।
आ यं बुधासो मतिभिर्गृणन्ति त्रयी तस्मै रासतां दीर्घमायुः ॥''
(५/१)

अस्यायं सरलार्थः प्रत्तोऽस्ति-''अस्मिन् राष्ट्रपतौ वेदत्रयी सुसङ्गता वर्तते तत्स्वरूपञ्च प्रकटयति, विद्वांसश्च नित्यं नवीनैर्मन्त्रैर्यं स्तुवन्ति, सोऽस्माकं राष्ट्रपतिर्भगवतो वेदस्य कृपया चिरञ्जीव्यात् ।'' अत्रेदमपि विचारणीयमस्ति यत् किं वेदेषु तादृशं सामर्थ्यं विद्यते यादृशमत्रर्षिणा दृष्टमस्ति ।

२०- यद्यपि महात्मा गान्धी सम्प्रत्युपरतः, तस्मिन् किमपि दृश्यमान-मनुभूयमानं वा खलु लौकिकं सामर्थ्यं न विद्यते, न च स किमपि श्रृणोति वा पश्यति वा , न च किमपि कर्तुं समर्थः, तथापि ऋषिरयं तमुपरतं रामकृष्णादिवद् देवं मत्वा स्तौति प्रार्थयति च

''अस्मे घा रद्धि नव्यसीं शेमुषीं च शाशद्महे तविषासः पृतन्यून् ।
देवाभि नो गावो अनूषत त्वा प्रास्यारमस्मद् ध्रुग्जनं गुहासु ।'' (६/३)

अयमस्य सरलार्थः-''हे गान्धिमहात्मन् ! देवत्वं प्राप्यापि भवान् साम्प्रतमत्रास्मभ्यं तादृशीं समयोचितां धियं प्रयच्छतु यया वयमात्मबलेन प्रबुद्धाः सन्तः सम्प्रति युद्धं कर्तुं समुद्यतान् भारतद्रोहिणो वैरिणो विना रक्तपातं पराजयेमहि । वयं भारतीयाः श्रीमन्तं स्तुमः । भवानस्माकं द्रोहिणो लोकान् गुहासु निक्षिपतादिति ।'' अत्र ऋग्वेदीयेन्द्रसूक्तस्य 'दासं वर्णमधरं गुहाकः' इतिवचसः प्रभावो लक्ष्यते ।

२१- प्रधानमन्त्रिपदमलङ्कुर्वाणां भगवतीमिन्द्रां स्तुवन्नाहायमृषिः-
''अभि नो गृणातु वित्वक्षणा सं नः पवतां सुयशश्च निक्तम् ।
वाचो नः प्रतियन्तु सं गृणाना उक्थानीवेन्द्रमध्वरे ।।'' (८/६)

अयमस्य सरलार्थः-''हे इन्दिरादेवि ! भवती एवास्माकं भारतीयानां सर्वविधकष्टविनाशिनी वर्तते । अतो भवती सदा अस्मदनुकूलामेव वाचमुच्चारयतु । श्रीमतीमाश्रित्यैवास्माकं देशस्य समुज्ज्वलं यशः सर्वत्र प्रसरिष्यति । यथा सोमयागादिषु ऋत्विजो देवराजं स्तुवन्ति तथा वयं सर्वे श्रीमत्याः स्तवनं कुर्मः । भवत्या अस्माकं प्रार्थना श्रवणीया । भवत्याः कृपयैव वयं सम्पन्ना भविष्यामः ।''

२२- ऋषिणानेन श्रीकाङ्करमहाभागेन राष्ट्रगायत्रीमन्त्रस्याप्यूहा कृता। स मन्त्र एवमस्ति-

महो राष्ट्रस्य धीमहि वरीयो द्युम्नवर्धनम् ।
धियस्तन्नः प्रशोधयात् ।। ११/६

व्याहृतिपूर्वकमप्यस्य पाठोऽभीष्ट कवेः । अस्यायं सरलोऽर्थः- ''वयं सर्वे देशभक्ता भारतीयाः राष्ट्रदेवस्यास्य सर्वेभ्यः ज्योतिर्भ्योऽपि श्रेष्ठतमं, विशालतमं, तथा यशोवैभवादिवृद्धिसाधनभूतं तेजो ध्यायामः । तद्धि परमं तेजोऽस्माकं कर्माणि मतीश्च शोधयेत् । तत्कृपया नैव वयं कदापि पापकर्म दुर्विचारं वा कुर्याम ।'' अनेन प्रतीयते यदयमृषिर्जडवस्तुषु खल्वधिष्ठातृदेवताना- सत्तायां विश्वसिति ।

## विषयाः

२३. यथोक्तमुपरि अस्मिन् राष्टभवेदे ए कादश सूक्तानि सन्ति । शतं च मन्त्राः सन्ति । यतोऽत्रस्थानि पद्यानि वैदिकभाषायां वैदिकच्छन्दःसु च निबद्धानि सन्ति, तेषामृषिदेवताच्छन्दसामपि निर्देशो वर्तते, अतस्तानि मन्त्रा इत्युच्यन्ते ।

## देवताः

२४. सर्वानुक्रमण्यां कात्यायनेन देवतालक्षणं 'या तेनोच्यते सा देवता' इति प्रादायि। एतल्लक्षणमनुसृत्य राष्ट्रवेदस्य मन्त्रेषु समुपवर्णिता विषया देवता इत्यभिहिताः सन्ति। सूक्तेष्वत्रत्येषु इमा देवता समुपवर्णिता निबद्धा वा सन्ति-लक्ष्मीः (२/१); विष्णुः (१/२-७) गुरुः (२/१-१२); भारतभूमिः (३/१-१०); भारतराष्ट्रम् (४/१-१७; ११/६); मन्त्रोक्ताः (४/१-१७); भारतराष्ट्रपतिदेवः (५/१-१६); महात्मा गान्धी(६/१-५); जवाहरलालनेहरूः (७/१-५) भगवती इन्दिरा देवी (८/१८); कृषकः (९/१-८); भाग्यचक्रं कालचक्रं वा (१०/१-६); अग्निर्दाता योगिराजो वा (११/१-५)। एतासां देवतानामकारादिक्रमेण स्वरूपं सरलार्थमनुसृत्य यथाग्रन्थं प्रस्तूयते।

## अग्निः, दाता, योगिराजः (११/१-५)

२५. अभीष्टसूक्तस्य प्रथमे, द्वितीये, तृतीये च मन्त्रेषु 'दाता'-इति पदस्य, पञ्चमे मन्त्रे च 'दात' रिति पदस्य च प्रयोगो विद्येते। अस्य दातापदस्यैव कौषीतक्यादिब्राह्मणवचांस्यनुसृत्य 'अग्नि' रित्यर्थो गृहीतः। ''अथवा राजस्थाने मेवाड़प्रान्ते रोलीनगरं निकषा 'नांदसा'-ग्रामनिवासी साप्रतञ्च तन्मण्डल एव 'बाँसा'-ग्रामे कृताधिवासो महान् तपस्वी 'दाता महाराजः' इति विरुदेन प्रसिद्धो महात्मा'[७] अत्र दातेतिपदेन सूच्यते। अयं सम्भवतः काङ्कररर्षेरस्याभीष्टो देवः। मातापितृभ्यां नवोढाया दुहितुः सौभाग्याय देवोऽयं प्रार्थ्यते। अयं खल्वग्निदेवो वा दाता वा महाराजो धार्मिकप्रवृत्तीनां राजनेतृजनानाञ्चापि आराध्यो देवः, सर्वेषां सेवकानां मनसि विराजमानः, परमप्रशस्यो दानशीलः, नवोढायै कन्यायै गार्हस्थ्सुखसमृद्ध्यादीनां प्रदाता, विश्वकल्याणकारिण्या बुद्धेः प्रदायकः, देशभक्तनिन्दकजनानां दूरमपसारयिता चास्ति। तस्य तादृशस्य जनस्य च भूमाववतरणं विद्यावतां देशसेवकानां संवर्धनायैव भवति। षष्ठे मन्त्रेऽयमेवाग्निर्वा दाता महाराजो राष्ट्रस्य मह इति कल्पितः प्रतिभाति। राष्ट्रस्येदं तेजो मानवानां कर्माणि मतीश्च शोधयति।

## इन्दिरादेवी, भगवती (८/१-८)

२६. इयं देवी तत्कालीना कांग्रेसदलस्य नेत्री, जवाहरलालनेहरूपुत्री, बहुकालं यावद् देशस्यास्य प्रधानमन्त्रिपदमलङ्कुर्वाणा तत्कालीनजनानां सुपरिचिता चासीत् । तामेवाधिकृत्य इन्दिरासूक्तमुपनिबद्धमस्ति । तस्यास्तेजःप्रदानेन प्रशासनवैशिष्ट्येन च भारतीयाः कार्यक्षमतां, कर्त्तव्या-कर्त्तव्यज्ञानधनम्, अभयञ्च लभन्ते । सा हि आत्मरूपेणाखण्डिता, भूमिवदविचला, सर्वेषां प्रतिष्ठारूपा, रीतिनीतिप्रपञ्चेषु चानुपक्षीणा, शिक्षादीक्षादिभिश्च पूर्णसमृद्धा, हर्षकरी, राष्ट्रस्तवनं कुर्वद्भ्यो लोकेभ्यो धनवैभवादिकस्य वितरिका, सर्वेषां देशवासिनां सर्वविधभयस्यापनेत्री, सर्वेभ्यो धनिकेभ्यो निर्धनेभ्यश्च समानस्य न्यायस्य लम्भयित्री, संसत्सु समुत्पततां मिथ्यानिन्दाकारिणां लोकानां मुखं समुचितेनोत्तरप्रदानेन पिधात्री, सर्वेषां स्पृहापात्रं, सर्वविधराजतन्त्रसामर्थ्यसमुपेता, अपरा लोकमातेव, सर्वविधकष्टविनाशिनी, राष्ट्रविरोधिनो दुष्टाननेकधा कारागारे निपातयन्ती, दर्शनीया, मङ्गलमयी चास्ति । कव्यर्षिस्तां सर्वशक्तिमतीं चालौकिकीमिव सत्तां मन्यमानस्तस्या विविधाः स्तुतीः करोति तां च प्रीणयति ।

## कालचक्रं भाग्यचक्रं वा (१०/१-६)

२७. कालचक्रेण वा भाग्यचक्रेण वा पुरा पयोदधिघृतादिप्रदानेन सर्वान् आनन्दयन्त्यो धेनवोऽद्य धनलुब्धैर्हन्यन्ते । पुरा जना दुग्धादिभि-र्विविधखाद्यान्नैः सम्पन्ना अधुना बुभुक्षितास्ते दधि-दुग्धादीनां बिन्दुमपि लब्धुं न पारयन्ति । पुरा सर्वसुखसम्पन्ना राजानो भूपतयोऽधुना लोकैरनादृता दीनाश्च संजाताः सन्ति । साम्प्रतमिह कोऽपि आधिव्याधिशून्यः सर्वसुखी नास्ति । जना दायाधिकारिणः सम्बन्धिनो वधमाचरन्ति, विवाहे धनस्य व्ययाद् भीताश्च जनाः स्वकीयाः कन्या घातयन्ति । शत्रुसंहारकारी प्रबलप्रतापो महाराणाप्रतापसिंह इदानीं नास्ति। हुङ्कारेणैव शत्रूणां विद्रावयिता महाराष्ट्रवीरः शिवराजोऽपि दिवं यातः । सर्वमेतद् भाग्यदेवस्यैव कालचक्रस्य प्रभावः ।

## कृषकः (९/१-८)

२८. भारतीयोऽयं कृषकोऽहर्निशं क्षेत्रकर्मणि व्यापृतः सन् क्षीणदेशः, क्षुत्तृड्भ्यां दूयमानः शीतातपवर्षाः सहमानः, सर्वेषां शुभाभिलाषुको वर्तते। अस्य जन्म परोपकाराय तपसे च भवति । दैनिकं क्षेत्रकर्षणादिस्वकार्यं सम्पाद्यैव गृहं गच्छति । तद्गृहिणी अपि कर्मव्यापृता तिष्ठति । सर्वोत्कृष्टोऽयं जगति समस्तप्राणिनः पर्याप्तमन्नमुत्पाद्य पोषयति । अयं मरुप्रदेशेऽपि धरित्रीं शस्यश्यामलां विदधाति । अयं सर्वेभ्योऽन्नं प्रदातुमेव जन्म गृह्णाति । अनेन सर्वे सांसारिकभोगविलासाः परित्यक्ताः सन्ति । विविधानि आर्तवकष्टाणि सहमानः स्वकर्मणि व्याप्रियमाणस्तपोऽनुष्ठानं करोति । अत एव सर्व एनमभिलषन्ति ।

## गान्धी महात्मा (६/१-५)

२९. अयं गान्धिमहात्मा सर्वथा समर्चनीयो वर्तते वर्तिष्यते च । प्रथमं विदेशेषु भारतीयानां दुर्दशामपनेतुमान्दोलनस्य कर्त्ता, पुनः स्वदेशे। तत्पदार्पणेनैव स्वतन्त्रतासङ्ग्रामे साफल्यं लब्धं देशवासिभिः । अयं हिंसारहितेन पावनयुद्धेन वैदेशिकहस्तगतं स्वराज्यं लब्धवान् । अयं गान्धी महात्मा स्वकर्मणि निर्भयः सुस्थिरो भूमण्डलेऽनुपमः स्वतन्त्रता-सेनानीश्चासीत् । ऋषिस्तं प्रार्थयति यत्स देवो गान्धिमहात्मा ऋषेः प्रार्थनया दिवंगतोऽपि तस्मै ऋषये समयोचिताम् आत्मबलवर्धिनीं देशस्य वैरिणो विना रक्तपातं जेतुं गुहासु निक्षेप्तुं च समर्थां धियं दद्यात् । कृशकायोऽपि महान् बलिष्ठः, परमबुद्धिमान्, कर्मठः, प्रभावशलि-भाषणकर्ता स स्तुतिवाचा प्रसाद्यः सर्वैः । कारावासादिकष्टान् सोढ्वा स देशं स्वतन्त्रं विधाय तस्य महिमानं समुन्नतिशिखरे समगमयत्, अतः सोऽस्माभिः काम्यते ।

## गुरुः (२/१-१२)

३०. कविऋषिस्वगुरुः मधुसूदनओझामहोदयः सर्वविधसुखशान्ति-साधनभूतेनात्मदर्शनप्रदानेन काङ्करमृषिं कृतार्थयतु, दिव्ययानैरागत्य च दर्शनं प्रदाय बुद्धिमतां सभासु तं यशोभागिनं विदधातु । परब्रह्मणि विलीनस्तद्रूपः स्वर्गेऽपि भृशं प्रकाशते । यदुपदिष्टं वैदिकविज्ञानं प्रेरणा-

प्रदमस्ति । आत्मना दिव्यविद्याबलप्रभावेणामरधर्मा स पूर्णज्ञानो निखिल-वाक्प्रपञ्चस्य धारयिता, सर्वैर्वेदैरहमहमिकया समुपासितश्चासीत् । तदनुग्रहेणायमृषिः काङ्करो नवलकिशोरः पञ्चमं राष्ट्रवेदमलिखत् । लोकत्रयाप्रतिहतविद्याबुद्धिप्रभावो वेदविदितमहर्षेरेव मूर्तिः, कलियुगेऽस्मिन्नद्वितीयो वेदरहस्यविद् मेधावी सन् मेधिरशब्देन व्यवह्रियते । स मधुसूदन आत्मविद्याप्रभावेण काङ्करर्षेश्छन्दोरचनां नवीनां सम्यग् जानाति। अतोऽत्र प्रसारितेयं स्तुतिरचना तं गुरुं प्राप्नोतु । तच्छिष्यश्च राष्ट्रवेदरचनायां, राष्ट्ररक्षणसामर्थ्यप्राप्तौ, त्रिवर्गसम्पत्तिलब्धौ च साफल्यं गच्छेत् । तद्गुरोरनुग्रहेण ऋषेरस्य सुप्रसिद्धं यशः सर्वत्र प्रसृतं विद्यते । रोगाक्रान्तः कष्टमनुभवन् ऋषिरयं सपत्नीकः सुखप्रदानाय गुरुं मधुसूदनं स्तौति समाश्रयते च ब्रह्मसायुज्यमुपेतः स ऋषौ काङ्करे निखिलस्य स्तवनीयस्य श्रौतज्ञानस्याधानं करोतु । बिहारप्रान्ते लब्धावतारो मैथिलवर्यश्च मधुसूदनोऽस्यर्षेर्वैदिकवाङ्मयगुरुः, बिहारीलाल-महाराजश्च साहित्यगुरुरास्ताम् । आत्मनो विद्याबलेन स बिहारीलालः काङ्करर्षेः पठनपाठनादिकं विज्ञाय तस्मिन् कृपयतु ।

## जवाहरलालनेहरूः (७/१-५)

३०. भारतराष्ट्रस्य प्रथमप्रधानमन्त्री जवाहरलालनेहरूस्तु अद्वितीयो महान् नेता, स्वतन्त्रताप्राप्तिमहायागस्य भारतोन्नतिकार्याणाञ्च पूरयिता, वैदेशिकैः परमं पीडितोऽपि स्वतन्त्रताप्राप्तिलक्ष्यादप्रच्युतः, स्वयमात्मप्रज्ञाबलेन तेषां कम्पयिता, स्वर्गीयोऽपि स देवः सम्प्रत्यस्माकं शत्रूणां विनाशाय भवेत् । सर्वत्र शान्तिस्थापनाय पञ्चशीलसिद्धान्तस्य प्रसारकः, शत्रूणां पराभवकारी, विद्वद्भिरपि स्तुतः, द्युलोके निवसन् स देवो देशरक्षार्थं भूयोऽपि भारतेऽवतरतु । तस्यावतारः सङ्कटाकीर्णाय भारताय मृतकल्पायामृतदानमिव । अद्य राष्ट्रशत्रवः प्रान्तीयतावादेन, सम्प्रदायवादेन, जातिवादेन, भाषाकलहेन चेदं छिन्नं भिन्नं विधातुं प्रोद्यता विद्यन्ते। तस्य कठोरशासनेन सुव्यवस्था स्थापयिष्यते । भारतीया नेहरूमहाभागस्यात्मीयाः प्रजापशुमन्तः सन्ति । स्वर्गस्थितोऽपि स नेहरूः भारतोत्थानकार्यशैलीनां प्रकाशकः, भारतीयानां पालनकर्तृत्वात् देश-

वासिनां पितेव, स्वातन्त्र्यसुखस्य जनयिता, तेजस्वी, प्रतापी, सर्वोपरि विराजमानः, सर्वेषां प्रियः प्राणरूपश्च, सर्वासां शासनप्रणालीनां विज्ञाता, प्रशासन-क्षमाया गम्भीराया वाचः पतिः स नेहरूः भारते पुनरागच्छतु ।

## भारतभूमिः (३/१-१०)

३२. भारतभूमिरत्र सचेतना कल्पिताऽस्ति । कविरिच्छति यद् भारतीयानां राष्ट्रसेवाकर्त्तुकामानां प्रणामास्तां प्राप्नुवन्तु । सा भूमिर्भारतीयैर्हृदयेन वाञ्छ्यते, स्तोत्रपाठादिभिः संवर्ध्यते, सर्वेषां सुखं शान्तिं च याचमानैर्भूयो भूयः प्रसाद्यते । एषा भारतभूमी रत्नगर्भा भारतीयान् अतिसंवृद्ध्या, अन्नसमृद्ध्या, प्रभूतेन प्रजावैभवेन च सुखयति, राष्ट्रद्रोहिणो घातयति, पारेसमुद्रं च गमयति । सर्वैर्वेदैः प्रशंसितेयं निवासिनो रक्षति । अस्या भूमेः सुखसमृद्धिवैभवादीनां महिमा वाचामगोचरः । स्वर्गवासिनो देवा अपि अत्र जन्मग्रहणाय स्पृहयन्ति, देवराजमिन्द्रं चैतदर्थं याचन्ते । अस्या मातृभूमेः स एव सेवको योऽप्रतिहतगतिः सन्नुदारतया तस्यै धनं प्रयच्छति, सदा जागरूकस्तिष्ठति, समये क्षिप्रमेव च कर्म कर्त्तुं धावति । अत्रत्या यशस्विनो वीरपुत्राः सैनिकाश्छद्मना भारतस्य भूमिं गाश्च ग्रहीतुकामान् सहसा आक्रमणकारिणो वैदेशिकान् पराजित्य दूरमगमयन् । सशस्त्राः शत्रुगुप्तचराः सर्वत्र विद्यन्ते । शत्रवश्च हिंसकप्रवृत्तयो देशवासिभिर्योद्धुकामा वर्तन्ते । ऋषिस्तां प्रार्थयति यत्सा भारतीयानां मङ्गलानि करोतु । सा हि विभिन्नेषु प्रान्तेषु विभिन्नैर्नामरूपप्रकारैः प्राकट्यं प्राप्तास्ति। ते प्रदेशास्तदङ्गभूताः सन्ति । सा भारतीयेभ्यो जीवनयापनाय सर्वविधं सौविध्यं प्रयच्छतु येन ते देशाभ्युदयस्वरूपं स्वातन्त्र्यसुखमविचलं लभेरन् ।

## भारतराष्ट्रम् (४/२-१७; ११/६)

३३. राष्ट्रमिदं योद्धुमुद्यतानामग्रेऽपि सख्यहस्तं प्रसारयति । स्वर्गवासिनो देवा अपीदं स्तुवन्ति, अस्य च महिमानं गायन्ति । ''इदं राष्ट्रं धनधान्यादिभिः, समृद्धम् उत्सवाधिक्यात् सदा गीतवाद्यादिध्वनिभिर्गुञ्जितम्, शत्रुजनैरप्रधृष्यम्, सर्वविधशक्तीनां सर्वविधशक्तिशालिनाञ्च

श्रेष्ठम्, आदिकालादेव स्थापितं वासितञ्च वर्तते । अत्र राष्ट्रे सैनिककोषादिसर्वविधं बलञ्च निहितमस्ति ।' भारतराष्ट्रदेवस्य ''प्रजाजना लोकनेतारश्च सोत्साहं बहुविधकलाविज्ञानोद्योगसंस्थानादिस्थापनैर्विस्तारं कुर्वन्ति । इदं सर्वेषां सहायकभूतं, सन्मार्गलग्नानां विरोधिनां दुष्टानां संहर्तृ, शान्तिप्रियमपि सत्यावश्यकत्वे युद्धाय सन्नद्धमस्ति । अयं भारतदेशः समुन्नतग्रीवो बहुमुखश्च सन् समागच्छतः शत्रून् वीक्ष्य तेषां प्रतिगमयिता, आत्मनीत्या विभिन्नवर्गाणामावरकः, आदियुगादेव शास्त्रेषु प्रसिद्धनामा, निवासिभिः स्तूयमानः सङ्ग्रामेषु तेषां प्रणान् धनभवनादिकं च सर्वं रक्षति। अरातीनां पराजेतृ राष्ट्रमिदं बलवतामपि राष्ट्राणां बलवत्तमं बहुविस्तृतञ्चास्ति । सर्वे इदं कामयन्ते । देशोऽयभारतनिवासिनां कृते पावनो माता पिता भ्राता सखा चास्ति । अयं सर्वान् अत्रत्यान् भेदभावं विना समानभावेन पश्यति, तेषां सर्वविधं भारं च सहते। अयं देशः सर्वेभ्यः स्वदेशसेवाभावनां प्रयच्छतात् । इदं राष्ट्रं न कश्चन कम्पयितुं समर्थः । स्वतन्त्रं सञ्जातं समर्चनीयमिदं राष्ट्रं निवासिनोऽस्य विविधोद्योगप्रचारैः संस्कुर्वन्ति । अयं देशः सत्यसंवर्धकानां पुरुषाणां विदुषां च मध्ये निष्कलङ्को मतः, भेदभावं विनाल्पसंख्यकानां बहुसंख्यकानां च लोकानां सुखकारी, विजयशीलानां सैनिकानां निवासः, भारतीयैः परमेश्वर इव पूजितः, नानाक्लेशैः खिद्यमानानां मनसां मोदयिता, अत्रोत्पन्नेनान्नेन सर्वेषां पालयितास्ति । इन्द्रोऽपि स्वर्गे भारततुल्यमेव सफलं प्रशासनं स्थापयितुकामः । भारतवासिनां बन्धुभूतं शरीरावयववत् परमप्रियञ्च भक्तैः परश्वेरस्वरूपं श्रियः स्वरूपञ्च मतमिदं राष्ट्रम् । सर्वे भारतीया देशमिमं सर्वविधसमृद्ध्या पूरयन्ति परिचरन्ति च । अत्र विभिन्नजातीया विभिन्नमतानुयायिनो विभिन्नसम्प्रदायवादिनो विभिन्नभाषाविदश्च लोकाः समानरूपेणैव वसन्ति धार्यन्ते च । अयं सर्वेषामाह्लाकारी, पूर्णस्वर्णकोषः, अहिंसापालकः, शत्रून् केवलं छिन्नान् भिन्नान् कर्तुम्, भयभीतान् च विधातुमेव शस्त्राणि गृह्णाति न तु सङ्ग्रामकामनया । प्रत्येकभारतीयस्य कृते त्वयं देशः प्रजापतिपरमेश्वरः। राष्ट्रमिदं सर्वविधसुखसमृद्धिसम्पन्नं भवेदिति काम्यते जनैः। अत्रत्याः सैनिकाः शत्रुभिरहिंसिताः परमपराक्रमिणो वीराः स्वराष्ट्रसंर-

क्षणमभिलषन्ति-

बप्सन्ति सं वीरासः प्रसुपः स्रिधो गोपीथे त्यं करामहे ।

अदृब्धा देशवीतमाः ।। (४/१३) ।

शक्तिस्फूर्तिभ्यां द्योतमानाः परमाणुशस्त्रवतस्ते आक्रमणकारिणः शत्रून् अनेकप्रकारैः पीडयन्तो भक्षयन्त्येव । ते देशमिमं मातृभूमिमिच्छद्भ्यो गोभक्तेभ्यो वा लोकेभ्यः सर्वविधसुरक्षासाधनैः संवर्धयन्ति । अयं देशो रामचन्द्र इव शस्त्रं बिभर्ति । अतः शत्रुकम्पयितुरस्य राष्ट्रस्य कृते सत्कर्म करणीयमस्ति । सर्वैश्च स्वकीयैः शुद्धाचरणैः सेवा विधातव्या, तैरेवायं देशो वृद्धिं लभते। भारतराष्ट्रदेवस्य स्वरूपमुपसंहरन् लिखत्यृषिः काङ्करो नवलकिशोरो यद् 'हे भूलोकवासिनो जनाः ! यूयं ध्यानपूर्वकं श्रृणुत । अस्माकं भारतदेशस्य महिम्नः प्रभावो निःसीमो वर्तते । न कश्चन देशोऽस्य समतां कर्तुं शक्नोति, यतोऽयं जाति-वर्ण-सम्प्रदाय-प्रान्तीयतादिभेदभावं विना सर्वान् सत्पुरुषान् पालयति, शरणीभूतांस्तु शत्रूनपि रक्षति च । अयं शरणागतेभ्यः सर्वविधमेव सौविध्यं वितरति । अत एवेमं देशं सर्वे लोकाः प्रशंसन्ति । आत्मनोऽपत्यं पितेव देशोऽयमस्मान् सुखयति। अहं प्रणमामि स्वदेशमिमम्-

महिमाऽनन्तो देशस्य नो जनासः श्रुतः सत्पतिः शरण्य एषः।

पिता वा वन्दमानमात्मनस्तोकं मृळयति लोकं नमोऽस्मै कृणोमि ।।

(४/१७)

३४. यद्यपि राष्ट्रगायत्रीमन्त्रेणात्र भवितव्यम्, परं स ऋषिणा ग्रन्थान्ते सूक्तस्यान्तिमस्य समाप्तौ स्थापितो निविष्टो वा । तस्यायं भावो यद्राष्ट्रस्यास्य तेजो मानवानां कर्माणि मतीश्च शोधयेत् ।

## भारतराष्ट्रपतिदेवः (५/१-१६)

३५. राष्ट्रपतिसूक्तस्य हिन्दीरूपान्तरे भूमिकायां सूक्तस्यास्य विषयं प्रदर्शयन् ऋषिरलिखत् यद् अस्मिन् सूक्ते भारतराष्ट्रपतेर्बलवीर्यादीनां

वर्णनं वर्तते, तस्य महत्त्वस्य च स्तवनं विहितमस्ति। तस्य दीर्घजीवनाय च परमेश्वरः प्रार्थितो भवति।

३६- भारतस्य राष्ट्रपतौ वेदत्रयी सुसंगता वर्तते तत्स्वरूपञ्च प्रकटयति। विद्वांसश्च तं नित्यं नवीनैर्मन्त्रैः स्तुवन्ति। स राष्ट्रपतिर्वेदस्य कृपया चिरञ्जीव्यात्, वसुरुद्रादित्यानामनुग्रहेण पूर्णमायुर्लभतां, राष्ट्रश्रियं वर्धयतु, अनुशासनव्यवस्थया च सर्वान् सुखयतु। राष्ट्रपतिः खलु राष्ट्रसम्पत्तिनाशपरायणान् हत्वा तेषां रक्तपानाय स्वाङ्गुलिभिः प्रेर्यताम्। स राष्ट्रपतिर्महाभागो महान् प्रतापी, तेजस्वी, भारतीयानामाह्लादकः, सर्वेभ्यः शान्तिसुखम्, एकीभूय कार्यकरणसामर्थ्यं च प्रदद्यात्। परं बलवन्तं तं राष्ट्रवासिनो राष्ट्रपर्वणि याचन्ते। तेन रक्षितास्ते सर्वकार्येषु साफल्यं लप्स्यन्ते। राष्ट्रपतिशासने स्थूलोदरान् प्रजाजनविशोषकान् देशद्रोहिणो जनान् तत्तद्विभागमन्त्रिणस्तावत् कारागारे स्थापयन्तु यावत् ते क्षीणशक्तयः सन्तः क्षमां न याचेरन्-

पते तत्त आयवो नामित्रहन् त्यजन्त्यदेशयून् तन्वा शूशुजानान्।
यत्तिग्मशृङ्गा नमसा न वोक्थैः संतस्थाना ईरते नम्रवाचम्॥

(५/६)

स राष्ट्रपतिः स्वराजनीतिनैपुण्येन विस्तृतगुप्तचरादिचक्रेण राष्ट्रविरोधिजनानां सर्वं कुकर्म जानाति। अपरिमितबलशालिनः सौम्य-स्वरूपेणैश्वर्येणात्ममहत्त्वेन च शोभमानस्य तस्य सर्वत्र देशेषु तेजःप्रतापो दीप्यते। भारतीयैः स प्रार्थ्यते, सुशोभनशासनव्यवस्थया प्रीणयितुं च हृदयेन वाञ्छ्यते। राष्ट्रस्य सर्वविधं कार्यभारं स वहति। छद्मगतिका अपि शत्रवस्तं जेतुं कदापि नाशक्नुवन्। देशवासिनां सर्वविधविपदां विनाशकः स सर्वेभ्योऽभयं प्रयच्छतु। कर्त्तव्यपरायणान् सर्वान् जनान् जानानः संरक्षतु। स राष्ट्रस्य सम्पूर्णं व्यवस्थाभारं सहमानः शत्रून् दूरं गमयति स्तम्भते च। स्तुतिरूपजलबिन्दुभिः स सिच्यते। स देशवासिभ्यो दुष्टान् योद्धुं कृतसंकल्पान् शत्रून् हन्तुं सामर्थ्यं च प्रयच्छतु। सर्वकामानां पूरयिता स देशवासिनः स्तुतीः सम्यक् श्रुत्वा अपरिमितैरायुधैस्तान् संरक्ष्य

पुत्रपौत्रादिबृंहितं महत्सौख्यं प्रयच्छतु सर्वविधां राष्ट्रसंपत्तिं च वर्धयतु-

त्वेषं नो अद्य सहस्रभृष्टे नु सहवीरं शर्म आ सुव त्मना ।

वाचो यन्ति सुष्टुतीनां प्र ह्यच्छा तन्नो भुवद्रयीणां वृधे वृषा ॥

(५/१२)

विजयशीलः सर्वेषां विपद्धारधारकः, प्राणभूतोऽन्नदाता च स रक्षणसाधनै राष्ट्रं रक्षतु । सर्वे तस्यादेशं पालयन्तु । तस्य चिरायुषे दीर्घकालं यावद्देशसेवायै देवताः प्रार्थयेयुः । स्तवनकर्ता, सीमितविद्यावैभवः काङ्करो मन्त्रद्रष्टा वैशद्येन राष्ट्रपते राष्ट्रकार्याणि गुणांश्च ज्ञातुं वर्णयितुं च न समर्थः । राष्ट्रपतिः सर्वाः स्वराष्ट्रपरराष्ट्रवार्त्ता जानाति । स कृतज्ञ उदारोऽसाधारणश्च । अतो मन्त्रद्रष्टा तं स्तौति-

पते कथाते तवसो वरांसि मन्दो गृत्सस्य वेददधि क्षितौ ।

चेतिष्ठं सहस्रसां दमूनसं नमो वाचः स्तुवतो मे सचन्ताम् ॥

(५/१४)

## लक्ष्मीः (१/१)

३७. लक्ष्मीः खलु सर्वविधवैभवदायिनी, परब्रह्मणो विष्णोः सदैवाभिन्ना वर्तमाना, तदुपश्लिष्टैव राजमाना, सर्वेषामभीष्टं वितरणशीला, सर्वान् गृहपत्नीव राष्ट्रोत्थानकर्मणि प्रेरयन्ती, सर्वेषामभ्युदयं विधात्री विद्यते । सा सर्वेभ्यः सुखं श्रेयः प्रयच्छतु-

उपो अदर्शि श्रीहरेर्वक्षो न लक्ष्मीर्बट् प्रियाणि नो ददाशति ।

गेहसन्न कर्मणीदीरयन्ती दादद्यतां चायमाना शमस्मै ॥

## विष्णुः (१/२-६)

३८. विष्णुः खलु आत्मबलप्रभावेण त्रिभिरेव पदैस्त्रैलोक्यममिमीत। भक्तजना व्रतोपासनादिकमाचरन्तः सत्येन मनसा तं भजन्ते । स लोकद्वयमसृजत् । सर्वत्र व्याप्तः सन्नपि वैकुण्ठाधिपतिरस्ति, कर्मतत्परान् जनान् विस्तृतेन बुद्धिज्ञानेन संयोजयति । तादृशं विष्णुं विपदाक्रान्तः भारतमुद्धर्तुमृषिरयमाह्वयति । असंख्याता जना अहर्निशमस्य

नामसङ्कीर्तनं कुर्वन्ति । ब्रह्मस्वरूपः, सर्वेषां पालनकर्त्ता, सुदर्शनचक्रेण सर्वेषां रक्षिता, कामानां पूरयिता स राष्ट्रनिःश्रेयसाय स्तूयते । स्तावकानां च प्रभूतश्रेयोविधानाय सोऽत्र भारते समवेतो भवेत्-

उरुगायाय बृहते बभ्रवेऽस्मै स्तोम उपश्रितोऽसत् स्वस्तये ।
अभि यस्य वृष्णेश्चक्रं प्रशास्ति स त्वं भूरि सचस्वा नः शर्मणे ।। १/४

भक्ताः परया भक्त्या तमलङ्कुर्वन्ति । चतुर्भुजस्य तस्य हस्तेषु शङ्खं, चक्रं, गदा, पद्म च शोभन्ते । स भक्तान् स्वकीयान् विज्ञानानुसन्धानं निर्भीकतां ब्रह्मज्ञानं चोपदिशति । ईदृशो मनोरथपूरकः सर्वसमर्थः स विष्णू राष्ट्रकल्याणाय याच्यते-

शुभन्ते यं जनयो न जनासो यस्य भ्राजन्ते हस्तास ऋष्टिभिः ।
यश्चास्माँ अभिशास्ति ब्रह्मणीह तमीशानं वृषणं शमीमहे ।।१/५।।

लोकैर्याच्यमानेनानुस्रियमाणेन तेन विष्णुना प्राणिनां कृते प्रशस्तः पन्था विहितः । अनादिः, सर्वस्य चराचरजगत उत्पादकः, भक्तजनैः पञ्चामृतेन स्नापितः स राष्ट्राय भारताय पुनरपि जगति स्वप्राबल्यं प्रदर्शयितुं प्रभूतमन्नं प्राणशक्तिं यौवनं च प्रदद्यात् । स विष्णुर्भगवान् भारतद्रोहिणां शत्रूणां सेनाः स्तभानः सर्वत्र च व्याप्तोऽभवत् । लक्ष्मीस्तं श्लिष्यन्ती शोभते, आनन्दञ्चानुभवति । अयं विष्णुः पूर्ववत् साम्प्रतमपि भारतीयानां रक्षां विदधात्विति प्रार्थयते ऋषिरयं काङ्करमहाभागः ।

३९. राष्ट्रवेदे स्तुतानां समुपवर्णितानां च देवतानां वर्णनेनोपरिप्रस्तुतेनैतदनुमातुं तु सुकरं यदत्र देवतानां परिकल्पः पौराणिकं देवपरिकल्पमनुसरति । अत्र वैदिकदेवतानां परिकल्पो न लक्ष्यते । देवतासु जडत्वचेतनत्वयोः कोऽपि भेदोऽत्र न दृश्यते । सर्वासां देवतानां पृथक्-पृथक् सत्तास्ति । ताः सर्वा एवालौकिकशक्तिसम्पन्ना मानवेभ्यः सुखादिप्रदाने समर्थाः सन्ति ।

४०. लक्ष्यमनुसृत्यैव मानवानां रचनाः प्रवृत्ता भवन्ति । पुराणानामाविर्भावात् प्रभृति वैदिकान् भावान् पौराणिके विग्रहे प्रस्तुत्य पौराणिकमतानां प्रामाणिकत्वं वेदानुकूलत्वं च प्रदर्शयितुं प्रयासः प्रारब्धः । अस्मिन्प्रयासे एतत्तु स्वाभाविकमासीद् यद् वैदिकभावानां मौलिकं स्वरूपं परिवृत्तिं गच्छेत् । तदेवात्र राष्ट्रवेदेऽप्यस्मन्मतेनास्ति । एतदेव ग्रन्थकारस्य-र्षेर्लक्ष्यं राष्ट्रवेदस्य रचनायाः प्रतिभाति । ग्रन्थकार ऋषिः श्रीनवल-किशोरकाङ्करः ग्रन्थोपसंहारानुसारं शुक्लयजुषो माध्यन्दिनशाखाया अनुयायी, श्रौतस्मार्तविधानधीः, वसिष्ठान्वयो यज्वा, गौडधरामरो जयपुरीयः, मधुसूदनशर्मणोऽधिगतश्रुतिशास्त्रसारो राष्ट्रवेदलेखन-पूतलेखनीक आर्षचक्षुषा दृष्टे राष्ट्रवेदे स्वकीये लक्ष्ये परमसफलो जातः । आशास्यते सम्भाव्यते च यत्तस्य एतादृशा अपरे वेदा अपि यथासमयं प्रकाशिताः विद्वत्सु समादृताश्च भविष्यन्ति यैः काङ्करर्षेर्गुरोर्मधुसूदन-महाभागस्य गुरोः पण्डितशिवकुमारस्याभिलाषः पूर्तिं प्रानुयात्, पौराणिक-मातानां पुष्टिर्दयानन्दस्य महर्षेर्वैदिकप्रतिपादनानां प्रचारस्य च प्रत्यक्षमप्रत्यक्षं वा निराकरणं च सुसिद्धे भवेताम् ।

---

१. म० म० नवलकिशोरकाङ्करः, काङ्करार्षेयो राष्ट्रवेदः, आत्मनिवेदने, ङ-च-पृष्ठयोः ।

२. तत्रैव, ङ पृष्ठे ।

३. राजस्थानपत्रिकायाः २०/७/१९८६ अंके रविवारीये परिशिष्टे 'गुलाबी नगरी के विलक्षण गुरु शिष्य' इति लेखे ।

४. राष्ट्रवेदस्य भूमिकायाः 'ख' पृष्टे ।

५ सुधीरकुमारगुप्तस्य 'वेदभाष्यपद्धति को दयानन्द सरस्वती की देन' इति ग्रन्थस्य ३२ परिशिष्टे विवरणं द्रष्टव्यम् ।

६. ऋग्वेदीय १०/७१/२ इति मन्त्रस्य भागोऽयम् ।

७. राष्ट्रवेदे, १३० पृष्ठे ।

# 'धन्योऽहं धन्योऽहम्' एकः संक्षिप्तः परिचयः

प्रो0 सी0 टी0 केंघे

अर्वाचीननाटकेषु यद् विशिष्टतमं नाटकं 'धन्योऽहं धन्योऽहम् इत्याख्यं स एव विषयः अस्य लेखस्य । संस्कृतसाहित्यं पंडितराज-जगन्नाथान्तमेव इति यो भ्रमः तस्य निरासः ईदृशीभिः कृतिभिः भवति इत्यवधार्यम् । अभिजातं साहित्यमद्यापि संस्कृते प्रवर्तताप्रख्यात-मराठीनाटकलेखकेन आचार्यअत्रेसंज्ञकेन यत् 'तो मी नन्हे च' इत्याख्यं मराठीनाटकं लिखितं यस्य च परस्सहस्राः प्रयोगाः मराठी-रङ्गमञ्चे प्रदर्शितपूर्वास्तस्यानुकरणमस्मिन्नाटके वर्तते । विषयस्तु सर्वथा गंभीरः। तस्य नाटकस्य विषयात् सर्वथा भिन्नतमः । अत एव संस्कृत-नाट्यपरम्परायां नितरां क्रान्तिकारकमिदं नाटकं केवलं स्वातंत्र्यवीर-सावरकरमेव विषयीकरोति । अत्र संधिसंध्यंगादि नितरां गौणमेव न केवलम्, अपि तु व्यर्थमेव । तादृशः प्रयासः कर्तुं तु शक्यते । मराठीनाटकसमीक्षा यथा क्रियते तथैव इदं नाटकं समीक्षितुं शक्यम्।

मराठीनाटके कीदृशी समीक्षापद्धतिरिति चेत्, पाश्चात्त्य-साहित्यसमीक्षाप्रधाना इति ब्रूमः । प्रारम्भ एव अस्य नाटकस्यामुखेन, किन्तु न तत् संस्कृतनाट्यशास्त्रीयम् आमुखं, आमुखानन्तरं फ्लेशबैक-पद्धत्या सावरकरचरितं दृश्यकाव्यविषयीकृतमत्र तत् समग्रमेव उदाह्रियते । अत्र आमुखम्-

## आमुखम्

(स्थानम्: दिल्ल्यां लाल-किल्ला-संज्ञके स्थाने न्यायालयः । विनायकराव-सावरकरः अन्ये च अभियुक्ताः स्वे स्वे स्थाने उपविष्टाः अन्योन्य-संभाषणपराः दृश्यन्ते । सावरकराणाम् आयुः ६५ वर्षाणि । अङ्गे

कृष्णवर्णःकोटः, शिरसि वृत्ताकारा टोपी । समीपे छत्रम् । द्वि-त्राः अधिवक्तारः । सर्वे न्यायमूर्तीनां प्रतीक्षापराः । ततः पञ्जीकरः- 'सावधानम्! न्यायमूर्ति-महोदयाः आगच्छन्ति' इत्युक्त्वा जनान् सावधानान् करोति । ततः प्रविशन्ति न्यायमूर्ति-महोदयाः । सर्वे उत्थाय अभिवादनं कुर्वन्ति । न्यायमूर्तयः विरोऽवधूय तत् स्वीकुर्वन्ति, ततश्च स्थानपरिग्रहं कुर्वन्ति । तदनन्तरं सर्वे स्वे स्वे स्थाने उपविशन्ति ।)

**न्यायमूर्तिः-** पूर्वेद्युः अभियोजकानां भाषणम् असमाप्तम् अस्ति । अस्मिन् अभियोगे सप्तमक्रमाङ्कः विनायक-दामोदर-सावरकर इत्यस्मिन् अभियुक्ते आरोपस्थापनपरं प्रतिपादनं ह्यः कार्यसमाप्ति-वेलायाम् अभियोजकाः कुर्वन्तः आसन् । तैः अवशिष्टं स्वीयं प्रतिपादनम् अधुना आरब्धव्यम् ।

**अभियोजकः-** माननीयाः न्यायमूर्तिमहोदयाः ! अस्याः गान्धीहत्यायाः उपजापे अस्य अभियुक्तस्य यत् स्थानम् अस्ति तत् अस्माभिः पूर्वेद्युः प्रदर्शितम् अस्ति । साक्ष्यादि-तत्तत्-प्रमाणपुरस्सरम् अस्माभिः प्रस्थापितम् अस्ति यत् हत्याकाराणां गान्धी-हत्या-संकल्पः सावरकराणां न कवेलं विदितः आसीत्, स तैः प्रोत्साहितोऽपि आसीत् । तेषां सर्वेषां प्रमाणानां विस्तरेण पुनरुक्तिम् अकृत्वा तेषां केवलम् उपसंहारं कुर्मः । आवश्यक-प्रमाणबलेन अभियोजक-पक्षेण स्थापितम्-पक्षेण स्थापितम् अस्ति यत् सावरकराणां तत्त्वज्ञाने शास्त्राचारस्य निषेधः नासीत् । अहिंसायाः साग्रह-प्रतिपादनार्थं तैः गान्धीजीनां तीव्रा आलोचना कृताऽस्ति । गोडसे तथा आपटे इत्युभावपि अभियुक्तौ सावरकराणां दीर्घपरिचितौ स्तः । तयोः तैः सह पत्रव्यवहार आसीत् । तयोः 'हिन्दुराष्ट्र' संज्ञके वृत्तपत्रे मुखपृष्ठे सावरकराणां चित्रं सदैव वर्तते । न हि स्वगुरोः आज्ञाम्, अनुज्ञां समादेशं वा विना एतौ अभियुक्तौ इमां हत्यां कुर्याताम् । न केवलं तर्कमात्रम् इदम् । अस्य संपुष्टिकराणि प्रमाणानि उस्थापितानि सन्ति । अभिनेत्री बिम्बा इत्यस्याः साक्ष्येण प्रमाणितम् अस्ति इदम्, यत् हत्यायाः पञ्चदशदिनपूर्वम् आपटेप्रभृतयः सावरकर-सदनं गताः । बडगे इत्यस्य साक्ष्येण इदं प्रमाणितम् अस्ति यत् न्यूनतो न्यूनं द्विवारम् अभियुक्ताः सावरकरैः सह मिलिताः। हत्यायाः प्रेरणा सावरकर-सकाशात् प्राप्ता, तैश्च एतत्

कार्यार्थम् आशीर्वचनमपि प्रयुक्तम् इति एतत्साक्ष्यबलेन सिद्धमस्ति । अस्य कथनस्य उपबृंहणं प्रा0 जैनानां साक्ष्येण कृतमस्ति । अतः गान्धीहत्यायाः उपजापे सावरकराः सहभागिनः आसन्, तेषां प्रेरणया इयं हत्या निष्पन्ना, तेषाम् अयम् अपराधः सिद्धोऽस्ति इति अभियोजकपक्षः मन्यते ।

(उपविशति ।)

**न्यायमूर्ति-** अभियुक्तस्य अधिवक्ता इदानीम् अभियुक्त-समर्थन-परम् अभिभाषणं करिष्यति ।

**पञ्जीकरः-**माननीयाः न्यायमूर्तिमहोदयाः । अभियुक्तः स्वयमेव स्वीयं समर्थनभाषणं कर्तुमिचछति ।

**न्यायमूर्तिः-**भवतु । अनुमन्यामहे ।

**विनायकः-** (स्वस्थानादुत्थाय) माननीयाः न्यायमूर्तिमहोदयाः ! अस्मिन् अभियोगे ये अपराधाः मयि आरोपिताः सन्ति न तेषाम्एकोऽपि मया कृतोऽस्ति । सर्वेऽपि ते आरोपाः सर्वथा निष्प्रमाणाः निराधाराश्च सन्ति । मयि आरोपितानाम् अपराधानां स्थापनार्थम् अभियोजकैः यानि प्रमाणानि उपस्थापितानि सन्ति तेषाम् अप्रमाणत्वं, प्रमाणाभासत्वं च अहम् अग्रे सविस्तरं दर्शयितैव अस्मि । नासीत् मम गान्धीजीभिः सह किमपि वैरं, यदर्थम् अहं तेषां हत्यार्थं कमपि प्रेरयेयम् । मतभेदे सत्यपि आवयोः वैयक्तिकाः संबन्धाः स्नेहपूर्णाः आसन् । चत्वारिंशत्-वर्षेभ्यः पूर्वम् अष्टखिस्ताब्दे लण्डननगरे ते अस्माकं भारतभवने उषिताः आसन् । अन्यतरस्यां मम सभायां तैः सभापतित्वमपि स्वीकृतम् । तदानीम् आवयोः संबन्धाः मधुरा आसन् इति गान्धीजीभिरेव लिखितमस्ति । अष्टाविंशति-खिस्ताब्दे अहं रत्नागिरौ स्थानबद्धः आसम् । तदानीं गान्धीमहोदयाः मम गृहमागताः, आवयोः सुखसंवादः संजातः, स्नेहसंबन्धश्च पुनर्नवीभूतः । तेषां प्रायोपवेशनकाले मया चिन्ता प्रकटिता आसीत् । चतुश्चत्वारिंशत्-खिस्ताब्दे कारागारात् मुक्तानां तेषां मया अभिनंदनं कृतम् । तेषां धर्मदाराणां कस्तूरबानां निधनोत्तरं मया गान्धीजीभ्यः सान्त्वनपरः तन्त्रीसदेशोऽपि प्रेषितः । किं बहुना गान्धीजीनाम् अकल्पिताम् आघातकरीं च हत्यां श्रुत्वा मया सपद्येव तस्याः धिक्कारकरं पत्रकं प्रकाशितम् । सर्वमपि इदम् अभिलेखितमस्ति । गान्धीमहोदयानां मम च

अन्योन्यसंबन्धस्य योऽयम् इतिहासः मया साररूपेण कथितः, तस्य इदमेव प्रयोजनम् यत् सत्स्वपि वैचारिकेषु मतभेदेषु न मम मनसि तान् प्रति कोऽपि विद्वेषः आसीदिति अत्रभवन्तो विदांकुर्वन्तु । नाहमनेन केवलेन इतिहासकथन-बलेन आत्मनः निरपराधित्वं प्रमाणयितुमिच्छामि । मया पूर्वमेव उक्तमस्ति यत् अभियोजकानाम् एकैकं प्रमाणम् अहं खण्डयितास्मि । तत्पूर्वं तु इदमेकं विचारणीयम् । अस्मिन् आत्मसमर्थननिवेदने आत्मनः वैयक्तिकं जीवितं संक्षेपेण निवेदयितुम् इच्छामि । येन मम सामाजिकं स्थानं स्पष्टीभवेत्, इदमपि च व्यक्तीभवेत् यत् नाहं कोऽपिं अग्निगिलः, उन्मत्तको वा, अपि तु संभावितः सज्जनः देशस्य च नम्रः सेवकः अस्मि

पञ्च-ख्रिस्ताब्दे मुम्बई-विद्यापीठस्य बी0 ए0 परीक्षा मया उत्तीर्णा । अनन्तरवर्षे श्यामजीकृष्णवंर्मभिः प्रदत्तां शिष्यवृत्तिं स्वीकृत्य अहं आङ्ग्लभूमिं गतः । तत्र लण्डन-नगरे ग्रेज्-इन इत्यत्र 'बेरिस्टर' पदव्यर्थं मया विधिः अधीतः । नागपूर-विद्यापीठेन मह्यं 'डाक्टरेट्' उपाधिः प्रदत्तोऽस्ति । मया मराठी तथा आङ्ग्ली इत्येतयोः भाषयोः कविताः, नाटकानि, निबन्धाः, प्रबन्धाश्च इत्यादि प्रकारकं भूरि ग्रन्थलेखनं कृतमस्ति। तन्मध्याच्च अनेके कवितासङ्ग्रहाः, निबन्धाः, नाटकानि च विद्यालय-महाविद्यालयेषु अभिलेखेषु उपलभ्यते । मम आयुषः पञ्चषष्टिः वर्षाणि व्यतीतानि सन्ति । इदं दीर्घं, घटना-बहुलं च जीवितमद्य, अस्याम् अवस्थायाम् अपि, मनश्चक्षुषा साक्षात्कुर्वता मया इदं निःशङ्कं वक्तुं शक्यते यत् राष्ट्रोद्धारं विहाय नासीत् मम कोऽपि जीवितोद्दशः । श्यामजीकृष्णवर्मभ्यः मया प्रहिते आवेदनपत्रे वर्तमानम् एकं सूत्रभूतं वाक्यमेव अत्र उद्धरामि । मया तत्र उक्तमासीत्-'बाल्यात् प्रभृति अद्य यावत्, एकमेव वस्तु मया स्वप्ने दृष्टम्, जागरिते च निदिध्यासितम्, तन्नाम नष्टं राष्ट्रस्वातन्त्र्यंः तस्य च पुनर्लम्भनोपायः ।' समग्रं जीवितम् मया इदमेव कृतम्, समग्रं जीवितं समग्रं जीवितं मया मनश्चक्षुषा साक्षात् क्रियमाणं समग्रं जीवितम्---

(शनैः रङ्गमञ्चे अन्धकारः ।)

इति आमुखम् ।

इत ऊर्ध्वं रङ्गमञ्चः प्रचलति । तदिदमपि मराठीरङ्गमञ्चस्य वैशिष्ट्यम् । रङ्गमञ्चे प्रचलिते सति यद्दृश्यं सामाजिकानामग्रे आयाति तदेव प्रथमाङ्के प्रथमदृश्यत्वेन दर्शितं नाटककारेण । तत्र च सावरकरजन्मस्थानं नासिक्यभगूरसंज्ञकं संमुखं भवति । तत्र च बालक्रीडा नायकस्य विनायकस्य वर्णिता विद्यते । क्रीडायां नामान्यपि महाराष्ट्रीयानि तथैव सुरक्षितानि वर्तन्ते । न तेषाम् संस्कृतीकरणे कश्चित् प्रयासः । रङ्गे प्रचलिते सति विनायको पञ्चदशवर्षीयो दृश्यते । तदिदमेव फ्लैशबॅक अर्थात् पूर्वघटनानां वर्णनं कथ्यते । सखिनां नामानि अण्णा, भिम्या, राजा इत्यादीनि महाराष्ट्रभाषायां प्रचलितानि । क्रान्तिकार्यं गीतरचनादि च विनायकस्यास्मिन् दृश्ये वर्णिते । सुविस्तृतमिदं दृश्यम् ।

द्वितीयदृश्यार्थं पुनरपि रङ्गमञ्चः प्रचलति । नासिक्ये सावरकरगृहे च 'मित्रमेलापक'स्य वर्तते विचारविमर्शोपवेशिका । स्वातन्त्र्यविषये प्रखरा विचारा अस्यां प्रकाश्यन्ते । अत्र गीतरचनापि मधुरा वर्तते । प्रथम-द्वितीयदृश्ययोरन्तरं षड्वर्षात्मकम् ।

अथ पुनरपि दृश्यं तृतीयं रङ्गमञ्चप्रचलनेनैव पुर आयाति । अत्र सावरकरविनायकाग्रजः बाबारावः प्रविशति । सोऽपि विनायकस्य विशालसभयाभिभूतो भवति । विनायकोऽपि तद्दर्शनेन प्रीतो भवति । शिवाजीविषयकाणि विविधान्युद्बोधकानि गीतानि गायन्ते । सावरकरः आङ्ग्लभूमिं गन्तुं प्रवृत्तो भवति । अत्रास्य दृश्यस्य द्वितीयदृश्यस्य चान्तरं सप्तवर्षात्मकं वर्तते । एवं समग्रस्य जीवनस्य नाट्यदर्शनार्थं कविः प्रवृत्तो भवति । प्रथमोऽत्राङ्कः समाप्तिं गतः ।

द्वितीयेऽङ्के सावरकर आङ्ग्लभूमौ दृष्टिपथमायाति । प्रथमदृश्ये साधारणं सम्भाषणं दृश्यते । द्वितीये दृश्ये सागरतीरे प्रकृतिसौन्दर्य सम्भापषणद्वारा व्यज्यते । अत्रैव सावरकरो मातृभूमिं स्मरति । तस्य पत्पद्धति गीतस्य संस्कृतानुवादो दीयते-

नय पुनरपि मां, प्रापय मातृभुवं मे ।

सागराकुला प्राणा मे ।। इति

द्वितीयेऽङ्के द्वे दृश्ये १९०९ काले एव दर्शिते । तृतीयं दृश्यं ख्रि० १९११ वर्षम् । अत्र सावरकररचितानां विविधगीतानामनुवादोऽपि दृश्यते। अत्र सावरकरः तस्य पत्न्या सह दृष्टिपथं प्राप्नोति । 'माई' इत्याख्यायाः सावरकरपत्न्याः चरित्रचित्रणं नायिकात्वेन अतिमधुरं चित्रितं दृश्यते । अत्र माई ब्रूते, ''जानाति आर्यपुत्रः अग्नौ अपि हसितुं हासयितुं च ।'' अत्र तस्याः ज्येष्ठायाः अर्थात् सावरकराग्रजबाबाराव इत्याख्यस्य पत्न्याः अपि प्रवेशः । सा माईं प्रतिवदति, ''कियान् गभीरः आशयः---अमरा वंशावलिस्सा योच्छिन्ना देवकारणात् । माई, अहो ते भाग्यम् । यया एतादृशो महापुरुषः पतिर्लब्धः। तेन सहैव महान् भावोऽपि-

''महतः कर्मणो दीक्षा गृहीताऽपेक्षते द्वयम् ।
माहात्म्यं मेरुसंकाशं वर्तनं चर्षिसंमतम् ॥''

अहो गांभीर्यं रचनायाः यत्र वश्यवाचः कवेर्भवभूतेः स्मरणं भवति । अग्रे भविष्यत्सूचनापि वर्तते । चतुर्थे दृश्ये डोंगरीकारागारस्य कक्षे विनायकरावस्य दर्शनं भवति । स स्वात्मानं संबोधयति 'अधुना कारागृहं तव गृहीभूतम् ।' अतिदीर्घमत्र स्वगतभाषणं हम्लेटवत् । वार्डरोऽपि अत्र पात्रं वर्तते । माई सावरकरं द्रष्टुम् आगच्छति । सा वक्ति ''अपि भारसहाऽहम् अस्य दिव्यस्य ध्येयवादस्य ?'' अत्र सर्वत्र सावरकर-काव्यानां मराठीतः यथासम्भवं समवृत्तोऽनुवादः । विनायकः स्वगतं वक्ति

''वयम् अन्योन्यम् आपृच्छामहे ।
विधातृविहितां स्वां स्वां भूमिकां नाटयितुम् ॥
यथा कस्मिंश्चित् नाटके भारतीये-
सर्वे नटा अन्तिमेऽङ्के समेयुः ।
एवं वयं-ये नटा सर्वे-
समेताः स्यामेतिहासस्य मञ्चे ॥
सामाजिकीभूय मनुष्यजातिः
सर्वान् अस्मान् अभिनन्देत् कृतज्ञा ।

आनन्दोत्थस्तालशब्दश्च यस्या
दिशः सर्वाः पूरयेत् चान्तरिक्षम् ॥

तावत्कालपर्यन्तम्, प्रियवयस्याः ! 'नमस्ते' 'नमस्ते' !

अपि च पश्यत, पश्यत
इयं समुत्तिष्ठति हिन्दुमाता
दीप्तेन गर्वोन्नतमस्तकेन ।
नौभ्यो यथा दीपगृहं समुद्रं
विश्वान् जनान् मार्गमिहादिशन्ती ॥
उत्तिष्ठत हुतात्मानो वीराः सत्पुरुषास्तथा ।
यत्राभूत् देहपातो वस्तद् युद्धं ह्यद्य निर्जितम् ।
तानि मे अस्थीनि, यत्र कुत्रापि पतितानि
श्रुत्वैव इमां घोषणाम्
तेजसा इव अभिविज्वलिष्यन्ति
चैतन्येन इव प्रस्फुरिष्यन्ति ।
तावत्कालपर्यन्तम् स्निग्धा वयस्याः ।
'नमस्ते', 'नमस्ते' ।

एवं च अत्रैवान्तं गच्छति द्वितीयोऽङ्कः ।

महतः कालस्य व्यत्ययानन्तरं यस्मिन् सावरकरेण कृष्णजलास्थान-बद्धतादिकमनुभूतमासीत् सहसा नाटके स्वातन्त्र्यदिन (15 Aug 1947) समारोह-वर्णनं मुम्बय्यां सावरकरसदने प्रदर्शितं लेखकेन। तत्र नास्ति सावरकरस्य सन्मानः, न च सावरकरस्य संतोषः खण्डितस्वातन्त्र्यप्राप्तौ। ततोऽपि आसीत् तस्य संवादः मित्रगृहजनादिकैः, आसीत् तस्य सन्देशः, "किं तु अद्यापि अवशिष्यते इव सामाजिकस्य ऋणस्य । अद्यापि जनाः प्रबोधनीयाः सन्ति । हिन्दुत्वनिष्ठा जागरणीयाऽस्ति, जागरणीया चास्ति विज्ञाननिष्ठा । अद्यापि प्रदेयोऽस्ति मन्त्रः हिन्दूकुरूत राजनीतिम्, सैनिकीकुरुत च हिन्दु-जगत् । अप्रियस्यापि पथ्यस्य वक्तुर्भूमिका अद्यापि

अभिनेयास्ति (पुस्तकम् अधो निधाय)-बालाः गच्छत । कथयत तान् जनान्। एषोऽहम् आगतः । (निष्क्रान्ताः सर्वे)

द्वितीये दृश्ये सावरकरगृह एव 5-2-1948 कालः, वातायननानां केचित् काचाः भग्नाः दृश्यन्ते । नेपथ्ये जनानां कोलाहलः श्रूयते । द्वित्राः पाषाणक्षेपाः: । ततः प्रविशति ससंभ्रमं विश्वासः ।)

प्रथमेण दृश्येन अस्य विरोधो लक्षणीयः ।

चतुर्थेऽङ्के आमुखस्याग्रे प्रदर्शनं क्रियते नाट्यकारेणातिचतुरेण । तदिदं प्रथमं दृश्यम् । तस्य रङ्गसूचना पठ्यताम् ।

(जवनिकायाः उत्क्षेपोत्तरं कांश्चित् क्षणान् रङ्गमञ्चे अन्धकारः । ततः शनैः शनैः प्रकाशः । आमुखदृश्यम् अग्रतः सरति ।)

अग्रे सावरकरः वक्ति, "तदेवं मम समग्रं जीवितं देशार्पितम् आसीत्। एतत् सर्वम् अभिसमीक्ष्य, मम सामाजिकं स्थानं पञ्चाशत् वर्षाणि मया देशार्थं कृतं स्वार्थत्यागं सोढांश्च कष्टान् अवधार्य, सत्स्वपि वैचारिकेषु मतभेदेषु गान्धीजीनां मम च अन्योन्यसबन्धाः स्नेहपूर्णा आसन् इति अविस्मृत्य वैयक्तिकजीवने सदैव स्वातन्त्र्योत्तरं च राष्ट्रियजीवनेऽपि वैधाः शान्ततापूर्णाश्च मार्गाः मया पुरस्कृताः सन्ति इति आलोच्य, मम प्रतीपम् उपस्थापितं सर्वमपि प्रमाणजातं कर्णाकर्णिरूपं वा किंवदन्तीरूपं वा तर्करूपं वा निरपेक्षेण प्रमाणान्तरेण असमर्थितम् । मां निष्कलङ्कं विमोचयितुम् आज्ञा प्रदातव्या इति अहं सविनयं प्रार्थयामि (उपविशति ।)

(शनैः शनैः रङ्गमञ्चे अन्धकारः । ततः कैश्चित् क्षणैः अन्धकारे वृत्तपत्र-विक्रेतुः घोषणा-'गान्धीहत्यायाः अभियोग-निर्णयः । सावरकराणां निर्दोषमुक्तता । गान्धीहत्यायाः अभियोग-निर्णयः । सावरकराणां निर्दोषमुक्तता ।')

शेक्सपियरत्रासदीयस्वगतभाषणवत्अतिलम्बमिदं स्वगतभाषणं तमेव शेक्सपियरनामकं जगद्विख्यातम् आँग्लभाषासर्वश्रेष्ठनाटककारं स्मारयति ।

अथ द्वितीये दृश्ये स्थानम्-सावरकर-सदनम् । कालः १९६२-६३ । ततः प्रविशति सावरकराणां कार्यवाहः शान्तरामः । )

अस्मिन् दृश्ये अतिविस्तृते समापितमिदं नाटकम्'-

माई-गच्छतु आर्यपुत्रः निजायै साधनायै । अहमपि निजां साधनाम् आरभे । (अर्धावशिष्टं गलपट्टं वयितुम् आरभते ।

विनायकरावाः- 'धन्योऽहं धन्योऽहं कर्तव्यं मे न विद्यते किंचित् ।

धन्योऽहं धन्योऽहं प्राप्तव्यं सर्वमद्य संपन्नम् ।।

इति श्लोकं गुञ्जन्तः शनैः शनैः सनिश्चयं च सोपानम् आरोहन्ति । (पटाक्षेपः)

तदिदमतिगभीरं नाटकं चाधुनीयम्
लिखितमपि च प्राच्ये भाण्डगाराख्यमूले ।
जगति च प्रथितेऽस्मिन् पुण्यलीलासलीले
विविधविधिविधाभिः शोभितं राजतेऽद्य ।।

प्राच्यप्रतीच्यनाटकनाट्यशास्त्राद्यालोडनपरेणभाण्डागारसंशोधन-मन्दिराध्यक्षचरेण बालकृष्णपुत्रगजाननेन पळसुळे इत्युपाह्वेन विरचितमिदं नाटकं विजयतेतमामस्मिन् भारतवर्षेऽर्वाचीनसंस्कृते ।

**इति श्रीचिन्तामणिविरचितः 'धन्योऽहं धन्योऽह' नाटकपरिचयोऽतिसंक्षिप्तः समाप्तः ।**

# डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी का संस्कृतकाव्य

डॉ0 प्रेमनारायण द्विवेदी

आधुनिक संस्कृत साहित्य के संदर्भ में मैंने महाकवि श्री रेवाप्रसाद द्विवेदी ''सनातन'' कृत महाकाव्य ''सीताचरितम्'', 'प्रमथ' नवीन कवितासंग्रह एवं ''शतपत्रम्'' आदि कृतियाँ ली हैं ।

''सीताचरितम्'' संवत् २०२५ में प्रकाशित कवि कृत आधुनिक महाकाव्य है। इसकी भाषा मधुर एवं प्राञ्जल है, वर्ण्य विषय मे इसकी अपनी विशेषता है । प्रचुर शब्द भण्डार, सहज अलंकारों का निवेश, नवीन कल्पना, नवीन शब्दावली प्रकृति का मानवीकरण, राष्ट्रीयता, नारीजागरण एवं समाजसेवा आदि का निवेश विद्वान् कवि की बहुमुखी प्रतिभा एवं गंभीर ज्ञान के परिचायक हैं ।

इस महाकाव्य में करुण रस प्रधान है, अन्य रस उसके अङ्ग जिसका निर्वाह कवि ने अन्त तक किया है ।

इस महाकाव्य में १० सर्ग है, श्लोक संख्या ६९४ है । इसमें भगवान् राम के अयोध्या लौटने के बाद राजसिंहासनारूढ होना, सीता के दूषणसंशय पर सबका दुःखी होना, सबके ही समक्ष श्री राम की एवं वंश की कीर्तिपताका की रक्षा के लिये सीता द्वारा स्वयं वन जाने का प्रस्ताव करना, रामाज्ञा से लक्ष्मण द्वारा सीता को वन में भेजना, वहाँ प्रकृति के आश्रय में पुत्रों का जन्म, वाल्मीकि द्वारा उन्हें अपने आश्रम में लाना, शिक्षा, यज्ञाश्वरक्षण प्रसंग में लक्ष्मणपुत्र चन्द्रकेतु और लव-कुश का युद्ध, ससैन्य चन्द्रकेतु की पराजय, शम्बूक को तपस्या से रोकने के लिये आने के प्रसंग में राम का वाल्मीकि आश्रम में आना, लव-कुश का परिचय, वाल्मीकि का संकल्प मात्र से साकेतवासियों एवं जनक आदि को आश्रम में उपस्थित करना, सीता की निर्दोषता सिद्ध करना । अन्त में सीता का ध्यान द्वारा अपना शरीर त्यागने तक की कथा है ।

कवि अपने को काव्य मार्ग में कवि कुलगुरु कालिदास के प्रमुख शिष्यों में मानते हैं- **''शिष्यः कश्चित् कविकुलगुरोः कस्यचित् काव्यमार्गे''** कविकुलगुरोः कालिदासस्य तद्गुरोर्वाल्मीकेः, तच्छिष्यस्य भवभूतेश्चेत्यनुसंधेयम्, नतु कस्यचिदन्यस्य कालिदासवदभिव्यक्तेरिहोपयोगात् । काव्य के अनुशीलन से यह बात

सत्य प्रतीत होती है । महाकाव्य के प्रारम्भ का श्लोक यह है-

विभूष्य पौलस्त्यशिरोभिरैश्वरं वपुर्भुवं तत्सुतया तथा निजम् ।

वनव्रतान्ते भगवान् रघूद्वहः सहानुजाभ्यां नगरं स्वमीयिवान् ।।१

दशानन के शिर रूप कमलों से अष्टमूर्ति की विग्रह स्वरूप पृथ्वी को विभूषित कर और तत्सुता सीता से अपने को सुशोभित कर भरत और लक्ष्मण से साथ वन व्रत समाप्त कर राम अयोध्या नगर मे आ गये । इसके कुछ आगे राम का वर्णन यों है-

तदुत्पलश्यामशुभं वनावधेः

शुचेरिवान्ते वपुरक्षिभिः पिबन् ।

पयस्विमेघप्रभमाप चातक-

व्रतानि साकेतनिवासिनां व्रजः ।।१/४

यहाँ वन की अवधि को ग्रीष्म माना है, उस की समाप्ति राम रूप मेघ आने से होती है, साकेतवासी चातक रूप होकर अपनी आँखों से राम को सतृष्ण देख रहे है । कवि ने सीता को मृणालिनी के समान वर्णित किया है । यथा-

तदोत्पलाक्ष्या नवनीतसोदरां विदेहपुत्र्यास्तनुवल्लरीं जनाः ।

रिपोर्महेभस्य करान्मृणालिनीं यथोद्धृतां वीक्ष्य मुदा निशश्वसुः। १/५

सीता उत्पलाक्षी एवं नवनीतवत् कोमल और उज्ज्वल एवं शत्रुकर से मुक्त होने के कारण करिकर से मुक्त मृणालिनी के समान है, उन्हें देखकर उन के कष्टों को ध्यान करते हुए प्रजाजन श्वास लेते है । पुनः देखकर प्रसन्न भी हैं । सीता के प्रति कौसल्या के उद्‌गार ये हैं-

स्नुषा स्वकीयामथ तां तनीयसीं व्रतेन पत्युर्नयनाम्बुभिर्द्रुता ।

उवाच माता ममतादयातटद्वये वहन्तीव सुवत्सला स्रुतिः ।। १/१५

क्षुते विधौ वामविधायिनि व्रतं सुताय मे स्निग्धमना न यात्यजः ।

कुलद्वयस्यापि सुरक्षितत्रपा त्वमेव वन्द्यासि शुभे ममाधुना ।।१/१६

अपने पति के व्रत के कारण दुबली हुई अपनी स्नुषा को देखकर वत्सला माता कौसल्या की आँखो से जल का स्रोत फूट पड़ता है जिसके ममता और दया दो तट है । वह कहती है-हे पुत्रि! भाग्य के विपरीत हो जाने पर भी पवित्र मन वाली तुमने पति के प्रति अपना व्रत नहीं छोड़ा, इसलिए दोनों कुल की लाज रखी है । तुम हमारी भी वन्दनीय हो ।

श्री द्विवेदी जी की आधुनिक रचना 'शतपत्रम्' नाम से है जिसका प्रकाशन १९८७ में वाराणसी से हुआ है। यह कविता विषयक संस्कृत पद्यशतक है, जिसमें यह दर्शाया गया है कि कविता क्या है-

कविता हृदयस्य कापि भाषा मुखरा मौनमयी वधूर्नवैव ।
नहि शक्तिरथो न तत्र भक्तिः प्रतिपत्तिस्तु समर्पणाय मार्गः ।। ७
कविता मणिपञ्जरे चिदाख्ये विधृता कापि शुकी हिरण्यवर्णा ।
अनुवादकला विचक्षणा या रटति स्वैरमहो रहःकथां नः ।।१०
कविता सुरभेः सुता सवत्सा ननु मैत्रावरुणस्य नन्दिनी सा ।
उपतिष्ठति या स्वतो मुहूर्ते विषमे दर्शयितुं प्रकाशमार्गम् ।।११
कविता शितिकण्ठकण्ठकूपाऽनलदाहप्रशमाय संप्रवृत्ता ।
अविमुक्तकिशोरभावलेखा प्रतिपच्चन्द्रकला रसैकमूर्तिः ।।१४
कविता नयनं शिवे तृतीयं कविता वक्षसि कौस्तुभो मुरारेः ।
कविता परितोऽभिसञ्चरिष्णौ पवमाने मधुसौरभस्य योगः ।।४३
कविता हृदयस्य वाक्यशेषः कथितेऽनुक्ततया प्रकाशमानः ।
कविता कविता कथा पुराणी न पुराणी न नवा, सुराङ्गना सा ।९५

कवि का ही हिन्दी अनुवाद-

कविता है हृदय का वाक्यशेष जो बचा रहता है अकथित, सब कुछ कह दिये जाने के बाद भी कविता एक पुरानी कथा है । सदा दोहराई जाती रहती है जो, पर न कभी पुरानी कहलाती और न नयी ही । कविता एक सुरबाला है ।

अन्तिम पद्य यह है-

मनुजः कवितात्मनैव धाम्ना मनुजत्वप्रतिपादने समर्थः ।
ऋगहो कवितैव संहितायां प्रथमायां प्रथमा मनोः प्रवृत्तिः ।

'प्रमथ' नामक ग्रन्थ कविकृत लघु काव्य-संग्रह है । इसमें ९ कविता शीर्षक है। यथा प्रमथ, चतुर्दशी, प्रलापाः, निसर्गः, किंनु करोमि, नमो विषाय, मृत्यो ! कस्त्वं काम तथा भावाः । प्रथम शीर्षक की कविता संस्कृत पत्रिका दूर्वा में भी प्रकाशित हो चुकी है । यह परमाणुयुगीन विभीषिका दिखलाती है । भगवान् शंकर से कवि का निवेदन है कि यह ताण्डव खेला नहीं है भगवन्!

भगवन्! नहि ताण्डवस्य वेला, ननु विज्ञानवधूः सकौतुकैव ।,
इयमद्य सयावका कथञ्चित् क्रमते कौतुकवेश्मने वराकी ।१

भगवन् कुरु ताण्डवं परन्तु प्रियया सार्धमहो न वीरभद्रैः ।
जगती वरवर्णिनीयमद्य शयनीयं भजते समृद्धरागा । २

भगवन् प्रहरस्त्वसौ द्वितीयो न तृतीयो न च स प्रदोषकालः ।
गजकृत्तिमिमां कथं दधासि विषधूमोऽयमुदेति नो तमिस्रा ।।३

'**चतुर्दशी**' कविता के श्लोक देखिये कितने मार्मिक हैं:-

यदि चर्म गजासुरस्य ते प्रतिसंध्यं नटनाय युज्यते ।
प्रदिशामि तदर्थमात्मनो मतिजाड्यं तमसोऽपि मेदुरम् ।। ५

अधिकं किमु वा ब्रवीण्यह भगवन्नस्मि चतुर्दशी परम् ।
तमसोऽपि कला विधोरिव प्रियतां ते शितिकण्ठ चेद् व्रजेत् ।।१४

आप शितिकण्ठ हैं अतः तमः कला भी स्वीकृत करने में समर्थ हैं ।
''**प्रलापाः**'' १०५ श्लोकों का लघुकाव्य है । यह भी व्यङ्ग्यपरक है यथा-

अयि लक्ष्मि कथं विमन्यसे मां ननु जानासि क एष को भवामि ?
अहमस्मि सुदर्शनं त्वदीशे पविरेकोऽस्मि तदग्रजे च भीष्मः ।। १

अर्थात् मैं विष्णु के हाथ का सुदर्शन हूँ और उनके बड़े भाई इन्द्र के हाथ का वज्र हूँ, लक्ष्मि, मेरा अपमान मत करो ।

**'निसर्ग'** लघु काव्य में ५१ श्लोक हैं- उनमे से एक प्रस्तुत है-

अहमस्मि महाशिवस्य शिष्यो रुचिरे ताण्डवनृत्तसंविधाने ।
भगवन् स षडाननः सुपर्णं मनुते मां प्रविहाय पन्नगारिम् ।। ४

**'किंनु करोमि''** में केवल ४३ श्लोक हैं । यथा-
प्रतिवत्सरमेव गौरियं मे हहहा तर्णकमेव संप्रसूते ।
न तु वत्सतरीं, हसन्ति सर्वे प्रतिवेशे प्रतिपन्थिनः क्व यामि ।। १

**''नमो विषाय''** में २५ श्लोक हैं जो अर्थगांभीर्य से युक्त हैं

कुम्भोद्भवेन च भवेन च यस्य गोत्रे
गात्रे च दर्शितचरा ननु नाशशक्तिः ।
तत्रापि यस्य महिमानुदिनं कुमारस्
तस्मै नमो वत विषाय परात्पराय ।।१

**''मृत्यो''** मे ५२ श्लोक हैं-

मृत्यो, त्वं खलु कः, प्रमीलनकला द्राघीयसी किं दृशोर्
दीव्यद्दीपदशार्चिषोः क्षणमितः किं विप्रयोगोऽसि वा ।
ब्रूहि प्रस्फुटमद्य मित्र भवसि त्वं किं चितागर्भयोः
सन्धिर्ज्ञातमहो नवीननटने नान्दीनिनादो भवान् ।।१

'कस्त्वं काम'' में २३ श्लोक हैं तथा ''भावाः'' में २६ श्लोक हैं । इन सभी में कवि की प्रतिभा, पाण्डित्य एवं कवित्व शक्ति का परिचय मिलता है । संस्कृत पत्रिका 'दूर्वा' में इनकी कविता प्रकाशित होती रहती है जो संस्कृत साहित्य की समृद्धि स्वरूप है ।

# श्रीनिवास रथ की कविता में कारुणिक प्रसंग

डॉ0 ओम्प्रकाश राजपाली

आधुनिक कवि श्रीनिवास रथ जी के नव गीत हमारी हृदयतन्त्री को झंकृत कर देते हैं। संस्कृत गीत के क्षेत्र में उन्होंने निजी शैली बनाई है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि गीति काव्य के उद्भव में करुण रस ही प्रधान है। सुख और दुःख इन दो भावों में से दुःख के भाव मर्म को जितना स्पर्श कर सकते हैं उतना सुखमय भाव नहीं। कवि का सुकुमार हृदय जितना करुण रस से ओत-प्रोत होता है सम्भवतः अन्य रस से नहीं। भवभूति जैसे कवि **'एको रसः करुण एव'**-- को प्रधान मानकर उसी में अपनी रचना करके अमर हो गये। 'उत्तररामचरितम्' कालजयी रचना हो गयी। **'नीरसतरुरिह विलसति पुरतः'** को काव्य न मानकर **'शुष्कः वृक्षः तिष्ठति अग्रे'** को काव्य मानने वाले रथ के नवगीतों में संगीतात्मकता की अधिकता, आत्माभिव्यक्ति, व्यक्तिगत विचार, भावोन्माद और आशा-निराशा की धारा अबाध रूप से बही है। उनकी कविता सुदीर्घ आत्मसंघर्ष से जन्मी है, अपने समय के देश और समाज की बदलती हुई परिस्थितियों से उपजी हैं। वे अपने समय की दुर्वह यन्त्रणाओं को मार्मिक रूप से प्रस्तुत करते हैं। श्रीनिवास रथ एक ऐसे कवि हैं जो बाल्यकाल से ही काव्य रचना अपने विद्वान् पिता के संसर्ग में करते रहे। कविता क्या है ? इस प्रश्न पर बहुत लम्बे समय तक रथ जी ने चिन्तन करके निष्कर्ष निकाला कि ''कविता वह होती है जो विद्वान् और निरक्षर दोनों के मन को आन्दोलित कर दे।'' इतने लम्बे आत्मसंघर्ष से उपजी उनकी कविताओं में निहित चिन्तन को सम्यक् रूपेण समझ पाना बहुत दुष्कर है और उस दशा में, जब कवि का मत है कि ''कविता की परीक्षा दो सौ वर्ष में होती है।'' कवि की संवेदना और अनुभूति कितनी गहरी है, उसका आकलन भी कम सरल नहीं है। कहाँ से, किस परिवेश से किस कथ्य को उन्होंने ग्रहण किया यह भी समझ पाना टेढ़ी खीर है। तथापि मैंने ग्राहक कल्पना का सहारा लेकर कवि की कविताओं के मार्मिक अंशों को लेकर उनसे सम्बद्ध अंशों की कल्पना करने का किञ्चित् प्रयास किया है।

कवि रथ की भावुकता एक क्रान्तिकारी समाजसुधारक और उपदेशक की भावुकता है-

जननीजनकसखीजनचिन्ता सजलनयनसम्प्रेषितदुहिता ।

श्वसुरसदनलोभानलदग्धा जीवितेशनिलयं निवेशिता ।।

किमिति सपदि नववधूविशसनं दैनन्दिनी प्रथा ?

दैनिक बनती जा रही कुप्रथाओं का मूलोच्छेदन साधारण कर्म नहीं है तथापि कवि की ये पंक्तियाँ जहाँ, ऐसी रूढ़ियों के पोषकों पर जो समाज के कोढ़ हैं, सीधा प्रहार करती हैं, लांछित करके उन्हें तिलमिला देती हैं, वहाँ सहृदय पाठकों के हृदयों को वेदना और टीस से आपूरित कर देती हैं । प्रतीत होता है कवि ने अपने आस-पास या संभव है कहीं कभी प्रत्यक्षतः नववधूहोलिकादहन को देखा होगा, उस नववधू के दुर्भाग्यशाली पिता के हाहाकार को समझ कर अपने हृदय में उतारा होगा, तभी उनके अन्दर से ये पंक्तियाँ निकली । हम देखते हैं कि हर परिवार, हर जाति और प्रत्येक समाज के जीने का अपना ढंग होता है । देश काल और मौसम के हिसाब से लोग जीते हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी कुछ रिवाज चलते रहते हैं । धीरे धीरे ये इतने रूढ हो जाते हैं कि बिना विवेक से हम उनको अपना लेते हैं । कुछ रूढ़ियों से, कुछ प्रथाओं से तो हम अनुशासित होते हैं परन्तु कुछ रूढ़ियाँ हमें मानसिक, शारीरिक और आर्थिक पीड़ा ही पहुँचाती हैं । जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव को हमने अनेक अनावश्यक रीति-रिवाजों में बाँध दिया है । कोई भी प्रथा जब आरम्भ होती है तब उसके पीछे तात्कालीन परिस्थितियाँ जिम्मेदार होती हैं किन्तु ऐसी प्रथाएँ जब बोझ बन जायें, सड़ गल जायें तो कुप्रथाओं में बदल जाती हैं । दहेज प्रथा उन्ही में से एक है जो कभी किसी सद्भाव को लेकर चली थी । आज उसका स्वरूप कितना विकृत हो गया है, सर्वविदित है । कितने उत्साह से, कितनी उच्चाकांक्षाओं से माता पिता अपनी पुत्री को, सखियाँ अपनी प्रिय सहेली को जहाँ 'जीवितेश' के यहाँ विदा करते हैं, वहाँ ससुरालपक्ष के दहेजलोभी दानव उस नववधू को कलहवधू का जामा पहनाकर भस्म कर देते हैं । माता पितादि ने कितनी हसरतों से भेजा था 'जीवितेश' (पति) के यहाँ, पहुँच गई ''जीवितेश'' (यम) के समीप । कैसी विडम्बना है! कल्पना कीजिए, उस पिता की वेदना की, प्रतीत करें उसकी पीड़ा को जिसने कन्या विवाह के लिए अपने मकान तक को बेच दिया होगा । उस नवविवाहिता दग्धा की अनुभूति कीजिए जिसका एक नया जीवन आरम्भ होने वाला था । कवि ऐसे स्थान पर लाकर छोड़ देता है जहाँ छटपटाहट होती है ।

ऐसी घटनाएँ अब रोजमर्रा की जिन्दगी बन गई हैं । जो न जाने कितने परिवारों की शान्ति भंग कर चुकी हैं । **जननीजनकसखी**---इन पंक्तियों में समाजहित के लिए समुचित चेतनता है ।

कविता चेतन अचेतन दोनों सीमाओं में प्रविष्ट होती है । भवभूति के शब्दों

में- "पहाड़ भी रो देता है और वज्र का हृदय भी फट जाता है।" हिन्दी के कबीर जैसे फक्कड़ सन्त ने नकारात्मक और सकारात्मक दोनों दृष्टियों से कहा था-

मनुआँ कैसे बावरे पाथर पूजन जाइं।

वाते घर चक्की भली जाको पीसो खाइं ।।

रथ जी कहते हैं-

न केवलं कैकेंयीवचनाज्जगाम रामो वृथा वा वनम् ।।

समयरक्षणं शिलापि कुरुते रामायणे यथा ।

कविता के आरम्भ में समय की विषमता को देखिए-

विपत्रितेयं जीवनलतिका

केवल कुटिलकण्टकाकुलिता

दूरे कुसुमकथा ।।

सूर्ये तपति तमिस्रा प्रभवति

भवति नयनमयथा ।।

कहते हैं जहाँ काँटे होते हैं वहाँ पुष्प होता है। जहाँ दुःख है, वहाँ सुख भी होता है। किन्तु इन पंक्तियों में भावातिरेकता और संवेदना की गहराई को जब हम समझने का प्रयास करते हैं तो निकलता है कि आज के जीवन में मात्र दुःख हैं। कुटिल काँटों से अर्थात् दुर्जनों से मानव-जीवन व्यथित है। सुखरूपी पुष्प की बात ही समाप्त हो गयी है।

"शान्तिवाचनम्" नामक गीत में सम्पूर्ण मानवता के संभावित विनाश की आंशका से व्यथित होकर रची गयीं पंक्तियाँ देखिए-

भुवि दानवता यथाप्रकाशं

कलयति मानवताकुलनाशम् ।

विश्वजनीनसुखाय कल्पिता

वैज्ञानिकता भवति दूषिता ।।

अपि परमाणौ यदुदासीनम्

जातं सपदि दानवाधीनम् ।।

मानवता की रक्षा, कल्याण और शान्ति की अपेक्षा कवि ने इन पंक्तियों में की है। बनाना चाहिए हमें सच्चा मानव, होना चाहिए हमें अहिंसक और सहृदय। होनी

चाहिए हमारी वह पुरातन भावना-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ।।

किन्तु हमने बना लिया है न्यूट्रान, जो इस धरा से एक दिन सम्पूर्ण मानवता को विनष्ट कर देगा ।

भारत की विखण्डित दशा के कारण कवि रथ की मनोदशा को विखण्डित करती पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

धर्मचिन्तनं धूलिसात्कृतं मनुजजीवनं ज्वलति संततम् ।

भेदभावनादलितभारतं

धारयतां कथमेकताव्रतम् ।।

तथा-

किमिति विस्मृता निजपरम्परा

शान्तिवाचनं प्रति कृतादरा

अहिंसाधर्मदीपमन्तरा

तिमिरकुण्ठितेयं वसुन्धरा ।

कथयतु कथमिह भारतीयता

सत्यमेव जयते ।।

वस्तुतः हमारे समाज की और हमारी बहुत दुर्दशा है । कहीं भाषावाद, कहीं जातिवाद और कहीं धर्मवाद हमारे विकास में ब्रेकर बनकर खड़े हैं । ऐसे में कहाँ जाएँ, किससे अपनी व्यथा कहें, कौन समझेगा-

विकृतचेतसा केन कस्य वा परिचीयते व्यथा ।

# प्रो0 रसिकविहारी जोशी कृत ''मोहभङ्गम्'' की समालोचना

डॉ0 सत्यपाल नारंग

## कवि-परिचय

प्राचीन पाण्डित्य एवं आधुनिकतम अनुसन्धान प्रतिभा को एक स्थान पर सुरक्षित रखने वाले प्रो0 रसिकविहारी जोशी का जन्म १२ सितम्बर, १९२७ को परम्परा से प्रतिष्ठित वैष्णव परिवार में परमपण्डित श्री रामप्रताप शास्त्री के घर हुआ। भागवतपुराण एवं अनेक शास्त्र उन्होंने मानों श्रुतिपरम्परा से साक्षात्कार रूप में ग्रहण किये जिनका अनुभव मुझे १९६१-६३ में उनके भागवतपाठन एवं रासपञ्चाध्यायी के अद्भुत विवरण से हुआ। उनके पिता अनेक भाषाओं की विद्वत्ता के अतिरिक्त सौजन्य, योग, भक्ति, साधना एवं विरक्ति के मूर्तरूप थे। वाग्देवी एवं महाकाल उनकी प्रतिभा के अभिन्न अङ्ग थे। प्रो0 जोशी ने नव्यव्याकरण की फक्किराओं, नव्यन्याय, काव्यशास्त्र, यजुर्वेद तथा रहंस्यसाधना का ज्ञान उत्कृष्ट गुरुओं के चरणों में बैठ कर ग्रहण किया जिनमें पण्डित मुकुन्द शास्त्री खिस्ते तथा महामहोपाध्याय पं0 गोपीनाथ कविराज उल्लेखनीय हैं।

प्रायः सभी परीक्षाओं में प्रथम स्थान प्राप्त करते हुए उनकी आधुनिक अनुसन्धान की शिक्षा वाराणसी तथा पेरिस में उद्भट विद्वान् यथा प्रो0 लुई रेनू प्रो0 फिलिओज़ा एवं प्रो0 मिनार के निरीक्षण में हुई। कृष्णसम्प्रदाय उन के अनुसन्धान का क्षेत्र बन गया तथा उनका डी0 लिट्0 का शोधप्रबन्ध पांडिचेरी के 'फ्रेंच इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलोजी' जैसी विद्वत्तापूर्ण संस्था ने फ्रेंच भाषा में प्रकाशित किया। इसी बीच उन्होंने भारत-ईरानी तथा भारोपीय भाषाशास्त्र एवं तुलनात्मक देवशास्त्र के साथ साथ बौद्धदर्शन में प्रावीण्य ग्रहण किया। परम्परा के स्वर्ण पर आधुनिक विद्या के माणिक्य चमचमाने लगे। शीघ्र ही वे दिल्ली विश्वविद्यालय में रीडर पद पर नियुक्त हुए जहाँ उन्होंने प्रो0 लक्ष्मीधर कल्ला की नूतन अनुसन्धान पद्धति की नींव पर एक दृढ प्रासाद को रूप प्रदान किया। उनकी हस्तलेख प्रतिभा के कारण १९६४ में चैकोस्लोवाकिया, पोलैण्ड तथा हंगरी देशों की सरकारों ने लैस्नी की अधूरी पाण्डुलिपिविज्ञान प्रक्रिया को आधुनिक बनाने के लिए तथा विकीर्ण सामग्री को

व्यवस्थित करने के लिए निमन्त्रित किया जहाँ उन्होंने अपने कार्य एवं प्रतिभा से भारतवर्ष के नाम को और उद्दीप्त किया। दक्षिण पूर्व एशिया में संस्कृत के विस्तृत क्षेत्र के पुनर्गठन के लिए जोशी जी को कम्बोडिया बुलाया गया। १९६९-७० में उन्हें कोलम्बिया विश्वविद्यालय में विज़िटिंग प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किया गया जहाँ से क्रमशः उन्हें जोधपुर (१९७०), दिल्ली (१९७६), मैक्सिको (१८७९) इत्यादि विश्वविद्यालयों ने साक्षात्कार के बिना निमन्त्रित किया जहाँ अध्यापन शोध-निर्देशन कर वे अद्यावधि दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में कार्यरत हैं। संस्कृत विद्या के केन्द्र ''राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान'' के निदेशक का पद उन्हें १९७८ में प्रदान किया गया जो उन्होंने अस्वस्थता के कारण ग्रहण नहीं किया।

प्राध्यापकों के द्वारा 'अप्रतिहतसंस्कृतभाषी' तथा 'अभिनवबाणभट्ट' की उपाधियों से विभूषित प्रो0 जोशी में काव्य प्रतिभा का उद्‌भव छात्रावस्था से ही छन्दोनिर्मिति एवं समस्यापूर्ति से हुआ जिस का पल्लवन कालान्तर में उनके काव्यों में पारम्परिक शैली एवं आधुनिक मनोद्वन्द्वों में हुआ।

उनकी रचनाएँ 'करुणाकटाक्षलहरी' (१९७७), 'मोहभङ्गम्' (१९७८) क्रमशः उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी तथा मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी से एवं उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी से पुरस्कृत हुईं। पौराणिक एवं आगम परम्परा में लिखा 'सारस्वत' सरस्वती की स्तुति है। आर्याछन्द में लिखा 'प्रज्ञापरिजात' (१९८६) दृष्टान्तपरक काव्य है जो मानवमूल्यों, आवरणों एवं मानस का सामान्य दृष्टान्तों के माध्यम से उद्‌घाटन करता है। इसका अनुवाद फ्रेंच में सचित्र प्रकाशित हो रहा है। 'श्रीगोवर्धनगौरवम्' हिन्दी अनुवाद के साथ १९८६ में प्रकाशित हुआ। उनके सर्जनात्मक विवरणों में लीलाशुकमुनि कृत कृष्णकर्णामृत तथा वेङ्कटाध्वरिविरचित ''श्रीलक्ष्मीसहस्र'' प्रमुख हैं। ''रासपञ्चाध्यायी-एक सांस्कृतिक अध्ययन'' संस्कृत काव्यसौन्दर्यास्वादन का निकष माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त १९८४ में महाराणा मेवाड फाउण्डेशन का हारीत ऋषि पुरस्कार तथा १९८४ में ही राष्ट्रपति पुरस्कार प्रदान किया गया। उनकी समालोचनात्मक कृतियों में कृष्णकृतियों के अतिरिक्त नव्य न्याय दर्शन की 'स्टडीज इन इण्डियन लाजिक एण्ड मेटाफ़िज़िक्स' उल्लेखनीय है।

## मोहभङ्गम् का विवेचन

इस महाकाव्य में कवि ने सम्भोग शृङ्गार, अद्‌भुत एवं भक्ति रस को मुख्य साधन बना कर शान्त रस को पल्लवित करने की चेष्टा की है। मुख्य उद्देश्य मुक्ति होने के कारण इसे शास्त्रकाव्य की संज्ञा दी जा सकती है यद्यपि यह शब्द व्याकरणात्मक काव्यों के लिए ही रूढ है।

मोहभङ्गम् का कथानक आठ सर्गों में पौराणिक सौभरि ऋषि के जीवनवृत्त

पर आधारित है । प्रथम सर्ग में इष्ट देवों तथा पितृचरण की स्तुति के पश्चात् प्रथम सर्ग में कवि सौभरि ऋषि का, उसके अपरिमित ज्ञानभण्डार का तथा अनन्य भगवद्भक्ति का वर्णन कर के वसन्त के आविर्भाव पर प्रकृति के प्रत्येक तत्त्व में रोमांच होने पर उसकी मनःस्थिति के परिवर्तन का उल्लेख करते हैं । कर्मजन्य इस मनोभूमि में सौभरि कालिन्दी के तट पर आ जाते हैं जहाँ गार्हस्थ्यक्रीडाओं में मग्न मत्स्यराज को देख कर वृद्ध मुनि के हृदय में मोह उत्पन्न हो जाता है और कन्याकामी वे मान्धाता की राजधानी की ओर प्रस्थान करते हैं । द्वितीय सर्ग में सौभरि राजप्रासाद में पहुँच कर उसके वैभव एवं राजाओं एवं सामन्तों से परिपूर्ण सभामण्डप में मान्धाता का दर्शन करते हैं तथा मान्धाता की किसी एक कन्या के साथ अपना विवाह करने की इच्छा प्रकट करते हैं । राजा इच्छापूर्ति एवं अभाव की मनःस्थिति में चतुरता से 'कन्या ही स्वयं वरण करती है-यह हमारे कुल की परम्परा है' कहकर बात कन्या पर छोड़ देते हैं । राजा कंचुकी को आदेश देते हैं कि मुनि को कन्यान्तःपुर में ले जाये । तृतीय सर्ग में सौभरि अपनी सिद्धि से कामरूप सौन्दर्य को धारण कर लेते हैं जहाँ अनेक अनुभावों एवं सात्त्विक भावों के माध्यम से कवि ने कामिनी बालाओं की विविध भावमुद्राएँ प्रर्दर्शित की हैं जो सौभरि का वरण कर लेती हैं । मान्धाता का द्वन्द्वात्मक मानस प्रसन्न हो जाता है । चतुर्थ सर्ग में मान्धाता के प्रासाद, विवाह की तैय्यारियाँ, मङ्गलचिह्नों का आलेखन तथा रानी बिन्दुमती की प्रसन्नता का वर्णन है । मण्डपद्वार पर सौभरि वर के रूप में उपस्थित होते हैं तथा विधिवत् उनका स्वागत होता है । वेदशाखाओं के उच्चारण के साथ वरवधुओं को प्रदक्षिणाएँ देने के पश्चात् विवाह सम्पन्न हो जाता है तथा दस दिन तक वहीं निवास करने के पश्चात् सौभरि अपने आश्रम मे लौट आते हैं । पञ्चम सर्ग में ऋषि अपनी सिद्धि के प्रभाव से अद्भुत ऐश्वर्य प्रासादों का निर्माण करवाते हैं जिनमें सर्वर्तुफलित वृक्ष, निर्द्वन्द्व व्यवहार तथा अन्य उपभोग के साधन विद्यमान हैं । इस में योगी के सांसारिक भोगों का चित्रण प्रस्तुत किया गया है । षष्ठ सर्ग में अपनी कन्याओं के कुशल क्षेम को देखने के लिए मान्धाता आते हैं और उस अद्भुत प्रासाद एवं ऐश्वर्य साधनों को देख कर आनन्दसागर में हिलोरे लेने लगते हैं । सुन्दर प्रासाद में अपनी ज्येष्ठ पुत्री, उसकी सेविकाओं तथा सौभरि मुनि से मिलते हैं । एक ही मुनि को अलग २ स्थानों पर अनेक योग एवं भोग में देखते हुए आश्चर्यचकित हो जाते हैं । पचास पत्नियों के साथ विधिवत् व्यवहार करते हुए सौभरि को देखते हुए राजा हर्षमग्न होकर सन्तुष्टि का अनुभव करते हैं तथा अपनी नगरी को लौटने की इच्छा करते हैं । सप्तम सर्ग में सौभरि अपनी प्रत्येक पत्नी से तीन-तीन अद्वितीय शीलसम्पन्न तथा यशस्वी पुत्र प्राप्त करते हैं । कौतुक क्रीडाओं में मोहग्रस्त मुनि के सौ वर्ष क्षण के समान व्यतीत हो जाते हैं । पूर्व कर्मों का क्षय होने के कारण मुनि का मन पुनः कामवासना को छोड़ कर विचारणा की भूमि में प्रवृत्त होता है तथा कर्मजन्य जाल

का उन्हें आभास होता है । वे अपनी इच्छाओं की अतृप्ति से क्षुब्ध हो जाते हैं तथा इस सन्दर्भ में राग एवं विराग के मध्य की द्वन्द्वात्मक स्थिति का वर्णन किया गया है । इस स्थिति से उनका मन हट कर पुनः अपनी पुरानी प्रकृति में लीन हो जाता है । अष्टम सर्ग में पति को प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर प्रवृत्त देख कर उसकी पत्नियाँ क्षुब्ध हो जाती हैं तथा निवृत्ति के विचार को निरस्त करती हैं । मुनि उन्हें उपदेशात्मक वाक्यों से समझाते हैं तथा संसार के नश्वर स्वभाव का वर्णन करते हैं । यहाँ पुनः वैराग्यपरक दर्शन को उभारा गया है तथा मुक्ति की उत्कृष्ट अभिलाषा को प्रदर्शित किया गया है । सौभरि ने पत्नियों को वानप्रस्थ में अपने साथ जाने की आज्ञा दे दी। विधिवत् समझाई गयीं पत्नियाँ वास्तविक सत्य को समझ कर वन जाने को तैयार हो जाती हैं । वानप्रस्थ से बुद्धि के परिपक्व होने पर वे संन्यास धारण करते हैं । ब्रह्मनिष्ठ होकर सर्वभूतों में ब्रह्मदर्शन करते हुए अमर हो जाते हैं । उसकी पत्नियाँ भी पातिव्रत्य धर्म का पालन करती हुई उसी दिव्यगति को प्राप्त होती हैं । यह कथा विष्णुपुराण एवं भागवतपुराण में उपलब्ध होती है जिसे कवि ने अपनी शक्ति से प्रवृत्ति में अनुरक्त आधुनिक संसार को एक सन्देश में परिणत कर दिया है जिस का मूलतत्त्व उपनिषदों में है 'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः' अर्थात् मनुष्य कभी भी अपनी भौतिक उपलब्धियों से तृप्त नहीं हो सकता । इस प्रकार आधुनिक संसार में वास्तविक आनन्द उत्पन्न करने के उद्देश्य से ही इस काव्य का सर्जन हुआ । संस्कृत काव्यशास्त्र में मानवजीवन के चार साध्यों अर्थात् धर्मार्थकाममोक्ष में कवि पाठक को एक एक कर चारों में आन्दोलन करता हुआ योग की गहन भूमि में ले जाता है और मुक्ति को ही उसका वास्तविक लक्ष्य एवं अनन्त आनन्द की प्राप्ति मानता है । काम पचास पत्नियों से भी पूरा नहीं हो सकता, इस की निस्सारता केवल उपेक्षा अथवा त्याग से उत्पन्न नहीं होती परन्तु केवल इस प्रक्रिया का उपभोग कर के त्याग की शाश्वतता से ही उत्पन्न हो सकती है ।

संस्कृत के प्राचीन काव्यों मे चरित्रचित्रण कुछ सीमित क्षेत्रों मे ही रहता है । कवि अपने नायक का चरित्रचित्रण उसके शरीर तथा मानस तक उलझाये रखता है और उसका सम्मिश्रण अपनी प्रतिभा प्रदर्शन के साथ समवेत कर देता है । इस प्रकार चरित्रचित्रण की विविधता एवं नूतनता समाप्त हो जाती है । कथानक का ऊहापोह एकरस चलने लगता है और औत्सुक्य समाप्त हो जाता है । इस काव्य का नायक उत्कृष्ट मुनि होते हुए भी सांसारिक उलझनों एवं प्रवृत्ति से अलग नहीं है । वह उत्कर्ष से अपकर्ष, अपकर्ष से संसार, संसार से इच्छा, इच्छा से संसारजाल, संसारजाल से उपभोग, उपभोग से आनन्द, आनन्द से अपकर्ष तथा अपकर्ष से पुनः शाश्वत उत्कर्ष की ओर प्रवृत्त होता है । पदे पदे नायक की नूतनता ही इसे एक सफल महाकाव्य बनाने का साधन बनती है । यद्यपि सौभरि बहुत अधिक प्रचलित पात्र नहीं हैं तथापि आधुनिकता को मानस में रखते हुए प्रो0 जोशी ने उनका चयन

किया है जो वस्तु की दृष्टि से सदाश्रय की कोटि में आकर महाकाव्य का आधार बन जाते हैं । मुक्ति का लक्ष्य होते हुए भी मानसिक उच्च एवं निम्न भाव ही सौभरि मुनि के उत्थान एवं पतन के रूप में तरङ्गों के समान उभरते गिरते हैं । कवि कहीं भी भारतीय संस्कृति में स्वीकृत व्यवस्थाओं एवं आयामों एवं सीमाओं का अतिक्रमण नहीं करते । उन्हें आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने की चेष्टा करते हैं ।

ऋतुओं के वर्णन वसन्त (१.३२-३४), सुन्दरियों (३.३-४१), विवाह (४.२-३७), वासगृह (४.३८-४१), उद्यान (५.८-२१) क्रीडोद्यान (५.२४-२८) तथा सरोवरों के वर्णन (५.२९-३७) अनेक प्रकार के पारम्परिक एवं आधुनिक विधाओं से गुँथे हुए हैं जो कवि के ज्ञान एवं प्रकृति सौन्दर्य बोध की गहन भूमिकाओं को अभिव्यक्त करते हैं । ये वर्णन केवल अभिधा से अभिव्यक्त नही है । कवि सहृदय के आनन्द के लिए अनेक प्रकार की ध्वनि छोड़ जाते हैं जो उस के मानस में एक दूरगामी एवं शाश्वत प्रभाव छोड़ जाती हैं । वर्णनों में वैविध्य एवं रस एवं वर्ण के अनुसार शब्दावली का प्रयोग कवि की मौलिकता है यद्यपि पूर्वसूरियों का प्रभाव कवि के ऊपर निस्सन्देह है जिन के प्रो0 जोशी अद्वितीय अधीती हैं ।

मानसिक संघर्ष एवं अन्तर्द्वन्द्वों का चित्रण प्रो0 जोशी के मनोविज्ञान के गहन अध्ययन का प्रतिफलन है । वसन्त ऋतु का मोहक वातावरण प्रकृति के कण कण में अभिव्याप्त सौभाग्य को जन्म देता है तथा कामज्वर से आन्दोलित होते हुए ऋषि भी पुत्रों-पत्नी सहित आनन्द प्राप्त करते हुए मत्स्यराज को देख कर मोह के जाल में फँस जाते हैं ।

काव्य में नाट्यसन्धियों को भी घटाया जा सकता है । यथा वसन्त के प्रारम्भ से मुनि के मोह तक मुखसन्धि, विवाह की इच्छा में प्रतिमुखसन्धि; मोहोदय तथा पुनः ज्ञान के द्वारा उस के निवारण लिए धार्मिक प्रवृत्तियों में गर्भसन्धि; सौभरि की आत्मग्लानि तथा पश्चात्ताप में नियताप्ति एवं अवमर्श सन्धि तथा मोहभङ्ग हो जाने से निर्वहण सन्धि की उपलब्धि होती है ।

प्रो0 जोशी के चरित्रों का आधार पारम्परिक बाह्यगुणात्मक, उत्कृष्टकुल, वर्णाश्रममर्यादाबद्ध होने के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक भी है जिसमें विभिन्न स्थितियो- के अन्तर्द्वन्द्व का सफल वर्णन है ।

सौभरि के चरित्र में संयम से काम चरित्र के वैविध्य के साथ साथ उत्सुकता को भी उत्पन्न करता है । मत्स्य के माध्यम से 'कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेत-नाचेतनेषु' की उक्ति सार्थक होती है जो सारी स्थिति में अद्‌भुतता उत्पन्न करती है। कवि उस स्थिति को पुनः वैराग्य में परिवर्तित कर मानसपटल में धूप एवं छाँव की स्थिति को प्रकट करते हैं । ऐसी ही मनस्स्थितियाँ मान्धाता के वात्सल्यपूर्ण पितृहृदय में चिन्ताओं के अन्तर्द्वन्द्व, उत्कण्ठा तथा प्रसन्नता में उपलब्ध होती हैं ।

पशु पात्रों का भी उल्लेख मानववत् है जिनमें गन्धी गज का उल्लेख विशिष्ट स्थान रखता है ।

मोहभङ्गम् में यद्यपि श्रृङ्गार रस का उत्कर्ष दिखाई देता है तथापि काव्य के साध्य को महत्त्व देते हुए शान्त रस ही मुख्य रस है जिसे प्रो0 जोशी व्यक्तिगत रूप से भी जीवन का उद्देश्य मानते हैं । अद्भुत रस भी अनेकत्र उपलब्ध होता है । श्रृङ्गार की उत्पत्ति में सौभरि तथा नायिका राजकन्याएँ आलम्बन के रूप में तथा वसन्तऋतु, गृहोपवन एवं अन्य प्राकृतिक वर्णन उद्दीपन रूप में चित्रित हैं । हर्ष, धृति, उन्माद एवं औसुक्यादि व्यभिचारिभाव भी रति को परिपुष्ट करते हैं । यौवनोन्माद, हाव-भावों का प्रदर्शन एवं काम के विविध अङ्गों का वर्णन शरीरज श्रृङ्गारावस्था है। स्वभावसरलता,लज्जाशीलता, मुग्धत्व एव लावण्य उन के अयत्नज श्रृङ्गारसाधन हैं। श्रृङ्गार के संस्कार को उद्दीप्त करने वाली मत्स्यराज की रतिक्रीडा श्रृङ्गाररसाभास को अभिव्यक्त करती है । मान्धाता का ऋषि के शाप से बचने के लिए स्वयंवर का बहाना तथा उत्कण्ठावश कालान्तर में पुत्रियों का कुशलक्षेम जानने के लिए आना उनके वात्सल्य को अभिव्यक्त करता है । सौभरि की अतिशय रूपराशि देखकर कन्याओं का आश्चर्यचकित होना तथा ऋषि के द्वारा तपःसिद्धि से अद्भुत नगरी एवं हर्म्यों का निर्माण भी इसी कोटि में आता है । पूर्वोक्त की पुनरुक्ति मात्र कि मोहभङ्गम् का मुख्य उद्देश्य मोक्ष होने के कारण इसमें शान्त रस को स्वीकार किया जा सकता है । संसार में प्रवृत्त मुनि का पुनर्ज्ञान के पश्चात् आत्मधिक्कार एवं आत्मग्लानि तथा कामनाओं के आनन्तर्य को देखकर आत्मनियन्त्रण शान्तरस की ही पुष्टि करते हैं । इसी का उपवृंहण अनेक प्रकार की मोक्षपरक सूक्तियों की श्रृं खला में हुआ है । ''आत्मबोध'' ही शान्तरस है और यही जीवन्मुक्त की दशा है जो प्रो0 जोशी के व्यक्तित्व की चरम परिणति है ।

श्रृङ्गार एवं शान्त रस के अनुकूल आर्द्र हृदय में माधुर्य के दर्शन राजकन्याओं के सौभरि मुनि के सौन्दर्यातिशय की अनुरक्ति में होते हैं । यथा मोहभङ्गम् ३.४

> काचिच्छीलवती स्वभावसरला लज्जावती विभ्रमै--
> स्तारुण्यस्तनभारमन्मथमतिं सङ्केतभङ्ग्यादिभिः ।
> मुग्धा मुग्धधिया प्रकाशितवती रोमावलीमौदरीं
> कुर्वद्बिम्बफलाधरा शिखरिणी लावण्यपूर्णा बभौ ।

इसी प्रकार ओज एवं प्रसाद गुण के दर्शन पदे पदे होते हैं ।

श्रृङ्गार एवं शान्त रस की प्रमुखता होने के कारण वैदर्भी रीति की कोमलकान्त पदावली मोहभङ्गम् में प्रमुखता से उपलब्ध होती है । छोटे छोटे कोमल पदों की उपलब्धि सर्वत्र है । यथा मोहभङ्गम् ३.४०

पतिंवरा कापि पतिं वृणीते कुसुम्भकौशाम्बरपट्टवस्त्रा ।

स्वदेहकान्त्या ननु रंजयन्ती यथा दिशः क्षीरसमुद्रलक्ष्मीः ।।

मुख्यनः वैदर्भी रीति के अङ्गीकार होने पर भी पाञ्चाली एवं गौडी रीति का अभाव नहीं है । (उदा0 मोह0 २.२५)

मोहभङ्गम् में शब्दालङ्कार एवं अर्थालङ्कारों की भरमार है । उपमा अथवा रूपकों को लादा नहीं गया परन्तु प्रतीत होता है कि काव्य प्रतिभा के वशीभूत हो कर पदे पदे अहमहमिकया से रसोपेत स्वयं चले आ रहे हों । काव्य बिम्बों के विधान एवं कल्पना अनेक स्थितियों विशेषतः मानसिक स्थितियों एवं अन्तर्द्वन्द्वों के विचित्र चित्र प्रस्तुत करती हैं । छन्द एवं अलङ्कार का सुन्दर सम्मिश्रण वर्ण्यमान वस्तु को साक्षात् लाकर खड़ा कर देता है । सौभरि ऋषि के सौन्दर्य से मोहित युवती (मोहभङ्गम् ३.८) इस प्रकार से है -

कदम्बं कान्तीनां नवनवगुणानां सुसदनं

सुधाया मञ्जूषा मधुरसभरी कापि वनिता ।

फलं वा पुण्यानां निरवधिकलावण्यगुटिका

ययाचे नेत्राभ्यां मुनिमथ च भोगञ्च मुदिता ।।

प्राकृतिक सौन्दर्य,देवशास्त्रीय कल्पनाएँ एवं लौकिक वैभव विशेषतः प्रासादों के सन्दर्भ में अनेक प्रकार की उत्प्रेक्षाओं की स्थितियाँ उत्पन्न कर देते हैं । रूपक भी भरपूर है । प्रज्ञापारिजात के स्रष्टा अर्थान्तरन्यास के माध्यम से मानों अनुभवों का महोदधि ही मोहभङ्गम् में प्रस्तुत कर रहे हों । यथा

को वा द्वाराणि रोद्धुं प्रभवति नियतेर्हन्त पाकं व्रजन्त्याः

(मोह0 २.४)

निरर्थकं न प्रवदन्ति पण्डिताः (२.४५)

विधौ वामे भूते भवति महतामप्ययशः (५.३८)

न वा जगति लालसा क्वचिदपि प्रशान्ता भवेत् (७.१५)

नियतिचक्रमहो परिवर्तनं

श्रयति कुत्रं न हन्त शरीरिषु (७.४१)

न कोपि तरितुं फलं प्रभवति स्वकं कर्मजम् (७.१३) इत्यादि।

महात्मा सौभरि की वृद्धावस्था से लेकर कामोत्तेजक एवं वात्सल्यमूर्ति छोटे

छोटे मत्स्यों तक काव्य में स्वभावेक्ति गुम्फित है । यथा- मोहभङ्गम् २.४२

निर्दन्तं स्थाणुकल्पं प्रसृतिभिरपयःपानकर्तारमित्थं

मुण्डं श्वेतैः कलापैः स्फुटमनभिमतं प्रौढवाराङ्गनाभिः।

तथा १.४१

बंभ्रन्ति पुच्छं तनयः कनीयान्

वुवूर्षतेऽन्यः पितरं स्वपुच्छैः ।

इनके अतिरिक्त समासोक्ति,काव्यलिङ्ग, उदात्त, परिसंख्या, अपह्नुति इत्यादि अलङ्कार भी मोहभङ्गम् में उपलब्ध होते हैं ।

विषय एवं वर्णन के अनुरूप अनेक छन्दों का प्रयोग मोहभङ्गम् में दृष्टिगत होता है । इनमें प्रमुख हैं शार्दूलविक्रीडित, मन्दाक्रान्ता, स्रग्धरा, शिखरिणी, पृथ्वी , वसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थ, रथोद्धता, द्रुतविलम्बित एवं अनुष्टुप् ।

अनेक शास्त्रों के, विशेष रूप से काव्यशास्त्र,कोषशास्त्र एवं व्याकरणशास्त्र के, ज्ञाता की वाग्देवी अभिधा अथवा लक्षणा शक्तियों का आलम्बन नहीं करती परन्तु गूढ़ातिगूढ भाव स्वयं ही स्फुटित हो उठते हैं । सन्दर्भ के अनुसार शब्दावली विशेष रूप से णमुल् इत्यादि के द्विरुक्त प्रयोग स्थिति की गहनता को अभिव्यक्त करने लगते हैं । पारम्परिक वर्णनचातुरी आधुनिक वर्णनों के रङ्गों में तदनुरूप शब्दावली के सौन्दर्य को सँजोये हुए भावों से अकृत्रिम रूप से गुम्फित हो जाती है । यह काव्यसृष्टि की प्रक्रिया चेतन एवं अचेतन,मूर्त अथवा अमूर्त वर्णनों में निसर्गता से फूट पड़ती है । मन में रहने वाले प्रमोद के भाव आने वाली घटनाओं का मानस नृत्य नर्तकी के समान भाषा की झङ्कार पर आरूढ हो जाता है । यथा मोह० ३.३६

विलासकल्पद्रुमवर्षकेली हर्षप्रकर्षेण मुनिं ज़गाम ।

हंसीव शिञ्जारवगुञ्जिता सा निनर्तिषू रङ्गतले नटीव ।।

ऐसा प्रतीत होता है कि भावी घटनाओं की लम्बी यात्रा दुःखद हो उठी हो । इस दुःख के काल का क्षेप संक्षेप में ही कुछ पङ्क्तियों में होता हुआ भी तज्जन्य पश्चात्ताप एवं ग्लानि को अभिव्यक्त करने में कवि पूर्ण समर्थ हुआ है । यथा मोह० ७.११

कदा नु जयतात् परान् बलवतो बलीयान् सुतः

कदा नु दधते पदं सपदि शास्त्रमार्गे सुतः ।

कदाक्षिपथगोचरो मम भवेद् विवाहोत्सवः

कदा सुतनिबन्धना मम मतिः समाप्तिं भजेत् ।।

प्रायः भाषा बोधगम्या एवं अबोझिल है । णमुल् के कई प्रयोग भाषा में सङ्गीतात्मकता ला देते हैं । यथा मोह० ४.१९

श्रावं श्रावं सकलमनुजा याजुषं वेदगानं
पायं पायं सरसमतुषन् गोपयः पानतृप्ताः ।

यथास्थान एवं अर्थानुकूल सन्, यङ् एवं यङ्लुक् एवं नामधातुओं के प्रयोग व्याकरणात्मक बोझ न होकर भावों की शुद्ध अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुए हैं ।

इस काव्य का मुख्य उद्देश्य तपस्याजन्य फल से कामोपभोगों के पूर्वपक्ष को प्रदर्शित कर उसके प्रति निवृत्ति मार्ग का प्रदर्शन करना है । आधुनिक युग में धन, वैभव, प्रासाद, वाहन एवं काम को हम ने अपना साध्य समझ लिया है जो अपनी चरमावस्था में अतृप्ति एवं दुःख देते हैं । उससे मुक्ति पाने का एक ही मार्ग है अपने जीवन की वास्तविक स्थिति,जिसमें वृद्धावस्था भी एक है,को सत्य के रूप में स्वीकार करना । इस स्वीकरण से ही व्यक्ति स्वस्थमानस को प्राप्त कर सकता है । दूसरा मार्ग केवल भटकाव का मार्ग है जिसे छोड़ना ही श्रेयस्कर है । इस काव्य के माध्यम से कवि पुरातन कथानक को ले कर भी अत्याधुनिक प्रतीत होते हैं ।

वास्तव में मोहभङ्गम् एक सफल, सशक्त एवं उत्तम संदेशप्रद महाकाव्य है ।

# 'पुत्रसञ्जीवन' काव्यपरिचयः

डा0 मुल्लपूडि जयसीताराम शास्त्री

आन्ध्रदेशे शताब्देऽस्मिन् सञ्जातेषु गीर्वाणकविपण्डितेषु अन्यतमः, अपि च अनन्यादृशः श्री मुल्लपूडि नारायणशास्त्रिवर्यः । अयं महाभागः १९१० क्रिस्ताब्दे कृष्णवेणीद्वीपग्रामेषु (गुण्टूरुमण्डलान्तर्गतेषु) सञ्जातः । पञ्चमवर्षप्रायादारभ्य संस्कृतभाषामेवाभ्यस्तवान् । श्रीमती पार्थसारथी-देवी, श्रीसुब्बेश्वरश्चास्य जननीजनकौ । अयं शास्त्रिवर्यः मातुः श्रद्धाबलेन साधितविद्यः, भ्रातुः राजेश्वरशास्त्रिसकाशात्समुपगतारम्भविद्यः , श्रीताडपल्लि वेङ्कटप्पयशास्त्री, राघवनारायणशास्त्री, महामहोपाध्यायश्री तातासुब्बरायशास्त्री इत्यादिभ्यः समधिगतसकलशास्त्रः कलाविशारदो ऽभूत् । तर्कव्याकरणवेदान्तसाहित्यविद्यासु पारदृश्वा श्रीशास्त्रिवर्यः जन्मतः सम्प्राप्तकविताविशेषवासितसहृदयश्चाभूत् । अपि च १९३६ प्रभृति 'रेपले' पत्तने जगद्गुरुश्रीशङ्कराचार्यभक्त्या 'श्रीशङ्करविद्यालयम्' नामकवेदशास्त्रपाठशालां प्रारब्धवान् येयमद्यापि संस्कृतमहाविद्यालयत्वेन वरीवर्तते । 'विद्याचतुर्दशापादक' इति महोन्नतप्रथाविराजितोऽयं शास्त्रिवर्यः बाल्ये 'सुब्रह्मण्यविजय' इति संस्कृत-नाटिकां, ततः अभिज्ञानशाकुन्तलस्य आन्ध्रानुवादं च विरच्य पुत्रसञ्जीवनाख्यं संस्कृत-काव्यमिदमतिमनोहरं निर्ममे ।

'शोकः श्लोकत्वमागतः' इति वचनानुसारं पुत्रेष्वन्यतमस्य 'शिव' नामकस्य मरणात् संक्षुभितहृदयः अयं कविवरः 'शिवेतरक्षति' साधकं काव्यमिदं रचितवान् । तदिदं काव्यं विमृशामः ।

## कथापरिचयः

श्रीमद्भागवते पञ्चचत्वारिंशद(४५)ध्याये भगवतः कृष्णस्य बलरामस्य च विद्याभ्यासः गुरुदक्षिणारूपेण मृतं गुरुपुत्रं सञ्जीव्य यमनगरात् आनीय भगवता समर्पणञ्च सङ्ग्रहेण प्रस्तुतम् । तत्रैव अशीति (८०) तमेऽध्याये कुचेलोपाख्याने रामकृष्णयोः विद्याभ्यासकथा पुनः

स्मारिता च । इयतीं मूलकथां स्वीकृत्य 'पुत्रसञ्जीवन' मिति नाम्ना षट्सर्गपरिमितं काव्यं समाकलितवान् अयं कविवरः ।

## काव्यकथाविकासः

'काश्यं सान्दीपनिं नाम' इति व्यासवचनानुसारं काश्यां भवं सान्दीपनिम् उज्जयिनीवासिनं कुर्वता कविना प्रथमसर्गे

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा काशीति विश्ववेश्वरराजधानी ।
नाम्ना समुत्सारितलोकमोहतमस्समूहा हसतीव सूर्यम् ॥ (१/५)

इति काशीवर्णनेन कथारम्भः कृतः ।

उज्जयिन्यां गुरोः सान्दीपनेः विद्याबोधनं, पुत्रीपुत्रकलत्रादिभिः सुखवासश्च प्रथमे 'उदयविलास' नामके सर्गे वर्णितः ।

द्वितीये 'विधिविलासे' महोदयपर्वसन्दर्भे समुद्रस्नानार्थं गतस्य सान्दीपनेः तृतीयपुत्रः 'शिव' नामकः प्रभासतीर्थे मृत इत्यंशः, ततश्च गुरुदम्पत्योः विलापा वर्णिताः । शोकमलिनं सान्दीपनिं यदृच्छयाऽऽगतः वेदव्यासः ज्ञानबोधकैः वचनैः निर्मलं कृत्वा अनन्तरकथायां श्रीकृष्णविद्याबोधनसमर्थं करोति ।

तृतीये 'शुश्रूषाविलासे' बलरामकृष्णयोरागमनं, सुदामसहवासः, गुरुपरिचर्या, दारुणवर्षरात्र्यां समिदानयनार्थं गतानां शिष्याणां वने स्थितिः, गुरोः प्रीणनम् इत्याद्यंशाः समुपनिबद्धाः ।

चतुर्थे 'कलाविलासे' बुद्धिशालिनोः रामकृष्णयोः सान्दीपनिकथिताः वेदवेदाङ्गशास्त्रचतुष्षष्टिकलाविशेषाः अनिदंपूर्वं वर्णिताः पण्डित-कविशेखरेण श्रीनारायणशास्त्रिणा ।

पञ्चमे 'लीलाविलासे' कृष्णबाल्यलीलाविलासाः गुरुदम्पतीभ्यां प्रस्तुताः । गुरुदक्षिणाप्रदानशीले शिष्ये अतिमानुषं मृतपुत्रसञ्जीवनमेवात्र प्रार्थनीयम् इति च गुरुभ्यां निर्णीतम् ।

षष्ठे 'विजयविलासे' रामकृष्णयोः समुद्रगमनं, पाञ्चजन्याधिगमः, यमपुरगमनम्, गुरुपुत्रसञ्जीवनम्, गुर्वोः प्रदानञ्च वर्णितम् । एवं षट्सर्गपरिव्याप्तेयं कथा ।

## वर्णना-सौन्दर्यम्

काव्येऽत्र कथानुसारं संयोजितानि तत्तद्वर्णनानि नूनं पाठकावर्जकानि भवेयुर्यथा-

निवारयन्त्यां वरणास्रवन्त्यां विदारयन्त्यामसिनिम्नगायाम् ।

विनिर्दहन्त्यामपरापगायामेनांसि मुक्तौ किमु चित्रमस्याम् ।। (१/७)

इत्यादिकं वाराणसीवर्णनम् ।

शिप्रातरङ्गाऽहतचारुवप्रा विप्रादिभिर्दत्तसुरेशतृप्रा ।

क्षिप्रार्पितारिव्यसनोरुदृप्रा सुप्रातरामा ललितास्यसृप्रा ।। (१/२५)

इत्यादिकञ्च उज्जयिनीवर्णनम्; तथा सान्दीपनिवर्णनं तज्जीवनपद्धतिवर्णनं च प्रथमसर्गेऽस्य मनोहरत्वं सम्पादयन्ति ।

द्वितीये समुद्रयियासूनां सोत्साहप्रयाणवर्णनानन्तरं समुद्रवर्णनं वर्तते यथा -

रसमयः किल सत्त्ववदग्रणीः सुगुणरत्नखनिश्च गभीरदृक् ।

मदिरजीवनदोऽतिविकत्थनोऽप्ययमुदात्ततया प्रतिभाति मे ।।

(२/१३)

परशिवाय विषौदनमङ्गनामतिचलां हरये च निरागसे ।

प्रददता, लंवणाम्बुसृजे किमप्यददता जड(ल)ता प्रकटीकृता ।।

(२/१५)

इति ।

तृतीये रामकृष्णयोरागमनवर्णनम्-

बालैस्तु बालौ युवभिर्युवानौ वृद्धैस्तु वृद्धौ बलिभिर्बलाढ्यौ ।

विज्ञानिभिर्ज्ञाननिधी मतौ तौ रूपानुरूपं दधतुः स्वरूपम् ।।

(३/१२)

पञ्चमे च कृष्णलीलावर्णनं काव्यस्यास्य वैशिष्ट्यं सम्पादयति ।

उत्थाय सर्वविपिनं च विचित्य वत्सान्
कुत्राप्यवीक्ष्य पुनरेत्य च वत्सपांश्च ।
विश्वात्मकोऽयमभवत्किल सर्वगोप-
वत्सात्मनाब्दमजगर्वगिरिं विभिन्दन् ।। (५/२१)

कृष्णेन धृष्टविषपन्नगभोगपाशा-
कृष्टेन साश्रुनयनैर्निजबन्धुवर्गैः ।
धृष्टेन पादविधिघट्टनभग्नभुग्न-
भ्रष्टासृगाऽततकणासु कमप्यनर्ति ।। (५/२४)

स्नानावतीर्णमुपवासिनमेत्य नन्दं
चादाय रक्षसि गते वरुणस्य लोकम् ।
योगेश्वरस्तमनुगत्य सुसान्त्वितश्च
पाश्चायुधेन निरगात्पितृनन्दयुक्तः ।। (५/३५)

षष्ठे समुद्रकृतदशावतारवर्णनं यमनगरवर्णनञ्च अविस्मरणीयम्।

## पाण्डितीप्रकाशनम्

चतुश्शास्त्रपण्डितोऽयं कविः तत्तद्वर्णनासु स्वपाण्डितीवैभवं सचमत्कारमायोजितवान् । काशीवर्णने तत्रत्यपण्डितेभ्यः सुरगुरुः ज्ञानराशिमचोरयदिति वर्णयन् पाणिनीये पारस्करादिगणे तस्करबृहस्पति-शब्दयोरेकेनैव गणसूत्रेण सुडागमतलोपविधानं समर्थकं निरूपयति । ("तद्बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोस्सुट् तलोपश्च") यथा-

अनेकशास्त्रार्थविशारदेषु गुरुष्विवाविश्य गुरुत्वमाप ।
बृहस्पतिः स्वर्गसदां, तदादि न्यवेशयंस्तस्करकेषु तं ज्ञाः ।।
(१/८)

अपि च चतुर्थसर्गे कविना प्रपञ्चितं बहुशास्त्राणां कलानां च

प्रतिबोधनं अनिदंपूर्वं काव्यस्यास्य गौरवं महत्त्वं च नूनं साधयति । तत्र दिङ्मात्रमुदाह्रियते । - ४,८,१५,१९ एवं चतुष्षष्टिकलासु पुष्पास्तरणम्, इन्द्रजालम्, पाककला, प्रहेलिका, (५३) संवाहनम्---

वेदाः

छन्दसा ऋगिति गीतिसंश्रयात्साम चोभयविलक्षणं यजुः ।
नूतनस्य विधिना प्रशंसया तद्विलक्षणतया त्रिधा श्रुतिः ।। (४/४)

इन्द्रजालकला :

इन्द्रजालमिदमिन्द्रियभ्रमापादि कल्पितजलाऽनिलाऽनलम् ।
सैन्यदेवसदनादि दर्शयद्दैवकल्पितजगद्विडम्बते ।। (४/४६)

प्रहेलिकाकला :

अर्धनारिरपि च त्रिलोचनो नो शिवः कथय को भविष्यति ।
''नारिकेल'' इति सम्यगुत्तरं दीयते यदि हि तत्प्रहेलिका ।।
(४/५३)

## रसपोषणम् :

रसनिर्वहणापटुरयं कविः वीरशान्ताद्भुतकरुणादिरसपोषणे स्वीयया प्रतिभया सहृदयानां मनांसि समावर्जितवान् । द्वितीये पुत्रमरणपीडितयोः पित्रोः विलापवर्णने-

''मृतबालकभाषणादि सङ्कलिता मातृगिरश्श्रुतिं गताः ।
कठिनान्यपि हृन्दि दारयन्त्युपलानप्यतिरोदयन्ति हि ।।''
(२/३८)

तव सुरुचिरमङ्गं कौतुकोदञ्चदक्षं
परिचितपरिहासप्रातिभं वक्त्रबिम्बम् ।
प्रथममजनि मोहायाद्य शोकाय चाहो
हतविधिरनुकूलं प्रातिकूलं करोति ।। (२/५४)

इत्यादिषु करुणः । पञ्चमे कृष्णलीलावर्णने -

वेणुस्वनं समनुगच्छति रक्तकण्ठे यष्टिध्वनिं समनुकुर्वति कङ्कणौघे।
मञ्जीरनादमनुनादिनि पादवृन्दे वृन्दावने जयति रासविहारलीला ॥

(५/३८)

इत्यादिषु शृङ्गारादिः । एवमन्ये च रसाः परिपोषिता अस्मिन् काव्ये।

## पात्रचित्रणम्

सम्भाषणाचातुर्यं काव्येऽस्मिन् मनोह्लादकं प्रतिभाति । तन्निरूपणार्थं सान्दीपनिपात्रवैशिष्ट्यं किञ्चिदत्र विवृणोमि ।

स गाङ्गतोये विमलेऽवगाढः समाप्य सान्ध्यं विधिवद्विधानम् ।
सुपूज्य विश्वेशमथाभिगच्छन् न कस्य चक्षुस्सफलीचकार ॥

(१/१६)

इत्यादिश्लोकैः सान्दीपनिपरिचयः कृतः । अवन्तिजानां पण्डितानां प्रार्थनामाकर्ण्य काशीवियोगमसहमानः स एवं स्ववेदनां प्रकटयति-

कथन्नु गङ्गां भवपाशभङ्गाम् दयासनाथं बत विश्वनाथम् ।
सुधैकपूर्णामपि चान्नपूर्णां त्यक्तुं कथं वा मनसाऽपि शक्यम् ॥

(१/३०)

सर्वस्य जन्तोर्जननी च जन्म-भूमिश्च नाकादतिरिच्यते हि ।
तत्रापि काशीं भवदूषणाशीं त्यक्तुं कथं वा विबुधो यतेत ॥

(१/३१)

इति । अनन्तरं तैं पुनः पुनः प्रार्थितः, जिगमिषुरपि,

उदन्तमेतं कथयाम्बभूव पतिः प्रियां चारुमतीं दृगन्तैः ।
सा चाऽपि साचीकृतलोचनेन मुखेन भावं विशदीचकार ॥

(१/३८)

भार्यायाः अङ्गीकृतिं स्वीकृतवानित्यनेन सान्दीपनेः सौजन्यं तावद्विशदीकृतम् । सान्दीपनेः पाठप्रवचननैपुण्यम् एवं प्रकटितं यथा-

तस्मिन् गुरौ देवगुरूपमाने विज्ञानबीजानि वपत्यजस्रम् ।
न चाऽप्ररूढं न च वाऽप्रवृद्धं न वाऽफलं किञ्चिददर्शि हृत्सु ॥

(१/४६)

इति । कुमाराणां समुद्रस्नाने ---"न चात्र वः, बहुविहार इति प्रवदन्पिता, सकृदिति प्रणयादनुमोदितः" इति पुत्रलालसानुमोदनं, तृतीयपुत्रस्य समुद्रनिमज्जनानन्तरं बहुविधपरिदेवनं, व्यासोक्तिभिः शनैः आश्वासनं तस्य महापण्डितस्य साधारणगृहस्थत्वं निरूपयन्ति । द्वितीय-सर्गान्तिमश्लोकः शोकसन्तप्तस्य, व्यासाश्वासितस्य तस्य हृदयस्थितिं सम्यक् चित्रयति ।

जन्मैव मास्तु यदि दित्ससि-मा विवाहं,
तं चेच्छसि-प्रकुरु पुत्रविहीनमेव ।
नो चेत्, कुपुत्रमथवापि सुपुत्रमेव,
दीर्घायुषैनमुपयोजय सर्वशक्ते ! (२/७६)

तृतीयसर्गे समित्कुशाद्यानेतुं रामकृष्णौ सुदाम्ना सह प्रान्तारण्यं गत्वा वर्षाप्लुतौ यदाऽभूताम्, तदन्वेषणे सावेगो गुरुः सान्दीपनिः गहनमेत्य वात्सल्यप्रपूर्णमेवं बहु प्रावदत् । यथा -

सुता महत्कष्टमिहानुभूतं, वर्षाप्लुतेऽस्मिन् गहने यदर्थम् ।
प्रियाणि सर्वाणि यदर्थमेव देहो भवद्भिस्तृणमन्वभावि ॥(३/४६)
औद्दालकश्चारुणिरद्य दृष्टो मया भवद्दर्शनलालसेन ।(३/४८)

इत्यादीनि तद्वात्सल्यप्रपूरितानीति सम्भाव्यम् ।

गुरुदक्षिणां प्रदित्सुकौ रामकृष्णौ प्रति सान्दीपनेः प्रथमवचनम्-
"युष्मच्छिष्यत्वमेवाऽस्खलितमतिसुपर्याप्तम्" (४/९३)

इति ।

''अस्माकं कृतकृतत्यता किमु भवेद्विद्याधनाकर्षिणाम्
तस्मात् श्रीगुरुदेव वाञ्छितमिदं त्वेकं वृथा मा कृथाः ।। (४/९४)

इति ताभ्यां पुनः प्रार्थितः गेहिन्या सम्भाष्य, भगवतः लीलामानुषत्वं सम्भाव्याऽपि, एवं सगद्गदं, गाम्भीर्ययुक्तं च भणितं तेन,

भो ! राम ! कृष्ण ! पतितस्सुचिरात्प्रभासे
पुत्रश्शिवो वयममी पतिताश्शुगब्धौ । इति (५/६८)

एतत्सर्वं सान्दीपनिपात्रं प्रशंसापात्रं करोति नूनम् । एवं दिङ्मात्रं सान्दीपनिपात्रचित्रणावैशिष्ट्यं प्रदर्शितम् ।

## कवेः लोकज्ञता, औचित्यपरिपोषणञ्च

एत द्द्वयञ्चात्र प्रत्यक्षरं दृश्यमिति विज्ञापयामि । अपि च-

''क्व वास्ति माया किमु रूपमिष्यते
स योगिराट् कः ? कथमस्य तज्जयः ? ।
स्वरूपमज्ञानमशेषजीवगा
चिदेकनिष्ठो जयति स्वशीलनात् ।। (६/६३)

इत्यादिश्लोकाः वेदान्तविज्ञानपूरिताः काव्यस्यास्य समधिकं गौरव मातन्वन्ति ।

पुत्रसञ्जीवनानन्तरं गुरुदम्पत्योः भगवता सानुग्रहं गोलोको विदर्शितः इति कवेः कल्पनं मनोहरं भवति ।

यद्रत्नरोचिरुदयैस्सरजोऽरजोऽपि,
यच्चाद्वितीयमपि राधिकया द्वितीयम् ।
गोगोपिकाशतपरीवृतमप्यगोपं
यद्धाम तद्गुरुसतीक्षणभोग्यमासीत् ।। (६/७३)

एवञ्च काव्यारम्भे

अहो महत्त्वं परमेश्वरस्य मुहर्मुहुस्तोतुमुदेति बुद्धिः ।
ब्रह्माण्डकोट्यो विलसन्त्यमुष्य देहे महाकाश इवोडुसङ्घाः ॥
(१/१)

हिरण्यगर्भाण्डविभाण्डकैक कोणेऽस्मदीयं भुवनं विभाति ।
चूडामणिस्थापितसत्यलोकं स्वपादपीठायितनागलोकम् ॥ (१/२)

इत्यादिश्लोकैः परमेश्वरमहत्त्वं, सृष्टिप्रकारं चोपवर्ण्य, काव्यान्ते गोलोक-प्रदर्शनादिना पुनः मुक्तिदायिनीं भगवद्भक्तिमाद्यन्तं परिपोषितवानयं कविशेखरः । ग्रन्थान्तश्लोकोऽयं यथा-

गोलोकालोकनेन प्रमुदितवदनश्रीगुरुभ्यां गुरुभ्यां
आशीर्भिः प्रेष्यमाणौ कृतजयनिनदैरुज्जयिन्यां जनौघैः ।
तुष्टौ श्रीरामकृष्णावनुकलमुदयत्पुत्रविश्लेषबाष्प-
स्थानादेशं स्वपित्रोः सपदि विदधतुः लोचनानां प्रहर्षम् ॥
(६/७४)

इति ।

सद्यःपरनिर्वृतिरूपकं प्रधानं प्रयोजनं सम्पादयन् 'शिवेतरक्षति' रूपं प्रयोजनञ्च सम्यक् साधयन् मृतपुत्रपुनरुज्जजीवनरूपकेण मङ्गलेन सम्पूर्णोऽयं ग्रन्थराजः ।

महाकाव्यस्यास्य परिचयोऽयं मया स्थूलारुन्धतीन्यायेन केवलं कृतः। अनेन प्ररोचिताः सहृदयशेखराः सम्पूर्णग्रन्थपठनपाठनास्वादनादिभिः परां तुष्टिमनुभवन्तु ।

इदं काव्यम् १९८६ वत्सरे आन्ध्रलिप्यां केवलं मुद्रितम् । देवनागर्यां प्रकाशयितुम आर्थिकालम्बनम् अभिलषन्नेव २२-४-१९९० दिने देहयात्रां समाप्तवानयं कविवर्यः अस्मत्पिता श्री मुल्लपूडि नारायणशास्त्री ।

## प्रशस्तिकाव्य-परम्परा का नवोन्मेष

# अभिराज डॉ० राजेन्द्र मिश्र-प्रणीत 'कस्मै देवाय हविषा विधेम !!'

इन्दु प्रकाश मिश्र

प्रशस्ति गायन की परम्परा भारतवर्ष में वैदिक युग से ही चली आ रही है। सच कहा जाय तो सम्पूर्ण ऋग्वेद ही ऋचाओं अर्थात् देवस्तुतियों का संग्रह मात्र है। ऋक् का अर्थ ही होता है-अंर्च्यते स्तूयतेऽनया इति ऋक् अर्थात् जिसके माध्यम से किसी की समर्चना की जाय। समर्चना अथवा स्तवन सदैव किसी गुणवान् श्रद्धेय अथवा महामहिम की जाती है। स्तवन की इस प्रक्रिया में स्तोता स्तोव्य के प्रति सर्वात्मना समर्पित होता है। जब तक व्यक्ति किसी का 'गुणनिर्जित दास' नहीं बनता तब तक उसकी स्तुति या प्रशंसा नहीं कर सकता। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है।

स्तवन की यह परम्परा सम्भवतः सर्वप्रथम देवताओं और मनुष्यों के बीच प्रारम्भ हुई। ऋग्वेद में इस प्रशस्ति परम्परा का उदात्ततम रूप देखने को मिलता हैं। देवगण युद्ध भूमि में महाबली इन्द्र के सद्गुणों का गायन करते हैं। महर्षि गृत्समद ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के बारहवें सूक्त में कहते हैं-जिसने इस नश्वर भुवन को स्थिर बनाया निकृष्ट असुओं को नरक में खदेड़ दिया और जो शत्रुओं को निगल जाता है, हे ऋषियो ! वही इन्द्र है।[१]

इन्द्र की तरह मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने सविता, पूषा, हिरण्यगर्भ, मित्रावरुण, रुद्र, विष्णु, एवं मित्र आदि देवताओं के भी विशिष्ट गुणों का संस्तवन किया है। यह तो हुई देवस्तवन की बात। देवता मनुष्यों के सुख दुःख के साथी अवश्य हैं परन्तु मनुष्य के साथ उनका साहचर्य और कृपाभाव प्रत्यक्ष नहीं है। वस्तुतः देवकृपा भी एक

---

१- द्रष्टव्य ऋग्वेद २/१२/४

अनुभव संवेद्य तत्त्व है । परन्तु मनुष्य तो एक सामाजिक प्राणी है । फलतः सांसारिक सुखों एवं दुःखों में उसे जो सहायता अपने पड़ोसियों, मित्रों, एवं बन्धुओं से प्राप्त होती है वह सांसारिक दृष्टि से देवसहायता से भी अधिक महत्त्व की होती है । देवता दुःख के क्षणों में केवल आत्मबल देते हैं परन्तु आँसू तो कोई प्रियजन ही पोंछता है । युद्ध के संकट में प्रजा की रक्षा मुख्यतः राजा ही करता है । इसी प्रकार सहानुभूति, ममता, करुणा, दान एवं सान्त्वना आदि के कार्य भी सत्पुरुषों द्वारा ही सम्पन्न होते हैं ।

फलतः जैसे आध्यात्मिक अथवा आमुष्मिक दृष्टि से आर्त व्यक्ति देवता का स्तवन करता है उसी प्रकार लौकिक अथवा सामाजिक दृष्टि से कुछ महापुरुषों की भी स्तुति करता है । ये महापुरुष प्रायः ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न श्रेष्ठ विद्वान् होते हैं अथवा उदात्त आदर्शों से अनुप्राणित राजनेता । या तो वे लोककल्याण के लिए दत्तचित्त सन्त और महात्मा होते हैं या फिर अपने शील स्वभाव एवं सौजन्य के कारण सम्पूर्ण समाज के आराध्य कोई सत्पुरुष । कभी कभी अपने समवयस्क मित्र अथवा अपने से भी अल्पवय कोई व्यक्ति अपने किसी विलक्षण गुण के कारण वन्दनीय बन जाता है ।

ऐसे महामहिमशाली मनुष्यों की भी स्तुति परम्परा का उदय हम ऋग्वेद के "नाराशंसी" मन्त्रों में पाते हैं । पुराणों में तो पद-पद पर इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं । इक्ष्वाकु, मान्धाता, हरिश्चन्द्र, नल, राम, युधिष्ठिर एवं वासुदेव कृष्ण आदि की कितनी ही भावभीनी स्तुतियाँ एवं गुणानुवाद हम पुराणों में पाते हैं । वस्तुतः प्रशस्ति योग्य मनुष्य भी स्तोता की दृष्टि में देवता ही होता है ।

देवताओं और मनुष्यों की यही प्रशस्ति परम्परा इतिहास के विभिन्न मोड़ों से यात्रा करती हुई बीसवीं शती के संस्कृत वाङ्मय में भी प्रविष्ट हुई है । जहाँ एक ओर हम प्रयागप्रशस्ति, ऐहोलप्रशस्ति, गिरनारप्रशस्ति एवं मन्दसौरप्रशस्ति में क्रमशः महाराज समुद्रगुप्त, विष्णुवर्धन, रुद्रदामन् एवं दशपुर के गुणोत्कर्ष का दर्शन करते हैं वहीं पण्डितराज जगन्नाथ के प्राणनारायण, जगदाभरण, एवं आसफविलास आदि में असम नरेश प्राणनारायण, राणा जगतसिंह एवं आसफखान के सद्गुणों की बानगी पाते हैं ।

संस्कृत-वाङ्मय में प्रशस्ति काव्यों की एक लम्बी परम्परा है । कल्हण, बिल्हण, श्रीहर्ष, विद्यानाथ तथा बल्लालसेन सरीखे कवियों ने उत्कृष्ट कोटि के प्रशस्तिकाव्य लिखे हैं । यह परम्परा ब्रिटिश शासनकाल में भी पल्लवित हुई । महारानी विक्टोरिया एवं जार्ज पञ्चम के सम्मान में अनेक कवियों ने कवितायें लिखीं हैं । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जब से किसी दिवंगत महापुरुष के स्मृतिग्रन्थ अथवा जीवित महापुरुष के अभिनन्दनग्रन्थ के प्रकाशन की परम्परा का उदय हुआ है तब से प्रशस्ति काव्य

लिखना एक औपचारिक कविकर्म बन गया है । फिर भी प्रतिभा के धनी स्वाभिमानी प्रतिष्ठित रचनाकार 'जिस किसी' के लिए प्रशस्तियाँ नहीं लिख रहे हैं, जो सच्चे अर्थों में महनीय वन्दनीय एवं प्रशंसायोग्य हैं उन्हीं का गुणानुवाद किया जा रहा है।इस क्षेत्र में आचार्य डॉ0 रेवा प्रसाद द्विवेदी, डॉ0 भास्कराचार्य त्रिपाठी, डॉ0 राधावल्लभ त्रिपाठी, डॉ0 वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी एवं एवं डॉ० रमाकान्त शुक्ल आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

परन्तु प्रशस्ति काव्य के लेखकों में अभिराज डॉ0 राजेन्द्र मिश्र अपना एक विशेष स्थान रखते हैं । अपनी मौलिक संस्कृत रचनाओं के लिए उत्तर-प्रदेश शासन द्वारा नवधा पुरस्कृत, कथा-संग्रह 'इक्षुगन्धा' के लिए साहित्य अकादमी नई दिल्ली द्वारा सम्मानित डॉ0 मिश्र सम्भवतः अपने ढंग के अकेले साहित्यसाधक हैं जिनकी प्रतिभा वाङ्मय की प्रत्येक विधा में समान रूप से प्रस्फुटित हुई है ।

अब तक डॉ0 मिश्र की सोलह मौलिक कृतियाँ प्रकाश में आ चुकी हैं जिनमें जानकीजीवनम् सरीखे इक्कीस सर्गों के महाकाव्य के अतिरिक्त तीन गीत-संग्रह (वाग्वधूटी, मृद्वीका, श्रुतिम्भरा) पाँच एकाङ्की-संग्रह (नाट्यपञ्चगव्यम् अकिञ्चनकाञ्चनम्, नाट्यपञ्चामृतम्, चतुष्पथीयम्, रूपरुद्रीयम्) पाँच खण्ड काव्य (आर्यान्योक्तिशतकम्, नवाष्टकमालिका, पराम्बाशतकम्, अभिराजसप्तशती, शताब्दीकाव्यम्) एक कथा संग्रह (इक्षुगन्धा) तथा एक नाटिका (प्रमद्वरा) है । डॉ0 मिश्र की प्रायः इतनी ही रचनायें अभी अप्रकाशित हैं । इधर वामनावतरणम् महाकाव्य, रूपविशंतिका (एकाङ्की संग्रह) पञ्चकुल्या (पाँच शतकों का संग्रह) तथा 'कस्मै देवाय हविषा विधेम ' (प्रशस्ति काव्य) मुद्रणाधीन हैं । कस्मै देवाय हविषा विधेम प्रशस्ति काव्य परम्परा में एक नवीन उन्मेष है । इस ग्रन्थ में कुल सात शीर्षक हैं-देवस्तुतिः, महात्मस्तुतिः, विद्वत्स्तुतिः, सत्पुरुषस्तुतिः लोकनायकस्तुतिः, रूपान्तराणि तया प्रकीर्णम् ! देवस्तुति खण्ड में गङ्गा, कावेरी, चिदम्बर, मीनाक्षी, बृहदीश्वर, जम्बुकेश्वर, अचिन्त्य (बाली द्वीप के हिन्दुओं के आराध्य भगवान् शिव-भटार अतीन्तिय) एवं शिलादुर्ग मन्दिर (तिरुचिरापल्ली) से सम्बद्ध सप्तक अथवा अष्टक कोटि की रचनायें हैं ।

महात्मस्तुति खण्ड में कालिदास, भवभूति धारानरेश भोज , गुरु गोविन्द सिंह, स्वामी एकरसानन्द (मैनपुरी), योगिराज अरविन्द, अरविन्दाश्रम की माँ, काञ्ची के परमाचार्य चन्द्रशेखर सरस्वती तथा शङ्कराचार्य जयेन्द्र सरस्वती की सप्तक अथवा अष्टक कोटि की प्रशस्तियाँ संगृहीत हैं ।

विद्वत्स्तुति खण्ड में प्रो0 शार्पे (बेल्जियम) म0 म0 गोपीनाथ कविराज, चिन्तामणि बालकृष्ण राव, पं0 वासुदेव द्ववेदी, पं0 बलदेव उपाध्याय, डॉ0 आद्याप्रसाद मिश्र, महीयसी महादेवी वर्मा, डॉ० लक्ष्मीकान्त दीक्षित डॉ0 चण्डिकाप्रसाद शुक्ल,

विद्यानिवास मिश्र, डॉ0 सत्यव्रत शास्त्री, डॉ0 रेवा प्रसाद द्विवेदी, पं० शशिधर शर्मा, आचार्य केशवदेव, पं0 बाबूराम अवस्थी एवं प्रो0 श्रीनिवास रथ की प्रशस्तियाँ हैं। प्रत्येक प्रशस्ति सप्तक अथवा अष्टक के रूप में लिखी गई है।

सत्पुरुषस्तुति खण्ड में पं0 हरिश्चन्द्रपति त्रिपाठी, दामोदर स्वरूप विद्रोही, दान बहादुर सिंह सूँड़ (फैजाबादी) पं0 राम समुझ पाण्डेय, विजय देव नारायण शाही से सम्बद्ध प्रशस्तियाँ संगृहीत हैं।

लोकनायकस्तुति खण्ड विशेष महत्त्व का है इस खण्ड में गान्धी, नेहरू, मालवीय जी, राजेन्द्र बाबू, पुरुषोत्तमदास टण्डन, सुभाषचन्द्र बोस, लोहिया जी, गणेश शङ्कर विद्यार्थी, आचार्य नरेन्द्र देव, बाबू सम्पूर्णानन्द, पं0 कमलापति त्रिपाठी, वी0 वी0 गिरि, श्रीमती इन्दिरा गान्धी, पेराला रत्नम्, सत्यनारायण रेड्डी के अतिरिक्त महामहिम सुहार्तो (राष्ट्रपति इण्डोनेशिया) तथा नेल्सन मण्डेला के वैयक्तिक गुणों का गान कवि ने सप्तकों अथवा अष्टकों में किया है। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि-श्रीमती इन्दिरा गाँधी, वेंकट वराह गिरि एवं राष्ट्रपति सुहार्तो को स्वरचित अभिनन्दन-पत्र कवि ने यथोचित अवसर पर उन्हें स्वयं अर्पित किया है।

सातवें प्रकीर्ण खण्ड में अनेक प्रकार की रचनायें हैं। जैसे- माननीय राजा दिनेश सिंह द्वारा बी0 पी0 सी0 एल0 (नैनी) का शिलान्यास, प्रयाग विश्वविद्यालय, बालीद्वीप तथा मेहरौली की प्रशस्तियाँ। इसी खण्ड में कवि द्वारा, मित्रों को प्रेषित श्लोकबद्ध पत्र,शुभकामनायें आदि भी हैं।

इस प्रकार अभिराज डा0 राजेन्द्र मिश्र प्रणीत इस प्रशस्ति काव्य में पचास से भी अधिक अष्टक संगृहीत हैं। श्लोक गणना की दृष्टि से 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' में डा0 मिश्र द्वारा पाँच सौ से भी अधिक प्रणीत श्लोकों का संग्रह है।

इस प्रशस्ति काव्य की एक और विशेषता है, वह यह कि-इसमें टामस ट्रान्सटोमर तथा टेड्यूज जैसे विदेशी कवियों की अंग्रेजी कविताओं के डॉ0 मिश्र द्वारा किये गये संस्कृत रूपान्तर भी संगृहीत किये गये हैं। श्री अनिरुद्ध नीरव (सर्गुजा) के अनेक छत्तीसगढ़ी गीतों तथा अपने ही हिन्दी गीतों के अनेक संस्कृत रूपान्तर भी इसी संग्रह में विद्यमान हैं। साथ ही साथ बाली द्वीप के प्रति अर्पित 'विदा बाली' शीर्षक कविता का संस्कृत रूपान्तर भी इस प्रशस्ति काव्य की महनीयता को बढ़ाता है। संक्षेप में डॉ0 राजेन्द्र मिश्र की यह नाराशंसी रचना प्रशस्ति काव्य के क्षेत्र में उनका एक विलक्षण योगदान कही जायेगी।

डॉ0 मिश्र की इन प्रशस्तिपरक कविताओं का रचनात्मक-आयाम भी महत्त्वपूर्ण है। सम्भवतः महात्मा गाँधी एवं महामना मालवीय के सम्मान में लिखे गये सप्तक सर्वाधिक प्राचीन हैं। ये रचनायें कवि द्वारा अपने विद्यार्थी जीवन में लिखी गई थीं। प्रयाग विश्वविद्यालय की प्रशस्ति तो १९६२ ई0 में लिखी गई जबकि कवि बी0 ए0

द्वितीय वर्ष का हीं छात्र था । इस प्रकार ''कस्मै देवाय हविषा विधेम'' की रचनायें पूरे तीन दशकों के अन्तराल में लिखी गई हैं ।

इन प्रशस्तियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये घिसे-पिटे प्रशंसापरक विशेषणों का जमघट मात्र नहीं है । वस्तुतः इन श्लोकों में उन उन महापुरुषों का सम्पूर्ण व्यक्तित्व रूपायित हो उठा है । महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज के सम्पर्क में कवि ऐसे ही तथ्यों का उल्लेख करता है जो किसी अन्य के सन्दर्भ में चरितार्थ नहीं हो सकते-

आनन्दोऽसौ विशुद्धः कलितगुरुतनुर्यस्य सत्त्वेऽनुविष्टः
वात्सल्यं यं ववार प्रशमितकलुषं मातुरानन्दमय्याः ।
ब्रह्माण्डं गूढगूढं करबदरनिभं यत्कृते, क्रान्तदर्शी
भूयात्पीयूषवर्षी सुरनिलयगतोऽप्यक्षतः कीर्तिशेषः ।।

इस पद्य में स्वामी विशुद्धानन्द एवं माता आनन्दमयी की चर्चा की गई है जो कविराज जी के जीवितसर्वस्व थे । श्री चिन्तामणि बालकृष्णराव के सम्मान में कवि लिखता है-

विद्यायागात्प्रसूतिं विमलमतिततिञ्चापि विद्वज्जनेभ्यः
प्रारब्धं पुण्यपूतं सुमधुरललितं स्नेहसिक्तं स्वभावम् !
ऊरीकृत्य प्रकृष्टां निखिलजनमनोरञ्जिकां लोककीर्तिं
प्राज्यं प्रोज्जृम्भमाणं कमपि नवनवं बालकृष्णं समीहे ।।

योगिराज अरविन्द का संस्तवन करते हुए कवि लिखता है-

प्रथमे वयसि समर्चितदेशो योगिजनोचित गैरिक़वेषः ।
क्रान्तिदुन्दुभिध्वनिविस्तारः श्री अरविन्दो विजयते !!
प्रौढे वयसि कृतात्मालोको योगसिद्धिभिर्विनिहतशोकः ।
पाण्डेचेरिसदाश्रमसंस्थः श्री अरविन्दो विजयते !!

'हे देविः शैशव में तुम्हें मां का प्यार नहीं मिला । यौवन में जीवितसर्वस्व पति भी तुमसे दूर हो गये । प्रौढ अवस्था में वटवृक्ष सरीखे यशस्वी पिता की छत्रछाया भी तुम्हें छोड़ गई और अब ? इस वार्धक्य में तुम्हारी आँखों का तारा पुत्र संजय भी तुम्हारा हृदय तोड़ गया । परन्तु इन वज्राघातों के बीच में भी तुम भारत राष्ट्र के अभ्युदयार्थ रात दिन प्रयत्नशील हो ! देवि इन्दिरा! तुम धन्य हो !'

इस व्याख्या के साथ जब कवि ने प्रयाग में श्रीमती गान्धी को अभिनन्दनपत्र

अर्पित किया था तो संजय की स्मृति में डूबी इन्दिरा जी अश्रुकातर हो उठी थी-

गतवति दिवि नाथे विद्धुरीणे फ़िरोजे

कथमपि हृदि शोकं भूरिवेगं नियम्य ।

पुनरपि पितृशोकं वैरिणां दुर्विरोधं

प्रियतनयवियोगं भालयन्ती स्थितासि !!

घेण्ट यूनिवर्सिटी बेल्जियम के संस्कृत विभागाध्यक्ष तथा कालिदास साहित्य के मर्मज्ञ प्रो० शार्पे को प्रेषित पत्र में कवि ने लिखा-

कल्याणीं कालिदासप्रथितकविकलां साधु मीमांसमानः

पाश्चात्त्ये दिग्विभागे स्वमतिनतिबलैर्यश्चकार प्रकाशम्।

विश्राम्यन् भूरिवर्षो नवजलदनिभस्साम्प्रतं बेटकोमे[१]

सोऽयं भूयाच्छतायुर्बुधजनमहितो मान्यशार्पेमहर्षिः ।

भारतभारती एवं ज्ञानपीठ पुरस्कारों से सम्मानित महीयसी महादेवी के प्रति कवि ने अपनी शुभकामना इन शब्दों में व्यक्त की थी-

त्वदीये व्याहारे तुहिनगिरिगाम्भीर्यमथवा

कृपादृष्टिर्नेत्रे हृदि च करुणाऽपारसरणिः ।

त्वया हिन्दी पूता नगरमपि वेणीत्रयमितं

महादेवि प्रीतेः सततमभिराजः प्रणमति ।।

आचार्यचरण बलदेवोपाध्याय की साहित्य सेवा के प्रति कवि का भाव पाठकों को भी श्रद्धाभिभूत बना देता है-

वाचा चित्तेन बुद्ध्या निमिषगणनया कर्मणा लेखनेन

वार्ताभिः पेशलाभिर्बुधसहचरणैरेकनिष्ठै रहोभिः ।

स्वापैरुत्थापनैर्वा प्रतिपलमनिशं श्वासनिःश्वासपुञ्जैः

सञ्चिन्वन् वाक्तपस्यां जयति बुधवरस्साधु बल्देवनामा ।।

---

१- सेवानिवृत्ति के बाद प्रो0 शार्पे अपने गृहनगर बेटकोम में ही रहते थे । १९८५ में यहीं, रघुवंश पढ़त-पढ़ते कुर्सी पर ही वह ब्रह्मलीन हो गये, यह सूचना डॉ0 मिश्र को डॉ0 शार्पे के पुत्र ने दी थी ।

आचार्य केशवदेव (कानपुर) की मृत्यु से शोकार्त कवि ने लिखा-

सौजन्यं जडति प्रमोहविकला प्रज्ञापि संलक्ष्यते

गीतं रोदिति पाण्डिती प्रशिथिला ग्लानिङ्गता साहिती ।

स्वर्याते त्वयि नन्दनन्दनपदाम्भोजैकमाध्वीव्रते

वाणी मूकति वाग्मिनां विरहिणी नो कस्य किं जायते??

भारतीय धर्म, दर्शन,संस्कृति एवं अध्यात्म के महापडित, महाप्राज्ञ बाबू सम्पूर्णानन्द को कौन नहीं जानता ? कवि उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए लिखता है-

वेदमंत्ररचनासन्धानैर्दूरीकृतगौराङ्गाज्ञानः ।

प्रज्ञावैशारदीमरन्दो जयति विज्ञसम्पूर्णानन्दः ।।

निगमागमपरिशीलनदक्षो भारतीयसंस्कृतिवृतशिक्षः ।

प्राक्तनसरणिसमाहितपक्षो जयति जगति कृतसंस्कृतरक्षः।।

चिद्विलासकुशलस्सदधीती भरतधराऽक्षतगौरवगीती

पृथुचिन्तननिर्झरनिस्यन्दो जयति जयति सम्पूर्णानन्दः ।।

डॉ0 मिश्र संस्कृत रचनाकारों की समूची पीढ़ी को साथ लेकर जी रहे हैं उनकी कीर्तियों में समकालीन रचनाकारों की प्रशस्तियाँ भी पदे-पदे उपलब्ध हैं । संस्कृत कवियों की पुरानी परिपाटी के ही अनुसार,स्वयं को भी पीढ़ी से जोड़ते हुए, वह श्रुतिम्भरा में लिखते हैं-

प्रागल्भ्यं काश्यपोऽस्याः प्रणतिपरिमितो बच्चुलालोऽपि मानः

कारुण्यं श्रीनिवासस्स्मितचटुलकला भास्करो वल्लभोऽङ्कः।

रोषः कान्तो रमाया निभृतरसकथा दीक्षितव्यूढपुष्पा

लावण्यञ्चाभिराजो जयति नवनवा संस्कृता वाग्वधूटी!!

# साहित्य अकादमी पुरस्कृत संस्कृत कथाकृति

# 'इक्षुगन्धा'

डा० योगेशचन्द्र दुबे

साहित्य अकादमी भारतीय संविधान द्वारा अनुमोदित भारतीय भाषाओं में प्रतिवर्ष लिखे जाने वाले सर्वोत्तम साहित्य को संस्तुत एवं सम्मानित करने वाली एक स्वायत्त संस्था है। प्रारम्भ से ही साहित्य अकादमी का उद्देश्य रहा है, भारतीय साहित्य, संस्कृति एवं कला का सर्वांगीण पल्लवन, सरंक्षण एवं सम्पोषण। स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनन्तर देश के शीर्षस्थ साहित्य एवं कला को इस अकादमी से जोड़ने का प्रयास रहा है, चाहे वह शासी निकाय के रूप में हो, अथवा किसी न किसी भारतीय भाषा में सर्वश्रेष्ठ मान अर्जित करने वाले सारस्वत साधक के रूप में। साहित्य अकादमी पुरस्कार की प्रक्रिया इतनी गोपनीय एवं पेचीदा है कि उसके निर्णय पर किसी भी प्रकार का कोई संदेह किया ही नहीं जा सकता है। अनेक विशेषज्ञों, उपसमितियों तथा समितियों की सबल संस्तुतियों का संबल प्राप्त करके ही कोई रचना श्रेष्ठता के शिखर तक आ पाती है। यही कारण है कि साहित्य अकादमी का साहित्यिक पुरस्कार अर्थ की दृष्टि से ज्ञानपीठ पुरस्कार से बहुत कम होता हुआ भी मान-सम्मान और प्रतिष्ठा की दृष्टि से उससे कहीं अधिक श्रेयस्कर माना जाता है।

अभिराज डॉ० राजेन्द्र मिश्र की संस्कृत कथाकृति 'इक्षुगन्धा'[१] को १९८८ सत्र के साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित होने का गौरव प्राप्त हुआ है। इस महान राष्ट्रीय पुस्कार को प्राप्त करने वाले डॉ० मिश्र, अब तक सम्मानित किये गये संस्कृत विद्वानों में सर्वाधिक कम अवस्था के साहित्यकार हैं। यह भी कुछ कम गौरव की बात नहीं है।

अभिराज डॉ० राजेन्द्र मिश्र संस्कृत रचनाकारों की वर्तमान पीढ़ी के सर्वाधिक समर्थ, सशक्त और सक्रिय रचनाकार हैं। यह तथ्य प्रायः सर्व विदित है। सन् १९७२ से १९८७ के बीच मात्र १५ वर्षों में डॉ० मिश्र की १६ मौलिक संस्कृत

---

१. 'इक्षुगन्धा की भाषावैज्ञानिक समीक्षा' शीर्षक लघुशोध प्रबन्ध निबन्ध-लेखक ने श्री सत्यव्रत शर्मा के निर्देशन में परीक्षार्थ प्रस्तुत किया है (सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी)

कृतियाँ प्रकाश में आ चुकी हैं । ये कृतियाँ कवि की चतुरस्र प्रतिभा की ज्वलन्त साक्षी हैं । खण्डकाव्य, नवगीत, महाकाव्य, एकांकी, नाटिका एवं कथा- इन समस्त विधाओं में समान गति और समान योग्यता से उत्कृष्ट साहित्य सर्जना करने वाले डॉ० मिश्र संभवतः अपने ढंग के एक मात्र रचनाकार हैं । आर्यान्योक्तिशतकम्, नवाष्टकमालिका, पराम्बाशतकम्, शताब्दीकाव्यम् और अभिराजसप्तशती-डॉ० मिश्र प्रणीत खण्डकाव्य हैं तो २१ सर्गों में पल्लवित रामकथा के नये प्रस्थान की स्थापना करने वाला ग्रन्थ जानकीजीवनम् उनका श्रेष्ठ महाकाव्य है । वाग्वधूटी, मृद्वीका और श्रुतिम्भरा में यदि डॉ० मिश्र के लगभग २०० संस्कृत नवगीत प्रकाशित हुए हैं तो इक्षुगन्धा में उनकी जनजीवन से जुड़ी आठ मर्मस्पर्शी कहानियाँ संकलित हैं । अकिञ्चनकाञ्चनम् नाट्यपञ्चगव्यम्, चतुष्पथीयम्, नाट्यपञ्चामृतम् और रूपरुद्रीयम् में यदि डॉ० मिश्र के नवयुगीन समस्याओं से जुड़े उत्कृष्ट एकांकी प्रकाशित हुए हैं तो प्रमद्वरा डॉ० मिश्र द्वारा नाट्यशास्त्रीय पैमाने पर लिखी गयी एक विशुद्ध नाटिका है ।

अभिराज डॉ० राजेन्द्र मिश्र की रचना प्रक्रिया की गुणवत्ता का आकलन हम इसी तथ्य से कर सकते हैं कि देश और विदेश के श्रेष्ठतम प्राच्य भाषाविदों और संस्कृत मनीषियों ने उनके सारस्वत अध्यवसाय का मुक्त कण्ठ से अभिनन्दन किया है । डॉ० सूर्यकान्त, डॉ० सिद्धेश्वर भट्टाचार्य, प्रो० सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी, डॉ० धर्मेन्द्र कुमार गुप्त तथा घेण्ट युनिवर्सिटी बेल्जियम के स्वनामधन्य प्रो० शार्पे जैसे दिवंगत विद्वानों ने डॉ० मिश्र की रचना प्रक्रिया का सहर्ष अभिनन्दन किया है । ठीक इसी प्रकार हिन्दी एकांकी सम्राट्, पद्मभूषण डॉ० रामकुमार वर्मा ने उनके एकांकियों की कथावस्तु एवं शैली को हृदय से सराहा है । आचार्य बलदेव उपाध्याय, डॉ० विद्यानिवास मिश्र, डॉ० सत्यव्रत शास्त्री, डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी, प्रो० आर० वासुदेवन पोट्टी, डॉ० मण्डन मिश्र, डॉ० पी0 डी0 अग्निहोत्री, डॉ० रामकरण शर्मा एवं डॉ० भोलाशंकर व्यास जैसे साहित्य मनीषियों ने भी डॉ० मिश्र की रचनाओं के विभिन्न पक्षों की सराहना की है ।

उत्तर प्रदेश शासन ने अभिराज डॉ० राजेन्द्र मिश्र को सन १९७२ से १९८७ के बीच नौ बार पुरस्कृत किया है । इन पुरस्कारों के अतिरिक्त भी डॉ० मिश्र को उनकी संस्कृत सेवाओं के लिये वाल्मीकि पुरस्कार (१९८७) तथा हिन्दी रचनाओं के लिये राष्ट्रीय आत्मा पुरस्कार (१९८३) एवं डॉ० रामकुमार वर्मा बाल एकांकी पुरस्कार (१९८८) प्राप्त हो चुका है । देश के विभिन्न अंचलों में अपनी महान साहित्य यात्राओं के लिये अनेकशः अभिनन्दित, विक्रमशिला विद्यापीठ बिहार द्वारा विद्यासागर (मानद डी0 लिट्0) उपाधि द्वारा अलङ्कृत तथा लगभग १५ साहित्य पुरस्कारों से सम्मानित डॉ० राजेन्द्र मिश्र अपने जीवन के पाँचवें दशक के पूर्वार्द्ध में ही राष्ट्रीय ख्याति अर्जित कर चुके हैं । सन् १९८७ से १९८९ तक उदयन

विश्वविद्यालय, बाली, इण्डोनेशिया में विज़िटिंग प्रोफेसर के पद पर रहते हुए अनेक महनीय साहित्यिक कार्यों को सम्पन्न कर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति भी अर्जित की है।

यह भी कम सुखद आश्चर्य नहीं है कि एक सहृदय कवि और सर्वाधिक सक्रिय एकांकीकार के रूप में प्रतिष्ठापित डॉ० मिश्र को राष्ट्र का सर्वोच्च साहित्य अकादमी पुरस्कार उनके किसी काव्य अथवा नाट्यकृति पर न मिलकर कथाकृति इक्षुगन्धा पर मिला। इस सन्दर्भ में साहित्य अकादमी की पुरस्कार पुस्तिका में डॉ० मिश्र के सन्दर्भ में प्रकाशित यह टिप्पणी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है-''पुरस्कृत कृति इक्षुगन्धा कहानियों का संकलन है। ये कहानियाँ पाश्चात्त्य प्रारूप पर लिखी गई हैं और यह शैली संस्कृत साहित्य के लिये नयी है। इन कहानियों में वर्तमान समय की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की पड़ताल की गई है। अपनी प्रांजल शैली और परिष्कृत भाषा के लिये यह कृति समकालीन संस्कृत साहित्य को महत्त्वपूर्ण योगदान मानी गई है।''

साहित्य अकादमी द्वारा नियोजित श्रेष्ठ समीक्षक श्री पाण्डुरंगाराव ने भी इक्षुगन्धा के सन्दर्भ में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण टिप्पणियाँ दी हैं, और अन्त में कहा है,

Such works can certainly promote, propagate and penetrate into the fragrance and sweetness of Sanskrit, the language of culture and the cultured.

(—Indian literature, No. 132, Sahitya Akadami)

'इक्षुगन्धा' जनजीवन से जुड़ी डॉ० मिश्र की आठ कहानियों का संग्रह है। 'इक्षुगन्धा' ग्रन्थ के शीर्षक के साथ ही साथ, इसके अन्तर्गत उल्लिखित एक कथा का भी शीर्षक है जो अबोध शैशव में संस्कारबद्ध तथा युवावस्था के प्रथम चरण में पल्लवित एक प्रणयी युगल के पवित्र प्रेम का प्रतीक है। इक्षुगन्धा काश नामक एक तृण विशेष का नाम है जिसमें शरद् ऋतु के आते ही सफेद रंग के फूल निकलने लगते हैं। कथानायक अपनी प्रणयिनी के साथ इक्षुगन्धा के इन्हीं घने वनों में भविष्य के सपने संजोया करता था।

इस कथासंग्रह की दो प्रमुख विशेषतायें हैं-तथ्य चयन तथा कथाशैली। सहृदय कवि एवं समालोचक अभिराज डॉ० राजेन्द्र मिश्र नागर संस्कृति की उपज नहीं हैं। उत्तर प्रदेश के जौनपुर जनपद में सई नदी के तट पर बसे द्रोणीपुर नामक गाँव में २६ दिसम्बर १९४३ ई० को हुआ कवि गाँव की ही माटी में खेल-कूद कर पला-बढ़ा और प्रकृति की गोद में ही उसके कविता के स्वर फूटे। शिक्षा का पूर्वार्द्ध गाँव के ही परिवेश में बीता। आज भी कथाकार को अपनी जन्मभूमि से, अपने जवार से, यहाँ तक कि गाँव के खेतों-खलिहानों, अमराइयों एवं टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों से अन्तरंग प्रेम है। सच तो यह है कि कथाकार का व्यक्ति भले ही आज विश्वविद्यालय का

प्राध्यापक है लेकिन उसका मन अभी भी लोकगीतों में रचे-बसे गाँवों में ही रहता है ।

इसी ग्राम्य वातावरण से डॉ० मिश्र ने अपनी कहानियों की सामग्री बटोरी है। यदि जिजीविषा में छाटे भाई-बहनों की शिक्षा-दीक्षा के लिये संघर्ष कर रही एक पितृहीन युवती का आत्मबलिदान चित्रित है तो 'सुखशयितप्रच्छिका' में गोंडा जिले की कुआनों नदी के तट पर रहने वाले एक असहाय विद्यार्थी का स्वावलम्बी बनने का अथक प्रयास हैं। यदि शतपर्विका में पुत्र प्रप्ति के मोह में बरबस परिवार वृद्धि करने वाले तथा कन्याओं का निरन्तर अपमान करने वाले एक असहृदय पिता की आत्मशुद्धि वर्णित है तो ''अनामिका'' में समाज के भय से किसी निष्ठुर माँ द्वारा नाले के किनारे पर छोड़ी गई एक नवजात कन्या की समस्या को समाज के समक्ष रखा गया है । इसी प्रकार ''भग्नपञ्जरः'' में विधवा बेटी को सदाचार की शिक्षा देने वाले लम्पट पिता की नग्नता का चित्रण है तो ''एकहायनी'' में अनभीष्ट दाम्पत्य संबधों से जन्मी एक निर्दोष कन्या की समस्या सामने रखी गई है । पूरे संग्रह में ''ताम्बूलकरङ्कवाहिनी'' ही एकमात्र ऐतिहासिक परिवेष की कथा है, अन्यथा सभी कहानियाँ आज की उन ज्वलन्त सामाजिक समस्याओं से जुड़ी हैं, जिनमें दहेज, गर्भपात, वैवाहिक षड्यंत्र, विधवा दुर्दशा और परिवार नियोजन आदि आते हैं ।

इक्षुगन्धा का दूसरा अधिक महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य है-कथाओं के उपस्थापन की शैली जिसकी प्रशंसा स्वयं साहित्य अकादमी की शीर्षस्थ निर्णय समिति ने भी की है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद यद्यपि अनेक कथाकारों ने कथालेखन का प्रयास किया है, परन्तु कथा की पारम्परिक शैली का मोह कोई नहीं छोड़ सका । संस्कृत की कथायें प्रायः हितोपदेश और पञ्चतन्त्र की शैली में कस्मिंश्चिदधिष्ठाने से प्रारम्भ होती रही हैं, परन्तु इक्षुगन्धा की कहानियाँ प्रस्तुति में उतनी ही नवीन हैं जितनी देश की किसी अन्य भाषा मे लिखी गई कहानियाँ हैं । शैली की इस नवीनता का एकमात्र कारण यह है कि डॉ० मिश्र संस्कृत के ही नहीं, राष्ट्रभाषा हिन्दी के भी अखिल भारतीय स्तर पर प्रतिष्ठित एक श्रेष्ठ कवि एवं कथाकार हैं । वर्तमान शतक के सातवें दशक में ही डॉ० मिश्र की अनेक हिन्दी कहानियाँ 'शाकम्भरी' (सहारनपुर) तथा श्री अमृतराय द्वारा सम्पादित 'नई कहानियाँ' (इलाहाबाद) में प्रकाशित हो चुकी थीं और पाठकों ने उन्हें मुक्तकंण्ठ से सराहा भी था । 'डूबता कण्ठ' 'भवानी' तथा 'देवेरा हजारी' जैसी लोकप्रिय कहानियाँ डॉ० मिश्र की ही उर्वर लेखनी से प्रसूत हुई थीं ।

हिन्दी साहित्य की नवीनतम प्रवृत्तियों से जुड़े होने के कारण डॉ० राजेन्द्र मिश्र संस्कृत नवलेखन में भी परम्परामुक्त लेखन के पक्षधर हैं । सच तो यह है कि उनके लेखन में नई पुरानी मान्यताओं का एक अद्‌भुत सामञ्जस्य है । उनका अध्ययन क्षेत्र विस्तृत है, विविध भाषा में प्रणीत साहित्य का उन्होंने गहन अध्ययन किया है,

इतिहास एवं संस्कृति में उनकी गहरी पैठ है, उनका अन्तर्मन एवं लेखन राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है। यह सारा का सारा प्रभाव इक्षुगन्धा में संकलित कहानियों के अन्तर्गत उजागर हुआ है। अनेक कहानियाँ पूर्वस्मृति (Flash back) के माध्यम से प्रस्तुत की गई हैं, जैसे- ताम्बूलकरङ्कवाहिनी और इक्षुगन्धा तथा अनेक कहानियाँ प्रत्यक्ष अनुभवों पर आधारित हैं, जैसे-अनामिका, एकहायनी, शतपर्विका, जिजीविषा और भग्नपञ्जरः आदि। इस प्रकार इक्षुगन्धा की समस्त कहानियाँ शैली की दृष्टि से सर्वथा नवीन हैं।

अंततः एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि इन कहानियों के माध्यम से प्रतिभा के धनी कथाकार ने संस्कृत के पाठकों को नवनिर्मित शब्दों, लोकोक्तियों एवं लोकाभिव्यक्तियों का एक ऐसा महार्घ उपहार भी अर्पित किया है जो संस्कृत में न तो इस कथासंग्रह के प्रकाशन के पूर्व था और न ही कथाकार के अतिरिक्त उसे देने की क्षमता रखता था। यहाँ यह अवसर नहीं है कि मैं कथाकार के उस मौलिक अवदान की विस्तृत चर्चा कर सकूँ, परन्तु सहृदयों को यह बता देना आवश्यक समझता हूँ कि ''इक्षुगन्धा का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन'' शीर्षक अपने एक पृथक् ग्रन्थ में निबंध लेखक ने सैकड़ों पृष्ठों में इस विषय की सोदाहरण समीक्षा की है। इसी वर्ष अभिराज डॉ० राजेन्द्र मिश्र की नयी संस्कृत कथाओं का संग्रह 'रांगडा' प्रकाशित हुआ है, जिसमें संकलित कहानियाँ कथाकार की अपेक्षाकृत और अधिक परिष्कृत और पुष्ट कथायात्रा का प्रमांण प्रस्तुत करती है। आशा है, संस्कृत का सुधी समाज यथावसर उन कहानियों का भी समुचित मूल्यांकन करेगा।

# श्री हजारीलाल शास्त्री और उनके शतक काव्य

डॉ0 सत्य देव कौशिक

श्री हजारीलाल शास्त्री हरियाणा राज्य के बीसवीं शताब्दी के देववाणी संस्कृत के गण्यमान्य कवि हैं । श्री शास्त्री ने लगभग १७ ग्रन्थों की रचना की है । इन ग्रन्थों में नाटक, शतक, स्तोत्र, गद्य टीका, काव्य (संस्कृत-हिन्दी) हैं । इसके अतिरिक्त चर्पटपञ्जरी और प्रश्नोत्तरी हिन्दी के ग्रन्थ हैं । आपके ग्रन्थों का विद्वत्समाज में आदर हुआ है । 'शिवप्रतापविरुदावली' (शतक-द्वयोपेता) भारत सरकार द्वारा प्रकाशित एवं सम्मानित हैं । 'इन्दिराविजयप्रशस्तिशतकम्' और 'संस्कृतमहाकविदिव्योपाख्यानम्' ग्रन्थ हरियाणा सरकार द्वारा पुरस्कृत किये गये हैं। श्री शास्त्री ने आजीवन देववाणी संस्कृत की सेवा की है । वे गौड़ ब्राह्मण संस्कृत कालिज रोहतक, श्री ब्राह्मण संस्कृत महाविद्यालय, रामराय (रामह्रद) जींद, लज्जाराम संस्कृत महाविद्यालय, जींद (हरियाणा) में प्रधानाचार्य पद को अलंकृत कर चुके हैं । आप अपने सकल जीवन में संस्कृत पठन-पाठन से जुड़े रहे हैं । आपके सैकड़ों शिष्य हरियाणा के विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में अध्यापनरत हैं । आपके प्रशंसकों में हरियाणा के भूतपूर्व मुख्यमंत्री एवं मध्यप्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल पं0 भगवत दयाल शर्मा, राज्यसभा के भूतपूर्व संसद् सदस्य पं0 रामचन्द्र शर्मा, पं0 कृष्णदत्त शर्मा, ग्राम-अहर पानीपत, श्री जी0 आर0 स्वामी रजिस्ट्रार, टैक्सटाइल टैक्नालोजी, भिवानी, पं0 गंगामणि शास्त्री, ग्राम-डीघल, रोहतक, पं0 दुलीचन्द शास्त्री, ग्राम-बेरी, रोहतक, एवं पं0 वेदव्रत शास्त्री, रोहतक आदि प्रमुख हैं । दुर्भाग्यवश आज शास्त्री जी हमारे मध्य नहीं हैं । उनका निधन कुछ वर्ष पूर्व रोहतक में हो गया था । रोहतक में अपने निवास-स्थान का नाम आपने संस्कृत-शोध-संस्थान रख लिया था जिससे आपकी संस्कृत भाषा के प्रति अभिरुचि प्रकट होती है । आपके सभी ग्रन्थ संस्कृत शोधसंस्थान, प्रेमनगर, वार्ड न0-१३, भवन न0 ७८८ ए, रोहतक और आचार्य प्रकाशन, दयानन्दमठ, रोहतक में मिलने की आशा है । रोहतक स्थित आवास में श्री शास्त्री जी की धर्मपत्नी श्रीमती सुखदेवी रहती हैं ।

श्री हजारीलाल शास्त्री के सात शतक काव्य हैं- शिवप्रतापविरुदावली (शतकद्वयोपेता), इन्दिराविजयप्रशस्तिशतकम्, शिवशतकम्, महर्षिदयानन्दशतकम्

सगुण ब्रह्मस्तुतिशतकम् और कादम्बरीशतकम् । यहाँ इनमें से प्रथम चार का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है-

## १-२- शिवप्रतापविरुदावली

'शिवप्रतापविरुदावली' शीर्षक से श्री शास्त्री ने शिवाजी एवं महाराणा प्रताप के जीवन चरित्र को आधार बनाकर दो शतक काव्यों की रचना की हैं- **प्रतापविजयनाम प्रथमशतकम्** और **शिवराजविजयनाम द्वितीयशतकम्** । इन दोनों शतकों की रचना का उद्देश्य कवि ने हिन्दू संस्कृति की रक्षा माना है । उनका मत है कि इन दोनों वीरों की विजय-गाथा को सुनकर आर्य जनता के हृदय में जागृति उत्पन्न होगी[१] ।

## १- प्रतापविजयनाम प्रथमशतकम्-

इस शतक काव्य में महाराणा प्रताप और भामाशाह के चरित्र को हिन्दू संस्कृति के रक्षक के रूप में चित्रित किया गया है । दूसरी ओर अकबर, मानसिंह और शक्ति सिंह के कृत्य को निन्दनीय माना गया है । कवि ने महाराणा प्रताप को लौह-पुरुष की संज्ञा से विभूषित किया है । बालक प्रताप के जन्म पर ब्राह्मणों ने बालक को आशीर्वाद दिया कि यह बालक यवन शत्रुओं से आक्रान्त भारत देश को विजित कर बली प्रतापी राजा होगा । इसी आशीर्वाद के कारण माता ने बालक का नाम 'प्रताप' रखा-

तेनैव तस्य जननी निजपुत्रनाम विप्राशिषानुसदृशं विदधे प्रतापम् ।
सर्वत्र तत्र भुवि यस्य महाप्रतापो मार्तण्डमण्डलसमो विबभौ दिशासु।।
(श्लोक सं0 १०)

महाराणा प्रताप के वंश के कुछ लोग उन्हें छोड़कर अकबर के साथ जा मिले। कवि ने अपने क्षात्र धर्म को छोड़ने वाले मानसिंह और शक्तिसिंह की निन्दा की है, जबकि महाराणा प्रताप की भूरि भूरि प्रशंसा की है[२] । कवि का कथन है कि महाराणा प्रताप आज भी अमर हैं क्योंकि उनमें कई महापुरुषों के गुण एक साथ विद्यमान है। वे भीम-सदृश बली, भीष्म-सदृश धैर्यशाली, युधिष्ठिर-सदृश शान्त नीतिज्ञ और सुमेरु पर्वत सदृश अविचल हैं -

योऽसौ बले च खलु भीमसमो धृतौ तु
भीष्मो, युधिष्ठिरसमश्च शमे नये च ।
शान्त्याः सुमेरुरथ धर्मसुसेतुरार्यो
वीरो महानमरतां भजते प्रतापः ।। (श्लोक सं0 ३०)

अकबर ने चित्तौड़ के दुर्ग को घेर लिया। महाराणा प्रताप और उसके साहसी सैनिकों ने अकबर की सेना का सामना किया। अकबर की सेना के सैनिक आहत होकर इतस्ततः भागने लगे। अकबर के अधिसंख्य सैनिकों के हताहत होने पर भी उसकी विशाल सेना होने के कारण वह पराजित न हो सका। महाराणा प्रताप की सेना में मृत क्षत्रियों की पत्नियाँ चिता में प्रवेश करने लगी। चित्तौड़ के दुर्ग में चिताओं को जलती देखकर अकबर का हृदय द्रवीभूत नहीं हुआ, अपितु उसने चित्तौड़ दुर्ग की जनता को मारने का आदेश दिया। कवि ने अकबर के इस दुष्कृत्य के लिए 'पिशाच' की संज्ञा देते हुए उसे धिक्कारा है-

चित्तौडदुर्गमधिकृत्य पिशाचरूपो
धूर्तोऽक्बरः समवलोक्य चिता ज्वलन्तीः।
चित्तौडदुर्गजनतां सकलां निहन्तुं
सेनां समादिशदहो ! धिगशिष्टकृत्यम् ॥

(श्लोक सं0 ४४)

अपने दुर्ग को ध्वस्त जानकर वीर राणा प्रताप ने अपने वंशजों की भाँति सन्धि नहीं की, अपितु अपने मित्रों से परामर्श कर बाहर निकल गये। यहाँ कवि ने महाराणा प्रताप को ऐसा वीर पुरुष माना है जो अपने परम्परागत गुण का कदापि परित्याग नहीं करते। उनका कथन है कि जैसे चन्द्रमा अपनी शीतलता का परित्याग नहीं करता, अग्नि अपनी दाहकता को नहीं छोड़ती, जलधारा अपने शीतल गुण को नहीं त्यागती, वैसे ही वीर पुरुष अपने परम्परागत गुण का परित्याग नहीं करते[३]। मेवाड़-राज्य को शत्रुओं द्वारा हस्तगत कर लेने पर महाराणा प्रताप को अति पीड़ा हुई। वे सपरिवार वनों एवं कन्दराओं में विचरण करते रहे। अकबर ने मेवाड़ को अपने अधीनस्थ कर लिया था, किन्तु वह महाराणा प्रताप से प्रतिपल शंकित रहता था। वन में महाराणा प्रताप की बेटी के हाथ से विडाल द्वारा छीनी गयी दो रोटियों का करुणामय वर्णन कवि द्वारा किया गया है-

हा ! चैकदा सुरचिते तृणबीजचूर्णैः
भोक्तुं मुदा करधृते करपट्टिके द्वे।
व्यात्ताननो वनभवः कुविडाल एको
जग्राह हन्तः ! करतो नृपबालिकायाः ॥

(श्लोक सं0 ७१)

राणा प्रताप ने अपने परिवार जनों के वन में होने वाले कष्टों के लिए स्वयं को उत्तरदायी माना है। उनका यह भी मानना है कि यह सब मेरे भाग्य का ही

दोष है । संकट की इस वेला में अकबर ने दूत को सन्धि प्रस्ताव लेकर महाराणा प्रताप के पास भेजा । महाराणा प्रताप ने सन्धि-प्रस्ताव को पढ़कर विचार किया कि यदि मैं अकबर का शासन स्वीकार करूँ तो निन्दनीय हो जाऊँगा । मैं संकटों के आने पर भी क्षात्र धर्म का त्याग नहीं करूँगा । वीर साहसी राणा प्रताप ने पत्र का प्रत्युत्तर देते हुए लिखा कि यवनराज ! तुम्हारे कथन में सत्यता कैसे हो सकती हैं ? क्या कभी धूर्त, नट एवं विट लोग भी सत्यवादी हो सकते हैं ?

इत्थं विमृश्य मतिमान् नृपतिप्रतापो
दिल्लीपतिं प्रतिलिलेख दलं सहर्षम् ।
तथ्यं कथं यवनराट् कथने तवास्ते
धूर्ते नटे विटजने क्व नु सत्यताऽऽस्ते।। (श्लोक सं0 ८०)

पत्र को दूत द्वारा लेकर चले जाने पर वे सोचने लगे कि अब सेना को सशक्त बनाना चाहिए । भारत पर विजयेच्छु अकबर अवश्य ही ससैन्य युद्ध के लिए आयेगा। राणा प्रताप यह सोच ही रहे थे कि भामाशाह नामक वैश्य का अचानक आगमन होता है । भामाशाह के चरित्र को कवि ने एक परोपकारी एवं राष्ट्रभक्त के रूप में चित्रित किया है । भामाशाह ने देशहितार्थ अपने सकल धन को गुप्त रूपेण राणा प्रताप को भेंट कर दिया-

नैवं नरेन्द्र ! कुरु चिन्तनमार्यवीर !
भूपेन्द्र ! हन्त ! मयि जीवति भारतेन्दो !
पार्श्वेऽस्ति देव ! मम यो बहुवित्तराशि-
स्तं तेऽर्पयामि निजदेशहिताय राजन् !
(श्लोक सं0 ८५)

कवि का मानना है कि धन और आयु नश्वर हैं । उस धन से क्या लाभ, जो परोपकार में नहीं लगता । कवि दानी भामाशाह के मार्ग का अनुसरण करने का आह्वान करते हुए कहता है-

किं हन्त ! तेन धनिना द्रविणं तु यस्य
लोकोपकारकृतये व्ययमेति नैव ।
नायुः स्थिरं न च धनानि स्थिराणि लोके
मत्वेति दानिवर भामसमो भव त्वम् ।।(श्लोक सं0 ८८)

भामाशाह की सहायता से राणा प्रताप ने चतुर सैनिकों को संगठित कर लिया।

उधर अकबर की सेना ग्रामीणों को पीड़ित करती हल्दी घाटी के मैदान में प्रविष्ट हुई। हल्दी घाटी के इस युद्ध में राणा प्रताप की सेना ने लाखों शत्रुओं को धराशायी कर दिया। इस प्रकार हल्दी घाटी प्रदेश रक्त-रञ्जित हो गया। शत्रुओं के भालों एवं बाणों से राणा प्रताप का शरीर क्षत-विक्षत हो गया। इतने पर भी महाराणा प्रताप विचलित नहीं हुए। यहाँ पर कवि ने दर्शाया है कि महाराणा प्रताप को मारने के लिए दौड़े हुए सैनिकों को शक्तिसिंह ने मार दिया। अन्त में शक्तिसिंह का भ्रातृ-स्नेह जागृत हो गया। शक्तिसिंह अपने को दोषी मानते हुए महाराणा प्रताप की भुजाओं में आलिंगन कर रोने लगा। यह वर्णन भ्रातृ-स्नेह का अनुपम उदाहरण है-

भ्रातर्ममैव खलु दुष्कृतिदोषतोऽद्य
हा हन्त ! भारतमही यवनाभिभूता ।
उच्चैः स्वरेण बहु रोदिति रुद्धकण्ठो
भ्रातुः समक्षमिति खिद्यति शक्तिसिंहः।(श्लोक सं० ११०)

काव्य के अन्त में शक्तिसिंह के द्वारा अपनी गलती स्वीकार कर लेनें पर महाराणा प्रताप् शक्तिसिंह को ढाढस बँधाते हुए कहते हैं कि भवितव्यता बलवती है, जो होना था, वह हो गया।

## २- शिवराजविजयनाम द्वितीयशतकम्-

कवि श्री हजारी लाल शास्त्री ने इस शतक में शिवाजी की वीरगाथा का यशोगान किया है। उन्होंने शिवाजी के चरित्र को आर्य धर्म एवं संस्कृति के रक्षक के रूप में चित्रित किया है। इसके अतिरिक्त कवि ने शिवाजी को कुशल राजनीतिज्ञ भी माना है। शिवाजी ने अपने शौर्य से दक्षिण भारत के अनेक दुर्गों को विजित कर औरंगजेब की आशाओं पर पानी फेर दिया। शिवाजी का जन्म महाराष्ट्र प्रान्त में १६४८ ई० में शिवनेरी के किले में हुआ। शिवाजी के पिता का नाम शाहजी और माता का नाम रानी जीजाबाई था। शिवाजी के जन्म पर इनके माता-पिता ने ब्राह्मणों को प्रभूत दान दिये। शिवाजी का जन्म ''शिवा देवी'' द्वारा अधिकृत शिवनेरी के किले में होने के कारण उनकी माता ने अपने पुत्र का नाम ''शिवा देवी'' के अनुरुप शिवाजी रख दिया-

जातो मदीयतनयः 'शिवनेरि' दुर्गे
देव्या सदैव शिवयाधिकृते ह्यभेद्ये ।
तेन स्वपुत्रशुभनाम शिवेति जीजा-
देवी शिवासुसदृशं शिवदं व्यधत्त ॥ (श्लोक सं० ९)

शिवाजी के शासक होने पर अपने यश रूपी तेज की अभिवृद्धि से औरंगजेब आदि यवन अन्धों के समान विकल हो गये, उनके मुखों की आभा समाप्त हो गयी। कवि ने इन यवनों की दशा को सूर्योदय के समय उलूकवत् बताया है ।[४] कवि ने आगे बताया है कि तीक्ष्ण त्रिशूलधारी शिवाजी औरंगजेब की कपट पूर्ण नीति के वश में नहीं हुआ। शिवाजी के भय से औरंगजेब की निद्रा लुप्त हो गयी । वह शिवाजी से इतना भयभीत था कि स्वप्न में भी शिवाजी को देखकर चारपाई से नीचे गिर पड़ता था[५]। शिवाजी कदापि औरंगजेब से सन्धि के समर्थक नहीं थे । एक बार औरंगजेब ने शिवाजी को अपनी राज्यसभा में आमन्त्रित किया । तब उसने उन्हें उपहार स्वरूप कुछ वस्तुएँ प्रदान कीं । इस पर शिवाजी ने औरंगजेब को ललकारते हुए भारत भूमि को शीघ्र छोड़ देने का आह्वान किया-

त्वं कोऽसि राज्यमिदमस्ति विभूतिमत्त्वं

सर्वं धरातलमिदं तु मदीयमस्ति ।

त्यक्त्वाद्य भारतमहीं झटिति प्रयाहि

नो चेद् विनंक्ष्यसि शिवेति जगाद वीरः ।।

(श्लोक सं0 २३)

शिवाजी हिन्दू संस्कृति के संरक्षक थे । गौ को हिन्दू धर्म में अति पवित्र माना गया है । दिल्ली में गो-वध की सूचना मिलने पर शिवाजी ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया और गो-वध करने वाले यवनों को मौत के घाट उतार दिया । इसका अति मनोरम वर्णन कवि द्वारा किया गया है-

श्रुत्वैकदा जनमुखात् शिवराजवीरो

बोभूयमानमथ गोवधमिन्द्रपुर्याम् ।

आदाय घोरपरिघं त्वहिकालरूपं

गत्वाऽऽशु तत्र निजघान खलांस्त्वसंख्यान् ।।

(श्लोक सं0 २७)

शिवाजी ने अनेक दुर्गों को जीतकर शत्रु को बलात् अपहरण कर दक्षिण में अपनी स्थिति को सुदृढ कर लिया । इस प्रकार शिवाजी का प्रताप चतुर्दिक् फैल गया । शिवाजी के भय से शत्रु-यवन-स्त्रियाँ विलासी जीवन को त्यागकर वन और गिरि-कन्दराओं में पलायन करने लगी । उनकी कान्ति नष्ट हो गयी । वीर शिवाजी के भय से वे कृशकाय हो गयीं । इसका अनुपम वर्णन द्रष्टव्य है-

श्रुत्वाऽऽगतो नृपशिवो ह्यरयोऽतिभीता
हिंत्वा गृहान् गिरिगुहासु गताः सकान्ताः ।
कन्दैः फलैः वनभवैरुदरं प्रपूर्य
निन्युर्दिनानि शिवराजमृगेन्द्रभीताः ।। (श्लोक सं0 ४९)

और भी-

कान्ताश्च या यवनवंशभवाः सगर्वा
रत्नादिभूषणसुभारनता बभूवुः ।
ता ह्यार्यवीरशिवराजभयाभिभूता
आसन् नतास्त्वधिवनं क्षुधिताः भ्रमन्त्यः ।।
(श्लोक सं0 ५१)

उक्त दोनों श्लोकों में हिन्दी के प्रख्यात कवि भूषण की ''तीन बेर खातीं थीं, वे तीन बेर खाती हैं, विजन डुलाती थीं, सो विजन डुलाती हैं'', इन पंक्तियों की प्रतिध्वनि मिलती हैं ।

शिवाजी ने युद्ध में औरंगजेब के मामा शाइस्तखाँ को परास्त कर दिया । इस युद्ध में उसकी सेना धराशायी हो गयी । इसके अतिरिक्त शिवाजी ने अपनी माता की प्रतिज्ञा की पूर्ति हेतु अपने मित्र तानाजी और मामा सेलरजी की सहायता से सिंह दुर्ग को जीत लिया । यही नहीं, उन्होंने सालेर किले को भी जीत लिया । इन किलों को जीतने के लिए हुए युद्ध में अनेक सैनिक पशुओं के समान मारे गये। इन अनेक सैनिकों को मारकर शिवाजी ने इनकी बहुमूल्य वस्तुओं को अपने अधीन कर लिया । इसके बाद औरंगजेब ने शिवाजी से युद्ध न करने का निश्चय किया । इस प्रकार शिवाजी के साहस एवं शौर्य के कारण औरंगजेब को उत्तरी भारत भूमि पर ही संतोष करना पड़ा ।

## ३- इन्दिराविजयप्रशस्तिशतकम्-

इस शतक काव्य की रचना कवि ने श्रीमती इन्दिरा गाँधी के १९७१ में सत्ता में आने पर की है । सत्ता में आने पर श्रीमती गाँधी ने भारत के लोगों को गरीबी से मुक्ति दिलाने की प्रतिज्ञा की-

स्वदेशस्य दीनां दशां भारतस्य
विभाव्येति खिन्ना दयाक्लान्तचित्ता ।

प्रतिज्ञाव्रतं देशरक्षार्थमाधात्

करिष्ये ह्यदीनान् जनान् भारतीयान् ।।

देश के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित श्रीमती गाँधी से कवि किसी पद या वस्तु की इच्छा नहीं करता। कवि की एक ही इच्छा है, वह है-

"गो-वध का निरोध।" कवि अपनी इस इच्छा की संपूर्ति के लिए श्रीमती गाँधी से प्रार्थना करता हुआ कहता है-

महादेवि ! याचे गजेन्द्रं न चाश्वं

न याचे विशिष्टं पदं चाद्वितीयम् ।

गवां क्रन्दनं स्यान्न देशे पवित्रे

हृदा प्रार्थनेयं ममार्ये ! तवाग्रे ।।

कवि चाहता है कि भारत में संस्कृत भाषा का विकास हो और देश में कोई विद्याविहीन न हो। कवि ने श्रीमती गाँधी के शासन काल में देश के विकास की भूरि भूरि प्रशंसा की है। भारत और विदेशों में उनकी सुनीति के कारण ही उनकी प्रसिद्धि है। कवि ने श्रीमती गाँधी को नारी के अधिकारों की रक्षक भी माना है[६]। कवि ने उन्हें वर्ण और जाति का उन्मूलक भी माना है[७]। कवि का मानना है कि श्रीमती गाँधी में उदात्त गुण हैं, वह है- अपने-पराये एवं ऊँच नीच की भावना से सर्वथा दूर[८]। कवि इन्दिराजी का यशोगान करता हुआ कहता है कि तुम निर्धनों के लिए धन, धनान्ध शोषक वर्ग के लिए काल, नारी समाज के लिए अशोक वृक्ष और विद्वानों के लिए कल्पवृक्ष हो-

धनं निर्धनानां त्वमेवासि मातः धनान्धस्य वर्गस्य साक्षाच्च कालः।

सुनारीसमाजस्य वृक्षो ह्यशोको विपश्चिज्जनानां कृते कल्पवृक्षः ।।

(श्लोक सं0 ६५)

कवि ने श्रीमती गाँधी की जहाँ प्रशंसा की है वहाँ दूसरी ओर समाज में फैले हुए दुर्व्यसनों की ओर भी उनका ध्यान आकर्षित किया है। उनका मानना है कि दुर्व्यसनों के रहते हुए समाज और देश का समुत्थान सम्भव नहीं है। सुरापान, गो-वध और चलचित्र के प्रचलन से कवि का हृदय दुःखी है-

सुरापानमेकं त्वदीये सुराज्ये द्वितीयं त्रिशूलं गवां क्रन्दनं हा !

वधो वानिशं भारते देवभूमौ कथं नेक्षसे मोतिलालस्य पौत्रि !

(श्लोक सं0 २९)

तृतीयं च दुःखं सुमातर्ममेदं चलच्चित्रलीला प्रमत्ता विमूढाः ।
जना भारते ब्रह्मचर्येण हीना ऋषीणां कुले हन्तः! जाताः कलङ्काः।।
(श्लोक सं0 ३०)

समाज में फैले हुए दुर्व्यसनों के कारण कवि हिन्दू संस्कृति को कीचड़ में निमग्न मानता है । श्रीमती गाँधी को सम्बोधित करते हुए कवि कहता है कि आज भक्ष्याभक्ष्य का कोई विचार नहीं है । शाकाहार और ब्रह्मचर्यव्रत के प्रति लोगों की रुचि समाप्त हो गयी है । उनकी अभिरुचि तम्बाकू, धूम्रपान, बकरा, मुर्गा, मांस, अण्डा और वेश्याओं के प्रति है । आज यज्ञ, वेदपाठ, सन्ध्या-वन्दन और शिखासूत्र का लोगों ने परित्याग कर दिया है । कवि मानता है कि जब तक अपनी भाषा और अपने देश की भूषा नहीं होगी, तब तक देश जागरूक नहीं हो सकता-

न यावत् स्वदेशेऽनिवार्या स्वभाषा
न तावत् स्वतन्त्रोऽभिभाव्यः स्वदेशः ।
न भाषास्मदीया न वेशोऽस्मदीयः
कथं तर्हि देशो भवेज्जागरूकः ।। (श्लोक सं0 ४७ )

कवि ने अन्त में श्रीमती गाँधी के बँगला देश को स्वतन्त्र कराने के प्रयास की प्रशंसा की है । उन्होंने बँगलादेश में अपनी समस्त शक्ति लगाकर उसे स्वतन्त्र करा दिया और बंगबन्धु मुजीबुर्रहमान को अपना बन्धु बना लिया-

बलात् शासनं बङ्गदेशे विधातुं
''मुजीं'' बङ्गबन्धुं सुबन्धुं च कृत्वा ।
अहो ! वन्दिनं पाकदेशप्रशास्ता
नृसंहारभूतं ह्यकार्षीत् कुकृत्यम् ।। (श्लोक सं० १०८)

## ४- शिवशतकम्-

कवि श्री हजारीलाल शास्त्री ने वैराग्य प्राप्ति के उद्देश्य से इस ग्रन्थ की रचना की है । इस शतक ग्रन्थ में भगवान् शिव के लगभग सभी विशेषणों का प्रयोग उन्होंने कर दिया है । इस शतक काव्य के अध्ययन करने से पता चलता है कि शिव संकीर्तन से मानव परम पद को प्राप्त कर लेता है[९] । कवि का कथन है कि मृत्यु समय आने पर ''ॐ नमः शिवाय'' मन्त्र अमूल औषधि का कार्य करता है । इस औषधि के पान से मानव अमरत्व को पाकर सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है-

प्रयाणकाल आगते नमः शिवाय चौषधं
सुसेव्य मानवोऽमरः पुनर्न याति संसृतिम् ।
न मृत्युदुःखमाप्नुयान्न मोहजं महाभयं
शिवेति मन्त्रमुच्चरन् विमुच्यते हि किल्विषैः ।।

(श्लोक सं० ६४)

मानव जीवन अति दुर्लभ है । सभी सांसारिक वस्तुएँ नश्वर हैं । इसलिए कवि धर्माचरण करने की प्रेरणा देता है । उसका मानना है कि स्त्री,पुत्र एवं धन आदि तुम्हारे साथ नहीं जायेगा, अपितु स्वधर्म ही साथ जायेगा-

पुनर्न जन्म मानुषं मिलिष्यतीति शोचय
क्षणं क्षणं समस्तमायुरेष्यतीति चिन्तय ।
स्वधर्म एव यास्यति त्वया सहेति बोधय
विधाय मानसे शिवं स्वमानसं विशोधय ।।

(श्लोक सं० २३)

कवि का मानना है कि अन्य देवताओं की अपेक्षा भगवान् शंकर ''ॐ नमः शिवाय'' के मन्त्र से प्रसन्न होकर दुर्लभ वर दे देते हैं[१०] । यही नहीं इस मन्त्र के जप से शिव मूर्ति पर गङ्गा जल चढ़ाने से मोक्षदायक फल मिलता है[११] । कवि का मानना है कि जलधारा (शिव मूर्ति के स्नान मात्र से) से ही भगवान् शंकर प्रसन्न हो जाते हैं[१२] । कवि ने अपने शतक में भगवान् शंकर का कैसा साङ्गोपाग वर्णन किया है-

श्मशानभूमिसंस्थितो जटासु भस्मनाञ्चितो
गलेऽस्थिमालया शिवं सुशोभितः सुरैर्नतः ।
करे कमण्डलुं दधद् गजेन्द्रचर्मणावृतः
सुनृत्यगीतकारिभिः सुपार्षदैश्च सेवितः ।।

(श्लोक सं० ६०)

---

१- शिवप्रतापविरुदावली, द्वित्राः शब्दाः, पृ० ४, श्लोक सं० २

२- शिवप्रतापविरुदावली, प्रतापविजयशतकम्, श्लोक सं० १८,२२,२४,२७

३- शिवप्रतापविरुदावली, प्रतापविजयनामशतकम्, श्लोक सं0 ४६

४- शिवप्रतापविरुदावली, शिवराजविजयनामशतकम्, श्लोक सं0 १५

५- शिवप्रतापविरुदावली, शिवराजविजयनामशतकम्, श्लोक सं० १९

६- इन्दिराविजयप्रशस्तिशतकम्, श्लोक सं0 १६

७- वही श्लोक सं0 २७

८- वही श्लोक सं0 १७

९- शिवशतकम्, श्लोक सं0 १-६, ३२,४४,५३,१००,१०१

१०- शिवशतकम्, श्लोक सं0 ४३

११- वही , श्लोक सं0 ८५

१२- वही , श्लोक सं ४५, ८७

# नारीचित्रणपरक दो मुक्तक रचनाओं-'स्फाटिकी माला' तथा 'नारीगीतम्'-का संवेदन

डॉ0 उमाकान्त शुक्ल

संस्कृत काव्य विशेषकर मुक्तक में नारीचित्रण की परम्परा बहुत पुरानी है। और इस परम्परा का प्रतिपादन करना प्रस्तुत लेख का उद्देश्य नहीं है। यहाँ दो अर्वाचीन संस्कृत मुक्तकों को विचार-परिधि में रखा गया है एक स्फाटिकी माला (स्फा०) और दूसरा नारीगीतम् (ना0)[१]

संयोग है कि दोनों काव्यों के प्रणेताओं ने आजीविका के लिए हिम्दी भाषा और साहित्य को चुना है। स्फा0 के प्रणेता पण्डित विष्णुकान्त शुक्ल जे0 वी0 जैन कालेज सहारनपुर में हिन्दी-विभागाध्यक्ष हैं और ना0 के प्रणेता डॉ० शंकरदेव अवतरे मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय (सान्ध्य) मोतीबाग दिल्ली में प्राचार्य। डॉ0 शुक्ल स्वर्गीय कविरत्न श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल साहित्याचार्य के पुत्र और डॉ0 अवतरे पुत्र निर्विशेष शिष्य हैं। दोनों के काव्य का मूल स्रोत एक ही है।

नारी के अनेक नामो में 'अबला' का भी परिगणन हुआ है। नारी के अबलात्व की निराकृति स्फा० का मूल सूत्र है। संस्कारतः नारी को नर का उदार या परिवृद्ध रूप कह सकते हैं। इसे उदात्त भावना के साथ देखना, परखना, और महसूस करना ना0 का उद्देश्य है।

स्फा0 में एक सो नौ मुक्तक-स्फटिक पिरोये गये हैं, जिनमें एक सुमेरुस्थानिक है और शेष से माला का निर्माण हुआ है। क्या नारी को अबला कहना उचित है ? ऐसा कौन सा क्षेत्र है, जिसमें नारी की प्रतिष्ठा नहीं ? क्या उसे अबला कहने वाला स्वयं निर्बल नहीं ? ये कुछ प्रश्न हैं, जिन्होंने स्फा0 की भावभूमि तैयार की है[२]। ना0 के कवि का यह सोच मायने रखता है कि नारी पुरुष की आत्मीय प्रकृति है और आत्मीय प्रकृति का परिचय 'नारीगीतम्' के अलावा और क्या हो सकता है[३]? ना0 में विविध भंगिमाओं, भावभूमियों और सन्दर्भो से नारी के गरिमामय व्यक्तित्व का स्तवन किया गया है। इसे स्तुति-मुक्तक कह सकते हैं।

पुराणसन्दर्भों, उदाहरण के लिए दुर्गासप्तशती[४] में देवत्व के नारी-आकारक-शक्ति-स्तवन को ना0 का मूल सोच मानने में कोई बाधा नहीं दिखाई देती । वहाँ उपश्लोकित विराट् भावना का ना0 में उपोद्वलन हुआ है । यहाँ सम्बोधित नारी एवं तद्गत व्यष्टि और समष्टि के मांसल आकर्षण तथा उसमें अन्तर्निहित सौन्दर्य बोध की भावुक और मंजुल उपस्थापना हुई है । माना कि ना0 का सम्बोध्य नारी है और अभिमुखीकरण सम्बोधन का मूल भाव[५] है तथा तदनुसार ही यहाँ युष्मद् या भवत् पदों के अनुरूप क्रियाओं द्वारा नारी के व्यक्तित्व; जिसमें संवेदन की एकतानता का बने रहना पहली शर्त है; को उकेरा गया है किन्तु फिर भी बीच-बीच में समाविष्ट प्रथमपुरुषीय अभिव्यक्तियों[६] ने जहाँ-तहाँ उस एकतानता को तोड़ा है, प्रत्यक्षीभूत को परोक्षीभूत बनना पड़ा है ।

स्फा0 के मूलभाव का सुदूर अतीत में भर्तृहरि ने भी संस्पर्श किया था जिन्होंने विलोलतरतारकदृष्टिपातों से शक्र आदि को भी परास्त कर दिया हो भला उन्हें 'अबला' कैसे कहा जा सकता है[७] । एक सूक्तिकार ने नारी को सम्बोधित करते हुए पूछा था-हृदय पर दो पर्वतेन्द्रों को ढोने वाली और कटाक्ष से त्रिलोकी को जीत लेने वाली तुम अबला कैसे हो सकती हो ? यदि तुम बलवती नहीं तो कौन बलवान् होगा[८] ? स्फा0 के चौदह[९] मुक्तकों में प्रत्यक्षतः नारी के अबलात्व का खंडन किया गया है । नारी के अबलात्व का परोक्षतः खंडन करने वाले मुक्तक अलग-अलग सन्दर्भों से लिखे गये हैं । यह द्रष्टव्य है कि स्फा0 में विशेषण या विधेय के रूप में नारी के अबलात्व का आदि से अन्त तक खंडन है । केवल एक मुक्तक ही ऐसा है जिसमें अबला को विशेष्य रूप में पढ़ा गया है[१०] और वह भी तब जबकि अबला शब्द की अवधारणा सुस्पष्ट कर दी गयी है । कवि ने अबला शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा है कि अकार कहते हैं विष्णु को और उनका बल है माया, अतः जिसमें अकार (विष्णु) का बल (माया) वह 'अबला' कहलायेगी, न कि बलहीना। अः = अकारः = विष्णुः, तस्य बलम् (माया) यस्यां सा अबला[११] ।

ना0 पूर्वार्ध (पू0) और उत्तरार्ध (उ0) इन दो अर्धों में विभक्त है । पू0 में नारी के आकर्षण की महिमा अंकित है और उ0 में उसका इतिहास दर्शन है ।[१२] पू0 में एक सौ सोलह और उ0 में एक सौ चालीस; जिनमें कुछ उपसंहारात्मक हैं; पद्य हैं । कुल संख्या दो सौ छप्पन है । इनमें से इक्यावन मुक्तक जीवनमुक्तकम्[१३] में संकलित हैं । ना0 का कलेवर स्फा0 के कलेवर से दुगुने से भी अधिक है, किन्तु नारी की विविधता स्फा0 में अधिक है ।

ना0 का कवि नारी-आकर्षण के उदात्त स्वर का कवि है । आक्षेप किया जा सकता है कि उसने नारी की वर्तमान समस्याओं को छुआ भी नहीं है । किन्तु नारी की दीनता और हीनता की ही वर्णना की जाय-यह अनिवार्य और आवश्यक भी तो नहीं । ना0 के कवि का मिजाज गीतकार का मिजाज है, निबन्धकार का नहीं ।

स्फा0 के कवि ने नारी पर होने वाले अत्याचारों की झलक दिखाते हुए अपने कविधर्म का निर्वाह कर दिया है।[१४] ना0 में भी उसके तिरस्कारजन्य परिणाम के संकेत दिये गये हैं।[१५] मूल में नारी का समग्र दर्शन होने से स्फा0 और ना0 दोनों के कवियों ने अपने मुक्तकों को शीर्षकों या उपशीर्षकों में नहीं बाँटा है, यद्यपि इस बँटवारे की संभावनायें बहुत साफ है। स्फा0 के मुक्तकों को नारी के सन्दर्भ से (१) काम (२) स्पर्श (३) सेव्यता (४) सुरत (५) रूप (६) मातृत्व (७) गार्हस्थ्य (८) अधिसंख्यता (९) माहात्म्य (१०) आकर्षण (११) समाज जैसे उपशीर्षकों में रखा जा सकता है। कुछ मुक्तक फुटकर माने जा सकते हैं, जिनमें नारी को कामुकों की मृगतृष्णा और सुपथगामियों की गंगा[१६], पुरुष के मोक्ष का साधन[१७] औषधि और गंगा के समान श्लाघनीय[१८] बताया गया है। नारीं के मन की थाह[१९] और उसकी मार[२०] पर तथा नारी के सम्बन्ध में पुरुषार्थ[२१] पर चर्चा की गयी है। नारी के अधिकारों पर पुरुष के अतिक्रमण पर चुटकी लेते हुए कवि ने कहा है-

पुरुषासनमध्यास्ते यदि महिला नास्ति चित्रमपि किञ्चित्।
महिलासनस्थितानां पुरुषाणां निन्दिता कीर्तिः ।।[२२]

एक अन्य मुक्तक में श्लेष का आश्रय लेकर पहले गर्भवती पुनः पुत्रोत्संगवती महिला की नालायक पति पर होने वाली प्रतिक्रिया का विवरण इस प्रकार दिया गया है-

अन्धो भवति भुंजङ्गोऽन्तर्वत्नीभिर्विलोकितः क्रूरः।
पुत्रोत्सङ्गवतीभिर्दूरीक्रियतेऽन्धता तस्य ।।[२३]

पिचासीवें मुक्तक से समाप्तिपर्यन्त इतिहासप्रसिद्ध महिलाओं के प्रसंग से अपने कथ्य-नारी की सबलता-में प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं। इस सन्दर्भ में पन्ना धाय, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, कैकेयी, रुक्मिणी, गोल्डा मायर, विक्टोरिया, एलिजाबेथ, गान्धारी, उर्मिला, द्रौपदी, विद्योत्तमा, रत्नावली, शीला भट्टारिका, सूरीका, विज्झिका, क्षमाराव, गौरी, विकटनितम्बा, तारा तथा मन्दोदरी की चर्चा हुई है।

ना0 के पू0 के मूल संवेदंन-नारी आकर्षण-के धरातल पर मुक्तकों का जिन शीर्षकों और उपशीर्षकों में विभाजन संभव है वे ये हो सकते हैं-सौन्दर्य; स्नेह; अंगप्रत्यंग-मुख, कपोल, नेत्र, अधर, श्वास, कमर, केश; चांचल्य; अलंकार, देहयष्टि; आदि। नारी की सरसता, संकल्पशक्ति, मातृत्व आदि विविध रूप, उसका देवत्व के रूप में विकास, प्रकृति पर प्रभाव, संगति, दर्शन, काम, नारी और पुरुष का सम्बन्ध, नारी का व्यक्तित्व, सामान्य प्रवृत्ति, उसका वामात्व, स्मृतियाँ, आश्लेष आदि भी मुक्तकों के वर्गीकरण के तत्त्व हो सकते हैं।

उ0 में बहुत से पौराणिक आख्यानों और इतिहास के हवाले से नारी के

विभूतिमत् व्यक्तित्व को उभारने वाले कवि की पौराणिक आख्यानों की प्रतीकात्मक व्याख्याएँ मन को गुदगुदाती हैं। कवि ने पार्वती, वैष्णवी, मोहिनी, जगदम्बा, काली, लक्ष्मीबाई, दुर्गावती, किरणवती रजिया सुल्ताना, जान, सरस्वती, विश्वमोहिनी, दमयन्ती, उर्वशी, रम्भा, अहल्या, मत्स्यगन्धा (सत्यवती), पिंगला, इडविडा, घृताची, तिलोत्तमा, हाडा, वाल्मीकि की पत्नी, सीता, द्रौपदी, सावित्री, अनसूया, इन्द्राणी, सुरुचि, सुदामा की पत्नी, राधा, मीरा, विद्योत्तमा, रत्नावली, मण्डनमिश्र की पत्नी, मैत्रेयी, गार्गी, विदुला आदि के माध्यम से नारी के इतिहासदर्शन की सामग्री प्रस्तुत की है।

इनमें कुछ चरित ऐसे हैं जो स्फा0 और ना0 दोनों में समाविष्ट है। स्फा0 और ना0 दोनों के कवियों को इन चरितों या आख्यानों को कालक्रम से प्रस्तुत करना अभीष्ट नहीं है। मुक्तक विधा के लिए यह अभिप्रेत भी नहीं है। मुक्तक कवि भावधारा में आते चरितों का उपयोग भर कर लेता है, यही उसका कविकर्म है। हाँ, ना0 के पू0 की चौंतीस और उ0 की अठहत्तर सूक्तियों ने काव्य छवि को चारुता का उपहार दिया है। स्फा0 में इक्की दुक्की ही सूक्तियाँ मिलेंगी। यद्यपि डा0 अवतरे ने नारी के बहुआयामी व्यक्तित्व को गाया है तथापि उसका भावबोध भारतीय ही रहा है। भारतभूमि के रूप में नारी का चित्रण करते हुए कवि ने उसके प्रति अपने श्रद्धातिशय और आकर्षण को मुखर कर दिया है-

गङ्गाकलिन्दतनयाशुचिशीतलाक्षीं
वक्षःस्थले सुदृढविन्ध्यहिमालयास्थाम्।
मध्याञ्चले च रमणीयतरप्रदेशां
त्वां कल्पये सुतनु भारतपुण्यभूमिम्॥[२४]

नारी के स्पर्श, शब्द, रूप, रस, और गन्ध विषयक सुखों की मार्मिक अनुभूति की व्यंजना के लिए यह पद्य पर्याप्त होगा-

पार्श्वस्थिता त्वमसि मे श्रवणस्थिता च
चक्षुःस्थिता त्वमसि मे रसनास्थिता च।
श्वासस्थिता त्वमसि मे हृदयस्थिता च
मृत्यूत्तरेऽपि नहि वेद्मि विमोक्ष्यसि त्वम्॥[२५]

डा0 अवतरे की अवधारणा है कि ना0 कथा की दृष्टि से प्रबन्ध काव्य न होते हुए भी विचारक्रम की दृष्टि से एक प्रबन्ध काव्य का प्रयोग है जो एक ही समयक्रम से लिखा गया है।[२६] डा0 शुक्ल ने अपने विचारों को यदा कदा काव्यबद्ध किया है।[२७] जहाँ तक विचार की क्रमबद्धता का प्रश्न है वह स्फा0 और ना0 दोनों में ही

दिखाई देती है। एक में माला का सा बन्ध है और दूसरे में गीत का सा। किन्तु इन दोनों की प्रकृति मुक्तक की ही है अतः इन्हें मुक्तक काव्य के रूप में ही स्वीकारा गया है ।

स्फा0 के समस्त मुक्तक आर्या और ना0 के वसन्ततिलका में समाहित हैं। यह पूछना कि इनमें वृत्तों का वैविध्य क्यों नहीं अपनाया गया या यह परामर्श देना कि वृत्तों की विविधता से मुक्तकों की निकाई कुछ और ही बनती अप्रासंगिक है। हाँ, इस मुद्दे पर संभावना के कपाट बन्द नहीं हुए हैं ! कह सकते हैं कि उभयत्र आद्यन्तव्यापी वृत्त की लयात्मक एकता ने नारी में अन्तर्निहित उस अनुभूत्येकप्रमाण तत्त्व को मुखर किया है जो एकान्ततः और अत्यन्ततः नारी में ही है। मधुर भावाभिव्यक्ति के लिए आर्या वृत्त का चयन कविपरम्परा से प्रमाणित है। इसी परम्परा का निर्वाह स्फा0 में किया गया है। आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी ने स्फा0 में आर्या वृत्त के औचित्य को उजागर किया है।[२८] ना0 के कवि ने नारी को 'वसन्ततिलकायितशुभ्रहासा'[२९] कहा है। इसमें कोई अचरज नहीं कि कवि प्रकृतार्थपरक पदों द्वारा मुद्रा अलंकार की योजना कर यही सूचित कर रहा है कि ना0 की रचना के लिए वसन्ततिलका वृत्त ही सर्वश्रेष्ठ है।[३०] काव्यसमाधि में आत्माभिव्यक्ति का जो राग कवि को अभिभूत करले और जिस लय में उसका संवेदन छलक उठे वही उसका सिद्ध छन्द होता है। उस पर प्रश्न करने जैसी या परामर्श देने जैसी छेड़ छाड़ करना दुःसाहस भी है और अपराध भी। उसकी काव्यप्रसूति सृष्टि प्रक्रिया में प्रवृत्त होने वाली किसी भी आनन्दगर्भित पीड़ा से कम नहीं। चेतना के गर्भ में हलचल करते रागात्मक भाव को सही ढंग से प्रसव देना ही कविकर्म की सफलता है और यह सफलता इन दोनों कवियों में अप्रतिहत है।

स्फा0 और ना0 के तेवर में एक अन्तर साफ दिखाई देता है। स्फा0 में नारी को सबल सिद्ध करने के लिए बहुत सारे तर्क दिये गये हैं, अतः इसका काव्य तर्कनाप्रधान है। ना0 में नारी का स्तवन है अतः इसका काव्य भावप्रवण है।

स्फा0 और ना0 के अनेक मुक्तकों में प्रवृत्ति और भावगत सामान्य दिखायी देता है। दोनों कृतियाँ मातृशक्ति को समर्पित की गयी हैं। स्फा0 उस ममतामयी माँ को अर्पित हैं जो पुत्र को अपने गर्भ, अंक और अन्तःकरण में धारण किये रहती है तथा ना0 नारी जाति की आलोक-पताका राष्ट्रमाता हुतात्मा श्रीमती इन्दिरा गान्धी को समर्पित है। स्फा0 के प्रारंभ में उन भगवान् शंकर को प्रणाम किया गया है जो काम को भस्म कर देने पर भी समुद्रमन्थन के अनन्तर विष्णु के नारीमय मोहिनी रूप को देख कर मुग्ध हो गये थे।[३१] देवचरित के प्रसंग से यहाँ नारी शक्ति का उत्कर्ष प्रदर्शित करना कवि की अभीप्सा है। ना0 के कवि ने प्रतिज्ञा की है कि वह देवताओं और विविध अवतारों को छोड़ कर केवल नारी के चरित्र का ही गान करने जा रहा है क्यों कि यही उसके काव्य का मंगल है।[३२] स्फा0 नारी को कुल

कूलद्वयसेतु[३३] मानती है ना0 में उसे उभय कुल की प्रतिष्ठा कहा गया है ।[३४]

स्फा0 और ना0 दोनों पर ही मनु के **'द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्। अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत् प्रभुः ।।**[३५] का प्रभाव देखा जा सकता है । स्फा0 का तर्क है क्योंकि स्त्री पुरुष सृष्टि के आरंभ में हिरण्मय अण्ड-ब्रह्माण्ड-के आधे-आधे अंश से उत्पन्न हुए हैं, अतः इसमें कोई छोट-बड़ाई नहीं, ये दोनों ही बराबर हैं ।[३६] ना0 का अनुमान है-क्योंकि नारी को देखकर मनुष्य का चित्त काँप उठता है और रक्तचाप बढ़ जाता है अतः यह ठीक ही कहा गया है कि स्त्री और पुरुष एक ही तत्त्व के दो रूप हैं ।[३७] स्फा0[३८] और ना0[३९] दोनों ही **'स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः'** इस लोकोक्ति के प्रति श्रद्धालु है । स्फा0 और ना0 दोनों **'दृशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति दृशैव याः। विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुमो वामलोचना**[४०] ।।' के पक्षधर हैं । स्फा0 के मंगलाचरण और ना0 के उ0 के प्रारंभ में यही दर्शन है । नारी के वामात्व पर स्फा0[४१] और ना0[४२] दोनों ही कटाक्ष करते हैं । दोनों में किलकिञ्चित का बोध भी तुलनीय है[४३]।

यदि स्फा0 की चार आर्याओं; जिनमें नारी का माता पिता को छोड़ कर ससुराल जाना, पुत्र के पोषण में अपना यौवन अर्पित कर देना और उसका पालन करना तथा पति के घर की शोभा बनना वर्णित है;[४४] का अधिकांश ना0 के एक ही श्लोक में[४५] उपलब्ध है तो स्फा0 में चण्डी, दुर्गा, सीता, राधा, प्रकृति, सरस्वती और लक्ष्मी के रूप में आकलित नारी के मूलभूत दर्शन का[४६] ना0 के उ0 में विस्तार देखा जा सकता है । स्फा0 में नारी के आकर्षण की व्यापकता प्रदर्शित की गयी है,[४७] इस आकर्षण का विस्तार ही ना0 के0 पू0 का संवेदन है ।

स्फा0 की नारी भावना ने स्त्रीलिंग शब्दों को भी नारी का प्रतीक मान कर नारी तत्त्व की विवेचना की है[४८] उसमें यत्र तत्र लोक जीवन के भी दर्शन हुए हैं।[४९] स्फा0[५०] और ना0[५१] दोनों ही इस सत्य को स्वीकार करते हैं कि सृष्टि-प्रक्रिया में अकेला पुरुष कितना असहाय होता है । स्फा0[५२] और ना0[५३] उभयत्र नारी को पुरुष के पुरुषार्थ-सम्पादन का प्रेरक माना गया है ।

प्राकृतिक तत्त्वों के माध्यम से दोनों मुक्तकों में नारी को निरूपित करने का प्रयास किया गया है स्फा0 नारी को गंगा के रूप में चित्रित करती है[५४], ना0 नदी के रूप में[५५] ।

नारी की सन्निधि का प्रभाव उभयत्र परिलक्षित हुआ है । उदाहरण के लिए स्फा0 में नारी के स्पर्श या कोप को कम्प का हेतु माना गया है[५६] जब कि ना0 उसके दर्शन को कम्प का हेतु मानता है[५७] ।

दोनों मुक्तकों में यत्र तत्र पूर्ववर्ती कवियों का अर्थानुहरण भी किया गया है।

इस प्रसंग में मनु तथा राजशेखर की विद्धशालभंजिका की चर्चा ऊपर आ चुकी है। स्फा0 में आयुर्वेद[५८] सांख्यदर्शन[५९], नीतिशास्त्र,[६०] ऋग्वेद[६१] आदि से प्रभावित आर्याएँ उपलब्ध हैं। ना0 में 'नान्ध्रीपयोधर इवातितमां प्रकाशः' इत्यादि सुप्रसिद्ध श्लोक का[६२] तथा भास[६३] और कालिदास[६४] आदि का प्रभाव परिलक्षित हुआ है।

स्फा0 की भाषा प्रायः सीधी-साधी और प्रसाद-प्रांजल है, ना0 की सालंकार[६५]। दोनों में कहीं हिन्दी मुहावरों का अनुवाद भी कर लिया गया है। स्फा0 में 'मैं विदग्ध नारी को क्या खाकर अबला कहूँ' जैसी हिन्दी मुहावरे की अभिव्यक्ति को संस्कृत में अबलां कथयानि किं भुक्त्वा[६६], रूप में अनूदित करने से संस्कृत-अभिव्यक्ति स्फीत नहीं हो सकती है। ना0 में 'मुँह जोहते रहना' या 'आँखों में आँखें डालना', मुहावरों का नित्यं पठन्ति पुरुषा वदनं त्वदीयम्[६७], या 'नेत्रं निपातयति यस्तव नेत्रमध्ये[६८], रूप में अनुवाद चेतोहारी नहीं कहा जा सकता।

ना0 के श्लोकों में पूर्वार्ध और उत्तरार्ध का विभाग न करना तथा दोनों विभागों में आवश्यक सन्धिनियमों का निर्वाह न करना बन्ध को शिथिल बनाता गया है। स्फा0 प्रायः इस दोष से मुक्त रही है[६९]।

संक्षेप में नारीपरक अर्वाचीन संस्कृत मुक्तकों में स्फा0 के कवि की मूल चेतना नारी को अबला मानने के लिये कतई तैयार नहीं है। आदि से अन्त तक उसका सरंम्भ उसके सबल व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने में रहा है। ना0 ने उसके सबल व्यक्तित्व को आर्कषण दिया है। स्फा0 के मुक्तक नारी के रेखाचित्र स्थानीय प्रतीत होते रहें हैं ना0 में उनमें रंगों का योग परिकल्पित किया गया है। जहाँ तक प्राणवत्ता का प्रश्न है वह दोनों कृतियों में है। स्फा0 का मन्तव्य है कि नारी कवियों के लिए कमनीय है[७०] ना0 का कवि उसे वर्णनातीत मानता हुआ भी उसकी अभिरामता के कारण उससे विराम प्राप्त नही करना चाहता[७१]।

---

१. स्फा0 का प्रकाशन सुधाकमल ग्रन्थालय, मुजफ्फरनगर (उ0 प्र0) से १९८० में तथा ना0 का साहित्य सहकार दिल्ली से १९८५ में हुआ है।

२. द्र0, स्फा0, द्वित्राः शब्दाः, पृ0 १ ॥

३. आत्मीया प्रकृतिर्नारी पुरुषस्य यदुच्यते।
तदात्मानं संस्तुवता नारीगीतं विधीयते ॥ ना0, प्रस्थानभेदः-६ ॥

४. उदाहरणार्थ दुर्गासप्तशती के ग्यारहवें अध्याय में इन्द्रादि देवताओं द्वारा की गयी कात्यायनी देवी की स्तुति को लिया जा सकता है ॥

५. यद्वस्तु येनाकारेण सिद्धं तस्य तेनाकारेणाभिमुखीकरणं सम्बोधनम्।
सम्बोधने च (पा0 २/३/४६) पर पद्मंजरी।

६. ना0 पू0 ४, ८, १६, ३०, ३२ आदि, उ0 ९२-९९ आदि ।

७. नूनं हि ते कविवरा विपरीतबोधा

ये नित्यमाहुरबला इति कामिनीनाम् ।

याभिर्विलोलतरतारकदृष्टिपातैः

शक्रादयोऽपि विजितास्त्वबलाः कथं ताः ।। श्रृंगारशतक ११ ।।

८. हृदये वहसि गिरीन्द्रौ त्रिभुवनजयिनी कटाक्षेण ।

अबला त्वं यद्वि मन्ये के बलवन्तो न जानीमः ।। वाचस्पत्यम् में उद्धृत

९. स्फा0 २-४,५,६,९,१०,१३,२२,२५,४९,७४,७९,८३, ।।

१०. वही-८३ ।।

११. कथितो विष्णुरकारो माया बलमस्ति तत्त्वतस्तस्य ।

सा चेयमेव नारी सिद्ध्यत्यबलात्वमप्यस्याः ।। वही ७९ ।।

न बलं यस्याः सा अबला-यह अबला शब्द की प्रसिद्ध व्युत्पत्ति है । अल्पं बलमस्याः सा, अथवा नास्ति बलं यस्याः सा अबला-इस रूप में भी इसकी निरुक्ति की जाती है, अबला में नञ् अल्पार्थक है ।

१२. पू0 और उ0 की पुष्पिकायें इस प्रकार हैं- (क) इति नारीगीते नार्याकर्षणमहिमाङ्कितः पूर्वार्धः (ख) इति नारीगीते नारीतिहासदर्शनाङ्कितः उत्तरार्धः।। वास्तव में इस विभाग की कोई आवश्यकता नही है । कारण, उ0 के बहुत से ऐसे मुक्तक हैं जो पू0 विषयक प्रतीत होते हैं और पू0 के कुछ मुक्तक उ0 में रखे जा सकते हैं ।।

१३. जीवनमुक्तकम् (शङ्करदेव अवतरे-विरचितम्) प्रथम संस्करण १९८९ । प्रकाशक-साहित्य सहकार ई-१०/४ कृष्णनगर, दिल्ली-५१ ।।

१४. स्फा0 १४, २९, ४१, ४२, ।।

१५. ना0 उ0 ५७, १०३ ।।

१६. स्फा0 १०८ ।।

१७. वही-१०९ ।।

१८. वही-७७, ७८ ।।

१९. वही-६४ ।।

२०. वही-४९ ।।

२१. वही-९७ ।।

२२. वही-९८ ।। लोक में देखा जाता है, यदि महिला पुरुष के आसन (रेल, बस आदि की सीट) पर बैठ जाती है तो कुछ भी आश्चर्य नही होता, पर महिलाओं के आसन (सीट, कम्पार्टमेण्ट आदि) पर बैठने वाले पुरुषों की निन्दा ही होती है ।।- अनुवाद ।।

२३. स्फा0 १०४ ।। क्रूर भुजंग (धूर्त, नालायक पति और सर्प) गर्भवती स्त्रियों के द्वारा देखा जाने पर अन्धा (सहवास के अभाव में किंकर्तव्यविमूढ और आँखों से अन्धा) हो जाता है । किन्तु पुत्र से भरी हुई गोद वाली उन्ही स्त्रियों के द्वारा उसकी अन्धता दूर की जाती है ।।-अनुवाद ।।

२४. ना0 पू0 १५ ।।

२५. वही उ0 १२१ ।। स्फा0 ७० नारी को भारतवर्ष में सद्गुण की जननी कहती है ।

२६. जीवनमुक्तकम्, पुरश्चरण, पृ0 १ ।।

२७. मया एतदेव विचार्य यदा कदा स्वविचारा आर्यासु निबद्धाः । स्फा0, द्वित्राः शब्दाः, पृ0 १ ।।

२८. स्फा0, शुभाशंसन, पृ0 १ ।।

२९. ना0 पू0 १६ ।।

३०. हम देखते हैं कि 'अव्यक्तभावनिर्विण्णतया परात्मा' ना0 उ0 ११८ में छन्द विसंष्ठुल हो गया है ।

३१. स्फा0, मंगलश्लोक ।।

३२. ना0 पू0 १ ।।

३३. स्फा0 ५0 ।। ना0 उ0 ५३ में नारी को स्वर्ग और नरक को मिलाने वाला सेतु कहा गया है ।।

३४. ना0 पू0 ९० ।।

३५. मनुस्मृति १ /३२ ।।

३६. स्फा0 ७४ ।।

३७. ना0 पू0 ४८, द्र0 ८५ ।।

३८. स्फा0 १९ ।।

३९. ना0 पू0 ५५, ८१ ।।

४०. विद्धशालभञ्जिका १/२ ।।

४१. स्फा0 ७२ ॥

४२. ना0 पू0 ९१, ९२ ॥

४३. स्फा0 १७, ना0 पू0 ९३ ॥

४४. स्फा0 ३३, ३४, ३५, २६, ॥

४५. ना0 पू0 ९ ॥

४६. स्फा0 २ ॥

४७. वही- ८, २७, ५५, ६८, ७१ ॥

४८. स्फा0 ३०, ३१, ३९, ६५, ६६, १०६ ॥

४९. वही- २६, २९, ६१, ५३, ६२ ॥

५०. वही-३६ ॥

५१. ना0 पू0 ४ ॥

५२. स्फा0 ३१ ॥

५३. ना0 उ0 ११६ ॥

५४. स्फा0 ७७ ॥

५५. ना0 पू0 ५१ ॥

५६. स्फा0 ४, ५१ ॥

५७. ना0 पू0 ४८ ॥

५८. स्फा0 १३, १८ ॥

५९. वही-२०, ३६ ॥

६०. वही-२३, २४, ७५, ८०, ॥

६१. वही-२७ ॥

६२. ना0 पू0 ७८ ॥

६३. ना0 पू0 १०३ ॥

६४. ना0 उ0 ८१, ८३ ॥

६५. ना0 में '**नारी त्वमेव परिचालयसि त्रिलोकम्** (ना० पू0 ७) में सम्बुद्धि में 'नारि' रूप होना चाहिए । '**ते रूपधूप उपगन्धयते मनांसि**' (पू0 २६), '**ते कुन्तलभ्रमरका भुजगायमानाः**' (पू0 ४७), '**ते तप्तदुग्धतुलनीयशरीरवर्णम्**' (पू0 ५८) '**ते संस्तवाय यतते हृदि संस्तुतः सन्**' (पू0 १०८) आदि वाक्यों के

प्रारम्भ में युष्मद् शब्द के षष्ठी एक वचन के स्थान पर होने वाला 'ते' आदेश अनुचित है। **'मात्रं स्वरोऽपि तव सस्वरगीतबन्धः'** (पू० २६), **'मात्रमनोरमां त्वाम्'** (पू० ९४), **'मात्रं पयोधरघटौ न पयोमुखौ ते'** (उ० ४६) में मात्रच् प्रत्यय का अकेले या आदि में प्रयोग ठीक नही। **'चूर्णेषु कुन्तलचयेषु नियन्त्रणाय'** (पू० ६५) में चूर्ण और कुन्तल का व्यस्त रूप 'केश' अर्थ का अभिधायक नही है। **'तत्तः समस्तभुवनं भयभीतमस्ति'** (पू० ८८) में 'भय' पद अनावश्यक है। **'वह्नेः शिखेव दहसे पुरुषव्यलीकम्'** (पू० ८९) में 'दहसे' यह आत्मनेपद रूप अशुद्ध है। **'वाढं च वर्धयति दैहिक रक्तचापम्'** (पू० ४८) या **'श्वासं समेधयति वर्धितरक्तचापम्'** (पू० ९९) में 'रक्तचाप' प्रयोग अरुचिकर है। 'नारीवियोगमसहन्' (उ० ३५) में असहन् रूप अशुद्ध है।

६६. स्फा० ४९ ॥

६७. ना० पू० ५० ॥

६८. वही पू० ९६ ॥

६९. स्फा० ४९, ६५, आदि अपवाद हैं।

७०. स्फा० ७२ ॥

७१. ना० उ० १२३ ॥

# डॉ० उमाकान्त शुक्ल के दीपमालिकाभिनन्दन-मुक्तक

अरविन्दनाभ शुक्ल

संस्कृत विद्वानों में जहाँ संस्कृत भाषा के माध्यम से गद्य या पद्य में पत्रव्यवहार होता देखा गया है वहीं विशिष्ट पर्वों या उत्सवों पर कवियों में संस्कृत रचनाओं के माध्यम से एक दूसरे की मंगल-कामना की परिपाटी भी दिखायी देती है ।

डॉ0 उमाकान्त शुक्ल के दीपावली-अभिनन्दन-पत्रकों ने संस्कृत-समुदाय को आवर्जित किया है । उनका समस्त परिवार इन पत्रों के प्रेषक के रूप में सामनें आया है । पिछले दस वर्षों से वे, उनकी पत्नी डॉ0 सविता शुक्ल प्रवक्ता रसायनविभाग डी0 ए0 वी0 कालेज मुजफ्फरनगर, पुत्र अरविन्दनाभ शुक्ल, पुत्रियाँ कु0 सुस्मिता शुक्ल और कु0 प्रज्ञा शुक्ल इन दीपावली-अभिनन्दन-पत्रों को विद्वत्समुदाय की सेवा में प्रेषित कर रहे हैं । श्री शुक्ल ने होली पर्व पर सौ से अधिक आर्याएँ लिख छोड़ी हैं, दीपावली पर भी सौ श्लोकों की रचना करने का उनका विचार है।

इन दीपावली-मङ्गल-कामनाओं की रचना-कला बड़ी मार्मिक हैं । क्योंकि उनके ये पत्र हिन्दी-भाषी मित्रों के पास भी जाते हैं अतः इन श्लोकों का एक वाक्य में भावानुवाद या कभी कभी काव्यानुवाद भी कर दिया गया है ।

इन माङ्गलिक श्लोकों का उद्देश्य लोक की मङ्गल-कामना करना है-इसमें कोई सन्देह नहीं । दीपावली-वर्णना भी इनका एक आकर्षण है । अँधेरी रात में दीपकों की दीप्ति का वर्णन करता कवि काले और सफेद की जो भेदमूलक संयोजना करता है उससे चेतना में एक मधुर सिहरन सी अनुभूत होती है । दीपावली महोत्सव में दीपक की लौ को जब जूही की कली का रूप देना चाहा तभी उसे नायिका के जूड़े का स्मरण आना नितान्त स्वाभाविक प्रतीत हुआ । अँधेरी रात की दीपमाला में जूड़े में टँकी जूही का बिम्ब मुखर हुआ नहीं कि मंगल-मोद का वातावरण बनने लगा-

धम्मिले यूथिकेवाङ्ग
राजमाना सुमङ्गला ।
ध्वान्तेऽस्मिन् दीपमालेयं
कुर्याद् वो मङ्गल शुभम् ।।[१]

अँधेरे में दूर-दूर तक फैली दीपमालाओं पर ध्यान टिका नहीं कि कवि का ध्यान बदल गया। उसे ऐसा लगा जैसे तमाल के समान काले तमःप्रसार में स्वर्ण की रेखा खींच दी गयी हो। फिर पूजा के दीपक-मिट्टी के दीपक-में रचना को उजागर करना चाहा तो उसे उनका आकार नखक्षत के आकार सा वक्र दिखायी दिया। एक साथ ही अँधेरे, उसमें दीपमाला और दीपक के आकार ने कुछ इस प्रकार के काव्य को जन्म दिया है-

तमालनीले तमसां वितानें
समर्पिता स्वर्णमयीव रेखा।
नखक्षताकार-बलि-प्रदीपै-
दीपावली वस्तनुतां प्रमोदम् ॥[२]

ऋजु, आयत, वक्र, सान्द्र और सान्तराल दीपमालाएँ देख अपना प्रमोद औरों को भी बाँटा है। अँधेरे में ये प्रकाश-रेखाएँ ऐसी लगी हैं जैसे साँवली के शरीर पर चन्दन की पत्र रचना कर दी गई हो-

ऋज्वायता लम्बितवक्रभावा
सान्द्रा क्वचित् क्वापि च सान्तराला।
तमस्ततेश्चन्दनपत्रभङ्गी
दीपावली दिश्यतु वः प्रमोदम् ॥[३]

कवि को इन दीप पंक्तियों में कभी-कभी मुखर होने का बोध भी हुआ है। उसे लगा है दीपमाला कोई छन्दोविशेष है या छेकोक्ति की रमणीय कल्पना है। दीपमाला का प्रसारशील रूप उसे सोने की धुनकी और अँधेरा मलिन रुई जैसा लगा। कामना की गयी कि सभी अँधेरे उजले हो जायें-दीप-पंक्तियों-सोने की धुनकियों से तम-तूल को छाँटती दीपमाला आपका मङ्गल करे

छन्दोविशेषनिचितैरिव दीप्रदीपै-
श्छेकोक्तिरम्यकलना शुभदीपमाला।
व्याप्तं तमःपिचुभरं धवलीकरोतु
सौवर्णपिञ्जनशतैरिव पिञ्जयन्ती ॥[४]

दीपकों की मुखरता का एक अनुपम चित्र इस रूप में बनाया गया है। अमावस्या एक चिड़िया है, वह ज्यों ही निकट आयी कि दीपक रूपी अण्डों से प्रकाश के चिरौटे अँधेरे के घोंसले में चूँ चूँ करके लौ की चोंच खोल फुरफुराने लगे। साङ्गरूपक के माध्यम से दीपकों की हलचल का चित्र है यह-

अमा-सवित्रीं प्रविलोक्य पार्श्वे

शिखा-सृपाटीं प्रविभिद्य सोत्काः ।

स्फुरन्ति चूङ्कृत्य तमःकुलाये

दीपाण्डकेभ्यो द्युति-चाटकैराः ॥[५]

एक और रचना में मङ्गलकामना करते हुए कवि ने कहा है-द्वार भीत खिड़की पर दीपक चिरौटे बैठ फुरफुरायें । खील खिलखिलायें । द्युतिपुष्प हसें ह! ह! ह! ह! लक्ष्मी विभावित हो मङ्गलमय दीपावली -

उद्यच्छिखैर्दीपकचाटकैरै-

राच्छादितद्वारगवाक्षकुड्या ।

लाजैः प्रसन्नैर्द्युतिकुड्मलैश्च

दीपावली भातु विभावितश्रीः ॥[६]

पक्षियों की संयोजना के माध्यम से या प्राकृतिक विभूतियों के मेल से दीपावली का दृश्य भी सुन्दर बना है, जिसमें अँधेरे में चमकती सुग्गों की चोंच सी लाल दीपावली ऐसी लगती है जैसे ताड़-कुञ्ज में पाटल की कलियाँ खिल गयी हों-

तालीवने पाटलकुड्मलानां

विडम्बयन्तीव विकासलीलाम् ।

कीराङ्गनात्रोटिमनोहरश्रीः

शिवं विदध्यान्नवदीपमाला ॥[७]

पढाई लिखाई में लगे लोग जब भी कोई महत्त्वपूर्ण पंक्ति देखते हैं उसे रेखांकित कर लेते हैं । काल एक महाप्रबन्ध है,उसमें अंधकार के अक्षर हैं और दीपावली उसके महत्त्वपूर्ण अंश पर ऐसी लगती है जैसे कोई गैरिक रेखा खींच दी गयी हो या यह ऐसी भी लगती है जैसे प्रकाश की नहर हो-

तमोऽक्षरे कालमहाप्रबन्धे

न्यस्तां क्वचिद् गैरिकरागरेखाम् ।

विडम्बयन्ती कुरुताच्छिवं वो

दीपावली ज्योतिरदभ्रकुल्या ॥[८]

दीपक की लौ उठते हजारों सुवर्ण भालों सी या तिलक सी या कुन्दकली सी लगती है , दीपक सजीव प्राणी की तरह चूडाल हो उठे हैं-

उद्यद्धिरण्मयसहस्रकरालकुन्त-

च्छायानुकारकुशलास्तिलकाभिरामाः ।

कौन्दप्रगल्भनवकुड्मलकान्तिशिल्पा-

श्चूडालदीपकलनास्तिमिरं दहन्तु ।।[९]

दीपावली कहीं प्रकाश के वृक्ष की कली सी,कहीं सोने के पासों सी, चौराहे पर चौसर सी लग रही है । लगता है वह निर्मल प्रकाश की रेखाओं से रेखा गणित सीख रही है । हँसती खील और मिठाइयाँ मङ्गल करें ! इस कामना को इन श्लोकों में ढाला गया है-

क्वचित्प्रकाशद्रुमकुड्मलाभा

क्वचिच्च हैमाक्षकलापवीक्ष्या ।

शृङ्गाटके शारिफलाभिरूपा

दीपावली दीव्यतु दीपिताशा ।।

प्रकाशलेखाभिरनाविलाभि-

रभ्यस्तरेखागणिताभिरामा ।

लाजैर्हसद्भी रुचिरैश्च मिष्टैः

श्रेयो विदध्यात्तव दीपमाला ।।[१०]

कभी-कभी दीपावली-मुक्तकों में प्रबन्धात्मकता भी देखने को मिली है । प्रस्तुत तीन श्लोकों में लगा है कवि को यह चिन्ता हुई है कि अँधेरे दीपकों के विरुद्ध कोई षड्यन्त्र कर रहे हैं किन्तु वह विश्वस्त है कि विजय दीपकों की ही होगी । इस भूमिका के साथ कवि फिर दीपावली की शोभा में खो गया है । अमावस्या में दीपावली ऐसी लगने लगी है जैसे सुर्मे के पर्वत पर ढाक का जङ्गल खिल गया हो-

इह प्रतोल्यामभिषेणयद्भि-

र्भल्लूककालैर्निबिडैस्तमोभिः ।

असावुदेष्यन् मुदितः प्रदीपो

निवार्यते तद्विलसत्प्रकाशात् ।।

तावत्तमो दृप्यतु लेढु लोकं

रुणद्धु चक्षूंषि शृणातु चेतः ।

यावत्स्वकीयाभिरनाविलाभिः

प्रभाभिरारात्स्मयते न दीपः ।।

स्निग्धाञ्जनक्षोणिभृति प्रफुल्ल-

प्रसूनभा किंशुककाननश्रीः ।

सान्द्रान्धकारे विकचप्रकाशा

दीपावली दीव्यतु दीपिताशा ।।[११]

---

१. रचना सं0 २०३८.

२. रचना संवत् २०३९.

३. रचना संवत् २०४०.

४. रचना संवत् २०४१.

५. रचना संवत् २०४२.

६. रचना संवत् २०४७.

७. रचना संवत् २०४६.

८. रचना संवत् २०४२.

९. रचना संवत् २०४३.

१०. रचना संवत् - २०४४.

११. रचना संवत् २०४५.

# महाकवि ज्ञानसागर के काव्यों में अलङ्कार-विधान

डॉ0 किरण टण्डन

अलङ्कार शब्द 'अलम्' उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से घञ् प्रत्यय के योग से निर्मित हुआ है। इस शब्द का तात्पर्य है- सजाने का उपकरण। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से अलङ्कार की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है-

कविता-कामिनी को सुसज्जित करने वाले अनुप्रास -उपमादि उपकरणों को अलङ्कार कहा जाता है। स्त्री-पुरुष आवश्यकतानुसार ही अपने सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए अलङ्कारों का प्रयोग करते हैं। किसी-किसी को तो इनको धारण करने की आवश्यकता भी नहीं होती ! यदि कोई अनावश्यक रूप से आभूषणों को धारण करता है तो वे भूषण के स्थान पर दूषण का रूप ले लेते हैं और उस व्यक्ति को उपहास का पात्र बना देते हैं। काव्य में भी अलङ्कारों की स्थिति बहुत कुछ ऐसी ही है। जब तक ये अलङ्कार काव्य से प्राप्य आनन्द में बाधा नहीं पहुँचाते, तब तक इनका प्रयोग उचित लगता है, किन्तु जहाँ सहृदय को अलङ्कारों की भरमार के कारण काव्य के रसास्वाद में बाधा होने लगती है, वहीं ये अलङ्कार रुचिकर लगने के स्थान पर बोझ लगने लगते हैं। कहीं-कहीं काव्य में इनकी उपस्थिति के अभाव में भी आनन्द प्राप्त हो जाता है, अतः ये काव्य के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण न होकर कवि के कौशल के परिचायक ही हैं। भारतीय-काव्यशास्त्रियों की भी अलङ्कार के विषय में ऐसी ही धारणा है[१]।

जयोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय, समुद्रदत्तचरित, दयोदय चम्पू आदि संस्कृत काव्य ग्रन्थों के रचयिता, दार्शनिक एवं आधुनिक कवि ज्ञानसागर ( स्थितिकाल सन् १८९२ ई0-सन् १९७३ ई0 ) ने अपनी कविता-कामिनी को अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शना, अर्थान्तरन्यास, परिसंख्या, व्यतिरेक, उल्लेख, समासोक्ति, तद्गुण, स्वभावोक्ति, अप्रस्तुतप्रशंसा, असङ्गति, प्रतीप, दीपक, विभावना, संसृष्टि, संकर आदि अनेक अलङ्कारों से सुसज्जित किया है। किन्तु अनुप्रास, यमक, उपमा,

---

१. क- काव्यप्रकाश, ८/६७ साहित्यदर्पण, १०/१

रूपक, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति तथा चित्रालंकार-उनके विशेष रूप से प्रिय हैं। अलङ्कारों के उदाहरण प्रस्तुत हैं-

## अनुप्रास

'अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।'

-साहित्यदर्पण, १०/३

श्री ज्ञानसागर ने अनुप्रास के प्रायः सभी भेदों का प्रयोग अपने काव्यों में किया है। अन्त्यानुप्रास अस्मदालोच्य कवि की सबसे बड़ी विशेषता है। उन्होंने कुछ पद्यों को छोड़कर प्रायः सभी पद्यों में अन्त्यानुप्रास का प्रयोग करने का स्तुत्य प्रयास किया है। निम्नलिखित श्लोक में वृत्त्यनुप्रास और अन्त्यानुप्रास की मिली-जुली छटा का अवलोकन कीजिये -

'सपदि विभातो जातो प्रातर्भयहरणविभामूर्तेः।
शिवसदनं मृदुवदनं स्पष्टं विश्वपितुर्जिनसवितुस्ते ॥'

-जयोदय, ८/१०

अब देखिये लाटानुप्रास का उदाहरण-

'मनोरमाधिपत्वेन ख्याताय तरुणायते।
मनो रमाधिपत्वेन ख्याताय तरुणायते ॥'

-सुदर्शनोदय, ६/२१

कवि के प्रिय अलङ्कार अन्त्यानुप्रास की भी झलक देखिये-

'हे नाथ मे नाथ मनाग्विकारः,
चेतस्युतैकान्ततया विचारः।
शत्रुश्च मित्रं न च कोऽपि लोके,
हृष्यज्जनोऽज्ञो निपतेच्च शोके ॥' -सुदर्शनोदय, ८/१५

## यमक

'अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः।
यमकम् ---------------- ॥'

-काव्यप्रकाश, ९/८३

श्रीज्ञानसागर के काव्यों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि उन्होने यमक के अनेक प्रकार के भेदों तथा प्रभेदों का प्रयोग किया है जिनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-

## आद्य यमक-

'विपल्लवानामिह सम्भवोऽपि न विपल्लवानामुत शाखिनामपि ।
सदा रमन्तेऽस्य विहाय नन्दनं सदारमन्ते रुचितस्ततः सुराः ।।'

-जयोदय, २४/५५

## मुखयमक एवं एकदेशज मध्ययमक-

'समाश्रिता मानवताऽस्तु तेन समाश्रिता मानवतास्तु तेन ।
पूज्येष्वथा मानवता जनेन समुत्थसामा नवताऽप्यनेन ।।'

-वीरोदय, १७/१२

## युग्म यमक-

'पुण्याहवाचनपरा समुदर्कसारा पुण्याहवाचनपरासमुदर्कसारा ।
आशासिता सुरभिता नवकौतुकेन वाशासितासुरभितानवकौतुकेन।।'

-जयोदय, १८/६८

## पुच्छ यमक-

'तमन्यचेतस्कमवेत्य तस्य सङ्कल्पतोऽनन्यमना वयस्यः ।
समाह सद्यः कपिलक्षणेन समाह सद्यः कपिलः क्षणेन ।।''

-सुदर्शनोदय, ३/३९

## उपमा

'उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः ।'

-कुवलयानन्द, ६

उपमा के अलङ्कारसम्राज्ञीपद को महाकवि ज्ञानसागर ने अत्यधिक सम्मान दिया है । यह अलङ्कार कवि को इतना अच्छा लगता है कि प्रकृति वर्णन, युद्धवर्णन के अतिरिक्त ज्ञान, वैराग्य और दर्शन की चर्चा करते समय भी उन्होंने इसका प्रयोग किया है । यथा-

(क) 'किमु भवेद्विपदामपि सम्पदां भुवि शुचापि रुचापि जगत्सद
करतलाहतकन्दुकवत्पुनः पतनमुत्पतनं च समस्तु नः ।।'

-जयोदय, २५/१०

प्रस्तुत श्लोक में गेंद के गिरने-उठने से संसार के पतन और उत्थान की सुन्दर उपमा दी गयी है । ग़ेंद उपमान है और भाग्य उपमेय । पतन-उत्थान साधारण धर्म है तथा 'वत्' उपमावाचक शब्द है । पूर्णोपमा है ।

(ख) 'सालङ्कारा सुवर्णा च सरसा चानुगामिनी ।
कामिनीव कृतिर्लोके कस्य नो कामसिद्धये ।।'

-जयोदय, २९/८२

इस श्लोक में कविकृति उपमेय और कामिनी उपमान है । सालङ्कारा, सुवर्णा, सरसा और अनुगामिनी इत्यादि विशेषण कविकृति और कामिनी दोनों के पक्ष में श्लेष के माध्यम से प्रयुक्त किये गये हैं । 'इव' उपमावाचक शब्द है । अतः श्लिष्टपूर्णोपमा है ।

(ग) 'दयेव धर्मस्य महानुभावा क्षान्तिस्तथाभूत्तपसः सदा वा ।
पुण्यस्य कल्याणपरम्परेवाऽसौ तत्पदाधीनसमर्थसेवा ।।'

वीरोदय, ३/१६

प्रस्तुत श्लोक में दया, क्षमा और कल्याणपरम्परा रानी के उपमान के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं, इसलिए यहाँ पर मालोपमा अलङ्कार है ।

## उत्प्रेक्षा

'सम्भावना स्यादुत्प्रेक्षा ।' -कुवलयानन्द, ३२

कवि द्वारा प्रयुक्त अर्थालङ्कारों में उत्प्रेक्षा अलङ्कार का द्वितीय स्थान है । कवि के काव्यों के परिशीलन से लगता है कि उसके काव्यों में मात्रा की दृष्टि से भले ही उपमा का स्थान प्रथम हो, किन्तु चमत्कार की दृष्टि से उत्प्रेक्षा ही अलङ्कारों में सर्वोपरि है । प्रस्तुत हैं, उत्प्रेक्षा के कुछ उदाहरण-

(क) 'समुत्कीर्य करावस्या विधिना विधिवेदिना ।
तच्छेषांशैः कृतान्येवं पङ्कजानीति सिध्यति ।।'

-जयोदय, ३/४५

सुलोचना के हाथों को देखकर यह सिद्ध हो जाता है कि निर्माण की विधि को जानने वाले विधाता ने सुलोचना के हाथों का निर्माण करने से बची हुई सामग्री से ही कमलों की रचना की है । यहाँ सुलोचना के हाथों की अत्यधिक सुन्दरता को बताने के लिए कवि ने यह उत्प्रेक्षा की है ।

(ख) 'हे तात, जानूचितलम्बबाहोर्नाङ्गं विमुञ्चेत्तनुजा तवाहो ।
सभास्वपीत्थं गदितुं नृपस्य कीर्तिः समुद्रान्तमवाप तस्य ।।'

-वीरोदय, ३/११

समुद्र को सम्बोधित करते हुए कवि कहते हैं कि तुम्हारी पुत्री लक्ष्मी घुटनों तक लम्बी भुजाओं वाले राजा सिद्धार्थ के शरीर का आलिङ्गन करना सभाओं में भी नहीं छोड़ती, उसके इसी व्यवहार को बताने के लिए ही मानों उस राजा की कीर्त्ति समुद्र तक पहुँच गयी है । राजा सिद्धार्थ का यश समुद्रपर्यन्त फैल गया है, यह सूचित करने के लिए ही कवि ने उक्त उत्प्रेक्षा की है ।

(ग) 'अहो प्रकटमपि तनयरत्नमपह्रियतेऽमुष्मिन्भूतले धूर्तजनेन । अयं पुनर्मयेहोडुरत्नानि विकीर्य स्थातुं पार्येतेति किल तान्युपसंहृत्य कुतोऽपि च्छन्नीभवितुं पलायाञ्चक्रे रजनी ।।'

-दयोदयचम्पू, ३/श्लोक ७ के बाद का गद्यांश ।

बड़े आश्चर्य की बात है कि पृथ्वीतल पर धूर्तजनों के द्वारा प्रकट भी पुत्र रूप रत्न का अपहरण किया जा रहा है, फिर नक्षत्ररूप रत्नों को फैलाकर मेरे द्वारा निश्चिन्तता से कैसे बैठा जाय, मानों यही सोचकर उन सबको एकत्र करके रात्रि भी कहीं छिपने के लिए चली गयी ।

रात्रिकाल व्यतीत हो जाने पर नक्षत्रगण दृष्टिपथ में नहीं आते, यह प्रकृति का शाश्वत नियम है । किन्तु यहाँ पर कवि ने उस नियम को रात्रिगमन और नक्षत्रलोप के रूप में हेतुपूर्वक सम्भावित करके पाठकों के हृदय को भली भाँति चमत्कृत कर दिया है ।

## रूपक

'तद्रूपकमभेदो य उपनामोपमेययोः ।'

-काव्यप्रकाश, १०/९३

सर्वप्रथम आपके समक्ष कवि द्वारा वर्णित साङ्गरूपक का एक उदाहरण प्रस्तुत है-

'बकाः पताकाः करिणोऽम्बुवाहाः शरा मयूरास्तडितोऽसिकाहा ।
ढक्कानिनादस्तनितानुवादः सुधीरणं वर्षणमुज्जगाद ।।'

-जयोदय, ८/६३

जयकुमार तथा अर्ककीर्त्ति के युद्धवर्णन से सम्बन्धित इस श्लोक में ध्वजों, हाथियों, बाणों, तलवारों, और नगाड़ों की आवाज का क्रमशः बगुलों, बादलों, मोरों, बिजली और बादलों की गर्जना से अभेद स्थापित किया गया है । इस प्रकार युद्ध पर वर्षाकाल का आरोप होने से साङ्गरूपक अलङ्कार है ।

अब देखिये वसन्तर्तुवर्णन के प्रसङ्ग में रूपक का उदाहरण-

'मुकुलपाणिपुटेन रजोऽब्जिनी दृशि ददाति ऋचाऽम्बुजजिद्दृशाम् ।
स्थलपयोजवने स्मरधूर्त्तराड्ढरति तद्धृदयद्रविणं रयात् ।।'

-वीरोदय, ६/३४

प्रस्तुत श्लोक में मुकुलपुट, पराग कामदेव और हृदय का क्रमशः हाथ के दोने, धूल, धूर्तराज और धन से अभेद स्थापित किया गया है, इसलिए रूपक अलङ्कार है।

## अपह्नुति

'प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत्साध्यते सा त्वपह्नुतिः ।'

-काव्यप्रकाश, १०/९६

कविवर ज्ञानसागर द्वारा प्रयुक्त अपह्नुतियाँ भी कम चमत्कारिणी नहीं है । यथा -

(क) 'पङ्के जातं जितं मुखेन तव सुकेशि साम्प्रतमसुखेन ।
मूर्ध्नि मिलिन्दावलिच्छलेन कृपाणपुत्री क्षिपदिव तेन ।।'

-जयोदय, १४/४७

प्रस्तुत श्लोक में सुलोचना के शिर पर विद्यमान घुँघराले बालों का निषेध करके वहाँ पर तलवार का स्थापन किया गया है, इसलिए अपह्नुति अलङ्कार है ।

(ख) 'तारापदेशान्मणिमुष्टिवारात्प्रतारयन्ती विगताधिकारा ।
सोमं शरत्सम्मुखमीक्षमाणा रूपेव वर्षा तु कृतप्रयाणा ।।'

-वीरोदय, २२/९

वर्षाकाल में आकाश मेघाच्छन्न रहता है, उस समय चन्द्रमा या तारे नही दिखाई देते । शरत्काल मेंआकाश स्वच्छ हो जाता है, अतः तब आकाश में चन्द्रमा और तारे दिखाई देने लगते हैं । कवि ने इस प्रस्तुत बात का निषेध करके-अब तक चन्द्रमा वर्षा के अधिकार में था और तारे इसकी मुठ्ठी में थे, किन्तु शरत्काल के आने से चन्द्रमा वर्षा के अधिकार में न रहा, तब क्रोध में आकर तारों के बहाने से मुठ्ठी में भरी मणियों को भी उसने फेंक दिया-इस अप्रस्तुत का विधान किया है । तारों के स्थान पर मणियों का स्थापन होने के कारण अपह्नुति अलङ्कार है ।

## अर्थान्तरन्यास

'सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते ।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा ।।'

-काव्यप्रकाश, १०/१०९

श्रीज्ञानसागर को जब भी कुछ तथ्य प्रस्तुत करना होता है, तब वह इसी अलङ्कार का अवलम्बन ले लेते हैं । किसी व्यक्ति की निन्दा करने में, स्तुति करने में, उपदेश देने में और विनम्र निवेदन करने में इस अलङ्कार के सुन्दर-सुन्दर प्रयोग कवि के काव्यों में दृष्टिगोचर होते हैं । यथा-

(क) 'शुचिरिहास्मदधीद्धरणीधरः सति पुनस्त्वयि कोऽयमुपद्रवः ।
तपति भूमितले तपने तमः परिहृतौ किमु दीपपरिश्रमः ।।'

-जयोदय, ९/७३

यहाँ प्रथम पंक्ति में वर्णित विशेष का द्वितीय पंक्ति में वर्णित सामान्य द्वारा समर्थन किया गया है । अत एव अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है ।

(ख) 'कवितायाः कविः कर्त्ता रसिकः कोविदः पुनः ।
रमणीरमणीयत्वं पतिर्जानाति नो पिता ।''

-जयोदय, २८/८३

यहाँ पर द्वितीय पंक्ति में सामान्य बात कही गयी है, जो कि प्रथम पंक्ति में प्रस्तुत बात की समर्थिका है । अत एव अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है ।

## संसृष्टि

'सेष्टा संसृष्टिरेतेषां भेदेन यदिह स्थितिः ?'

-काव्यप्रकाश, १०/१३९

श्रीज्ञानसागर के काव्यों में संसृष्टि अलंकार के अनेक उदाहरण उपलब्ध हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि कवि की कविता प्रायः अनुप्रास अलंकार से अलंकृत है। अनुप्रास के साथ ही साथ अन्य अलङ्कार भी निरक्षेप रूप से स्थित हैं। यथा-

(क) 'मृगीदृशश्चापलता स्वयं या, स्मरेण सा चापलताऽपि रम्या।
मनो जहाराङ्गभृतः क्षणेन मनोजहाराऽथ निजेक्षणेन ।।'

-वीरोदय, ३/२५

प्रस्तुत श्लोक में अन्त्यानुप्रास और यमक की संसृष्टि स्पष्ट ही दृष्टिगोचर हो रही है। अतः यहाँ पर शब्दालंकारों की संसृष्टि है।

(ख) 'नैर्मल्यमेति किल धौतमिवाम्बरन्तु
स्नाता इवात्र सकला हरितो भवन्तु।
प्राग्भूभृतस्तिलकवद्रविराभिभाति
चन्द्रस्तु चोरवदुदास इतः प्रयाति ।।'

-जयोदय, १८/६३

प्रस्तुत श्लोक की प्रथम दो पंक्तियों में उत्प्रेक्षा और द्वितीय दो पंक्तियों में उपमा अलंकार निरक्षेप रूप से विद्यमान है, साथ ही अन्त्यानुप्रास की छटा भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रही है। अतः एक ही स्थल पर दो अर्थालंकार और एक शब्दालंकार की निरक्षेप स्थिति होने के कारण संसृष्टि नामक अलंकार है।

## सङ्कर

'अङ्गाङ्गित्वेऽलङ्कृतीनां तद्वदेकाश्रयस्थितौ।
सन्दिग्धत्वे च भवति सङ्करस्त्रिविधः पुनः ।।'

-साहित्यदर्पण, १०/९८

कविवर ज्ञानसागर के काव्यों में ऐसे भी अनेक स्थल हैं जिनमें अलङ्कारों का सापेक्ष प्रयोग किया गया है। यथा-

'यतः खलु सोऽस्माकं तारुण्यतेजःसमुन्नयनाय तरणिरिवोत्तरायणः, सर्वदेवानुकूलाचरण-करण-परायणः सुललित-मनोरथ-लता-पल्लव-निमित्तमम्बुधरायणः ।।' -दयोदयचम्पू, २/३१ का गद्यभाग।

प्रस्तुत गद्यभाग में तारुण्य पर तेज का आरोप होने के कारण रूपक अलंकार

है और मृगसेन धीवर के उपमान रूप में सूर्य को प्रस्तुत करने के कारण उपमा अलंकार है। रूपक एवं उपमा परस्पर सापेक्ष अलंकार हैं, इसलिए संकर अलंकार है।

## चित्रालंकार

'तच्चित्रं यत्र वर्णानां खड्गाद्याकृतिहेतुता।'-काव्यप्रकाश, ९/८५

महाकवि ज्ञानसागर ने अपने काव्यों में छः प्रकार के चित्रालङ्कार प्रयुक्त किये हैं- (क) चक्रबन्ध, (ख) गोमूत्रिकाबन्ध, (ग) यानबन्ध, (घ) पद्मबन्ध, (ङ) तालवृन्तबन्ध और (च) कलशबन्ध।

इन सबमें चक्रबन्ध का स्थान सर्वप्रथम है। क्योंकि जयोदय नामक महाकाव्य में २८ चक्रबन्ध उपलब्ध होते हैं जो दूसरे चित्रबन्धों से संख्या में अधिक हैं। इसके अतिरिक्त ये चक्रबन्ध सम्बन्धित सर्ग की कथा का संकेत भी देते हैं। उदाहरण के लिए एक श्लोक एवं उससे बनने वाला चक्रबन्ध चित्रालंकार प्रस्तुत है -

'कमलामुखीमयमक्षिरश्मिभिः श्रीपरिफुल्लदेहाम्,
रसति स्मेयमिमं खलु रमणीधामनिधिः स्वाधारम्।
ग्रहणग्रहणस्यादौ परमो भविनोरभिविश्रम्भम्,
भवतु कवीश्वरलोकाग्रहतो हावपरश्चारम्भः॥'

-जयोदय, १०/१२१

प्रस्तुत चक्रबन्ध के छहों अरो में विद्यमान प्रथमाक्षरों को पढ़ने से 'करग्रहारम्भ' शब्द बनता है। यह शब्द इस बात की सूचना देता है कि इस सर्ग में सुलोचना के पाणिग्रहण संस्कार प्रारम्भ होने का वर्णन है।

## निष्कर्ष

इस प्रकार कवि ने अपने काव्यों में न केवल शब्दालंकार और अर्थालंकार प्रयुक्त किये हैं, अपितु चित्रालंकार भी प्रयुक्त किये हैं। किन्तु कवि की यह अलङ्कारप्रियता कहीं भी रसभङ्ग का कारण नहीं बन पाई है। उनके अनुप्रास, यमक, उपमादि अलङ्कार वर्ण्यविषय के अनुरूप हैं और चित्रालङ्कार न केवल कवि के अलङ्कारशास्त्रीय ज्ञान के परिचायक हैं, अपितु कथा के सार रूप में भी प्रस्तुत हुए हैं। अनुप्रास की व्यापक एवं नवीन परम्परा को चलाने एवं निभाने के कारण 'उपमा कालिदासस्य' के समान ही 'अनुप्रासो ज्ञानसागरस्य' की उक्ति भी सङ्गत है और चित्रकाव्य की दृष्टि से कवि को 'अभिनव माघ' की संज्ञा देना भी न्यायोचित है।

# बीसवीं सदी के प्रमुख संस्कृत काव्यशास्त्री

डा0 उर्मिला श्रीवास्तव

संस्कृत साहित्य की अजस्र धारा मानव संस्कृति और सभ्यता के उषःकाल वैदिक काल से लेकर अद्यावधि निरन्तर प्रवर्तित है । काव्यशास्त्र के अंकुरण एवं विकास का इतिहास भी समानान्तर ही है । नाट्यशास्त्र के प्रथम आचार्य भरत ने इसे स्वतन्त्र शास्त्र का रूप दिया और तब से ही प्रत्येक शती में अनेक काव्यशास्त्री ग्रन्थों का प्रणयन कर इसे समृद्ध करते रहे किन्तु यह विडम्बना ही है कि सत्रहवीं शती के प्रमुख काव्यशास्त्री पण्डितराज जगन्नाथ को काव्यशास्त्र का अन्तिम अधिकारी मान लेने से उत्तरवर्ती साहित्यशास्त्र लगभग उपेक्षित और अनालोचित रह गया तथा अविच्छिन्न परम्परा को गति देने वाले साहित्यशास्त्री अन्धकार में विलीन हो गये ।

प्रस्तुत पत्र उन्हीं अपरिचित संस्कृत काव्यशास्त्री विद्वज्जनों के पुण्य स्मरण का प्रतिफल है । ३०० वर्षों के इस अन्तराल को लगभग २०० आचार्यों ने अपने योगदान से पूरित सुदीर्घ यशस्वी शृंखला को सुरक्षित रखा । यद्यपि वह अधिकांशतः पूर्वाचार्यों के सिद्धान्तों का परिष्करण और पिष्टपेषण है, यद्यपि उसमें मौलिकता की मात्रा न्यून है और आलोचना की प्रवृत्ति अधिक[१] तथापि सरल भाषा में नूतन व्याख्याएँ पृथक् शैली के उद्भव की सूचना देने के साथ शास्त्र-लेखन का प्रमाण भी उपन्यस्त करती हैं । प्रस्तुत निबन्ध में केवल बीसवीं शती के प्रमुख काव्यशास्त्रियों को युगप्रचलित विचारधारा का अग्रणी स्वीकार कर उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला जा रहा है ।

## १- श्रीकृष्ण कवि

बीसवीं शती के काव्यशास्त्रियों में श्रीकृष्ण कवि शर्मन् का विशिष्ट स्थान है। इन्होंने स्वरचित ग्रन्थ मन्दारमरन्दचम्पू के प्रत्येक अध्याय-बिन्दु के अन्त में अपना संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जिससे इनके जीवनवृत्त के विषय में यह सूचना मिलती है कि इनके गुरु का नाम वासुदेव योगीश्वर व निवास स्थान गुहपुर था[२] इनके कृष्णशर्मन् अथवा कृष्णावधूत ये दो नाम भी प्रचलित हैं । ग्रन्थ की पुष्पिका में

भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति से यह सिद्ध होता है कि श्री कृष्ण ही इनके अभीष्ट देव हैं। समीक्षकों ने श्रीकृष्ण कवि का काल १८३५ ई0 - १९०९ ई0 सन् निर्धारित किया है।

श्रीकृष्ण कवि अप्पय दीक्षित कृत कुवलयानन्द से विशेष प्रभावित प्रतीत होते हैं। वे अलंकार प्रकरण में अलंकारों के लक्षण एवं उदाहरण कुवलयानन्द से उद्धृत करते हैं, साथ ही कुवलयानन्द में निरूपित कतिपय अन्य नवीन अलंकारों को भी स्वग्रन्थ में अध्याहृत करते हैं। श्रीकृष्ण कवि ने साहित्यशास्त्र को चार ग्रन्थ प्रदान किये-

१. मन्दारमरन्दचम्पू. २. काव्यलक्षण, ३. रसप्रकाश काव्यप्रकाश टीका ४. सारस्वतालङ्कार सूत्रं एवं भाष्य।

प्रथम ग्रन्थ मन्दारमरन्दचम्पू में छन्दःशास्त्र, नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र एवं कविशिक्षा आदि काव्यविषयक समग्र तत्त्वों का निरूपण गद्य एवं पद्य दोनों विधाओं में हुआ है, यही कारण है कि कवि ने काव्यशास्त्र सम्बद्ध ग्रन्थ होने पर भी इसे चम्पू संज्ञा दी। स्वरचित कारिकाओं में उपनिबद्ध लक्षण व लक्ष्य पर कहीं-कहीं वृत्ति भी उपलब्ध होती है। लक्षण कुछ स्थलों पर राजचूडामणि दीक्षित कृत काव्यदर्पण से अक्षरशः समानता रखते हैं। ग्यारह बिन्दुओं से समन्वित एवं काव्यमाला गुच्छक ५२ में केदारनाथ एवं वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री प्रणशीकर द्वारा सम्पादित ग्रन्थ के अवलोकन से प्रतीत होता है कि विभाजन अवैज्ञानिक है और कवि एक ही ग्रन्थ में समस्त विषयों को समाविष्ट कर देने के इच्छुक हैं।

## २- चन्द्रकान्त तर्कालङ्कार

चन्द्रकान्त तर्कालङ्कार का जन्म कलकत्ता में बंगाली ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनका समय १८३० ई0-१९०९ ई0 के मध्य निर्धारित किया गया है। ये गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, कलकत्ता में काव्यशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र विषय के अध्यापक रहे। महामहोपाध्याय पद से विभूषित आचार्य को सात ग्रन्थों की रचना का श्रेय प्राप्त है[३]-

१. अलङ्कारसूत्राणि, २. कौमुदीसुधाकरम्, ३. स्मृतिचन्द्रिका, ४. कातन्त्र छन्दःप्रक्रिया, ५. मीमांसासिद्धान्तसंग्रहः, ६. सतीपरिणयम्, ७. चन्द्रवंश। गोभिलगृह्य सूत्र का प्रकाशन १८७१-८० ई0 सन् के मध्य चन्द्रकान्त ने ही किया।

## ३- महेशचन्द्र न्यायरत्न

आचार्य महेशचन्द्र का जन्म हावड़ा जिले के नारीट गाँव में भट्टाचार्य परिवार में हुआ। इनका समय २२ फरवरी १८३८ ई0 अप्रैल १९०४ ई0 सन् तक है।

इनके पिता का नाम हरिनारायण तर्कसिद्धान्त था और पारिवारिक वातावरण संस्कृतमय था । महेश चन्द्र जी को न्यायरत्न महामहोपाध्याय आदि उपाधियों से अलङ्कृत किया गया था । इन्होंने गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज में अध्यापन कार्य किया था । आचार्य रचित ६ ग्रन्थ उपलब्ध हैं १. काव्यप्रकाश टीका, २. मृच्छकटिक प्रणेतृनिर्णयम्, ३. मीमांसादर्शनम्, ४. लुप्तसंवत्सरम्, ५. कृष्णयजुर्वेदः, ६- दयानन्द-सरस्वतीवेदभाष्येऽभिप्रायः ।

## ४. श्रीकृष्ण ब्रह्मतन्त्र परकाल संयमीन्द्र-

संन्यास ग्रहण के पश्चात् आप उपर्युक्त नाम से प्रसिद्ध हुए अन्यथा वास्तविक नाम था-कृष्णमाचार्य वकील । स्वरचित ग्रन्थ अलङ्कारमणिहार के उपोद्घात एवं उपसंहार में प्रस्तुत आत्मपरिचय के अनुसार ये अभिडेला ग्राम निवासी और मैसूर परकाल वैष्णव मठ के सर्वतन्त्र स्वतन्त्र उपाधिधारी मठाधिष्ठाता थे । पिता का नाम ताताचार्य और माता का नाम कृष्णाम्बा था ।[६] जन्मकाल १८३९ ई0 और मृत्युकाल १९१६ ई0 है । इन्होंने कुल ६७ ग्रन्थों की रचना की ।

आचार्यरचित अलङ्कारमणिहार ग्रन्थ अलङ्कारशास्त्र विषयक ग्रन्थ है । इसमें आचार्य ने चार शब्दालङ्कारों एवं १२१ अर्थालङ्कारों का निरूपण, स्वरचित कारिका में लक्षण एवं वृत्ति सहित किया है । लक्षण के स्पष्टीकरण हेतु प्रस्तुत उद्धरणों में अपने उपास्य देव तिरुपति स्थित श्रीनिवास व्यङ्कटेश्वर भगवान् की वन्दना प्रस्तुत की गयी है । पुस्तक में समीक्षाशैली को आधार बनाकर आचार्य ने प्राचीन व अर्वाचीन आलङ्कारिकों के मतों का विवेचन कर उनमें औचित्य और अनौचित्य का प्रदर्शन किया है ।

## ५- मुदुम्बई नरसिंह आचार्य

नरसिंह आचार्य के पिता का नाम वीरराघव व माता का नाम रंगाम्बा था । वत्स-गोत्र में जन्म लेने वाले आचार्य का काल १८४२ ई0 - १९२८ ई0 सन् निर्धारित किया गया । विजगापट्टम जिले के विजयनगर के महाराजाओं के आश्रित होने से ये उनके समकालिक सिद्ध होते हैं । अनेक स्तुतियों की रचना के साथ ही इन्होंने अनेक विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ भी लिखे[७] जिनमें से ये चार काव्यशास्त्र से सम्बद्ध हैं-

१. अलंकारमाला, २. काव्योपोद्घात, ३. काव्यप्रयोगविधिः, ४. काव्य-सूत्रवृत्ति ।

## ६- मथुरानाथ शास्त्री

शास्त्री जी ने १९०० ई0 सन् में काव्यकलारहस्य नामक ग्रन्थ की रचना की। रसगंगाधर पर टीका लिखने वाले एक अन्य भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री का उल्लेख

श्रीविन्ध्येश्वरी प्रसाद ने किया है। श्री मिश्र के अनुसार इनका जन्म १८४९ ई0 सन् जयपुर में में हुआ था। पिता श्री द्वारिकानाथ शास्त्री भी संस्कृत भाषा के पण्डित थे। इन्होंने अनेक उपयोगी ग्रन्थों की रचना की[८]। रसगंगाधर की टीका इनकी काव्यशास्त्रीय प्रवृत्ति की सूचिका है।

## ७- चावलि रामशास्त्री

आचार्य रामशास्त्री कुवलयामोद एवं अलङ्कारमुक्तावली नामक दो काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के रचयिता हैं। कुवलयामोद के समस्त उदाहरणों का विषय पेद्दूपुर के आश्रयदाता राजा सिंहाद्रि जगपतिराव के गुणों की कीर्ति की प्रशंसा है। राजा जगपतिराव १८५३ ई0-१९११ ई0 सन् कालीन शासक थे; अतः आचार्य का समय भी तात्कालिक ही मान्य है।

## ८- मानवल्लि गंगाद्यन शास्त्री

शास्त्री जी का काल १८५३ ई0-१९१३ ई0 सन् है। ये नरसिंह मानवल्लि शास्त्री के पुत्र तथा सुब्रह्मण्य शास्त्री के पौत्र थे। इन्होंने गुरु राजाराम शास्त्री एवं बालशास्त्री से विद्यार्जन किया और वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया। खण्डकाव्य, चम्पूकाव्य तथा प्रशस्ति आदि बहुविध ग्रन्थों की रचना के साथ ही आपने अनेक टीकाएँ भी रचीं[९] जिनमें रसगंगाधर-टीका उल्लेख्य है। डा0 वर्णेकर ने आचार्य रचित काव्यात्मक संशोधन नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ की भी सूचना दी है[१०]।

## ९- इञ्चूर केशव नम्बूदरी

इञ्चूर नामक स्थान पर जन्म ग्रहण करने वाले आचार्य केशव के पिता का नाम केशव नम्बूदरी एवं माता का नाम सावित्री अन्तर्जन था। विद्वानों ने इनका समय ई0 १८५५-१९३२ ई0 के मध्य निश्चित किया है। आचार्य ने अलङ्कारशास्त्रविषयक कुलशेखरीयम् ग्रन्थ की रचना की। उद्धरण कुलशेखर पिरुमल श्रीमूल तिरुनाल के गुणों की प्रशंसा से पूरित हैं। आचार्य रचित विधुवंशचम्पू नामक एक पुस्तक भी उपलब्ध है[११]।

## १०- रंगाचार्य रंगनाथाचार्य

रंगाचार्य का जन्म कपिस्थल गोत्र में व निवास स्थान आन्ध्र के तिरुपति क्षेत्र में था। इनका समय १८५६-१९१९ ई0 सन् के मध्य माना गया है। १. अलङ्कारसंग्रह, २- सुभाषितशतकम्, ३- गोदाचूर्णिका, ४- सन्मतिकल्पलता, ५- हंससन्देश, ६- रहस्यत्रयसाररत्नावली ७-पादुकासहस्रावतारकथासंग्रह, ८- शृंङ्गारनायिकातिलकम्

आचार्य रचित उपर्युक्त ग्रन्थ उपलब्ध हैं[१२]।

## ११- अम्बिकादत्त व्यास

साहित्यनलिनी नामक ग्रन्थ के प्रणेता व्यास जी का आविर्भाव ई0 १८५९-१९०० ई0 के मध्य माना जाता है[१३]।

## १२- नारायणशास्त्री

तंजौर जिले के नेडुकावेरी स्थान में रहने वाले नारायण शास्त्री का समय ई0 १८६०-१९११ ई0 सन् निर्धारित है। इनके पिता का नाम रामस्वामी यज्वा तथा माता का नाम सीताम्बा था। आचार्य ने बहुविध ग्रन्थों की रचना की, जिनका विवरण इस प्रकार है -महाकाव्य, चम्पू, आख्यायिकाएँ, ९१ नाटक और २१ महाप्रबन्ध। काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में विमर्श (६ भाग) तथा मीमांसा (२ भाग) उल्लेखनीय है[१४]।

## १३- रामावतार शर्मा

आचार्य शर्मा ई0 १८७४-१९२९ ई0 के मध्य वर्तमान थे। साहित्यरत्नावली इनकी रचना है[१५]।

## १४- रायम्पेटा वेंकटेश्वर कृष्णमाचारियर

आचार्य का समय ई0 १८७४-१९४४ ई0 सन् और पिता का नाम वेंकटेश्वर था। चित्रमीमांसा टीका के अतिरिक्त आचार्य रचित अन्य अनेक ग्रन्थ उपलब्ध है[१६]।

## १५- हरिदास सिद्धान्तवागीश

आचार्य वागीश का जन्म १८७६ ई0 सन् में कार्तिक सप्तमी को पूर्वी बंगाल के फरीदपुर जिले में उनशिया ग्राम में काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण कुल में हुआ था। पिता गंगाधर विद्यालङ्कार एवं माता विधुमुखी देवी थीं। इन्होंने गुरु जीवानन्द विद्यासागर से शिक्षा प्राप्त की थी। विभिन्न विषयों पर रचित विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों, टीकाओं एवं सम्पादनों की विस्तृत सूची का श्रेय आचार्य को प्राप्त है[१७]।

पन्द्रह कलाओं में विभाजित काव्यकौमुदी में समस्त काव्यशास्त्रीय तत्त्वों की साङ्गोपाङ्ग विवेचना है। प्रकाशन भवेशचन्द्र भट्टाचार्य के सम्पादकत्व में कलकत्ता से हुआ है। ग्रन्थ में उपन्यस्त समग्र लक्षण सूत्र-शैली में और उदाहरण अधिकांशतः स्वरचित हैं। संस्कृत के प्राचीन महाकाव्यों से भी उद्धरण आवश्यकतानुसार उद्धृत किये गये हैं।

## १६- गिरिधरलाल व्यास शास्त्री

गिरिधर व्यास जी के पिता का नाम गोवर्धन शर्मा था। इनका जन्म २ अप्रैल सन् १८८४ को राजस्थान के उदयपुर क्षेत्र में हुआ था। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों में अभिनवकाव्यप्रकाश तथा काव्यसुधारक (चन्द्रालोक वृत्ति) काव्यशास्त्रीय तत्त्वों की विवेचना करने वाले ग्रन्थ हैं[१८]।

## १७- यदुनाथ झा

लालगंज निवासी श्री यदुनाथ झा का जन्म सन् १८८५ में सोदरपुर के सरिस्वा कुल में व मृत्यु सन् १९२८ ई0 में हुई। आचार्य द्वारा रचित व्यञ्जनावाद नामक ग्रन्थ में नूतन शैली में व्यञ्जना की प्रस्तुति की गयी है[१९]।

## १८- लेखनाथ

आचार्य लेखनाथ सरिस्वा ग्रामवासी थे और बेलारी के कपिलेश्वर ऊहा गुरु के शिष्य थे। इनका समय १८८६ ई0-अप्रैल १९६५ ई0 है। दरभंगा (बिहार) के राजा सर कामेश्वर सिंह इनके आश्रयदाता थे। आचार्य ने रसचन्द्रिका नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ एवं वर्षाहर्ष तथा मानसपूजा नामक काव्यों की रचना की। रसकौस्तुभ तथा गोविन्ददामोदरस्तोत्र का सम्पादन कार्य इन्होंने ही किया। रसचन्द्रिका में आचार्य ने स्वरचित कारिकाओं के माध्यम से लक्षण एवं उदाहरण सहित नायक-नायिका भेद निरूपित किया है[२०]।

## १९- कालीपद तर्काचार्य

आचार्य कालीपद का जन्म फरीदपुर जिले के कोटलिपारा उनशिया ग्राम में कान्यकुब्ज मिश्र परिवार में हुआ था। प्रकाण्ड संस्कृत विद्वान् श्री मधुसूदन सरस्वती हरिदास सिद्धान्तवागीश इनके समवंशी थे। पिता सर्वभूषण हरिदास शर्मा तथा गुरु महामहिम पण्डित शिवचन्द्र सार्वभौम थे। महाकवि कालीपद ''काश्यपकवि'' उपनामधारी थे। विधावारिधि, तर्काचार्य, तर्कालङ्कार आदि अनेक विरुद इन्हें सम्मानपूर्वक प्रदान किये गये थे। ई0 १८८८-१९७२ ई0 आपका काल माना गया है। आचार्य ने काव्यचिन्ता नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ तथा नाटक, महाकाव्य, दर्शनशास्त्र आदि विषयों पर कुल २६ ग्रन्थ लिखे[२१]।

## २०- हरि शास्त्री दाधीच

आचार्य दाधीच ने जयपुर में श्री दामोदर दाधीच के घर में ई0 सन् १८९३ में जन्म लिया था। अलङ्कारकौतुक एवं अलङ्कारलीला-दो काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के अतिरिक्त आपने लगभग १७ ग्रन्थ विभिन्न विषयों पर लिखे[२२]।

## २१- रामसुब्रह्मण्य

राम सुब्बा नाम से प्रसिद्ध राम सुब्रह्मण्य के पिता रामशंकर एवं पितामह अश्वरथ नारायण थे। इनका जन्म १९.वीं शती के उत्तरार्ध के किसी वर्ष में और मृत्यु १९२२ ई0 में हुई थी। ये तिरुविसलौर निवासी और आचार्य शिवराम के शिष्य थे। अलंकारशास्त्रसंग्रह अथवा अलंकारशास्त्रविलास नामक स्वलिखित ग्रन्थ में राम सुब्बा ने आचार्य विश्वनाथ की काव्यपरिभाषा की आलोचना की है। अनेक शास्त्रीय ग्रन्थों की रचना के साथ-साथ उपनिषदों के व्याख्याकार के रूप में भी वे प्रसिद्ध हैं [२३]।

## २२- रामनाथ चतुर्वेदी

आचार्य रामनाथ जालौन जिला (उत्तर प्रदेश) स्थित कौंच नामक ग्राम में कुञ्जनलाल चतुर्वेदी के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए थे। इनका काल है ई0 १८९६-ई0 १९३४। रसमंजरी पर टीका लिखने के साथ ही आचार्य ने गीति संग्रह, पद्यपेटिका, नवदुर्गास्तव एवं जहोतिया-परिचय ग्रन्थों की रचना की[२४]।

## २३- शिवदत्त शर्मा

ई0 १९०३ में आचार्य शर्मा ने काव्यशास्त्रीय तत्त्वों की व्याख्या हेतु काव्य रसायनम् ग्रन्थ की रचना की[२५]।

## २४- जगन्नाथ प्रसाद वर्मा

अलङ्कारों के निरूपण हेतु आचार्य वर्मा ने भावनिदर्शिका नामक ग्रन्थ की रचना की[२६]।

## २५- आचार्य नरसिंह

ई0 १९०८ में इन्होंने पाश्चात्त्यशास्त्रसार ग्रन्थ काव्यशास्त्रीय सन्दर्भ में लिखा[२७]।

## २६- मणिशङ्कर गोविन्द

अलङ्कारों के विस्तृत वर्णन हेतु अलङ्कारमणिमाला पुस्तक १९०९ ई0 में लिखी गयी[२८]।

## २७- छज्जूराम शास्त्री विद्यासागर

शास्त्री जी का जन्म सन् १८९५ में करनाल (कुरुक्षेत्र) में निवास करने वाले गौड़ ब्राह्मण परिवार में हुआ था। पिता का नाम मोक्षराम व माता का नाम मामकी

देवी था। गणेश अभीष्ट देव हैं, यह ग्रन्थ की भूमिका में प्रस्तुत श्लोक से ज्ञात होता है[२९]। इन्होंने १८ विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों की रचना कर साहित्य के क्षेत्र में पर्याप्त ख्याति अर्जित की। आचार्यकृत अलङ्कारशास्त्र विषयक, उच्चस्तरीय ग्रन्थ साहित्यबिन्दु का प्रकाशन सन् १९६१ में हुआ है। ग्रन्थ के चार भागों में क्रमशः कारिका, वृत्ति, उदाहरण और उदाहरण-विवरण वर्णित हैं। समग्र भाग अधिकांशतः स्वरचित है किन्तु उदाहरण आवश्यकतानुसार अध्याहृत भी किये गये हैं; यथा ग्रन्थ के दोषप्रकरण के समस्त उदाहरण श्रीहर्ष रचित नैषधीयचरित से उद्धृत हैं। आचार्य ने सर्वत्र शिक्षाप्रद उदाहरणों द्वारा विद्यार्थी को भारतीय संस्कृति का बोध कराने की चेष्टा की है। साहित्यबिन्दु कें प्रथम बिन्दु में काव्यलक्षण, फल, कारण आदि, द्वितीय बिन्दु में शब्दार्थ-विवेचन, रस, तृतीय बिन्दु में दोष निरूपण, चतुर्थ बिन्दु में रीति, गुण, वृत्ति और पंचम बिन्दु में अलङ्कार विवेचित हैं[३०]।

## २८- सीताराम शास्त्री

स्वरचित ग्रन्थ साहित्योद्देश में शास्त्री जी ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि प्राचीन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ कठिन होने से सामान्य जन के लिए अति दुर्ज्ञेय हैं और उनका क्रम भी सहज नहीं है; यही कारण है कि गहन अध्ययन से भी काव्यशास्त्र का स्पष्ट बोध पाठक को नहीं हो पाता; अतः उन्होंने बालकों के लिए उपयोगी ग्रन्थ की रचना की[३१]। ग्रन्थ का प्रकाशन ई0 १९३३ में शंकर शिवनारायण शर्मा के सम्पादकत्व में भारद्वाज यज्ञेश्वर शर्म मिश्र शास्त्री की टिप्पणी सहित हुआ है। काव्यशास्त्रीय तत्त्वों से सम्पन्न ग्रन्थ पाँच भागों में विभक्त है।

## २९- कौत्स अप्पल्ल सोमेश्वर शर्मा

सोमेश्वर शर्मा श्री व्यङ्कटेश्वर प्राच्य महाविद्यालय, तिरुपति, में व्याकरण एवं साहित्य के विद्वान् अध्यापक थे। इनके द्वारा रचित साहित्यविमर्श नामक ग्रन्थ का प्रकाशन श्री व्यङ्कटेश्वर ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट से सन् १९५१ में हुआ है। इन्होंने प्राच्य एवं पाश्चात्त्य शैलियों में समन्वय स्थापित कर एक नूतन शैली को अपनाया है। ग्रन्थ के तीन परिच्छेदों में से प्रथम शास्त्र-लक्षण तथा साहित्यपदार्थ प्रतिपादन, द्वितीय काव्यलक्षण, हेतु, प्रयोजन एवं काव्य-दूषण तथा तृतीय काव्यात्मवाद को प्रस्तुत करता है[३२]।

## ३०- राम पिशारडी

आचार्य पिशारडी का समय २० वीं शती एवं जन्म कुच्चि के इरंगल कुडा महाक्षेत्र के समीप पिशारड में हुआ था। इनके पिता वेल्लांगलूर तथा माता कुच्ची पिशारस्यार थीं। गुरु शठकोपाचार्य से शिक्षा ग्रहण की। सोलह ग्रन्थों के मौलिक

लेखन के साथ ही कुवलयानन्दचन्द्रिका की व्याख्या ध्वन्यालोकलोचन की बालप्रिया व्याख्या, चित्रमीमांसा की बालप्रिया व्याख्या इनके उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं[३३] ।

## ३१- खुद्दी झा

खुद्दी झा ने २० वीं शती में काव्यप्रकाश की व्याख्या लिखी है[३४] ।

## ३२- शितिकण्ठ वाचस्पति

इन्होंने २० वीं शती में अलङ्कारदर्पण ग्रन्थ की रचना की है[३५] ।

## ३३- श्वेतारण्यम् नारायण यज्वन्

इन्होंने भी २० वीं शती में ही दो ग्रन्थों--१. वृत्तालङ्काररत्नावली (टीका सहित) एवं शिवार्थालङ्काररस्तव की रचना की है । प्रथम ग्रन्थ को आचार्य ने राम स्तुति के श्लोकों से व द्वितीय ग्रन्थ को शिवस्तुति के श्लोकों से समृद्ध किया है[३६]।

## ३४- डा0 चण्डिका प्रसाद शुक्ल

आचार्य शुक्ल का जन्म प्रयाग जनपद के अठखरिया ग्राम में २४ अगस्त १९२१ ई0 को शुक्लवंशीय सरयूपारीण ब्राह्मण परिवार में कृष्णात्रेय गोत्र में हुआ था । पिता स्व0 रामकिशोर शुक्ल ज्योतिष, धर्मशास्त्र एवं पुराण के ज्ञाता तथा काव्य-साहित्य के विद्वान् थे । आपने पितृव्य पण्डित भानुप्रसाद शुक्ल से संस्कृत व्याकरण का ज्ञान प्राप्त किया था । क्रमशः उच्च शिक्षा के क्षेत्र में पदार्पण करते हुए उन्होंने व्याकरण विषय में मध्यमा एवं साहित्याचार्य की परीक्षा वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय से और संस्कृत एवं प्राचीन इतिहास विषयों में स्नातकोत्तर परीक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की । साहित्य की सरसता से प्रभावित होकर डा0 शुक्ल जी ने संस्कृत में शोध कार्य करते हुए इलाहाबाद विश्वविद्यालय से नैषध्र-अनुशीलन (नैषधचरित-विवेचन) पर सन् १९५३ ई0 में डी0 फिल्0 की उपाधि तथा शृङ्गार रस के शास्त्रीय विकास नामक ग्रन्थ पर सन् १९७१ ई0 में डी0 लिट्0 की उपाधि प्राप्त की और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में निरन्तर अध्यापन कार्य करते हुए प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष पद से सन् १९८२ ई0 में अवकाश ग्रहण किया। जीवन पर्यन्त लेखन कार्य में संलग्न रह कर प्रस्तुत ग्रन्थों की रचना की- १- नैषधचरित-हिन्दी अनुवाद, २- नैषधपरिशीलन-आलोचनात्मक शोध साहित्य, ३- माघ कवि-शोध निबन्ध, ४- शिशुपालवध टीका-प्रथम एवं द्वितीय सर्ग, ५- वेदमञ्जरी-सम्पादन कार्य, ६- मुक्ताफल-संस्कृत के पाँच महाकाव्यों का हिन्दी अनुवाद ७- शृङ्गार परिशीलन, ८- दीपशिखा-ध्वन्यालोक टीका ।

इनमें से दीपशिखा काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है जिसमें कवि ने यह सिद्ध किया है

कि ध्वन्यालोक के प्रसिद्ध टीकाकार अभिनवगुप्त अपनी लोचन टीका से आनन्दवर्धन सम्मत अभिप्राय को कहीं-कहीं स्पष्ट कर सकने में असमर्थ रहे हैं । दीपशिखा का प्रकाशन विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी से हुआ है ।

## ३५- डा० ब्रह्मानन्द शर्मा

डा० ब्रह्मनन्द शर्मा पंजाब के फिरोजपुर जिले में अबोहर के पास दुतारावाली गाँव के निवासी थे । इनके पितृचरण पण्डित लाघू राम जी पारीक तथा माता अमरी देवी थीं । आपका जन्म ११ फरवरी १९२३ को हुआ था । डा० शर्मा ने संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् श्री विद्याधर शास्त्री से शिक्षा प्राप्त की । राजस्थान विश्वविद्यालय से सादृश्यमूलक अलङ्कार विषय पर शोध कार्य करके इन्होंने अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित किया । राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर में प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष रह कर कार्य मुक्त हुए । अवकाश ग्रहण के पश्चात् डा० शर्मा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा स्वीकृत 'रससिद्धान्त का पुनराकलन' विषय पर कार्य कर रहे हैं । लेखन कार्य में रुचि के फलस्वरूप संस्कृत साहित्य को ६ ग्रन्थ उपलब्ध हुए---- १-अभिनवरसमीमांसा, २- वस्त्वलङ्कारदर्शनम्, ३-तत्त्वशतक, ४-काव्यसत्यालोक, ५- रसालोचनम्, ६- ए क्रिटिकल स्टडी आफ संस्कृत पोएटिक्स ।

संस्कृत काव्यशास्त्र के इतिहास में काव्यसत्यालोक ने एक नवीन सम्प्रदाय को जन्म दिया है । इसका प्रकाशन नसीराबाद रोड, अजमेर से हुआ है । वस्त्वलङ्कारदर्शनम् में अलङ्कारों का सुन्दर और क्रमबद्ध विवेचन है । डा० शर्मा अद्यापि शोधपत्रादि के लेखन कार्य में सदा व्यस्त रहते हैं ।

## ३६- पण्डित रेवाप्रसाद द्विवेदी

पण्डित रेवाप्रसाद जी के पूर्वज कड़ा इलाहाबाद के मूल निवासी थे । कालान्तर में ये लोग मध्य प्रदेश में आकर वास करने लगे । वहीं पर भोपाल के निकट नर्मदा तट पर स्थित नादनेर ग्राम में २२ सितम्बर, १९३५ ई० को रेवाप्रसाद जी का जन्म जुझोतिया ब्राह्मण कुल में हुआ था । इनके पिता पण्डित नर्मदाप्रसाद द्विवेदी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् और ज्योतिष विद्या के परम ज्ञाता थे । इन्होंने अधिकांशतः काशी के महान् विद्वान् सर्वतन्त्र कवितार्किकचक्रवर्ती पण्डित महादेव शास्त्री से संस्कृत शिक्षण प्राप्त किया और उच्च शिक्षा में आचार्य, एम० ए०, पी-एच० डी० एवं डी० लिट्० की उपाधि से समन्वित ज्ञान का विस्तार किया । काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में संस्कृत विद्या, धर्म, विज्ञान संकाय में साहित्य-विभागाध्यक्ष के पद पर आसीन रह कर अवकाश प्राप्त हुए । आपने संस्कृत साहित्य को अनेक ग्रन्थ रत्न दिये जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं । १- सीताचरितम् महाकाव्य, २- स्वातन्त्र्यसम्भवम्, ३- यूथिका-नाटक, ४- कांग्रेसपराभवम्, ५- रघुवंशदर्पण एक परिचय, ६- कालिदास-

मानवशिल्पी, ७- आनन्दवर्धन, ८- साहित्यसन्दर्भः, ९- काव्यालङ्कारकारिका-वृत्तिसहित, १०- अलङ्कारसिद्धान्त, ११- नाट्यवार्तिक ।

आचार्य ने सम्पादन एवं टीका के माध्यम से भी इन ग्रन्थों का उद्धार किया १-कालिदासग्रन्थावली, २-व्यक्तिविवेक, ३- अलङ्कारसर्वस्व, ४- शब्दव्यापारविचार, ५- अभिधावृत्तिमातृका, ६- रसार्णवसुधाकर ।

काव्यालङ्कारकारिका काव्यशास्त्रीय तत्त्वों को अभिनव दृष्टि से विवेचित करने के कारण काव्यशास्त्र में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है । इसीलिए इसे 'अभिनवं काव्यशास्त्रम्' भी कहा गया है । इस ग्रन्थ में कविता के प्रत्ययवादी दर्शन की व्याख्या की गयी है और उसे प्रमातृमूलक न मान कर प्रमेयमूलक स्वीकार किया गया है । प्राचीन सिद्धान्तों विशेषतः ध्वनिसिद्धान्तों का अकाट्य प्रमाणों द्वारा खण्डन किया गया है । चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी से सन् १९७७ में प्रकाशित इस ग्रन्थ में स्वरचित १८४ कारिकाओं पर संस्कृत एवं आंग्ल भाषा में आचार्य लिखित टीका उपलब्ध है । इसके अतिरिक्त भेदोपभेद सूचक कारिकाएँ भी सम्मिलित हैं ।

आचार्य द्विवेदी अलङ्कारवादी सम्प्रदाय के समर्थक हैं, यही कारण है कि काव्य के ६ प्रस्थानों-रस, रीति, अलङ्कार, ध्वनि, वक्रोक्ति और औचित्य की व्याख्या हेतु अलङ्कारवादी दृष्टिकोण अपनाते हैं । उनके मत में काव्य की आत्मा अलङ्कार है[३७]।

वर्तमान शती में आचार्य रमेशचन्द्र शुक्ल ने 'रसदर्शनम्' में डा0 रुद्रदेव त्रिपाठी ने चित्रकाव्य परक अपने शोधग्रन्थ में तथा डा0 रमाकान्त शुक्ल ने 'विशेषणमालालङ्कार-स्थापनम्' निबन्ध में अपनी काव्यशास्त्रीय स्थापनाएँ की हैं ।

वर्तमान शती में भारतीय काव्यशास्त्र की धारा निर्बाध गति से साहित्य की विशाल परिधि को आप्यायित करती हुई संस्कृत जगत् को समृद्ध कर रही है, यहाँ तक कि हिन्दी भाषा के काव्यशास्त्रियों को भी प्रभावित होकर प्रणयन हेतु संस्कृत काव्यशास्त्र का ही अधमर्ण होना पड़ा ।

---

१- विस्तृत विवरण के लिए देखिए-आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र, डा0 आनन्द कुमार श्रीवास्तव, प्रथम अध्याय ।

२- इति श्रीमद्घटिकाशतघण्टाविहिताष्टभाषाचरणनिपुणस्य वासुदेव- योगीश्वर-स्यान्यतमस्य गुहपुरवासशर्मणः श्रीकृष्णशर्मणः कवेः कृतौ मन्दारमकरन्दे च चम्पूप्रबन्धे वृत्तबिन्दुः प्रथमः समाप्तिमगमत् ।

३- आधुनिक संस्कृत साहित्य-डा0 हीरालाल शुक्ल, पृ0 २१३

४- संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डा0 कपिलदेव द्विवेदी, पृ0 १३

५- आधुनिक संस्कृत साहित्य, डा0 हीरालाल शुक्ल, पृ0 २२२

६- नवदुर्गतातदेशिककृष्णाम्बासूनुरातनोतीमम् ।
श्रेशैलान्वयजन्मा कृष्णोऽलङ्कारमणिहारम्, ।। पृ0 ८

७- आधुनिक संस्कृत साहित्य, डा0 हीरालाल शुक्ल, पृ0 १९१

८- आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र, डा0 आनन्दकुमार श्रीवास्तव, पृ0 ५१

९- आधुनिक संस्कृत साहित्य, डा0 हीरालाल शुक्ल, पृ0 २७५-२७६

१०- आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र, डा0 आनन्दकुमार श्रीवास्तव पृ0 ६५

११- आधुनिक संस्कृत साहित्य, डा0 हीरालाल शुक्ल, २८४

१२- आधुनिक संस्कृत साहित्य, डा0 हीरालाल शुक्ल, पृ0 २८५

१३- आधुनिक संस्कृत साहित्य, डा0 हीरालाल शुक्ल, पृ0 १४९

१४- आधुनिक संस्कृत साहित्य, डा0 हीरालाल शुक्ल, पृ0 १४९

१५- आधुनिक संस्कृत साहित्य, डा0 हीरालाल शुक्ल, पृ0 १५०

१६- आधुनिक संस्कृत साहित्य, डा0 हीरालाल शुक्ल, पृ0 ३८७

१७ - अवाप पूर्ववङ्गेषु भूरिसूरिषु जन्म यः ।
कोटालिपाड़ोनशिया ग्रामे बहुद्विजन्मनि ।।
माता विधुमुखी देवी पिता गङ्गाधर सुधीः ।
पितामहः काशीचन्द्रो गोत्रञ्च यस्य काश्यपम् ।। -काव्यकौमुदी, पृ0 १७९

१८- आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र, डा0 आनन्द कुमार श्रीवास्तव; पृ0 ५३

१९- प्रोसीडिंग्स, इन्टरनेशनल संस्कृत कान्फ्रेन्स, वाल्यूम १, भाग १, १९७५, पृष्ठ १३२-१३३

२०- वहीं पृ0 १३१-१३२ ।

२१- आधुनिक संस्कृत साहित्य, डा0 हीरालाल शुक्ल, पृ0 १५० ।

२२- आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र, डा0 आनन्द कुमार श्रीवास्तव, पृ0 ५३

२३- आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र, डा0 आनन्द कुमार श्रीवास्तव, पृ0 ५०

२४- आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र, डा0 आनन्द कुमार श्रीवास्तव, पृ0 ६५

२५- आधुनिक संस्कृत साहित्य, डा0 हीरालाल शुक्ल, पृ0 १४९

२६- आधुनिक संस्कृत साहित्य, डा0 हीरालाल शुक्ल, पृ0 १४९

२७- आधुनिक संस्कृत साहित्य, डा0 हीरालाल शुक्ल, पृ0 १५०

२८- आधुनिक संस्कृत साहित्य, डा0 हीरालाल शुक्ल, पृ0 १५०

२९- श्रीगणेशं नमस्कृत्य मामकीं नाम मातरम् ।
पितरं मोक्षरामाह्वं मूलचन्द्रञ्च सोदरम् ।। -साहित्यबिन्दु, पृ0 २ ।

३०- आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र, डा0 आनन्द कुमार श्रीवास्तव, पृ0 ५४

३१- आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र, डा0 आनन्द कुमार श्रीवास्तव, पृ0 ५३

३२- अधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र, डा0 आनन्द कुमार श्रीवास्तव, पृ0 ५४

३३- आधुनिक संस्कृत साहित्य, डा0 हीरालाल शुक्ल पृ0 ३४३

३४- प्रोसीडिंग्स इन्टरनेशनल संस्कृत कान्फ्रेन्स, वाल्यूम १, भाग १, १९७५, पृ0 १२८

३५- आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र, डा0 आनन्द कुमार श्रीवास्तव, पृ0 ५३

३६- प्रोसीडिंग्स, इन्टरनेशनल संस्कृत कान्फ्रेन्स, वाल्यूम १, भाग १, १९७५, पृ0 ४७५ ।

३७- अस्मन्मते त्वलङ्कारः काव्यस्याङ्गस्य वीक्षणे ।
ध्वनिं सोमं यथा वह्निः कवलीकृत्य राजते ।।
काव्यालङ्कारकारिका

# संस्कृत के अधुनातन साहित्यकार

डॉ0 भास्कराचार्य त्रिपाठी

## संस्कृत

विश्व के अनेक सुखद आश्चर्यों में एक प्रमुख स्थान संस्कृत भाषा को भी दिया जा सकता है। यह एक ओर तो मानव सृष्टि की सबसे प्रचीन भाषा है, ऋग्वेद की भाषा, और दूसरी ओर आज भी धरती के कई अंचलों में प्रायः हर स्तर पर पढ़ी-बोली और लिखी जाती है। इसमें नये साहित्य सिरजे जाते हैं। सहृदय उन्हें अपनी भाषा के संस्कार के लिए या फिर परम्पराओं की सही पहचान के लिए बड़े चाव से पढ़ते हैं। देववाणी नाम से इस भाषा की यही जिजीविषा रेखांकित होती है।

## कवि

भारतीय परंपरा में कवि शब्द स्वयं ईश्वर का पर्यावाची स्वीकृत किया गया है- कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः। दोनों अपने- अपने ढंग की अभिनव और सुसंगत लोक-रचना करते हैं।

## कविता

किसी संवेदना को आह्लादजनक रीति से कहने की प्रक्रिया कविता है। लय और छन्द (चदि आह्लादने) उसके संबल मात्र हैं। कविता दृश्यमान जगत् के आभ्यंतर चित्र उपस्थित करती है, साथ ही लौकिक आदर्शों की स्थापना करती है। यथार्थ की धरा पर पल्लवित ये आदर्श समाजहित के प्रहरी बनते हैं। संस्कृत कवि अर्थ, धर्म और काम का विशाल क्षितिज सँवारते हुए ''आत्मानं विजानीहि'' या ''स्वान्तः सुखाय'' की अवधारणा में जीवनमुक्ति का भी अवतरण करते हैं। आदि काव्यशास्त्री भामह के शब्दों में-

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम्॥

काव्यं शिक्षा एक ओर अवाङ्मनसगोचर ब्रह्मानन्दसहोदर आनन्द बरसाती है तो दूसरी ओर लोकमंगल की दिशा में ''कान्तासम्मित'' अर्थात् प्रेयसी के मधुर संकेतों सी प्रतीत होती है।

# साहित्य-रेखा

उपदेश की रसपेशल अँवराई, समानान्तर मानवता की कीर्ति, संपन्नता, व्यवहार-ज्ञान, विसंगतियों से परिचय, राष्ट्रभक्ति और अमंगल- निवारण के जितने भी लौकिक अलौकिक आयाम हैं - संस्कृत कविता उन सब में चिरकाल से अनुस्यूत रही है । भारतीय नीतिकथा, सुभाषित साहित्य और यहाँ तक कि कई शास्त्रीय रचना-क्षेत्रों में भी संस्कृतकविता की सामाजिक सहभाव एवं लोकसेवा आदि विचारबिन्दुओं से संपन्न परम्परा देखने को मिलती है ।

# परंपरा

काव्यशास्त्रियों ने समय समय पर अलङ्कार, रीति, वक्रोक्ति और ध्वनि की कसौटी पर साहित्य को मूल्यांकित करने का प्रयत्न किया है, पर संस्कृत-कविता इन चौखटों में न बँधती हुई रसात्मक संवेदना के धरातल पर अबाध गति से अग्रसर होती आई है । इस परंपरा की एक विशेषता यह रही है कि गद्य, पद्य तथा नाट्य तीनों को संस्कृत काव्य के नाम से ही परिभाषित किया गया है । वाल्मीकि और व्यास के अनन्तर भास, कालिदास, अश्वघोष, भारवि, बाणभट्ट आदि इस अजस्र उदात्तता के चिर-मानक प्रतिमान हैं । इनके समानान्तर अपना प्रत्यभिज्ञान न छोड़ती हुई संस्कृत लेखनी शैली, शिल्प और कथ्य में आज विश्वकविता का भी प्रतिवेश अपना रही है ।

# आज की संस्कृत कविता

भारत के साथ व्यापक अन्ताराष्ट्रिय क्षेत्र में संस्कृतकविता नित्य-नूतन सर्जनपथ पर अग्रसर है । बहुधा संस्कृत-सम्मेलनों में इसकी जीवन्त रचना-धर्मिता और प्रगति देखने को मिलती है । इधर पच्चीस वर्षों के निकट-अन्तराल में जो भारतीय संस्कृत कवि उभर कर आये हैं उनका संक्षिप्त परिचय दे दूँ। पहले चर्चा करता हूँ - प्रबंधरचना के शब्द-शिल्पी महाकवियो- की ।

यूँ तो सम्बद्ध शोधलेख बीसियों के लगभग संस्कृत महाकवियों की सूची बतलाते हैं, इनमें से पाँच छः सचमुच अनूठी शब्द-योजना और नये बिम्बों से आज के परिवेश में भी संस्कृत की नित्य-नवीन सुरभि बिखेर सके हैं । इनमें एक हैं - ''सीताचरितम्'' के रचयिता, नाँदनेर (म0 प्र0) के निवासी पं0 रेवाप्रसाद द्विवेदी, इनका उपनाम ''सनातन'' है । इन्होंने सीता के माध्यम से अपने काव्य-फलक पर भारत की राष्ट्रचेतना को ही प्रतिष्ठित किया है- छठें सर्ग मे एक श्लोक आता है-

हिमगिरिगुरुशृङ्गतः पयोधेर्गहनतमावटगह्वराणि यावत् ।
निखिलमपि निजार्यभूमिवक्षो निजमृदुतल्पममंस्त भूशयाना ।।

कि देवी सीता जंगल की खुली ज़मीन पर लेटती हुई सोचती थीं- हिमालय के ऊँचे, भारी भरकम कंगूरों से लेकर समुद्र के अतल खंदकों तक फैला हुआ आर्यभूमि का समूचा वक्षःस्थल, एक अपनत्व से भरी हुई कैसी कोमल सेज है ।

यही स्वर इनकी अन्य रचनाओं में भी स्थल स्थल पर मुखरित हुआ है। एक दूसरे संस्कृत महाकवि की चर्चा चलाऊँ - ६८ सर्गों में अपना महाकाव्य ''शिवराज्योदयम्.'' लिखकर एक रिकार्ड स्थापित किया है नागपुर के संस्कृत मनीषी श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने, इसी तरह उर्मिलीयम् के रचनाकार नारायण शुक्ल ''श्रीनारायणविजयः'' के शब्दकार आचार्य हैं । बालराम पणिक्कर और श्री मालवीयचरितम् के रचयिता पं0 रामकुवेर मालवीय भी उच्च कोटि के आधुनिक संस्कृत महाकवि कहे जा सकते हैं ।

१५ सर्गों में पल्लवित श्रीमालवीयचरितम् वक्रोक्ति शैली में सम-सामयिक परिदृश्य का एक आकर्षक संग्रह बन पड़ा है । उदाहरण के लिए श्री मदनमोहन मालवीय की सफेद मूँछें चित्रित करते हुए पं0 रामकुबेर जी ने लिखा है -

कामक्रोधादिसम्पर्काद् वाणीं संशोध्य तत्क्षणम् ।
समाख्यातुं सभामध्ये सम्मार्जनकुशा किमु ।।
पाश्चात्त्योपप्लंवत्रस्ता शरण्यं तन्मुखश्रिता
शुक्लवेणीयुतेयं किं वृद्धा प्राचीनसंस्कृतिः ।।

'अर्थात् मालवीय जी किन्हीं उत्तेजनाओं के क्षण में भी इस तरह सम्हाल कर बड़ी कोमल वाणी बोलते थे, जैसे उनकी मूछें सम्मार्जनी कुशा की तरह वाणी को पवित्र करके बाहर निकलने देती रही हों, या फिर - वे सफेद मूँछें कुछ ऐसी लगती थीं जैसे प्रांचीन भारतीय संस्कृति अब वृद्ध हो चली और वह अंग्रेजों के डर से एकदम घबराई हुई मात्र मालवीय जी के श्रीमुख का सहारा पा गई हों ।

संस्कृत महाकाव्यों की यह परंपरा अहर्निश प्रगति की ओर अग्रसर है । उज्जयिनी के ललित संस्कृतगीतिकार आचार्य श्रीनिवास रथ पहली बार किसी मध्यवर्गीय पात्र को नायक बनाकर बलदेवचरितम् महाकाव्य की रचना कर रहे हैं। इस महाकाव्य में बलदेव उपाध्याय जी के इर्द गिर्द अंग्रेज़ी दासता से मुक्ति पाने की छटपटाहट और विश्वबन्धुता की ओर बढ़ती हुई हमारी राष्ट्रीय चेतना भी बड़ी साफ रेखांकित हो रही है । तृतीय सर्ग में भगवती सरस्वती का कथन है-

सागरैश्च गिरिभिर्नदीजलैर्भूरियं यदि विभज्यते जनैः ।

व्याप्य शब्दगुणकं मया नभः सूत्रितं त्रिभुवनं निजात्मना ।।

कि लोग अपनी ओर से चाहे जितने समुद्रों,पहाड़ों और सरिताओं के पानी बाँटकर धरती का बँटवारा कर लें, मैंने तो शब्दगुण वाले समूचे आकाश में फैलकर इस त्रिभुवन को ही एक सूत्र में पिरो लिया है ।

संस्कृत महाकाव्यों की महती वर्तमान श्रृंखला में इसी तरह अभिराज कवि श्री राजेन्द्रमिश्र का नाम भी उल्लेखनीय है । श्री मिश्र के जानकीजीवनम् महाकाव्य में उदात्ततर आदर्शों के अतिरिक्त भारतीय लोकरूप की अनेक चित्र-वीथियाँ देखने को मिलती हैं ।

अभी जिन संस्कृत महाकवियों के नाम संकेतित किये गये हैं, इनके साथ ही एक भरा पूरा नक्षत्र- मण्डल खण्डकाव्य, ललित गीति और मुक्तकों की भी नित-नई सर्जना मे संलग्न है - इस नक्षत्र मण्डल के कुछ भास्वर नाम हैं - बच्चूलाल अवस्थी, उज्जैन, बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते, वाराणसी, राधावल्लभ त्रिपाठी सागर, मुल्लपूडि जयसीताराम, रेपल्ले,बाबूराम अवस्थी,लखीमपुर खीरी, पी0 के0 नारायण पिल्लै, त्रिवेन्द्रम, ओमप्रकाश ठाकुर एवं रामकरणशर्मा, दिल्ली तथा परमानन्द शास्त्री, अलीगढ। जब आनन्द-मधु-मन्दाँकिनी के रचयिता मिथिला के पं0 आनन्द झा धूमावती-दण्डक प्रस्तुत करते हैं -

जय जयानन्तव्रह्माण्ड-भाण्ड-स्फुट-स्फोटन प्रोद्यतोग्राग्नि-घूमान्ध-कारप्रभे ! भीषणे सर्वदा! शत्रु-संहार-तात्पर्यवन्मानसे ! देवि धूमावति ! स्वानुगारातिभीत्यै विवर्णाकृतिं दोषिणीं दीर्घदीर्घां च मालिन्यवद्वस्व-युक्ताङ्गिनीं मुक्तिमन्मूर्द्धजां रूक्ष-रूक्षां धवाभाव-विख्यापिनीं दन्तदीर्घत्व-वैरल्यतो भीषणां कूक्वणत्काक-दीर्घध्वजे स्यन्दने घोट-हीने श्मशान-स्थिते संस्थिताम् ।

अथवा 'भाति मे भारतम्' के रचयिता नई दिल्ली के ओजस्वी कवि डॉ0 रमाकान्त शुक्ल अपने सद्यः प्रकाशित छन्द सुनाते हैं तो सहसा यही प्रतीत होता है कि संस्कृत साहित्य आज भी चिरनूतन है तथा समानान्तर युग-बोध से संपन्न है।

## साहित्य विधाएँ

आधुनिक संस्कृत नाटकों में भी यह उर्वरता बनी हुई है । पुल्लेल श्री रामचन्द्रुडू का ''सुसंहतभारतम्'' छः अंकों में भारतीय स्वतंत्रता की अन्तरंग परिस्थितियों का रूपायन करता है । इसके उपसंहार में पं0 नेहरू का भरतवाक्य है -

स्वदेशक्षेमार्थं सकलजनताऽसौ प्रयततां

पराश्चास्मत्सीमा ऽऽक्रमणकुधियो यान्तु विजिताः ।

समृद्धोऽयं देशो विविधविभवैः सञ्चितबलो

विधत्तां सर्वत्राप्यनुपहतशान्तिञ्च भुवने ।।

अर्थ लगभग स्पष्ट है कि देश की भलाई के लिए सारी जनता को ही प्रयत्नशील रहना चाहिए, तभी हमारी सीमाएँ शान्त रहेंगी, हम समृद्ध होंगे और विश्व-शान्ति के प्रति हमारा आश्वासन अचूक होगा ।

पूना के पं० ओगेटि परीक्षित् शर्मा ने परीक्षिन्नाटकचक्रम् नाम से एक जिल्द में ही स्वरचित २७ नाटकों का प्रकाशन किया है, जिनमें १४ पौराणिक आख्यानों पर आधारित हैं । ६ ऐतिहासिक कथावस्तु को लेकर चलते हैं और सात नाटक आज के सामाजिक वातावरण से अनुप्राणित हैं । कहीं कहीं इनके भाषिक प्रयोगों पर व्याकरण विश्लेषण न करें तो रूपकों का समानान्तर आकर्षण सचमुच प्रशंसनीय कहा जायेगा ।

वस्तुतः एकांकी जगत् में भी संस्कृत रंगकर्म आज के मंचों के अनुरूप सामने आ रहा है । पिछले दिनों भोपाल में श्रीराम वेलणकर ने मेघदूतोत्तरम् स्वातंत्र य-चिन्तामणि और तत् त्वमसि आदि कई एकांकी - शृंखलाएँ प्रकाशित की हैं। इन रचनाओं में समसामयिक घटनाओं के प्रति जागरूकता तथा राष्ट्रीय एकता के स्वर प्रमुख रूप से अंकित किये गये हैं ।

राजेन्द्र मिश्र के इलाहाबाद से प्रकाशित नाट्यपञ्चगव्यम् एवं रूपरुद्रीयम् आदि एकांकी संकलन संस्कृत की परम्परा-पुष्ट शैली और लोक-सौन्दर्य की सोंधी सोंधी रेखाओं से भरपूर सजाये गये हैं । इलाहाबाद के ही संस्कृत मनीषी आचार्य चन्द्रभानु त्रिपाठी ने सुजाता और उर्वशी नाम से दो अच्छी नाटिकाएँ संस्कृत जगत् को दी हैं।

आज भी इन भारतीय नाटकों का ''शान्त क्रतुं चाक्षुषम्'' अर्थात् इन्द्रियों के प्रशान्त यज्ञ का स्वरूप अव्याहत है । इन्हें सुनते और देखते समय धनी-गरीब, नागरक-वनवासी अपना भेदभाव भूलकर साधारणीकरण की परिधि में आबद्ध हो जाते हैं, मानसिक भोजन प्राप्त करते हैं और उपदेश-रंजन के साथ सामाजिक समानता का पाठ पढ़ते हैं । समग्र धर्मों, जातियों एवं भिन्न भिन्न वृत्तियों के नर नारी समान रसवर्षण से आप्यायित होते हैं । दीन तथा निराश लोगों में उत्साह, आक्रोश-पीडित जनता में शान्ति तथा दुर्विनीत विघटनकारियों में अनुशासन का संचार होता है । प्रशांत यज्ञ में सरल व्यंजनामयी भाषा की शब्द गंगा सर्वहित एवं सर्वोदय का संकल्प लिए प्रवाहित होती है । सभी अपनी अपनी तपन और उलझन लेकर पहुँचें, सब को बराबर शीतलता और आश्वस्ति मिलती है ।

आधुनिक संस्कृत साहित्यकार अपनी संपन्न परंपरा के हर आयाम को युगानुरूप ढालने से पीछे नहीं हटे हैं । गद्य और पद्य की गंगाजमुनी मिठास लेकर मन्दसौर के श्री रुद्रदेव त्रिपाठी ने प्रथम राष्ट्रपति पर आधारित राजेन्द्रचन्द्रोदय-चम्पू १६ कलाओं में लिखी है । पुरी के श्री केशवचन्द्रदाश ने संस्कृत की अनगिनत लघुकथाएँ,खण्ड काव्य और उपन्यास तथा नीमच मध्यप्रदेश के श्रीनाथ श्रीपाद हसूरकर ने प्रतिज्ञापूर्ति, अजातशत्रु, सिन्धुकन्या, चेन्नम्मा, दावानल और व्रती शीर्षक से छः उपन्यास हमें दिये हैं ।

समीक्षकों ने इन प्रस्तुतियों का उन्मुक्त हृदय से स्वागत किया है । श्री दाश की रचनाओं पर वाराणसी से प्रकाशित सागरिका का स्पष्ट अभिमत है - ''आधुनिकसंस्कृतसाहित्यस्य प्रयोगक्षमत्वं नूतनतत्त्वसंग्रहणमसामर्थ्यं च परिचाय-यितुमवश्यमेताः रचनाः स्वागतार्हाः''

इन सभी लेखकों ने ही नहीं पण्डिता क्षमाराव, वनमाला भवालकर, अग्निशिखा की कवयित्री पुष्पा दीक्षित और नलिनी शुक्ला आदि लेखिकाओं ने भी आधुनिक संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि में उल्लेखनीय योगदान किया है । संस्कृत की अत्यंत समृद्ध परंपरा के ये वर्तमान उत्तराधिकारी हैं । हम इन्हें पढ़ें और सुने-समझें तथा शास्त्रों के निकष पर इनकी समीक्षा करें । यह सभी साहित्य-मधुव्रतों का पुनीत दायित्व है ।

# संस्कृत की वैदेशिक विद्वत्त्रयी

डा0 हरिदत्त शर्मा

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में पहली बार योरोप में संस्कृत-विद्या का बीजन्यास हुआ, और तब से यह वहाँ की धरती पर निरन्तर पुष्पित एवं पल्लवित होती रही है। वहाँ संस्कृत-वाङ्मय के अध्ययन एवं अनुसन्धान का जो क्रम चला, वह निरन्तर आगे की ओर गतिशील रहा है। अनेक प्राच्यविद्याविद् विद्वानों ने शोध एवं समीकरण के उच्च मानदण्ड स्थापित कर संस्कृत के समुन्नयन में महनीय योगदान किया है। इस धारा में आने वाले कतिपय आधुनिक संस्कृत-विद्वानों से मेरा साक्षात्कार १९८७ एवं १९९० ई0 में हुआ, जब मैंने 'सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम' के अन्तर्गत क्रमशः चार माह की जर्मनी-यात्रा तथा दो माह की फ्रांस-यात्रा की। तत्कालीन पूर्व जर्मनी की राजधानी बर्लिन एवं फ्रांस की राजधानी पेरिस में रहकर जिन कतिपय संस्कृत-विद्वानों से मेरा सम्पर्क हुआ, उनमें से उन तीन विद्वानों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर मैं प्रकाश डाल रहा हूँ, जिनका सर्वाधिक सान्निध्य एवं सौहार्द मुझे प्राप्त हुआ है।

## १. प्रो0 वुल्फगांग मोर्गेनरॉथ

इस समय जर्मनी के हम्बोल्ट विश्वविद्यालय, बर्लिन में एशियाई अध्ययन संस्थान के अन्तर्गत दक्षिण-एशियाई अध्ययन विभाग में प्रोफेसर एवं अध्यक्ष पद पर कार्यरत हैं। इस विश्वविद्यालय में भारतीय विद्या के अध्ययन का आरम्भ १८२१ ई0 में हुआ और इसके प्रथम प्रोफेसर फ्रांज बॉप हुए। बॉप के दीर्घ कार्यकाल के पश्चात् इस पद पर क्रमशः आरब्रेश्ट वेबर, रिचर्ड पिशेल, हैनरिख ल्यूडर्स, वाल्टर रूबैन आसीन रहे। १९७२ में प्रोफेसर मोर्गेनरॉथ यहाँ 'इण्डोलॉजी' के प्रोफेसर पद पर प्रतिष्ठित हुए और तभी हम्बोल्ट विश्वविद्यालय में एशियाई एवं दक्षिण एशियाई अध्ययन के विभाग पृथक् रूप से स्थापित हुए। इससे पूर्व प्रो0 मोर्गनरॉथ ने १९५८ ई0 में येना विश्वविद्यालय से छान्दोग्य उपनिषद् पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर डॉक्टरेट डिग्री प्राप्त की। १९५४ ई0 में ग्रीफ्सवाल्ड विश्वविद्यालय में अध्यापक नियुक्त हुए तथा भारोपीय भाषा विज्ञान तथा ग्रीक, लैटिन एवं स्लाविक भाषाओं का अध्यापन किया। ग्रीफ्सवाल्ड में मोर्गेनरॉथ ने मूल संस्कृत-ग्रन्थों की व्याख्या तथा संस्कृत भाषा के इतिहास पर शोध-पत्र लिखे। संस्कृत के मनोरंजक कथा-साहित्य पर उन्होंने कार्य किया तथा 'शुकसप्तति' का जर्मन अनुवाद प्रकाशित किया। ग्रीफ्सवाल्ड विश्वविद्यालय के कार्यकाल में उन्होंने समस्त संकायों के विद्यार्थियों के लिए संस्कृत

विषय के अध्यापन का गुरुतर दायित्व सँभाला और इसी के समानान्तर वे १९५९ से १९६९ तक बर्लिन की हम्बोल्ट यूनिवर्सिटी में अतिथि अध्यापक के रूप में संस्कृत, पालि एवं प्राकृत भाषाओं को पढ़ाते रहे। उस समय वहाँ वाल्टर रूबैन इण्डोलॉजी की पीठ पर विद्यमान थे। १९६९ में मोर्गेनरॉथ ग्रीफ्सवाल्ड में फुल प्रोफेसर नियुक्त हो गये और अन्ततः १९७२ ई० में उन्हें हम्बोल्ट विश्वविद्यालय में फुल प्रोफेसर के पद पर आमन्त्रित कर प्रतिष्ठित कर दिया गया और तब से आज तक वे इसी पद पर कार्यरत हैं।

प्रो० मोर्गेनरॉथ ने अब तक संस्कृत, पालि, प्राकृत, भाषा विज्ञान, कथा साहित्य, महाभारत, उपनिषद् साहित्य, वेद, समीक्षात्मक इतिहास, आदि अनेक विषयों पर सैकड़ों शोध-निबन्ध लिखे हैं जो प्रतिष्ठित प्राच्यविद्यासम्बन्धी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। शुकसप्तति के अतिरिक्त मुद्राराक्षस नाटक एवं महाभारत के चुने हुए अंशों के जर्मन भाषा में अनुवाद भी आपने किये हैं। संस्कृत-व्याकरण पर जर्मन भाषा में एक उपयोगी पुस्तक लिखकर आपने जर्मनभाषी संस्कृत-अध्येताओं का बड़ा उपकार किया है। अनुवाद, अनुसन्धान एवं समीक्षण के अतिरिक्त प्रो० मोर्गेनरॉथ ने पर्याप्त परिश्रम कर तत्कालीन जर्मन जनवादी गणतन्त्र में संस्कृत-अध्ययन की विस्तृत एवं व्यवस्थित सूचनाओं से परिपूर्ण एक ग्रन्थ 'संस्कृत स्टडीज इन द जी० डी० आर०' दो भागों में सम्पादित कर प्रकाशित किया है। प्रो० मोर्गेनरॉथ संस्कृतसम्बन्धी विविध शैक्षणिक एवं साहित्यिक कार्यकलापों में सतत सक्रिय रहे हैं। उनके कार्यकाल में ही उनके सञ्चालन में फ्रांज बॉपकी फुल प्रोफेसरशिप तथा पूर्व जर्मनी में संस्कृत-अध्यापन का १५० वाँ वर्ष मनाने के लिए १९७५ में एक 'इण्टरनेशनल संस्कृत कान्फ्रेंस' का आयोजन किया गया।

प्रो० मोर्गेनरॉथ के सक्रिय उत्साह के कारण ही उनके जनरल सेक्रेटरी बनने पर १९७९ में वाइमार में चतुर्थ 'वर्ल्ड संस्कृत कान्फ्रेंस' का आयोजन किया गया। इसी सम्मेलन के अवसर पर 'समरीज ऑफ पेपर्स' के अतिक्रित 'संस्कृत स्टडीज आउट साइड इण्डिया' नाम से तीन वॉल्यूम प्रकाशित किये गये हैं जिनमें भारत के बाहर के प्रायः समस्त देशों में संस्कृत-अध्ययन की स्थिति पर उन देशों के विद्वानों ने विवरण लिखकर योगदान किया। १९७६ में प्रकाशित 'विसैनशाफ्टलिशें त्जाइश्रिफ्ट, बर्लिन' के सम्पादक प्रो० रॉथ ही हैं। वाइमार की कान्फ्रेंस में आपके द्वारा जर्मन में अनूदित मुद्राराक्षस नाटक का अभिनय किया गया। अनेक वर्षों से प्रो० रॉथ 'इण्टरनेशनल एसोसिएशन ऑफ संस्कृत स्टडीज' के उपाध्यक्ष हैं। प्रो० रॉथ अब तक सात बार भारत आ चुके हैं, और भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना से सम्बद्ध रहकर शोध-कार्य करते हैं।

## २. प्रो० माइकेल हान

प्रोफेसर माइकेल हान सम्प्रति जर्मनी के मारबुर्ग नगर में स्थित फिलिप्स यूनिवर्सिटी के भारतीय विद्या संस्थान में प्रोफेसर एवं अध्यक्ष पद पर अवस्थित हैं। प्रो0 हान से मेरा परिचय भारत में सम्पन्न हुई 'आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस' के विभिन्न सत्रों में हुआ। प्रो0 हान ओरियण्टल कान्फ्रेंस, वर्ल्ड संस्कृत कान्फ्रेंस तथा अखिल भारतीय कालिदास समारोह आदि विविध सन्दर्भों में अनेकशः भारत आ चुके हैं। प्रो0 हान लम्बे समय तक जर्मनी की राजधानी बॉन में स्थित बॉन विश्वविद्यालय के 'इण्डोलोजिश सेमिनार' में अध्यापक रहे हैं। १९८८ में आप फिलिप्स यूनिवर्सिटी, मारबुर्ग में फुल प्रोफेसर नियुक्त हुए और पश्चिम जर्मनी के जिन बीस विश्वविद्यालयों में संस्कृत शिक्षण की व्यवस्था है उनमें ये दोनों विश्वविद्यालय भी सम्मिलित हैं। प्रो0 हान शिक्षण एवं अनुसन्धान दोनों कार्यों में समान रूप से गतिशील हैं। आपके निर्देशन में कई शोध-कार्य हुए हैं और अनेक शोधार्थी इस समय भी कार्य कर रहे हैं।

प्रो0 हान का मुख्य कार्यक्षेत्र है अलङ्कृत काव्य, काव्यशास्त्र, छन्दःशास्त्र, बौद्ध दर्शन, संस्कृत साहित्य का इतिहास, तिब्बतीय अध्ययन आदि। अनेक दुर्लभ पाण्डुलिपियों को लेकर पर्याप्त अध्ययन करने के बाद उनको विधिवत् सम्पादित कर प्रकाशित करने का महनीय कार्य आपने किया है जिनमें प्रमुख हैं-

(१) हरिभट्टजातकमाला-दर्दर जातक, १९७९,-वाइनेर त्ज़ाइश्रिफ्ट फुर दि कुण्डे सूडाशियन, २३

(२) चन्द्रगोभिनकृत लोकानन्द नाटक, कैलाश ७, १९८०, सम्पादन, व्याख्या एवं तुलनात्मक अध्ययन।

(३) हरिभट्टजातकमाला-उदय जातक वाइनेर त्ज़ाइश्रिफ्ट फुर दि कुण्डे सूडाशियन २४ ((१९८०)

(४) गोपदत्त का कपीश्वर जातक-जर्नल ऑफ दि नेपाल रिसर्च सेण्टर ४, १९८०

(५) दास डेटम् देज हरिभट्ट-स्टडीन ज़ुम जैनिस्मस उन्ट बुद्धिस्मस, वाइसबेडिन, १९८१

(६) हरिभट्ट एण्ड गोपदत्त-टू आथर्स इन दि सक्सैज़न ऑफ आर्यशूर ऑन दि रिडिस्कवरी ऑफ पार्ट्स ऑफ देयर जातकमालाज़-स्टूडिया फिलोलोजिका बुद्धिका, टोकियो-१९७७

(७) शिवस्वामीकृत कप्फिणाभ्युदय-नेपाली पाण्डुलिपि के प्राप्त १७ पत्रों पर आधारित।

इसके अतिरिक्त प्रो0 हान ने प्रो0 खोंडा के द्वारा सम्पादित 'हिस्ट्री ऑफ संस्कृत

लिटरेचर' में छन्दोविधान पर अध्याय लिखकर अपना योगदान, किया है। प्रो0 हान की सम्पादन, अध्ययन, अनुसन्धान की पद्धति नितान्त व्यवस्थित, वैज्ञानिक एवं आधुनिक पद्धतियों से सम्पन्न है। कम्प्यूटर का प्रयोग कर प्रो0 हान अपना समग्र कार्य करते हैं तथा विषय के पर्याप्त चिन्तन-मनन के पश्चात् साधना कर निष्कर्ष निकालते हैं। मैंने घण्टों उनके घर उनके साथ बैठकर संस्कृत अध्ययन के लिए कम्प्यूटर-प्रयोग-पद्धति को देखा है। वे संस्कृत विद्या की साधना के लिए ऋषितुल्य हैं और उनका कार्य वस्तुतः स्तुत्य है।

## प्रो0 प्येर सिलवाँ फिलियोज़ा

प्रोफेसर प्येर सिलवाँ फिलियोज़ा एक फ्रांसीसी संस्कृत मनीषी हैं, जो इन दिनो पेरिस में स्थित सौबोर्न यूनिवर्सिटी के 'प्रेक्टिकल स्कूल ऑफ हायर स्टडीज' के अङ्गभूत भारतीय विद्या विभाग के निदेशक है। डॉ0 फिलियोज़ा को संस्कृत-अध्ययन का दाय पितृ-परम्परा से अपने पिता प्रो0 ज्यां फिलियोज़ा से मिला है जो स्वयं प्रसिद्ध फ्रांसीसी संस्कृतज्ञ सिलवाँ लेवी के शिष्य थे। ज्याँ फिलियोज़ा ने अपने जीवन का उत्तरार्ध समग्र रूप से संम्कृत-अध्ययन में लगा दिया था और उन्होंने अनेक क्षेत्रों में अपनी लेखनी चलाकर संस्कृत-विद्या का श्रीसंवर्धन किया था। उन्हीं के प्रयास से भारत के दक्षिण भाग पाण्डिचेरी में १९५५ ई0 में 'फ्रेंच इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी' की स्थापना हुई थी, और १९७७ तक वे स्वयं इसके निदेशक रहे थे। उनके पुत्र प्येर सिलवाँ भारतीय विद्या के बहुआयामी शोध-कार्य के लिए प्रतिवर्ष छः महीने के लिए आकर इस संस्थान में काम करते हैं। इस प्रकार इस उद्देश्य-पूर्ति हेतु वे वर्ष में छः माह पेरिस तथा छः माह पाण्डिचेरी रहते हैं। प्रो0 फिलियोज़ा एशियाई देशों में स्थित भारतीय विद्याओं के उच्चतर शोध-संस्थान 'इकोले फ्रांक्राई देक्ट्रीम ओरियण्ट' तथा पेरिस स्थित संस्कृत के विशाल ग्रन्थालय एवं संस्थान 'इन्स्टीट्यूट दे सिविलाइजेशन इण्डेने' से अभिन्न रूप से जुडे हुए हैं। तथा इन संस्थाओं के माध्यम से संस्कृत के अनुसन्धान प्रकाशन को प्रश्रय दे रहे हैं। अपने विश्वविद्यालय में इस समय वे कक्षाओं में बाण की कादम्बरी एवं व्यास के योग भाष्य से योगदर्शन पढ़ाते हैं। प्रो0 फिलियोज़ा मूलतः वैयाकरण हैं। अपनी अध्ययन- शीलता के कारण उन्होंने संस्कृत-काव्य, काव्यशाास्त्र, व्याकरण, ऐपीग्राफी, आर्कियोलॉजी, दर्शन, तन्त्र, भारतीय संस्कृति एवं इतिहास आदि विविध विषयों पर अनेक ग्रन्थ एवं शोध निबन्ध लिखे हैं।

प्रो0 फ़िलियोज़ा ने पतजञ्जलिकृत व्याकरण महाभाष्य की दो टीकाओं- कैय्यटकृत 'प्रदीप' और नागेशकृत 'उद्योत' का तुलनात्मक अध्ययन कर इस पर डॉक्टरेट उपाधि प्राप्त की है तथा पाँच अङ्को में महाभाष्य को पाण्डिचेरी के भारतीय विद्या संस्थान से प्रकाशित किया है, साथ ही उसकी शोधपरक भूमिका

लिखी है। इसके अतिरिक्त पाणिनीय व्याकरण के अनेक सूत्रों, (जैसे स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ) विविध समस्याओं (जैसे कारक, कर्मकर्तृ आदि), सिद्धान्तों (जैसे स्फोटवाद) पर अनेक शोध-निबन्ध लिखे हैं। 'विश्वभाषा' नामक संस्कृत-पत्रिका में आपने 'व्याकरणमहाभाष्यम्' शीर्षक से संस्कृत में शोध-पत्र लिखा है, जो एक विदेशी विद्वान् के लिए सचमुच सराहनीय है। आपने पेरिस से प्रकाशित 'ऐन्साइक्लोपीडिया यूनिवर्सलिस' में संस्कृत-व्याकरण का इतिहास लिखकर अपना योगदान किया है। इसी ऐन्साइक्लोपीडिया में आपने 'कालिदास' और 'अलङ्कारशास्त्र' इन दो विषयों पर भी अपने आलेख लिखे हैं। प्रो० फिलियोज़ा ने काव्य के क्षेत्र में नीलकण्ठ दीक्षित की 'गुरुतत्त्वमालिका' तथा काव्यशास्त्र के क्षेत्र में कुमारस्वामी की 'रत्नापण' टीका सहित विद्यानाथ की 'प्रतापरुद्रीय' का भूमिका टिप्पणी सहित प्रकाशन किया है। 'स्टर्नबाख अभिनन्दन-ग्रन्थ' में प्रकाशित आपका निबन्ध 'क्वोटेशंस ऑफ रत्नावली इन अभिनवभारती' विद्वानों में चर्चित हुआ है। 'विश्वभाषा' में संस्कृत में लिखित आपका एक अन्य निबन्ध 'विज्ञानक्षेत्रे संस्कृतम्' भी स्पृहणीय है। इसके अतिरिक्त शास्त्रों के इतिहास, शिलालेख-विद्या, पुरातत्त्व विद्या, भारतीय धर्म एवं दर्शन,तन्त्र भारतीय विद्या का इतिहास आदि विषयों पर प्रो० फिलियोज़ा ने अनेक शोध-पत्र लिखकर उत्तम सारस्वत सेवा की है। आपने 'फ्रेंच इंस्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी' पाण्डिचेरी पर भी एक परिचयात्मक निबन्ध लिखकर प्रकाशित कराया है। पेरिस की 'नेशनल लाइब्रेरी के ओरियण्टल मेन्यूस्क्रिप्ट सेक्शन' में विद्यमान पाण्डुलिपियों का सं० ४५२ तक का 'डैस्क्रिप्टिव कैटैलॉग' प्रो० फिलियोज़ा के पिता ने तैयार किया था। शेष विवरणात्मक सूची प्रो० फिलियोज़ा बड़े श्रम के साथ तैयार कर रहे हैं। आप भी अपने कार्य में आधुनिकतम यन्त्रों का प्रयोग करते हैं। संस्कृत-अध्ययन के लिए कम्प्यूटर-प्रयोग की नवीन पद्धतियों का प्रयोग आप करते हैं और उसके लिए देश-विदेश में होने वाली संगोष्ठियों में भाग लेते हैं। प्रो० फिलियोज़ा सरल प्रकृति के मनीषी हैं एवं भारतीयता से पूरी तरह संसक्त हो चुके हैं। ऐसे संस्कृत सेवी साधनारत सरस्वती पुत्रों को पाकर सुरभारती धन्य हो गयी है।

# डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

डॉ0 सौ0 रजनी अग्रवाल

## व्यक्तित्व

''उत्तम संस्कारों के सेचन से जीवन का पौधा पल्लवित और पुष्पित होता है और उससे अपने परिसर को सुन्दर और सुरभित बनाता है ।'' यह उक्ति साहित्यकार की समग्र जीवनी का संक्षिप्त आकलन प्रस्तुत करती है । इस उक्ति का सत्यापन डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी के द्वारा विगत ५० वर्षों में की गयी निर्विराम साहित्य-सर्जना से सहज हो जाता है ।

संस्कृत, हिन्दी और गुजराती भाषा के माध्यम से सहस्रों पृष्ठों में लिखित, मुद्रित एवं सम्पादित प्रायः १०० छोटे-बड़े ग्रन्थ तथा शताधिक प्रौढ शोधनिबन्धों में अवतरित-काव्य, गीति,स्तुति, चित्रबन्ध, प्रस्तावना, समालोचना, सम्पादकीय, कथानिका, दूतकाव्य, प्रवासवर्णन, जीवन-चरित, शास्त्रचर्चा, व्याख्या, तन्त्र, मन्त्र, उपासना-विधान, संस्मरण एवं अनूदित साहित्य के विभिन्न पक्षीय आयाम डॉ० त्रिपाठी की बहुमुखी साहित्य-साधना/सर्जना के स्वसंवादी व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का एक रेखाचित्र है ।

डॉ० त्रिपाठी का जन्म मध्यप्रदेश के मालवाञ्चल में प्राचीन 'दशपुर' और वर्तमान 'मन्दसौर' के नाम से परिचित नगर में सन् १९२५ ई0 के दि0 २३ सितम्बर को हुआ । आपकी माता का नाम 'श्रीमती सीताबाई' तथा पिता का नाम 'पं0 रमाकान्तजी शर्मा' है । उत्तम ब्राह्मण-परिवार में आपका लालन-पालन हुआ और प्रारम्भिक शिक्षा के तीन वर्षों के पश्चात् अपने पूज्य ताऊजी (पिता के ज्येष्ठ-भ्राता) पं0 कृष्णलालजी शर्मा की प्रबल प्रेरणा से संस्कृत-भाषा का अध्ययन उन्हीं के निकट प्रारम्भ हुआ । प्रायः ८ वर्ष तक उन्हीं के चरणों में बैठकर आपने पाणिनीय अष्टाध्यायी, अमरकोष, सिद्धान्तकौमुदी और ज्योतिष-कर्मकाण्ड क अध्ययन किया। स्मरण-शक्ति की तीव्रता के फल-स्वरूप आपने पठित विषयों के साथ ही विविध सुभाषित पद्यों को भी उन्हीं दिनों कण्ठस्थ किया था, जो भविष्य में कवित्व के कारण बने ।

पूज्य ताऊजी के संन्यास ग्रहण कर लेने पर आपने आयु के १४ वें वर्ष में परीक्षाएँ देना प्रारम्भ कीं। क्रमशः मन्दसौर, नाथद्वारा, वाराणसी और बम्बई में अध्ययन करके व्याकरण, साहित्य, सांख्ययोग और पुराण-विषयों में 'तीर्थ' और 'आचार्य' परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। अपनी अध्ययन-प्रवृत्ति की निरन्तरता से ही आपने एम0 ए0 (संस्कृत और हिन्दी में), बी0 एड0 (शिक्षाशास्त्र में), पी-एच0 डी0 और डी0 लिट्0 अलङ्कारशास्त्र में उत्तीर्ण कर शोध प्रबन्ध-लेखन पूर्वक विश्वविद्यालय की सर्वोच्च उपाधियाँ भी प्राप्त कीं।

आपका कार्यक्षेत्र प्रारम्भ में मन्दसौर ही था जिसे आगे बढ़ाते हुए आप बम्बई, उज्जैन, दिल्ली, भिवानी और जयपुर में विभिन्न उन्नत पदों पर अध्यापन एवं शोध कार्य करते हुए साहित्य-सृष्टि करते रहे। वर्तमान में आप सेवानिवृत्त होकर उज्जैन-स्थित 'बृजमोहन बिड़ला शोध केन्द्र' में शोध एवं प्रकाशन का कार्य कर रहे हैं। अध्ययन, अध्यापन, सम्पादन और प्रकाशन के साथ ही इष्ट देवी भगवती त्रिपुर-सुन्दरी की आराधना में तत्पर डॉ० त्रिपाठी जी का पूरा समय ऐसा घुला-मिला रहता है कि वे सदा व्यस्त ही दिखाई देते हैं। फिर भी उनका यह विशेष गुण है कि उन के पास आने वाले ज्ञान-पिपासु को वे कभी निराश नहीं करते। उनके द्वारा ज्ञान-प्राप्त एवं उपासना-मार्गदृष्ट छात्र और उपदिष्ट शिष्यों की संख्या भी पर्याप्त है, इसीलिए 'गुरुजी' के नाम से सादर सम्बोधित भी होते हैं।

डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी के अध्ययन-काल से ही लेखन और प्रकाशन की प्रवृत्ति भी प्रारम्भ हो गयी थी। आपने अपने पूज्य पिताजी की प्रेरणा और आशीर्वाद से जीवन के २१ वें वर्ष में ही संस्कृत का मासिक पत्र सम्पादित कर प्रकाशित करने का उपक्रम किया। स्वयं का मुद्रण यन्त्रालय होने से तथा उससे सम्बद्ध मुद्रणादि सभी कार्यों के स्वहस्त से सम्पन्न करने की सुविधा से 'मालव-मयूरः' नामक संस्कृत मासिक प्रारम्भ करके प्रायः १९ वर्षों तक उसे बड़ी सजधज के साथ चलाया। इसी पत्र में लेखन करते हुए आपके आनुवंशिक कवित्व, सम्पादकत्व एवं विविध साहित्य-सर्जकत्व के गुणों को क्रमशः परिष्कार होकर स्थायित्व मिला। इस कार्य में आपके लघुभ्राता पं0 जयदेव त्रिपाठी तथा डॉ० भवानीशङ्कर त्रिपाठी का सहयोग भी सराहनीय रहा।

शास्त्रकारों का कथन है कि 'मानव-जीवन को समुन्नत बनाने के लिए 'गुरुकृपा', 'सत्सङ्ग' एवं 'स्वयं प्रयास' रूप 'त्रिशक्ति' की नितान्त आवश्यकता होती है।' इस दृष्टि से देखा जाये तो ये तीनों ही शक्तियाँ डॉ० त्रिपाठी को क्रमशः प्राप्त होती रही हैं। आपके पूज्य ताऊजी (स्वामी कृष्णानन्दजी तीर्थ) से आपको संस्कृत-अध्ययन का वरदान मिला, अनेक गुरुओं से ज्ञान मिला, पू० स्वामी आत्मदेवाश्रम जी से श्रीविद्या दीक्षालाभ हुआ और पू० स्वामी विद्यारण्यजी से आगम बोध प्राप्त कर पूज्य स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज से पूर्णाभिषिक्त हुए। सत्सङ्ग के रूप में भी भारत के विशिष्ट विद्वानों का आश्रय पाया तथा अहर्निश स्वाध्याय में

लगे रहकर बहुमुखी व्यक्तित्व का विकास पाया। आपके पूर्वजों ने भगवती जगदम्बा की उपासना से उनकी कृपा और सिद्धियाँ प्राप्त कर अनेक लोक कल्याण के कार्य किये हैं, अतः आप भी अपनी आनुवंशिक साधन-सरणि पर चलते हुए आगे बढ़ रहें हैं। मेरा (लेखिका डॉ० रजनी अग्रवाल का) यह सौभाग्य रहा कि मैने अपने पी-एच0 डी0 उपाधि के लिए शोध-विषय के रूप में ''डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व'' शीर्षक को स्वीकृत कर आपके व्यक्तित्व और कर्तृत्व का यथोचित परिचय पाया। उसी का सार-संक्षेप उपर्युक्त 'व्यक्तित्व-परिचय' यहाँ दिया गया है। अब आगे डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी जी के कर्तृत्व का उल्लेख प्रस्तुत कर रही हूँ।

## डॉ0 रुद्रदेव त्रिपाठी की संस्कृत साहित्य-सेवा

### (१) खण्डकाव्यत्रयी

१- पत्रदूतम् २- पुत्रदूतम्, तथा ३- पादत्राणदूतम्। इनमें प्रथम दूत काव्य अपने पूज्य गुरुदेव के निकट गुरुपूर्णिमा के अवसर पर अपनी उपस्थिति के अभाव में पत्र (डाक विभागीय) को दूत बनकर बम्बई से मन्दसौर रेलवे द्वारा भेजा है। १६३ मन्दाक्रान्ता-वृत्तों में निर्मित यह दूतकाव्य एक अभिनव काव्य कृति है।

द्वितीय दूतकाव्य भारतीय नारी के जीवन की करुण कथा के सन्दर्भ में है। इस में राजनीतिक जाल में फँसे अपने पति की नेतागिरी की लालसा और असफलताओं का निदर्शन हुआ है। यह काव्य भी मन्दाक्रान्ता वृत्त में ही निर्मित है। इसकी काव्यप्ररोचना सामाजिक तथ्यों से निरूपित हुई है।

तृतीय दूतकाव्य विनोदात्मक है। इसमें वृत्त तो वही है किन्तु भाषा में अन्यभाषा का मिश्रण भी हुआ है, जिसका उद्देश्य विनोद-मात्र है। यह वर्तमान युवा और युवती छात्र-छात्राओं की प्रवृत्तियों का साक्षात्कार कराते हुए प्रणय-विह्वल छात्र की पिटाई से शिक्षा दिलाने का वृत्तान्त प्रस्तुत करता है। परिहास की परछाइयों में कर्तव्य-बोध का उपदेश यहाँ सन्निविष्ट है।

### (२) लहरी-काव्यत्रयी

१- गायत्री-लहरी, २- बदरीश-लहरी और ३- वटुकभैरवलहरी। ये स्तुतिकाव्य की परम्परा से पुष्ट रचनाएँ हैं। इनके नामों के अनुरूप ही इनमें तत्तद् देवताओं की महिमा वर्णित है, प्रार्थना विहित है तथा कर्म-विशेष, स्थल विशेष एवं विधि-विशेष का संसूचन गर्भित है। तीनों कृतियाँ शिखरिणी वृत्त में हैं। वटुकभैरव-लहरी में वटुक के १०८ नामों का प्रत्येक पद्य से क्रमशः ग्रथन विशिष्ट

प्रयास रूप है ।

## (३) विनोद-काव्यत्रयी

१- विनोदिनी, २-डिण्डिमः और ३- हा-हा-हू-हूः । संस्कृत-रचनाओं में विनोद-वृत्ति का आश्रय देकर लिखी गयी विभिन्न पद्यावलियों को इन रचनाओं में सङ्कलित किया गया है । विषयों की विविधता में ''मशक-मञ्जरी, मण्डूकमहिमा, चाय-कथा, रेल-रामायणम्, सोपान-सप्तकम्, पत्नी-प्रसादः, मन्ये मत्कुण-शङ्कया, निर्वाचन-नवनीतम्''-जैसी अनेक लघु कृतियाँ सफल हास्योत्पादक हैं ।

## (४) गीति-काव्यत्रयी

१- प्रेरणा, २- गीति-गङ्गा एवं ३- गीताञ्जलिः (अनूदित) । आधुनिक गेय पद्धतिरूप४५ गीतियों का प्रथम सङ्कलन 'प्रेरणा' में है । संस्कृत-महिमा, राष्ट्र-गौरव, तरुण-प्रोत्साहन, प्रकृति-वर्णन आदि विषयों पर गीतियाँ इसमें माधुर्य एवं सारल्य के साथ अवतरित हैं । 'गीति-गङ्गा' में पूर्वधारा के साथ ही वर्तमान समस्याओं से भी सम्बन्ध बनाये हुए गीतियाँ मुखरित हुई हैं । 'गीताञ्जलि' कवीन्द्र रवीन्द्र की गीताञ्जलि का संस्कृतभाषात्मक गीति-रूपान्तर है ।

## (५) प्रकीर्णकाव्य-पञ्चक

१- वज्रमानवः, २- प्रशिक्षण- पाथेयम्, ३- लोकोक्तिलीलावती, ४- प्रासङ्गिक-पद्य-पीयूषम् तथा ५- चित्र-पद्यावली ।

'वज्रमानवः' की रना गौरी-शङ्कर शिखर पर की गयी यात्रा तथा विजय ध्वज फहराने की कथा को उजागर करती है । श्री तेन सिंह थापा इसके नायक हैं। 'प्रशिक्षण-पाथेयम्' में शिक्षाशास्त्र के अध्येताओं के लिए उपादेय शैक्षिक पद्यों का संग्रह किया गया है । डॉ०त्रिपाठी जब शिक्षाशास्त्र का अध्यापन करते थे तब इसका निर्माण किया गया था । 'लोकोक्ति-लीलावती' में सुभाषित रूप से विभिन्न भाषाओं में प्रचलित लोकोक्तियों को आधार बनाकर संस्कृत में रचे गये पद्यों का सङ्कलन है । 'प्रासङ्गिक-पद्य-पीयूषम्' का कलेवर जीवन के विभिन्न प्रसङ्गों पर लिखे गये पद्यों से मण्डित है । 'चित्र-पद्यावली' में चित्र-बन्ध के रूप में रचित पद्यों को समावृत किया गया है । डॉ० त्रिपाठी चित्रकाव्य-निर्माण में विशेष रुचि रखते हैं और आपका शोधकार्य भी इस पद्धति पर प्रशंसनीय रहा है ।

## (६) गद्यात्मक कृतिचतुर्दशी

१- महावीर-चरितामृतम् (भगवान् महावीर का जीवन-चरित्र), २- चित्रालङ्कार-चन्द्रिका-(चित्रालङ्कारों का शास्त्रीय विवेचन), ३- अभिनव-क्रीडा-

तरङ्गिणी-(विभिन्न आधुनिक क्रीडाओं का निरूपण), ४- श्रीमोहनचरितचम्पूः (प्राचीन जैनाचार्य का चरित), ६- चतुर्वेद-चरित-चम्पूः- (म0 म0 गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी जी का जीवनचरित), ७- राजेन्द्र-चन्द्रोदय-चम्पूः (म0 म0 राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद की जीवनी), ८- इन्दिरा-कीर्ति-कौमुदी (श्रीमती इन्दिरा गाँधी की जीवनी), ९- स्वस्त्ययनम्- (वैदेशिक विद्वानों की संस्कृत-सेवा का आकलन), १०- वन्दे इण्डियाम् (विनोदचम्पूः), ११- कालिदास-वरिवस्या (कालिदास साहित्य पर लिखित शोध-निबन्धों का सङ्ग्रह), १२- चित्रबन्ध-निबन्धाः (चित्रकाव्य पर लिखित शोध-निबन्धों का सङ्ग्रह) १३- सागर-प्रवासः (पं0 सूर्यनारायण व्यास के ग्रन्थ का संस्कृत अनुवाद), १४- कालिदास-प्रेरितः शिल्प-शृङ्गारः- (डॉ० श्री शिवराम मूर्ति की कृति का संस्कृत अनुवाद) ।

## (७) संस्कृतभाषा के ग्रन्थों का सम्पादन एवं उन पर भूमिकादि लेखन

१- चित्रबन्धावतारिका (म0 म0 रामावतार शर्मा के चित्रबन्धों का सङ्ग्रह), २- काव्यप्रवेशः (उपा0 श्री यशोविजयजी कृत २ उल्लासात्मक टीका सहित), ३- भारतीय नर-रत्न-समुच्चयः (पं0 सोमेश्वर व्यास लिखित नेतृ-चरित), ४- स्वामि-सन्निधिः (स्तोत्र-शतक), ५- भूदान-यज्ञ-गाथा (श्रीगणपति शुक्ल विरचि त), ६- श्रीरामदेवलीलामृत-कथा (पं0 कृष्णवल्लभ शास्त्री रचित), ७- महाकाल-सहस्रनाम-स्तोत्रम्- (प्राचीन-स्तोत्र), ८- भैरव-विलासः (श्रीवैद्यनाथ रचित), ९- नवग्रह-चरितम्- (एकाङ्की), १०- दानकेलि-कौमुदी भाणिका (सटीक-रूपगोस्वामिरचित), ११- धूर्तनर्तकम्- (सामराज दीक्षित प्रणीत), १२- श्रीदामचरितम् (सामराज दीक्षित प्रणीत), १३- आगम-मीमांसा (पं0 व्रजवल्लभ द्विवेदी के निबन्ध), १४- मनश्चिकित्सा-विज्ञान-भूमिका (डॉ० हरद्वारीलाल द्वारा रचित), १५- व्याख्यान-वल्लरी (व्याख्यान-संग्रह), १६- भाषण-भूषणम् (व्याख्यान-संग्रह), १७- आर्षभीयचरित-विजयोल्लास-महाकाव्यसङ्ग्रहः (उपा0 श्रीयशोविजय जी रचित), १८- साहित्य-शिक्षा-मञ्जरी (श्रीविजयधर्मधुरन्धरसूरिरचिता), १९- सत्याग्रह-नीतिकाव्यम् (१०८ श्रीसत्यदेव वासिष्ठ रचित), २०- भूगोल-भ्रम-भञ्जनी (मुनिश्री अशोकसागर कृत), २१- विज्ञान-वाद-विमर्शः (श्री अभय-सागरमणिविरचितम्), २२- सत्यशोधयात्रा (श्री अभयसागर मणि रचित). २३- सुभगोदय-स्तुतिः (श्रीगौडपादाचार्य रचित), २४- श्रीमहात्रिपुर-सुन्दरी-खड्गमाला (षोडशावरण-नामावली), २५- परास्तोत्र-षड्-रसामृतम् (परास्तोत्र एवं वाञ्छाकल्पलतादि), २६- यतिदण्डैश्वर्य-विधानम् (आद्य शङ्कराचार्य विरचित), २७- श्रीगोपालसपर्या-पद्धतिः (पौराणिक एवं तान्त्रिक-विधान युक्त), २८- नाट्य-

सर्वस्व-दीपिका- (मनीषी नारायणार्य सङ्कलित), २९-गीत-गणेश-काव्यम् (श्री मथुराप्रसाद वाजपेयी कृत), ३०- राघवाह्निकम्- (पं० सोम-नाथ व्यासकृत), ३१- रस-मञ्जरी (श्रीगङ्गाराम जडी कृत), ३२- माहेश्वर तन्त्र ३३- आपदुद्धारकवटुकभैरव-नामावली (वंशीधरी व्याख्यासहित), ३४- बहुरूप-गर्भ-स्तोत्र (तीन टीकाओं से युक्त), ३५- स्तोत्रावली- (उपा० श्रीयशोविजयजीरचित), ३६- कबीर-वाणी (बोधानन्दकृत संस्कृत-टीकासहित), ३७- श्रीनर्मदा- सहस्रनामार्चना, ३८- सत्य-नारायणकथा सप्ताध्यायी, ३९- पञ्चकाल-सन्ध्याविधिः, ४० ललिता-लक्षार्चन-विधानम् तथा ४१- दूतकाव्य माला आदि ।

## (८) शोध-प्रबन्ध-द्वय

१- संस्कृत-साहित्य में शब्दालङ्कार तथा २- शब्दालङ्कार-साहित्य का समीक्षात्मक सर्वेक्षण (क्रमशः पी- एच० डी० और डी० लिट्० के लिए) ।

## (९) संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन सहसम्पादन

१- मालव-मयूरः- (मासिक, प्रायः १९ वर्ष तक), २- शोध-प्रभा (त्रैमासिक, १० वर्ष तक) ।

सहसम्पादन- १- संस्कृत-रत्नाकर, २- संस्कृत-प्रचारकम् तथा ३- सङ्गमनी ।

## (१०) विभिन्न विशेषाङ्कों तथा स्मृति-ग्रन्थों का सम्पादन-

१- अध्ययन-माला, २- अन्वेषणा, ३- म० म० परमेश्वरानन्दशास्त्रि-स्मृतिग्रन्थः, ४- श्रीमहावीर-परिनिर्वाण-स्मृति-ग्रन्थः, ५- पञ्चम-विश्वसंस्कृत-सम्मेलन-विशेषाङ्कः ६-- षष्ठ-विश्वसंस्कृतसम्मेलन-विशेषाङ्कः, ७- म० म० गिरिधर्मशर्म-चतुर्वेद-जन्मशताब्द-स्मृतिविशेषाङ्कः, ८- एशियाड (क्रीडोत्सव) विशेषाङ्कः, ९- डॉ० राजेन्द्रप्रसाद-जन्मशताब्दस्मृति-विशेषाङ्कः, १०-श्रीमती इन्दिरागान्धी-श्रद्धाञ्जलि-विशेषाङ्कः आदि ।

## (११) शोध-प्रबन्धों का निर्देशन (उपाधि प्राप्त छात्र-छात्राओं के विषय और नाम)

१- आख्यान-साहित्ये पशु-पक्षिणः-डॉ० श्रीमती विजय जिन्दल

२- याज्ञवल्क्यस्मृतेर्बालक्रीडा-मिताक्षरयोस्तुलनात्मकमध्ययनम्- डॉ० कु० अल्पना शर्मा

३- अप्पयदीक्षितटीकामाश्रित्य यादवाभ्युदयमहाकाव्यस्य भाषानुवादः समीक्षणं

च - डॉ० रामसजीवन त्रिपाठी

४- क़ाम्बोडिया-देशस्य त्रिंशत्संस्कृताभिलेखानां सङ्कलनं हिन्द्यनुवादः समीक्षा च - डॉ० श्रीमती सरोज चौहान

५- जैनाचार्य-विरचित-पञ्च-विज्ञप्तिलेखकाव्यानां सम्पादनमनुवादः समीक्षा च डॉ० श्रीमती जया जैन

६- पातञ्जलयोगदर्शनस्य पारिभाषिकशब्दानां सङ्कलनं हिन्द्यनुवादः समीक्षा च- डॉ० श्रीमती आदर्शबाला

७- रावण - कणाद - भूधरभट्ट - वसवराजविरचितानां नाडीविज्ञानानां सम्पादनं हिन्द्यनुवादः समीक्षाः च- डॉ० ओम् प्रकाश शर्मा

८- श्रीमद्वाल्मीकिरामायणे भक्तितत्त्व-विमर्शः-डॉ० रामेश्वरदास सप्रा

९- आचार्य समन्तभद्रस्य संस्कृत-साहित्ये योगदानम्- डॉ० श्रीमती कुसुम जैन

१०- श्रीमद्भागवते धर्मशास्त्रम्- डॉ० प्रभाकर त्रिपाठी

११- श्रीमद्रूपगोस्वामिनः स्तवमालायाः समीक्षात्मकमध्ययनम्- डॉ० हरिदास शास्त्री

१२- शतपथ-ब्राह्मणे सङ्ग्रहकाण्डस्य विषयाणां समीक्षात्मकमध्ययनम्- डॉ० कु0 स्वर्णकान्ता (वेदशक्ति)

इनके अतिरिक्त प्रायः १० शोधार्थी आज भी आपके निर्देशन में उज्जैन एवं इन्दौर के विश्वविद्यालयों में शोध-कार्य कर रहे हैं ।

डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी ने विगत ५० वर्षों में संस्कृत सेवा में तत्पर रहते हुए नाट्य-निर्देशन, संस्कृत वार्ता-प्रसारण, वार्षिक पत्रिका सम्पादन, हिन्दी और गुजराती में लेखन, प्रायः १०० से अधिक शोध-निबन्ध और यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र के ग्रन्थों का प्रणयन एवं अनुवादकार्य भी बहुधा किये हैं । हिन्दी-कविताएँ भी आप की स्पृहणीय हैं तथा अब ६५ वर्ष की आयु पूर्ण करके ६६ वें वर्ष में भी निरन्तर लेखन में लगे रहते हैं ।

# 'अभिराज' डॉ० राजेन्द्र मिश्र की काव्य-साधना

कु0 गीता चन्सौरिया

सम्प्रति राष्ट्र भाषा हिन्दी के मार्ग में अनेक अवरोध एवं आशंकायें उपस्थित हैं जिनके दूरीकरण के लिए विभिन्न विद्वानों एवं मनीषियों के अनवरत प्रयास से अनेक समस्याओं का समाधान हो रहा है । राष्ट्र-भाषा हिन्दी की जननी देववाणी संस्कृत का अजस्र आश्रय पाकर हिन्दी को उत्तरोत्तर समुचित स्थान प्राप्त हुआ है। संस्कृत ऐसी समृद्ध भाषा है, जिसके अनन्त कोष से विज्ञान टेक्नालाजी एवं अन्य विभिन्न क्षेत्रों के लिये नूतन शब्दों का निर्माण किया जा रहा है और एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की जा रही है । संस्कृत की इस परम्परा में अद्यतन कवियों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है । विदेशियों ने इस भाषा को मृत भाषा (Dead Language) कहने का दुस्साहस किया जिसका मुहतोड़ उत्तर देने के लिए हमारे अद्यतन कवि प्राण-पण से संलग्न है । उन्होंने अपने लेखन से यह सिद्ध कर दिया है कि संस्कृत एक जीवित भाषा है, उसमें भी विकास की अनन्त सम्भावनायें हैं और वह चिर-पुरातन होती हुई भी चिर नवीन होने की क्षमता रखती है ।

डॉ0 राजेन्द्र मिश्र साम्प्रतिक संस्कृत कवियों में मूर्धन्य कवि जाने जाते हैं। उन्होंने द्वादशाधिक महत्त्वपूर्ण काव्य ग्रन्थों की रचना करके यह सिद्ध कर दिया है कि संस्कृत जीवित भाषा है और लोक मानस को संस्पृष्ट करके वह भी जन जीवन को उसी प्रकार आच्छादित कर सकती है, जिस प्रकार आधुनिक भारतीय आर्य भाषायें । उन्होंने संस्कृत में जो अभिनव प्रयोग किये हैं उनमें कव्वाली, गज़ल तथा लोकगीतों के संस्कृत प्रयोग का महत्त्व किसी से छिपा नहीं है । इनके अतिरिक्त डा0 जगन्नाथ पाठक, डा राधावल्लभ त्रिपाठी, डा0 विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्र और डा0 रमाकान्त शुक्ल जैसे अनेक उत्कृष्ट कवि हैं जिन्होंने कव्वाली, गज़ल, लोकगीत तथा विभिन्न अभिनव गीत ही नहीं अपितु ''सॉनेट'' जैसे विदेशी छन्द को भी संस्कृत में बड़ी सफलता के साथ ढालकर यह सिद्ध कर दिया है कि संस्कृत एक शाश्वत भाषा है, इसकी जिजीविषा में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं है । इसमें अद्यतन हास्य और व्यंग्य भी विद्यमान हैं जो श्रोताओं और पाठकों को दूर-दूर तक प्रभावित करता है । इस क्षेत्र में डा0 राजेन्द्र मिश्र का नाम सर्वोपरि है । उनमें नाम के पूर्व ''अभिराज'' विशेषण पूर्णतया सार्थक है । ''अभितः राजते इति अभिराजः'' इस व्युत्पत्ति के

अनुसार जब हम उनके काव्य कदम्ब का मूल्यांकन करते हैं तब यह लगता है कि चाहे गद्य काव्य हो या पद्य काव्य, चाहे रूपक हो या प्रबन्ध काव्य, चाहे गीत काव्य हो या अन्य काव्य, सभी क्षेत्रों में ''समम् लीलायते भारती'' वाली उक्ति चरितार्थ होती है। उनका ज्ञान साहित्य, व्याकरण, दर्शन, शोध, समीक्षा, व्याख्यान माला, काव्य रचना, लोकगीत, लेखन आदि विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक एवं विस्तृत है।

मेरी दृष्टि में वे संस्कृत के एक सुमधुर एवं शाश्वत कवि हैं। क्योंकि काव्य के क्षेत्र में उनका हृदयपक्ष जितना कोमल, सरस एवं सहज रूप में विद्यमान है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। उनके मृद्वीका शीर्षक काव्य में गीतों का बड़ा ही सुन्दर, सहज एवं सहृदय संवेद्य रूप विद्यमान है। यथा-

व्यासाम्बुधिजृम्भणविधुलेखे ! दीपय जीवनगेहम् ।
राधामाधवचरणकमलयुगमधुना सज्जय देहम् ।।
इन्दिन्दिरमाणवकसन्निभो ननु निरपेक्षं सहजम् ।
भ्रमन् रौमि सततं भवाटवीमध्येऽहं प्रतिकुसुमम् ।।

यहाँ पर यह तो भारती की नमस्या का सरस उदाहरण प्रस्तुत किया है जिसमें शान्त रस की सरसता दिग्दर्शित है। प्रकृति चित्रण का भी एक सुन्दर गीत देखिये यथा-

रिम्झिम् वर्षति सजलजलधरो
नृत्यति केकी कानने ।।
गर्जति धावति नदति च कूर्दति
तारापथे पयोदो बाले ।
अयि भोः शिशुरिव नटति जलधरो
नृत्यति केकी कानने ।। [२]

उक्त पंक्तियों में बिम्बविधान, कोमलकान्त, पदावली, क्रियात्मक सौन्दर्य, उपमा माधुर्य इन सभी विशेषताओं के साथ पद सौन्दर्य और नाद सौन्दर्य को लेकर कवि ने जिस रसात्मकता की सृष्टि की है वह जयदेव और विद्यापति के प्रकृति चित्रण को भी तिरस्कृत करने में सक्षम है।

---

१- मृद्वीका, शीर्षक नमस्या, द्वितीयगीतिः अभिराज डा0 राजेन्द्र मिश्र

२- मृद्वीका, पृष्ठ संख्या २९ शीर्षक ऋतुश्रीः विंशतितमी गीतिः

शृंगार के क्षेत्र में भी इनके गीत अद्वितीय सिद्ध होते हैं यथा-

तव चिन्तया विगता निशा तव चिन्तया विगतं दिनम् ।
तव काम्यया महिता निशा तव काम्यया महितं दिनम् ॥
स्नेहो विना क्व नु वर्तिकाम् चन्द्रो विना क्व नु चन्द्रिकाम्।
हृदि चिन्तितैरिति मामकं तव चर्यया विगतं दिनम्[१]॥

पारम्परिक विषयों के अतिरिक्त कवि ने राजनीति के क्षेत्र में भी साधिकार प्रवेश किया है। राजनीति के विषय में कवि का व्यंग्यप्रधान दृष्टिकोण बड़ा ही सरस लगता है। यथा-

आहिण्डनं पदातिः कृतवाननारतं यः ।
आरोह्य तं विमानं प्रहिणोति राजनीतिः ॥
बहुगुणमपि प्रमूढं चरणञ्चं भूरि पङ्गुम् ।
कमलापतिं दरिद्रं प्रकरोति राजनीतिः[२] ॥

इनका एक अन्य ग्रन्थ ''आर्यान्योक्तिशतक'' के नाम से प्रसिद्ध है जिसमें आर्या छन्द का अवलम्बन लेकर कवि ने आधुनिक कवियों में अन्योक्ति के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया है। उल्लेखनीय है कि डा० मिश्र ने अन्योक्ति के उद्भव तथा विकास पर डी० फिल्० स्तर का शोध प्रबन्ध लिखा है जिससे उस क्षेत्र में उनका प्रगाढ़ अध्ययन उक्त कवित्व की पृष्ठभूमि बन गया है। इसका भी एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

मा कुरु पिक ! मृदु नादं नियमय कण्ठं च बलिभुजां वसतौ ।
दृष्टिपथागतिमात्रं भविता त्वन्नीडनाशार्थम्[३] ॥

''अभिराजसप्तशती'' इनका एक ऐसा है ग्रन्थ जिसमें देशप्रेम और राष्ट्रीयता से सम्बद्ध एक शतक लिखा गया है जो अपने में अनोखा है। कवि की खुली दृष्टि ने जो देखा उसे निर्भीकता के साथ लिखा है यथा-

---

१- मृद्वीका, शीर्षक रूपश्रीः, दशमी गीतिः, अभिराज डा० राजेन्द्र मिश्र

२- मृद्वीका, शीर्षक राष्ट्रश्रीः, चत्वारिंशत्तरमी गीतिः, अभिराज डा० राजेन्द्रमिश्र

३- आर्यान्योक्तिशतकम् पृष्ठ सं० २६ श्लो० सं० ४०

श्वेतवस्त्रधरा एते सांसदाश्च विधायकाः ।

भ्रष्टाचारकलङ्काङ्काः देशद्रोहविपोषकाः[१] ।।

इन्होंने पुरातन सुभाषितों को नये संदर्भों में व्याख्यायित करने का अद्भुत कार्य किया है जिसमें हास्य और व्यंग्य का सुन्दर पुट विद्यमान है यथा-

अजातमृतमूर्खाणां वरमन्त्यो न चाद्यकौ ।

पुन्नामनरकत्राणम् अन्यथाऽसम्भवं भवेत्[२] ।।

इसी प्रकार के श्लोक सुभाषितोद्धारशतकम् में संगृहीत है । इस ग्रन्थ के ''चतुर्थी-शतकम्'' में कवि ने व्याकरण विषय को लेकर बड़े ही सुन्दर एवं सार्थक व्यंग्य प्रस्तुत किये हैं । व्याकरण में यह नियम है कि जहाँ पर कृदन्त प्रत्यय होता है कहीं-कहीं पर सर्वापहारी लोप होता है, कवि ने लोकजीवन में उसकी कृतघ्न संज्ञा दी है क्योंकि वह भी सर्वापहार लोप करता है यथा-

सर्वापहारलोपेषु यस्य चण्डः पराक्रमः ।

तस्मै चञ्चत्कृदन्ताय कृतघ्नाय नमो नमः[३] ।।

कवि के ''नवाष्टकमालिका'' ग्रन्थ में काव्यात्मक सौन्दर्य, अपनी चरमशिखा पर पहुँच गया है । निम्नलिखित उद्धरण में कवि का काव्य सौन्दर्य अवलोकनीय है। जहाँ पर वर्णन-मैत्री, शब्द सौन्दर्य, आलंकारिक छवि, ध्वनि और व्यञ्जना का चमत्कार और सर्वोपरि भक्ति रस के अद्वितीय प्रवाह की छटा विलोकनीय है । यथा-

कलक्वणितवल्लकीविविधरागरागायितम्

अमन्दगतिरोदरप्रमदगुञ्जितैर्व्यञ्जितम् ।

अशेषकलिकल्मषव्रततिकालकालान्तकं

तनोतु सुरभारती दृशि सदैव मोदाङ्कुरम्[४] ।।

---

१- अभिराजसप्तशती, शीर्षक, नव्यभारतशतकम् श्लो0 सं0 २१

२- अभिराजसप्तशती, शीर्षक, सुभाषितोद्धारशतकम् श्लो0 सं0 २५

३- अभिराजसप्तशती, शीर्षक, चतुर्थीशतकम् श्लो0 सं0 २१.

४- नवाष्टकमालिका, शीर्षक मरन्दमाधुरीस्तवनम् श्लोक सं0 १ डा0 मिश्र

डा0 मिश्र जीवन की व्यापक अनुभूति से ओतप्रोत हैं । अनूभुति के क्षेत्र में उनमें जितनी व्यापकता है, अभिव्यक्ति के क्षेत्र में उतनी ही स्पष्टता एवं सरसता भी । यथा-

यदवधि कलितमिदं तव रूपम्

नन्दनवनजविबुधतरुसुममिव निखिलयुवतिमुखभूपम् ।।

तदवधि सुतनु ! हृदयहरिणोऽयं ताम्यति भवदनुलीनः[१] ।।

इस प्रकार प्रेम के क्षेत्र में उनकी व्यापक अनुभूतियाँ हैं और उन अनुभूतियों को वाणी देने में कवि ने बड़ी कुशलता से काम लिया है । वियोग की परम्परित दस दशाओं में से अधिकांशतः कवि ने स्मृति चित्रण को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। उन्होंने शत शत गीतों में वियोग श्रृंगार का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है जो कालिदास जैसे कवियों को भी आत्मसात् करने की चेष्टा करता है ।

मिश्र जी लोक प्रचलित कहरवा, कजरी, आदि गीतों को संस्कृत में पिरोकर नवीनता का वरण करते हैं । कहारी गीत का एक उदाहरण प्रस्तुत है जिसे कवि ने ''स्कन्धहारीयम्'' का अभिधान दिया है । यथा-

अमृतं वर्षति नयनपयोदो हृदि जनयत्यनुरागम्

अनुरागोऽयं सृजति युगलकं सुखमन्दिरमविभागम्

भाति हवने हिरण्मयी हरेस्समर्चना

भाति भवने वधूटी षोडशी सदंगना[२] ।।

डा0 मिश्र ने अन्य भाषाओं के छन्दों को भी अपनी संस्कृत कविता में स्थान दिया है । वे जहाँ हिन्दी के छन्द दोहा, सोरठा, घनाक्षरी आदि को स्थान देते हैं वहीं उर्दू की गज़ल और कव्वाली को भी संस्कृत की पंक्ति में प्रेमपूर्वक बैठाते हैं । कव्वाली का एक उदाहरण प्रस्तुत है यथा-

प्रीतिरास्वद्यते प्राणैः

गीतिरास्वद्यते कर्णैः

शक्तिरास्वाद्यते देहैः

भक्तिरास्वद्यते स्नेहैः

---

१- वाग्वधूटी, शीर्षक यदवधि कलितमिदं तव रूपम्, डा0 मिश्र

२- वाग्वधूटी, शीर्षक स्कन्धहारीयम्, पृष्ठ सं0 २९ डा0 मिश्र

घनान्धकारे बलिदीपिकेव बलाहके चञ्चलचञ्चलेव ।
मधौ प्रफुल्ला नवमालिकेव प्रतीयते प्रीतिरियं पुराणी ।।[१]

निष्कर्ष यह है कि अभिराज डा० राजेन्द्र मिश्र आधुनिक संस्कृत काव्य जगत् के ''राजेन्द्र'' हैं । उन्होंने परम्परा के साथ आधुनिक युगबोध को अपनी प्रबल लेखनी से जो अभिव्यक्ति दी है उसके लिये वे शताब्दियों तक अभिनन्दनीय रहेंगे । उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में अपनी विशिष्ट प्रतिभा का प्रबल परिचय दिया है । राष्ट्रीयता, देश-प्रेम, आधुनिक समस्यायें, वर्तमान समाज जीवन की विभीषिकायें और विद्रूपतायें लेकर जिस काव्य का निर्माण किया है वह संस्कृत को जीवित भाषा का प्रमाण प्रस्तुत करता है । उनमें जहाँ एक ओर देवी देवताओं में आस्था है वहाँ दूसरी ओर यथार्थ पर भी दृष्टि है । जनता के शोषक आधुनिक नेताओं को यथार्थ की दृष्टि से देखते हैं और व्यंग्य करने में वे इतने सशक्त हैं कि बड़े से बड़े अधिकारी और समाज सेवी पर भी अपना व्यंग्यबाण छोड़ने से नहीं चूकते । काव्य के क्षेत्र में भी उनके विभिन्न शास्त्रीय ज्ञान का प्रकाश विद्यमान है । वे काव्य के अन्तर्गत व्याकरण, काव्यशास्त्र, दर्शन, शक्ति, मीमांसा, तर्क आदि का पुट इस प्रकार रखते हैं जिससें अर्थ की अभिव्यक्ति में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं आती है । उनके गीत इतने कोमल और मधुर हैं कि इनके पढ़ने से अनेक पाठक जयदेव और विद्यापति को भी भूल जाते हैं । साहित्य सर्जना, शोध समीक्षा और गीत विधान में उनकी त्रिवेणी सतत अवगाहनीय है ।

अस्तु, अभिराज डा० राजेन्द्र मिश्र अद्यतन संस्कृत काव्य के मूर्धन्य मनीषी हैं। ''कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः'' यह वाक्य ऐसे ही सफल कृतिकार के लिये उपयुक्त है । वस्तुतः डा० मिश्र का काव्य-साहित्य संस्कृत-जगत् की अमूल्य निधि है । यदि उन्हें आधुनिक जगत् का कालिदास कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति न होगी ।

---

१- मृद्वीका, शीर्षक प्रकीर्णम्, पञ्चाशत्तमी गीतिः, डा० मिश्र

# स्वातन्त्र्योत्तर कविता के दो राष्ट्रवादी स्वर

डॉ० चन्द्रशेखर तिवारी

संस्कृत कविता में प्राचीन काल से ही राष्ट्रवादी स्वर मिलता रहा है, इसकी प्राचीनतम सीमा वेद मन्त्रों का स्पर्श करती है। अथर्ववेद का पृथ्वी-सूक्त इसका श्रेष्ठतम निदर्शन हैं, जिसमें पृथ्वी को जीवन्त ममतामयी माँ के रूप में देखा गया है- **''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः''** अर्थात् पृथ्वी मेरी माँ है और मैं उसका बेटा हूँ यह उद्घोषणा भी सर्वप्रथम अथर्ववेद में ही देखने को मिलती है।

आगे चलकर यही राष्ट्रीय भावना रामायण,महाभारत एवं पुराणों में भी प्राप्त होती है। इन ग्रन्थों में न केवल प्राचीन भारतवर्ष की दूरतम सीमाओं का उल्लेख है बल्कि भुवनकोष के सन्दर्भ में भारत के समस्त पर्वतों, नदियों, सरोवरों, तीर्थों, जनपदों, तथा शिल्प-केन्द्रों का अत्यन्त विलक्षण का वर्णन मिलता है। लक्ष्मण के प्रति कही गयी राम की एक उक्ति तो जन्मभूमि प्रेम का एक चिरंतन आदर्श बन गयी है-

अपि स्वर्णमयी लङ्का न मे लक्ष्मण रोचते ।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।।

परवर्ती युग में यद्यपि देश छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था और संस्कृत के कवि भी राज्याश्रित होने के कारण अपने जनपदों की सीमाओं में बँधे थे तथापि उन्होंने पौराणिक कथाओं के वर्णन प्रसंग में समूचे भारत का अत्यन्त हृद्य वर्णन प्रस्तुत किया है। आभिजात्य कविता के उत्कर्ष काल में भास एवं कालिदास ने राष्ट्रीयता का विशेष पल्लवन किया। महाकवि कालिदास ने तो जान बूझकर ऐसे कथानक चुने हैं कि उनकी पृष्ठभूमि ही भारत की भौगोलिक,सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक एकता पर आधारित है। कुमारसंभव का हिमालय वर्णन, रघुवंश का अज-स्वयंवर, रघु-दिग्विजय वर्णन और राम की लङ्का यात्रा, मेघदूत में मेघ का रामगिरि से अलकापुरी तक का यात्रा-पथ ये समस्त कथांश कालिदास की राष्ट्रीय भावना का ही सम्पोषण करते हैं। भारतवर्ष के वैभव एवं गौरव को चित्रित करने की यह परम्परा कालिदास के युग से लेकर ब्रिटिश शासनकाल तक अक्षुण्ण रूप से पल्लवित होती रही है।

परन्तु १५ अगस्त १९४७ ई0 की मध्य रात्रि में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद कश्मीर से कन्याकुमारी तक विकसित भारत राष्ट्र जिन अर्थों में स्वतन्त्र हुआ है- एक अखण्ड राष्ट्र बना है-उसकी यह स्थिति सर्वथा नवीन है। आज कश्मीर से कन्या कुमारी तक तथा पंजाब से असम तक सम्पूर्ण भारत एक अखण्ड राष्ट्र है और एक राजनयिक सत्ता के अधीन है, इस विशाल लोकतांत्रिक स्वतन्त्रता का भागीदार होने के कारण आज राष्ट्रीय-भावना का भी परिप्रेक्ष्य बदल गया है क्योंकि आज का कोई भी कवि भारत के विषय में खण्ड दृष्टि से नहीं सोचता। हमारी दृष्टि समूह का स्पर्श करती है।

स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत-कविता में भी स्वतन्त्र भारत के इस अभिनव कलेवर का भरपूर वर्णन हुआ है। अनेक महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक एवं अन्य विधा की संस्कृत कृतियाँ, इस विषय पर लिखी गयी हैं। डॉ0 रेवाप्रसाद द्विवेदी (स्वराज्यसम्भवम् ) डॉ० बी0 आर शास्त्री (प्रबुद्धभारतम्) तथा राष्ट्रीय नेताओं पर महाकाव्य लिखने वाले अनेक यशस्वी कवि इस दिशा में अग्रसर हुए हैं। राष्ट्रीय विचारधारा से सम्बन्द्ध स्फुट कविताएँ तो प्रायः शताधिक संस्कृत कवियों ने लिखी हैं जिनमें प्रो0 श्रीनिवास रथ, डॉ0 कमलेश दत्त त्रिपाठी, डॉ0 भास्कराचार्य त्रिपाठी, डॉ0 राधावल्लभ त्रिपाठी, डॉ0 जगन्नाथ पाठक, डॉ0 हरिराम आचार्य, डॉ0 मल्लिकार्जुन परड्डी, पं0 परीक्षित शर्मा आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

परन्तु प्रस्तुत आलेख में मैं विदज्जगत् का ध्यान स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत कविता के दो सर्वाधिक उदात्त एवं प्रमुख राष्ट्रीय स्वरों की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ, ये स्वर हैं डॉ0 रमाकान्त शुक्ल एवं अभिराज डॉ0 राजेन्द्र मिश्र।

डॉ0 रमाकान्त शुक्ल सम्प्रति राजधानी कालेज, दिल्ली में हिन्दी प्रवाचक हैं तथा डॉ0 राजेन्द्र मिश्र इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में प्रवाचक। इन दोनों कवियों में अद्भुत साम्य भी हैं। दोनों प्रायः समवयस्क हैं, कंठ के धनी हैं तथा संस्कृत काव्य-जगत् में समान रूप से लोक-प्रिय हैं। दोनों कवियों की पारिवारिक पृष्ठभूमि भी एक जैसी है। खुर्जा (उत्तर प्रदेश) में जन्मे डॉ0 रमाकान्त शुक्ल के पिता श्री आचार्य ब्रह्मानन्द शुक्ल उद्भट संस्कृतज्ञ एवं 'गान्धिचरितम्' काव्य के यशस्वी रचनाकार हैं, रमाकान्त शुक्ल के अन्य तीन भाई डॉ0 कृष्णकान्त शुक्ल (बरेली कालेज, बरेली) डॉ0 उमाकान्त शुक्ल (सनातनधर्मकालेज मुजफ्फरनगर) तथा डॉ० विष्णुकान्त शुक्ल (जे० वी० जैन कालेज, सहारनपुर) भी संस्कारतः संस्कृत के प्रतिभाशाली कवि एवं रचनाकार हैं। अभिराज डॉ0 राजेन्द्र मिश्र के पितामह स्वर्गीय पं0 रामानन्द मिश्र श्रीमद्भागवत के पारंगत विद्वान् एवं पराम्बा भगवती के अनन्य उपासक थे, डॉ0 मिश्र के पिता श्री पं0 दुर्गा प्रसाद मिश्र जी भी मात्र २६ वर्ष की अवस्था में दिवंगत हुए परन्तु उस समय तक भी वह संस्कृत

के ही अध्ययन में दत्तचित्त थे। पितृव्यचरण डॉ0 आद्या प्रसाद मिश्र संस्कृत-जगत् में अपनी विद्वत्ता तथा लेखन के लिए प्रख्यात हैं। डॉ0 मिश्र के ज्येष्ठ भ्राता डॉ0 देवेन्द्र मिश्र एवं कनिष्ठ भ्राता श्री सुरेन्द्र मिश्र जी भी विभिन्न संस्थाओं में संस्कृत के ही अध्यापक हैं।

डॉ0 रमाकान्त शुक्ल ने अपनी राष्ट्रवादी कविताओं द्वारा देश-विदेश में अक्षय कीर्ति अर्जित की है। 'भाति मे भारतम्', 'जय भारतभूमे' तथा 'भारतजनताऽहम्'- डॉ0 रमाकान्त शुक्ल को राष्ट्रीय विचारधारा से ओत-प्रोत काव्य हैं। 'भाति मे भारतम्' जिसका प्रसारण दिल्ली दूरदर्शन केन्द्र से सम्पन्न हो चुका है, की रचना कवि ने २४ दिसम्बर ७८ से १५ अगस्त १९८० तक के अन्तराल में की। इसमें 'स्रग्विणी छन्द' में १०८ श्लोक हैं। यह रचना भारतवर्ष के गौरवमय अतीत, वैभवमय वर्तमान तथा मंगलमय भविष्य के प्रायः सभी पक्षों का संस्पर्श करती है। डॉ0 शुक्ल की दूसरी कृति 'जय भारतभूमे' उनकी सात राष्ट्रवादी कविताओं का संग्रह है। इसी प्रकार 'भारतजनताऽहम्' शीर्षक काव्य भी भारतीय लोकतन्त्र का एक ऐसा उद्घोष है जो समूचे विश्व को भारत की ओर आकृष्ट करता है।

अभिराज डा0 राजेन्द्र मिश्र की राष्ट्रवादी कृतियाँ उनके कर्तृत्व की विपुलता के कारण अनेक रूपों में विभक्त हैं। उन्हें तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-

१- स्वतन्त्र खण्डकाव्य

२- राष्ट्रीय एकांकी

३- राष्ट्रीय स्फुट गीत

डॉ0 मिश्र के स्वतन्त्र काव्यों में प्रमुख हैं- 'नव्यभारतशतकम्', 'प्रभातमङ्गलशतकम्' तथा 'भारतदण्डकम्'। ये तीनों काव्य अभिराजसप्तशती में संगृहीत हैं।

राष्ट्रीय विचारधारा पर आश्रित एकांकियों में 'समर्चितमृत्तिकम्' तथा 'छलिताधमर्णम्' नाट्यपञ्चामृतम् संग्रह में संकलित हैं। 'समर्चितमृत्तिकम्' में सन् ६५ भारत-पाकयुद्ध में डोगराई मोर्चे पर प्राणाहुति देने वाले मेजर आशाराम त्यागी का सैन्य-अभियान चित्रित किया गया है। इसी प्रकार 'छलिताधमर्णम्' में भी दहेज जैसी राष्ट्रीय समस्या को उपन्यस्त किया गया है। 'चतुष्पथीयम्' में संकलित 'इन्द्रजालम्' तथा 'निर्गृहघट्टम्' एकांकी भी राष्ट्रीय समस्या से ही जुड़े हैं। इसी प्रकार 'रूपरुद्रीयम्' में संकलित 'अभीष्टमुपायनम्' में दहेज-समस्या को, 'पुनर्मेलन' में दस्यु-समस्या को, 'कन्यामाणिक्यम्' में जाति-समस्या को और 'रक्ताभिषेकम्' में पृथक्तवाद तथा देवी इन्दिरा के प्राणोत्सर्ग को राष्ट्रीय परिवेश में रेखांकित किया गया है।

खण्डकाव्य एवं नाट्य के अतिरिक्त अभिराज डॉ0 राजेन्द्र मिश्र ने अब तक ५० से भी अधिक स्फुट गीत राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत लिखे हैं। काव्य संग्रह 'मृद्वीका' का 'राष्ट्रश्रीः' खण्ड 'श्रुतिम्भरा' का 'राष्ट्रध्वनि' शीर्षक खण्ड एवं 'वाग्वधूटी' की अनेक कविताएँ भारत के ही अतीत,वर्तमान तथा भविष्य से जुड़ी हैं। इस प्रकार डॉ0 राजेन्द्र मिश्र ने वाङ्मय की विभिन्न विधाओं के माध्यम से राष्ट्रीय विचारधाराओं को पल्लवित करने का यत्न किया है। 'साहित्य अकादमी' द्वारा पुरस्कृत कथाकृति 'इक्षुगन्धा' एवं सद्यः प्रकाशित कथा संग्रह 'रांगडा' की अधिकांश कहानियाँ भी राष्ट्रीय परिवेश से जुड़ी हैं।

डॉ0 रमाकान्त शुक्ल ओज एवं शौर्य के कवि हैं। वे राष्ट्रीय विचारधारा के हस्ताक्षर कवि हैं और राष्ट्रीय गौरव के ही अनुकूल उनका सिंहनादोपम स्वर भी है। 'स्रग्विणी छन्द' पर उनका विशेष अधिकार देंखते हुए ही उन्हें कवि समवाय में 'स्रग्विणीराज' के रूप में पहचाना जाता है। दूसरी ओर अभिराज डॉ0 राजेन्द्र मिश्र धीर, गम्भीर, मानवीय एवं राष्ट्रीय संवेदनाओं के माधुर्य एवं प्रसाद गुण में पारंगत कवि हैं। वे मूलतः कोमल भावनाओं एवं मर्मस्पर्शी अनुभूतियों के कवि हैं; उनकी राष्ट्रवादी कविताओं में भारत के अनगढ़ वर्तमान के प्रति वेदना भी है साथ ही साथ गिरे हुए राष्ट्रीय मूल्यों को पुनः बचा लेने का आवाहन स्वर भी है। डॉ0 शुक्ल का राष्ट्रवादी स्वर उद्भ्रान्त मेघों का गर्जन है जिसमें भावनाओं की बिजली चमकती है और कभी-कभी उपालम्भों एवं धिक्कारों के वज्रपात भी होते हैं। अभिराज डॉ0 मिश्र का राष्ट्रवादी स्वर धीर गम्भीर सागर की शीतल जलराशि है परन्तु उसके अन्तराल में भी निरन्तर वाडवाग्नि दहकती है और कल्लोलों के घात-प्रतिघात उठते एवं गिरते हैं। इस प्रकार डॉ0 शुक्ल एवं डॉ0 मिश्र मार्ग एवं शैली की दृष्टि से थोड़े भिन्न होते हुए भी एक ही लक्ष्य तक पहुँचने वाले बटोही जान पड़ते हैं। राष्ट्र डॉ0 रमाकान्त शुक्ल का काव्य सर्वस्व है परन्तु डॉ0 राजेन्द्र मिश्र की काव्ययात्रा का सर्वाधिक रुचिकर पड़ाव है। कुछ उद्धरणों के माध्यम से मैं दोनों यशस्वी कवियों की राष्ट्रीय विचारधारा को स्पष्ट करना चाहूँगा।

''जय भारतभूमे', काव्य में डॉ0 शुक्ल पवित्र भारत भूमि के विविध प्राकृतिक उपादानों की यशोगाथा प्रस्तुत करते हैं:-

गंगायमुनाकावेरीकृष्णागोदाचलवीचिंयुते !

शिप्राशाबरमतीनर्मदागण्डकतुङ्गतरङ्गयुते !

शोणचनाबविपाशासरयूब्रह्मपुत्रकल्लोलकरे !

जय जय जय हे भारतभूमे ! जय जय जय भारतभूमे! ।।

वाग्वधूटी के 'वन्दे सदा स्वदेशम्' शीर्षक गीत में डॉ0 राजेन्द्र मिश्र ने भारतभूमि

के पवित्र गौरव बिन्दुओं का स्तवन किया है-

गंगा पुनाति भालं रेवा कटिप्रदेशं
वन्दे सदा स्वदेशम्
एतादृशम् स्वदेशम् ।।
काशीप्रयागमथुरावृन्दाटवीविशालाः
द्वारावतीसुकाञ्चीविदिशादितीर्थमालाः
सम्भूषयन्ति कामं यस्य प्रशान्तवेषम्
वन्दे सदा स्वदेशम्
एतादृशं स्वदेशम् ।।

दोनो ही कवि भारत के प्रहरी देवात्मा हिमालय एवं समुद्र के प्रति श्रद्धावनत है-

विन्ध्यहिमालयसह्यमलयपारसगिरिनारावलीधरे,
जय जय जय हे भारतभूमे जय जय जय भारतभूमे ।।

(डॉ0 रमाकान्त शुक्ल)

अचलो नु देवतात्मा वसुधाऽपि रत्नगर्भा
कुलिशायते यदस्थि प्रचुरं वनी सुदर्भा
केचिन्नमन्ति गिरिशं केचिच्च शालुवेशम् ।
वन्दे सदा स्वदेशम् ।।

(डॉ0 राजेन्द्र मिश्र)

दोनों ही कवि भारतीय लोकतन्त्र के विविध पक्षों का चित्रण करते हैं-

भिन्नजातिकुलधर्मवर्णलोकैक्यापादनयत्नपरे !
लोकतन्त्रपरिरक्षणशीले ! अशरणशरणविधानकरे ।।

(डॉ0 रमाकान्त शुक्ल)

डॉ0 राजेन्द्र मिश्र भी एक ऐसे ही लोकतन्त्र की परिकल्पना करते हैं जिसमें सर्वधर्मसमन्वय हो, साथ ही साथ जिसमें जन जन में एकता हो । मृद्वीका के एक गीत में डॉ0 मिश्र लिखते हैं-

जातिधर्मभारतीपृथक्त्वधर्षितम्

एकसूत्रकल्पितं तथापि जीवितम्

लोकतन्त्रभावनाभृतम्

मामकं तदेव भारतम् ।।

आज का भारत राजनीतिक षड्यन्त्रों और जातीय विद्वेष की भावना से आक्रान्त हो उठा है, आज भी देश व्याधि,शोषण एवं अन्यान्य राष्ट्रीय समस्याओं से ग्रस्त है। दोनों ही कवि राष्ट्र की इस दुरवस्था से चिन्तित हैं, दुःखी हैं । परन्तु दोनों ही कवियों को भारत के मङ्गलमय भविष्य की आशा है-

सन्तु दोषा अनेकेऽत्र कैश्चिन्मताः

किन्तु नाहं प्रपश्यामि तान् मन्दधीः ।

वन्दनीयं मया कीर्तनीयं मया

मोदतां वर्धतां राजतां भारतम् ।।

शोषितो नात्र कश्चिद् भवेत् केनचिद्

व्याधिना पीडितो नो भवेत् कश्चन ।

नात्रि कोऽपि व्रजेद् दीनतां हीनतां

मोदतां मे सदा पावनं भारतम् ।।

(डॉ0 रमाकान्त शुक्ल)

भस्मासुर इव शिवं स्वतन्त्रम्

दग्धुं धावति किल जनतन्त्रम्

स्वार्थान्धता गिरिजया छलिता नेतारो विवशाः

म्रियते जिजीविषा ।।

(डॉ0 राजेन्द्र मिश्र,मृद्वीका)

दोनों कवियों ने भारत के यशोगान के साथ भारतीय समाज की दुष्प्रवृतियों को भी सामने रखा है ।'नव्यभारतशतकम्' में डॉ0 मिश्र गौतम बुद्ध से लेकर स्वतन्त्रता प्राप्ति तक का संक्षिप्त इतिहास देते हुए आज की घटिया राजनीति को राष्ट्र के पतन के लिए जिम्मेदार ठहराते हैं । कवि की वाणी में जहाँ व्यंग्य का प्रहार है । वहीं पश्चात्ताप एवं वेदना की आग भी है;फलतः डॉ0 मिश्र बड़े साहस के साथ आज के चरित्रहीन नेताओं को फटकारते भी हैं ।

आसन्दिकैकरक्षार्थं राजनीतिविशारदाः ।

मौढ्यशाठ्यग्रहग्रस्ता विक्रीणन्ति धरामिमाम् ।।

आचारसंहिता लुप्ता छिन्नो धर्ममहीरुहः ।

सामाजिकसदाचारो बन्धुबान्धवसौहृदम् ।।

अधरोत्तरविवेकः कार्याकार्यविनिर्णयः ।

कुलग्रामभयं नष्टं स्वैराचारोऽभिवर्तते ।।

श्वेतवस्त्रधरा एते सांसदाश्च विधायकाः ।

भ्रष्टाचारकलङ्काङ्का देशद्रोहविपोषकाः ।।

योधयन्ति जनान्नित्यं मदमात्सर्यसाधनैः ।

मतपत्रमुरीकर्तुं सर्वमेव विधीयते ।।

(नव्यभारतशतकम्, १८ से २२ तक)

डॉ0 शुक्ल ने 'भाति मे भारतम्' में भारत के नेताओं की कुर्सीपरस्ती का संकेत किया हैं, यथा-

शासनासन्दिकाराधनैकव्रतं

नेतृवृन्दं समालोक्य छद्मावृतम् ।

यत्र नित्यं हसन्ति प्रजानां गणा

भूतले भाति तन्मामकं भारतम् ।।

इसी प्रकार 'भारतजनताऽहम्' कविता में भी इस ओर संकेत किया हैः-

शासनासन्दिकामधिरोढुं

प्रतिनिधयो मे कुर्वन्ति न किम् ।

तां प्राप्य केऽपि यां विस्मरन्ति

मुग्धा सा भारतजनताऽहम् ।।

२ नवम्बर १९९० को उज्जैन में ३३ वें कालिदास-समारोह के अवसर पर आयोजित 'संस्कृत कवि-समवताय' में पठित तथा 'अर्वाचीनसंस्कृतम्' (१२/४) में प्रकाशित कविता में नेताओं को फटकारते हुए डॉ0 शुक्ल ने कहा-

किं कुरुथ किं वा करिष्यथ वदत नेतारो मनाक् !
किं मनसि वो वर्तते भो ? भणत नेतारो मनाक् ।।
पादयोः प्रणिपत्य, घोणा-घर्षणं कृत्वा मुहुः ।
याचितं यन्मे मतं तस्यादरं रक्षत मनाक् ।।
दूरदर्शन-तन्त्रतो लब्ध्वा विभुत्वं प्रत्यहम् ।
भाष्यते यदनर्गलं रे वित्थ तस्यार्थं मनाक् ।।
मनसि वचसि च कर्मणि प्रविरुद्ध्यते यैः प्रतिपलम् ।
सन्ति सन्तो वै कियन्तो वोऽतिरिच्य वदत मनाक् ।।
लुञ्चिता न्यायालया जनता वराकी लुञ्चिता ।
किमपरं भो लुञ्चयिष्यथ ? वदत नेतारो मनाक् ।।

'रौति ते भारतम्' शीर्षक रचना में भी डॉ0 शुक्ल ने भारत के अन्धकार पक्ष का संकेत किया है ।

परन्तु दोनों कवि भारत के भावी अभ्युदय एवं मंगल के प्रति आश्वस्त भी हैं। 'भारत दण्डकम्' में डॉ० मिश्र भारत राष्ट्र के निरवद्य स्वरूप का अंकन करते हैं

''जयतु जयतु भारतं लोकतन्त्रात्मकं पूतमंत्रात्मकं सर्वधर्मात्मकं सौम्यकर्मात्मकं विश्ववन्धुत्वभावे रतं सन्ततं दीनहीनोदये दत्तचित्तव्रतं युद्धविद्वेषमात्सर्ययुक्तं सदा द्रोहविद्रोहकातर्ययुक्तं सदा सर्वतन्त्रस्वतन्त्रं बृहद्भारतं विश्वशान्तिप्रयाणस्थितं भारतं सर्वतोभावि-भद्रेच्छुकं भारतं स्वीयसीमान्तरक्षेच्छुकं भारतम्'' आदि ।

भारत प्राचीन काल से ही सम्पूर्ण विश्व का मार्गदर्शक रहा है । भारतीय दर्शन, शिल्प एवं जीवन पद्धति ने समूचे विश्व को आचार की शिक्षा दी । डॉ0 रमाकान्त शुक्ल भारत का वह स्वर्णिम अतीत स्वभिमान के साथ अंकित करते हैं -

यत् त्रयीसांख्ययोगादिमार्गैर्युतम्
जीवनं मुक्तमाकर्तुमाकाङ्क्षति ।
शीलसन्तोषसत्यादिभी रक्षितं
भूतले भाति तन्मामकं भारतम् ।।
दर्शनज्ञानचारित्र्यसम्मेलनं
यत्र मोक्षस्य मार्गं भणन्त्यागमाः ।

ज्ञानमास्ते च भारः क्रियां वै विना

भूतले भाति तन्मामकं भारतम् ।।

'प्रभातमङ्गलशतकम्' में अभिराज डॉ0 राजेन्द्र मिश्र न केवल भारत के अध्यात्म पक्ष का अपितु राष्ट्रीय संवेदना के अणु अणु का स्पर्श करते हैं । अपने मंगलमय सुप्रभात के लिए डॉ0 मिश्र केवल देवताओं का ही नहीं अपितु भारत एवं भारतीय संस्कृति के प्रत्येक गौरवबिन्दु का स्तवन करते हैं-

कान्ताररोमपुलका गिरिसन्धिवन्द्या

नक्षत्रहारलतिका रविभालभूषा ।

पाथोधिनीलवसना सुमशुभ्रहासा

कुर्याद्धिमांशुतिलका मम सुप्रभातम् ।।

काश्मीरमस्तकवती हिमवत्किरीटा

गङ्गाकलिन्दतनयोभयनेत्रपद्मा ।

देवप्रिया तमिलकेरलपादयुग्मा

भूः भारती दिशतु मे नवसुप्रभातम् ।।

यस्या रजोविलसिते परिधौ प्रबुद्धा

हेलाविलासलपनैर्महिता भवामः ।

साऽस्माभिरात्मजवती नवराष्ट्रभूमिः

मान्या तनोतु मम मङ्गलसुप्रभातम् ।।

प्रभात-मङ्गल की यह परम्परा कवि राष्ट्रीय एकता को दृष्टि में रखते हुए, किस बिन्दु तक पहुँचाता है, यह सचमुच देखने योग्य है-

ज्ञानेश्वरश्च तुलसी नरसी च मीरा

चैतन्यनानककबीरसमर्थसंज्ञाः ।

आण्डालभक्तरविदासमुखा दशोर्ध्वाः

कुर्वन्तु मे मधुमयं नवसुप्रभातम् ।।

'भारतजनताऽहम्', शीर्षक कविता में डॉ0 रमाकान्त शुक्ल भारत भूमि के स्वाभिमान पूर्ण उद्घोष को लोक के समक्ष रखते हैं । यह उद्घोष भारत विरोधियों के लिए एक चुनौती है-

आक्रमणं नैव करोमि कदाप्याक्रमणं नैव कदापि सहे ।

आर्जवं न मे मूर्खत्वमस्ति दृढकवचा भारतजनताऽहम् ॥

दृप्तानामङ्कुशतां भजामि नम्राणां रक्षकतां भजापि ।

दुष्टानां शिक्षकतां भजामि लोकज्ञा भारतजनताऽहम् ॥

अभिराज डॉ0 राजेन्द्र मिश्र भी खुले शब्दों में राष्ट्र का वही उद्घोष व्यक्त करते हैं-

न दुर्नयं सहामहे न दुर्नयो विचीयते ।

स्वराष्ट्रगौरवोचितं हि केवलं विधीयते ॥

वयं हि लोकतान्त्रिका ऋतैकपक्षपातिनः

सुहृत्तमाः परन्तु वैरिणं कृतेऽतितापिनः ॥

वयं प्रमाणगत्वराः प्रतिक्षणं प्रसृत्वराः

जयत्वियं वसुन्धरा जयत्वियं वसुन्धरा॥

('वाग्वधूटी' पृष्ठ ३९)

अभिराज डॉ0 राजेन्द्र मिश्र की राष्ट्रीय कविताएँ प्रबुद्ध पाठकों के समक्ष अन्य एक प्रश्न भी रखती है- आज इस राष्ट्र का बन्धु कौन है ? प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्वार्थ सिद्धि में लगा है, सबकी दृष्टि खंडित है, आखिर क्यों ?

वाञ्छति कोऽपि नवीनविधानं

कोऽपि याचते खालिस्तानम् ।

रोदिति गङ्गा द्रवति नगेशः समुच्छलति सिन्धुः

को नु राष्ट्रबन्धुः ??

इस प्रकार हम देखते हैं कि डॉ0 शुक्ल और डॉ0 मिश्र दोनों ही कवि अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा से भारत के जन मानस को भरपूर आकृष्ट कर रहे हैं ।

# विंशशताब्द्याः संस्कृतसाहित्ये चित्रितं भारतम्

-डॉ० कैलाशनाथ द्विवेदी, डी० लिट्०

विंशशताब्द्याः संस्कृतसाहित्यस्य महाकाव्य-गीतिकाव्य-गद्यकाव्य (उपन्यास) नाट्यसाहित्य- चम्पूकाव्यादिसर्वासु विधासु व्यापकरूपेण भास्वरं भारतं चित्रतम् अस्ति । सामान्यतः साम्प्रतिकसंस्कृतरचनासु अन्तर्बाह्यरूपयोश्चित्रितस्य भारतस्य चित्रमत्यन्तं हृदयावर्जकमस्ति । अखण्डभारतभूमेर्बाह्यस्वरूपस्य बिम्बग्राहिचित्रणं संस्कृतरचनाकारैः साधुतया कृतमस्ति स्वविविधविधामयकृतिषु[१] ।

'शिवराज्योदय'-महाकाव्यकारः डॉ0 श्रीधरभास्करवर्णेकरो भारतस्य बाह्यस्वरूपगतचित्रणं चमत्कारिरूपे कृत्वा स्वराष्ट्रस्य वैशिष्ट्यमपि चित्रयति व्यापकतया । यथा-

किरीटः सद्रत्नप्रभव इति गीतो नगपतिः
समुद्रोऽयं रत्नाकर इति मतो वल्गुवलयः ।
अजस्रं सम्पन्ना पुरुषमहिलारत्ननिवहैः
अहो राजत्येषा भुवनतलरत्नं भरतभूः ॥ (विवेका०७/६)

अपि च-

अयोध्या शत्रूणां त्वमसि मधुरा पावनहृदा
खलानां वा माया जननि खलु काशी सुतपसाम् ।
अवन्ती चार्तानामपि विधृतकाञ्ची विमनसां,
विमुक्तेर्द्वारावत्यपि दिविषदां त्वं ननु पुरी ॥

(विवेका० ७/१८)

डॉ० वर्णेकरः स्वशिवराज्योदये महाकाव्ये महाराष्ट्रान्तर्गतसह्याद्रेः पश्चिमरत्नाकररमणीयतायाः सुन्दरं चित्रणं कृत्वा राष्ट्रगौरवमपि सम्यग्रूपेण चित्रयति । 'भाति मे भारत' मिति रचनायां डॉ० रमाकान्तशुक्लोऽपि भारतस्य अन्तर्बाह्यस्वरूपं शोभनं चित्रयत्येवमत्र पद्यद्वये-

''जाह्नवीचन्द्रभागाजलैः पावितं, भानुजानर्मदावीचिभिर्लालितम् ।
तुङ्गभद्राविपाशादिभिर्भावितं, भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।।
गोखले-बालगङ्गाधराराधितं, श्रीशिवाजी-तुकाराम-सम्बोधितम् ।
यन्महाराष्ट्रकं सह्यशृंगोच्छ्रितं, भूतले भाति तन्मामकं भारतम्।[२]''

जानकीजीवन-वामनावतरणादिमहाकाव्यकारो डॉ० राजेन्द्र मिश्रः स्वकीये मृगाङ्कदूते भव्यभारतमेवं चित्रयति चित्ताकर्षकरूपे -

'' गन्तव्या ते जलधिरसनाऽऽवेष्टिता भारती भूः
आदौ यत्र प्रसभमुदिता संस्कृतिर्विश्ववारा ।
तत्राप्याप्या तरणितनयाजाह्नवीसङ्गभूमिः
सृष्ट्यै यत्र द्रुहिण उषसि क्लेशितात्मा तताप ।।[३]''

न केवलं भारतमन्तः रूपेणापि तु बाह्यरूपेण चित्रयति डॉ० चन्द्रभानुरेवम् -

''हिमगिरिरस्य किरीटो मौलेररुणकिरणमणिमाली,
करकल्लोलैर्जलधिर्विलसति पादान्तप्रक्षाली ।
सरितो वक्षसि हारा विन्ध्यो भाति मेखलामानम्,
पल्लवलसिता निविडवनाली रुचिरं नवपरिधानम् ।
आस्तां कविकुलमस्य मनोरमरूपवर्णने लीनम्,
भारतवर्षं राष्ट्रं जीव्याच्चिरकालं स्वाधीनम् ।।

(मंगल्या १९८८पृ० ५)

स्वराष्ट्रभारतस्य बाह्यस्वरूपनिर्धारणे संस्कृतरचनाकारैरस्य उत्तुंगशृंगमयवनाच्छन्नपर्वताः, विशालसलिलराशिना तीव्रप्रवाहिताः नद्यः, वैभवसम्पन्ना विविधप्रदेशाश्चापि चित्रिताः । पशुपालनकृषि-वाणिज्यादिक्षेत्रेषु राष्ट्रस्यार्थिकस्रोतस्वरूपिण्यो नर्मदादिनद्यः संस्कृतकविभिः सुचित्रिताः सन्ति । यथा श्रीरेवाभद्रपीठकाव्ये सनातनकवी रेवाप्रसादद्विवेदी रेवामेवं चित्रयति ।

"त्वत्तीरे हलिनोऽपि सन्ति विमला धर्मप्रिया भारते ।"

"वाणिज्यं करवाणि चेत् तव दृशोः पात्रीभवन्नप्यहं

- -- -त्वां कामधेनुं वृणे ।[४]

विंशशताब्द्याः संस्कृतरूपकेष्वपि भारतस्य भव्यं चित्रणं वर्तते । यथाऽस्मदीये 'वसुमित्रविजये'[५] विशालभारतभारती एवं चित्रिता विस्तारमयी-

"आसिन्धुशैलेन्द्रसुशोभिते हे, भागीरथीनीरतरंगिते हे !

काशीपुरीपुण्यपुरैश्च रम्यां त्वां भारतीं भक्तिप्रदां भजामि ।।[५]

राष्ट्रस्य सर्वसमाजे यौतुकपिशाचपीडिताः परमार्त्तयुवत्योऽपि चित्रिताः रूपककारैः । श्रीकृष्णलालोऽपि कुप्रथामिमां व्यंग्येन चित्रयति आश्चर्यमिति नाम्नि रूपके-

"किं भवान्, जानाति कियद् यौतुकमिष्यते वरपक्षीयैः ?"

"किं कन्ये अविवाहिते स्थास्यतः ?"

(चमत्कारः, दिल्ली प्रथम सं0 पृ0 ६३)

भारते सर्वत्रातंकवादस्य हिंसायाश्च[६] ताण्डवं चिन्ताजनकमेवाऽस्ति। समाजे सर्वत्र हिंसामूले तु मानवतानाशक-विनाश- कार्यस्त्रशस्त्राणा-मुत्पादनं, यौतुकं, भिक्षाटनं, मूल्यवृद्धिः, पदार्थसम्मिश्रणं, राष्ट्रनेतॄणां चारित्रिकमवमूल्यनं, जातिवाद आदि समस्यानां सुन्दरं चित्रणं संस्कृतसाहित्ये संलक्ष्यते । यथा-

''बमविषाक्तविस्फोटकद्रव्यैः । अणुशक्त्याविष्करणैर्नव्यैः ।
प्रलयंकरमभवद् विज्ञानम् ! मानवते । कुरु नवमभियानम् ।।

(गीतकन्दलिका पृ0 १३)

प्रभूता मूल्यसंवृद्धिर्नभश्चुम्बति महार्घत्वम् ।
दिनैर्लघुकैश्चिदल्पं वेतनं मे याति शून्यत्वम् ।।

(गीतकन्दलिका, पृ0 ३३)

परमानन्दशास्त्री भारतस्य मिश्रणसंस्कृतिमेवं चित्रयति चिन्ताकुलो भूत्वा-

क्रीडति मुक्तं मिश्रसंस्कृतिर्हालाहलायते माधुर्यम्,
शुद्धं क्वापि पदं न पदार्थः प्रतिहट्टं दृष्टं चातुर्यम् !
नगरे नगरे ग्रामे ग्रामे मिश्रितपण्यानां प्राचुर्यम्
शुद्धं क्वापि पदं न पदार्थः प्रतिहट्टं दृष्टं चातुर्यम् ।।

(दूर्वा, १४ तमोऽङ्कः १९८९ पृं0 ३०)

महाकविः सुधाकरः भारते भ्रष्टराजनेतॄणां शोचनीयं चरितमेवं चित्रयति-

नेतारश्चेदपधनधियो निष्क्रियोत्कोचजीवाः,
मिष्टा वाचः कपटपटवो वञ्चकाः सञ्चिताशाः ।
नाशाय स्युः स्व भुवि सुलभाः पेशला श्वेतवेषैः,
निःसिद्धान्ताः कथय न कथन्नङ्क्ष्यति त्वेष देशः ।। (देवदूते ६९)

अपि च- दण्डादण्डि प्रचलतु सदा वोऽस्तु वा वाग्विलासः,
केशाकेशि प्रशमयतु वा युष्मदीयं विवादम् ।
हे नेतारः कुरुत सकलं रोचते यद् भवद्भ्यः,
स्वातन्त्र्यं मे निधिरिदमिति प्रार्थये रक्षितुं वः ।।

(मंगल्या, डा0 चन्द्रभानुः पृ0 ४३)

साम्प्रतं भारते सविकारो गुरुशिष्यसम्बन्धः, दूषिता शिक्षा-पद्धतिर्विकृता परीक्षाप्रणाली छात्रानुशासनहीनताऽपि सुचित्रिता संस्कृत साहित्यकारैः । यथाऽस्मदीये गुरुमाहात्म्यशतके एवं चित्रिता वर्तमानविकृतशिक्षाप्रणाली-

शिक्षकरूपे गुरवः साम्प्रतन्तु सन्ति वेतनभोगिनः ।
दासवृत्त्या समाजे, लभन्ते मानं न तादृशम् ।।
शिष्यैः परीक्षायान्तु प्रयुज्यन्तेऽनुचितसाधनानि ।
शिक्षकाः सापमानञ्च सहन्ते प्रताडनां तेषाम् ।।
शिक्षणसंस्था अधिकाः, प्रायः कुप्रबन्धकास्तासु सन्ति ।
बहवोऽध्यापकास्तत्र, शोष्यन्ते सर्वदा बहुधा ।।
(गुरुमाहात्म्यशतकम् ९८-१०० डा0 कै0 ना0 द्विवेदिनः,
कानपुर १९८१)

भारते भयंकरी यौतुकप्रथाऽपि चित्रिताऽस्ति-संस्कृतरचनाकारैः स्वकीयकथाकृतिषु,रूपकेषु काव्येषु च यथार्थपृष्ठभूमौ । युवा कवी राधावल्लभस्त्रिपाठी स्वकीये गद्यगीते ''अनुशारदाविवाह'' मिति रचनायां[७] यौतुकीकुप्रथां मार्मिकरूपेण प्रस्तौति । डा0 चन्द्रभानुश्चित्रयति स्वकीयवधूरमूल्या रचनायामेवम्-

'हे नवयुवकजननि! तव पुत्रो बाहुबलं नाश्रयते,
वधूममूल्यां बुद्ध्वा भवती सुतमूल्यं कामयते !
सम्प्रति सुतसम्बन्धेऽन्विष्यति भवती यौतुकमात्रम्,
प्रतिगेहं गत्वा सम्पश्यति ललितं कन्यागात्रम् !!
हे नवयुवक ! शृणोतु किमर्थं बाहुबलं नाश्रयते ।
कन्यायुवतिरमूल्या - --- -[८]

भारते वर्तमानधार्मिकसामाजिकार्थिकराजनीतिक-वैज्ञानिका-दिविविधपरिस्थितीनामपि चित्ताकर्षकं चित्रणं संस्कृत-साहित्यकारैः

कृतमस्ति । महर्षिकल्पः स्वर्गीयः पं0 मुंशीराम शर्मा 'सोमः' चित्रयति भारतमेवम्-

'अर्थलोभेन नेतारः प्रभुत्वपदलोलुपाः ।
संस्कृतेः सभ्यतायाश्च नाशकाः देशघातकाः ।।

सदाचारं हि गर्हन्ति देशस्तेषां हिताय वै ।
न ते देशाय जीवन्ति जीवन्ति स्वार्थसिद्धये ।।

हरतालरताश्छात्राः प्राध्यापकाश्च कर्मिणः ।
विरताः स्व स्व कर्त्तव्यात् श्रमाच्च श्रमजीविनः ।।

मुस्लिमैः खण्डितो देशः पूर्वमेवांग्लनीतिभिः ।
अधुनाऽपि ते समालग्नाः पुनश्च देशखण्डने ।।

शिष्याः पार्थक्यभावेन पञ्चनदे प्रचोदिताः ।
ख्रिस्तानाश्च विभजन्ति पूर्वाञ्चलं स्वदेशतः ।।'

(पारिजातम् ६/१ स्वाधीनतादिवसविशेषाङ्कः, पृ0 ३९)

वर्तमानवैज्ञानिकाविष्कारेषु टी0 वी0 प्रभृति उपादानैः भृशं प्रभाविताः युवक-युवत्यः स्वकर्त्तव्यविमुखा एव दरीदृश्यन्ते प्रायः समाजे, गेहे गेहे । भारते टी0 वी0- वञ्चितवल्लभां नवोढां चित्रयन्, श्रीरामदवे शास्त्री यथार्थमेव कथयति-

इह जपति नवोढा तल्पगा कान्तसङ्गम्,
प्रणयसुखसखीयं शर्वरी यातयामा ।
कितव इव च धारावाहिके दत्तदृष्टिः
क्षिपति मयि न दृष्टिं टी0 वि0 मुग्धो मिलिन्दः ।।

# आर्यकाश्मीरम्

श्री रामकृष्ण शास्त्री 'अव्यय:'

अद्य हि स्वतंत्रभारतोत्तमांगभूतः, प्रकृतिकमनीयः,शुचिशील-हिमशैलापत्यकान्तर्गतः, सतीसरोवरधरः कश्यपाश्रमशिक्षाप्रचारप्रचुर-प्रवीणः, वीरभारतरक्षाशिविरस्वरूपः, वासन्तीकेशरकिशोरीकान्तः, गिरिवननिर्झरस्वनै रापूरितः, षड्तुपुष्पफलै राकीर्णः, विविधविहग-कुलै रलंकृतः,चतुर्युगचतुर्वेदचतुर्वर्णचतुराश्रमपरम्पराभिः चतुर्वर्ग (पुरुषार्थचतुष्टय) रूपप्रक्रियासु कुशलः, अहर्निशं विश्वभ्रमणार्थिभिः स्वाभिप्रायेण समालोचितः, ''मात्सर्यमुत्सार्य विचार्य- कार्यमार्याः समर्या-दमुदाहरन्तु । काश्मीरक्षेत्रेषु च पाककृत्यं ह्यनार्यमालक्ष्य निकारयन्तु'' इतिधिया प्रविष्टसुरक्षासभासद्भिरपि शंकालोकरीत्या चिन्तासु अन्तर्भावितः, ''उद्धरेदात्मनाऽत्मानम्'' इति गीतोपदिष्टः, विशिष्टः, विशिष्टजनानुशिष्टः भूस्वर्गसंज्ञासमन्वितः, सारस्वतोद्देश्याश्लिष्टः, पिककाककुलकलाकलनविचक्षणः, सर्वेक्षणनिपुणः काश्मीरप्रदेशः ''नवोदितकाश्मीरम् (नयाकाश्मीर)'' इति संबोधनेन सर्वाधिको लोकप्रियोऽस्ति । नवप्रकाशेऽत्र सर्वत्र नवीना द्युतिः प्रद्योतते ।

आधुनिको लोकः अस्मै महाद्भुताकर्षणहेतवे कियदपि राजनीतिकमहत्त्वं संप्रदद्यात् परमतीतेतिहासस्तु सर्वदा एव अस्याकर्ष-णहेतोः मूलस्थाने सुदृढं दृष्टिपातं प्रकुर्वाणः सुस्थिरो वर्तते । भारतीये-तिहासे सुसष्टम् एतत् समुल्लिखितं मिलति, यत् विश्वस्याद्यः संस्कृत-विश्वविद्यालयः अस्यामेव भूसुरभूम्यां (भूस्वर्ग-काश्मीर में) सम्प्रस्थापितो-ऽभवत् ।

उत्तरापथः, शारदापीठम्, सारस्वतदेशः, शैवागममठः, सतीतीर्थ-क्षेत्रम् इत्यादयः, सम्मानिताः सुप्रमाणिताश्च संज्ञाविशेषाः अस्यामेव केशरविकासशोभितक्षोण्यां सुतराम् अद्यावधि स्वसंवेद्यानन्दातिरेकं संप्रथयन्ति ।

''नमस्ते शारदे देवि काश्मीरपुरवासिनि, पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि काश्मीरमंडले, काश्मीरकाशीकमनीयवाणी'' इत्यादीनि आप्त-वाक्यानि यथावत् संकीर्णतायाः अस्मिन् युगेऽपि यदा तदा संवेदनाशीलेषु सहृदयेषु नवचेतनायाः प्रबुद्धवीणायाः इव स्वरसंगमं संप्रस्थाप्य सहज-सुरभारतीगीतिमधुरिम्णः चिरसुन्दरमास्वादनं कारयन्ति एव नूनम् ।

काश्मीरस्य निसर्गसुन्दरतपोभूमिषु भारतैः ऋषिमुनिप्रवरैः स्वाध्यायाराधनासाधनावासस्य प्रभूतं महत्त्वं सर्वोत्कृष्टोदाहरणरूपेण समुद्घुष्यते पुराणेतिहासग्रन्थेषु सर्वत्र एव । अस्ति च एतदेव प्रमुखं कारणं, यत् वर्तमानभारतस्य प्रमुखो नैतिकयोद्धा स्वर्गतो गांधिमहाभागो-ऽपि सूक्ष्मदृशा स्वयं निरीक्ष्य एव एवम् समवोचत्, ''काश्मीरे तु मया नवीना प्रकाशरश्मिः समालोकिता'' इति ।

प्रायशः पुरातननूतनैः सर्वैः एव सुलेखकैः यथाशक्यं यथाभिमतं च काश्मीरेतिवृत्तकथा लेखनीबद्धा विहिता ।

अद्यतनीयं केवलं कंचिद् हृठवादरतं वर्गविशेषं संविहाय, सर्वे किल बुद्धिभाजः अस्मिन् विषये एकमतं संप्रकाशयन्ति, यत् ''काश्मीरजस्य कटुताऽपि नितान्तरम्या'' ''सहोदराः कुंकुमकेसराणाम्'' इत्याद्याः सूक्तयः महतीं सारगर्भितां भावसंभृतां च भारतभारतीरतिं सप्रमाणं समर्थयन्ति ।

कुंकुमं तु कुंकुममेव अस्ति । अत्रत्यः भूसुरसरस्वतीविषयकः आराधनाराध्यभावभरितः संबन्धविशेषोऽपि ''साक्षात्कृतधर्माणः'' इत्य-वस्थाप्रसंगेन वर्णनातीत एव विद्यते । शाक्तशैवमतभक्तानां केषांचित् साधनारहस्यमद्यापि ''क्षीरभवानीनीरसमीरे'' चित्रविचित्रवर्ण (रंग) परिवर्तनेन यथाकालं साधु समीक्ष्यते ।

अहमिदानीमत्र शास्त्रार्थचक्रव्यूहे अपतित्वा एव एतद् विस्पष्टं कथयामि, यत् अद्यतनीयाः अनुसंधातारो हि कमपि भावपक्षं संद्रष्टुं यदा समुद्यताःस्युः तदा प्राग्भवमत्रत्यं सांस्कृतिकं, भौगोलिकं, धार्मिकं, शैक्षिकं च जनजीवनं मौलिकाधारेण गंभीरदृष्ट्या च संपश्येयुः, उदारमत्या संविचारयेयुः, तटस्थवृत्त्या संजानीयुः, निष्पक्षरीत्या च तदुपरि स्वमत-सम्मतं संलिखेयुः ।

प्रमाणं चैकं संक्षिप्तं पर्याप्तं संविज्ञेयम् ''पथ्यास्वस्तिरुदीची दिशं प्राजानात् ।'' वाग् वै पथ्यास्वस्तिः । तस्मादुदीच्यां दिशि प्रज्ञाततरा वागुद्यते । उदंचे ह्येव यान्ति वाचं शिक्षितुम्,यो वा तत आगच्छति तस्मै वा शुश्रूषन्त इति स्माह । एषा हि वाचो दिक् प्रख्याता'' ''प्रज्ञाततरा वागुद्यते काश्मीरे सरस्वती कीर्त्यते बदरिकाश्रमे वेदघोषः श्रूयते । वाचं शिक्षितुं सरस्वतीप्रसादार्थं तु उदंचे ---'' (शांखायनब्राह्मणम् ७/६)

अहं तु अद्यतनीयान् तान् सहयोगप्रियान् सहचरान्, ये खलु अत्र (जम्मूकाश्मीर में ) संस्कृतस्य जन्मसिद्धाधिकारप्रकारं प्रत्यक्षाप्रत्यक्षरूपेण संविनाशयितुं भाषाविषये विषमविषनिभं दुराग्रहं समुद्भावयन्ति,प्रत्यक्षं संप्रकथयामि, यत् एकतायाः कृत्रिमचित्रमित्रतामङ्गीकुर्वाणाः ते सर्वे सुहृदः स्वार्थं संविहाय सत्यान्वेषणेन स्वात्मानं परिचिन्वानाः यथार्थतः समग्रैकतायाः प्रतिमां संविदध्युः ।

अस्मिन् प्रसंगे संस्कृतभाषा एव एका एतादृशी सुदृढा श्रृंखला अस्ति, या किल युगानुगां संस्कृतादर्शपरम्परां यथापूर्वं सुप्रतिष्ठितां संविधातुं भृशं शक्नोति ।

अहं चात्र पुनस्तदेव दुर्वृत्तं संप्रकटयितुं विवशोऽस्मि,अत्रत्याः केचित् लवणोपमाः कर्मिणः (नमकीन कामरेड) इतिपदवाच्योपाधिनः,स्वार्थ-सखायः काश्मीरेषु संस्कृतस्यान्तरंगस्थितिमस्तमितां कर्तुमेव अधुना काश्मीरिकीं भाषां (लोकवाणीं) पश्तो, बल्तानी,अरबी, फारसी प्रभृति-भाषाणां संग्रहणीं मत्वा केवलम् ''उर्दू'' लिप्यामेव तां बद्धां कर्तुं प्रयतन्ते, तत् सर्वात्मना अयुक्तम् ।

अस्ति अत्र ममापि तेभ्योऽविवेकपरेभ्यः अनुपदमेव एतत् प्रत्यावेदनं यत् ''भोः भाषाभूषाबुभूषवः, युगलार्गलाग्रस्तगलाः, अर्थानर्थसमर्थ-नानभिज्ञाः, सावधानाः संभवन्तु । स्मरणीयं, संविचारणीयं ततश्च सर्वं साधुतरं समाचरणीयम् । वृथैव सत्कथाप्रथासु विपरीतेतिहासोपहासो माऽभ्यसनीयः । पश्यन्तु नाम यत् काश्मीरजो मनीषी, महामान्यः भाषाविज्ञानी, सक्रियो विद्वान्, स्वर्गतः पंडितप्रवरः, श्रीमान् ईश्वर कौलः तथ्यं पथ्यं कथ्यं सुस्पष्टमेवाकथयत् स्वरचितेऽमरग्रंथे ''काश्मीर-

शब्दामृतम्'' इतिसंज्ञान्विते- ''काश्मीरे संस्कृता भाषा ह्यासीदित्यनुमीयते । पूर्वं सैवाधुना कालवशात्संकरतामिता'' इति ।

अद्यत्वेऽपि काश्मीरिकभाषायां संस्कृतस्य एव सर्वाधिकाः शब्दाः साक्षात् अथवा तदनुरूपस्वरूपपरिवर्तनेन प्रत्यक्षमायान्ति । ''प्राधान्येन व्यपदेशाः भवन्ती''ति न्यायेन अस्मिन् संक्रमणकालेऽपि संस्कृतस्य महती आधारभूमिः अत्र संस्थिता अस्ति । आवश्यकता तु केवलं तदालोचनपूर्वकं सर्वसाधारणजनोपयुक्तपथावलम्बनस्य एव विद्यते । एतावता अपि इह संस्कृतप्राधान्यस्य किंचिदेवं दिग्दर्शनं संप्रस्तूयते ।

| संस्कृतम् | काश्मीरी | संस्कृतम् | काश्मीरी |
|---|---|---|---|
| १- अग्निः | अगुनु | १८- सः गतः | गॉव् |
| २- अलक्तः | अलुतु | १९- सः पतितः | त्योव् |
| ३- आश्विनः | आशिद् | २०- कुत आगताः | कतिआय् |
| ४- उज्ज्वलः | उजुलु | २१- गृहेण | गर सूतिन् |
| ५- ऋतुः | ऋथ् | २२- बालेन | लाल सूतिन् |
| ६- पक्वः | पपु | २३- मालया | मालिसूतिन् |
| ७- तनुः | तन् | २४- सप्तभिः | सतिसूतिन् |
| ८- कूर्मः | कूमू | २५- अष्टभिः | ऐठिसूतिन् |
| ९- दृढः | दरु | २६- पुस्तिकया | पोथिसूतिन् |
| १०- पानीयम् | पीञ् | २७- गवा | गोव् सूतिन् |
| ११- चकार | कर्याम् | २८- कुष्ठेण | क्वठ सूतिन् |
| १२- आतपस्य | तापुकु | २९- कटकः | कठे |
| १३- ते आयाताः | तिन् आय् | ३०- पुस्तिका | पूथि |
| १४- गृहाणि | गरन् | ३१- पट्टिका | पट्ठु |
| १५- तेन खादितम् | ख्योन् | ३१- कांचिकानि | काँजून् |
| १६- ते गताः | गैय् | ३३- घासविक्रेतृन् | गासून् |
| १७- ते पतिताः | प्येय् | ३४- तन्वीम् | तव्य् |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३५- नाभिः | नाभ् | ६०- धान्यस्य तण्डुलः | धानुकु त्वमुल |
| ३६- कथा | कथ् | ६१- आषाढस्य मुद्गः | हारुकु म्वंग् |
| ३६- लत्ताप्रहारः | लथ् | ६२- माघस्य दिवसाः | मागेर दह |
| ३८- स्याली | स्याल् | ६३- नागस्य प्रणालिका | नागकु नारिज |
| ३९- जालिका | जालू | ६४- कथा | कथ् |
| ४०- शाला | हाल् | ६५- राधाकृष्णस्यघोटकः | राधाकृष्णनिगुरि |
| ४१- कपालिका | कुण्डल् | ६६- मनोः कन्या | मनिजू कूरु |
| ४२- खड्ग | कुर्तन्न | ६७- कृपारामस्य माता | कृपारामजू माजू |
| ४३- वानरः | बाँदर् | ६८- गृहस्यान्तरे | गरस अन्दर् |
| ४४- गैरिकम् | गोरू | ६९- नौकायाः मध्ये | नावि मञ्ज |
| ४५- चीरिका | चीरि | ७०- गुरवे आनीतानि पुस्तकानि | ग्वरस् किञ् अगन् |
| ४६- गोपः | गूरु | | |
| ४७- मूलम् | मूल् | ७१- घोटकेन हता | गुरि मोरु |
| ४८- भूतः | बूथ् | ७२- तैर्वर्णितम् | तिनि वनु |
| ४९- लोकः | लख् | ७३- गृहाणां साध्वांगणमस्ति, | गरो अन्द्र छुरु जान आंगुन् |
| ५०- उष्ट्रः | वूंट | | |
| ५१- काकः | काव् | ७४- ईश्वरेण | ईश्वरन् |
| ५२- कं वदेत् | कमिस् विन | ७५- हस्तेन भुक्तम् | अथ सूतिन् ख्यौन् |
| ५३- वृषभस्य शृंगम् | दाँद सन्दु ह्यांग | ७६- पुत्राय आगतः | पुत्र पुछ्य आव् |
| ५४- कर्णस्य बालः | कनुकु बाल् | ७७ - ग्रामात् | गाम पठ |
| ५५- हस्तस्य मांसम् | अथुकु माँनू | ७८- काचः | काछ् |
| ५६- गावो वत्सः | गोवु हन्दु | ७९- आतपः | ताफ् |
| ५७- स्वर्णस्य कटकः | स्वन सन्दु कर | ८०- वर्तिका | बत् च |
| ५८- स्वर्णस्य छत्रम् | स्वनुकु छत्र | ८१- मस्तकम् | मस्त् |
| ५९- रौप्यस्य थालः | रूपकु थाल् | ८२- नासिका | नस्त् |

एवं खलु दिग्दर्शनमात्रेण

| | | | |
|---|---|---|---|
| ८३- रक्तम् | रथ् | ९२- यत् | यिह् |
| ८४- पुष्पाणि | पोष् | ९३- किम् | क्याह् |
| ८५- माता | माजू | ९४- इदम् | इह् |
| ८६- काष्ठम् | काठ् | ९५- अदस् | हुह् |
| ८७ - चक्राकाराः | चकल् | ९६- सः | सुह् |
| ८८- वर्तकाः | बतक् | ९७ - यः | युह् |
| ८९- गोलाकाराः | ग्वगल् | ९८- कः | कुस् |
| ९०- ज्येष्ठः | जिठि | ९९- अयम् | हह् |
| ९१- तत् | तिह् | १००- किंचित्- | काशु |

काश्मीरिकः रुपहान्

सुबन्त-तिङन्त सर्वनामादिषु सर्वेषु अपि व्यावहारिकवार्तालापोपयुक्तेषु काश्मीरीभाषाशब्देषु संस्कृतभाषायाः सत्ता महत्ता च सर्वप्रमुखा वर्तते ।

एवं किल स्वभावसिद्धां संस्कृतानुगतां कश्मीरीभाषां कतिपयैरेवान्यभाषाशब्दैः हठात् मेलयित्वा अस्या मूलाधारां संस्कृतरूपरेखां कथमपि अस्तमितां कथयित्वा भाषाक्षेत्रेषु कोऽपि दुर्व्यवहारः नूनम् अक्षम्यः अपराधो विद्यते ।

अहं तु अत्र स्वतंत्रभारतस्य पूर्वां वर्तमानां च दशां कलयित्वा एवमनुवदामि यत् मध्यवर्तिनीं पराधीनतावस्थां संप्रति अपि यथावदवस्थितां कर्तुं मिथ्याकल्पनाः वृथाजल्पनाश्च सर्वथा असंगताः, अवांछिताः एव सन्ति ।

अधुना कश्यपाश्रमशारदामंदिरसतीसरोवरादिबहुविधार्यावासमूले, हिमगिरिगौरवाधारविधिहरिहरादिदेवतात्मभूतेऽपि काश्मीरमंडले वीरभारतांगत्वेन सेनाबहुले सति च यदनार्यदुष्कर्मकाण्डभाण्डस्फोटनं संभवति, तत्रापि संस्कृतस्यानुत्साहदशाविशेषामालोक्य एव संस्कृतात्मा भाषा (हिन्दी)-कविः रामडोगरा अपि सदुःखं किल सामयिकं वृत्तमेवं व्यनक्ति-

''विश्वगुरु था शारदा का धाम इस काश्मीर में ।
मिट रहा है आज संस्कृत नाम इस काश्मीर में ।
समझ में आता नहीं कुछ लोग कैसे कह रहे
बहुत अच्छा हो रहा है काम इस काश्मीर में ।।
असल की चर्चा कहीं कोई नहीं करता यहाँ
नक़ल के हर रोज़ बढ़ते दाम इस काश्मीर में ।।
कत्ल करने सत्य का हर ओर दफ़्तर खुल गये ।
जाम के पैग़ाम सुबहो-शाम इस काश्मीर में ।।
सब सचाई की कहानी कागज़ों में क़ैद है ।
अब भलाई की कथा बदनाम है काश्मीर में ।।
कौम का किस्सा हुआ काला भरे दरबार में ।
रेल चलती डाम की सरे-आम इस काश्मीर में ।।
सिर्फ साड़ी और दाढ़ी की बढ़ाई हो जहाँ ।
कौन जीतेगा भला संग्राम इस काश्मीर में ।।
और कोई घुट रहा होगा कहीं परदेस में ।
हम लुटे जाते हैं आठों याम इस काश्मीर में ।।
अगर कोई सुन सके तो साफ़ कहता हूँ उसे ।
दीखते अच्छे नहीं परिणाम इस काश्मीर में ।।
अब नहीं तो कल सही सब कहेंगे सच बात को ।
आत्मा के नाम बिकता चाम इस काश्मीर में ।।
समय रहते चेतना पाकर उठे भारत महान् ।
स्थिर रहे कश्यप ऋषि का नाम इस काश्मीर में ।।
अपना देश अपने भाषा-वेश को पहचान ले ।
''राम'' संभव है तभी आराम इस काश्मीर में ।।

अतः परं किं नु कष्टकरं कार्यम् ? तदधुना नवप्रगतिशीलकाले अत्र

अस्माकं राष्ट्रप्रियाः नेतारः,ये हि सदा जनतायै स्वच्छप्रशासनस्य स्वतंत्र-जीवनयात्रानिर्वाहस्य च सततं प्रेरणास्पदं भाषणधनं ददति, तैरपि केवलं राजनीतिकद्यूतचक्रे ह्येव न भ्रमितव्यम् । राष्ट्रीयैकतायाः कृते तु मौलिका-धारभूमेः संग्रहणं,संरक्षणं संवर्धनं च सर्वोपरि वरीवर्ति । अस्मिन् सत्कर्मणि च संस्कृतमेव एकम् निरुपमं मेलापकयंत्रमस्ति यत् खलु अस्माकं सर्वदुःखापहारिणीम् आदर्शमयीम् आद्यावस्थां पुनरपि संप्रस्थापयितुम् पूर्णसमर्थं संभाव्यते ।

संस्कृतं विना तु हिन्दीभाषा अपि राजभाषायाः समुचितं प्रभावकं भारतालंकरणस्वरूपं समासादयितुं नालम् । तत्का कथा अन्यभाषाणाम्।

प्रादेशिकभाषागतिविधिनिर्धारणेषु अपि यथा डोगरीभाषायां संस्कृतानुगैः नागरी (हिन्दी)- वर्णैः, अपि च उर्दु- लिप्यामपि लिखने उदारनीतिर्वर्तते, तथा एव काश्मीरीभाषायै अपि संस्कृतात्मप्रियायां नागरीलिप्यां लिखनस्यार्यमर्यादा संपालिता स्यात् । तदा एव सा स्वकीयं साहित्यिकं स्वरूपं संस्कृतसत्कृतस्वीकृतिचमत्कृतिमुख्यमेवेति सत्यं विश्वभाषासभासु समादरेण संस्थापयितुं समर्था भविष्यति, नान्यथा । अपि वा स्वकीयमूललिपिवर्णेषु (डोगरीशारदाक्षरेषु) एव लिखनप्रकरणमपि डोगरी-काश्मीरीभाषयोः सर्वोपकारकं संभवितुं शक्नोति । तत्रापि संस्कृत-स्यांगत्वमायाति । एवं सति मूलरक्षा अपि सेत्स्यति ।

अस्मिन् संदर्भे चाहं सर्वकारमन्तरा साहित्यकारबन्धूनपि संप्रार्थ-यामि, यत् ते स्वयमात्मनिरीक्षणं संप्रकुर्युः । लेखनीधनाः लेखकाः भाषाक्षेत्रेषु पूर्णतायाः अपूर्णतायाश्च स्वयंसिद्धाः निष्पक्षपरीक्षकाः समालोचकाः प्रचारप्रसारकाश्च संभवेयुः ।

आशासे यत् देशवासिनो विद्वज्जनाः आत्मनो मौलिकाधारस्य संस्कृतस्य सर्वोपकारभाषान्वेषणवर्त्मनि सावधानाः निर्मत्सराश्च सन्तः संगठनशक्त्या निर्भयाः उदारव्यवहारपराः भूत्वा, सकलमंगलमूलायै एकताविभूतिसंप्राप्त्यै मातृवत्संपूज्यां संस्कृतभाषां सरलशिशुदृशा समता-क्षमताममताभिमतभावैः ससुखं संद्रक्ष्यन्ति ।

स्वतंत्रभारतांगभूते जम्मूकाश्मीरेऽन्तर्विस्फोटहेतुकी, पाकदुर्वि-

पाकदुष्प्रक्रिया सर्वतोमुखी हानिप्रदा संप्रवर्तते । युगानुगां संस्कृतनिष्ठां काश्मीरीभाषां लिपिं च हठवादेन परिवर्तयितुं बद्धपरिकराऽत्रत्या ''ललित-कला-संस्कृति-साहित्य-अकादमी'' अपि प्रगुप्तदुराग्रहसंग्रस्ता समालोक्यते । एवं सति अचिरादेव अत्र, समस्तभारतेऽवरुद्धा अपि ''हिन्दुपानी-मुस्लिमपानी'' इति प्राक्प्रथा हिन्दुकाश्मीरी वाणी-मुस्लिम-काश्मीरी वाणी इत्येवं गृहभेदकरी सर्वसमक्षमागमिष्यति । हा ! दुःशासनेनात्र मठाम्नायविरोधकं मदरसाशिक्षाप्रकरणं दुस्साहसेन समाविष्कृतम् । तस्य एव कुपरिणामोऽद्य दरीदृश्यते । एषा भेदवाणीप्रक्रिया नूनं यावनीं गतिं संगृहीष्यति । अत एवास्माभिः समये जागृतिमासाद्य तन्निरोधे विरोधे च संप्रयतितव्यम् ।

यदि नवकाश्मीरीशब्दकोशः सज्जितः प्रकाशितोऽप्रकाशितो वा विद्यते, तस्य सन्निरीक्षणपरीक्षणे विना शिक्षाक्षेत्रेषु लोकेषु वा कथंचिदपि संप्रयोगो न विधातव्यः । वयं पृच्छामः, कथमस्मिन् सोदाहरणं प्राक्तनश्रेष्ठसारिणीमपाहृत्य संस्कृतशब्दानां बहिष्कारं कृत्वा तस्थाने परकीयशब्दानामेव हठवादेन समायोजनं स्वीकृतम् ! एवं व्युत्क्रमेण तु नूनं मूलभाषालोपः स्यात् । तददर्शनेन च मौलिकता एवास्तंगता भवेत् । तदा हिन्दकाश्मीराभिन्नसंबन्धोऽपि शैथिल्यमाप्य विश्वविदां महात्मनां कृते शंकापंककलंकाकृतिविशेषं समुपस्थापयेत् । नैतत् सत्योन्मूलनं भारतानां शोभास्पदं संभवेत् । अत एवास्मिन् विषये 'भूय एवास्माभिः सत्यं सत्त्वं संरक्षितुं सर्वप्रथमं हि अत्रत्यशिक्षाक्षेत्रं संपूर्णोद्यमेन सम्मार्जनरीत्या समालोचयितव्यम् तदर्थं चं सदा स्मर्तव्यम्,

अस्ति संकीर्तितापूर्वं काश्मीरेषु सरस्वती ।
एतां कथां विजानीयान्नव्या भारतभारती ॥

# स्वातन्त्र्योत्तरकालीने

## संस्कृतसाहित्ये कश्मीरस्य योगदानम्

डॉ० रामलखन पाण्डेयः

सहोदराः कुंकुमकेसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासाः ।
न शारदादेशमपास्य तेषामन्यत्र दृष्टः क्वचन प्ररोहः ।।

इति प्रसिद्धं पद्यं कश्मीरस्य विलक्षणां कामपि प्रशस्तिं पुरस्करोति । भारतस्य मौलिभूतः कश्मीरप्रदेशः प्राचीनकाले मध्यकाले च संस्कृतस्य सर्वातिशायिनीं सेवां विदधानो दृश्यते । अन्यत्र दुर्लभं वस्तु कश्मीरे सामान्यमिति वर्णयन् राजतरंगिणीकारः कथयति-

विद्यावेश्मानि तुङ्गानि कुंकुमं सहिमं पयः ।
द्राक्षेति यत्र सामान्यमस्ति त्रिदिवदुर्लभम् ।।

किन्तु सोऽयं विद्याप्रकृतिकान्तः काश्मीरप्रान्तः आधुनिके युगे संस्कृत-भाषासत्कारे विद्यापरिष्कारे च दैन्यमुपगतः । तस्य कारणमस्ति । भारतस्य पश्चिमोत्तरसीमान्ते स्थितत्वात् संवत्सराणां सहस्राधिकं कालं यावदयं प्रदेशो वैदेशिकानामाक्रमणकारिणां पदैर्दलितः सर्वाधिकं बभूव । म्लेच्छ-राज्यमिदमिति मत्वा ब्राह्मणाः वारं वारं बहुसंख्यायां कश्मीरस्य सीमानं परित्यज्य भारतस्यान्यभागेषु पलायिताः । ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्डग्रन्था-नुसारेण गौडाः सारस्वताश्च ब्राह्मणा कदाचित् काश्मीरदेव निर्गत्य देशस्य विविधेषु भागेषु प्रतिवसन्ति ।

अतिदीर्घसमयान्तरालव्यापिनि विकराले तादृशि विप्लवबाहुल्ये जातेऽपि काश्मीरस्य तथा शोचनीया दशा नासीत् यथाधुना भारतस्य स्वातन्त्र्योत्तरकाले वर्तते । मुस्लिमबाहुल्येन, राजकीयशासनस्य संस्कृति-विद्यावैमुख्येन पाश्चात्यपद्धतिपारवश्येन च प्रदेशेऽस्मिन् शनैः शनैः

संस्कृतज्ञानां संख्या इयती संक्षिप्ता यत्साम्प्रतं तत्र संस्कृतसाहित्य-संवर्धनपराः विद्वांसः अस्माभिरङ्गुलिषु गण्यन्ते ।

## जम्बूनगरस्य योगदानम्

काश्मीरप्रान्ते जम्बूनगरं श्रीनगरं चेति विद्यायाः केन्द्रद्वयं वर्तते । जम्बूनगरे काश्मीरस्य दक्षिणो भागः संगच्छते। श्रीनगरे च काश्मीरस्योत्तरभागः परिगण्यते । तत्र प्रथमं जम्बूक्षेत्रस्य स्वातन्त्र्योत्तर कालीनं संस्कृतसाहित्यावदानं प्रस्तूयते ।

### १- रामकृष्णशास्त्रीः

जम्बूनगरे सम्प्रति शय्याग्रस्तः कविः रामकृष्णशास्त्री स्वातन्त्र्योत्तर-भारते प्रान्तीयभाषायाः, हिन्दीभाषायाः, संस्कृतभाषायाश्च निरन्तरं काव्यकलां कलयन् महतीं ख्यातिप्राप्नोत् अमुना तपःपूतेन विदुषा संस्कृत भाषायां खण्डकाव्यानि, रूपकाणि, शतकानि, चम्पूकाव्यं कथासंक्षेपः, लेखादयश्चेति विविधां सामयिक्यो रचनाः कृताः । खण्डकाव्येषु तस्य १-ताराचरितं २- चण्डदेवचरितं चेति कृतिद्वयं लभ्यते । एतद्द्वयमपि सप्तमदशके प्रकाशमानायां जम्बूनगरस्य मासिक-संस्कृत-पत्रिकायां प्रकाशितम् । रूपकेषु ३- राजदुहिता ४- दुर्गरोद्धारः ५- ब्रह्मदर्शनम् ६-अद्भुतविद्यालयः ७- जयपराजयः ८- तीव्राघातः९ -मृतायते जीवायते १०-स्वयंवरः ११-स्वर्णकङ्कणम् १- अञ्जनारञ्जनं चेति कृतयः सन्ति । एतेषु राजदुहिता अंकत्रयात्मकं रूपकं वर्तते, अन्यानि एकांकरूपकाणि सन्ति । तत्र राजदुहिता, स्वयंवरः, स्वर्णकङ्कणं चेति ''संविद्'' नाम्न्यां पत्रिकायां प्रकाशितानि । दुर्गरोद्धारस्य ब्रह्मदर्शनस्य च प्रकाशनं ''सुप्रभातम्'' पत्रिकायां संजातम् । अन्येषां पाण्डुलिप्यः कविगृहे सन्ति । शतकेषु १३-नेहरूशतकम् १४- इन्दिराशतकम् १५- शेखशतकम् १६-स्वातन्त्र्योत्तरभारतं चेति चत्वारि शतकानि सन्ति । तत्र इन्दिराशतकं ''सुप्रभातम्'' पत्रिकायां प्रकाशितम् । अथास्य शास्त्रिवर्यस्य १७-अभिनवदुर्गरदर्शनं नामैकं चम्पूकाव्यं वर्तते, यत्र जम्बूक्षेत्रे ''डोगरा'' समाजस्य मानवीयं चित्रणं कृतमस्ति । एतदतिरिक्तं रामकृष्णशास्त्रिणः १८- कादम्बरीकथासागरः नाम्ना प्रकाशितः कथासंक्षेपः वर्तते ।

१९- महामतिमोक्षमूलरः २० पुत्रजिज्ञासा २१ हिन्दूविवाहश्चेति शास्त्रिवर्यस्य प्रमुखाः निबन्धाः क्रमशः सागरिकायां, परमार्थसुधायां विमर्शपत्रिकायां च प्रकाशिताः ।

## २- शुकदेवशास्त्री

जम्बूक्षेत्रे साम्बाजनपदे पाटीग्रामे समुत्पन्नस्य शुकदेवशास्त्रिणः १- जितमलचरितम् २- स्वच्छन्दत्रिवेणी ३- शुकोद्गारसंग्रहश्चेति त्रीणि खण्डकाव्यानि सन्ति । आद्यं काव्यद्वयं तेन स्वीयधनव्ययेन प्रकाशितम् । एतदतिरिक्तं ४- तौषीशतकम् ५- दुर्गरस्तुतिश्चेति तस्य अन्यदपि कृतिद्वयं वर्तते । कवेः इमानि काव्यानि तस्य भ्रातृव्यगेहे जम्बूनगरस्य रघुनाथ-पुस्तकालये च सन्ति ।

## ३- कृपारामशास्त्री

जम्बूमण्डले प्लांवाला-ग्रामे लब्धजन्मा कृपारामशास्त्री अनेकानि भगवत्स्तुतिप्रधानानि लघुलघूनि काव्यानि विरच्य १९५९ खृस्ताब्दे दिवङ्गतः । तेषुं लघुकाव्येषु १- पीयूषगंगा २- स्तोत्रपञ्चामृतम् ३- स्तोत्रत्रयी ४- पञ्चायतनदेवमानसपूजा ५- देविकालहरी ६- गीतासारः ७-सत्यं परं धीमहि इत्यादीनि मुख्यानि सन्ति । तानि प्रायशः अप्रकाशितानि तद्वंशजानां संरक्षणे सन्तीति श्रूयते । शास्त्रिवर्यस्य ज्येष्ठस्तनूजः संस्कृतज्ञो गौरी- शंकरशर्मा पितुः पीयूषगंगा-नामधेयस्य शिवस्तवस्य संस्कृतहिन्दी टीकाद्वयोपेतं प्रकाशनं कृतवान् ।

## ४- केदारनाथशास्त्री

जम्बूनगरे समुत्पन्नः केदारनाथशास्त्री भारतसर्वकारस्य केन्द्रीय-शासनान्तर्गतपुरातत्त्वविभागे उपसंचालकपदमधिकृत्य आलङ्गहिन्दी-भाषाभ्यां सह संस्कृतभाषायामपि पुस्तकद्वयं लिखितवान् । तत्र प्रथमं ''सिन्धुसभ्यतासमीक्षा''-नामकम् ऐतिहासिकं पुस्तकं वर्तते । द्वितीयं ''तौषीशतकं'' नाम काव्यं ''तवी'' इत्याख्यायाः नद्याः महिमानं प्रस्तौति।

## ५- जगन्नाथो वासिष्ठः

वासिष्ठोऽयं कविः पाकिस्तान -विप्लवानन्तरं जम्बूतः पूर्वदिग्वर्तिनि, साम्बानगरे कृतवसतिः सुरभारतीं सेवमानः १- मानसरामराज्यनवकम् - गीतागीतम् ३- श्यामाशोकदशकम् ४- अष्टग्रहीगीतं चेति चत्वारि लघुकाव्यानि विरचितवान् । एतानि काव्यानि यथासमयं अयोध्यायाः संस्कृतमितिपत्रे, नागपुरस्य संस्कृतभवितव्यमितिपत्रे, जयपुरस्य भारतीपत्रे च प्रकाशितानि ।

## ६- वेदकुमारी घई

जम्बूनगरवास्तव्या जम्बूविश्वविद्यालयस्य संस्कृतविभागाध्यक्षा चासौ विदुषी हिन्दीमाध्यमेन ग्रन्थसंपादनादिकार्यबलेन च संस्कृतं सोत्साहं सेवमाना स्वपत्युः रामप्रतापस्य सहभागितायां ''उर्मि'' इति स्वकीयं कवितासंग्रहं प्राकाशयत् । अस्याः विदुष्याः ''काश्मीर का संस्कृत-साहित्य को योगदान'' इति हिन्दीपुस्तके प्राचीनसंस्कृतसाहित्ये काश्मीरस्य योगदानं प्रतिपादितम् ।

# श्रीनगरस्य योगदानम्

## ७- अमरनाथकाकः

श्रीनगरस्य सारस्वतब्राह्मणकुले लब्धजन्मा अमरनाथकाकः १९४७ ख्रिस्ताब्दे मध्यप्रदेशस्य गोपाचलं भोपालं स्ववसतिं विधाय तत्र मेखला-संस्कारविषये गायत्रीमन्त्रार्थोपबृंहितं ग्रन्थं लिखितवानिति विश्वसंस्कृत-शताब्दीग्रन्थस्य प्रथमभागेन ज्ञायते ।

## ८- पुष्करनाथशास्त्री

श्रीनगरे १९३२ ख्रिस्ताब्दे समुत्पन्नः कविरसौ स्वीयानामनवद्यानां पद्यानां संग्रहं ''वासन्ती'' इति नाम्ना प्राकाशयत् ।

## ९- बद्रीनाथशास्त्री

काश्मीरिकस्य बद्रीनाथस्य पद्यरचनासु ''जवाहरप्रशस्तिः'', कल्हण-

जीवनचरितं चेति प्राधान्यं भजतः । काश्मीरिकशब्दानां प्रभवस्थानं संस्कृतमेवेति शोधपूर्णो निबन्धोऽप्यस्य विदुषः वर्तते ।

## १०- गोविन्दभट्टः

श्रीनगरस्य रैणावाटिका-जनपदे स्थितः गोविन्दभट्टः स्वातन्त्र्योत्तर-कालीनं संस्कृतं सेवमानः संस्कृतनिबन्धलेखने पद्यरचनायां च विशिष्टां गतिमादधाति । काश्मीरस्य ''श्रीः'' पत्रिकायां तस्य अनेके लेखाः प्रकाशिताः सन्ति । एतदतिरिक्तं भट्टमहोदयस्य ''शिवरात्रिनिर्णयः'' इत्येकं स्वतन्त्रं पुस्तकं वर्तते । ज्योतिर्ग्रन्थस्य केशवजातकपद्धतेः संस्कृत-प्रकाशनमपि तेन कृतम् ।

## ११- नाथरामशास्त्री

श्रीनगरस्य गणपत्यारोप-मण्डले लब्धजनिः पण्डितो नाथरामशास्त्री १९६१ ख्रिस्ताब्दे ''विष्णुसहस्रनामविलासं'' नाम काव्यमलिखत्, यत्र विष्णोः एकैकं नामाधिकृत्य स्वनिर्मितैः प्राञ्जलपद्यैः तद्गतामन्वर्थतां साधु साधयामास ।

# काश्मीरशैवदर्शने योगदानम्

## १२- बलजिन्नाथपण्डितः

काश्मीरिकीं प्राचीनां संस्कृतिं वर्तमानेऽप्यक्षुण्णं निर्वहतः बलजिन्नाथ-पण्डितस्य जन्म १९७२ वैक्रमेऽब्दे काश्मीरस्य कुलग्रामे नाम ग्रामेऽभवत्। साम्प्रतं चासौ मनीषी जम्बूनगरस्थे केन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठे शैवागमदर्श-नमधिकृत्य बृहत्शब्दकोषरचनायां व्यापृतः शोभतेतराम् । काश्मीर-शैवशास्त्रे लब्धप्रतिष्ठस्य पण्डितप्रवरस्य ''स्वातन्त्र्यदर्पणो'' नाम पद्य ग्रन्थः शैवागमशास्त्रस्य सिद्धान्तसरणिं युगानुरूपं प्रकाशयति । तत्रभवतः द्वितीया संस्कृतरचना ''शैवाचार्यो नागार्जुनः'' इति नाम्ना प्रकाशिता । तृतीयश्च ''आत्मविलासविमर्शिनी'' नाम ग्रन्थः यन्त्रस्थः वर्तते । एतदतिरिक्तं पण्डितो बलजिन्नाथः '' ललितास्तवरत्नं '' नाम स्तोत्रं '-'महानुभवशक्तिस्तोत्रं'' च सटीकं प्राकाशयत् । हिन्दीभाषायां ''काश्मीरशैवदर्शनम्'' इति पुस्तकमपि विरच्य तेन प्रकाशितम् ।

## १३- दीनानाथयक्षः

काश्मीरशैवागमसिद्धान्तानां प्रवक्ता दीनानाथयक्षः हरशास्त्रिकृतायाः पञ्चस्तवीटीकायाः, हरिहरस्तोत्रस्य, अमरनाथमाहात्म्यस्य च प्रकाशनमकरोत् ।

## १४- द्वारिकानाथशास्त्री

जम्बूनगरवास्तव्यो द्वारिकानाथशास्त्री ''परमार्थसारस्य'' नाम शैवागमग्रन्थस्य व्याख्यामकरोत् ।

## अन्येषां काश्मीरिकाणां योगदानम्

१- पृथ्वीनाथपुष्पः सन् १९५८तः ६१ई0 यावत्कश्मीरस्य शोधप्रकाशनविभागे उपनिदेशकस्सन् संस्कृतंसेवमानः ''गुरुनाथपरम्परा'' नामकस्य ग्रन्थस्य संपादनं, हरभट्टशास्त्रिणः ''पञ्चस्तव्याः'' प्रकाशनं काश्मीरिक-विशिष्टपारिभाषिकशब्दानां विवेचनं चाकरोत् । २- शिवनाथशर्मा ''अमरनाथमाहात्म्य-महाराज्ञीप्रादुर्भाव-शारिकामाहात्म्या'' दीनां संस्कृतग्रन्थानां हिन्द्यनुवादेन संस्कृतग्रन्थप्रकाशनेन च संस्कृतं सेवितवान्। ३- बद्रीनाथकल्लामहोदयस्य संस्कृतपद्यानि निबन्धाश्च विविधासु पत्रिकासु प्रकाशिता भवन्ति । ४- नीलकण्ठगुर्टू महोदयेन सार्धैकशतं काश्मीरिक-संस्कृतपाण्डुलिपीनां सूची निर्मिता, जोनराजकृतराजतरंगिण्याः हिन्द्यनुवादो विहितः, क्षेमराजस्य प्रतिज्ञाहृदयमिति ग्रन्थस्य हिन्द्यनुवादेन सह तद्गतानां पारिभाषिकशब्दानां विशदीकरणं च कृतम् । तदेतत्सर्वं काश्मीरविश्वविद्यालयस्य शोधविभागे वर्तते ।५ जगद्धरजाडूः द्वादश-संस्कृतग्रन्थानां संपादनप्रकाशनं कृतवान् । सः श्रीनगरस्य ''शारदापीठ रिसर्च'' इति संस्कृतपत्रिकायाः संपादनमपि करोति स्म । ६- १९५० खिस्ताब्दे दिवङ्गतः काकारामशास्त्री ''अभिनवपुराणम्'' यस्यापरं नाम '' ब्रह्मवधू '' रित्यासीदित्येकं वर्तमानयुगस्य महत्त्वपूर्णं संस्कृतग्रन्थं लिखितवानासीत्, किन्तु रामेश्वरयात्रायां मार्गे गन्त्रिकायां कम्बलेन सह स महाग्रन्थोऽपि केनचिदकाण्डे चोरितः । तदुःखवशादेव न काश्मीर-

संस्कृतसमाजस्य दधीचिरसौ लेखकः दिवङ्गतः ।

## संस्कृतपत्रिका

१- भारतस्य स्वतन्त्रतालाभात्पूर्वं काश्मीरे ''श्रीः'' नाम्नी संस्कृत-पत्रिका सहस्रशोऽप्यध्येतॄणां मनःसु भारतीयज्ञानविज्ञानपाथोनिधेर-मृतकल्लोलान् प्रसारयति स्म । स्वतन्त्रतालाभोत्तरकाले किञ्चित्कालं यावत् ''शारदापीठरिसर्च'' नाम्नी पत्रिका आङ्ग्लभाषया सह संस्कृतेनापि प्रकाशिता भवति स्म । ख्रिस्तस्य सप्तमे दशके पञ्चषवर्षाणि यावद् जम्बूतः ''सुप्रभातम्'' मासिकी संस्कृतपत्रिका प्रकाशमाना दृश्यते ।

# CONTRIBUTION OF KERALA TO MODERN SANSKRIT LITERATURE

Dr. N. P. Unni

Despite the overall fall in standards especially in the field of Sastraic studies, Sanskrit continued to flourish in Kerala in the literary domain. The influence of Western Literature and the development of the vernacular languages have in a way enriched the Sanskrit literary field during the last four decades. Writers who had imbibed the traditonal pattern have begun their writings in the old forms, but gradually shifted to the modern genres of composition. Even those who began with *Mahākāvyas*, Dramas, Lyrics, Message poems and stotras gradually shifted to more modern genres like short stories, serious essays, free verses and other varieties. This is mainly due to the publication of journals from Kerala as well as from different parts of the country.

It seems that the twentieth century writers of Kerala took to the composition of *Mahākāvyas* as a prestigeous literary effort. As a result we have quite a number of standard Mahakavyas which have won Academy awards for their authors and brought glory to the language.

## Mahakavyas

Prof. K. Balarama Panicker composed a Mahākāvya called *Śrīnārāyaṇavijaya*, a work in twenty-one cantos and consisting of one-thousand and five hundred stanzas set in a variety of classical metres. *Śrīnārāyaṇagurudeva,* the famous religious mendicant and social reformer forms the central character of the poem. His contacts with the great leaders of the period like Rabindranath Tagore, Chattampi Swami and Mahatma Gandhi and his activities like the establishment

of Āśramas and consecration of temples lent ample scope for the author.The author has also composed a modern drama called *Annadātṛcarita* on a historical character mentioned in Sangham literature where a Cera King called PerumChottudayan provided food to the warriors in the Mahābhārata war.

Prof. K.N Ezhuthacchan composed a historical Mahākāvya called *Keralodaya* in 21 cantos containing 2500 verses in a variety of classical metres. The history of Kerala from its traditional origin at the hands of sage Paraśurāma upto the formation of the modern state covering a period of nearly two thousand years from the subject matter. The theme-a mixture of legend and history is significantly anranged into five sections called *Mañjarīs* such as *Svapna, Smṛti, Aitihya, Bodha* and *Citra*. The Marxian bias of the author is evident from the last cantos of the work which deal with the history of the last four decades; the struggle for freedom and consequent events. As a poetry the work occupies a high standard and it naturally won an award from the Sahitya Akademi.

Prof. P.C. Devassia, a Christian scholar has produced a Mahākāvya called *Kristubhāgavata* giving a complete account of the life of Jesus Christ in 33 cantos commensurate with the life span of the prophet. The familiarity of the author with the Hindu mythology and Philosophy has added a rare value to the composition which won a prestigeous award from the Sahitya Akademi. All the important events in the life of Christ are described here in a chaste and lucid style of classical poets.

Dr. P.K Narayana Pillai, a former Principal and Professor of Sanskrit in the Kerala University has the distinction of composing two great Mahākāvyas the *Visvabhānu* and the Dharmasāgara. The first one deals with the life of Svāmi Vivekānanda in 21 cantos and 555 stanzas. The hero is not only portrayed as a great spiritual leader but also first and foremost of the Karmayogis that India had ever produced. The author

has drawn his ideas from authentic accounts of the great saint written by a host of authorities like Romain Rolland. His *Dharmasāgara* is a companion volume to one dealt with here. It deals with the life of the great master Srī Ramākrishna Paramahaṁsa in 18 cantos.

A modern scholar named Muthukulam Sridhar has composed three Mahākāvyas in Sanskrit. His *Navabhāratam* in 18 canatos deals with the story of the modern period of Indian history. The struggle for Independence and the story after the historic event form the central theme. The roles of the architects of modern India like Motilal Nehru, Jawaharlal Nehru, Mahatma Gandhi, Subashchandra Bose and others are well brought out. The work proves that Sanskrit can very well be an effective medium to deal with even modern events.

His *Srīvidyādhirājavijaya* in 19 cantos purports to be a biography of Vidyādhirāja alias Caṭṭampisvāmi, a modern social reformer of Kerala who joined hands with *Srīnārayaṇaguru.* Contemporary dignitaries are also referred to by the poet since they had maintained contacts with the hero of the poem.

The *Nāyakābharaṇa* or *Aṣṭālayanāyakīya* is the third Mahākāvya of the poet and it consists of 19 cantos dealing with the history of the state of Travancore. The 18th century ruler of Travancore, King Mārtāṇḍavarma and his exploits form the central theme and his conflicts with the chieftains of the eight prominent families of the State provide ample scope for the poem.

Others too tried their hands at this genre dealing with the life of Christ, Gandhiji, Srī Rāmakrishna and others. The interest evinced by these writers still continues with unabated vigour.

## Dramas

The twentieth century dramas differ much from the traditional concepts both in their theme and structure.

While the traditional rules of dramaturgy are discarded novel themes from contemporary literature and history are adopted effectively. Among the modern plays the following may be noted. Krishnachandra (Āttūr Krishna Pishāroti) has composed three plays having seven acts each. They are : *Rakṣāpuruṣaka*, *Samanvaya* and *Yogollasita* all drawing their theme from the medieval history of Kerala. Prof. V. Krishana Tampi, a formar Principal of the Sanskrit College has composed 8 plays with themes embracing Indian history, Kerala history and social life. Puranic themes too are dealt with by him giving a new twist in their outlook. His works not even generally divided into Acts in their strict sense are as follows: *Ajñātavāsa*, *Dharmasya Sūkṣmā gatiḥ*, *Draupadīvijaya*, *Lalitā*, *Dhruvacarita*, *Pratikriyā*, *Vanajyotsnā* and *Peṭikāsannyāsī*. They were written by the author to be enacted during the Annual Sanskrit College day Celebrations. Steeped in the cultural heritage of India, the author had imbibed Western thoughts and manners. This is reflected in his works in a fine blend.

T. Gaṇapati Śāstrī has composed a short play called *Mādhavīvāsantīyam* based on an English theme. The *Gairvāṇīvijayam* of Prof. A.R. Rājarājavarma deals with the progress of Sanskrit education in the state. While the above mentioned plays show some progressive outlook stereo-typed plays were also composed by some writers drawing on the puranic themes and embracing the genres like Bhāṇas and allegorical plays.

## Lyrics

At the initial stages of the modern development lyrics were composed following the well-known models presented by classical poets. This dependence was visible both in the style of composition and in the selection of themes. Great works were either emulated or translated from regional languages into Sanskrit. Classical poets of the vernacular especially the trio of the present century Malayalam literature viz; Ullūr S. Parameswara Iyer, N. Kumaran Āsān and Vallathol Nārāyaṇa Menon have composed quite a number of

Lyrics of a high standard that suited to the Sanskrit idiom. These were freely translated in to Sanskrit. The *Premasamgīta* and *Sītāvicāralaharī* by N. Gopala Pillai, a former Principal of the Sanskrit College, are translations of the originals by Ullūr and Āsān mentioned above. Dr. P. K. Narayana Pillai translated *Mayūrasandeśa* of Kerala Verma into Sanskrit under the title *Mayūradūta*. This fancy has really enriched the Sanskrit literature of the modern period. A host of modern writers of different poetic calibre tried their hands in this direction. But a sense of dependence was always there in these compositions. It was only in religious verses called stotras that such writers could express their own sense of devotion.

## Devotional poems

There are quite a number of devotional poems by the writers of Kerala on the different deities of the land. Gods and Goddesses were invoked for blessings. The success of *Nārāyaṇīya* of Nārāyaṇa Bhaṭṭatiri of Melputtūr, a devotee of the lord of Guruvāyūr temple, provided the poets with a shining example. The number of poems and the number of writers who composed this class of literature could not be easily enumerated.

## The modern outlook

In spite of the fact that the author who tried their hands in the traditional genres had a progressive outlook if seldom found reflected in their compositions. The medium was not helpful for this. The authors themselves published most of the above mentioned works drawing on their own resources. They did not have to obtain the favour of any editor. Nobody prevented them from publishing their material at thier own cost. It is only the emergence of Sanskrit journals that set a standard for modernity.

## Journals of Kerala

There were several journals in Sanskrit published from Kerala. The Government Sanskrit College, Trivandrum, used to issue a journal called Citra for

several years. But it has ceased to exist for more than thirty years. Through the pages of these, a number of small works were printed.

The Sanskrit journal of the Kerala University Manuscripts Library mostly published works of a traditional nature like message poems, lyrics, Bhāṇas, campūs, prabandhas, panegyrics etc. But occasionally some items of modern interest also appeared through its pages. The letters written by T. Gaṇapati Sastri in Sanskrit to well-known scholars like Sylvan Levi, A.B. Keith, L.D. Barnett, Louis Renou and others are of contemporary interest. They deal with the situations of the modern times embracing the horrors of the World war etc. But such items were rare.

The Journal of the Ravi Varma Saṅskṛta Granthāvalī published from Trippunithura, began its appearance in January, 1953. It appeared four times a year and it continued its publication till October, 1967 with number Four of volume XV. In addition to traditional items of publication of old works from manuscripts it incorporated modern writings too of a serious nature and variety. Some of the items published throught its pages are:

(1) an articles on temple arts in Sanskrit by Prof. K. Rama Pisharoti, (2) a series of articles on the *Pancakarma* mode of treatment by Trkkovil Achutha Varier, (3) a serial on Jyotisa by Pandit K.N Subramania Sastri, (4) a short story entitled 'Pāritoṣikam' by P.S. Subbarama Pattar,(5) well arranged lessons in music (6) on what is life by P.S' Subbarama Pattar, (7) on *Tarkaśāstra* by K. Raman Nampyar, (8) on leprosy by Achuta Varier, (9) on liberation, (10) the horoscope of *Saṅkarācārya* and its discussion (11) on the inference of God; etc.

In addition a host of writers contributed devotional lyrics on the God of Trippunithura called Pūrṇatrāyīśa, and on the lord of Guruvāyūr lyrics of eulogy on the model . of *'Suprabhāta'* too appeared in several issues

relating to various deties. Reports on Sanskrit assemblies, homages to patrons, obituary notices, congratulatary stanzas, reviews etc; filled the pages of these numbers.

The journal is now re-introduced under the name *'Pūrṇatrayī'* the first issue of which appeared in January, 1989 on Vol. XVI No. 1 and it is being issued twice a year.

Eranallur Bharata Pisharoti who has done much for the propagation of Sanskrit in the modern times had issued a journal for about 5 years. His Journal *'Kāmadhenu'* catered to the interest of modern people and successfully propagated contemporary ideas through the Sanskrit medium. It was a bilingual journal as in the case of the other two mentioned earlier.

A bold and successful attempt at issuing a pure Sanskrit journal was launched by Asokan Puranāṭṭukara from Trichur as a bi-annual from 1979 onwards. Till date 45 issues of the journal named *'BHĀRATAMUDRĀ'* appeared. Each number consisted of not less than 32 pages and it is now in the 8th year of publication, with no dearth for Sanskrit articles.

The record of this popular journal is quite envious. It has already published more than 75 short stories dealing with the contemporary social life, historical events, caricatures of political events, tricks of politicians on the common man, recreations based on some interesting aspects of mythological and puranic themes etc. Some of the stories introduce animal world as in Walt Disney's stories-the intention being to illustrate morals.

About 40 dramas worthy to be enected on the modern stage had already been published. Most of them were represented on the stage on the days of Sanskrit Festival celebrated in different parts of the state. The originality of the theme was always there. Contemporary incidents too found acceptance at the hands of resourceful writers, for instance, there was a tragedy in which several people lost their life by drinking adulterated liquor. The local Government was forced to take action and a public outcry was there.

The incident was dramatised under the title "*Madirāviṣāda*" by Lakṣmī Nārāyaṇa, a Professor of Sanskrit. Dramas from the local vernacular were often translated into Sanskrit. Another interesting series of plays were introduced and they could be represented in twenty minutes duration.

More then 150 lyrics have already alpeared through this journal. Those set in classical metres, vernacular dravidian metres and in free verses provided a rich variety for the reader. They are modern poetry in the true sense of the term. Translation from the other Indian languages too appeared occasionally. The only form yet to appear is that of a modern full-fledged novel. Nobody has seriously attempted in this direction.

Who are the contributors to these journals? Retired Sanskrit teachers, of course, do their best. But the most encouraging aspect is that youngesters working as Sanskrit teachers in the different schools and colleges, and laymen with proficiency have taken it to their heart to contribute to the periodical. The editor claims that he has never experienced any dearth for articles though he is intrigued often by the lack of variety. Verses in the form of hymns to local deities pour in at a fast pace flooding his desk.

## Future Prospect

The future of modern Sanskrit is not bleak. Since the language has a wonderful felicity for adoption to various concepts including modern scientific topics, a resourceful author could always express his thoughts effortlessly. Introduction of loan words from modern Indian and world languages has come to stay and no eye-brow is twisted in modern times when one uses words like Glastnost and Peristroika, whatever be the medium one writes. The rigour of Paṇinian grammar which used to worry the puritans do not trouble the

modern writers, though he is not at all against grammar as such. In short, Sanskrit writers have awakened to the needs of the changing situations of the modern world. He is no more restricted to his home-land. Before him the whole world presents itself as a unit demanding his attention and thus the old dictum *"Vasudhaiva Kuṭumbakam"* has once again acquired a true significance.

# मध्यप्रदेश का आधुनिक संस्कृत साहित्य

डॉ0 राधावल्लभ त्रिपाठी

मध्यप्रदेश इस महादेश का हृदय है। कालिदास और भवभूति के काव्य के मृदंगमांसल मनोहर स्वर यहीं मुखरित हुए, भोज और राजशेखर ने साहित्य साधना यहीं की। हस्तिनापुर और कान्यकुब्ज सी राजधानियों की अपेक्षा पहले भी कालजयी रचनाकर्म यहाँ कदाचित् अधिक हुआ, और आज भी महानगरों की आपाधापी, प्रतिद्वंद्विता और राजनीतिक प्रपंच से कुछ दूर यहाँ के शांत जनपदों में महत्त्वपूर्ण और सार्थक लेखन की संभावना अधिक देखी जा रही है।

आधुनिक साहित्य में आधुनिकता का संक्रांति-बिन्दु कौन सा और कहाँ से माना जाय इस पर अधिक विवाद में न पड़ते हुए यहाँ यह कहना उचित होगा कि विश्व और देश में बदली राजनीतिक, सामाजिक स्थितियों के बोध के साथ समग्र राष्ट्र के ऐकात्म्य के प्रति दृष्टि कम से कम एक व्यावर्तक है जो काल और विषयवस्तु की दृष्टि से आधुनिक (संस्कृत) साहित्य का उपक्रम कराता है। म0 प्र0 में लिखे गये संस्कृत साहित्य को इस दृष्टि से स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व का साहित्य और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् का साहित्य-इन दो कोटियों में बाँट सकते हैं।

## १. स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व का साहित्य

१.**पण्डित उर्वीदत्त शास्त्री** का जन्म गढ़वाल के डांगग्राम में सन् १८६८ ई0 में हुआ। पिता बद्रीदत्त स्वयं संस्कृत-पंडित और धार्मिक व्यक्ति थे। उर्वीदत्त जी ने लाहौर जाकर संस्कृत विद्यालय से शास्त्री परीक्षा पास की। इन्होंने पन्द्रह सर्गों में ''**एडवर्डवंशमहाकाव्यम्**'' की रचना की, जो टिहरी नरेश की सहायता से १९०५ ई0 में छपा।

१९१९ ई0 में शास्त्री जी घूमते हुए भोपाल आये। बेगम साहिबा, भोपाल ने उनकी नियुक्ति भोपाल के राजवंश का इतिहास लिखने के लिये कर दी। इन्होंने इसी वर्ष से ''सुलतानजहाँविनोदमहाकाव्यम्'' लिखना आरंभ कर दिया, जो १९३५ में पूरा हुआ। इस महाकाव्य में २००० श्लोक हैं। भोपाल के शासक नवाब हमीदुल्ला खाँ ने दो हजार रुपये का नज़राना दिया और २५ रु0 मासिक पेंशन बाँध दी। जीवन

के अंतिम समय शास्त्री जी वापस अपने गाँव चले गये ।

२. **श्रीपाद शास्त्री हसूरकर** का जन्म १० जून १८८२ में कोल्हापुर के हसूर ग्राम में हुआ । काशी में ज्ञानार्जन के अनंतर १५ सितम्बर १९१३ से ये राजकीय होल्कंर संस्कृत महाविद्यालय, इन्दौर में व्याख्याता नियुक्त हुए । कुछ समय पश्चात् यहाँ से अवकाश लेकर ''फिलासफी इंस्टीट्यूट'' आमड़नेर में भारतीय दर्शन के प्राध्यापक रहे । इस संस्था से निवृत्ति लेकर महाराजा यशवंतराव (इंदौर) के धार्मिक शिक्षक रहे और १९२० से होल्कर महाविद्यालय में पुनः अध्यापन आरम्भ कर १९२२ में यहीं प्राचार्य बने । १९४० में यहाँ से सेवानिवृत्त होकर इंदौर में ही शेष जीवन रहे ।

स्वतन्त्रता संग्राम के राष्ट्रीय नव जागरण के उस काल में, पं0 हसूरकर ने ''**संस्कृतभारतनररत्नमाला**'' नाम से एक ग्रंथशृंखला का प्रणयन करते हुए श्लाघ्य उपक्रम किया । इस शृंखला में सरल, सुबोध और प्रवाहपूर्ण गद्यशैली में पन्द्रह पुस्तकें श्री हसूरकर ने लिखीं, जिनमें कुल छः उनके जीवन-काल में छपीं । इन पन्द्रह पुस्तकों में क्रमशः राणा प्रताप, वल्लभाचार्य, शिवाजी, समर्थ रामदास, पृथ्वीराज, गुरु नानक, महावीर, बुद्ध, राजस्थान और महाराष्ट्र की रमणियों, महाराष्ट्र और सौराष्ट्र के क्षत्रिय वीरों, महाराष्ट्र के ब्राह्मणों, शंकराचार्य और विजयनगर के सम्राटों की जीवनगाथा प्रेरणाप्रद रूप में अंकित है ।

''**मोक्षमन्दिरस्य द्वादशदर्शनसोपानावलिः**'' (१९३८) श्री हसूरकर का भारतीय दर्शन विषयक ग्रंथ है । दर्शन पर हिन्दी में भी इन्होंने पर्याप्त लेखन किया ।

३. **पं0 सदाशिव सीताराम मुसलगाँवकर** का जन्म १८ नवंबर १८८६ के दिन लश्कर (ग्वालियर) में हुआ । सन् १९०६ से ये यहीं शिक्षक रहे । १९२५ ई0 में ग्वालियर-नरेश द्वारा सरदार स्कूल में धर्मशिक्षक के पद पर नियुक्त हुए । २ अगस्त १९३० से शासन ने इन्हें संस्कृत महाविद्यालय ग्वालियर का प्राचार्य नियुक्त किया। इन्होंने शिन्देविलासचम्पू के अतिरिक्त शास्त्रीय विषयों पर निम्नलिखित छोटी-छोटी रचनायें लिखीं थीं- धर्मशास्त्रीयव्यवस्थासङ्ग्रंहः, भ्रातृकन्यायाः पैतृकरिक्थे ऽधिकारोऽस्ति न वा, वेदान्तविज्ञानम् तथा सुधारकशङ्कासमाधानम् । नारायणानन्दनृसिंहस्तुतिः, धन्वन्तरिस्तोत्रम्, श्रीनारायणस्तवः, श्रीजीवाजीमङ्गलम् तथा शिन्देवंशवर्णम् इनकी स्फुट पद्य रचनायें हैं ।

४. **पं0 लोकनाथ शास्त्री** का जन्म १८९० ई0 में पुरी में हुआ । प्रारंभिक शिक्षा पुरी में प्राप्त कर उच्चशिक्षा के लिये काशी गये । यहीं २८ वर्ष की आयु में इन्होंने प्रसिद्ध समाजसुधारक जैनधर्मगुरु संत गणेशप्रसाद वर्णी को पढाया । वर्णीजी इन्हें अपने साथ लेकर सागर आये । तब से शास्त्री जी ने सागर और जबलपुर की अनेक संस्थाओं में अध्यापन किया और जबलपुर में स्थायी निवास बनाकर मृत्युपर्यन्त

दुर्गा-सिद्धपीठ संस्कृत विधालय के संचालक रहे ।

शास्त्री जी ने समसामयिक स्थितियों से प्रभावित होकर त्रिपुर कांग्रेस - स्वागतानन्द-महोदधि-कल्लोलः नामक पुस्तिका लिखी । दादाष्टकम्, गणेशाष्टकम्, कृष्णाष्टकम्, रामाष्टकम्, सीताष्टकम्, शिवाष्टकम्, राधाष्टकम्, शारदाष्टकम्, गाँधीविजयमहाकाव्यम् तथा नर्मदातरङ्गिणी इनकी पद्यात्मक रचनायें हैं, जो सन् १९३१ से १९३६ के बीच लिखी गयीं ।

५. **पं0 गजानन रामचन्द्र करमलकर शास्त्री** का जन्म १८९५ में इन्दौर में हुआ। इनके पूर्वज सरदार कीबे के कुलगुरु रहे तथा ''उपाध्ये बुवा'' सरदार कहलाते थे और पुराणों-विशेषतया श्रीमद्भागवत में अच्छा अभिनिवेश रखते थे । रामचन्द्र का अध्ययन इन्दौर के होल्कर महाविद्यालय में हुआ । १९१९ में काव्यतीर्थ परीक्षा देने ये कलकत्ता गये । १९२३ में काव्यतीर्थ पदवी प्राप्त कर लौटे, उसी महाविद्यालय में सांख्य-योग और साहित्य के अध्यापक नियुक्त हुए । इसी बीच सांख्यतीर्थ तथा षड्दर्शनतीर्थ की परीक्षाएँ भी उत्तीर्ण करके होल्कर महाविद्यालय में ही प्राध्यापक तथा सेवानिवृत्तिपर्यन्त उपप्राचार्य रहे । १९५५ में सेवानिवृत्ति होने के पश्चात् गाँव-गाँव पदयात्रा कर संस्कृत शिक्षण का कार्य करते रहे; फिर इन्दौर में आजीवन निःशुल्क संस्कृत शिक्षण ये करते रहे[१] ।

संस्कृत-पद्य-रचना में करमलकर जी की पन्द्रह वर्ष की आयु से ही प्रवृत्ति हो गयी थी । छात्र जीवन में ही ''विद्यार्थी'' नामक संस्कृत पत्रिका मासिक या पक्षिक रूप से निकालते थे । चित्रकाव्यरचना में इन्होंने विशेष नैपुण्य अर्जित कर अनेक दुर्लभ चित्रकाव्यप्रकारों के उदाहरण प्रस्तुत किये । इनकी समस्यापूर्तियाँ भी उस समय अनेक संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं में छपीं[१]। सामाजिक स्थितियों पर **''संस्कृतशिक्षा''**, **''चीनाक्रमणम्''** **''मन्त्रिषु दृष्टिक्षेपः''** **''प्राचीनपण्डितेषु प्रदत्तस्याधिक्षेपस्य खण्डनम्''** जैसी कविताओं में काव्य प्रतिभा कम और विचारोत्तेजकता, ओजस्विता और भाषा का प्रांजल प्रवाह अधिक है । इस प्रकार के लगभग १०० स्फुट काव्य शास्त्रीजी ने लिखे । इनके अष्टककाव्य तथा स्तोत्र भी बहुसंख्य हैं।[२]

१९४२ ई0 में शास्त्रीजी ने **''लोकमान्यालङ्कारः''** का अपने खर्च से मुद्रण कराया । इस ग्रंथ में उन्होंने **''प्रतापरुद्रीयम्''** और **''एकावली''** की **''निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपम्''** वाली परंपरा का परिष्कार करते हुए १०० अर्थालंकारों के लक्षण बनाकर जो उदाहरण रचे, उनमें से अनेक में तिलक के जीवन और कार्यवृत्त का चित्रण है । जैसे ''रूपक'' का उदाहरण है-

बाले साक्षात् तपन उदिते स्वाभिमानेऽद्रिशृङ्गे

अस्तं प्राप्ता भुवनतलतः पारतन्त्र्यं दिवान्धाः ।

स्वातन्त्र्याख्यं विकसति चिरं पद्मजातं सुकोशं

मोदं प्रापुस्त्वरितमतुलं राष्ट्रभक्ताश्च भृङ्गाः ।। (पृ0 ५)

६. **पं0 सूर्य नारायण व्यास** का जन्म ११ फरवरी १९०२ में उज्जैन में हुआ। १९३७ में इन्होंने यूरोप भ्रमण किया। ज्योतिषशास्त्र में असाधारण गति होने से विभिन्न देशी राज्यों ने सादर आमंत्रित कर असकृत् इनका सम्मान किया। प्रदेश के सांस्कृतिक उन्नयन में व्यासजी का योगदान अभूतपूर्व है। १९५८ में पद्मभूषण तथा १९६३ में मानद डी0 लिट्0 से अलंकृत हुए।

१९३३ ई0 में व्यासजी ने स्वरचित स्फुट पद्यों का **''भव्यविभूतयः''** शीर्षक से संकलन किया। इस पुस्तक में ५६ श्लोक हैं।

७. **श्री प्रीतमलाल नृसिंहलाल कच्छी** कच्छ से जीविकोपार्जन के लिये इन्दौर आये और उन्होंने १९११ में यहाँ सिटी उच्च विद्यालय में शिक्षक का पद सँभाला। अनंतर ये इसी विद्यालय में प्रधानाध्यापक रहे, फिर स्थानांतरित होकर अहल्या बाई उच्च विद्यालय खरगौन में भी कार्यरत रहे। आराधनाशतकम् (१०२ पद्य, १९३०) शान्तिशतकम् (१६४ पद्य, १९२८), उन्नतिशतकम्, ब्रह्मचर्यशतकम् तथा भक्तिशतकम् इनके शतककाव्य हैं। मातृभूमिकथा (६०८ प0, १९३२) इनकी लिखी इतिहास की पुस्तक है, जिसमें स्कूल के विद्यार्थियों के हितार्थ प्रागैतिहासिक काल से ब्रिटिश शासन तक का भारतीय इतिहास संक्षेप में वर्णित है।

## (२) स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् का साहित्य

१. **पं0 सुधाकर शुक्ल** का जन्म उ0 प्र0 के इटावा जिले में क्योंटरा ग्राम में हुआ। श्री वनमाली दीक्षित तथा पं0 ललिताप्रसाद डबराल से इन्होंने शास्त्रों का अध्ययन किया। साहित्याचार्य प्रथम वर्ष उत्तीर्ण करके ही ये शासकीय सेवा में आ गये तथा पश्चात् काव्यतीर्थ और एम0 ए0 की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। म0 प्र0 के विभिन्न विद्यालयों में शिक्षक रहकर शास0 उ0 मा0 विद्यालय, बसई, के प्रधानाचार्य के पद से सेवानिवृत्त होने के पश्चात् इन्होंने दतिया में स्थायी रूप से अपना 'कविकुलाय' बसाया।

शुक्ल जी की प्रमुख रचनाएँ-गान्धीसौगन्धिकम् २० सर्गो का महाकाव्य, भारतीयस्वयंवरम् १२ सर्गों का महाकाव्य, देवदूतम् इन्दिरा गांधी पर खण्डकाव्य, दुर्गादिवनम् स्तोत्र, केलिकलशम् खण्डकाव्य तथा लवङ्गलता नाटक, इन्दुमती नाटिका तथा आर्यासुधाकरम् संकलन हैं।

शुक्ल जी की साहित्यिक उपलब्धियों का अतिरंजित बखान करने वाले पंडितों की कमी नहीं रही है, जो आधुनिक संस्कृत रचना और उसके मूल्यांकन दोनों की

दयनीय और वरणशील स्थिति का द्योतक है । अखिल भारतीय संस्कृत सम्मेलन, पटना में शुक्ल जी के **''गान्धीसौगन्धिकम्''** को पुरस्कृत करते हुए आधिकारिक घोषणा की गयी कि ''सुधाकर जी के समान महान् कवि संस्कृत में बिल्हण के पश्चात् दूसरा नहीं हुआ'' तथा वे ''इस शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ संस्कृत कवि'' हैं[३]। म0 प्र0 साहित्य परिषद् ने भी १९७८ में प्रदेश के श्रेष्ठ कवि के रूप में शुक्ल जी का सम्मान किया । उन पर दो लघु शोध प्रबंध एवं एक पी-एच0 डी0 प्रबन्ध प्रस्तुत हुए । जीवाजी वि0 वि0 ने उन्हें मानद डी0 लिट्0 से अलंकृत किया । **देवदूतम्** कई विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में रखा गया ।

शुक्ल जी जैसे संस्कृतज्ञों की दक्षता इसमें है कि वे शुक्तिरजतन्याय से मिथ्याकाव्य में सत्काव्य के औज्ज्वल्य, औदात्त्य और सौन्दर्य का भ्रम घटाटोप और संरम्भ के साथ खड़ा कर लेते हैं । ऐसे लोग अभ्यास और आयास से अर्जित परीरम्भक्रीडाचरणशरणा वाली पदावली और ऊपर-ऊपर से संकलित समकालीन स्थितियाँ या घटनाएँ इन दोनों का घालमेल करके नकली कविता का एक नुस्खा तैयार कर लेते हैं, और इस नुस्खे से थोक में कई महाकाव्य, खंडकाव्य नाटक आदि सहज में तैयार हो जाते हैं ।

**''देवदूतम्''** खण्डकाव्य के आरंभ में **''मन्दारद्रु-द्युति-मणिशिलालङ्कृता विद्रुमौष्ठी विद्युल्लेखा ललितकमला''** (कमला नेहरू) अपने पति (जवाहरलाल) को संबोधित करके कहती है-

त्वं देवोऽसि त्वमसि सुमनास्त्वं सुरस्त्वं दिवौका-
स्त्वं चादित्यः क्रतुभुगमरस्त्वं सुपर्वास्यमर्त्यः ।
गीर्वाणस्त्वन्दिविषदजरो निर्जरश्चादितेयो
दैत्यारिस्त्वं त्रिदशविबुधो लेखवृन्दारकस्त्वम् ।।

पूछा जा सकता है कि यह किस काल की भाषा है ? इस पर यह प्रतिप्रश्न भी किया जा सकता है कि अपने समय के किसी नेता को महिमामंडित करने के लिए उसका वैदिक पदावली में देवीकरण करने में बुरा क्या है ? इसका प्रत्युत्तर यही है कि कवि का सत्य सारे युग के सत्य से अलग नहीं हो सकता । यदि कविता हमें अपने समय की सच्चाइयों को समझने की दृष्टि न देकर वाग्जाल वितंडा और छलावे का प्रपंच रचती है तो ''अकवितैव वरं कुकवितायाः ।''

राजाओं या महापुरुषों पर चाटुपरक या भावध्वनिमूक कविता पहले भी लिखी जाती रही है, पर काव्यप्रकाश आदि में उद्धरण पाने के अतिरिक्त वह बची नहीं रही । आधुनिक भाषाओं में राजनेताओं की प्रशस्तिगाथाएँ नहीं लिखी जातीं, ऐसा नहीं है । पर साहित्य के गंभीर अध्येताओं में ऐसे काव्याभास वहाँ महत्त्व नहीं पा सके । यदि अध्येताओं के किसी समाज में ''देवदूतम्'' जैसी रचना महान् कविता

के रूप में समादृत होती है, तो ऐसे पूरे समाज का काव्यविवेक और उसमें कविता का भविष्य चिंतनीय है।

यदि परामर्श या स्वातंत्र्य-स्वरूप प्रतिभा का स्पंद रचनाकार में है, तो वह उसे काल को अतिक्रांत करने की क्षमता देता है। तब वह अतीत के जाज्ज्वल्यमान रत्न वर्तमान के सूत्र में पिरो कर वाग्देवी को कण्ठहार अर्पित करता है। केवल अभ्यासी कवि का वचोवितान प्रायः अतीत के प्रेत से ग्रस्त हो जाता है, तब उसकी सृष्टि में ''नवरसरुचिरा निर्मिति'' न होकर श्मशान की छाया झाँकती है। यदि कोई कविता अतीत को पिशाच की तरह ढोती हुई भी किसी विशिष्ट पाठक वर्ग या श्रोतृ-समाज में सराही जाती है, तब ऐसे कवि और सामाजिकों में निश्चय ही समाज के ऐतिहासिक विकास और अपने समय के नवस्पंद को ग्रहण करने के विवेक का अभाव है, जिसके कारण अतीत का स्मरण-मात्र ऐसे लोगों को उत्सवधर्मी रोमांच की स्थिति में स्तब्ध कर देता है। वर्तमान की सारी समस्या समाप्त हो जाती है, जब देवदूत स्वर्ग से उतरकर इंदिरा गाँधी से कह देता है-''हे बेटी इंदिरा, तुम्हारा मुख चंद्रवत् चारु है। नेत्र कमलवत् हैं, जिनमें काली चमकीली पुतलियाँ भ्रमर सदृश हैं। तुम्हारा मन चन्द्रसदृश शीतल है, तथा क्या तुम्हारी जंघा और भुजाओं में भगवती दुर्गा का वास नहीं है ? अर्थात् है एवं लोककल्याणकारी तेजस् तुम्हें ब्रह्माजी से सहज ही प्राप्त हुआ है। इस प्रकार तुम तलवार की अत्यंत पैनी धार ही हो। अतः भूतल पर छाये हुए इस अभाव, निराशा, निरुत्साह और अकर्मण्यता के अंधकार को चीर डालो।[४]

२. डॉ० **रामजी उपाध्याय** का जन्म उ० प्र० के बलिया जिले में सरयू तट पर १९२० में हुआ। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम० ए० की उपाधि प्राप्त कर ''**संस्कृत तथा प्राकृत महाकाव्यों के तुलनात्मक अध्ययन**'' पर १९४५ में इन्होंने डी० फिल्० की उपाधि प्राप्त की। १९४७ में सागर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में व्याख्याता नियुक्त हुए तथा १९८० में इसी संस्था से आचार्य तथा अध्यक्ष के रूप में सेवानिवृत्त हुए। संप्रति वाराणसी में निवास करते हैं।

डॉ० उपाध्याय ने संस्कृत साहित्य, भारतीय संस्कृति तथा नाट्यशास्त्र से संबद्ध अनेक ग्रंथ संस्कृत तथा हिन्दी में लिखे। ''**द्वा सुपर्णा**'' इनका संस्कृत उपन्यास है, जिसमें कृष्ण सुदामा की कथा की समकालीन सन्दर्भ- विशेषतः गाँधी दर्शन के प्रभाव से पुनर्व्याख्या की चेष्टा है। श्रीकृष्ण से प्राप्त अनुदान का व्यक्तिगत उपयोग न कर सुदामा उससे अपने गाँव में खादी और ग्रामोद्योग विकास निगम की शैली पर आश्रम जैसी एक संस्था खोलते हैं, जिससे गाँव और राष्ट्र की निखिल समस्याओं का समाधान हो जाता है। यह एक विभिन्न शैली में ''देवदूत'' का पुनरवतरण है।

३. पं० **रुद्रदेव त्रिपाठी** का जन्म सन् १९२५ ई० में २३ सितम्बर को मंदसौर में हुआ। अनेक वर्षों तक यहीं शास० उच्चतर माध्य० विद्यालय में शिक्षक रहे,

अनंतर लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली में प्राध्यापक । वहाँ से सेवानिवृत्त होकर संप्रति उज्जैन के बिड़ला प्राच्य विद्या संस्थान में कार्यरत हैं । मंदसौर में रहकर त्रिपाठी जी ने १९ वर्ष तक ''**मालवमयूर**'' संस्कृत मासिक का संपादन किया ।

गद्य, पद्य, चंपू आदि विविध विधाओं में विपुल साहित्य इन्होंने लिखा और लिख रहे हैं । बहुत सा साहित्य नर्मसचिव की मनोविनोदी मुद्रा में लिखा है । उल्लेख्य रचनाओं में ''विनोदिनी'' हास्यपूर्ण पद्यों का संग्रह, कालिदासप्रेरितः शिल्पशृङ्गारः (पुरातत्त्व, अनूदित), सत्याग्रह-नीतिकाव्यम्, गायत्रीलहरी (१०८ पद्यों मे) डिण्डिमः (विनोदपूर्ण काव्यसंग्रह), अजन्तादर्शनम् (गुजराती से अनु0 खंडकाव्य) पत्रदूतम् (दूतकाव्य १६३ पद्यों मे) प्रेरणा (सिनेंमा गीतों की धुनों पर आधारित गीत) हैं । अभी तक इनकें १०६ ग्रन्थ छप चुके हैं ।

४. **गणपति शंकर शुक्ल** का जन्म खरगौन (निमाड़ जिले) में १९ जुलाई १९३१ को हुआ । इन्दौर में शिक्षा प्राप्त कर ये शासकीय विद्यालय में शिक्षक रहे । हितोपदेश की शैली में सरल गद्य में इन्होंने अनेक लोककथाएँ लिखीं, जो पत्र-पत्रिकाओं में छपी हैं । इसके अतिरिक्त **भूदानयज्ञगाथा** खण्डकाव्य (१९६२) तथा ''**गान्धीशत-श्लोकी**'' (गांधीजी के सुभाषितों का अनु0) इनकी पद्यात्मक रचनाएँ है। इनकी संस्कृत लघुकथाओं का संग्रह '**कथामृतम्**' (१९८७) नाम से छपा है, जिसमें हिन्दी-अनुवाद-सहित हितोपदेश की शैली में प्राचीन सुभाषितों को उद्धृत करते हुए लोककथाओं या महापुरुषों के जीवन पर आधृत बालोपयोगी सरल कथाएँ हैं ।

५.. **पं0 बच्चूलाल अवस्थी** का जन्म ६ अगस्त १९१८ को उत्तरप्रदेश के जिला लखीमपुर खीरी में हुआ । इन्होंने व्याकरणशास्त्री, दर्शनशास्त्री, साहित्याचार्य, व्याकरणाचार्य तथा एम0 ए0 (संस्कृत) सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। अनंतर हिन्दी से एम0 ए0 परीक्षा उत्तीर्ण कर ''**प्राचीन भारतीय अर्थविज्ञान**'' पर आगरा वि0 वि0 से पी-एच0 डी0 की उपाधि प्राप्त की । ''**ध्वनिसिद्धान्त तथा तुलनीय साहित्यचिंतन**'' शीर्षक प्रकाशित शोधग्रन्थ पर इन्हें सागर वि0 वि0 ने डी0 लिट्0 उपाधि प्रदान की ।

१९४४ से १९४९ तक पं0 अवस्थी ने संस्कृत पाठशालाओं में आचार्य कक्षा तक अध्यापन किया । १९४९ से १९६७ के मध्य वे लखीमपुर खीरी के महाविद्यालय में प्राध्यापक रहे तथा जुलाई १९६७ में सागर वि0 वि0 के हिन्दी-विभाग में व्याख्याता नियुक्त होकर ६ अगस्त १९७८ को इसी पद से सेवानिवृत्त हुए । १९८० से १९८६ तक इसी विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्रबृहत्कोश-शोधयोजना में वे संपादक और लेखक रहे । संप्रति वे कालिदास अकादमी, उज्जैन में संपादक पद पर कार्यरत हैं।

हिन्दी में विभिन्न ग्रन्थों के अतिरिक्त केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की शोधयोजना

में निर्मित ९००० पृष्ठों का ''व्युत्पत्तिकोश'' तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की शोधयोजना में आद्यंत स्वयं लिखित १०००० पृष्ठों का ''दर्शनशास्त्रबृहत्कोष'' श्री अवस्थी के विलक्षण पांडित्य और विद्याक्षेत्र में विशिष्ट अवदान के उदाहरण हैं।

संस्कृत काव्य रचना की स्फूर्ति और पद्यगुम्फ की प्रवृत्ति इनमें छात्रावस्था से ही थी, जो कालांतर में ''देवदूतम्'' नामक खंडकाव्य में प्रतिफलित हुई । विकट जीवनसंघर्ष के कई वर्षों की अवधि में काव्ययात्रा अवरुद्ध रही, जो पिछले कुछ वर्षों से अनुभव के साँच और आँच के साथ जिस परिणतप्रज्ञ पदनिवेशनिष्कम्पता और प्रातिभ ऊर्जा को समो कर व्यतिकराकुलितसिन्धुवत् पुनः प्रवहमाण हुई, वह पारंपरिक संस्कृत काव्यसाधना के प्रति हमें आशान्वित करती है ।

''नेतृस्तवः''[५] अवस्थी जी की १९८० के आसपास लिखी गयी रचना है । १० शार्दूलविक्रीडित छंदों में यहाँ तीखा आक्रोश, तथा धारदार व्यंग्य प्रकट हुआ है, जिसमें अंतःसलिला की भाँति कवि हृदय की पीड़ा और कचोट अंतर्निहित है।

नेता कण्टकशोधनाय यतते स्वस्यैव मार्गस्य यत्
तस्मात् कण्टकजालमेव विकिरत्यालोकतन्त्राध्वनः ।
लोकोऽयं क्षतजाप्लुताङ्घ्रिरधुना कार्पण्यभृद्दूयते
नेता रोदिति नक्र-बाष्प-विकलं तत्पीडया पीडितः ।।

किन्हीं मान्यों की वदान्यता के गद्गद गुणगान में स्वयं को धन्य समझ कर क्षरित और विगलित होती कुकाव्यप्रवृत्ति के सामने यह प्रत्यादेश का सप्राण स्वर है। वैदग्ध्यभङ्गीभणिति के कौशल से प्राप्त पदावली को ''पेरोडी'' की मुद्रा में दोहराने के कारण प्रत्यादेश की यह प्रखरता इस रचना में या कवि की अन्य रचनाओं में सर्वत्र ऐसी नही रह पायी है । इसी काल की दूसरी रचना **''क्व कालिदासस्य जगाम भारती''** में प्राप्त पदावली का गंभीर पेरोडी के रूप में पुनराख्यान, अतीतोन्मुखता और वर्तमान के प्रति विरक्तिपरक वेदना भाव और अधिक है । संस्कृत की परंपरागत क्लासिकी पदावली में व्यासंग के कारण वर्तमान की पकड़ ऐसे में शिथिल हो जाती है । पर कहीं-कहीं आज की शब्दावली और पारंपरिक पदावली दोनों को साथ उपकरण बनाकर रचनाकार हमारे समय की विसंगति का अनुभव देता है । जैसे नेतृस्तवः में ही-

आगच्छेत् स समाजवाद्-विभवो यस्य प्रसादात् परं
स्वच्छन्दं विहरन्तु रन्तुमनसः स्वैराधिकाराः स्त्रियः ।
इत्थं कूट-कथंकथः प्रवचनैर्मिथ्यावदानक्षमो
नेता मल्लनटोऽक्षवाटमटति द्वन्द्वाय च व्यूहते ।।

अवस्थी जी की बाद की रचनाओं में आधुनिक अर्थ वाले व्यंग्य का पैनापन कम होकर ध्वनिप्रस्थापनपरमाचार्यप्रोक्त व्यंग्य की आभा निखरी है। इनमें से कुछ रचनाएँ अन्योक्तिपरक हैं। आज की विसंगतियों को इनमें कटाक्षित किया गया है। अन्योक्ति की पारंपरिक शैली का ऐसे कुछ स्थलों पर नये भावबोध से समवाय हो पाया है।[६] जलाशय श्री को आच्छादित करती व्याजृम्भमाण कुम्भिका का चित्र स्थूल और सांकेतिक दोनों स्तरों पर आज के सत्य को उजागर करता है -

विच्छायो हिमपातशातितदलस्तीरे तरूणां गणः
सौरभ्येण समं बत व्यपगतः सारः सरोजन्मनाम् ।
अद्याच्छाद्य जलाश्रयश्रियमियं दुर्दान्तसन्तानिनी
फुल्लद्गल्ल-दलद्-दरिद्र-कुसुमा व्याजृम्भते कुम्भिका ॥

**(अन्योक्तिपञ्चकम् से)**

आज के तनाव, द्वन्द्व और संशय की अभिव्यक्ति व्युत्पन्न कवि को संस्कृत-काव्य के पारंपरिक रूप को छोड़ नयी विधा की ओर ले गयी है। उर्दू की ग़ज़ल में प्रायः रहता तो प्रेम-गीत ही है, पर प्रेम-गीत को बलात् गाने की विवशता में स्थिति कुछ और ही हो जाती है-

प्रेमगीतं ब़लाद् गीयते कर्हिचित् ।
रुद्धकण्ठेन वाष्पार्द्र-दृक्पक्ष्मणा
प्रेमगीतं बलाद् गीयते कर्हिचित्
क्षिप्तवाचा स्मितापेक्षि काव्यं, हृदा
वज्रसारेण निर्मीयते कर्हिचित् ।
कौसुमोद्यानसम्भारसम्भ्राजिते
भूमिभागे निदाघेन शीर्षं गते
कण्टकैराचितं नागफण्या वनं
प्राप्य सौन्दर्यदृक् दीयते कर्हिचित् ॥

**(अप्रकाशित लंबी कविता से)**

अवस्थी जी की हाल की रचनाओं में **''शुकवृत्तम्''**[७] जीवनानुभव की गहनता और सांकेतिक अभिप्रायों की सूक्ष्मता के कारण आकर्षित करती है, जिसमें कारा में बंद जीवन की त्रासदी पर परिदेवनपरायण तोते के ''पंजर'' को कोई लीलापरायण

बालक खेल-खेल में खोल कर हँसता और उछलता-कूदता है, जबकि विडंबनापूर्ण स्थितियों के चित्रण और कारुणिकता की दृष्टि से ''**का गतिः**''[८] कविता मर्म छूती है-

वीतंसे यो निपतति सकृत् तस्य काप्यायतिः स्याद्
व्याधो नेत्रे क्रथतु निभृतं पंजरे वापि धत्ताम् ।
सूत्रैर्बद्ध्वा नटयतु परं मुञ्चतूत्कृत्य पक्षौ
शूलाकर्तुं पुटयतु च वा पक्षिणे को विशेषः ।।

६. सागरनगरवास्तव्य **पं0 प्रेमनारायण द्विवेदी** का जन्म दिनांक ५-६-१९२२ को हुआ । इनके पिता पं0 परमानंद द्विवेदी ज्योतिष और कर्मकांड में निष्णात थे । प्रेमनारायण जी ने क्वींस कालेज वाराणसी की प्रथमा (१९३९) मध्यमा (१९४२), व्याकरणशास्त्री (१९४४) तथा बंगीय संस्कृत परिषद् की काव्यतीर्थ (१९४३) परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं । १९६० में इन्होंने सागर विश्वविद्यालय से बी0 ए0 तथा १९६२ में एम0 ए0 (संस्कृत) की उपाधि भी स्वाध्यायबल से अर्जित की । १९६५ में इन्हें इसी विश्वविद्यालय सें ''वैष्णव पुराणों में आचार समीक्षा'' इस विषय पर प्रस्तुत शोधप्रबन्ध पर पी-एच0 डी0 उपाधि भी मिली । डॉ0 द्विवेदी ने वर्षो तक विभिन्न पंडितों के सान्निध्य में वेद तथा दर्शन का स्वतन्त्र अध्ययन किया तथा अभी भी वे न्यायाचार्य पं0 लक्ष्मीनारायण द्विवेदी से न्यायदर्शन के ग्रन्थों का नियमित पाठ ले रहे हैं ।

श्री द्विवेदी ने १९५६ से १९६४ तक आठ वर्ष संस्कृत महाविद्यालय ब्रह्मचर्याश्रम, सागर में अनंतर १९६५ से १९७५ तक रा0 शिं0 महाविद्यालय सागर में, १९७५ से १९८० तक इसी नगर के उ0 मा0 विद्यालय में तथा १९८०-८१ में सागर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में अध्यापन कार्य किया । १९८२ से १९८६ तक ये ''दर्शनशास्त्रबृहत्कोष'' शोध योजना में कार्यरत रहे ।

श्री द्विवेदी ने हिन्दी की श्रेष्ठ रचनाओं को सुबोध, सरस और ललित संस्कृत पद्यानुवादों में प्रस्तुत किया है । उनका संपूर्ण ''बिहारी सतसई'' का संस्कृत रूपांतर ''**सौन्दर्यसप्तशती**'' के नाम से प्रकाशित है । तुलसीकृत ''रामचरितमानस'' का भी संपूर्ण रूप में वे संस्कृत रूपान्तर कर चुके हैं । इसके अतिरिक्त तुलसी की वैराग्यसन्दीपनी, दोहावली तथा रहीम, कबीर, दादू आदि संतों और बुद्ध, कन्फ्यूशियस आदि महापुरुषों की वाणी के छंदोबद्ध अनुवाद उन्होंने किये हैं । इनके अतिरिक्त, स्वयंकृत स्फुटपद्यों की संख्या भी बड़ी है । उदाहरणार्थ-

मयि ब्रुवाणे नहि सा ब्रवीति
स्नेहे कृते कुप्यति दृष्टिपाते ।
विलज्जमाना हसतीव मुग्धा
गेहे जने सत्यपि नेत्रवार्त्ता ।। (३२)

अस्या नवाया दधिमन्थकर्त्र्याः
पश्याद्य ध्यानेन दशां विचित्राम् ।
भाण्डोऽपि तस्याः सविधेऽस्ति दध्नो
मथ्नाति मन्थेन जलस्य भाण्डे ।। (२४५)

७. **डॉ0 श्रीमती वनमाला भवालकर** कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्राचीन इतिहास तथा नागपुर वि0 वि0 से संस्कृत में एम0 ए0 तथा सागर वि0 वि0 से पी-एच0 डी0 हैं । १९४६ से ये सागर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में प्राध्यापिका रहीं । **''रामवगमनम्''** तथा **''पार्वती-परमेश्वरीयम्''** उनकी संगीतिकाएँ (आपेरा नाटक) है जिनके कई सफल प्रयोग हुए हैं । इनकी अपेक्षा चीनी आक्रमण की पृष्ठभूमि में मध्यवित्त परिवार में प्रेम और विवाह को लेकर भावनात्मक संघर्ष की विषयवस्तु पर उनका **''पाददण्डः''** एकांकी आधुनिक नाट्यशैली की दृष्टि से उल्लेखनीय है ।

८. श्रीपाद शास्त्री हसूरकर (द्र0 ऊपर प्रघट्टक-२) के ज्येष्ठ पुत्र **श्रीनाथ हसूरकर** का जन्म २४ फरवरी के दिन १९२४ में हुआ । आरंभिक शिक्षा इन्दौर में हुई । १९४७ में आगरा विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम0 ए0, १९४८ में क्वींस कालेज से साहित्याचार्य तथा १९५१ में ''अद्वैत वेदांत का दृष्टि-सृष्टि-वाद'' पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से पी-एच0 डी0 की उपाधि प्राप्त कर म0 प्र0 के शासकीय महाविद्यालयों में व्याख्याता, आचार्य तथा प्राचार्य पदों पर कार्यरत रह कर १९८२ में सेवानिवृत्त हुए । १९३२ से संस्कृत गद्यलेखन में प्रवृत्त हुए और **अजातशत्रुः**, **प्रतिज्ञापूर्तिः**, **सिन्धुकन्या** तथा **चेन्नम्मा** उपन्यासों की रचना की । अंतिम उपन्यास की किश्तें ''दूर्वा'' में छपी हैं । **''प्रतिज्ञापूर्तिः''** पर उ0 प्र0 संस्कृत अकादमी तथा **''सिन्धुकन्या''** पर साहित्य अकादमी नयी दिल्ली से पुरस्कृत हुए और १९८६ में म0 प्र0 संस्कृत अकादमी द्वारा सम्मानित । संप्रति गजनी के आक्रमणों पर आधारित ''दावानलः'' उपन्यास लिख रहे हैं ।

डॉ0 हसूरकर के उपन्यासों का मुहावरा हिन्दी के एक समय लोकप्रिय रह चुकी उपन्यासों की उस धारा से प्रभावित लगता है, जो अब अतीत हो गयी है।

उन्हें पढ़ते हुए भ्रम होता है जैसे हम- हरिनारायण शर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा या चतुरसेन शास्त्री का तीस बरस पुराना कोई उपन्यास पढ़ रहे हों। इस तरह के रचनाकर्म से दो तरह के प्रश्न उभरते हैं- आधुनिक भारतीय भाषाओं में लिखे गये साहित्य की उस विधा या शैली को संस्कृत में लाना, जो अब प्रचलन के बाहर हो गयी हो या साहित्य के विकास क्रम में पीछे छूट गयी हो, कहाँ उचित है। हमारी जानकारी में गत दो दशकों में हिन्दी आदि भाषाओं में इस पुरातन शैली में ऐतिहासिक वस्तु पर आधारित ऐसा कोई उपन्यास सामने नहीं आया, जो बहुत महत्त्वपूर्ण माना गया हो। दूसरे आधुनिक परिवेश पर या किसी आधुनिक विधि में लिखते हुए संस्कृत को आधुनिक भाषाओं की वाक्यरचना या मुहावरों से आक्रांत होने से कैसे बचाया जा सकता है ?

९. डॉ0 रेवाप्रसाद द्विवेदी का जन्म भोपाल के निकट नर्मदातट पर नादनेर ग्राम में पं0 नर्मदाप्रसाद द्विवेदी के घर हुआ। प्रारंभिक शिक्षा ग्राम में प्राप्त कर ये विशेष अध्ययन के लिए काशी चले गये। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से १९५६ में साहित्याचार्य तथा १९५९ में संस्कृत में एम0 ए0 परीक्षा उत्तीर्ण की। १९५९ में ही शास0 दूधाधारी श्री वैष्णव संस्कृत महाविद्यालय, रायपुर में साहित्यशास्त्र के व्याख्याता नियुक्त हुए। १९६५ ई0 में रविशंकर वि0 वि0 रायपुर से आपने पी-एच0 डी0 उपाधि प्राप्त की। १९७० तक ये म0 प्र0 की शासकीय महाविद्यालय सेवा में रहे। इसी वर्ष सागर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में व्याख्यातापद पर नियुक्त हुए, पर कार्यभार ग्रहण करने के पूर्व काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवाचक पद पर नियुक्ति प्राप्त हो जाने से वाराणसी पहुँच गये। संप्रति उसी विश्वविद्यालय के संस्कृत संकाय में साहित्य विभाग में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हैं।

१९६८ में ''**सीताचरितम्**'' महाकाव्य के प्रकाशन के द्वारा-

ऋषिः सनातनश्छन्दो जगती, शक्तिराप्तता।
दैवतं राष्ट्रमोजः सत्कीलं, बीजाक्षरं तपः॥
यत्र, तन्मन्त्रकाव्यं मे विनियोगमवाप्नुयात्।
सार्वभौमे सतां शान्तिनाम्नि पुण्ये महाक्रतौ[१]॥

की घोषणा के साथ संरम्भपूर्वक व्युत्पन्न कवि के रूप में साहित्यक्षेत्र में अवतरित हुए।

अन्य संस्कृत रचनाओं में **काव्यालङ्कारकारिका**, **यूथिका** नाटिका उल्लेखनीय हैं। अनेक स्फुट पद्य, लघुकाव्य, निबंध तथा एक कथा पत्रिकाओं में प्रकाशित है।

१०. प्रखर तथा बहुमुखी प्रतिभा के धनी कवि **श्रीनिवास रथ** का जन्म १ नवम्बर १९३३ को पुरी (उड़ीसा) में हुआ। आपने प्रारंभिक शिक्षा मुरैना (म0 प्र0) में प्राप्त की तथा हाइ स्कूल और इंटरमीजियट की परीक्षाएँ सहारनपुर (उ0 प्र0) से उत्तीर्ण कीं। इसके पश्चात् विक्टोरिया कालेज ग्वालियर से बी0 ए0 तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय (वाराणसी) से एम0 ए0 (संस्कृत) की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं।

श्रीनिवास रथ के पिता संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। आपने पिताश्री से घर पर भी पारंपरिक पद्धति से संस्कृत का अध्ययन किया। संस्कृतविद्या की वाचिक परंपरा की अमूल्य निधि आपको अपने माता और पिता दोनों से प्राप्त हुई। उन्होंने क्वींस कालेज बनारस से साहित्याचार्य परीक्षा भी उत्तीर्ण की। शिक्षा समाप्त कर उन्होंने १९५५ से १९५७ तक सागर विश्वविद्यालय में अध्यापन किया तथा उसके बाद से अब तक वे विक्रम विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं।

श्रीनिवास रथ ने पिता के संसर्ग के प्रभाव से बाल्यकाल में ही संस्कृत में पारंपरिक पद्धति से श्लोक रचना प्रारंभ कर दी थी। इसके बाद उनकी काव्ययात्रा में कई पड़ाव आये। वे अपने समय की राजनीतिक विचारधाराओं से प्रभावित हुए तथा मजदूर आन्दोलनों से भी जुड़े। श्रीनिवास ने संस्कृत कविता को नया भावबोध और अछूता बिंबविधान दिया। उनकी कविता कवि के गहरे आत्मसंघर्ष और युगबोध से उपजी है। उन्होंने अपने समय की विषमता, विडंबना और यंत्रणा को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है तथा संस्कृत गीत के क्षेत्र में अपनी निजी शैली गढ़ी है।

संस्कृत के समकालीन रचनाकारों के बीच श्रीनिवास रथ अपनी अलग पहचान इसलिये बना सके हैं कि उन्होंने एक सुदीर्घ काव्यसाधना के साथ-साथ इतर भाषाओं के समकालीन लेखन- विशेषतः उनकी काव्यधारा के भावबोध को आत्मसात् करने का प्रयास किया, साथ ही अभिव्यक्ति के लिए उस विधि को चुना, जिसके लिए हिन्दी में ''नवगीत'' शब्द चल पड़ा है। नवगीत के लय तथा शिल्प में पकड़ और परख तथा समकालीन जीवन और जगत् से संलग्नता के साथ परंपरा के बोध और जाग्रत विवेक ने रथ की प्रतिभा को विकसित किया है। वे आज की विसंगतियों और विडंबनाओं को एक सर्जक के अनुभव और दृष्टि से निरूपित करते हैं। हमारे समय का अंतर्विरोध यह है कि समारोहपूर्वक विज्ञान की नौका लायी जा रही है, पर ज्ञान की गंगा सूख कर रेत हो रही है, संस्कृति का बाग उजड़ रहा है और हम गमलों में केक्टस लगा कर प्रसन्न हैं-

विज्ञाननौका समानीयते
ज्ञानगङ्गा विलुप्तेति नालोक्यते।

संस्कृतोद्यानदूर्वा दरिद्रीकृता
निष्कुटेषु स्वयं कण्टकिन्याहिता
पुष्पितानां लतानां न रक्षा कृता
विस्तृता वाटिकायोजना निर्मिता[१०]

इस गीतिविधा की अपनी सीमाएँ है । उसमें तो अनकहे की अनुगूँज जितनी ध्वनित हो, जितनी टीस दे सके, उतने में ही विश्रांति या परिणति है । सीधे-साधे सब कह डालने की विकलता या ''सत्यमेव जयते'' का उपनिषद्वाक्य समापन में लाने की मनीषा उस प्रतिध्वनि को ध्वस्त कर देती है, जो कवि रथ के कुछ अच्छे गीतों से उठती है ।

११. डॉ0 **शिवशरण शर्मा** का जन्म १९२८ ई0 में उ0 प्र0 के फतेहपुर जिले में भैरमपुर गाँव में हुआ । काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से संस्कृत तथा हिन्दी में एम0 ए0 और प्रयाग वि0 वि0 से डी0 फिल्0 की उपाधि इन्होंने प्राप्त की । लगभग गत तीस वर्षो से म0 प्र0 के शासकीय महाविद्यालयों में सेवारत हैं । इनकी सात पुस्तकें प्रकाशित हैं, जिनमें ''**जागरणम्**'' (१९६३) इनकी संस्कृत कविताओं, गीतों का संकलन है । इसमें सरल भाषा में हिन्दी की प्रचलित लोकप्रिय कवि सम्मेलन परायण शैली में कविताएँ या गीत हैं ।

किमद्यापि ते सैव रागिणी ?
युगं व्यतीतं कालो यातो यस्मिन् गीतो मधुरो रागः
शून्यमद्य मधुवनं वर्तते, नहि सुमानि, कीदृशः परागः ?
कथं प्रचण्डनिदाघे भ्रातर्मल्लारं गायति ते वाणी ? (पृ0 १०)

कुछ कवितायें वृत्तांतपरक हैं और कुछमें वृन्दावन की लीलाओं का मुग्ध स्मरण है । कवि ने -

''बन्धो, व्यर्थ वयो व्यतीतम्
मृगतृष्णामनुधावसि सततं, पश्यसि कथमिव नान्यम् ।।''

(पृ0 ५०)

कहकर अपने काव्योद्यम की परिणति पर (कदाचित्) स्वयं ही टिप्पणी भी कर दी है ।

श्री गोविन्द विश्वास भावे की **संस्कृतकथा-तरङ्गिणी** (१९७०) सरल सहज गद्य में संस्कृत में कहानियाँ लिखने का उपक्रम है । लेखक जबलपुर के निवासी हैं। इनके संग्रह में २७ कथाएँ हैं, कुछ बाल्यकाल में माँ के मुख से सुनी हुई, कुछ अपने गाँव के लोगों से सुनी हुई । दो तीन कथाएँ लेखक ने स्वानुभव से भी लिखी हैं । निश्चय ही पूरे संकलन में कोई मौलिकता नहीं है, और न मौलिक होने का दावा ही संकलनकार ने किया है । इस तरह निष्कपट अभिनिवेश को दूर कर नया उपक्रम संस्कृत में अब कम ही दिखता है । कहानियों की विषयवस्तु संस्कृत में प्रायः नयी हैं ।

१३. **डॉ0 भास्कराचार्य त्रिपाठी** का जन्म २३-९-४२ को इलाहाबाद के निकट ग्राम पांडर जसरा में हुआ । इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम0 ए0 करके इन्होंने वहीं से राजशेखर के बालरामायण पर शोधकार्य कर डी0 फिल्0 की उपाधि ली । इसके पूर्व इनका **''अजाशती''** काव्य संस्कृत प्रतिभा में छप कर आया । १९६६ से ये म0 प्र0 में शासकीय महाविद्यालयीन सेवा में आये । संप्रति म0 प्र0 संस्कृत अकादमी में गत तीन वर्षों से सचिव के रूप में प्रतिनियुक्ति पर हैं । अब तक पत्र-पत्रिकाओं में पचास से ऊपर संस्कृत गीत, एक कथा-काव्य तथा तीन संगीतरूपक प्रकाशित करा चुके हैं ।

म0 प्र0 संस्कृत अकादमी से ''दूर्वा'' पत्रिका इनके संपादन में निकल रही है, जिसके १३ अंक सामने आ चुके हैं । निर्दुष्ट मुद्रण और कमनीय सज्जा की दृष्टि से यह पत्रिका संस्कृत पत्रिकाओं में अद्वितीय है । ''दूर्वा'' का प्रत्येक अंकुरण संपादक के श्रमजल की समुच्छलित धारा से सिंचित है ।

डॉ0 त्रिपाठी के कुछ गीतों में भोजपुरी लोकगीतों के सुर अनुगुंजित हैं कुछ में मिथकों, प्रतीकों और बिम्बों का जटिल संश्लिष्ट विन्यास है, बहुत से गीत अवसर-विशेष के अनुरोध से भी उन्होंने लिखें हैं । कहीं-कहीं शिल्प और वस्तु की नवीनता उनकी रचना को चमत्कृत कर जाती है, कुछ एक स्थलों पर नया अप्रस्तुतविधान भी-

हन्त कज्जलं पिबामि, शून्यचेतसा भ्रमामि
किं वा बालुकासु वक्त्रकं निमीलयामि रे ।।
फूत्करोति डुण्डुभः प्रलम्बशैवलप्रभः
कपोतकर्बुरञ्च कृन्ततीव सान्ध्यनभो रे

मेघमालिकासु चित्रदुर्लिपिं पठामि रे
प्रकाशकीटकेषु चाटुगीतं रटामि रे ।।[११]

(दंशवेदना)

१४. डा0 **श्रीमती पुष्पा दीक्षित** का जन्म जबलपुर में १९४३ में १२ जून को हुआ। पिता वैद्य श्री सुन्दरलाल शुक्ल निष्ठावान् सनातनी ब्राह्मण तथा प्रकांड पण्डित थे। १९६५ ई0 में इन्होंने जबलपुर विश्वविद्यालय से एम0 ए0 की परीक्षा तीन स्वर्णपदक प्राप्त करते हुए की। १९६८ में इन्हें इसी विश्वविद्यालय से पी-एच0 डी0 मिली। उद्‌भट वैयाकरण पं0 विश्वनाथ त्रिपाठी से इन्होंने नव्यव्याकरण का विशेष अध्ययन किया। १९६५ से ये म0 प्र0 की शासकीय महाविद्यालयीन सेवा में आयीं तथा संप्रति शासकीय कन्या महाविद्यालय बिलासपुर में संस्कृत विभाग की आचार्य व अध्यक्ष हैं।

व्याकरण में अभिनिवेश और गृहस्थता के प्रत्यवाय में वर्षों तक भावुक कविमन की जो आहिताग्नि दबी थी, उसका सहसा स्फुरण **''अग्निशिखा''** के रूप में १९८४ में हुआ। ''अग्निशिखा'' में ४८ गीत संकलित हैं। ये सभी अनुभव के एक विशेष दौर में रचे गये हैं, महादेवी वर्मा के गीतों की तरह सभी की भावभूमि एक है। गीतों के पीछे निश्चय ही संवेदनशील हृदय और अनुभूति का उद्दाम आवेश है, पर पुष्पा जी का कवि रूप में अवतरण कदाचित् इतने अप्रत्याशित रूप में हुआ है कि काव्यसाधना के द्वारा उसे विकास का अवसर ही नहीं मिला। इसके बावजूद अनुभूति की निश्छलता और आकस्मिकता एक लपट की तरह उज्ज्वल रूप में यहाँ व्यक्त है-

इयमग्निशिखा ज्वलिता सहसेव कथं हृदये
निशितैस्तव दृष्टिशरैः सकलं शकलीक्रियते ।
सन्दम्य मनोभावं गलिताधिरहं जाता
ज्वालैरतिजवनयुतैर्ज्वलितं ननु जीवयते ।।

स्त्री जीवन का यह एक ऐसा विकट संधिक्षण है जिसकी अक्षर अनुभूति में उसका सारा ज्ञान और पांडित्य क्षरित हुआ-

न वर्णैस्तद्वर्ण्यं प्रिय यदनुभूतं हृदि मया
क्षरत्वं गच्छेन्मे नवरतिविलापेऽक्षरकुलम् ।

विभिन्नैः शब्दार्थैर्विपुलविपुलः कोशनिकरः

क्षमो नो क्षन्ता वा विशकलितमेतत् कलयितुम् ।।

१५. **डॉ० विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्र** का जन्म छतरपुर जिले के पहरा ग्राम में दिनांक १८-३-५६ को हुआ । आरंभिक शिक्षा गाँव में पाकर छतरपुर के महाराजा महाविद्यालय से इन्होंने बी० ए० किया । काशी हिन्दू वि० वि० से १९७८ में एम० ए० करके ''श्रीमद्भागवत में कृष्णकथा'' विषय लेकर यहीं से १९८२ में पी-एच० डी० उपाधि पायी । १९८३-८४ में सागर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में तदर्थ व्याख्याता रहे, तथा १९८४-८५ में विश्वविद्यालय अनु० आयोग की उच्चतर शोधवृत्ति प्राप्त कर इसी विभाग में कार्य किया । संप्रति विक्रम विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में व्याख्याता है ।

डॉ० मिश्र के संस्कृत तथा हिन्दी में साहित्यिक और दार्शनिक विषयों पर लगभग १०० लेख प्रकाशित हैं । ''कल्याण'' के संपादकीय विभाग में भी ये कार्यरत रहे हैं। इनकी ''विक्रमोर्वशीयम्'' की संस्कृत-हिन्दी-व्याख्या चौखम्बा, वाराणसी से प्रकाशित है । दो संस्कृत काव्यरचनाओं के संकलन प्रकाशित हुए हैं-**''सारस्वत-समुन्मेषः''**[१२] तथा **गीतवल्लरी** । संस्कृत कथासाहित्य और नाटक भी पत्रिकाओं में प्रकाशित कराते रहे हैं ।

तरुण कवि श्री मिश्र की भाषा और छंद की पकड़ प्रशस्य है । रचना में नवोन्मेष और संभावनाएँ हैं । हिन्दी के छंदों-दोहा, घनाक्षरी, कवित्त आदि में भी इन्होंने संस्कृत रचनाएँ की हैं जिसमें ब्रजमाधुरी और विपिनविहारी का लास्य है । बाद की कुछ रचनाओं में ये इस मानसिकता से बाहर भी आये हैं । पारंपरिक शैली के काव्यबंधों के सुदीर्घ अभ्यास के साथ अपने समय की परख से काव्य में नवीनता ला सके हैं । स्थालीपुलाकन्याय से-

स्निग्धः सुहृज्जनमनोहरभावबन्धो

नान्दोलनैर्मलिनतां सुधिया स नेयः ।

स्वच्छोदकेन भरिते धवलेऽपि पात्रे

स्पन्देत काल-कलया दरपङ्कलेखा ।

ऊपर हमने म० प्र० में जन्मे या निवास कर रहे अपने समय के पुरानी पीढ़ी से लेकर नवागन्तुक पीढ़ी तक के कुछ उल्लेख्य संस्कृत-रचनाकारों के कृतित्व की चर्चा की है ।

## निष्कर्षतः

(१) किसी अवसर विशेष के अनुरोध से या व्यक्ति विशेष की प्रशस्ति कर क्षुद्रस्वार्थ की पूर्ति की दृष्टि से लिखी चीज को मौलिक और महत्त्वपूर्ण कृति के रूप में प्रख्यापित करने कराने की प्रवृत्ति का विरोध होना चाहिए ।

प्रशस्तिपरकता संस्कृत पंडितों और रचनाकारों का अपना चरित्र रही है। यदि प्रशस्ति के भाव की अभिव्यक्ति किसी गहरे सर्जनात्मक अनुभव में ढलकर सहृदय की भावयित्री प्रतिभा को तृप्त कर जाती है, तो साहित्य के अपने धरातल पर उसके लिये भी अवकाश है । किन्तु समीक्षा में ''अहो रूपमहो ध्वनिः'' के भाव से संस्कृत में आज लिखी जा रही हर वस्तु की प्रशस्ति करना और भी घातक है।

(२) संस्कृत लोकव्यवहार की भाषा नहीं रही और उसमें फणीश्वर रेणु के ''मैला आँचल'' या कृष्णा सोबती के ''जिन्दगीनामा'' जैसी कृति नहीं लिखी जा सकती । उसमें प्राचीन क्लासिकी रचनाओं से प्रेरित उत्कृष्ट रचना संभव है । हर उत्तम कृति में रचनाकार का समय बोलता है । अपने समय को शब्द देने के लिए हर कृति लेखक को अपनी सही विधि और अभिव्यक्ति पाने के लिए संघर्ष करना पड़ता है । ललित निबंध या कहानी, उपन्यास जैसी विधाओं में हमारे समय का कोई संस्कृत रचनाकार अपना मुहावरा बना पाया हो-ऐसा नहीं लगता । इन विधाओं में जो संस्कृत में लिखा जा रहा है, वह अन्य आधुनिक भाषाओं में इन विधाओं के साहित्य की विकासयात्रा को देखते हुए पीछे है । जब किसी विधा में साहित्य की विकासयात्रा पिछड़ जाती या अल्प विकसित रह जाती है, तो उसकी क्षतिपूर्ति इतर भाषाओं में उस विधा की अच्छी रचनाओं के अनुकरण या रूपान्तर तैयार करके की जाती रही है । गुणाढ्य की ''बड्ढकहा'' के मुकाबले की रचना संस्कृत में नहीं थी, तभी तो क्षेमेंद्र और सोमदेव को उसके रूपान्तर प्रस्तुत करने की आवश्यकता प्रतीत हुई । ऐसी अनुकरण-जन्य रचनाओं या रूपान्तरों का उस विधा में साहित्य की विकासयात्रा को आगे बढ़ाने की दृष्टि से महत्त्व हो सकता है तो और ऐसी कृतियों को आवश्यकता से अधिक मान देना इस विकासयात्रा के लिए अवरोधक भी हो सकता है । तथापि संस्कृत में लिखे जा रहे आज के साहित्य में नवीनता, मौलिकता और युगानुरूप गतिशीलता भी हम पाते हैं ।

---

१. इनके चित्रकाव्यों के विस्तृत विवरण के लिये प्रस्तुत लेखक का ''सागरिका'' (९.१ ) में प्रकाशित ''पं० गजानन-रामचन्द्र-करमलकरशास्त्रिणां व्यक्तित्वं कृतित्वं च'' लेख द्रष्टव्य ।

२. विस्तृत विवरण के लिये द्र०-वही ।

३. द्र0 देवदूतम्-परिचय ।

४. देवदूतम्-७७, अनुवाद स्वयं कवि का ।

५. संस्कृत-प्रतिभा १३.१ (१९८१) में प्रकाशित, पृ0 १५-१६.

६. द0 दूर्वा- २ (जून ८६) में प्रकाशित 'अन्योक्तिपञ्चकम्' तथा शार्दूलविक्रीडिम्'।

७. अर्वाचीनसंस्कृतम ८/२ (अप्रैल १९८७) में प्रकाशित

८. दूर्वा-४ (फरवरी ८७) में प्रकाशित ।

९. सीताचरितम्-मुखबन्धः ।

१०. दूर्वा-१ में प्रकाशित गीत से ।

११. अर्ताचीनसंस्कृत ८/९ (जनवरी १९८६) में प्रकाशित

१२. देववाणी-परिषद्, दिल्ली से १९८५ में प्रकाशित

# २० वीं शताब्दी के संस्कृत साहित्य को मंदसौर का योगदान

कैलाशचन्द्र पाण्डेय

भारत के हृदयस्थल म0 प्र0 के शस्य-श्यामलक मालवा के पश्चिमी तट पर तीन ओर से राजस्थान से वेष्टित मंदसौर जिला प्राचीन काल से ही संस्कृत व संस्कृति का पोषक रहा है। प्रस्तुत लेख के माध्यम से इस क्षेत्र का संस्कृत साहित्य में योगदान निम्न भागों में प्रस्तुत किया है। प्रथम भाग में दशपुर का ऐतिहासिक महत्त्व व साहित्यिक योगदान, द्वितीय भाग में अभिलेखों में संस्कृत रचनाकार व उनका महत्त्व तथा तृतीय भाग में २० वीं शताब्दी के संस्कृतप्रेमी व रचनाकारों का परिचय।

आज से कोई १०० वर्ष पूर्व भारतीय इतिहास में दशपुर का कोई स्थान न था। इसे ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक महत्त्व प्रदान करने का श्रेय आर्थर सुलविन, कनिंघम, जे0 एन0 फ्लीट, सर, माइकल फिलोज, बी0 डी0 स्पूनर, डॉ० डी0 सी0 सरकार, डॉ० वि0 वि0 मिराशी, डॉ० एच0 व्ही0 त्रिवेदी, व स्व0 पद्मश्री डॉ० वि0 श्री0 वाकणकर आदि को है।

इन पुरावेत्ताओं के प्रयासों से २० वीं शताब्दी में देश विदेश के लोगों को ज्ञात हुआ कि शिवना, चम्बल की क्रोड व अरावली की इस क्षेत्रीय उपत्यका में प्रागैतिहासिक मानव ने विचरण किया, शैल चित्रों के माध्यम से अपनी कलाभिव्यक्ति की, इन्हीं सरिताओं के तट पर हड़प्पीय सभ्यता के बाशिन्दों ने अपने कारवाँ कायम किये। ताम्राश्मीय, सभ्यता के बाद आयी सांस्कृतिक रिक्ति के प्रमाण यहाँ भी मिले हैं जो किसी प्राकृतिक विनाश की सूचना देते हैं। ये बस्तियाँ मौर्यो के काल में पुनः फली फूलीं, इनमें अपरिक (वर्तमान आवरा) के राजा भागवत ने अपने क्षेत्र की उत्तर से हुए किसी आक्रमण से रक्षा कर अवलेश्वर (राज0) में विशाल शैल स्तम्भ की स्थापना कर इस क्षेत्र में अशोक महान् की स्तम्भ परम्परा का श्री गणेश किया। शिवना-चम्बल के इस उर्वर भूभाग में अनेक वंशों, जातियों व धर्मो ने निर्माण-विनाश की अँगड़ाइयाँ ली। औलिकरों के विशाल साम्राज्य का सूर्योदय व सूर्यास्त यहीं हुआ। एशिया माइनर से हूणों की जो आँधी तोरमाण व मिहिरकुल के नेतृत्व में यहाँ तक पहुँची थी, वह दशपुराधिपति प्रकाशधर्म्मा व यशोधर्म्मा रूपी वज्रों से टकराकर यहीं झुकी, थमी व पददलित हुई। यहाँ के पाषाण काव्यों में संस्कृत

साहित्य का अनूठा रस पका है । मात्र साहित्य ही नहीं शिल्प-स्थापत्य, धर्म-दर्शन, भूगोल, वस्त्रोद्योग आदि विविधः क्षेत्रों की प्राचीनतम जानकारियाँ यथा- वासुदेव (कृष्ण) का प्राचीनतम कलात्मक वर्णन नरवर्म्मा की प्रशस्ति में मिला है । विश्ववर्म्मन के गंगधार अभिलेख में मातृदेवियों के देवालय निर्माण की प्राचीनतम जानकारी है। कुमारगुप्त-बन्धुवर्म्मा के अभिलेख में समूचे भारत की चौहद्दीं पहली बार मिली है। इसी अभिलेख में विश्व के प्राचीनतम विज्ञापन का उल्लेख है ।

## मंदसौर क्षेत्र में संस्कृत के अभिलेखिक प्रमाण

मंदसौर से प्राप्त प्राचीनतम अभिलेख नरवर्म्मा (सम्वत् ४६१) का है । इसमें प्रशस्तिकार का उल्लेख पठनीय नहीं है परन्तु कवि ने पद्यों में सुन्दर रचना की है । प्रशस्ति के १०-११ वें श्लोक में वासुदेव का अत्यन्त मंनोरम वर्णन किया गया है-

जीवलोकमिमं ज्ञात्वा शरण्यं शरणङ्गतः ।
त्रिदशोदार-फलदं स्वर्गस्त्री-चारुपल्लवम् ।।
विमानानेकविटपं तोयदाम्बुमधुस्रवम् ।
वासुदेवं जगद्वासमप्रमेयमजं विभुम् ।।

डॉ० कृष्णदत्त वाजपेयी के अनुसार कृष्ण का ऐसा कलात्मक वर्णन किसी अन्य शिलालेख या ताम्रपत्र में देखने को नहीं मिलता है । काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से भारतीय इतिहास के स्वर्ण युग में उत्कीर्ण कतिपय उच्चस्तरीय शिलालेखों में इस की गणना की जा सकती है ।

वत्सभट्टि रचित कुमारगुप्त प्रथम व बंधुवर्म्मा की प्रशस्ति दशपुर के पाषाण काव्यों में सर्वश्रेष्ठ कृति है । यह वैदर्भी रीति से लिखे गये काव्य का एक उत्कृष्ट नमूना है । सुन्दर अलंकारों के चयन व कविता में गुण सिद्धि के कारण वत्सभट्टि महाकवियों की श्रेणी में रखे जा सकते हैं ।

यशोधर्म्मा की कीर्तिस्तम्भप्रशस्ति बंदिस्थल से प्राप्त उनके पूर्वज प्रकाशधर्म्मा की प्रशस्ति का रचयिता वासुल इस बात का प्रतीक है कि गुप्तों के समय औलिकरों के राजदरबार में भी अनेक संस्कृत रत्न विद्यमान थे । वासुल की ये रचनाएँ संस्कृत काव्यधारा की अमूल्य निधि है । इसमें छन्दों, अलंकारों, भावों, कल्पनाओं, लालित्य एवं प्रसाद गुणों का मनोहारी सामंजस्य है जो सिद्ध करता है कि वासुल उदात्त काव्यरचना के सामर्थ्य से सम्पन्न कवि था । यशोधर्म्मा की कूप प्रशस्ति भी एक उत्कृष्ट रचना है जिसका काव्य कर्ता अज्ञात है । इसमें इस बात का भी प्रमाण है कि औलिकरों

का राजस्थानीय भगवद्घोष भी स्वयं संस्कृत व प्राकृत का सफल कवि था । विश्ववर्म्मा गंगधार प्रशस्ति (वि0 स0 ४८०), बौद्ध नृप प्रभाकर (वि0 सं0 ५२४) की मन्दसौर प्रशस्ति, महाराजा गौरी (५७४ वि0 सं0) की छोटी सादडी प्रशस्ति, कुमारवर्म्मा की खण्डित मंदसौर प्रशस्ति व सावन से प्राप्त औलिकर प्रशस्ति औलिकर युगीन दशपुर के संस्कृत साधकों की सर्वाङ्ग सुन्दर रचनाएँ हैं ।

औलिकरों के पतन के बाद दशपुर के दिन फिर गये । संस्कृत के अनन्य उपासक अनेक ब्राह्मणों और साहित्यकारों को यहाँ से गुजरात में कलचुरियों के राज्याश्रय में जाना पड़ा । इसका प्रमाण कलचुरी शासक दद्द द्वितीय के ताम्रपत्र में मिलता है । दद्द ने २२ अप्रेल ६४२ ई0 को दशपुर के निवासी विद्वान् ब्राह्मण 'सूर्य्याय' जो भारद्वाज गोत्र वाजसनेय मध्यान्दि शाखा का था, और दशपुर से गुजरात के क्षीरसारा ग्राम में निवास करता था, को संग्राम खेट में स्थित स्वर्णपल्ली व क्षीरसरा में भूमि दान दी थी।

औलिकरों के पतन के बाद संभवतः वर्तमान मंदसौर जिले के उत्तरी पूर्वी क्षेत्र पर राष्ट्रकूटों का आधिपत्य हो गया था । इन्द्रगढ से प्राप्त सम्वत् ७६३ की णण्णपू की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि पाशुपत मतावलम्बी रुद्र पूजकों की श्रृंखला में श्रेष्ठ विनीतराशि व उनके शिष्य दानराशि योगाभ्यास से इन्द्रियनिग्रही शिष्यों को पढाने एवं ईश्वरोपासना में मग्न रहते थे ।

गौडदेशीय शंकर के पुत्र दुर्गादित्य द्वारा रचित इस प्रशस्ति में शिव व पार्वती का अत्यन्त मनोहारी वर्णन है यथा-

श्रीमत्कंकणपन्नगेन्द्रशिरसि ज्वालावलीभासुरो
यस्तिष्ठत्यमलो मणिस्तदुदरे संक्रान्तबिम्बद्युतिम्, ।
रूपं भर्तुरवेक्ष्य लज्जितमुखी गौरी मनोहर्षणं
रोमाञ्चं दधती विवाहसमये नित्यं शिवायास्तु वः ।।

इस के नीचे संस्कृत गद्य में लिखित भी एक अभिलेख है जिसमें प्राग्वाट कुमारियों द्वारा इस गुहेश्वर मंदिर हेतु भूमिदान का उल्लेख है ।

८ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक इस अंचल में कोई ऐसा अभिलेख नहीं मिला है जिस से संस्कृत रचनाओं व रचनाकारों की जानकारी हो सके । मंदसौर से पश्चिम में स्थित छोटार्सी से प्राप्त महेन्द्रपाल द्वितीय के अभिलेख में दशपुर के चातुर्वेद विशारद मठाधीश हरिकपीश्वर का उल्लेख मिलता है जिसे सम्वत् १००३ (९४६ ई0) में खर्परपदक नामक ग्राम दान में दिया गया था । राजपुरोहित त्रिविक्रमनाथ द्वारा यह दानपत्र रचा गया था ।

१० वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से १३ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक भी कोई महत्त्वपूर्ण अभिलेखिक जानकारी नहीं मिलती है । इस अवधि में संस्कृत में गद्य रूप में उत्कीर्ण

अभिलेख जीख, मंदसौर, खौर, रतनगढ़, हिंगलाजगढ़, धसोई, सुखानन्द में मिले हैं। परन्तु उनका पूर्ण वाचन नहीं हुआ है इस कारण कुछ अधिक नहीं कहा जा सकता है।

१३ वीं शताब्दी में मंदसौर जिले का उत्तरी पूर्वी भाग परमारों के अधीन था। मोड़ी पट्टन परमारों की उप राजधानी रही है। सम्वत् १३१४ (२३ जनवरी १२५८) का एक अभिलेख जयवर्म्मा द्वितीय के शासन काल का यहाँ मिला है। विद्वान् विप्र वामन द्वारा रचित यह प्रशस्ति चार टुकड़ों में थी जिसमें से दो टुकड़े खो गये, अतः इसका पूर्ण अध्ययन संभव न हो सका। इसी काल में जिले का उत्तरी पश्चिमी भाग गुहिलों के कब्जे में था। नीमच तहसील से रावल समरसिंह के सम्वत् १३२८ के दो, १३५४ के दो व १३३० का एक शिलालेख मुझे क्रमशः वीसलवास केला, रातडिया, हिंगोरिया, अरन्या व छाछखेड़ी में मिले हैं। इन में से वीसलवास केला का अभिलेख संस्कृत व डिंगल दोनों में है। रातडिया का खण्डित डिंगल में है तो हिंगोरिया, अरन्या व छाछखेड़ी के अभिलेख संस्कृत में हैं। स्मरण रहे कि रावल समरसिंह के सबसे प्राचीन अभिलेख सम्वत् १३२८ के हैं जो मंदसौर जिले में पहली बार प्रकाश में आये हैं। इन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि संस्कृत के ज्ञान का प्रचार दिन पर दिन कम होता जा रहा था इसलिये अभिलेखों में स्थानीय भाषा का प्रवेश कराना आवश्यक हो गया था।

इसी समय रामपुरा राज्य के संस्थापक चन्द्रावतों के पूर्वज रामपुरा के आस पास आ बसे थे। ये संस्कृत प्रेमी थे। मालाहेड़ा में मुझे विजा के पुत्र केलहा की वीरगति का एक अभिलेख सम्वत् १३४४ (१२८७ ई0) का मिला है जो संस्कृत में है।

१४ वीं शताब्दी का एक भी अभिलेख प्रकाश में नहीं आया है। अतः इस समय की राजनैतिक व सांस्कृतिक गतिविधि की जानकारी नहीं मिलती है परन्तु तवारीखों से ज्ञात होता है कि यह काल मुस्लिम आक्रमणों के श्रीगणेश का था। २५ नवम्बर १३०५ को अलाउद्दीन खिलजी के सेनानायक एन्-उल-मुल्क ने मालवा के परमार शासक महलक देव को पराजित कर मुस्लिम सत्ता की स्थापना कर दी। इससे चित्तौड, रामपुरा आदि के राजपूत शासक, जिनके हाथों में मंदसौर जिले का अधिकांश भाग था, सहम गये। अनेकों देवालयों के निर्माण कार्य जहाँ के तहाँ धरे रह गये। मेरे द्वारा किये गये ७०० ग्रामों के सर्वेक्षण के अन्तर्गत जावद तहसील में नया गाँव से कोई २ कि0 मी0 दूर 'ढाबा माताजी' का मंदिर प्रकाश में आया है। इस में लगे एक पंक्ति के अभिलेख से इस बात की पुष्टि होती है कि महलक देव की पराजय यानि १३०५ में यह मंदिर निर्माणाधीन था परन्तु मालवा परमार सत्ता की समाप्ति के बाद इस मंदिर का निर्माण तत्काल बन्द हो गया। प्रतिमायें अर्द्धनिर्मित रह गयी। फूलों की आकृति गेरू से बनी है, दो पंखुड़ियाँ बनी हैं शेष चित्रित रह गयीं। ऐसे वातावरण में १४ वीं शताब्दी में एक पंक्ति का लेख उत्कीर्ण कर

निर्माताओं ने हाथ जोड़ लिये । लेकिन उस तनाव के इस वातावरण में भी संस्कृत का प्रयोग दशपुर के शेताम्बर जैन सम्प्रदाय के उपदेश जाति के दो श्रेष्ठी परिवारों द्वारा स्थापित तीर्थङ्कर आदिनाथ की प्रतिमा की पाद पीठिका पर उत्कीर्ण अभिलेख में किया है । देवनागरी लिपि में सम्वत् १४०५ (१३४८ ई0) में उत्कीर्ण इस अभिलेख की भाषा संस्कृत है जिसमें अशुद्ध विभक्तियों व स्थानीय शब्दों का प्रयोग है । भाषा के गिरते हुए स्तर से तत्कालीन परिस्थितियों का अन्दाजा लगाया जा सकता है ।

मंदसौर में मुस्लिम सत्ता की स्थापना कब हुई ? डॉ० रघुवीर सिंह का मत है कि "ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि ईसा की १४ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही मन्दसौर में मुसलमान अधिकारियों का आधिपत्य स्थापित हो पाया था, यद्यपि इतिहास ग्रंथों में मंदसौर के शासक के रूप में किसी अधिकारी के नियुक्त किये जाने का कोई उल्लेख नहीं मिलता है ।" फिरोजशाह तुगलक के समय मालवा का सूबेदार मुहम्मद गौरी का वंशज दिलावर खाँ गौरी था । तुगलक की मृत्यु व तैमूर के आक्रमण से हुई अराजकता से उसनें मालवा में स्वतंत्र राज्य की स्थापना करली । इस के पुत्र हुशंगशाह गौरी (१४०५-१४३४ ई0) के गद्दी पर बैठते ही मालवे में हलचल मच गयी । पश्चिमी मालवा स्थित इस दशपुर अंचल के सवर्णों ने गौरी के इस वंशज की कार्यशैली का अनुमान कर राजस्थान की राह पकड़ना शुरू की । चित्तौड़ के समिधेश्वर मंदिर के अभिलेख से इस आव्रजन की जानकारी मिलती है। इस अभिलेख की रचना दशपुर के दशोरा ब्राह्मण विष्णु भट्ट के पुत्र एकनाथ भट्ट ने वि0 स0 १४८५ (१४२८ ई0) में की थी । हुशंगशाह गौरी ने अपने राज्य की उत्तर-पश्चिमी सीमा को सामरिक दृष्टि से सुदृढ करने के उद्देश्य से उस सीमान्त क्षेत्र के प्रमुख नगर मंदसौर में एक सुदृढ किले का निर्माण कराया, जिसका सुस्पष्ट उल्लेख गुजरात के इतिहास ग्रंथ 'मिरात-इ-सिकन्दरी, (१४३६-१४६९) में मिलता है ।

हुशंगशाह गौरी के बाद महमूद खाँ खिलजी, जो तुर्क था, मालवा का सुल्तान बना । फरिश्ता ने उसे बड़ा सच्चा उदार और न्यायी लिखा है । परन्तु इसने सारा जीवन युद्धों में बितायां, राजपूताना को पददलित करने की दृष्टि से उसने चित्तौड़ पर कई आक्रमण किये और मंदसौर को अपनी फौजी छावनी में परिवर्तित किया तथा भारी मात्रा में धर्मान्तिरण किया । इसके सबसे बड़े शिकार दशपुर के विद्वान् व संस्कृतोपासक दशोरा ब्राह्मण हुए जिनका भारी मात्रा में संहार किया गया । मंदसौर के जन साधारण इस घटना को अलाउद्दीन खिलजी के काल की मानते हैं परन्तु वास्तव में यह घटना महमूद खिलजी के काल की है व ब्राह्मणों में हुशंगशाह गौरी के समय से उठे तूफान की परिणति थी । इसका प्रमाण तबकात-ऐ अकबरी में मिलता है । इस ग्रंथ के अनुसार माण्डू की सेना हिजरी ८४७ (१४४४) को

मंदसौर में थी। जब जौनपुर के शासक इब्राहीम के पुत्र मोहम्मद शाह का दूत आया तब भी मोहम्मद खिलजी ने प्रत्युत्तर दिया था कि "उसकी सेना मंदसौर में धर्म परिवर्तन में लगी हुई है।"

खिलजी के इस विशाल धर्मान्तरण एवं नृसंहार की वजह से दशोरा ब्राह्मण व अन्य जातियों ने रामपुरा में चन्द्रावतों व चित्तौड़ में गुहिलों की शरण ली। दशपुर से संस्कृत का नाम मिट् गया। इसका पता हमें महमूद के पुत्र गियास शाह (१४६९-१५०० ई0) के सेनापति मलिक बहरी द्वारा वर्तमान मंदसौर जिले की गोठ तहसील के ग्राम खडावदा में निर्मित बावड़ी में लगी गियासशाह की प्रशस्ति से ज्ञात होता है। इस सं0 १५४१ की प्रशस्ति के लेखन हेतु मंदसौर में कोई संस्कृत पण्डित न मिला। परन्तु संस्कृत एवं संस्कृति की इस भूमि में गियास का संस्कृत प्रेम भी कुछ ऐसा जागा कि उसने अपने पिता के काल की कटुता को भुलाकर चित्तौड़ से कवि महेश को आमंत्रित किया। महेश प्रख्यात प्रशस्ति रचनाकार था जिसने राणा कुम्भा के समय कुम्भलगढ़ की प्रशस्ति व चित्तौड़ कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति उत्कीर्ण की थी। एकलिंग से प्राप्त सम्वत् १५४५ के शिलालेख में इसकी वंशावली मिलती है। रायमल की पटरानी शृंगारदेवी द्वारा निर्मित कूप में वि0 सं0 १५५६ के शिलालेख से ज्ञात होता है कि इस कवि को गुहिल परिवार में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। गियासशाह के काल में कवि महेश द्वारा रचित खडावदा प्रशस्ति गियास की संस्कृतप्रियता व धार्मिक सौहार्द का जीवन्त प्रमाण है। ६९ संस्कृत छन्दों वाली इस प्रशस्ति की मात्र प्रथम पंक्ति अरबी में है। अभिलेख का प्रारम्भ संस्कृत में गणेश की स्तुति से हुआ है। इसी काल का सम्वत् १५४० का १२ पंक्ति का संस्कृत गद्य में उत्कीर्ण एक अभिलेख नीमच त0 के ग्राम मांगरोल में मिला है।

दशोराओं के दशपुर निष्क्रमण से यह संस्कृत सरिता जो सदियों से प्रवाहित थी सूख गयी व यह फिर १९ वीं शताब्दी में ही पुनः प्रस्फुटित हुई। अब संस्कृत वर्तमान मन्दसौर जिले के भूतपूर्व रायपुरा शाखा में प्रस्फुटित हुई। चंद्रावतों के अधीनस्थ क्षेत्र में संस्कृत का व्यापक प्रचार रहा। यह उनकी राज्यभाषा रही ऐसा, अभिलेखों से ज्ञात होता है।

रायपुरा की आदम बावडी के समीप राव चन्द्रभाण (१६०७ - १६३० ई0) के उल्लेख युक्त सम्वत् १६०१ (१५४४ ई0) का संस्कृत गद्य में अस्पष्ट अभिलेख मिला है। कंवला (भानपुरा तहसील) के सासबहु मंदिर से संवत् १६१६ (१५५९ ई0) का एक १६ पंक्तियों का संस्कृत गद्य अभिलेख मिला है जो जैन सम्प्रदाय के बलात्कारगण व सरस्वती गच्छ की जानकारी देता है। इसमें रामपुरा के राव दुर्गभाण (१५२५-१६०७ ई0) का गुणगान है। चन्द्रावतों के काल में संस्कृत के साथ स्थानीय भाषा युक्त एक अभिलेख राव चन्द्रभाण व उसकी चौहान रानी प्रभावती के द्वारा

कालभैरव मंदिर में स्थापित करवाया गया जो सम्वत् १६४७ (१५९० ई0) का है।

१७ वीं शताब्दी की संस्कृत प्रशस्तियों में रामपुरा के जैन मतावलम्बी श्रेष्ठी जीवा के पुत्र पांथुशाह की प्रशस्ति अति महत्त्वपूर्ण है। पांथुशाह ने सम्वत् १६६५ (१६०८ ई0) में देवालय निर्माण, उद्यापन आदि धार्मिक कार्य करने के बाद बावड़ी में यह प्रशस्ति खुदवायी थी। ४५ से भी अधिक छन्दोबद्ध संस्कृत भाषा व देवनागरी लिपि में उत्कीर्ण यह प्रशस्ति भारद्वाज कुलोत्पन्न दशोरा ब्राह्मण, वेद एवं व्याकरण के पण्डित केशव के पौत्र शंकर द्वारा रचित है। इस में दुर्गभाण व चन्द्रभाण की उपलब्धियों का वर्णन है। पण्डित लक्ष्मीशंकर द्वारा रचित संस्कृत गद्य अभिलेख जो विक्रम सम्वत् १६६६ (१६०९ ई0) का ग्राम कंवला (भानपुरा) में मिला है। इसमें पोरवाल श्रेष्ठी दम्पती द्वारा चतुर्भुजनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठित कराने व कलस चढ़ाने का उल्लेख है। इसमें स्थानीय भाषा का मिश्रण अधिक है। मणि-प्रवाल शैली में उत्कीर्ण एक अभिलेख रामपुरा की सासबहु की बावड़ी में लगा है। गद्य-पद्य मिश्रित होने के कारण यह चम्पू प्रशस्ति का भी नमूना है। सम्वत् १७१५ (१६५८ ई0) के २५ पंक्ति वाले ३१ अभिलेख में १४ वीं पंक्ति तक संस्कृत व स्थानीय भाषा के मिश्रण युक्त भाषा में राव अमरसिंह (१६५०- १६७१ ई0) व उसकी पत्नी व उनकी माता द्वारा बाग, बावड़ी व महारुद्र जी के मंदिर निर्माण का उल्लेख है। १४ वीं पंक्ति से ही ७८ शुद्ध संस्कृत छन्दों, जो उपर की ही बात का संस्कृत अनुवाद है, में प्रारम्भ होती है। इस प्रशस्ति का रचनाकार ब्राह्मण हरिभट्ट है। आंत्री माताजी (मनासा) में जैन मुनि वसन्त सागर की छत्री में देवली के नीचे हरचंद के द्वारा रचा गया सम्वत् १७३३ (१६७६ ई0) का अभिलेख मिला है।

१८ वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य के पतन, मराठों के उत्थान व अंग्रेजी सत्ता के विस्तार के परिणाम स्वरूप जन साधारण विचलित रहा और इस सदी में इस क्षेत्र में संस्कृत का कोई अभिलेखिक प्रमाण नहीं मिलता है।

सम्पूर्ण १८ वीं शताब्दी व १९ वीं शताब्दी में शुद्ध संस्कृत रचनायुक्त कोई अभिलेख सम्पूर्ण मन्दसौर क्षेत्र में नहीं मिलता है। सम्वत् १९३० (१८७३ ई0) की संस्कृत व राजस्थानी भाषायुक्त एक प्रशस्ति लाला हुलासराय की छत्री पर अंकित मिलती है। इसके लेखक प्रख्यात इतिहासविद् कवि चारण सूर्यमल्ल मिश्रण (बूँदी) थे।

भाग्य से इस क्षेत्र में अभिलेखों में संस्कृत प्रयोग के प्रमाण २० वीं सदी तक मिले है। नीमच छावनी के आबकारी ठेकेदार व बैंकर लाला अग्नूराम कलार की मृत्यु सम्वत् १९०१ (१८९७ ई0) में हुई। उनकी मंशा के अनुसार उनके प्रपौत्र फूलचंद्र ने सम्वत् १९५९ (१९०३ ई0) में उनकी छत्री बनवायी और उस पर संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी व उर्दू में अभिलेख खुदवाया। इस अभिलेख में [illegible] का नाम लक्ष्मणपुर बताया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मंदसौर परिसर के अभिलेख, जो अधिकांशतः २०वीं शताब्दी में प्रकाश में आये, ने वत्सभट्टि, वासुल, रविल, ध्रमरसोम, चेल्लप्रकाश, वामन, दुर्गादित्य, महेश, शंकर, हरिभट्ट, हरचंद आदि अनेक अज्ञात प्रशस्तिकारों की जानकारियाँ दीं, इन प्रशस्तिकारों ने अपनी पाषाण प्रशस्तियों से संस्कृत को अमर कर दिया। यह मंदसौर का मंदभाग्य ही था कि ये प्रशस्तिकार संस्कृत साहित्याकाश में न तो काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में स्मरण किये गये न ही सुभाषितों में जनसाधारण की जिह्वाग्र पर बसे। समय के परिवर्तन ने जब अन्धकार की पर्त विदीर्ण की तब २० वीं शताब्दी में सदियों के अन्तराल के बाद जो नक्षत्र प्रकाशमान हुए वे संस्कृत साहित्याकाश में दीप्तमान हो उठे।

## मंदसौर क्षेत्र में संस्कृत रचनाओं व रचनाकारों के साहित्यिक सन्दर्भ

इस परिसर के लोगों की संस्कृतप्रियता का प्राचीनतम साहित्यिक प्रमाण पहली शताब्दी ई0 पू0 का मिलता है। प्रसिद्ध जैनागम 'नांदी सूत्र' के अनुसार उच्च कोटि के विद्वान् ब्राह्मण सोमदेव ने अपने पुत्र आर्यरक्षित को वेद उपनिषद् आदि विद्याध्ययन हेतु पाटलिपुत्र भेजा था। जब आर्यरक्षित पाटलिपुत्र से अध्ययन कर दशपुर आये तो नगर प्रवेश के समय राजा, पुरोहित, आदि के साथ नगरवासियों ने उनका स्वागत किया। यही संस्कृत पण्डित आर्यरक्षित (५०२-५९२ वीर निर्वाण वर्ष) आगे चलकर जैनाचार्य हुआ। इसने ''अनुयोगद्वार सूत्र'' नामक महत्त्वपूर्ण जैनागम की रचना की और अध्यापक विंध्य की प्रार्थना से जैनागमों को धर्म, चरण, द्रव्य, व गणित चार अनुयोगों मे विभाजित किया। इन्हीं आचार्य के काल में दसपुर में गोष्ठ महिल से अबार्द्धक नामक ९वाँ निह्नव मत प्रचारित होने का उल्लेख भी मिलता है। आर्य रक्षित का 'अनुयोगद्वार' अर्द्धमागधी में है। इसमें प्रश्नोत्तर रूप से पल्योपमादि उपमा प्रमाण का स्वरूप समझाया गया और नयों का भी प्ररूपण किया गया है। इसके अतिरिक्त काव्य सम्बन्धी नव रसों, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना आदि के लक्षणों एवं चरक गौतम आदि अन्य शास्त्रों के उल्लेख भी आये हैं। इस पर हरिभद्र सूरी (७५० ईसवी) द्वारा विवृति भी लिखी गयी है।

इसके बाद संस्कृत में लिखी गयी किसी पुस्तक या लेख का पता नहीं चलता है। १८८५ में प्रख्यात लिपिविद् सर जान फेथफुल फ्लीट मंदसौर आये तो उन्हें लोगों ने 'दशपुरमाहात्म्य' नामक एक ग्रन्थ की जानकारी दी थी। संभवतः यह ग्रन्थ १८ वीं शताब्दी में किसी पण्डित ने संस्कृत में रचा होगा। फ्लीट काफी प्रयास के बाद भी इस पुस्तक को प्राप्त न कर सके। १९७५ में मंदसौर उत्खनन के दौरान डॉ० सुरेन्द्र कुमार आर्य्य (उज्जैन) ने यह प्रचारित किया था कि यह पुस्तक सिन्धिया

प्राच्य शोध संस्थान (उज्जैन) मे है । मैंने वहाँ काफी खोज बीन की परन्तु जानकारी न मिली । मंदसौर में पन्नालाल जी नामक एक व्यक्ति ने पुस्तकों का संग्रह उज्जैन व साथ ही बीकानेर भी दिया था । तदर्थ मैंने अगरचन्द नाहटा (बीकानेर) से भी पत्र व्यवहार कर इसकी जानकारी चाही पर निराशा ही मिली । संस्कृतविदों का केन्द्र होने के बाद भी यहाँ किसी संस्कृत रचनाकार की रचना का न मिलना आश्चर्य का विषय है । संभवतः महमूद खिलजी के विध्वंस के दौरान कई ग्रंथ अग्निकों भेंट हो गये हों ?

## २० वीं शताब्दी के संस्कृत रचनाकारों व संस्कृतसेवियों का परिचय

इस परिसर में संस्कृत रचनाकारों व संस्कृत सेवियों की दीर्घ शृंखला रही है जिनमें से अपने पीछे अपने नाम से पहचान छोड़ जाने वाले अनेक लोग रहे हैं व कुछ हैं जिनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है ।

### १. पण्डित बंसीधर शास्त्री (१८६०-१९५२ ई0)

पण्डित बंसीधर जी के पिता स्व0 श्री रामदत्त शास्त्री, व्याकरण, साहित्य, पुराण, आयुर्वेद आदि के प्रकाण्ड पण्डित थे । आपका बाजीराव पेशवा (द्वितीय) से संस्कृत में पत्र व्यवहार होता था । इनके पुत्र बंसीधर भी प्रखर संस्कृतविद् थे । आप मंदसौर में ग्वालियर राज्य के प्रधान पण्डित थे । महाराजा माधवराव व जीवाजी राव सिन्धिया ने आपको अनेक प्रकार के पुरस्कारों से सम्मानित किया था ।

### २.महाराजा सर रामसिंह राठौड़ (१८७९-१९६२ ई0)

भू0 पू0 सीतामऊ रियासत के महाराजा रामसिंह तत्त्वज्ञान, वेदान्त, न्याय, ज्योतिष, काव्यशास्त्र आदि अनेक विद्याओं के ज्ञाता थे । संस्कृत के प्रति आपका अपार प्रेम था । इस की उन्नति हेतु आपने सीतामऊ में संस्कृत विद्यालय की स्थापना की । इस के लिए भूमि व ७०४१ रु0 दान दिये व जावद से प्रख्यात संस्कृतविद् क्षितिकण्ठ शास्त्री को आमंत्रित कर उन्हें इस पाठशाला का प्रमुख आचार्य नियुक्त किया । आपके द्वारा स्थापित इस पाठशाला में सैकड़ों विद्यार्थियों ने शिक्षा प्राप्त कर ज्ञानपताका को विभिन्न दिशाओं में फहराया । सीतामऊ लघुकाशी के रूप में उसी समय प्रख्यात हुआ । सर रामसिंह स्वयं 'मोहन' उपनाम से रचनाएँ करते थे । आपकी तीन रचनाएँ-'मोहनविनोद' 'रामविलास' व 'वायुविज्ञान' प्रकाशित है । इनमें से 'मोहनविनोद' में उनके कुछ स्वरचित संस्कृत श्लोक उद्धरित हैं ।

## ३. पं० झब्बालाल राजपुरोहित (१८७९- १९४९ ई०)

ग्राम लदूना में जन्मे श्री पुरोहित ने १४ वर्ष तक ऋषिकेश में रहकर साहित्य, व्याकरण, दर्शन, कर्मकाण्ड आदि का अध्ययन किया। धार जिले का ग्राम चान्दोडिया आपकी कर्मभूमि रही। आपके संस्कृत रचित कतिपय श्लोक, स्तुति आदि श्री भगवतीलाल राजपुरोहित के पास संगृहीत है।

## ४. नरहरि शास्त्री (१९०८-१९८९ ई०)

ग्राम मनासा मे जन्मे स्व० शास्त्रीजी ने रामानुज सम्प्रदाय के मठाधीश १००८ स्वामी श्री अनन्ताचार्य (कांचीपुरम्) का शिष्यत्व प्राप्त किया था। आप संस्कृत के अध्यापक रहे व बाद में संस्कृत महाविद्यालय इन्दौर में प्राध्यापक के पद से त्यागपत्र दे कर भागवत के रससिद्ध, आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हुए। आपने संस्कृत में 'क्षमैकविंशति', 'कपिराजविंशति' व 'विष्णुस्तुति' नामक रचनाएँ लिखी जो अप्रकाशित हैं।

## ५. पण्डित क्षितिकण्ठ शास्त्री (१९१०-१९८८ ई०)

जावद नगर में जन्में श्री शास्त्री ने संस्कृत की प्राथमिक शिक्षा पण्डित चन्द्रशेखर से प्राप्त की। फिर आपने बनारस में रहकर संस्कृत का गहन अध्ययन किया। आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर बम्बई बड़गादी के रामानुजाचार्य जगद्गुरु श्री देवनायकाचार्य ने आपको 'विद्यालङ्कार' की उपाधि से विभूषित किया।

आपकी ख्याति को सुनकर सीतामऊ राज्य के विद्यानुरागी महाराजा सर रामसिंह ने आपको सीतामऊ आमंत्रित कर संस्कृत के प्रचार-प्रसार हेतु एक पाठशाला स्थापित कर उसका प्रधानाचार्य नियुक्त किया। श्री शास्त्री ने अनवरत मेहनत व निष्ठा पूर्वक छात्रों को अध्ययन कराकर डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी, पण्डित शि० ना० गौड़ आदि योग्य शिष्यों की एक ऐसी पंक्ति तैयार की जो संस्कृत विकास में महत्त्वपूर्ण प्रमाणित हुई। श्री शास्त्री ने गीता का पद्यानुवाद किया, तथा ''जीवनलक्ष्य सिद्धि-पथ'' शीर्षक से १०८ श्लोकों की रचना की। ये दोनों कृतियाँ प्रकाशित हैं।

## ६. रमाकान्त शास्त्री (१९१५-१९७७ ई०)

मनासा मे जन्मे श्री शास्त्री ने प्रारम्भिक शिक्षा अपने बड़े भाई श्री नरहरि शास्त्री से प्राप्त की। आप १९५६-६० तक संस्कृत महाविद्यालय इन्दौर में प्राध्यापक रहे। १९७० में सेवा निवृत्ति के बाद १९७५ तक इन्दौर की भारतीय संस्कृत प्रकाशन संस्था के प्रधान [illegible] रहे।

## ७. पद्मश्री डॉ० वि० श्री० वाकणकर (१९१९-८७ ई०)

नीमच शहर में जन्मे प्रख्यात पुरावेत्ता, कलाविद्, लिपिविद् डॉ० वाकणकर ने संस्कृतोत्कीर्ण अनेक प्राचीन प्रशस्तियों, ताम्रपत्रों आदि का वाचन किया। अनेक प्रशास्तियाँ उन्हें कण्ठस्थ थीं। संस्कृत व भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक श्री वाकणकर ने इनके प्राचारार्थ, विश्व हिन्दू परिषद् के तत्त्वावधान में इंग्लैड, अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, नेपाल, सिंगापुर आदि की यात्रा कर वहाँ प्रदर्शनियों, भाषणों के माध्यम से व्यापक चेतना जगायी। १९७५ में आपको भारत सरकार ने पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित किया।

## ८. धनगिरि शास्त्री (१९२५-१९७२ई०)

सीताराम बड़ामठ के महन्त व शिक्षक श्री धनगिरि शास्त्री सीतामऊ संस्कृत विद्यालय के प्रतिभावान् छात्र थे। आपकी अनेक स्फुट रचनाएँ संस्कृत व हिन्दी में 'सरस्वती' 'कल्याण' व 'मालव मयूर' मे प्रकाशित हैं।

## ९. पण्डित रामचन्द्र देहलवी

प्रसिद्ध संस्कृतविद् व अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महात्मा श्री देहलवी का जन्म नीमच के सुनार परिवार में हुआ था। आप दिल्ली चले गये थे अतः आपको दिल्ली वाले बावा के नाम से पुकारते थे अतः आपने देहलवी लिखना प्रारम्भ कर दिया था। आपने वेदों का गहन अध्ययन किया था। आप हैदराबाद नवाब के विरुद्ध किये गये सत्याग्रह में अग्रणी थे।

## १०. डॉ० श्रीनाथ श्रीपाद हसूरकर

स्व0 हसूरकर जी का जन्म इन्दौर में हुआ था। आप के पिता स्व0 पण्डित रत्न श्रीपाद शास्त्री, वेदान्ततीर्थ, सांख्यसागर सन् १९२४ ई0 से १९४० ई0 तक संस्कृत महाविद्यालय इन्दौर के प्राचार्य रहे। योग्य पिता के पुत्र डॉ० श्रीनाथ शासकीय सेवा में स्थानान्तरित होकर नीमच आये। यहीं वर्षों नीमच महाविद्यालय में प्राचार्य रहे। यहीं सेवानिवृत्त हुए, बस गये व नीमच में ही दिवंगत हुए। आपने संस्कृत में अनेक रचनाएँ की हैं। सिन्धुकन्या व चेन्नम्मा आपके प्रकाशित उपन्यास हैं। कालिदास अकादमी उज्जैन ने आपको पुरस्कृत किया था।

## ११.डॉ० हरिहर त्रिवेदी

१९०५ में रामपुरा में जन्मे श्री त्रिवेदी ने रामपुरा में ही शिक्षक के रूप में जीवन प्रारम्भ किया। इण्टर व बी० ए० में आपने सर्वोच्च अंक प्राप्त कर इलाहाबाद वि0 वि0 से स्वर्णपदक प्राप्त किये। बाद में इलाहाबाद से स्नातकोत्तर परीक्षा प्रथम

श्रेणी में प्रावीण्य सूची में प्रथम स्थान के साथ व बनारस से शोध उपाधि प्राप्त की।

आपने संस्कृत में 'नगराजविजय' व 'गणाऽभ्युदय' नामक नाटक लिखे। बोधायन की 'कबीरवाणी' नामक संस्कृत टीका का सम्पादन किया। कबीर से प्रभावित होकर आप ने संस्कृत में सहस्र श्लोकयुक्त 'कबीरगीता' का प्रणयन भी किया है।

संस्कृत व पुरालिपि के उद्‌भट विद्वान् डॉ० त्रिवेदी ने भारतीय अभिलेखों के संग्रह 'कारपस स्क्रिप्शनम् इण्डीकेरम' के सातवें भाग का दो खण्डों में सम्पादन किया है। इसका द्वितीय खण्ड 'परमार अभिलेख' भारतीय पु0 सर्वेक्षण दिल्ली द्वारा प्रकाशित किया गया है। प्रथम भाग जिसमें चन्देल, कच्छपाघात आदि के अभिलेख हैं प्रकाशनाधीन है। भारत में इस प्रकार का पहला कार्य डॉ० वि0 वि0 मिराशी (नागपुर) द्वारा किया गया था, दूसरे महत्त्वपूर्ण कार्य को सम्पादित करने का श्रेय दशपुर के इस सपूत को है। हिन्दी में भी आपने अनेक सम्पादन व लेखन किया है इस कारण आपको इलाहाबाद वि0 वि0 द्वारा 'विद्यावाचस्पति' की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया है। वर्तमान में भी आप साहित्य व इतिहास के सृजन में जुटे हैं।

## १२.पण्डित भगवानदास जैन

सिलग्न जि0 ललितपुर में सन् १९०५ में जन्मे दिगम्बर पण्डित भगवानदास जैन ने संस्कृत में शास्त्री किया। तत्पश्चात् वे मंदसौर आकर बस गये। आप नगरपालिकाध्यक्ष व हिन्दू महासभा से १९५३ में म0 प्र0 विधान सभा के सदस्य रहे। दिगम्बर जैन पण्डित के रूप में महत्त्वपूर्ण सेवाओं के कारण सन् १९७३ में इन्दौर में आयोजित जैन परिषद् में आपको उपराष्ट्रपति श्री बी0 डी0 जत्ती द्वारा स्वर्णपदक से सम्मानित किया गया।

## १३.पण्डित किशनलाल दुबे

१९१५ ई0 में सीतामऊ में जन्मे श्री दुबे की प्राथमिक शिक्षा सीतामऊ में हुई। आप को १९३१-३४ तक प्रख्यात इतिहासकार महामहोपाध्याय पण्डित गौरीशंकर हीराचंद ओझा के शोध सहायक होने का सौभाग्य मिला। इस अवधि में आपने 'मुंहणोत नैणसी की ख्यात' तथा 'डूँगरपुर राज्य का इतिहास' के सम्पादन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। अजमेर निवास के दौरान आप मालवा-राजपूतानाके अनेक राष्ट्रीय आन्दोलनकारियों के सम्पर्क में आये। आपके प्रयासों से १९३८ में आपके सभापतित्व में प्रजामण्डल की स्थापना हुई। १९३९-१९६७ तक आप अध्यापक पद पर रहे।

८० वर्ष की अवस्था में श्री दुबे ने सम्राट् अकबर के सेनापति मानसिंह के

सहायक मुरारीदास बडहरा द्वारा संस्कृत में रचित 'मानप्रकाश' नामक ग्रन्थ का अनुवाद एवं सम्पादन किया है । इस की भूमिका डॉ० रघुवीर सिंह ने लिखी है । यह ग्रन्थ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है। इस ग्रन्थ में मुगल सेना की बंगाल विजय का वर्णन है ।

## १४.पण्डित मधुसूदन आचार्य

१९२० ई0 में मंदसौर में संस्कृतानुरागी परिवार में जन्मे श्री आचार्य ने संस्कृत शिक्षक का जीवन यापन किया । साथ ही संस्कृत के प्रचार प्रसारार्थ १९४३ में मंदसौर में ''कालिदास संस्कृत परिषद्'' की स्थापना की । सेवा निवृत्ति के पश्चात् आपने वर्षों तक पशुपतिनाथ पाठशाला के प्रमुख आचार्य के रूप में छात्रों को अध्ययन कराया । 'हेमव्याकरण' पर आपने टीका लिखी है जो हस्तलिखित है ।

## १५.पण्डित शिवनारायण गौड़

१९२० में जावद में जन्मे अध्ययनव्यसनी श्री गौड़ आगरा वि0 वि0 से संस्कृत, दर्शन, हिन्दी व समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त हैं । हिन्दी विभागाध्यक्ष के पद से सेवानिवृत्त श्री गौड 'नई विद्या' नामक दैनिक के आद्य सम्पादक हैं । संस्कृत की प्रेरणा आपने क्षितिकण्ठ जी से प्राप्त की । इसके प्रचारार्थ 'सरल संस्कृत' व सामान्य संस्कृत नामक पुस्तकें लिखी, प्रकाशित कीं, व वितरित कीं । आपने हसूरकर के संस्कृत 'सिन्धुपुत्र' का भी प्रकाशन किया । क्षेत्रीय पुरासम्पदा व संस्कृति के अध्ययन हेतु आपने सम्पूर्ण नीमच तहसील का ग्राम-ग्राम सर्वेक्षण स्व खर्चे से कराया। प्रख्यात स्वतंत्रता संग्राम सेनानी स्व0 सीताराम जाजू की स्मृति में एक विशाल ग्रन्थ का सम्पादन एवं प्रकाशन भी किया है ।

## १६.पण्डित भवानीशंकर पुरोहित

१९२० में जन्मे श्री भवानीशंकर मेवाड़ राज्य के शक्तावत ठिकाने पीपल्या रावजी के राजपुरोहित हैं । आप ने मंदसौर के दानी वीर सेठ एकाजी मोतीजी, द्वारा स्थापित ''विश्वनाथ संस्कृत पाठशाला'' में प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् एवं व्याकरणाचार्य पण्डित नरनाथ झा से शिक्षा प्राप्त की । अध्ययन के साथ साथ आप राष्ट्रीय आन्दोलन से भी प्रभावित हुए व आपने प्रख्यात स्वतंत्रता संग्राम सेनानी माणिक्यलाल वर्मा से भेंट कर १९३९ में पीपल्याराव में प्रजामण्डल की स्थापना की। वर्तमान में आप बालकों को कर्मकाण्ड व संस्कृत की शिक्षा प्रदान करते हैं । आपने 'नवरात्रि विधान' नामक पुस्तक की रचना व सम्पादन किया है जो प्रकाशनार्थ विचारणीय है ।

## १७.पण्डित मदनलाल जोशी

१९२४ में मंदसौर में जन्मे श्री जोशी ने भगवती संस्कृत विद्यापीठ के संस्थापक कृष्णानन्द तीर्थ की प्रेरणा व सानिध्य में संस्कृत का अध्ययन किया। बाद में बनारस से व्याकरण शास्त्री का अध्ययन कर १९४९-१९८२ तक अध्यापक पद पर कार्य किया। आपने ऋतुसंहार का हिन्दी पद्यानुवाद व पद्मभूषण पण्डित सूर्यनारायण व्यास (उज्जैन) द्वारा लिखित 'सागरप्रवास' का संस्कृत अनुवाद किया। दोनो कृतियाँ प्रकाशित हैं। आप भागवत कथा के पण्डित हैं व भारत के अधिकांशतः सभी प्रमुख नगरों में अपने ज्ञानामृत की वर्षा कर चुके हैं।

## १८.डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी

१९२५ में मंदसौर में जन्मे डॉ० त्रिपाठी ने अपने ताऊजी रामचन्द्रजी शर्मा व कृष्णलालजी शर्मा से संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। अनवरत अध्ययन रत श्री त्रिपाठी ने संस्कृत में स्नातकोत्तर उपाधि व पीएच0 डी0, डी0 लिट्0 भी प्राप्त की। राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ दिल्ली से सेवानिवृत्त डॉ0 त्रिपाठी वर्तमान में सिन्धिया प्राच्य शोध संस्थान (उज्जैन) में कार्यरत हैं। आपने ९० से भी अधिक ग्रन्थों का प्रणयन किया जिनमें 'पत्रदूतम्' 'पुत्रदूतम्' खण्डकाव्य है। 'गायत्रीलहरी', 'भैरवलहरी' आदि अन्य कृतियाँ हैं। आपने १०० से भी अधिक शोधपत्रों व प्रौढ निबन्धों की रचना की है। कोई २० से भी अधिक शोध छात्रों ने आपके निर्देशन में शोध कार्य कर शोध उपाधि प्राप्त की है।

## १९.पौराणिक कृष्ण शर्मा

१९३२ में सीतामऊ में जन्में श्री शर्मा ने आयुर्वेदशास्त्री व साहित्यालङ्कार की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। आपके अनेक लेख यथा समय 'संस्कृतम्' 'मालवमयूर' 'धन्वन्तरि' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। आपने श्री रायदेव के चरित्र से आकर्षित होकर डिङ्गल कवि लक्ष्मीदत्त बारहट द्वारा रचित 'रामदेव लीला अमृत कथा' का संस्कृत श्लोकानुवाद किया है जो प्रकाशित है।

## २०.डॉ० भगवतीलाल राजपुरोहित

१९४१ में लदूना में जन्मे डॉ० राजपुरोहित ने हिन्दी, संस्कृत व प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृत एवं पुरातत्त्व में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की है। अभी तक आपके कोई ४०० से अधिक शोध लेख प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी रचना ''प्रतिभा भोजराजस्य'' पर आपको म0 प्र0 संस्कृत अकादमी द्वारा भोज पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। 'विद्योत्तमा' आपका प्रकाशित उपन्यास है। आपने 'मेघदूत' व

'पद्मप्राभृतकभाण' का मालवी रूपान्तर तथा 'सेज से सरोज' तथा 'वीणावासवदत्ता' का हिन्दी रूपान्तर भी प्रकाशित किया है । सम्प्रति आप सांदीपनि महाविद्यालय उज्जैन में कार्यरत हैं ।

## २१. डॉ० सोमदेव आचार्य

एक छोटे से ग्राम 'निनोरा' के सुतार परिवार में जन्में आचार्य सामदेव ने आर्यसमाजी संन्यासी सर्वानन्द से संस्कृत की प्रेरणा प्राप्त की । अपने विवाह में भाँवर पड़ने के पूर्व ही मण्डल से भाग कर आप झज्झर गुरुकुल में स्वामी ओमानंद की शरण ली व संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया । इसके बाद श्री युधिष्ठिर मीमांसक (बहावलगढ) से व्याकरण की शिक्षा ली । बनारस से आचार्य, विक्रम वि0 वि0 उज्जैन से स्नातकोत्तर उपाधि, व राजस्थान वि0 वि0 अजमेर द्वारा शोध उपाधि प्राप्त की । आपने संस्कृत के व्यापक प्रचारार्थ मंदसौर से २ माह में संस्कृत शिक्षा के प्रयोग का श्रीगणेश किया । बाद में ये शिविर म0 प्र0, राजस्थान, महाराष्ट्र व उत्तर प्रदेश में आयोजित किये गये । इस हेतु आपने सरल संस्कृत पुस्तक लिखी । आपकी शोध कृति ''वैदिक और लौकिक संस्कृत में स्वरसिद्धान्त'' प्रकाशित है । आप गीता पत्रव्यवहार पाठ्यक्रम सत्यार्थप्रकाश की परीक्षाएँ संचालित करते हैं । सम्प्रति आप बी0 ए0 एम0 एस0 महाविद्यालय बम्बई में संस्कृत प्राध्यापक हैं ।

## २२. बिहारीलाल सुरावत

१९६० में रायसिंह पुरा नामक बंजारों के टाँडे में जन्मे बामणियाँ बंजारा कुलोत्पन्न श्री सुरावत ने पण्डित रजनीकान्त पाण्डेय से प्रेरणा प्राप्त कर संस्कृत का अध्ययन कार्य प्रारम्भ किया । आप मेधावी छात्र हैं ।आपने संस्कृत विषय लेकर स्नातकोत्तर परीक्षा प्रथम श्रेणी में प्रावीण्य सूची में द्वितीय स्थान से उत्तीर्ण की है। ''बामणिया बंजारा समाज'' तथा यादवा माताजी की स्तुति में ''माँ माधुरी'' नामक पुस्तक का लेखन किया है जो प्रकाशित है ।

२०वीं शताब्दी के इन संस्कृत प्रेमी व रचनाकारों की रचनाधर्मिता से मंदसौर गौरवान्वित होकर इस प्राचीन भाषा की पताका लेकर अनवरत आगे बढ रहा है। यद्यपि इस भाषा को पुनः प्रवाहित करने में हमारे प्रयास बौने हैं पर एक-एक कदम चलकर मीलों लम्बी राह गुजर जाती है, इस आशा से हम अनवरत प्रयासशील हैं ।

# आधुनिक संस्कृत साहित्य सम्वर्द्धन में

## सागर जिले का अवदान

डॉ0 भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु'

## सागर जिले की भौगोलिक अवस्थितिः

'सागर'-जिला मध्यप्रदेश के उत्तर-मध्य भाग में स्थित स्वयं सागर सम्भाग का एक हिस्सा है। ब्रिटिश काल में यह अंग्रेजी में SAUGOR अथवा SAUGAR लिखा जाता था। यह २३.१० और २४.२७ उत्तर अक्षांश और ७८.४' और ७९.२१' पूर्व रेखांश के बीच स्थित है। इस प्रकार वास्तव में यह देश के मध्यभाग में अवस्थित है। इस जिले के दक्षिणी भाग से कर्करेखा गुजरती है।

## सागर जिले की सामान्य सीमाएँ

'सागर' जिला आकार की दृष्टि से राज्य का सोलहवाँ बड़ा जिला है। सम्प्रति इस जिले में सात तहसीलें हैं-सागर, बीना, खुरई, बण्डा, देवरी, रहली और गढ़ाकोटा।

भारतीय महासर्वेक्षक (सर्वेयर जनरल ऑफ इण्डिया) के अनुसार इस जिले का कुल क्षेत्रफल ३,९६१ वर्गमील (१०,२६९ वर्ग किलोमीटर) है और इसका आकार स्थूल रूप से एक त्रिभुज की तरह है जिसका शीर्षबिन्दु दक्षिण में है और आधार उत्तर में। जिले का अधिकतम विस्तार दक्षिण-पूर्व से उत्तर-पश्चिम दिशा की ओर है और वह लगभग १०५ मील (१६८.९८ किलो मीटर) है,जबकि त्रिभुज के आधार की लम्बाई लगभग ७५ मील (१२०.|७० किलो मीटर) है।

## सागर जिले में संस्कृत-अध्ययन-अध्यापन की परम्परा

म0 प्र0 शासन द्वारा सन् १९७० में प्रकाशित 'सागर जिला गजेटियर' के पृ0 ४२८-२९ में उल्लेख है कि- 'पुराने जमाने में सागर संस्कृत अध्यापन का एक सुप्रसिद्ध केन्द्र था।' आधुनिक काल के ज्ञात इतिहास के अनुसार, सागर में सबसे पहली

संस्कृत पाठशाला सन् १८९८ में श्री विनायक राव देवेकर ने प्रारम्भ की थी। लगभग इसी समय दूसरी पाठशाला दुलारीबाई के मन्दिर में प्रारम्भ की गयी थी। इस पाठशाला के विद्यार्थी राष्ट्रीय विचारधारा के थे और सन् १९०७ में योगिराज अरविन्द के आगमन के पश्चात् यह संस्कृत पाठशाला विदेशी सत्ता के विरुद्ध सार्वजनिक आन्दोलन का एक ऊर्जस्वी केन्द्र बन गयी। सन् १९५७ में इसी पाठशाला का नाम परिवर्तित कर 'ब्रह्मचर्याश्रम' रखा गया जो अब धरमसी नाका पर अवस्थित है।

संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन की की दृष्टि से दूसरी महत्त्वपूर्ण संस्था सन् १९०५ में संस्थापित श्री गणेश दि0 जैन संस्कृत महाविद्यालय है। इस संस्था के छात्रों ने महात्मा गान्धी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन और स्वातन्त्र्य संग्राम में महत्त्वपूर्ण भागीदारी की।

बीना में सन् १९१८ में श्रीनाभिनन्दन जैन संस्कृत विद्यालय की स्थापना की गयी। यह संस्था संस्कृत शिक्षा के प्रसार-अध्यापन के लिए अब भी प्रभावशाली है। सन् १९३९ में सागर में महिलाओं में संस्कृत अध्ययन के विस्तार की दृष्टि से सिंघई रेवाराम जी ने श्री जैन महिलाश्रम की स्थापना की। इसी प्रकार खुरई का श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल, शाहपुर का श्री पुष्पदन्त जैन संस्कृत विद्यालय, ढाना का श्री लक्ष्मणप्रसाद तिवारी संस्कृत डिग्री कालेज प्रभृति संस्थाएँ तथा सागर विश्वविद्यालय और जिले के समस्त उच्चतर माध्यमिक विद्यालय संस्कृत अध्ययन अध्यापन के लिए अहर्निश निरत हैं।

## सागर जिले की साहित्यिक परम्परा :

सागर जिले की आधुनिक युगीन साहित्यिक पृष्ठभूमि में-पं0 हरिवल्लभ तैलंग संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान् थे। उन्होंने विक्रम सम्वत् १७७१ में 'भगवद्गीता' का अनुवाद किया। उनके वंशजों ने सागर की साहित्यिक परम्परा को जीवित रखा। उनके सुपुत्र कुमारमणि ने, जिनका जन्म सन् १६६३ में हुआ था, **'रसिकप्रिया'** (संस्कृत) और **'रसिकविलास'** (हिन्दी) नामक दो विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों की रचना की थी। उनके पौत्र श्री कृष्णभट्ट (जन्म सन् १६८८) ने साहित्य जगत् में विशेष ख्याति अर्जित की ! उनकी ज्ञात प्रातिभ रचनाओं में-**अलंकारकलानिधि, वृत्तचन्द्रिका, श्रीनागर रस माधुरी और दुर्गा भक्ति तरंगिणी**-उल्लेखनीय हैं। 'वणिकप्रिया' के रचयिता श्री सुखदेव एक जैन लेखक थे।

सागर के अनेक संस्कृत मनीषी नागपुर के राघोजी भोंसले (तृतीय) के काल में 'धर्ममण्डल' नामक एक मण्डल में सम्मिलित थे। वस्तुतः सागर जिला संस्कृत-विद्वानों की समृद्ध-परम्परा से अभिमण्डित है। परन्तु इस जिले के अधिकांश विद्वानों का न तो परिचय प्रकाश में आया है और न ही उनकी रचनाओं की सुगन्ध से दिग्-दिगन्त सुवासित हो सका है।

संस्कृत के उन्नयन, सम्वर्द्धन एवं विकास में योग-प्रदाता सागर जिले के मनीषियों की नामावली की एक लम्बी सूची है। इस सूची में उल्लिखित इस जिले के अनेक विद्वान् आजीविका हेतु विभिन्न प्रान्तों में पहुँच गये हैं। किन्तु आज भी सरस्वती के ऐसे वरद पुत्रों की सुदीर्घ परम्परा इस जिले में समुपलब्ध है जिसने विद्यारथ पर आरूढ होकर मानव-मेधा का सतत सम्वर्द्धन किया है। इस मणिमाला के कतिपय देदीप्यमान रत्नों की नामावली अधोलिखित हैं :-

(१) पं० लोकनाथ शास्त्री

(२) पं० गणेश प्रसाद वर्णी न्यायाचार्य

(३) डॉ० रामजी उपाध्याय

(४) डॉ० पन्नालाल साहित्याचार्य

(५) डॉ० (श्रीमती) वनमाला भवालकर

(६) प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी

(७) पं० बच्चूलाल अवस्थी

(८) डॉ० भागीरथ प्रसाद त्रिपाठी 'वागीश'

(९) डॉ० राधावल्लभ त्रिपाठी

(१०) पं० बंशीधर व्याकरणाचार्य

(११) डॉ० दरबारीलाल कोठिया न्यायाचार्य

(१२) पं० लक्ष्मीनारायण न्यायाचार्य

(१३) पं० सुन्दर लाल शास्त्री

(१४) पं० जीवनलाल अग्निहोत्री व्याकरणाचार्य

(१५) पं० सुन्दरलाल जैन न्याय-काव्यतीर्थ

(१६) पं० माणिकचन्द्र न्याय-काव्यतीर्थ, दर्शनाचार्य

(१७) पं० प्रेमनारायण द्विवेदी

(१८) डॉ० हरीन्द्र भूषण जैन

(१९) प्रो० श्रीनिवास रथ

(२०) पं० नाथूराम प्रेमी

(२१) दर्शनाचार्य गुलाबचन्द्र जैन

(२२) डॉ० गोकुलचन्द्र जैन

(२३) डॉ० नरेन्द्र विद्यार्थी

(२४) डॉ0 वीरेन्द्रकुमार जैन

(२५) डॉ0 भागचन्द्र 'भास्कर'

(२६) डॉ0 रतनचन्द्र जैन

(२७) डॉ0 कन्छेदीलाल जैन

(२८) डॉ0 गुलाबचन्द्र जैन

(२९) डॉ0 फूलचन्द्र 'प्रेमी'

(३०) डॉ0 भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु'

(३१) डॉ0 सुदर्शनलाल जैन

(३२) डॉ0 कस्तूरचन्द्र 'सुमन'

(३३) डॉ0 बाल शास्त्री

(३४) डॉ0 कुसुम भूरिया

(३५) पं0 दयाचन्द्र साहित्याचार्य

(३६) पं0 भुवनेन्द्रकुमार शास्त्री खुरई

(३७) पं0 नेमिचन्द्र जैन प्राचार्य खुरई

(३८) पं0 कमलकुमार शास्त्री खुरई

(३९) डॉ0 श्रीमती आशा मलैया

(४०) प्रो0 श्रेयांसकुमार सिंघई

इन और इन जैसे (सम्प्रति अज्ञात) अनेक सरस्वती के वरद पुत्रों ने संस्कृत भाषा में साहित्य का प्रणयन कर सागर मण्डल के गौरव में अनेकशः अभिवृद्धि की है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य के सृजन में निरत कतिपय महानुभावों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सन्दर्भित विश्लेषण अग्रलिखित पंक्तियों में प्रस्तुत है :-

## (१) पं0 लोकनाथ शास्त्री

जन्म-१८९०, जन्मस्थान-पुरी, उच्च शिक्षा-वाराणसी। यहीं से श्री शास्त्री जी के सर्जक व्यक्तित्व का विकास तब प्रारंभ हुआ-जब वे संस्कृत शिक्षा के समुन्नयन हेतु कृतसंकल्प, प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री और समाजसुधारक जैन सन्त श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी के सम्पर्क में आये। इन्होंने न केवल वर्णीजी को पढ़ाया प्रत्युत वर्णीजी के आग्रह पर उनके द्वारा संस्थापित-श्रीगणेश जैन संस्कृत महाविद्या0 सागर में भी अध्यापन किया और वहाँ का प्राचार्य पद सुशोभित किया सागर के जैन महाविद्यालय में इन्होंने साहित्याचार्य डॉ0 पन्नालाल जी प्रभृति अनेक प्रतिभावान छात्रों के वैदुष्य

का विकास किया ।[१] पं० पन्नालाल जी ने अपने अभिनन्दन ग्रन्थ (पृ० २/१९) में 'विद्यागुरुओं के प्रति चिर कृतज्ञता' प्रकट करते हुए श्री शास्त्री जी के वैदुष्य, व्यक्तित्व और अध्यापन शैली के विषय में लिखा है- 'वे ग्रन्थों की संस्कृत व्याख्या स्वयं लिखाते थे और छात्रों से कण्ठस्थ सुनते थे । समास-विग्रह-कोषादि का परिज्ञान इनके द्वारा लिखाई गयी व्याख्या से सहज ही हो जाता था । सागर के पश्चात् शास्त्री जी का आजीवन कर्मक्षेत्र जबलपुर रहा ।

शास्त्री जी द्वारा रचित पद्यबद्ध रचनाएँ अधोलिखित हैं :-

**त्रिपुर-कांङ्ग्रेस-स्वागतानन्द-महोदधि-कल्लोलः, दादाष्टकम्, गणेशाष्टकम्, कृष्णाष्टकम्, राधाष्टकम्, सीताष्टकम्, शिवाष्टकम्, शारदाष्टकम्, गान्धी-विजय-महाकाव्यम्, नर्मदातरङ्गिणी ।**

## (२) पं० गणेशप्रसाद वर्णी न्यायाचार्य

सन्त गणेशप्रसाद वर्णी व्यक्ति नहीं संस्था थे । वे विक्रमाब्द १९३१ में ललितपुर जिले में जन्मे और सन् १९६१ में उनका देहावसान हुआ । सामान्य मध्यम श्रेणी के वैष्णव परिवार में जन्मे गणेशप्रसाद प्रारम्भ से ही संवेदनशील, प्रतिभाशाली, प्रत्युत्पन्नमतित्वसम्पन्न, सतत जागरूक और कर्मठ पुरुष थे ।

१९ वीं शती के अन्तिम चरण में विशेषतः बुन्देलखण्ड अनेक प्रकार की रूढ़ियों, आडम्बरों, अशिक्षाओं और कुसंस्कारों से ग्रस्त था । सम्वेदनशील गणेशप्रसाद ने इसे समुन्नत, सुसंस्कारित और शिक्षित बनाने के लिए आजीवन सफल प्रयास किये । उन्होंने भारतीय समाज के उत्थान तथा विकास के लिए प्राचीन भाषाओं तथा साहित्य के प्रचार-प्रसार, अध्ययन अनुशीलन को नितान्त आवश्यक समझा था । इसी लिए उन्होंने शताधिक संस्कृत शिक्षण संस्थाएँ, महाविद्यालय आदि संस्थापित किये । पाण्डुलिपियों, प्राचीन कलाकृतियों, विद्वानों आदि के संरक्षण के लिए भी अनेकविध कार्य किये । उनका कार्यक्षेत्र सम्पूर्ण भारतवर्ष था । उनका जीवन एक महाकाव्य की भाँति तत्कालीन समाज, संस्कृति, साहित्य, भाषाशास्त्र आदि का प्रतिबिम्ब है। उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की है । संस्कृत, प्राकृत आदि प्राचीन भाषाओं के साथ ही भारतीय दर्शन-चिन्तन को उन्होंने सदैव समृद्ध बनाया है ।

श्री वर्णी जी जैसे साधक मनीषी की योजनाओं और प्रवृत्तियों का सर्वाधिक लाभ बुन्देलखण्ड ने प्राप्त किया । सागर नगर तो उनका 'पर्याय' बन गया । यहाँ उनके द्वारा १९०५ ई० में संस्थापित-श्री गणेश जैन संस्कृत महाविद्यालय आज भी संस्कृत के उच्च अध्ययन केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित है । प्रारंभ में पं० लोकनाथ जी

---

(१) साहित्याचार्य डॉ० पन्नालाल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० २/१९

शास्त्री इसी महाविद्यालय के प्राचार्य रहे । वर्णी जी द्वारा आचार्य कुन्दकुन्द के 'समयसार' का संस्कृत टीका भाष्य एवं संस्कृत में रचित अनेक पद्य उनकी विद्वत्ता के निदर्शक हैं । हिन्दी में उनकी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हैं ।

## (३) डॉ0 रामजी उपाध्याय

डॉ0 रामजी उपाध्याय का नाम ऐसे महानुभावों की प्रथम पंक्ति में गणनीय है जिन्होंने अपनी तपोनिष्ठ जीवनचर्या, साधना, अनुकरणीय क्रियाशीलता और मननीय रचनाधर्मिता से महनीय आदर्शों की प्रतिष्ठा की है । डॉ0 उपाध्याय का जन्म उ0 प्र0 के बलिया जिले में सरयू तट पर 'मलेजी' ग्राम में सन् १९२० में हुआ । उन्हें संस्कृत के महावृक्ष के प्रथम पुष्प के पराग का रसास्वादन वाराणसी में महामाहोपाध्याय पं0 लक्ष्मणशास्त्री तैलंग ने कराया । तदनन्तर प्रयाग विश्वविद्यालय में डॉ0 बाबूराम सक्सेना के सान्निध्य में संस्कृत में एम0 ए0 (पालि-प्राकृत भाषाओं में विशेषज्ञता के साथ) और डी0 फिल्0 उपाधि (१९४५ में) प्राप्त की । महामना पं0 मदनमोहन मालवीय और महात्मा गाँधी उनके प्रेरणा-स्रोत हैं । प्राचीन आदर्शों ने उनके व्यक्तित्व के निर्माण एवं विकास में अभूतपूर्व योग किया है । राष्ट्रीयता, प्राकृतिक परिवेश और ऋषितुल्य जीवन उन्हें सदा प्रिय रहे हैं और हैं । आपकी वेशभूषा भोजन पान विधि, कार्य शैली और लेखनविधा निरन्तर इन्हीं से ओत-प्रोत हैं ।

डॉ0 उपाध्याय सन् १९४७ में सागर विश्वविद्यालय में संस्कृत-व्याख्याता पद पर नियुक्त हुए और क्रमशः प्राध्यापक, प्रवाचक एवं अध्यक्ष पद को सुशोभित किया। वे ३३ वर्षो की सुदीर्घ कालावधि-पर्यन्त सागर वि0 वि0 और अमरवाणी को गौरव-मण्डित करते हुए सन् १९८० में सेवा निवृत्त हुए । सम्प्रति वे वाराणसी में निवास करते हैं ।

डॉ0 उपाध्याय ने संस्कृत भाषा और प्राचीन संस्कृति के समीचीन विकास के लिए बहुविध प्रयास किये हैं । उन्होंने पाठशालाओं, विद्यालयों और महाविद्यालयों का संचालन तो किया ही, उनकी स्थापना भी की है । गाँधीवादी विचारधारा के सम्वर्द्धन की दृष्टि से गांधी-दर्शन और साहित्य सम्बन्धी परीक्षाएँ भी संचालित कीं।

डॉ0 उपाध्याय ने संस्कृत साहित्य, प्राचीन संस्कृति तथा नाट्यशास्त्र के सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थों का प्रणयन संस्कृत तथा हिन्दी में किया । संस्कृत में लिखित ग्रन्थ-

१- भारतस्य सांस्कृतिकनिधिः (उ0 प्र0 शासन द्वारा पुरस्कृत)

२- द्वा सुपर्णा (उ0 प्र0 शासन द्वारा पुरस्कृत)

३- महाकवि कालिदासः, (उ0 प्र0 शासन द्वारा पुरस्कृत)



४- संस्कृत-निबन्धावली,

५- विंशशताब्दिकं संस्कृतनाटकम्,

६- मध्यकालिकः संस्कृतनाटकालोकः,

७- नाट्यशास्त्रीयं प्रयोगविज्ञानम्,

८- दशरूपकतत्त्वदर्शनम्,

९- नाट्यशास्त्रीयपारिभाषिकशब्दानुक्रमणिका,

१०- महाभारतीयसंस्कृतिकोषः,

११- नाट्यशास्त्रीयानुसन्धानम्,

१२- सत्यहरिश्चन्द्रोदयम्,

१३- भासनाटकचक्रम् (सम्पादनम्) ।

इनके अतिरिक्त उनके बहुत से ग्रन्थ हिन्दी और अंग्रेजी में निबद्ध हैं । सागर में रहते हुए उन्होंने लगभग ४० महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की । सन् १९६२ से 'सागरिका' त्रैमासिकी का सम्पादन तथा प्रकाशन प्रारंभ किया जो निर्बाध गति से अब भी प्रकाशित हो रही है ।

सन् १९६२ में डॉ0 उपाध्याय को सागर वि0 वि0 ने डी0 लिट्0 की उपाधि से अलंकृत किया तथा १९७८ में पूना में सम्पन्न 'अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन' में साहित्य के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित डॉ0 उपाध्याय ने अपनी महनीय विद्वत्ता का सर्वोच्च सम्मान प्राप्त किया । वे म0 प्र0 तथा उ0 प्र0 शासन द्वारा विविध साहित्यिक पुरस्कारों से पुरस्कृत हुए हैं ।

## (४) डॉ0 पन्नालाल साहित्याचार्य

डॉ0 पन्नालाल जी का जन्म सागर जिले के पारगुवाँ ग्राम में ५ मार्च १९११ को हुआ । उनका अध्ययन श्री सन्त गणेशप्रसाद वर्णी के सान्निध्य में सागरस्थ श्री गणेश जैन सं0 महाविद्यालय में हुआ । उन्होंने सिद्धान्तशास्त्री, काव्यतीर्थ, साहित्याचार्य तथा सागर वि0 वि0 से १९७३ में पी-एच0 डी0 की उपाधि प्राप्त की।

पं0 पन्नालाल जी का कर्मक्षेत्र सागर का श्री गणेश जैन सं0 म0 वि0 रहा है। उन्होंने सन् १९३१ में प्राध्यापक के रूप में अध्यापन प्रारंभ किया और १९८३ ई0 में प्राचार्य पद से सेवानिवृत्त हुए । सहस्रों विद्वान् आपके शिष्य हैं ।

पं0 पन्नालाल जी अपनी छात्रावस्था से ही संस्कृत में भाषण करते और लिखते हैं । उनके द्वारा संस्कृत में प्रणीत अनेक मौलिक ग्रन्थ हैं । उन्होंने शताधिक संस्कृत प्राकृत-ग्रन्थों का सम्पादन-अनुवाद किया है ।

पं0 पन्नालाल जी के मौलिक ग्रन्थों[२] को चार भागों में विभक्त कर सकते हैं :-

(१) दार्शनिकग्रन्थाः

(२) विनयाञ्जलयः

(३) देवस्तवनानि

(४) विधि-विधानानि चेति ।

# (१) दार्शनिक ग्रन्थ

## (अ) सम्यक्त्वचिन्तामणिः

१८१६ पद्यों के दश मयूखों में विभक्त यह ग्रन्थ विषय और भाषा दोनों दृष्टियों से मनोहर है । इसकी रचना करके पं0 जी ने जैनशास्त्र की परम्परा को पुनर्जीवनदान दिया है । इसमें जैनधर्म के सभी प्रमुख विषयों का समावेश कर दिया है । इसके छन्दोवैविध्य से जहाँ ग्रन्थ के सौन्दर्य में वृद्धि हुई है वहीं हमें धर्मग्रन्थ में काव्य का भी आनन्द प्रदान किया गया है । इस ग्रन्थ पर लघु शोध प्रबन्ध लिखा गया है ।

## (ब) सज्ज्ञानचन्द्रिका

यह ग्रन्थ दश प्रकाशों तथा ७९७ पद्यों में रचित है । प्रसादगुणान्वित यह कृति भारवि के अर्थगौरव की उक्ति को चरितार्थ करती है ।

सम्यग्ज्ञान के विषय में रचित यह ग्रन्थ रचयिता के गहन-गम्भीर अध्ययन, अनुशीलन और प्रकाम पण्डित्य का परिचायक है ।

## (स) सम्यक्चारित्रचिन्तामणिः

यह ग्रन्थ १३ प्रकाशों में विभक्त है । इसमें ११८५ पद्य है । शान्तरस प्रधान, वैदर्भी शैली में उपनिबद्ध इस कृति में समीचीन आचरण का सोपन्यास विश्लेषण है।

# (२) विनयाञ्जलयः

'विनयाञ्जलि' शीर्षक संस्कृत काव्यों में रचनाकार की भाव प्रवणता, गम्भीर अध्ययन, शब्दलालित्य और अलंकारच्छटा पदे-पदे निदर्शित हैं ।

---

२- इन मौलिक साहित्य के विस्तृत परिचय के लिए देखिए-साहित्या0 डॉ0 पन्नालाल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ (२/१८०-९१)

# (३) देवस्तवनानि

इसमें 'मुक्ताहारः सोऽयं, विज्ञपुरुषाणां कण्ठे विराजतां नित्यं' में निर्मल-परिणामों की प्रतिष्ठा हेतु कामना की गयी है । इस कोटि की, लेखक की अन्य रचनाएँ- सामायिक पाठः, धर्मकुसुमोद्यानं आदि हैं ।

# (४) विधि विधान संबन्धी मौलिक रचनाएँ

**विधि विधान संबन्धी मौलिक रचनाओं में रविव्रतोद्यापनम्, अशोकरोहिणीव्रतोद्यापन्म, त्रैलोक्यमण्डलोद्यापनम्, सहस्रनामविधानम्** आदि प्रमुख हैं । साहित्याचार्य जी ने समय-समय पर विविध विषयों पर संस्कृत में शोध-आलेख 'सागरिका' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित कराये हैं ।

मौलिक ग्रन्थों की भाँति आधुनिक वैज्ञानिक सम्पादन विद्या से मण्डित उनके द्वारा सम्पादित-अनूदित ग्रन्थों की संख्या शताधिक है । इनकी अनेक कृतियाँ विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित हैं । प्रशस्त साहित्यसेवा, उद्‌भट विद्वत्ता, कुशल संचालन क्षमता और आदर्श-शिक्षक प्रभृति गुणों के कारण उन्हें भारत शासन, मध्यप्रदेश शासन तथा अखिल भारतीय स्तर की विविध संस्थाओं द्वारा अनेक बार सम्मानित पुरस्कृत व अभिनन्दित किया गया है । अभिनन्दन के विशेषोल्लेखनीय सन्दर्भों में १९६० में भारत शासन के प्रथम महामहिम राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्रप्रसाद जी द्वारा सम्मान, १९६० में म0 प्र0 शासन साहित्य परिषद द्वारा 'मित्र पुरस्कार' सम्मान, १९६९ में महामहिम राष्ट्रपति महोदय द्वारा 'आदर्श संस्कृत शिक्षक' के रूप में सम्मान, १९७१ में म0 प्र0 माध्यमिक शिक्षा मण्डल द्वारा सम्मान आते हैं । इसी प्रकार उन्हें अखिल भारतीय गणेश वर्णी पुरस्कार, महावीर पुरस्कार, अहिंसा अन्तरराष्ट्रिय पुरस्कार अदि से अलंकृत किया गया है ।

वस्तुतः वे परमप्रातिभ, लब्धप्रतिष्ठ आचार्य, निष्णात वाग्मी मनीषी कवि, कुशल संचालक और सफल संगठक हैं । अनवरत ४० वर्षो से उन्होंने अखिल भारतीय जैन विद्वत्परिषद् के मंत्री और अध्यक्ष के पदों का दायित्व निर्वहण किया है । सम्प्रति उसके संरक्षक हैं ।

उनकी रचनाओं में मौलिक प्रतिभा, प्रौढ विद्वत्ता, प्राञ्जल भाषा और परिष्कृत रचना शैली निदर्शित है । ७८ वर्ष की वृद्धावस्था में भी वे पूर्ववत् साहित्य सृजन में निरत हैं ।

साहित्याचार्य जी की साहित्य समाज और राष्ट्र सेवा के उपलक्ष्य में उनका अखिल भारतीय अभिनंदन किया जा रहा है । और उनके व्यक्तित्व कृतित्व का ज्ञापक ८६१ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ यथाशीघ्र समर्पित किया जा रहा है ।

## (५) डॉ० (श्रीमती) वनमाला भवालकर :

श्रीमती भवालकर प्राचीन भारतीय इतिहास तथा संस्कृत में एम० ए० हैं। सागर में विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ संस्कृत व्याख्याता के पद पर इनकी सर्वप्रथम नियुक्ति संस्कृत विभाग में हुई इस दृष्टि से सागर विश्वविद्यालय में संस्कृत-विभाग प्रारम्भ करने का श्रेय इन्हें प्राप्त है। उन्होंने सन् १९६१ में सागर वि० वि० से 'महाभारत में नारी' विषय पर पी-एच० डी० उपाधि प्राप्त की। अनवरत संस्कृत विद्या की सेवा करते हुए वे प्रवाचक पद से सेवा निवृत्त हुई हैं।

समाज सुधार, मनोरम सृजन और नाट्यसंगीत आपकी इष्टापत्ति है। उनकी प्रकाशित कृतियाँ निम्नाङ्कित हैं :-

१- पाददण्डः

२- रामवनगमनम् (संगीतिका),

३- पार्वतीपरमेश्वरीयम्,

४- पंचमहाकाव्येषु चन्द्रः,

५- सीताहरणरूपकम्

६- महाभारत में नारी।

'सागरिका' में आपके अनेक शोध-आलेख भी प्रकाशित हुए हैं।

श्रीमती डॉ० भवालकर की संगीत नाटिकाओं के अनेक बार सफल अभिनय हुए हैं।

## (६) प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी

प्रो० वाजपेयी सागर वि० वि० में प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग के आचार्याध्यक्ष पद पर कार्य करते हुए सेवा निवृत्त हुए हैं। वे अपने विषय के मर्मज्ञ मनीषी तो हैं ही, संस्कृत के भी निष्णात विद्वान् हैं। उन्होंने 'सागरिका' आदि शोध पत्रिकाओं में संस्कृत में अनेक आलेख प्रकाशित कराकर संस्कृत में कलात्मक साहित्य की अभिवृदि की है।

## (७) डॉ० बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञान'

डॉ० अवस्थी का जन्म ६ अगस्त १९१८ को उ० प्र० में हुआ। वे प्राच्य एवं पाश्चात्त्य- उभय पद्धतियों के गम्भीर अध्येता, अन्वेषक और विश्लेषक हैं। व्याकरणशास्त्र के मर्मज्ञ होने के कारण इन्होंने 'प्राचीन भारतीय अर्थविज्ञान' पर आगरा वि० वि० से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की।

पं0 अवस्थी ने विभिन्न विद्यालयों, महाविद्यालयों में अध्यापन किया। सागर वि0 वि0 को भी आपके वैदुष्य का लाभ १ जुलाई १९६७ से ६ अगस्त १९७८ तक प्राप्त हुआ।

आपके निर्देशन में शोध-खोज को भी पर्याप्त और प्रशंसनीय गति मिली है। सम्प्रति ये उज्जैन में कालिदास अकादमी को कृतार्थ कर रहे हैं।

पं0 अवस्थी के हिन्दी में अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हैं। प्राच्य परिपाटी के प्रौढ विद्वान् होने के कारण संस्कृत विद्या को भी आप के वैदुष्य का निरन्तर लाभ प्राप्त होता है।

पं0 अवस्थी की संस्कृत रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं (अर्वाचीनसंस्कृतम्, दूर्वा आदि) में प्रकाशित हुई हैं। उनका 'देवदूतम्' खण्डकाव्य एक बहुचर्चित कृति है। उनकी अनेक रचनाएँ प्रकाशनाधीन हैं।

पं0 अवस्थी की विशिष्ट साहित्य सेवाएँ व्युत्पत्तिकोश तथा भारतीय दर्शन बृहत् कोश के रूप में उनके प्रकृष्ट पाण्डित्य का निदर्शन कराती हैं।

## (८) डॉ0 भागीरथ प्रसाद त्रिपाठी 'वागीश'

ये मूलतः सागर जिले के बिलइया ग्राम के निवासी हैं और सम्प्रति काशी इनका कर्मक्षेत्र है। 'कृषकाणां नागपाशः' रेडियो रूपक में सागर जनपद की संस्कृति प्रतीक रूप में प्रस्तुत है।

## (९) डॉ0 राधावल्लभ त्रिपाठी :

डॉ0 त्रिपाठी संस्कृत रचनाधर्मिता और विद्या वृद्धि के लिए एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। सागर वि0 वि0 में उनकी नियुक्ति जनवरी १९७३ में हुई १९७७ में ये प्रवाचक पद पर चुने गये तथा जुलाई १९८० से विभाग के अध्यक्ष हैं। १९८३ में इन्हें आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया।

डॉ0 त्रिपाठी की क्रियाशीलता शौर उर्जस्विता का लाभ संस्कृत विभाग को अनवरत प्राप्त है। १९८२ में उन्हें डी0 लिट्0 की उपाधि से अलंकृत किया गया। १९८७ में वे बर्लिन वि0 वि0 में नाट्यशास्त्र पर व्याख्यान देने गये।

डॉ0 त्रिपाठी के कार्यकाल में संस्कृत नाट्यशास्त्र पर विशेषोल्लेखनीय कार्य हो रहे हैं और अखिल भारतीय स्तर की अनेक शोध संगोष्ठियाँ सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई हैं।

आपकी संस्कृत रचनाएँ १- प्रेमपीयूषम् (नाटक), २- महाकवि कण्टकः, ३- वाल्मीकिविमर्शः, ४- नाट्यमण्डपम्, ५- भारतीयरंगसमुन्मेषः ६- सन्धानम् प्रभृति प्रमुख हैं।

हिन्दी में शोध और समीक्षापरक लगभग ३५ ग्रन्थ प्रकाशित हैं। अनेक संस्कृत रचनाओं के सुललित अनुवाद भी इन्होंने किये हैं। डॉ0 त्रिपाठी के शोध-आलेख भारत की विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में निरन्तर प्रकाशित होते रहते हैं। वे हिन्दी के भी एक समर्थ और सशक्त रचनाकार हैं। वे संस्कृत भाषा में सर्जना की संभावना के नये वातायन खोल रहे हैं।

## (१०) पं0 बंशीधर व्याकरणाचार्य

भाद्रपद शुक्ल ७ वि0 सं0 १९६२ को सोरई (ललितपुर) में जन्में पं0 बंशीधर जी सम्प्रति बीना में निवास करते हैं। उन्होंने व्याकरणाचार्य, न्यायतीर्थ, साहित्यशास्त्री आदि उपाधियाँ वाराणसी के स्याद्वाद महावि0 में अध्ययन करते हुए प्राप्त कीं। वे स्वतन्त्र चिन्तक और गम्भीर विचारक हैं। भारत की परतंत्रता के दिनों में सन् १९३१ से ही वे राष्ट्रीय कार्यों में सक्रिय रहे। सन् १९४२ के आन्दोलन में सागर व नागपुर का कारावास ७ माह सहा। तत्पश्चात् अमरावती जेल में अनेक असहनीय दुःख सहे। संस्कृत के सम्वर्द्धन के लिए उन्होंने निरन्तर प्रयास किये। बीना का श्रीनाभिनंदन सं0 विद्या0 आपके प्रयत्नों से सञ्चालित हुआ, और चल रहा है। आपने ६ ग्रन्थों की रचना की है। आपका अखिल भारतीय अभिनन्दन हो रहा है।

## (११) डॉ0 दरबारीलाल जी कोठिया

वाराणसी हिन्दू विश्व विद्यालय के प्रवाचक पद से सेवानिवृत्त डॉ0 कोठिया अब बीना में निवास कर रहे हैं। वे भारतीय दर्शन और जैन न्याय के प्रथम पंक्ति के विद्वानों में हैं। उन्होंने ११ संस्कृत रचनाओं का सम्पादन और अनुवाद किया है। संस्कृत में आपके अनेक शोधपूर्ण आलेख भी हैं।

सन् १९८५ में डॉ0 कोठिया का अखिल भारतीय स्तर पर अभिनन्दन हुआ और उन्हें एक अभिनन्दन ग्रंन्थ समर्पित किया गया है।

## (१२) पं0 सुन्दरलाल शास्त्री

७ मार्च सन् १९०७ को जन्मे श्री शास्त्री जी ने न्याय वेदान्त शास्त्री तथा ज्योतिर्दिवाकर की उपाधियाँ प्राप्त की। उन्होंने सागर नगर के विभिन्न विद्यालयों में संस्कृत का अध्यापन किया।

इन्होंने **यत्किञ्चित्, कांग्रेसस्येतिवृत्तम्, संस्कृतसौरभम्** आदि रचनाओं का प्रणयन किया है।

## (१३) पं० प्रेमनारायण द्विवेदी :

पं० प्रेम नारायण द्विवेदी का जन्म ५ जून १९२२ को हुआ। वे प्राच्य परंपरा की शास्त्री, काव्यतीर्थ एवं आधुनिक शैली की एम० ए० आदि परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके अध्यापन के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए। पं० द्विवेदी ने १९६५ में संस्कृत में पी-एच० डी० उपाधि भी प्राप्त की। अन्य विद्यालयों-महाविद्यालयों के अतिरिक्त उन्होंने सागर वि० वि० में भी १९८०-८१ में संस्कृत का अध्यापन किया। वे 'भारतीय दर्शनशास्त्र बृहत्कोश' शोध योजना में १९८१-८५ तक सहयोगी रहे।

पं० द्विवेदी ने हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों की रचनाएँ सरस, ललित एवं सुबोध संस्कृत पद्यानुवाद के साथ प्रस्तुत की हैं।

'बिहारी सतसई' का संस्कृत रूपान्तर १९७८ में 'सौन्दर्यसप्तशती' के नाम से प्रकाशित हुआ एवं आपने 'रामचरितमानस' का संस्कृत रूपान्तर किया है।

इसके अतिरिक्त कबीर, रहीम आदि के हिन्दी पद्यों के संस्कृत रूपान्तर किये हैं।

पं० द्विवेदी ने संस्कृत में बहुत बड़ी संख्या में मौलिक पद्यों की रचना की है।

## (१४) डॉ० बाल शास्त्री

वाराणसी के संस्कृतनिष्ठ परिवार में जन्मे और सांस्कृतिक वैभव से अभिभूत डॉ० शास्त्री की सागर विश्वविद्यालय में प्रथम नियुक्ति व्याख्याता (संस्कृत) पद पर हुई और अब प्रवाचक के पद पर कार्यरत हैं। व्याकरण, दर्शन, संस्कृति प्रभृति विषयों पर आपके अनेक शोध-आलेख स्वरमंगला, श्रीपण्डितः, गाण्डीवम्, सागरिका आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। उनमें डॉ० शास्त्री का गम्भीर अध्येता, विश्लेषक और संस्कृत-सम्वर्द्धक रूप सहज निदर्शनीय है।

## (१५) डॉ० कुसुम भूरिया

डॉ० कुसुम भूरिया का अध्ययन सागर में हुआ। यहीं से एम० ए० करने के पश्चात् १९७८ में 'कालिदास का नाट्यशास्त्रीय अनुशीलन' विषय पर इन्होंने पी-एच० डी० उपाधि प्राप्त की।

सागरिका, दिव्यज्योतिः, परमार्थसुधा, नाट्यम्, मध्यभारती आदि पत्रिकाओं में डॉ० भूरिया के अनेक शोध आलेख प्रकाशित हुए हैं। इनके सहसम्पादकत्व में नाट्यशास्त्र पर अनेक कृतियाँ भी प्रकाशित हैं।

## अन्य साहित्यकार

हमारे द्वारा पूर्व प्रस्तुत सूची के अनेक ऐसे मनीषी हैं जिनके कृतित्व की यहाँ

विवेचना होनी चाहिए। किन्तु स्थान और समय विस्तार की भयदृष्टि से अभी केवल उनके नामोल्लेख किये जा रहे हैं :

पं0 नाथूराम प्रेमी, डॉ0 हरीन्द्रभूषण जैन, प्रो0 श्रीनिवास रथ, डॉ0 गोकुल जैन, डॉ0 नरेन्द्र विद्यार्थी, डॉ0 वीरेन्द्र कुमार जैन, डॉ0 'भास्कर', डॉ0 रतनचन्द्र जैन, (भोपाल), डॉ0 कन्छेदीलाल (शहडोल), डॉ0 फूलचन्द्र 'प्रेमी' (वाराणसी), डॉ0 'भागेन्दु' (दमोह), डॉ0 सुदर्शनलाल (वाराणसी), डॉ0 कस्तूरचन्द्र 'सुमन' (महावीर जी), प्रो0 श्रेयांसकुमार सिंघई (जयपुर) प्रभृति अनेक मनीषियों के वैदुष्य और संस्कृत-रचनाधर्मिता का आरम्भ सागर के तट पर ही हुआ। इनकी रचनाओं पर पृथक् से विचार लेखबद्ध किया जा सकेगा।

इस सूची में समाविष्ट सागर जिले के संस्कृत के निम्नाङ्कित मौलिक रचनाकारों का भी केवल नामोल्लेख कर विराम लेना पड़ रहा है :-

पं0 भुवनेन्द्रकुमार शास्त्री, खुरई,

पं0 नेमिचन्द्र प्राचार्य, खुरई,

पं0 कमल कुमार शास्त्री, खुरई,

पं0 दयाचन्द्र साहित्याचार्य, सागर,

पं0 लक्ष्मीनारायण जी न्यायाचार्य, सागर

पं0 जीवनलाल अग्निहोत्री, सागर

डॉ0 श्रीमती आशा मलैया, सागर।

ये सभी संस्कृत के समर्थ रचनाकार हैं। इनके विषय में आगे विचार प्रस्तुत किये जा सकेंगे।

इस प्रकार उक्त अनुच्छेदों में- 'आधुनिक संस्कृत साहित्य सम्वर्द्धन में सागर जिले का अवदान'-रूपायित करने का विनम्र प्रयत्न किया है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सागर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के तत्त्वावधान में समायोजित इस संगोष्ठी[१] में समागत विद्वानों के समक्ष यह भी निवेदन है कि-मेरे निर्देशन में पी-एच0 डी0 हेतु 'संस्कृत के उन्नयन, सम्वर्द्धन एवं विकास में सागर सम्भाग का योगदान, १९४७ से अद्यतन'' विषय पर शोधकार्य हो रहा है।

## अध्ययन की निष्पत्तियाँ

'आधुनिक संस्कृत साहित्य सम्वर्द्धन में सागर जिले का अवदान'-विषय के रेखाङ्कन से समीक्ष्य अवधि के साहित्य के प्रायः सभी रूप- महाकाव्य, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, यात्रा वर्णन, संस्मरण, साहित्य-समीक्षाएँ, लघु कथा, गीति-नाट्य, अन्य भाषाओं से रूपान्तरित तथा अनूदित साहित्य- सागर मण्डल में उपलब्ध हैं

किन्तु प्राचीन संस्कृत साहित्य और आधुनिक संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियों में कुछ अन्तर अवश्य दृष्टिगोचर होता है; जैसे-

(१) शृंगारिक-भावना की उपेक्षा,

(२) राष्ट्रीयता की भावना का प्रामुख्य,

(३) देश की एकता और अखण्डता की अभिव्यञ्जना।

(४) समकालीन घटनाक्रम के प्रति जागृति,

(५) लेखन के लिए विराट् भावभूमि।

## अन्त में :

संस्कृत-भारती के राष्ट्रीय अवदान की मणिमाला में सागर मण्डल का अवदान अपने मूल्यों, यथार्थो, निष्पत्तियों और मौलिकताओं के आधार पर एक देदीप्यमान मणि की भाँति यहाँ के आभा-मण्डल तथा रचनाधर्मिता के अर्घ्य को सभक्ति समर्पित करने में समर्थ हो सके, क्योंकि वही इस मण्डल की गत्यात्मकता तथा इति-कर्त्तव्यता होगी; इस भावना के साथ इस लेख को समाप्त किया जा रहा है।

---

१. यह गोष्ठी १९८९ में आयोजित हुई थी।

# हरियाणाविद्वद्गौरवम्

डॉ0 रामेश्वरदत्त शर्मा

यौधेयानां वसतिरभवत् तद्भवानां विचारो,

धर्मक्षेत्रं कुरुनृपसुताधिष्ठितं प्राहुरेके ।

यानं दिव्यं सततमचलद् यत्र कृष्णस्य पूर्वं

तस्मादेनं विलसितधियः श्रीहरेर्यानमाहुः ।।१।।

शम्भुः साम्बो निजगणयुतो याति नित्यं यतोऽत्र

स्थाण्वीशोऽपि प्रकटयति यद् वृत्तमेतद् यथार्थम् ।

पुण्याः भूमिः समरधरणी स्वर्गलोकेन तुल्या

तस्माल्लोकः प्रवदति मुदा तां हरस्यापि यानम् ।।२।।

वेदव्यासो जनहितधिया वेदभागांश्चकार

विश्वैतिह्यं स्वकृतिषु महाभारतं यो प्रणिन्ये ।

लेभे कीर्तिं सपदिं महती यस्य गीता प्रणीता

धन्यः प्रान्तो मुनिकविबुधो यत्र जातो महर्षिः ।।३।।

## स्वामी हीरादासः

लघ्वी काशी बुधजनपुरी नाम यस्या 'भिवानी'

दाने पुण्ये विपुलविभवा दीनलोकोपकर्त्री ।

शिक्षादीक्षाभरितभवना पाठशाला विशालाः

तासु च्छात्रा प्रतिदिनमथो संस्कृताः सम्भवन्ति ।।४।।

तस्यामासीद् रतिविरहितः काव्यशास्त्रानुरागी

'हीरादासः' प्रकृतिरुचिरो 'दादु' पन्थावलम्बी ।

'दादूरामोदयसुचरिते' स्वात्मकाव्ये स आह

'भीहान्यां' यत् प्रमुखनगरे देवभाषां चकार ।।५।।

## विद्यामार्तण्डः पं0 सीताराम शास्त्री

वाराणस्यां प्रथमवयसि प्रौढशास्त्राण्यधीत्य
सीतारामो मतिधननिधिर्ज्ञानविज्ञानविज्ञः ।
'भीवान्यां' यो रहसि विजनेऽस्थापयत्त्वेकसंस्थाम्
यत्रानेके विमलमतयः शिक्षिताः सम्बभूवुः ।।६।।
हिन्दी-टीका सरलगहना यस्य याद्या निरुक्ते
काव्यक्षेत्रे परमललितं लक्षणग्रन्थयुग्मम् ।
चित्रे शिल्पे जटिलविषया चित्रिता ब्रह्मविद्या
विश्वेऽस्मिन् तत्सदृशपुरुषो जायते कश्चिदेव ।।७।।

## म0 म0 पं0 विधाधर गौड़ः

जीन्दोपान्ते परिमितजनो ग्रामशैरीषखेड़ी
गौडानां तु द्विजकुलगृहं यत्र विधाधरोऽभूत् ।
वाराणस्यां निगममिहिरः सूत्रवृत्तीर्व्यधत्त
याभिर्जातः सरलसुगमो वैदिकः कर्मकाण्डः ।।८।।

## पं0 शिवनारायण शास्त्री

शिक्षासूर्यो द्विजकुलशशी शैवनारायणोऽथ
वाराणस्यां पठितनिगमः स्थायिवासी 'गतोल्याः' ।
आयुर्यातं तपसि पठने पाठने लेखने च
सांख्ये टीकामकृत विततां यो यथार्था श्रमेण ।।९।।

## म0 म0 पं0 छज्जूराम विद्यासागरः

'छज्जूरामः' सहृदयसखासीद् 'रिटोली' निवासी
सत् साहित्यं प्रचुरमलिखत् काव्यनाट्येऽद्वितीयम् ।
प्राचार्यत्वात् सततमभजद् गौरवं शिक्षकेषु
पाण्डित्यस्य प्रवरविदुषोऽलौकिकोऽयं सुयोगः ।।१०।।

काव्ये न्यायेऽप्रतिहतगतिस्तादृशश्चैव सांख्ये
विद्योतन्तेऽनुपमकृतयः सप्त यासान्तु संख्यां ।
व्याख्यातासौ विविधसरणिः सर्वशास्त्रार्थविज्ञः
नैकाष्टीकाः सरलपदगा योऽलिखत् स्पष्टतायै ॥११॥

## श्री मुरारिलाल मिश्रः

बाल्ये काले लघुलघुतमोऽभ्यस्तविद्यो हि काश्यां
सिद्धान्तस्योपरि सुविदिता यस्य टीका चकास्ति ।
वर्षैरध्याप्य बगड़पुरेऽन्तेऽश्मरीव्याधिपीडः
मुक्तिं लेभे कतिपयसमाः पण्डितोऽयं मुरारिः ॥१२॥

## श्री शिवराम शास्त्री

ख्यातिं यातः कविषु महसा 'बेरला' ग्रामवासी
'राजस्थाने' विहितवसतिर्ज्योतिषाधारवृत्तिः ।
काव्यप्रेमी रसिकहृदयः काव्यमेकं प्रणिन्ये
'हर्याणीयं' जनपरिचयं पद्यमालानिबद्धम् ॥१३॥

## महाकविः वनमालिदासः

दिव्यं रत्नं कविकुलशिरोभूषणं 'बास' वासी
यावज्जीवं वसतिमकरोत् तीर्थवृन्दावने सः ।
तस्यानेका ललितरचना भक्तिभावप्रपूर्णा
नाम्ना ख्यातः कविषु वनमाली ततो भाति दासः ॥१४

## पं0 युधिष्ठिर मीमांसकः

पाण्डित्यं हाऽगणितविदुषां पल्लवग्राहि दृष्टं
पूर्णज्ञत्वं विरलविरलं लभ्यते स्वल्पलोकैः ।
शंका काचित् यदि तव भवेद् वेदवेदांगगूढा
तत्स्पष्टार्थं सपदि सुतरां याहि मीमांसकं त्वम् ॥१५॥

## पं0 सत्यदेव वासिष्ठः

सच्चित्तोऽसौ बहुलवसतिः सत्यदेवो 'भिवान्यां'
वासिष्ठो यो मुनिकुलमणिर्नैष्ठिको ब्रह्मचारी ।
दैवज्ञोऽयं ग्रहविगणने ज्ञानविज्ञानसेवी
वैद्यत्वाद्वा व्यपहतरुजो यत्र लोका भवन्ति ॥१६॥

नाडीतत्त्वं गहनरचनं वैद्यके सप्रमाणम्
आश्चर्यन्तु प्रकटयति तद्दूतनाडीपरीक्षा ।
रम्यं काव्यं विपुलललितं 'सत्यनीतौ' विभाति
व्याख्यातञ्च प्रमुदितधिया नाम विष्णोः सहस्रम् ॥१७॥

रुद्धः पूर्वं यवनपतिना 'हैदराबाद' राज्ये
हिन्दूनां हा ! विधिहरिहरप्राङ्गणेषु प्रवेशः ।
तद्विद्वेषाज्जनदलबलैः सार्धमेषोऽपि यातः
कारागारे प्रमुदितमना यापयामास मासान् ॥१८॥

## श्री हजारीलाल विद्यालंकारः

मुक्तं काव्यं व्यरचयदसौ श्रीहजारिश्च लालो
भाषाभावैर्मृदुलपदकैर्हृद्यपद्यैर्निबद्धम् ।
सौम्यः साधुः प्रकृतिसरलो विज्ञमान्यो वदान्यो
जातस्त्वेष प्रथितमहिमा 'छोटि घीलौड़' वासे ॥१९॥

## डा0 सत्यदेव वर्मा

प्रह्वीभूतः सदयहृदयः सत्यदेवोऽथ वर्मा
ह्यन्वादीद् यो विरलपथिको देववाण्यां कुरानम् ।
नैकाः सन्ति प्रमुखरचना विंशतेरूर्ध्वसंख्याः
तेषां गेहे सततसुतरां संस्कृतं व्याहरन्ति ॥२०॥

## श्री चन्द्रभानुः शास्त्री

विद्वद्वर्यः परिणतवयाश्चन्द्रभानुः प्रणिन्ये
भीष्मस्येदं चरितमखिलं पूर्णगाङ्गेयकाव्ये ।
ओजःपूर्णैर्दृढपरिकरैः पद्यबन्धैर्बबन्ध
वृद्धो जीर्णः शिथिलंकरणः स्वात्मशक्त्या युवा सः।।२१।।

## डा0 विद्याधर धस्माना

विज्ञो विद्याधर इति सुधीर्धस्मना शासनीयो
नाट्यक्षेत्रेऽभिनयसुगमं 'पाञ्चजन्यं' लिलेख ।
अन्यत् काव्यं विदुरसुभगं मुक्तकं 'मञ्जरा'ख्यम्
भावव्यक्त्या रसगुणपदैर्यस्य काव्यप्रशस्तिः ।।२२ ।।

## श्री रक्षपाल 'राकेशः' शास्त्री

नव्यं काव्यं विलसति सदा रक्षपालस्य भद्रं
हिन्द्यां ख्यातिर्यदपि बहुला संस्कृतेऽप्यस्ति नोना ।
हर्याणायामधिगतजनिः पाटलीपुत्रवासी
व्यापारी सन्नभिरुचिमहो ! यो हि काव्ये दधाति।।२३।।

## आचार्यराधाकृष्णः (स्वामी निगमबोधः)

राधाकृष्णः कविषु महितो 'जाट्रु लोहारि' जन्मा
संन्यासी सन् विदितनिगमः पाठयञ्छिष्यशिष्याः ।
'हर्याणावैभवम' लिखदद्यो मनोहारि काव्यम्
लेभे कीर्तिं जगति महतीं शंकराचार्यवृत्तम् ।।२४।।

## श्री लछमनसिंह अग्रवालः

प्रज्ञाचक्षुर्लछमनकविर्वैश्यवंशावतंसो
हर्याणाभूर्विदितजननी'झाड सैंतेलि'नाम्नी ।

दिल्लीपार्श्वे विहितवसति 'बॅल्लबाख्ये गढे' ऽसौ
नाना चक्रेऽधिकृतरचना विश्वसत्यानुगम्याः ॥२५॥

## पं0 स्थाणुदत्तः

स्थाण्वीशः स्याद् धृतनरतनुर्विप्रवंशे प्रसूतः
यावज्जीवं तपसि पठने पाठने चैव लीनः ।
वेदाचार्यो बहुलिपिपटुर्दक्ष उच्चारणेऽपि
ज्योतिःशास्त्रे ग्रहविगणने वैद्यके चापि सिद्धः ॥२६॥

संगृह्यासौ विविधविषयान् पाण्डुलेखान् पुराणान्
श्लाघ्यं कार्यं निचयमकरोत् पुस्तकानाममूल्यम् ।
शोधार्थं तन्महदुपकरं वस्तुजातं बुधेभ्यः
श्रेयो वित्तं भवति विदुषां ग्रन्थकोशोऽन्यवित्तात् ॥२७॥

## पं0 माधवाचार्यः

तर्काचार्योऽनुपमवचनो 'माधवाचार्य' नामा
तच्छास्त्रार्थी सदसि विजयी 'कौल' जन्माऽद्वितीयः ।
स्थाने स्थाने क्षपितरजनिः स्थापयामास धर्मं
व्युत्पन्नोऽयं सकलविदुषां शेखरोऽगण्यताग्रे ॥२८॥

धर्मो योऽद्य श्वसिति सबलः शाश्वतो भूतलेऽस्मिन्
गाढास्थाया धृतदृढतला देवदेवीस्वरूपा ।
श्रद्धा निष्ठा निखिलसलिले तीर्थरूपे जनानां
श्रेयो याति श्रमबलकृतान् 'माधवाचार्य' यत्नान् ॥२९॥

## पं0 मुरारिलाल खरकिया

निःशुल्कं यः प्रतिदिनमहो ! पाठयत्यत्र शिष्यान्
वाग्वैदुष्यं विपुलगहनं वेदवेदाङ्गजातम् ।

ज्योतिर्विद्याप्रवचनपटुः कर्मकाण्डे सुदक्षः

प्रष्टुं किञ्चिद्यदि तव मतिर्याहि गेहं मुरारेः ॥३०॥

## डा0 सुधीकान्त भारद्वाजः

भारद्वाजः सुमतिसुभगो धर्मशास्त्रानुयायी

काव्ये नाट्येऽपरिमितरुचिः पुस्तपुञ्जं ससर्ज ।

प्रान्तस्यैकं प्रमुखनगरं रोहितारण्यनाम

व्याख्याताऽयं कतिपयसमा विश्वविद्यालयेऽत्र ॥३१॥

## श्रीरामनाथशास्त्री

गोविन्दाख्यं शतकमथवा भाववैशिष्ट्यमन्यत्

देवस्तोत्रं विकटकविकौ भावगाम्भीर्यपूर्णौ ।

एवं प्रायः षडिति रचना योऽकरोत् कौशलेन

'मुंशीरामा'त्मजकविरयं 'रामनाथा' भिधानः ॥३२॥

## डॉ0 रामेश्वरदत्त शर्मा

गीर्वाक्सेवी 'लछमन'सुतः शर्मरामेश्वरोऽथ

हर्याणीयं विदुरचरितं ग्रन्थमेकं लिलेख ।

दिव्यां दृष्टिं विविधविषयां चापरां निश्चितार्थाम्

इच्छेयं मे प्रचरतु भृशं प्रान्तपाण्डित्यमुक्तम् ॥३३॥

(१०-११-१९९० ई0)

# हरियाणा के बीसवीं शताब्दी के संस्कृत महाकाव्य

## एक समीक्षात्मक विवेचन

प्रोफेसर डॉ० रामदत्त शर्मा, डी० लिट्०

भारतीय वाङ्मय में हरियाणा का अपना विशिष्ट एवं गौरवशाली महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। विश्रुत ब्रह्मावर्त प्रदेश में सरस्वती एवं दृषद्वती नदियों के तटों पर विश्व साहित्य की प्रथम कृति ऋग्वेद के साथ-साथ तीनों वेदों के विविध मन्त्रों का उच्चारण संस्कृत साहित्य की माँ सरस्वती के चरणों में प्रथम स्तुति रही है।

हरियाणा के साहित्यकारों ने संस्कृत की सभी प्रकार की विधाओं में सर्जना की है। हरियाणा में बीसवीं शताब्दी में रचित महाकाव्यों का विवरण यहाँ प्रस्तुत है।

(१) परशुरामदिग्विजयमहाकाव्यम्- म० म० छज्जूराम शास्त्री विद्यासागर।

(२) शिवकथामृतम् महाकाव्यम् ,, ,, ,, ,,

(३) श्रीमस्तनाथचरितम्- पं० हरदत्त शास्त्री।

(४) श्रीकृष्णानंदमहाकाव्यम् - श्री वनमालिदास शास्त्री।

(५) श्रीहरिप्रेष्ठमहाकाव्यम् ,, ,, ,,

(६) गाङ्गेयमहाकाव्यम् - श्री चन्द्रभानु शास्त्री।

(८) अमरचरितम् काव्यम् - श्री रामेश्वर दयाल शास्त्री।

(८) श्रीशंकराचार्यचरितम् - डा० निगमबोध तीर्थ।

(९) हरिश्चन्द्रमहाकाव्यम् - डा० बलवीरदत्त शास्त्री।

## (१) श्रीपरशुरामदिग्विजयमहाकाव्यम्

परशुरामदिग्विजय के रचयिता महाकवि छज्जूराम शास्त्री 'विद्यासागर' का जन्म वि० सं० १८५२ में शेखुपुरा (कुरुक्षेत्र) में हुआ था। इनका परिवार वि० सं० १९८२ में रिटोली (जिला जीदं) में आ बसा था। उनके शिक्षालयों में सुशिक्षित

होने के बाद शास्त्री जी अनेक वर्ष तक माधोदास की बगीची, लाल किले के पास दिल्ली में रहते थे। जगद्गुरु शङ्कराचार्य ने इन्हें 'विद्यासागर' की उपाधि दी थी। भारत के राष्ट्रपति ने इन्हें 'राष्ट्रपति सम्मान' दिया था। शास्त्री जी १ अगस्त १९८४ को गोलोकवासी हो गये।

'परशुरामदिग्विजय' पौराणिक कथा पर आधारित द्वादश सर्गात्मक एक महाकाव्य है। इसमें भगवान् परशुराम को दशावतारों में षष्ठावतार के रूप में वर्णित किया गया है। मंगलश्लोकों में भगवान् व्यास देव की वन्दना की गयी है-

स जयति पाराशर्यः सत्यवतीनन्दनो व्यासः ।

यन्मुखनिःसृतवाणीमाश्रयते सर्वविल्लोकः ।।

माहिष्मती नगरी का वर्णन कवि ने इन शब्दों में किया है -

'पुरन्दरपुरस्पर्धिन्यभवद् भूमिभूषणम् ।

माहिष्मतीति नगरी शर्मदा नर्मदान्तिके ।।

इस काव्य में कार्तवीर्य की राजनैतिक गतिविधि, परशुराम जन्म, कार्तवीर्य व परशुराम युद्ध, शिवलोक गमन, दिव्यास्त्र ग्रहण, पुष्करगमन, कार्तवीर्य वध, परशुराम कृत साठ हजार क्षत्रियों का वध करके रक्त के पाँच सरोवर भरण, भीष्म परशुराम युद्ध आदि का वर्णन है। भगवान् शिव के पास पाशुपत अस्त्र लेने भेजने का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है -

दिव्यं पाशुपतं चैव तुष्टो दास्यति शंकरः ।

त्रिः सप्तकृत्वो निःक्षत्रां तदा भूमिं करिष्यति ।।

श्री विद्यासागर ने काव्य के अन्त से लिखा है-

विजयं पर्शुरामस्य श्रद्धया पठति तु यः ।

सर्वान् कामानवाप्येह दीर्घमायुः स विन्दति ।।

शास्त्री जी की यह कृति सर्गबद्ध है तथापि प्रत्येक सर्ग में छन्द परिवर्तन की परम्परा का पालन नहीं किया गया है। इस कृति में नायिका का अभाव है तथा महाकाव्यों के तत्त्वों यथा-प्रभात, सूर्योदय, चद्रोदय आदि का भी अभाव सा है। कवि वर्णव्यवस्था का पक्षपाती है। कवि ने अनेक सूक्तियों का प्रयोग किया है। यथा- जानताऽजानता वापि भवितव्यं न वार्यतो क्षमाशीला हि भूसुराः। शोकतानां न प्रशंसन्ति साधवः। सर्वं भवति कालेन कालो हि दुरतिक्रमः। कवि की भाषा सरल और सामान्यजनोपयोगी है। शैली वर्णनपरक तथा अलंकार प्रयोग सामान्य है। उपमा का यह उदाहरण अवलोकनीय है-

भर्त्तारं निहतं भूमौ पतितं वीक्ष्य रेणुका ।
पपांत मूर्च्छनां प्राप्य लता वज्रहता यथा ।।

इस काव्य में कपट वेष में जाकर परशुराम द्वारा कवच आदि प्राप्त कर राजा का वध करना नायक की चरित्र हीनता को प्रकट करता है । कवि द्वारा स्वयं ही गर्वोक्ति करना उचित नहीं । सम्पूर्ण रूप में यह महाकाव्य 'युद्धवर्णन' का एक नमूना मात्र है । इसे गम्भीर प्रौढ तथा साहित्यिक कृति नहीं कहा जा सकता है ।

## (२) शिवकथामृतं महाकाव्यम्

पं0 छज्जूराम शास्त्री जी का यह महाकाव्य भी पौराणिक है । इसमें अठारह सर्ग हैं । ९८१ पद्यों वाला यह काव्य तत्कालीन राष्ट्रपति महामहिम गोपाल स्वरूप पाठक को समर्पित किया गया है ।

काव्यारम्भ में व्यास स्तुति के बाद शिव-पार्वती तथा गजानन की वन्दना की गयी है-

शिवयोर्मातापित्रोरङ्के पङ्केन खेलन्तम् ।
अगजाजातं वन्दे तं देवं श्रीगजाननम् ।।

प्रथम सर्ग शिवपुरीकाशीवर्णनम् नामक है । काशी में गंगा स्नान के महत्त्व को शिव मुख से कवि ने कहलवाया है -

असारे संसारे निखिलनिगमानां च कृतिनाम्,
मतान्येतानीह त्रिविधपरितापस्य शमने ।
सदा काश्यां वासः सततसहवासश्च विदुषां
सदा गङ्गास्नानं सुतनु तव पूजा च मम च ।।

दूसरे सर्ग में बारह शिवलिङ्गों का वर्णन किया गया है । यथा -

सौराष्ट्रदेशे मम सोमनाथलिङ्गं, समभ्यर्चितमिन्दुना यत् ।
रोगस्य शोकस्य विनाशकारकं भोगस्य भोक्षस्य च दायकं वै ।।

तृतीय सर्ग में शिवपत्नी सती वर्णन, चतुर्थ सर्ग में शिवपत्नी पार्वती वर्णन तथा शिवपुत्र स्कन्द का वर्णन किया गया है । पार्वती का विदाई का यह वर्णन देखिये-

प्रस्थानकाले स्वगृहादुमायाः,
सालीजनो बन्धुजनश्च सर्वः ।

पिता च माता स्म रुदन्ति दाराः

जरापरीता अपि किं युवत्यः ।।

छठे सर्ग में शिव-पुत्र गणेश तथा सप्तम में त्रिपुरदाह का वर्णन है । अष्टम सर्ग में शिव द्वारा अन्धकासुर वध तथा नवम और दशम में शिवभक्त बाण का वर्णन किया गया है । कवि ने सत्संगति की महिमा को यों बताया है -

सतामसंगादसतां च संगात्

भवन्ति सन्तोऽपि असन्त एव ।

पिकोऽपि काकस्य कुलेन संगात्

काको भवत्येव प्रसिद्धमेतत् ।।

एकादश से चतुर्दश सर्गों में कवि ने शिव द्वारा मारे गये विभिन्न राक्षसों का वर्णन किया है । पञ्चदश व षोडश सर्गों में शिव के विभिन्न अवतारों का विशद वर्णन है । सत्रहवें सर्ग में शिव व सूर्य के शतनामों का उल्लेख किया गया है । अठारहवें सर्ग में 'शिवसाहित्य' का वर्णन किया गया है । शिवसाहित्य के वर्णन के अंत में कवि ने लिखा है -

काव्यं शिवकथामृतं परशुरामजयं मया ।

दुर्गाभ्युदयनाट्यं च एकविंशशते कृतम् ।।

शास्त्रीजी ने इस पौराणिक कृति में अनेक शाश्वत तथ्यों को सत्य बताने का प्रयास करते हुए अनेक सुन्दर पंक्तियाँ लिखी हैं । यथा - अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् । पितुदर्शगुणं माता गौरवेणातिरिच्यते । अनुकूले जगन्नाथे हन्तुमीष्टे कथं पुमान् । दीनत्वं च छलत्वं च वीरस्य मरणाधिकम् आदि ।

इस काव्य की भाषा अत्यन्त सरल है । कवि ने अनुष्टुप्, शिखरिणी, वसन्ततिलका, वियोगिनी, मालिनी उपजाति, द्रुतविलम्बित, उपेन्द्रवज्रा तथा मन्दाक्रान्तादि छन्दों में रचना की है । उपमा, मालोपमा, अनुप्रास व यमक के प्रयोग इस काव्य में हैं । मालोपमा का यह पद्य कितना सुन्दर बन पड़ा है -

स्वल्पदीपमिव तिग्मपावनः

शुष्कवृक्षमिव वन्यवह्निकः ।

अन्धकारमिव भास्करोदयः

तद्बलं च निखिलं शिवोऽहनत् ।।

यद्यपि प्रस्तुत महाकाव्य में सभी महाकाव्यीय गुणों का समावेश तो हो नहीं पाया है तथापि पौराणिक कथाओं और जीवन्त वर्णनों की उपस्थिति में यह कृति

नव काव्यकारों के लिए प्रेरणास्पद अवश्य है ।

## (३) श्रीमस्तनाथचरितम्

यह महाकाव्य श्री हरदत्त शास्त्री की रचना है । शास्त्री जी एक तांत्रिक विद्वान् थे । इनके विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती । इस ग्रन्थ में अस्थल बोहर (रोहतक) के नाथ सम्प्रदाय के आदिनाथ श्री मस्तनाथ जी का जीवन चरित्र वर्णित है । इस ग्रन्थ की सम्पूर्णता में तीन विद्वानों का योगदान रहा है । इसकी आद्य रचना महाराज चेतनाथ के शिष्य श्री शंकरनाथ योगीश्वर ने दोहे तथा चौपाइयों में २४ सर्गों में की । श्री हरदत्त जी ने सन् १९२७ में इसे संस्कृत में लिखा । तदुपरान्त सन् १९३८ ई0 में महन्त श्रेयोनाथ ने योगेश्वर शंकरनाथ फलेग्रहि से दो सर्ग और लिखवाकर इसे २६ सर्गीय बनवाया ।

काव्य का मङ्गलाचरण श्लोक इस प्रकार है -

पत्तनं स्यालकोटाख्यं, तद्भूपः शालिवाहनः ।

तस्य प्रधानाया राज्ञास्तनूजत्वेन पप्रथे ।।

प्रथम सर्ग में गोरखनाथ व चौरंगीनाथ की कथा है । द्वितीय सर्ग में केसरी हट्ट गाँव के सबला नामक ग्रामीण के घर मस्तनाथ के अवतार लेने का वर्णन है -

वैक्रमे वेदषट्सप्तभूमिते वत्सरेऽभवत् ।

मस्तनाथावतारोऽस्य योगाचार्यस्य भूतले ।।

तृतीय सर्ग में मस्तनाथ का बालचरित, चतुर्थ में वृष्टि करवाकर चमत्कार करने, पञ्चम में सिद्ध गोष्ठी और षष्ठ में गुरुसेवा वर्णित है ।

सप्तम में आईपथ के गुरु बनने, अष्टम में वृष्टि सिद्धि, नवम में विभूति प्रदर्शन तथा दशम में संग, असंग और कुसंग की व्याख्या वर्णित है -

असतां सङ्गदोषेण साधको याति विक्रियाम् ।

दुर्योधनप्रसङ्गेण भीष्मो गोहरणे गतः ।।

बिन्दुराम्लः पयःपूरं विकारयति सर्वशः ।

मलिनं कुरुते मत्सी, विकृतैका सरोवरम् ।।

एकादश सर्ग में शील नामक शिष्य के उद्गार, द्वादश में गोपीचन्द भर्तृहरि दर्शन, त्रयोदश में वेदविहित धर्मकर्मादि विवेचन तथा चतुर्दश में शुष्क तरु हरित करण का वर्णन किया गया है । पञ्चदश सर्ग में हरिसिंह अभिमान हरण, षोडश में देवादि संग्राम व गोरक्षण, सप्तदश में सरदार प्रबोधन व मृगया तथा अष्टा दश में यवन राज्य परिवर्तन वर्णित है । कवि मस्तनाथ की कीर्ति के विषय में लिखता है-

'यावच्चन्द्रदिवाकरौ हरिहरौ यावच्च वेदा नगा,
यावद् विंध्यहिमालयौ क्षितितले यावच्च गंगाऽनघा ।
तावत् स्थास्यति सज्जनेषु ललिता श्रीमस्तनाथस्य सा,
श्रेयोऽनाथमहत्सु धास्यतितरां कीर्तेर्विभूतिप्रभा ।।

एकोनविंशति सर्ग में कालानलानिल सम्पर्क तथा ग्रामदाह-गमन, बीसवें में बीकानेर राज्य में विभिन्न सिद्धि प्रदर्शन, इक्कीसवें में भीमसिंह अहंकार दलन और श्रीमानसिंह राज्यारोहण और द्वादश में धड़ीनाथ पेटू शिष्य का वर्णन किया गया है।

तेइसवें सर्ग में धाता और रणपति शिष्यों का वर्णन, चौबीसवें में श्री मस्तनाथ निर्वाण प्राप्ति, पच्चीसवें में सिद्ध श्री चेतनाथ व पूर्णनाथ का वर्णन तथा छब्बीसवें में श्री श्रेयोनाथ जी के उपाख्यान को प्रस्तुत किया गया है ।

यह एक चरित महाकाव्य है । इसके नायक श्री मस्तनाथ 'धीरोदात्त' नायक हैं । इस कृति में हरियाणा विषयक अनेक उल्लेख हैं । यथा -

साधुभक्ता हरेर्भक्ता दयावन्तो रसस्पृहाः।
सत्यसंगा दृढांगाश्च प्रेमासक्तरसप्रियाः ।।
दया न दानेन विनास्ति तत्र, दानं न धर्मेण विना च तत्र ।
दानं न भक्त्या रहितं हि तत्र, भक्त्या विहीनो न नरश्च तत्र।।

हरियाणा शब्द के सभी सम्भाव्य अर्थों को शास्त्री जी ने इस प्रकार प्रदर्शित किया है-

हरियानो हरियानो हरियानसमर्थकः ।
तत्समीपेऽप्यनुपेके सारिहट्टपुरी स्मृता ।।

नाथ सम्प्रदाय में गुरु को सर्वोपरि माना जाता है । गोरखनाथ की महिमा का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

गकारो गुणसंयुक्तो रकारो रूपलक्षण : ।
क्षकारेण क्षयं ब्रह्म श्रीगोरक्ष नमोऽस्तु ते ।।

श्रीमस्तनाथचरित में अनेक ऐतिहासिक स्थलों का उल्लेख है । अस्थलबोहर, रोहतक, केसरीहट्ट, पेहोवा, भालोट, खोखरागढ, जीन्द, नरवाना, महम, कलोई, झज्झर, दिल्ली, पचोपा, खड़वाली, खरक आदि के उल्लेख इस काव्य में विद्यमान हैं। इस महाकाव्य में अनेक सुभाषित संग्रहीत हैं । लेखक ने अनेक देशज व अप्रचलित वैदिक शब्दों का प्रयोग किया है । अनेक छन्दों में रचना की गयी है । अनुप्रास, यमक, काव्यलिङ्ग आदि के सुन्दर उदाहरण इस काव्य में विद्यमान हैं । यमक का

यह उदाहरण सुन्दर बन पड़ा है-

निराशी निराशी निराशो निराशो
कतान्तो कतान्तो चितावृत्तिहान : ।
नमानो न मानो चिता चित्तहान-
स्तदासीन दासीनतासिद्धसिद्धः ।।

हरियाणा के संस्कृत महाकाव्यों में यह काव्य कला एवं भाव दोनों पक्षों के आधार पर खरा उतरता है । रसयुक्त होने के साथ-साथ इसमे लौकिक व्यवहार तथा सामाजिक परिप्रेक्ष्य को सुतरां सँवारा गया है । सम्पूर्ण रूप में यह महाकाव्य एक श्रेष्ठ काव्य है जो संस्कृत के पूर्ववर्ती विविध उत्तम काव्यों के निकट बैठता है।

## (४) श्रीकृष्णानन्दमहाकाव्यम्

इस महाकाव्य की रचना महाकवि वनमालिदास शास्त्री ने की है । कवि ने अपना परिचय दिया है । तदनुसार उनका जन्म बास (जिला-हिसार) में सं० १९६५ में हुआ है । ये गौड़ ब्राह्मण हैं । इनकी माता का नाम जंजीरी तथा पिता का नाम तेलूराम था । इन्होंने वृन्दावन में स्वामी कृष्णानन्द से दीक्षा प्राप्त की ।

प्रस्तुत महाकाव्य में कवि ने अपने गुरुवर का जीवन चरित आकलित किया है । सोलह सर्गीय इस महाकाव्य की रचना कवि ने २० वर्ष की अवस्था में ही कर ली थी, ऐसा मत है । काव्य का मंगलाचरण गुरुवन्दनापरक है-

नत्वा श्रीगुरुपादपद्मयुगलं ध्यात्वा गणानां पतिं
चित्ते ब्रह्मसुतां निधाय विमलां श्रीरामकृष्णौ तथा ।
श्रीमन्मध्वमुनिं प्रणम्य च तथा श्रीकृष्णचैतन्यकं
नित्यानन्दमथापि प्रार्थ्य चरितं कुर्वे गुरूणामहम् ।।

कवि अपने गुरु के महनीय चरित को प्रारम्भ करते हुए कहते हैं कि पंजाब के जालन्धरजनपदान्तर्गत फिल्लौर तहसील के गाँव-बुडाना में पं0 नेतराम के कुल में देवीदत्त और देवीदत्त के भोलाराम उत्पन्न हुए । श्रीभोलाराम के घर वि0 सं0 १९४० माघमास, कृष्णपक्ष, चित्रानक्षत्रयुक्त अष्टमी तिथि के चतुर्थ चरण में, धृतियोग में, कुम्भलग्न में, सूर्योदय से ५ घटी बीत जाने पर गुरुदेव का जन्म हुआ

कुम्भे लग्ने च संलग्ने गौडपाधियुजस्तथा ।
भोलारामस्य गेहे वै पुत्ररत्नमजीजनत् ।।

द्वितीय सर्ग में पाठशालागमन, तृतीय में वृन्दावन गमन, चतुर्थ में श्रीमद्भागवत अवलोकन तथा पञ्चम में वृन्द्रावन के बाबा ग्वारिया जी महाराज मिलन वर्णित है। षष्ठ में श्रीहरिविरह वर्णन, सप्तम में श्यामसुन्दरदास दीक्षितीकरण, अष्टम में देवदत्त-भक्त वर्णन तथा नवम में श्री रामदास स्वामी वर्णन किया गया है।

दशमसर्ग में ब्रजभूमिभ्रमण वर्णन, एकादश में वेसवाँ ग्राम गमन, द्वादश में श्री श्यामसुन्दर की देह में किन्नर प्रवेश तथा त्रयोदश में श्रीमद्भागवत कथा पाठन का वर्णन किया गया है। चौदहवें सर्ग में कालिन्दी नामक मैया का दीक्षा ग्रहण तथा पन्द्रहवें में महाप्रयाण वर्णित है -

रविवासरयुक्तायां सप्तम्याञ्च तिथौ तथा।
श्रीरामकृष्णदेवाभ्यां युक्ते मणिमये तथा ।।
सम्यग्विमानमारुहय गुरवो मे हरेः पदम्।
यातास्तदा ह्यवस्थासीदेकोनषष्टिवार्षिकी ।।

सोलहवाँ सर्ग गुरु स्तुति परक है। इस महाकाव्य के नायक एक चरितनायक हैं। कथा ऐतिहासिक होने के साथ-साथ आध्यात्मिक तथा भक्ति प्रधान है। कवि की भाषा सरल एवं सरस है। कवि ने अनेक छन्दालङ्कारों का प्रयोग किया है। गंगा लहरी की पद्धति पर कवि की 'यमुनास्तुति' का यह पद्य अवलोकनीय है-

त्वयि स्नाता ध्याता तव सलिलपाता नमयिता
स्तुतेः कर्ता धर्ता तव रजसि भर्ता रविसुते।
न चैवाख्यां वक्ता शमनसदने याति यमुने!
नमामस्त्वां नित्यां सकलगुणयुक्तां रविसुताम् ।।

## (५) श्रीहरिप्रेष्ठमहाकाव्यम्

यह महाकाव्य भी पं0 वनमालिदासशास्त्री की ही १८ सर्गात्मक रचना है। इसमें कुल १०९२श्लोक हैं जिनमें ११० प्रकृति वर्णन परक श्लोक श्रीकृष्णानन्दचरित के ही हैं। इस महाकाव्य का प्रकाशन सन् १९७६ ई0 में भारत सरकार द्वारा प्राप्त सहायतानुदान के संबल पर हो सका है। यह भी एक चरितकाव्य है। कवि ने अपने गुरु भाई श्री हरिदास जी को नायक के रूप में प्रशंसात्मक शैली में वर्णित किया है। काव्य का मंगल-श्लोक निम्नांकित है-

श्रीरामकृष्णपदपङ्कजलीनचित्तान्
भक्तौ नियोज्य हरिभक्तिविहीनचित्तान्।

ये नास्तिकानपि च सास्तिकताकचित्तान्

कृत्वा हरेः पदमयुः प्रथमं क्वचित्तान् ॥

दीक्षागुरूनिह प्रणम्य ततो गणेशं

वाणीं निधाय हृदयेऽपि च रामकृष्णौ ।

आनन्दतीर्थमपि गौरहरिञ्च नित्या-

नन्दं च रामहरिदास - कृतं ब्रवीमि ॥

प्रथम सर्ग में नायक प्रादुर्भाव व लीला, द्वितीय में अध्ययन पद्धति, तृतीय में विवाह और चतुर्थ में वैराग्य उपक्रम वर्णित हैं । पञ्चम सर्ग में नायक का गंगातीर गमन, स्नानादि, षष्ठ में सद्गुरु प्राप्ति चिन्तन, सप्तम में अध्यापक पद से वैराग्य तथा अष्टम में वैराग्य और भगवद्भक्ति का वर्णन है । नवम सर्ग में गुरु मिलन, दशम में गुरु आज्ञा से पुनः पढ़ने का संकल्प करना, एकादश में भजन के लिए प्रयाण तथा द्वादश में वर्षाऋतु वर्णन को प्रस्तुत किया गया है । तेरहवें सर्ग में श्रीकृष्ण दर्शनार्थ तपस्या और श्रीकृष्ण बलदेव प्रार्थना, चौदहवें सर्ग में विविध अभिलाषाओं का प्रदर्शन, पन्द्रहवें सर्ग में मूर्छावस्था में श्रीकृष्ण बलराम दर्शन तथा षोडश में चरित नायक और ग्रंथकार का मिलन वर्णित है । सतरहवें सर्ग में गुरुदेव की अन्तर्धान लीला व शिष्यगण वियोग तथा अठारहवें सर्ग में भक्ति व हरिप्रेष्ठ का उपदेश वर्णित है । यथा-

बाल्ये बालविलासहासमतिना मातुः पयः पीयते,

तारुण्ये तरुणीविलासमतिना कान्ताऽधरः पीयते ।

वार्द्धक्ये बहुचिन्तयाऽल्पमतिना चिन्तारसः पीयते,

नो केनापि मुकुन्द-लीन-मतिना नामामृतं पीयते ॥

श्री वनमालिदास की भाषा प्रौढ, प्रवाहमयी और कोमल कान्त पदावली युक्त है । इनके व्याकरणिक प्रयोग उत्तम हैं । विभिन्न छन्दालंकारों से युक्त यह काव्य वैदर्भी, पाञ्चाली तथा यदा कदा गौड़ी शैली को अपनाता है ।

महाकवि का अध्ययन गहन है, फलतः उनकी कृति में अनेक उद्धरण दिये गये हैं । महाकाव्य को मनोरम व्यावहारिक सूक्तियों से सजाया गया है । यथा - द्रुतं विधेयं विदधीत नो यमः, प्रतीक्षतेऽनेन कृतं न ना कृतम् । न नियतिं क्रमितुं क्षमते जनः । करगते विषयेऽपि विरागिता, भवति यस्य स एव जनो महान् ।

यह काव्य महाकाव्यीय गुणों से युक्त है । कवि ने सूर्यचन्द्रोदयादि प्राकृतिक वर्णनों को अपनाया है । सत्य तथ्यों को प्रस्तुत किया गया है । हरियाणा की संस्कृत महाकाव्य सरणि में इस काव्य का विशिष्ट स्थान रहा है ।

## (६) गाङ्गेयमहाकाव्यम्

इस महाकाव्य के प्रणेता पं0 चन्द्रभानु शास्त्री हरियाणा के प्रौढ संस्कृत साहित्यकार हैं । पण्डित जी का जन्म सन् १९१८ ई0 में गाँव - छिछड़ाना (जिला-सोनीपत) में हुआ । आपकी माता का नाम श्रीदेवी तथा पिता का नाम श्री तुलसी राम है ।

गाङ्गेय महाकाव्य १० सर्गों का एक महाकाव्य है । हरियाणा अकादमी द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहयोग से इसके प्रथम भाग का प्रकाशन १९८० ई0 में तथा द्वितीय का १९८८ में हुआ । कवि ने तीन मंगलाचरण के श्लोक लिखे हैं । बाँके बिहारी की वन्दना में कवि लिखते हैं -

रासाङ्गरागपरिधूसरितानना‌ब्जम्
विद्युच्छटाच्छुरितकाव्यकलानिधानम् ।
बाँकेविहारिणमहं हृदये विचिन्त्य
गाङ्गेयकाव्यमतिसौरभमातनोमि ॥

इस महाकाव्य का भाषानुवाद शास्त्री जी के सुपुत्रों श्री सोमदत्त व विष्णुदत्त ने किया है । प्रस्तावना पं0 शिवदत्त जी ने लिखी है ।

प्रथम सर्ग में कवि ने परशुराम जी से मिलने आये ऋषियों की बातचीत से काव्यारम्भ किया है । द्वितीय सर्ग में सूर्योदय, शाल्वराज की सभा, अम्बा का प्रवेश, तथ्य कथन, शाल्वराज द्वारा उसे भीष्म की पत्नी प्रमाणित कर भीष्म के पास भेजना, तृतीय सर्ग में अम्बा का भीष्म की सभा में आगमन, वार्तालाप, पुनः शाल्वराज के पास प्रेषण, चतुर्थ सर्ग में अम्बा के परशुराम के पास जाकर भीष्म की शिकायत करने, भीष्म को बुलाये जाने तथा पञ्चम में भीष्म व परशुराम के विचार विमर्श करने व युद्धार्थ तत्पर होने का वर्णन किया गया है ।

छठे सर्ग में युद्ध विराम पर अम्बा के खिन्न होने, सातवें में अम्बा द्वारा यमुनाश्रम जाने, आठवें में वत्साश्रम जाने, नवें में दिलीपाश्रम जाने तथा दशम में गर्गाश्रम जाने का वर्णन है । काव्य के अन्त में अम्बा द्वारा आत्मदाह करने का वर्णन तथा कवि की पत्नी का वियोग वर्णित है ।

इस काव्य का कथानक महाभारत पर आधारित है । महाकाव्य की भाषा भावानुकूल प्रवाहित होती है । कवि शृंगार रस के सर्जक हैं । उदाहरण देखिये -

राकेशमञ्जुलमुखीन्नयनाभिरामाम्

प्रोन्नत्पयोधररसाभिंनिवेशजुष्टाम् ।

गण्डस्थलापतितवेणियुगावृताङ्गीम्

आलोक्य कः परिजहातु मदोत्तमाङ्गीम् ।।

अम्बाकृत विलाप कितना मार्मिक बन पड़ा है-

ममाद्य लुण्ठितं सर्वमापणे विततेत्विह ।

सर्वं सोढुं समर्थास्मि वज्रसारायते तनुः ।।

इति विक्रोशमायान्ती कुररीव रुरोद सा ।

अस्तव्यस्तशरीरा हा ! केशोल्लुञ्चनविह्वला ।।

कवि की उपमा भी उत्तम है -

वीक्ष्यालकावृतामिदन्नयनाभिराम -

मानन्दमाननमहो ! स्मरणीयशोभाम् ।

शैवालकावृतसरोरुहगर्भभृङ्ग-

मत्यन्तमेव तुलनामतिरोहिता द्वे ।।

इस महाकाव्य में कर्म, दर्शन एवं आध्यात्मविद्या के अनेक उल्लेख देखे जा सकते हैं । इस महाकाव्य का नायक भीष्म धीरोदात्त है । अम्बा इस काव्य की नायिका है । वीर रसोपेत यह महाकाव्य भारतीय संस्कृति को प्रस्तुत करने वाली एक उत्तम कृति है ।

## (७) अमरचरितं काव्यम्

यह महाकाव्य पं0 रामेश्वरदयाल शास्त्री ने लिखा है । शास्त्री जी का जन्म ग्राम पालहावास (महेन्द्रगढ़) में पं0 श्यामसुन्दर के यहाँ हुआ था । पं0 जी राजकीय विद्यालय से संस्कृताध्यापक के पद से सेवामुक्त होकर साहित्यसृजन में लीन हैं ।

आश्रम हरिमंदिर संस्कृत महाविद्यालय, पाटौदी के संस्थापक स्वामी अमरदेव जी को चरितनायक मानकर आपने सन् १९८४ ई0 में बीस सर्गीय महाकाव्य की रचना की है । काव्य हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत है । मंगलाचरण में कवि ने गणेश जी की वन्दना की है -

नागाननं भग्नरदैकरम्यं गौरीसुतं मोदकमंजुलाभम् ।

लम्बोदराधारविशालदेहं वन्दे विधूताखिलविघ्नवर्गम् ।।

कथा का क्रम करते हुए शास्त्री जी लिखते हैं कि विभाजन पूर्व पंजाब में नाभा रियासत के अन्तर्गत कन्सूल नामक गाँव के लालसिंह के राजदेवी के संपर्क से विक्रम सं0 १९४१ में माघ मास की पूर्णिमा को एक दिव्य पुत्र अमरसिंह का अवतार हुआ तदनन्तर शिशु क्रीडाओं तथा सोलह वर्ष की अवस्था में गृहत्याग का वर्णन है। द्वितीय सर्ग में बालक का ऋषिकेश गमन तथा स्वामी कल्याणदास का शिष्यत्व ग्रहण करने, तृतीय में गुरु की खोज तथा अन्तिम संस्कार करने, चतुर्थ में हरिद्वार जाने तथा पंचम मे यात्रा का वर्णन हैं।

छठे सर्ग में पुनः हरिद्वारगमन, सातवें में कोटनाई में चमत्कार करना, आठवें में आमूद खान को सचेत करना तथा नवें में कोटनाई में संस्कृत विद्यालय की स्थापना करना वर्णित है। दशवें सर्ग में अज्ञानी पंजाब-वासियों को विद्यादान करना, ग्यारहवें में चमत्कारों का प्रदर्शन करना, बारहवें में वजीरे डाकुओं को उपदेश करना तथा तेरहवें में भक्त टोपनदास के पुत्र कृष्ण का शरणागत होना वर्णित है। चौदहवें सर्ग में कुख्यात गुण्डे रमजान का हृदय परिवर्तित करना, पन्द्रहवें में कृष्ण की दीक्षा सम्पादित करना, सोलहवें में स्वप्नदर्शन और विचार, सतरहवें में ईसाई भक्त का शरण में आना, अठाहरवें में कैन्सर पीड़ित होना, उन्नीसवें में श्रीकृष्णदेव को स्वप्न में दर्शन देना तथा बीसवें में अमरपुरी का निर्माण वर्णित किया गया है। काव्य की समाप्ति में यह श्लोक है-

सम्पूजितौ भक्तजनैः सुवृत्तैः
संस्पृश्य भालेन सदैव धृष्टौ।
देवस्य विघ्नौघविनाशशीलौ
श्रेयांसि पादौ दिशतां समेषाम् ॥

शास्त्री जी की यह कृति महाकाव्य के लक्षणों से युक्त है। इसका नायक महापुरुष और चरित्र नायक है। कवि की भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है। उपमा,रूपकादि अलंकारों के साथ-साथ प्रकृति चित्रण के अनेक प्रसंग इस कृति में हैं। कवि प्राचीन संस्कृत साहित्यकारों से प्रभावित है। इसमें अनेक सुभाषित भी दिये गये है। सम्पूर्ण रूप में यह महाकाव्य उत्तम चरित्रकाव्य है।

## (८) श्रीशङ्कराचार्यचरितम्

दण्डी स्वामी श्री (डॉ0) निगमबोध तीर्थ (पूर्वाश्रम में पं0 राधाकृष्ण शास्त्री) का जन्म लोहारी (जिला-भिवानी) में हुआ था। आपने श्रीशंकराचार्यचरितम् महाकाव्य लिखा है जिसका प्रकाशन परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली ने सन् १९८८ ई0 में किया है। यह काव्य हरियाणा साहित्य अकादमी, उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी तथा पंजाब सरकार द्वारा पुरस्कृत किया गया है।

यह महाकाव्य त्रयोदश सर्गात्मक है । प्रथम नौ श्लोक मंगलाचरण के हैं-

श्रीशंकरं दिव्यविभाप्रधानं
देवाधिदेवैरपि कीर्त्यमानम् ।
भक्तार्तिविध्वंसनसावधानं
देव्या समं नौमि कृपानिधानम् ।।

इस महाकाव्य के सर्ग नाम इस प्रकार हैं - (१) शङ्करोत्पत्ति (२) विद्याप्राप्ति (३) प्रव्रज्यानुमति (४) प्रव्रज्याऽवाप्तिक (५) विश्वनाथदर्शन (६) भाष्यनिर्माण (७) जननीदेहत्याग (८) श्रीमण्डनमिश्रपराजय (९) श्रीमिश्रदीक्षा (१०) तीर्थाटन (११) पद्मपादटीका का उद्धार (१२) मठस्थापना एवं (१३) स्वधामगमन।

दण्डी स्वामी निगमबोध तीर्थ का यह महाकाव्य चरित्र महाकाव्य है । इसके नायक वेदान्तविद् भगवान् आद्य शंकराचार्य हैं जो कि धीरेदात्त नायक हैं । महाकाव्य का प्रतिपाद्य धार्मिक और ऐतिहासिक है । इस काव्य का फल मोक्ष प्राप्ति है । महाकाव्य नगर, उपवन, जलाशयादि प्राकृतिक वर्णनों से युक्त है । इसका प्रधान रस शान्त है तथा शैली वैदर्भी है । प्रसाद गुणोपेत यह महाकाव्य अनेकविध छन्दालंकारों से अलंकृत है । उपमा का यह उदाहरण दर्शनीय है-

ततश्च जातो विमलो विचारः
श्रीमण्डनेन प्रभुशङ्करस्य ।
तौ सोमसूर्याविव भूतलस्था-
वास्तां तदा तत्र विराजमानौ ।।

कवि ने सरस, सरल और प्रभावोत्पादक भाषा का प्रयोग किया है-

बभूव तस्य विप्रस्य भार्या धर्मानुसारिणी ।
आर्याम्बेति पवित्राख्या पतिचित्तानुवर्त्तिनी ।।

प्रत्येक सर्गान्त में कवि ने छन्द परिवर्तन नियम की परिपालना की है । काव्य में कुल ६२५ श्लोक हैं । काव्य का भाषानुवाद पं0 शिवनारायण शास्त्री ने किया है। अनेकानेक विद्वानों एवं महात्माओं की इस कृति पर शुभकामनायें अंकित हैं । यह महाकाव्य एक उत्तम काव्य रचना है, स्तुत्य है, अभिनंदनीय है ।

## (९) हरिश्चंद्रमहाकाव्यम्

श्री आयुर्वेद महाविद्यालय, खानपुरकलां के भू0 पू0 प्राचार्य डॉ० बलवीर दत्त शास्त्री ने दश सर्गात्मक हरिश्चंद्रमहाकाव्य की रचना की है । यह महाकाव्य

'भारतोदय' पत्रिका में क्रमशः प्रकाशित हुआ है । कवि ने सर्वप्रथम भगवान् शिव तथा भगवती भारती की वन्दना की है-

नमस्तस्मै महेशाय हन्ति विघ्नकुलानि यः ।

भारती भातु मे कण्ठे सत्योपाख्यानवर्णने ।

इस महाकाव्य में सुप्रसिद्ध दानवीर महाराजाधिराज हरिश्चन्द्र का चरित वर्णित किया गया है । इसके सर्ग नाम इस प्रकार हैं-

(१) हरिश्चद्र विवाह राज्यतिलकादि वर्णन (२) विश्वामित्र का कोप (३) राज्य समर्पण (४) सदारपुत्र काशीगमन (५) काशीवास (६) शैव्या विक्रय (७) कलुवाहस्त विक्रय (८) रोहिताश्वसर्पदशन (९) चिता रचना (१०) रोहिताश्व राज्यारोहण ।

डॉ0 शास्त्री का यह महाकाव्य चरित महाकाव्य है । इसके नायक हरिश्चन्द्र व नायिका शैव्या है । महाकाव्य के तत्त्वों का पालन किया गया है । अलंकारप्रयोग किया है । यथा- तारालोचनयोरिव । लोचनतारको । वज्रपाता इव । छाया यथा धावति मानवञ्च । ज्योत्स्ना यथा चन्द्रमसं प्रयाति इत्यादि । अनुप्रास की छटा अवलोकनीय है-

''सुधियः साधवः सन्तः समादरपुरःसरम् ।।''

काव्य की भाषा सरल, सरस तथा भावात्मक है । अनेक छन्दों में रचना किये जाने के साथ-साथ महाकाव्य लक्षणों का पूरा ध्यान रखा गया है । यह निस्संदेह एक उत्तम काव्य कृति है ।

इस प्रकार हरियाणा में बीसवीं शताब्दी में अनेक महाकाव्यों की रचना हुई है। संस्कृत विद्वानों का हरियाणा संस्कृत साहित्य को ही नहीं प्रत्युत विश्व संस्कृत साहित्य को यह एक महान् योगदान है ।

## स्वातन्त्र्योत्तर ललित संस्कृत वाङ्मय :

# गुजरात का प्रदान

डॉ0 राजेन्द्र नाणावटी

इस तथ्य को स्वीकार करना होगा कि संस्कृत आज अति अल्प मात्रा में व्यवहार भाषा है, प्रायः वह अभ्यास भाषा ही बनकर रह गयी है । विद्वद्गोष्ठियों या कवि-सम्मेलनों को छोड़कर व्यवहार में कदाचित् ही संस्कृत भाषा का प्रयोग किया जाता है । संस्कृत की कदाचित् ऐसी ही अवस्था कई शताब्दियों से इस देश में रही । यही कारण है कि संस्कृत साहित्य की भाषा शैली का विकास शताब्दियों में एक ही प्रकार का रहा-प्रायः शब्दचमत्कृतिप्रधान और विषयवस्तु-बिम्बविधान-अर्थचमत्कृति आदि में परंपरानुसारी । तथापि संस्कृत भाषा में उत्तम रचनाएँ होती रहीं क्योंकि वह इस समूचे विशाल देश की विद्वद्भाषा थी और शताब्दियों के अन्तराल मे ं इस विशाल उपखण्ड में संस्कृत में ललित रचना के लिए प्रवृत्त होने वाले अनेकों में से कुछ तो ऐसे कवि अवश्य हुए जिनकी रचना कालजयी सिद्ध हुई।

वर्तमान काल में भी संस्कृत की अवस्था प्रायः वैसी ही है । केवल, विद्वानों का अपेक्षाकृत अल्प समुदाय संस्कृत भाषा साहित्य के अभ्यास की ओर आकृष्ट होता है । आज भी संस्कृत में ललित साहित्य का सृजन अवश्य हो रहा है, अलबत्ता ,ऐसा साहित्य अल्पसंख्यक होना स्वाभाविक है । तो भी हम इस आशा से परे नहीं कि इन रचनाओं में से कुछ तो ऐसी होगीं जो कालजयी सिद्ध हों, या फिर काल प्रवाह में डूब जाने से पूर्व कुछ दूर तक तो बहें । स्वातन्त्र्योत्तर गुजरात की ललित संस्कृत रचनाओं के इस सर्वेक्षण में भी यथामति ऐसी कुछ विशेष रचनाओं के प्रति ध्याना- कर्षण करने का प्रयास है ।

अर्वाचीन भारतीय भाषाओं में भी जहाँ पुस्तक प्रकाशन की समस्या कठिन है वहाँ संस्कृत भाषा में पुस्तक प्रकाशन की दशा दुर्घट होना स्वाभाविक है । संस्कृत रचनाएँ प्रायः सामयिक पत्रिकाओं में ही प्रकाशित होती हैं । गुजरात की ऐसी पत्रिकायें तीन हैं- (१) बृहद् गुजरात संस्कृत परिषद् अमदाबाद से प्रकाशित वार्षिकी 'साम्मनस्यम्', (२) संस्कृत महाविद्यालय, बड़ौदा से प्रकाशित वार्षिकी 'सुरभारती' तथा (३) भारतीय विद्या भवन, बम्बई से प्रकाशित त्रैमासिकी 'संवित्' । संवित् को गुजरात की पत्रिका इसलिए कहा है क्योंकि गुजरात के कुछ संस्कृत रचनाकारों की रचनाएँ इसमें प्रायः प्रकाशित होती रही है ।

संस्कृत लेखकों को आकाशवाणी (और कभी कभी दूरदर्शन) की ओर से प्रोत्साहन अवश्य प्राप्त होता है । आकाशवाणी की आवश्यकता के कारण रेडियो-नाटिका की नयी प्रविधा निष्पन्न हुई और कई लेखकों ने अकाशवाणी के निमन्त्रण से लघु रेडियो-नाटिकायें लिखी और प्रसारित होने के बाद उन्हें सामयिकों में प्रकाशित भी करवाया ।

परन्तु आकाशवाणी और पत्रिकाओं में प्रसारित-प्रकाशित कई लेखकों की कुछ महत्त्वपूर्ण साहित्य-रचनाएँ अभी ग्रन्थस्थ नहीं हो सकी । ऐसे कुछ लेखकों का नामनिर्देश यहाँ करना अनुचित न होगा । स्वर्गीय अनन्तकृष्ण दवे के दो दीर्घकाव्य-रामायण और महाभारत की कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं को वर्णित करने वाला उपजाति छंद में रचा गया श्लोक शतक 'भारतगौरवगाथा' तथा वेदान्त सिद्धान्त का निरूपण करने वाला 'तत्त्वनिरूपणम्' संवित् के पृष्ठों पर प्रकाशित हुए हैं । जयन्तकृष्ण दवे ने शिवमहिम्नःस्तोत्र की परिपाटी पर 'सोमराजस्तवः' की रचना की और स्वर्गीय कन्हैयालाल मुन्शी जी की प्रसिद्ध कथा 'कृष्णावतार' के कुछ अंशों का अनुवाद किया। ये संवित् में छपे हैं । बड़ौदा के प्रो0 अरुणोदय जानी का 'शर्मण्यदेशप्रवासः' नामक यात्रावर्णन तथा 'विवाहः' , 'सूर्योदयः' आदि लघु नाटिकाएँ संवित् में प्रसिद्ध हुईं । सूरत के डॉ0 अरुणचन्द्र शास्त्री ने 'हास्यशतकम्' में सौ कटाक्षपूर्ण पद्यों की रचना की जो साम्मनस्यम् में प्रकाशित हुई हैं । बड़ौदा के डॉ0 जयदेव जानी 'रसराज' काव्य-लघुकथा-रेडियोनटिका आदि विधाओं में प्रवृत्त हैं; इनकी रचनाएँ भी प्रायः संवित् में प्रकाशित होती रहती है । गुजरात के साम्प्रतकालीन प्रमुख संस्कृत कवि डॉ0 हर्षदेव माधव की अनेकानेक काव्यरचनाएँ संवित् तथा साम्मनस्यम् में प्रसिद्ध होती रहती है । सूरत के स्वर्गीय गजेन्द्रशंकर लालशंकर पंड्या के कई प्रहसन संवित् में प्रकाशित हुए । सूरत के ही स्वर्गीय जनक दवे ने 'शंकरविजयः', 'पूर्णं सप्तर्षिमण्डलम्', 'महावीरनिर्वाणम्' जैसे अनेकाङ्की तथा कथावस्तु में गंभीर अर्थ निहित रखने वाले नाटकों की रचना की, पर इनकी तीनों रचनाएँ संवित् के अंकों में ही क्रमशः छपती रहीं । ये कदाचित् ही ग्रन्थ रूप में उपलब्ध हो सकेंगी । आचार्य भाई शंकर पुरोहित तो संवित् के संपादक ही हैं । इनके लिखे कुछ संक्षिप्त जीवनवृत्तों का एक संग्रह 'अभिनवज्योतिर्धराः' [१] दो वर्ष पूर्व ग्रन्थ रूप में प्रकाशित हुआ ।

आकाशवाणी के लिए लघु रेडियो नाटिकाओं का सृजन करने वालों में बड़ौदा के डॉ0 जयदेव जानी, प्रो0 अरुणोदय जानी, डॉ0 हरिप्रसाद शास्त्री, डॉ0 मधुसूदन पाठक, पं0 लक्ष्मीशंकर शुक्ल, अहमदाबाद के प्रो0 कृष्णचन्द्र शास्त्री, डॉ0 शान्तिकुमार पंड्या, डॉ0 लक्ष्मेश जोशी, श्री घनश्याम त्रिवेदी, प्रा0 वासुदेव पाठक, प्रा0 सुरेश दवे, राजकोट के आचार्य जयानन्द दवे आदि कई नाम लिये जा सकते हैं । प्रा0 वासुदेव पाठक की दो दीर्घ गीतिनाट्य रचनाएँ 'मा भूदेवम्,' और

'आराधना' आकाशवाणी से प्रसारित हुई हैं। इनमें से कई नाटिकायें प्रसारणोपरान्त संवित् अथवा साम्मनस्यम् अथवा कदाचित् सुरभारती में भी प्रकाशित होती रही है। बड़ौदा की संस्कृत विद्वत् सभा तथा अहमदाबाद की वृहद् गुजरात संस्कृत परिषद् अपने वार्षिकोत्सव में संस्कृत नाटिकाओं का मंचन तथा संस्कृत गरबा का प्रस्तावन करती हैं। इस हेतु भी कुछ एकांकी नाट्यरचनाएँ की गयी तथा संस्कृत में भी गरबा लिखे जाने लगे। 'गरबा' के लिये यहाँ 'मण्डलगान' संज्ञा प्रयुक्त की गयी है और ऐसे मण्डलगानों के कुछ संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं। विद्वत्सभा द्वारा प्रकाशित 'संस्कृतमण्डल-गानानि'[२] में पण्डितपंचानन बदरीनाथ शास्त्री, विद्याभास्कर मणिशंकर उपाध्याय, पं० लक्ष्मीशंकर शुक्ल, डॉ० जयनारायण पाठक, प्रो० अरुणोदय जानी तथा श्री प्रद्युम्न शुक्ल की रचनाएँ संगृहीत हैं। चाणोद के पं० छगनलाल धनेश्वर शास्त्री की रचनाओं का संग्रह 'मण्डलगानवल्ली' नाम से प्रकाशित हुआ है। वासुदेव पाठक की भी संस्कृतगरबावली[३] प्रकाशित है।

इनके उपरान्त भी पं० केशवराम का० शास्त्री, डॉ० भगवतीप्रसाद पंड्या, पं० दानीदत्त झा, डॉ० गौतम पटेल, जयदत्त शास्त्री, डॉ० एम० वी० जोशी, कालिका प्रसाद शुक्ल, अमीरचंद शास्त्री, हरिप्रसाद मेहता, प्रभाकर डोंगरे, रमेश शाह, डॉ० श्रीमती उमा देशपांडे, श्रीऋषिराज अग्निहोत्री, आचार्य मोहिनी आदि कई लेखक प्रसंगोपात्त संस्कृत काव्यादि की रचना करते रहें हैं और उन्हें यत्र तत्र प्रकाशित भी करते रहे हैं।

कुछ ऐसे भी रचनाकार हैं जिनकी स्वरचित कृतियाँ अप्रकाशित रूप में किसी उद्धारक की राह देख रही है। बड़ौदा के संन्यास मठके वर्तमान आचार्य श्री निरंजन देव तीर्थ जी की नाट्यरचना 'द्रौपदीस्वयंवरम्' अद्यावधि अप्रसिद्ध है।

बड़ौदा के पंडितपंचानन बदरीनाथ शास्त्री की कुछ सुन्दर नाटिकाएँ संस्कृत विद्वत्सभा के वार्षिकोत्सवों की पुस्तिकाओं में छपी बिखरी पड़ी है। इनमें 'राधाविनोदः (?) 'मालिनी' (१९५९), 'रत्नावली' (१९६२), 'मिथ्यावासुदेवः' (१९६६) आदि समाविष्ट है। इनके संवादो की भाषा बड़ी मँजी हुई, प्रशिष्ट नाटकों की भाषा के समान फिर भी सरल, प्रवाही और कभी शास्त्रनिर्देश (allusions) वाली तो कहीं लौकिक मुहावरेदार भी होती है। हलके-फुलके प्रसंगों का साहजिक क्रीडागति से निर्वाह और नाटिका का अचानक और सूचक समापन इनके संविधान की विशेषता है। 'रत्नावली' में कृष्ण की म्लानता से चिन्तित मित्र श्रीदामा नारद के सूचन से कृष्ण के साथ मिलकर राधा की नवग्रहरत्नावली चुराता है। अन्त में राधा की सखियाँ कृष्ण की चोरी जान जाती हैं। तब नाटिका की समाप्ति ऐसे होती है।

राधा-इयं मे रत्नावली।

कृष्णः-इयं मे रत्नावली।

'मिथ्यावासुदेवः' में पौण्ड्रक के पात्र का निरूपण शकार के पात्र का समर्थ अनुकार है । अपने राज्य से कवियों के उड़ जाने के कारण प्रतिहारी के समक्ष वह स्वयं अपना वर्णन इस प्रकार करता है-

पौण्ड्रकः-वात्योथितो रेणुस्तम्भ इवास्मि भूमौ
व्योम्न्यस्मि सधूम इव धूमकेतुः ।
पाताले च तक्षक इवास्मि धृतकालकूटः
लोकत्रयेऽपि प्रथितोऽस्मि जनैर्नरैश्च ॥
प्रतिहारिन्, वद कीदृशं काव्यम् ?

प्रतिहारी-अहं किं वर्णयिष्यामि । एतच्छ्रुत्वा सर्वेऽपि कवयः श्येनभीता विहङ्गा इव पक्षान् फडफडायिष्यन्ते । न यत्र वृत्तं चिन्तनीयं,न शुद्धिः, न ह्रस्वः, न दीर्घः, न च पुनरुक्तिः ।

पौण्ड्रकः-साधूक्तम्, सर्वेऽपि कवय एवमेव काव्यं कुर्वन्ति । इयमेव स्वतन्त्रता काव्यस्य ।

प्रतिहारी-लोकस्यापि इत्यपि वक्तव्यम् ।

शास्त्रीजी ने नाट्य रचनाओं की ओर पर्याप्त मात्रा में ध्यान नही दिया, नही उनकी रचनाओं का कोई संग्रह हो पाया है- ये दोनों बातें खेदजनक हैं ।

ग्रन्थ रूप में जिनकी रचनाएँ प्रसिद्ध नही हो पायीं ऐसे रचनाकारों में एक महत्त्वपूर्ण नाम है सूरत के (अब स्वर्गीय) श्री जनक दवे का । श्री दवे शिक्षक थे । उन्होंने हिन्दी भाषा के प्रचार के लिए भी कार्य किया । इनके तीन नाटक हैं । तीनों क्रमशः संवित् में प्रकाशित हुए । 'पूर्ण सप्तर्षिमण्डलम्' पौराणिक कथानक का नाट्यरूपान्तर है । 'महावीरनिर्वाणम्' पन्द्रह से अधिक दृश्यों में विभाजित है । 'शंकरविजयम्' आद्य शंकराचार्य के जीवन की कुछ प्रमुख घटनाओं का सात अंकों में नाट्य रूप है । श्री दवे गंभीर प्रकृति के व्यक्ति थे और इनकी नाट्य रचनाएँ भी गंभीर विचारों को नाट्यायित करने का प्रयास करती हैं । उदाहरणतः इनके 'शंकरविजयम्' में कन्याहरण करते दुष्ट कापालिकों की पश्चाद्भूमि में आचार्य का जन्म इनके जीवन कार्य का निर्देश करता है । सात वर्ष के बालक के चित्त में 'मोहमुद्गरसूक्त' की पंक्तियों का प्रफुल्लन होना इनकी भावी साहित्यिक प्रतिभा का सूचन करता है । परकायाप्रवेश से रतिक्रीडा की महत् सर्वव्यापी एकात्मता का युगल अनुभव आचार्य को 'शिवः केवलोऽहं' के अस्मत्प्रत्ययके समान ही युष्मत्प्रत्यय की सत्यता को भी स्वीकार करने के लिए बाध्य करता है । आजन्म ब्रह्मचारी को

यह अनुभव निषिद्ध है, अतः उसका ज्ञान अपूर्ण है, अर्थात् वह एकदेशिन् है और 'एकदेशज्ञानिन आचार्यपदवी न युक्ता ।' परकाया प्रवेश के रति-अनुभवों की अर्थपूर्णता श्री दवे आचार्य के व्यक्तित्त्व की इस अपूर्णता को पूरा करने में बताते हैं और आचार्य के विशृंखल दिखाई देते जीवन प्रसंगों की सूक्ष्म एकाग्रता और इनमें अन्तर्निहित भारतीय जीवनदर्शन की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। ऐसे गंभीर अर्थघटन, इनका अपनी वस्तुसामग्री के ऊपर प्रभुत्व और सूक्ष्म जीवनदर्शन इनके नाटकों की महनीय विशेषता है। और इन नाटकों का ग्रन्थ रूप में न होना आधुनिक संस्कृत साहित्य के लिए हानि है।

सूरत के ही स्वर्गीय गजेन्द्र शंकर लालशंकर पंड्याका एक 'विषमपरिणयम्'[४] नामक पंचांकी वृद्ध पुरुष के साथ तरुण कन्या के विवाह के सामाजिक दूषण को विषय बनाने वाला करुणान्त नाटक १९३२ में छपा था। इनके आठ प्रहसन- 'नियमनम्' 'सुभगमातिथ्यम्', 'वेदोत्तमः' 'कस्त्वम्', 'कस्य दोषः' 'कः श्रेयान्', बुद्धिमत्ता और 'प्रचुरबुद्धिप्रभावम्' -१९७० के बाद 'संवित' के पृष्ठों पर छपे। इन नाटकों के विषय वस्तु हैं वर्तमान समाजजीवन के दूषण किन्तु इनका हास्य कोई कक्षा सिद्ध नहीं कर पाता, और नाटक भी कहीं कहीं तो केवल छिछले संवाद बन कर रह जाते हैं[५]।

कुछ नाटक ग्रन्थस्थ हुए भी हैं। नागरदास अमरजी पंड्या का निधन स्वातन्त्र्योपरान्त हुआ। इनका एकमात्र पञ्चाङ्की नाटक 'श्रीरुक्मिणीहरणम्' १९२३ में वढवाण (गुजरात) प्रकाशित हुआ था। गुजरात के प्रख्यात नाटककार बड़ौदा संस्कृत महाविद्यालय के प्रथम आचार्य मूलशंकर माणिकलाल याज्ञिक १९६५ तक जीवित थे। पर इनके तीनों प्रसिद्ध नाटक-सप्ताङ्की 'संयोगितास्वयंवरम्' (१९२८) दशाङ्की 'छत्रपतिसाम्राज्यम्' (१९२९) और नवाङ्की 'प्रतापविजयम्' (१९३१) - स्वातन्त्र्य पूर्व बड़ौदा से प्रकाशित हुए। अहमदाबाद के श्री गिरजाशंकर नाथुजी द्विवेदीने अपने १७ नाट्यसंवादों को 'संवादसंग्रहः'[६] नाम से ग्रन्थ रूप में प्रकाशित किया है। अहमदाबाद के ही श्री घनश्याम त्रिवेदी अकाशवाणी-प्रसारण तथा वार्षिकोत्सवों में मंचन के लिए एकांकी लिखते रहते हैं। इनके दो नाट्यसंग्रह 'नूतननाट्यप्रस्थानम्' (१९७७) तथा 'नूतननाट्यकौमुदी' (१९८२) प्रकाशित हुए हैं।[७] इन एकांकियों में संवाद और घटना प्राप्त होते हैं, भाषा में लोकबोली का प्रतिबिम्ब भी प्राप्त होता है, पर प्रायः इनमें संविधानशैथिल्य, संविधान में किसी अन्तर्निहित दृष्टि का अभाव और साहित्यिकता की कमी अनुभव होती है। भावनगर के प्रा० जयन्तीलाल अ० भट्टकी दो लघुनाटिकाएँ 'मानसशाकुन्तलम्' (१९८०) और 'गीतामानसमङ्गलम्' (१९८३) तथाकथित नये दृष्टिकोण और नयी तकनीकों का प्रयोग करने की चेष्टा करती हैं।[८]

स्वातन्त्र्योत्तर काल के नाटकों में स्वर्गीय आचार्य जीवनलाल परीख की एकमात्र नाटिका 'छायाशाकुन्तलम्'[१] (१९५३,१९८६) अपनी निजी विशेषता लिये हुए है। जैसे शीर्षक से स्पष्ट है, 'उत्तररामचरितम्' की छाया-सीता की तकनीक का प्रयोग 'शाकुन्तलम्' में करके इसमें एक सुन्दर परिणाम सिद्ध किया गया है। लेखक ने दुर्वासा के शापकी बात केवल प्रियम्वदा तक ही सीमित रखी है। तब राक्षसों का पराजय करके शापमुक्त पश्चात्तापयुक्त दुष्यन्त कण्वाश्रम में अपने पूर्व प्रणय के स्थानों की संभावना करने आता है। शकुन्तला को भी वहाँ किसी बहाने छाया रूप में लाया जाता है और वह स्वयं दुष्यन्त को इन स्थानों के दर्शन से होती हुई पीड़ा को देखती है। भवभूतिकी वासन्ती के समान अनसूया भी, शापकी बात से अनभिज्ञ होने से, राजा दुष्यन्त से कठोर प्रश्न करती है। शकुन्तला का अपमानशल्य तब दूर होता है जब प्रियम्वदा आकर दुर्वासा के शाप की बात प्रकट करती है। दुष्यन्त की पीड़ा और मूर्च्छा के लिए यहाँ शकुन्तला का स्पर्श ही उपाय है। कण्वाश्रम की प्रकृति भी यहाँ पञ्चवटी की प्रकृति के समान कार्य करती है। नाटिका के संविधान में 'उत्तररामचरितम्' के छायादृश्य का प्रभाव होना अनिवार्य है। पर लेखक की शैली कालिदास के समान निर्मल प्रसादयुक्त और किसी प्रकार के अतिशय से मुक्त है। 'शाकुन्तलम्' की कुछ घटनाओं का 'उत्तररामचरितम्' की योजना में दर्शन नाटिका को मधुर आस्वाद देता है। जैसे-

अनसूया-देव पश्य पश्य, इदं तद् वेतसगृहम्-

यत्र त्वया विरहतापविदह्यमाना
शय्यां श्रिता शिशिरलेपनमादधाना।
संवीजिता कमलिनीदलवृन्तवातै-
र्दृष्टा तदा मदनलेखपरा सखी मे ॥

अथवा

अनसूया-देव, इतः पश्य-

अस्मिन्नेव शकुन्तलासहचरः कुञ्जे त्वमासीस्तदा
दीर्घापाङ्गमृगेण तेऽपरिचयात्पीतं न हस्ताज्जलम्।
तस्मिन्नेव जले पुनः स्वकरयोः सख्या गृहीते स्वयं
पानाय प्रणयः कृतः कमलिनीपत्रस्थिते सत्वरम् ॥

'छायाशाकुन्तलम्' आधुनिक एकांकी नाट्यरचना के सभी लक्षण प्रकट करते हुए भी पारंपरिक लक्षणों को निभाती है और प्रशिष्ट नाट्यकृति बन पड़ी है।

गद्य में उपन्यास, लघुकथा, चिन्तनात्मक गद्य, प्रवास-कथा, आत्मवृत्तान्त इत्यादि मे अल्प ही लिखा गया है। जयन्तकृष्ण दवे द्वारा अनूदित कन्हैयालाल मुन्शी की कथा 'कृष्णावतार' के कुछ अंश 'संवित्' में प्रकाशित हुए। बड़ौदा के पं० बदरीनाथ शास्त्री ने चूनीलाल वर्धमान शाह के उपन्यास 'अवन्तिनाथ' का प्रायः सम्पूर्ण अनुवाद किया पर उसका अल्प अंश ही प्रकाशित हो पाया है। डॉ० जयदेव जानी 'रसराज' भी गद्य में लघु कथाएँ लिखते हैं, अभी एक उपन्यास लिखने का प्रयास कर रहे हैं। वासुदेव पाठक का 'रसबोधः'[१०] पञ्चतन्त्र के प्रकार की २५ कथाओं का संग्रह है। ललितकुमार शास्त्री के चिन्तनप्रधान लघु निबन्धों के विष्णुदेव पंडित द्वारा किये गये अनुवादों का संग्रह 'अमृतधारा' (१९७९) शीर्षक से अहमदाबाद की बृहत् गुजरात संस्कृत परिषद् से प्रकाशित हुआ है।

स्वर्गीय प्रो० गौरीप्रसाद झाला संस्कृत विद्वान् प्राध्यापकों में भी आदरणीय थे। इनकी कुछ काव्यरचनाएँ, कुछ गद्य निबन्ध तथा तीन नाटिका-संवाद इनके निधन (१९७१) के उपरान्त 'सुषमा'[११] (१९८१) शीर्षक से संग्रहस्थ और प्रकाशित हुए हैं। इनमें 'बटुदिग्विजयम्' नाटिका अच्छा प्रहसन है। काव्यों में भी इनका शब्दचयन रसानुरूप और प्रशिष्ट है।

बड़ौदा के पंडित पंचानन बदरीनाथ शास्त्री की कुछ काव्यरचनाएँ भी यत्र तत्र उपलब्ध हैं। इनकी कर्णमधुर पदावली के कारण इन्हें 'अभिनवजयदेव' का विरुद मिला था। इनकी एक यशोदायिनी रचना 'गोपालाष्टपदी' की कुछ पंक्तियाँ-

रञ्जितमञ्जुलकञ्जसहोदरपदयुगलेन समारूढम्। ---

प्राकृतधिक्कृतिमात्रफलाकृतिहीनमशेषाकृतिलोलम्। ---

सव्येतरकरकररुहचन्दिरकरनिकराञ्चितकाञ्चीकम्। ---

कुन्तानन्दनसान्द्रानन्दसरित्पतिमिन्दुशताभासम्।

निजभाभासितभुवनं प्रणमत गोपालं जगतीपालम्॥

इनकी कुछ मण्डलगान-रचनाओं में भी यह वर्णमाधुरी और प्रासादिकता दिखाई देती है -

मन्दसमीरसमीरितकुसुमावलिपरिमलजटिले ---

मुग्धस्मितपरिदृश्यदशनरुक्छादितबिम्बाधरे ---

गोपवधूटीकिञ्चित्कुञ्चितनयनार्चितमीशम्॥

अथवा-

जय जय गिरिवरधारिन् रासविहारिन्

मञ्जुरणन्नवकिङ्किणिकारवमुखरं पादयुगम्

चन्द्रशतादुद्धृतरुचिसारविनिर्मितमिव ते वदनम् ।। इत्यादि

बड़ौदा के पास नारेश्वर तीर्थधाम में इस सदी के संत श्री रंग अवधूत महाराजका निवास था । इनका १९६९ में देहावसान हुआ । इनके रचे हुए स्तोत्र, काव्य आदि का एक संचय 'रंगहृदयम्'[१२] नाम से प्रकाशित है । इन्होंने 'सद्बोधशतकटीका' भी लिखी ।

श्री रंग अवधूत जी की स्तुतियों के भी कुछ संग्रह हैं । इनमें श्री भवानीशंकर शास्त्री का स्तवसंग्रह 'अवधूतप्रशस्तिः' है । श्री काशीशंकर म0 अग्निहोत्री का 'रंग प्रशस्ति'[१३] है और प्रो0 अरुणोदय जानी संपादित 'श्रीरंगगुणगरिमा'[१४] है ।

सूरत के कबीरपंथी संत स्वामी श्री ब्रह्मलीनमुनि भी संस्कृत के विद्वान् थे । इनकी दो काव्य रचनाएँ प्रसिद्ध हुई हैं । 'सद्गुरुश्रीकबीरचरितम्'[१५] २९०० पद्यों में, प्रायः अनुष्टुभ् छन्द में, पचास अध्यायों में संत कबीर के जीवन और कार्य का, तथा कबीरोपरान्त संप्रदाय के विस्तरण का निरूपण करने वाला पुराण-शैली का विशाल काव्य है । काव्य का कथन प्रवाह सरल और निर्विघ्न गति से बहता है । कुछ मुस्लिम नाम काव्य के शब्दचयन में ठीक बैठ नहीं पाते । जैसे-

तदा श्मशानचित्तोड़ोऽलाउद्दीनेन हस्तितः ।

अथवा-

पश्चात् फिरोजशाहोऽपि कांगडां प्राप्य हेतितः ।

या-

शेखतकी गुरुः प्रोचे । इत्यादि

कहीं न हि भानूदयं कूचिच्छादयितुं क्षमो भुवि ।

जैसी सुन्दर पंक्तियाँ भी हैं । इनका 'श्रीसद्गुरुस्तुतिशतकम्' १०३ द्रुतविलम्बित पद्यों में संत कबीर की स्तुति का सुन्दर काव्य है । इसके छन्दोरचन और शब्दचयन जगन्नाथ के लहरी काव्यों का स्मरण कराते हैं । इसकी एक विशेषता यह है कि पूरे काव्य में थोड़े थोड़े पद्यों तक चलनेवाली कुछ ध्रुवपंक्तियों (refrains) का प्रयोग किया गया हैं । जैसे-'शरणवत्सल ! पाहि भवाम्बुधेः' 'सदय नाथ ! समादिश सत्पथम्' 'त्वदपरः शरणं न हि विद्यते', 'मदपराधमशेषमपाकृणु', 'भजत रे मनुजा मनसा गुरुम्', 'जगदिदं सुसुखीकुरु सद्गुरो !' इत्यादि0 ।।

जगन्नाथ की 'गंगालहरी' के आदर्श पर नवसारी के डॉ0 रसिक लाल के0 पटेल ने नवसारी के पास बहती नदी पूर्णा की प्रशस्ति ५७ पद्यों की 'पूर्णालहरी' [१६] में की है । आरंभ, मध्य और अंत में कोई सात पद्यों को छोड़कर पूरा काव्य शिखरिणी छंद में रचा गया है । शब्दचयन सरल, प्रवाही और मधुर है । 'गंगालहरी' के समान इसमें भी नदी का कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन, आत्म निन्दा, मुक्ति के लिए नदी की शरण में जाना इत्यादि भाव निबद्ध हैं यथा-

जगल्लीलां प्रेक्षे विमलसलिलौघे भगवति

तवाभोगं मन्ये सुररमणभूमिं सुपुनिताम् ।

स्थितं हि व्रह्माण्डं जननि तव मूर्तौ विलसति

विना भक्त्या रूपं परमरमणीयं न लभते ।।

अहं सुव्यापारे भगवति कदापीह न रमे

चलं चित्तं मातर्भ्रमति सततं हेमविषये ।

श्ववृत्तिं सेवेऽहं दुरितमथ भोग्यं भवति मे

विना त्वां त्रातुं को जननि विगुणं मां विजयते ।।

सूरत के श्री भूपेन्द्र दवे का दो वर्ष पूर्व निधन हुआ । वे कई भाषाएँ जानते थे। उनका रचा हुआ 'उपमेशशतकम्' [१७] उपमास्वामी कालिदास की स्तुति में विविध छन्दों में सौ पद्यों का संचय है । इन पद्यों के शब्दचयन तथा कल्पनावैविध्य तो अकर्षक हैं ही, साथ ही इनकी रचना रीति allusive है, अर्थात् कई स्थानों पर कालिदास, जगन्नाथ आदि प्रशिष्ट कवियों के प्रसिद्ध पद्यों का स्मरण कराने वाली रचना रीति इन पद्यों की विशेषता है । कहीं तो, कवि मूल पद्य में कुछ शब्दों का परिवर्तन करने मात्र से नयी पद्य रचना सिद्ध कर लेते हैं । ऐसी रचनाओं का भी अपना एक विशेष आस्वाद है । कुछ पद्य देखें-

अर्थो हि युक्तश्च कवेः स्वकीयः

व्यक्तं च निर्दिश्य परिग्रहीतुः ।

तव प्रकामं विशदोऽन्तरात्मा

स्वकार्यसिद्धिं ननु मन्यसे त्वम् ।।

रम्यां साधु विचिन्त्य यो रसधनामुच्चैः कलां चात्मनः

साभिख्यां ननु यो निसर्गजनितां काव्यप्रवृत्तिं च ताम् ।

सामान्यप्रतिपत्तितो रचितवान् यो नाटकान्युन्नतः
लोकायत्तमिदं च तत्, न खलु तद्वाच्यं हि विद्वज्जनैः ॥
कश्चित्कान्तः कविजनगुरुः स्वाधिकारेऽप्रमत्तः
दक्षः सृष्टेर्जनकतनयाज्ञानपूज्यः कविर्यः ।
काव्यं वृद्धिंगमितमहिमा लोकभोग्यं सिसृक्षुः
स्निग्धश्चक्रे विरहरसवन्मेघदूतञ्च पूतम् ॥

भुज की स्वामीनारायण संस्कृत पाठशाला के आचार्य विद्वान् पं0 कस्तूरि रंगाचार्य के रचे, पुराण शैली के विशाल काव्य 'भारतराष्ट्रीयपुराणम्'[१८] के प्रायः छः हजार श्लोक प्रमाण दो खण्डों का गत वर्ष, २६ जनवरी १९९० के दिन बड़ौदा में विमोचन प्रकाशन हुआ। लेखक का लक्ष्य इण्डियन नेशनल कांग्रेस के इतिहास के रूप में हमारे स्वातंत्र्य संग्राम का १८५७ के प्रथम निष्फल संग्रामों से लेकर १९४७ में स्वातंत्र्य प्राप्ति तक के समय के इतिहास का आलेखन करने का है। इसके उपोद्घात, उदय और उत्थान नामक तीन प्रकरणों में अभी सन् सत्तावन के उपरान्त की पश्चाद्भूमि, कांग्रेस की स्थापना के प्रथम दस वर्ष और लॉर्ड कर्जन के दमनकाल के दस वर्ष का १९०४ तक का समय निरूपित हो पाया है। ग्रन्थ की घटनाओं की प्रामाणिकता को बनाये रखने के हेतु लेखक ने पर्याप्त परिश्रम किया है और तीसरे प्रकरण के अन्त में वेदकाल से लेकर अर्वाचीन काल पर्यन्त भारत के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक उत्थान का संक्षिप्त आलेखन भी किया है। इसमें लेखक का ऐसा अभिप्राय व्यक्त होता है कि इतिहास का दर्शन केवल राजकीय नहीं अपितु सामाजिक-सांस्कृतिक धाराओं के निदर्शन से ही पूर्ण होता है। पूरा काव्य अनुष्टुप् छन्द में रचा गया है और इसकी रचना शैली पुराणों की तरह प्रायः कथनात्मक, सरल, प्रवाही और कहीं काव्यचमत्कृति वाली है।

काव्यानुवादों के दो संचय प्रकाशित हुए हैं। बम्बई की डॉ0 जशवन्ती दवे के विविध गुजराती कवियों के काव्यों के संस्कृत अनुवादों का संग्रह 'सेतुबन्धः'[१९] नाम से प्रकाशित हुआ है इन अनुवादों में काव्यतत्त्व की अपेक्षा शब्दशः अनुवाद का लक्ष्य सिद्ध होता हुआ प्रतीत होता है। अहमदाबाद के श्री घनश्याम त्रिवेदी के काव्यसंग्रह 'नूतनगीताञ्जलिः'[२०] में प्रधानतया उनके द्वारा किये गये गुजरात के विविध लोक गीतों के अनुवाद तथा कुछ उनकी स्वतन्त्र रचनायें संगृहीत हैं। लोकगीतों के अनुवाद उन्होंने मूल के ही लयों, मात्राओं के अनुसार करने का लक्ष्य रखा है और इस लक्ष्य में वे बहुधा सफल भी हुए हैं। पर संस्कृत भाषा में ये लोक भाव कई बार अपरिचित से लगते हैं। इन्होंने सिनेमा के गीतों, बालगीतों, विवाहगीतों, दोहों के अनुवाद किये हैं, 'सेवकजनं कुरु ... परपीडां न जानाति रे' जैसे प्रतिकाव्य भी रचे हैं। वैसे

इन अनुवादों की भाषा और अभिव्यक्ति सरल होना अनिवार्य था पर कवि कदाचित् कुछ सरल छंदों का प्रयोग करते तो वह संस्कृत भाषा में अधिक जँचता ।

अहमदाबाद की गुजरात कॉलेजकी शताब्दी निमित्त उसी कालेज की वार्षिकियों से संचित संस्कृत क़ाव्यों का संग्रह 'काव्यप्रतिभा'[२१] नाम से प्रकाशित हुआ है । इसमें प्रि0 जे0 टी0 परीख, बाम्भणिया, प्रो0 ए0 जी0 भट्ट, कवि उमाशंकर जोशी जैसे धुरन्धरों की उनके कॉलेज काल की संस्कृत काव्य रचनाएं संगृहीत हैं ।

अहमदाबाद के प्रा0 वासुदेव पाठक अविरत रूप से स्तोत्र, गीत, छंदोबद्ध काव्य, मुक्तक आदि की रचना करते हैं । पर इन से अभी एक सुआयोजित काव्यसंग्रह मिलना शेष है ।

महात्मा गाँधी का प्रभाव भी कुछ रचनाओं में निमित्त बना है । अहमदाबाद के स्वामीनारायण सम्प्रदाय के आचार्य स्वामी भगवदांचार्य जी ने गाँधी जी के जीवन का कथानक लेकर तीन दीर्घ काव्य लिखे हैं- भारतपरिजातम्, परिजातापहारः, और पारिजातसौरभम्।[२२] कपडवणज के नरोत्तम मोती लाल शास्त्री ने भी गाँध्री जी की जीवनी के ऊपर एक सुदीर्घ काव्य की रचना की है ।

एक कवि विशेष का परिचय इस स्थान में करना आवश्यक है । श्री जगदीशचन्द्र आचार्य का जन्म हलवद (सौराष्ट्र) में १९११ में हुआ । इनका शालेय अभ्यास राजकोट में हुआ । तत्पश्चात् वे नौकरी के सिलसिले में जोधपुर गये और वहाँ स्थिर हुए । नौकरी के साथ इन्होंने संस्कृत विषय लेकर एम0 ए0 भी तेजस्विता से किया । इनकी दीर्घ रचनाएँ स्वातन्त्र्य पूर्व और पश्चात् प्रकाशित हैं । इनकी कई काव्यरचनाएँ हैं- पद्यपरागः, स्तोत्ररत्नसमुच्चयः, संगीतलहरी, ऋतुविलासः, मन्दाकिनीमाधुरी, सुधन्वाख्यानम्, अमरभारती, प्रभापञ्चदशी, गोविन्दगीताञ्जलिः, उपेन्द्रनक्षत्रम् इत्यादि । इनकी काव्य रचना 'वासुदेवचरितम्' (१९८३) को राजस्थान सरकार ने माघ पुरस्कार से पुरस्कृत किया । इनकी एक गद्य कथा 'मकरन्दिका' को उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी का बाणभट्ट पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है ।

इन सभी कवियों में मेरे विचार से, संस्कृत काव्य परंपरा की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट कवि हैं हर्षदेव माधव । संस्कृत काव्य रचना की सम्पूर्ण परम्परा को हठात् मोड़ने का प्रबल प्रयास हर्षदेव की कविता में हैं । हर्षदेव युवा कवि हैं, गुजराती में भी काव्य रचना करते हैं और आधुनिक विश्व कविता के प्रवाहों से परिचय बनाये रखते हैं। इस लिए उनकी गुजराती और संस्कृत दोनों कविताओं में आधुनिकता के सभी लक्षण प्रबलता से उभरते हैं । और संस्कृत में इस प्रकार की रचनाएँ करने वाला यह कदाचित् अकेला कवि है ।

हर्षदेव ने केवल भाषा के सिवा परंपरा का कुछ भी नहीं रक्खा । इसकी कविता के विषय, काव्यरूप, बिम्ब, शब्दचयन सभी में नवीनता, प्रत्यग्रता, आधुनिकता है । इनका एकमात्र काव्य संग्रह प्रसिद्ध हुआ है 'रथ्यासु जम्बूवर्णानां शिराणाम्'[२३] । शीर्षक

में भी नावीन्य है । शिराओं के लिये गलियों का बिम्ब और जम्बूं वर्ण से पके हुए रक्त का ध्वनन विषादभाव की व्यंजना करते हैं । संग्रह की कोई भी कविता पारम्परिक वर्णबद्ध या मात्राबद्ध छन्द में नहीं है । काव्य के स्वरूप भी परंपरा के नहीं । स्वरूप की दृष्टि से ये काव्य चार प्रकार के हैं- अछान्दस, गझल, गीत और बिम्बकाव्य । अछांदस और बिम्ब काव्यों में बिम्बविधान का नावीन्य अत्यंत चमत्कारक और आकर्षक है-

-सिकतानां नूपुरं/नदति शङ्खोदरे ।

-तर्तुमिच्छतां मनुष्याणां/वासना घनीभूत्वा/भवति द्वीपः ।।

-समुद्राख्यतन्तुनाभस्य/लालाजले बद्धोऽयं द्वीपः कीटवत्/

कदाचित्/जालरेखायाश्छविः सिकतासु दृश्यते ।।

विविध भौगोलिक स्थानों के आलेखन वाली कुछ कविताएँ कुछ भौगोलिक सामग्री से उन स्थानों के विशिष्ट 'मूड' का अनुभव कराने में भी सफल होती हैं । 'मिस्र देशे' काव्य की कुछ पंक्तियाँ देखें-

सुल्तानहसनमस्जिदात् प्रसृतो निमाजस्वरः ।

स्फिंक्साकृतिः पुनर्जागृता स्वकेसरपुच्छं चालयन्ती ।

पिरामीडवायुरुत्थितः सिकतानां तन्तुनाभजालेभ्यः ।

दीपशिखा समी राज्ञी नेफरतरी ।

ऐसी स्थल कविताओं का एक गुच्छ है- 'टैम्सनदी', 'चेरापुञ्जी', 'कालीघाटे' इत्यादि ।

यह कविता निर्देश (allusions) में भी समृद्ध है । यह छोटी कविता देखें-

सूचिरन्ध्राद् उष्ट्रोऽपि

निर्गच्छेदिति बाइबिलवचनं

श्रुत्वा मया दृष्टं

तदा

उष्ट्रः सूचिरन्ध्रान्

मम नेत्रयोः प्रविष्टः ।।

इस प्रकार की allusive रचना रीति नें संस्कृत कविता में विश्व सन्दर्भ भर दिया है । चौपाई, ट्यूबलाइट, क्रिसेन्थेमम, झीब्रा, हम्बेला, उग्वीसु, मस्जिद, कब्र और ऐसे कई शब्द जो इन कविताओं में प्रवेश पा चुके हैं, इस विश्व सन्दर्भ के सूचक और

निदर्शक हैं । विश्वसंस्कृति की कितनी सामग्री का सस्कृत शब्द चयन में सरल और निर्विरोध समावेश हो गया है ! संस्कृत भाषा में एक नये प्रकार का लचीलापन आया है, एक नयी अर्थसमृद्ध निर्मलता आयी है । आधुनिक कविता के ये लक्षण संस्कृत काव्य परंपरा में बिलकुल नये, ताजा हैं । इन कविताओं में जो भाव और निरूपण की आधुनिक संवेदनशीलता प्रकट होती है, वही समकालिक संस्कृत कविता का विशिष्ट लक्षण है ।

---

(यह सर्वेक्षण प्रथमतः डॉ0 हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर (म0 प्र0) के संस्कृत विभाग द्वारा 'अर्वाचीन संस्कृत साहित्य' विषय पर आयोजित परिसंवाद (५-९ जनवरी १९९०) के लिये तैयार किया गया । तत्पश्चात् भी इसमें संशोधन किये गये हैं । इसे तैयार करने में प्रा0 उदयन शुक्ल, आ0 जयानन्द भाई दवे, डा0 शान्ति कुमार पंड्या, प्रा0 सुरेश ज0 दवे, प्रा0 वासुदेव पाठक, डॉ0 अजित ठाकोर, प्रा0 भगवतीप्रसाद पंड्या, डॉ0 जयदेव जानी आदि से सहायता प्राप्त हुई है । इनके प्रति ऋणस्वीकार और धन्यवाद प्रकट करता हूँ ।)

१. **अभिनवज्योतिर्धरा :-** ले० आचार्य भाईशंकर पुरोहित, प्र० भारतीय विद्या भवन, बम्बई, प्रथमावृत्ति, १९८८.

२. **संस्कृतमण्डलगानानि-** सं० कंचनलाल हीरालाल पारेख, प्र० संस्कृत विद्वत्सभा, बड़ौदा. तृतीयावृत्ति. १९८३.

३. **गरबासंग्रह-** ले० वासुदेव पाठक (४० गुजराती और २२ संस्कृत गरबाओं का संग्रह) प्र० श्री पुस्तक मंदिर, सिलक मार्ग, अहमदाबाद प्रथमावृत्ति १९८६.

४. **विषमपरिणयम्-** ले० (स्व०) गजेन्द्रशंकर पंड्या, प्र० स्वयं, आमलीरान, सूरत, प्रथमावृत्ति १९३२.

५. स्व० गजेन्द्रशंकर पंड्या के विषय में देखें (१) **Sanskrit Prahasanas** by Prof. Chitra Shukla, Vallabh Vidya Nagar, 1987 (२) 'गजेन्द्रशंकर पंड्यानां संस्कृत नाटकों' (एम्० फिल्० का शोधप्रबन्ध, गुजराती में) ले० कु० नीना भावनगरी, दक्षिण गुजरात युनिवर्सिटी, सूरत (३) 'Some Twentieth Century Sanskrit works From Surat' by R. I. Nanavati in **Bulletin of Chunilal Gandhi Vidyabhawan.** Surat, No. 20-21, 1977

६. **संवादसंग्रहः-** ले० गिरजाशंकर नाथजी द्विवेदी, प्र० संस्कृत पाठशाला, रायपुर, अहमदाबाद. प्रथमावृत्ति १९५०.

७. दोनों के प्रकाशक, बृहद् गुजरात संस्कृत परिषद्, अहमदाबाद.

८. दोनों के प्रकाशक, श्रीमती प्रभावती भट्ट (६६९, पारिजात, आनंद नगर) भावनगर-५.

९. **छायाशाकुन्तलम्-** ले० जीवनलाल परीख, सं० राजेन्द्र नानावटी, प्र० संस्कृत सेवा समीति, अहमदाबाद. द्वितीयावृत्ति १९८६.

१०. **रसबोधः-** ले० वासुदेव पाठक, प्र० पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद. प्रथमावृत्ति १९८७.

११. **सुषमा-** ले० गौरीप्रसाद झाला, सं० राजेन्द्र नाणावटी, प्र० झाला स्मारक समिति, १९३, राजलक्ष्मी सो0, जूना पादरा रोड, बडौदा ३९००१५ प्रथमावृत्ति १९८१.

१२. **रंगहृदयम्-** ले० सन्त श्री रंग अवधूत, प्र० अवधूत साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, नारेश्वर (जि० बडौदा) तृतीयावृत्ति १९७९.

१३. **रंगप्रशस्तिः-** ले० काशीशंकर, अग्निहोत्री, प्र० अमृतलाल मोदी, मोदी सांथ, नडियाद. प्रथमावृत्ति १९५३.

१४. **श्रीरंगगुणगरिमा-** सं० अरुणोदय जानी, प्र० ऊपर के समान, प्रथमावृत्ति सं० २०१७.

१५. **सद्गुरुश्रीकबीरचरितम्-** ले0 स्वामी श्री, ब्रह्मलीनमुनि, प्र0 कबीर मन्दिर दालजिया महोल्लो, महीधरपुरा, सूरत प्रथमावृत्ति १९६०.

१६. **पूर्णाहरी -** ले0 रसिकलाल पटेल, प्र0 वही , एस0 बी0 गार्डा कालेज, नवसारी, प्रथमावृत्ति १९७८.

१७. **उपमेशशतकम्-** ले0 भूपेन्द्र वी0 देव, प्र0 वही, हवाडिया चकला , सूरत प्रथमावृत्ति १९७८.

१८. **भारतराष्ट्रीयपुराणम्-** (दो खंड)- ले0 विद्वान कस्तूरिरंगाचार्य, प्र0 वही स्वामीनारायण संस्कृत पाठशाला भुज प्रथमावृत्ति १९८९.

१९. **सेतुबन्धः-** अनु0 डॉ0 जशवन्ती दवे, बम्बई, प्रथमावृत्ति, १९८२.

२0. **नूतनगीताञ्जलिः-** ले0 घनश्याम त्रिवेदी, प्र0 बृहद गुजरात संस्कृत परिषद् अमदाबाद प्रथमावृत्ति १९८८.

२१. **संस्कृतकाव्यप्रतिभाः-** सं0 डॉ0 एन0 एम0 कंसारा, प्र0 प्रि0 वी0 जे0 त्रिवेदी, गुजरात कालेज अमदाबाद

२२. **भारतपारिजातम्, पारिजातपहार पारिजात सौरभम्-** ले0 स्वामी भगवदाचार्यजी, प्र0 रावजीभाई मेघजीभाई मोम्बासा (अफ्रीका)/ रोहित मेहता, थियोसोफिकल सोसायटी, वाराणासी १९६९.

२३. **रथ्यासु जम्बूवर्णानां शिराणान्:-** ले0 हर्षदेव माधव, प्र0 संस्कृत सेवा समिति, L-111 'वालम,' स्वातंत्र्य सेनानी नगर, अमदाबाद-१३ प्रथमावृत्ति १९८५.

गतवर्ष इनका एक और काव्यसंग्रह प्रकाशित हुआ है।

**अलकनन्दाः-** प्र0 पार्श्व प्रकाशन, अमदाबाद - १. १९९०.

# काशी की संस्कृत-कवि-गोष्ठियाँ

डॉ0 सूर्यप्रकाश व्यास

काशी भारतीय संस्कृति की प्रतिनिधिभूता नगरी है। साधारण पाठशाला से लेकर उच्चतम शिक्षास्तर की संस्कृतसेवी संस्थाओं के सतत बाहुल्य के कारण यह नगरी संस्कृत के उद्‌भट विद्वानों व संस्कृतानुरागियों का सदा से आश्रय-स्थल रही है। एक ओर गौरवशाली सांस्कृतिक परम्परा तो दूसरी ओर संस्कृतभाषा में व्यवहाररत विपुल समाज, एक ओर हृदय को अलौकिक भावों से भर देने वाली भूतभावन भगवान् विश्वनाथ की शाश्वत प्रेरणा तो दूसरी ओर गंगा की लहरों से फूटनेवाला नितनूतन जीवन-संगीत, एक ओर शास्त्रार्थों, शास्त्राभ्यासों, सूत्रों व मन्त्रोच्चारों का गम्भीर निनाद तो दूसरी ओर विभिन्न सम्प्रदायों, धार्मिक विश्वासों व परम्पराओं का वैविध्यपूर्ण व्यावहारिक जीवन-दर्शन। कुल मिलाकर वे समस्त उपादान सदा सुलभ जो कवि हृदय को तरंगित करने के लिए आवश्यक हैं किन्तु फिर भी केसर और कविता की भूमि काश्मीर की तरह काशी कविता के लिये उतनी प्रख्यात नहीं है जितनी शास्त्र के लिये प्रसिद्ध है। काशी का संस्कृत मानस इस पृष्ठभूमि का शास्त्रीय उपयोग करने में अधिक रमा है और इस गांगेय वातावरण में काव्य की हिलोरों का आनन्द वह अपेक्षाकृत कम ही ले पाया है। यहाँ का धार्मिक वैविध्य उसके विचार-प्रवाह को दर्शन की ओर उन्मुख करता रहा है। भगवान् विश्वनाथ की प्रेरणा को उसने स्तोत्ररचनाकौशल में सार्थक माना है और गंगा का सुरम्य तट उसे कविता से अधिक वेदपाठ व कर्मकाण्ड के लिए अनूकूल प्रतीत हुआ है। वेद, व्याकरण, धर्म, दर्शन, तंत्र, ज्योतिष आदि शास्त्रों के संस्कारों से सुसंस्कृत संस्कृत के पण्डित ने जब काव्यसृजन की कामना की तो उसके हृदय से स्तुति, स्तोत्र, आदि का अजस्र प्रवाह तो सहज ही प्रवाहित हुआ किंतु विशुद्ध कविता को वह अपने जीवन का पर्याय न बना सका। शास्त्रों में निष्णात यही मानस जब काव्यरचना में प्रवृत हुआ, कवि-गोष्ठियों में सक्रिय और मुखरित हुआ तो उसकी कविता पर शास्त्र-संस्कार हावी रहे जिसके फलस्वरूप यहाँ की कवि-गोष्ठी कभी-कभी विद्वद्‌गोष्ठी का पर्याय बन गई। किंतु समय के साथ परिवर्तन हुआ और विगत ४० वर्षों में काशी की काव्यपरम्परा में कुछ प्रयोग भी हुए।

काशी में संस्कृत कवि गोष्ठियाँ आयोजित करने वाली छोटी-बड़ी अनेक संस्थाएँ हैं जिनमें प्रमुख हैं :- काशी पण्डितसभा, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, संस्कृत-विद्या-धर्म-विज्ञान संकाय, सांगवेद विद्यालय, शारदा भवन, संन्यासी संस्कृत महाविद्यालय, गोयनका विद्यालय, मारवाड़ी विद्यालय, रणबीर संस्कृत विद्यालय,

वाग्योगचेतनापीठम्, आकाशवाणी इत्यादि । इनमें से कुछ प्रासंगिक गोष्ठियाँ आयोजित करती रही हैं तथा कुछ संस्थाओं ने अपने नियमित उत्सवों के अंग के रूप में इसके आयोजन की परम्परा को स्थापित किया है । कुछ संस्थाएँ पूर्ववत् उत्साहशील हैं तो कुछ के आयोजनों में शैथिल्य और अनियमितता का प्रवेश हो गया है ।

काशी की पण्डितसभा एक ऐसी प्राचीनतम संस्था है जिसमें शास्त्रार्थ, कविगोष्ठियों आदि के आयोजन की परम्परा लगभग सौ वर्ष पुरानी है । राजकीय संस्कृत महाविद्यालय ने सन् १९४६ में अपनी स्थापना के १५० वर्ष पूरे होने के उपलक्ष में भव्य समारोह-क्रम में, अन्य कार्यक्रमों के साथ अखिल भारतीय संस्कृत कवि सम्मेलन का आयोजन भी किया । इसमें प्रौढ़ कवियों की स्वतंत्र कवि गोष्ठी तथा युवा कवियों की स्पर्द्धा-गोष्ठी का आयोजन हुआ । आचार्य श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल, पं0 आनन्द झा, पं0 बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते आदि कवियों ने इसमें काव्य पाठ किया था । इसी महाविद्यालय को जब १९५८ में विश्वविद्यालय का स्तर प्रदान किया गया तब तत्कालीन प्रशासक पं0 आदित्यनाथ झा के विशेष प्रोत्साहन से पं0, सोमनाथ सिग्दयाल की अध्यक्षता में एक विशाल अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन का आयोजन हुआ । विभिन्न प्रान्तों व नगरों से आये कवियों की पर्याप्त संख्या व उत्साह को देखकर संस्कृतानुरागी समाज ने यह अनुभव किया कि संस्कृत कवि किसी व्यवस्थित मंच, अवसर व श्रोतृसमूह के लिये कितना समुत्सुक है । इस अभूतपूर्व व विशाल सम्मेलन में एक ओर उत्साही कविकुल अधिकाधिक काव्य-पाठ प्रस्तुत करने के लिये आकुल था और समयाभाव के कारण सन्तुष्ट नहीं हो पा रहा था तथा दूसरी ओर श्रोताओ में भी अतृप्ति का भाव था कि इतने यशस्वी कवियों के काव्यरस का एक साथ कैसे आनन्द लें । इस तरह यह सफल किन्तु फिर भी असफल कवि-सम्मेलन तो अतीत की स्मृति बन गया किंतु काशी के कवि-समाज में कुछ प्रश्न छोड़ गया जिनका उत्तर बाद में ''कवि भारती'' के रूप में सामने आया ।

काशी का सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय ऐसी अग्रणी संस्था है जो वर्ष में प्रायः एक या दो बार यथावसर कविगोष्ठियों का आयोजन अवश्य करती है । ये गोष्ठियाँ संस्कृतदिवस, विश्वविद्यालय स्थापनोत्सव, अन्य प्रासंगिक उत्सवों, संगोष्ठी-सम्मेलनों के अवसर पर तथा विश्वविद्यालय में किसी विशिष्ट अतिथि के आगमन पर आयोजित होती हैं । प्रसंग व सुविधानुसार इनका स्वरूप कभी अखिल भारतीय स्तर का, कभी प्रान्तीय अथवा स्थानीय स्तर का रहता है । इस विश्वविद्यालय में सन् १९७६ में पं0 बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते की अध्यक्षता में एक अविस्मरणीय बृहद् कवि गोष्ठी का आयोजन हुआ था जिसमें बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश आदि राज्यों के अनेक प्रख्यात कवियों ने भाग लिया था । सायंकाल साढ़े सात बजे से प्रारम्भ हुई यह गोष्ठी प्रातः काल ३ बजे तक अनवरत रूप से चली, इसी से इसकी सफलता

का अनुमान किया जा सकता है । इस संस्था में आयोजित होने वाली कविगोष्ठियाँ गम्भीर, प्राचीन परम्परा की अनुगामिनी और प्रौढ़ स्तर की होती हैं जिनमें अभिनव कवियों को प्रोत्साहन व प्रशंसा के अवसर सामान्यतया सुलभ नहीं होते हैं ।

नगर की प्राचीन व प्रतिष्ठित संस्था सांगवेद विद्यालय लगभग ६५ वर्षों से गणेशोत्सव के अन्तर्गत नवयुवकों की काव्यस्पर्धाएँ आयोजित करती रही है । इसी प्रकार शारदा भवन नामक संस्था भी श्री गणेशोत्सव के माध्यम से लगभग ६० वर्षों से कविगोष्ठियों का आयोंजन करती रही है । इन दोनों संस्थाओं द्वारा प्रदत्त अवसर व पुरस्कार से काशी के अनेक नव कवियों को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है तथा कालान्तर में वे प्रतिष्ठित कवियों के रूप में विख्यात हुए हैं ।

विभिन्न संस्थाओं द्वारा आयोजित होने वाली इन प्रासंगिक गोष्ठियों की अपनी परम्पराएँ व सीमाएँ थीं :-

(अ) इन गोष्ठियों का आयोजन अनियमित था ।

(ब) अन्य कार्यक्रमों के अंग के रूप में एक आकर्षण कवि-गोष्ठी का भी जोड़ दिया जाता था जिससे कवि गोष्ठी के आयोजन की स्वतंत्रता तथा महत्ता प्रभावित होती थी ।

(स) समस्या-पूर्ति इन गोष्ठियों की परम्परागत शैली थी ।

(द) ऐसी गोष्ठियों में काव्यरचना-पटु कवि ही अधिक काव्यपाठ करते थे । इनका गंभीर शास्त्रीय वातावरण नये उभरते कवियों के काव्यपाठ के लिये विशेष प्रोत्साहनपूर्ण नहीं था ।

(य) काव्यकर्म में सतत प्रवृत्त कविवर्ग इन प्रासंगिक कविगोष्ठियों के आयोजन व शैली से सन्तुष्ट नहीं था ।

इन उपर्युक्त सीमाओं और समस्याओं से संघर्ष कर रहे काशी के उत्साही कवि-समाज ने पहले तो कुछ समय तक एक दूसरे के घर दस्तक देकर और उसे अपनी नवप्रसूत रचना के आनन्द में सहभागी बनाकर अपना चित्त शान्त करना प्रारम्भ किया । किंतु बाद में यह सोचा गया कि निश्चित कवि-मित्र के घर निश्चित समय पर कविमण्डली जुटे और अपना-अपना काव्यपाठ प्रस्तुत करे । यह प्रयोग आशातीत रूप में सफल रहा तथा इसकी सफलता ने कवि-मित्रों में एक काव्य-संस्था की स्थापना के संकल्प को जगाया और इस तरह सन् १९६७ में ''कविभारती'' नामक एक ऐसी कविसंस्था का जन्म हुआ जिसने काशी के संस्कृत कवियों की अनेक व्यावहारिक समस्याओं का समाधान करने का सफल प्रयास किया । यह संस्था कवियों की अपनी संस्था थी जिसका उद्देश्य था वर्तमान कवियों की निर्माणशक्ति को प्रोत्साहन देना, नवीन कवियों को काव्याभ्यास के लिये प्रवृत्त करना तथा गोष्ठियों में पठित काव्यों का समय-समय पर प्रकाशन व मुद्रण करना । इस संस्था की प्रथम

कार्यकारिणी में पं0 रामस्वरूप पाठक अध्यक्ष, पं0 रामकुबेर मालवीय उपाध्यक्ष, पं0 शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी मंत्री, पं0 लीलाधर पन्त उपमन्त्री, पं0 दरबारी लाल कोठिया कोषाध्यक्ष तथा पं0 बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते, डॉ0 प्रेमलता शर्मा, पं0 कृष्णमोहन ठाकुर, पं0 रतिनाथ झा, पं0 कपिल देव त्रिपाठी ''जटिल'' और श्रीमती कमला चुनेकर कार्यकारिणी के सदस्य चुने गये । ६ फरवरी, १९६८ को पंजीकृत हुई इस संस्था ने फाल्गुन शुक्ल पंचमी संवत् २०२३ को डॉ0 उमेश मिश्र की अध्यक्षता में अपना प्रथम वार्षिक सम्मेलन सोत्साह मनाया । इसके बाद आगामी कुछ वर्षों तक यह संस्था पं0 बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते, पं0 रामनारायण दत्त पाण्डेय, पं0 रामचन्द्र मालवीय, पं0 पट्टाभिराम शास्त्री, डॉ0 पद्मा मिश्र आदि की क्रमिक अध्यक्षता में सफलतापूर्वक संचालित होती रही और प्रियव्रत शर्मा, पं0 वासुदेव श्रीधर सोहनी, पं0 महेश प्रसाद,डॉ0 चन्द्रधर शर्मा, पं0 आनन्द झा आदि की अध्यक्षीय साक्षी में क्रमशः अपने वार्षिकोत्सवों का आयोजन करती रही ।

लगभग २५-३० कवि - सदस्यों की इस संस्था की कार्यपद्धति सरल व व्यावहारिक थी । भिन्न-भिन्न कवि-मित्रों के घर, आरम्भ में १५ दिनों में एक बार तथा बाद में माह में एक बार शाम को गोष्ठी प्रारम्भ होती और देर रात तक चलती। काशी से बाहर के कवि भी इसके निमन्त्रण पत्र के उत्तर में डाक द्वारा अपनी रचनाएँ पाठ हेतु भेजते थे । काव्यपाठ के साथ उसकी सहृदय समालोचना का अवसर भी इसमें सुलभ था । आरम्भ में समस्यापूर्ति की शैली को ही यहाँ भी प्रश्रय दिया गया किन्तु धीरे-धीरे यह क्रम प्रतीक पूर्ति में परिवर्तित हो गया । इन गोष्ठियों में ऋतु, प्राकृतिक वर्णन, प्रासंगिक समसामयिक ज्वलन्त समस्याओं आदि पर विविध रचनाएँ प्रस्तुत की गयीं ।

सभी प्रकार के प्रतिबन्धों और औपचारिकताओं से मुक्त इन गोष्ठियों में नवीन-पुरातन, प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध सभी कवि उन्मुक्त भाव से अपना काव्य प्रस्तुत करते थे । इन गोष्ठियों की उत्साहवर्धक सफलता ने वाराणसी के हिन्दी कवियों को भी अपनी ओर आकृष्ट किया जिसके फलस्वरूप कुछ गोष्ठियाँ संस्कृत-हिन्दी में मिले-जुले रूप में भी हुईं । कवि-भारती की गोष्ठियों में सभी स्तर के कवि, श्रोता व छात्र पूरे उत्साह से भाग लेते थे । इसे काशी के लगभग सभी प्रतिष्ठित व प्रामाणिक विद्वानों, साहित्यकारों और संस्कृतानुरागियों का आशीर्वाद, मार्गदर्शन व सहयोग प्राप्त था । इसके आयोजनों में भाग लेकर अनेक नये कवि काव्य-लेखन में प्रवृत्त हुए, उनका अभ्यास बढ़ा और आज वे नगर व देश के प्रतिष्ठित कवियों के रूप में परिगणित होते हैं । इन्हीं गोष्ठियों के माध्यम से कुछ महिला कवियों ने भी अपने काव्यकौशल को समृद्ध किया । इन आयोजनों के उत्साहवर्धक परिणामों से प्रोत्साहित होकर पं0 रामकुबेर मालवीय ने अपने आवास पर काव्यपाठशाला की

स्थापना का भी प्रयास किया। किन्तु कतिपय व्यावहारिक कारणों से यह प्रयोग उल्लेखनीय सफलता नहीं प्राप्त कर सका।

कवि-भारती के आयोजन आडम्बरहीन व सादे होते थे। इसलिए इसके कवि-सदस्यों के समक्ष आर्थिक पक्ष कभी समस्यापूर्ति के लिये प्रस्तुत नहीं हुआ। इस संस्था ने सर्वप्रथम ''ललिता'' नामक मासिक पत्रिका से प्रकाशन-कार्य का शुभारम्भ किया। ''ललिता'' में विशिष्ट कवियों की विशिष्ट रचनाओं का ही प्रकाशन होता था किंतु कुछ अंकों के प्रकाशन के बाद यह निश्चय किया गया कि संस्था प्रतिवर्ष अपना वार्षिकोत्सव आयोजित करे और उसी अवसर पर एक काव्य-संग्रह का प्रकाशन हो। ''कविभारती-कुसुमांजलि'' की ६ वर्षों की प्रकाशित पुस्तिकाएँ इस निश्चय की क्रियान्विति थीं।

कविभारती की प्रेरणास्पद गोष्ठियाँ लगभग ८ वर्षों तक सोत्साह व सफलतापूर्वक संचालित होती रहीं किन्तु काशी की विशिष्ट विद्वत्प्रकृति में यह ऐतिहासिक प्रयोग शनैः-शनैः शैथिल्य और अनियमितता का ग्रास बनता गया। इसकी गतिविधियों को स्थगित करने के कारणों के बारे में कतिपय कवि-सदस्यों से वार्तालाप हुआ जिसका निष्कर्ष यह है :-

(अ) उत्साही कविसदस्य परिस्थितवश नगर से दूर अन्यत्र चले गये।

(ब) कतिपय सदस्यों की अंहकारी प्रवृत्ति ने इसकी उन्मुक्त गतिविधियों पर हावी होने का प्रयास किया जिसे अन्य कवियों ने उचित नहीं माना और अपना सक्रिय सहयोग स्थगित कर दिया।

(स) घर-घर आयोजित होने वाली गोष्ठियाँ कुछ कवियों को अपनी रुचि के प्रतिकूल प्रतीत हुई।

कविभारती के बाद पं0 रेवाप्रसाद द्विवेदी ने आन्वीक्षिकी नामक संस्था को स्थापित कर संचालित करने का प्रयास किया। इसमें काव्य पाठ के साथ उसकी समालोचना का प्रयोग प्रारम्भ हुआ किंतु काशी के कविसमुदाय में यह प्रयोग भी प्रतिष्ठा प्राप्त न कर सका।

संस्कृत कविता को पण्डितों की गम्भीर गोष्ठियों से मुक्त कराकर जन-जन तक पहुँचाने का एक विशिष्ट प्रयोग वाग्योगचेतनापीठम् (संस्थापक पं0 भागीरथ-प्रसाद त्रिपाठी ''वागीश'') विगत ६ वर्षों से सफलता पूर्वक कर रहा है। गंगा के जल में तैरती नौकाओं पर गंगा दशहरे के अन्य आकर्षक कार्यक्रमों के साथ संगीत, नृत्य की पृष्ठभूमि में एक आकर्षण संस्कृत कवि-गोष्ठी का भी इसमें जोड़ा गया है। यह संस्था अपने अन्य कार्यक्रमों में भी काव्य और संगीत के आकर्षक सामंजस्य का प्रयोग कर रही है। इस संस्था के ऐसे चर्चित कार्यक्रमों में प्रमुख हैं :-

गंगाकाव्यसंगीतिका, शिवकाव्यसंगीतिका, गुरुकाव्यसंगीतिका, गीताकाव्यसंगीतिका, सरस्वतीकाव्यसंगीतिका आदि ।

संस्कृत के ही माध्यम से अनेकानेक एवं विविध कार्यक्रम आयोजित करने वाला आकाशवाणी का स्थानीय केन्द्र भी विगत ४ वर्षों से मौलिक काव्य-पाठ की गोष्ठियों का आयोजन कर रहा है । इन काव्य-गोष्ठियों के द्वारा काशी के संस्कृत काव्य-जगत् को व्यवस्थित व नियमित मंच प्रदान करना, उसे प्रोत्साहन देना तथा राष्ट्रीय व सामाजिक सन्दर्भों में संस्कृत कवियों के भावों को जन-जन तक पहुँचाना आकाशवाणी का लक्ष्य रहा है ।

यह केन्द्र माह में एक बार १५ मिनट की लघु काव्य-गोष्ठी रखता है जिसमें प्रायः २ या ३ कवि ५-५ मिनट के लिये ऋतुविशेष या अन्य विषय पर अपनी मौलिक कविता का रसास्वादन श्रोताओं को कराते हैं । यही केन्द्र त्रैमासिक संस्कृत-पत्रिका कार्यक्रम के अन्तर्गत एक घंटे की संस्कृत काव्य-गोष्ठी भी नियमित रूप से आयोजित करता है जिसमें नगर एवं कभी-कभी निकट के क्षेत्रों से कवियों को काव्यपाठ के लिये आमन्त्रित किया जाता है । इस कार्यक्रम में सुनिश्चित विषय के अन्तर्गत ही कवि अपना काव्य प्रस्तुत करता है । विगत वर्षों में आयोजित ऐसी गोष्ठियों में इन्दिरा गांधी श्रद्धांजलि-गोष्ठी, कालिदास-जयन्ती कवि-गोष्ठी, परिवार कल्याण गोष्ठी, गंगा गोष्ठी, राष्ट्रीय एकता कवि-गोष्ठी आदि विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं । इनके अतिरिक्त यह केन्द्र १५ अगस्त, २६ जनवरी, गांधी जयन्ती, नेहरू जयन्ती आदि राष्ट्रीय पर्वों पर भी कभी-कभी काव्य गोष्ठियों का तथा कभी बालगीत कवि गोष्ठियों का आयोजन करता है ।

काशी की संस्कृत काव्य-गोष्ठियों में जहाँ तक शैली का प्रश्न है, परम्परागत शैली से हटकर नये विषयों पर नये छन्दों में अथवा छन्दविहीन शैली में अपना कथ्य प्रस्तुत करने की अकुलाहट काशी के नवसंस्कृतकवियों में है और इसके प्रमाण भी उसने कुछ काव्य गोष्ठियों में दिये हैं किन्तु उनके प्रयोग सीमित हैं और परम्परा व वातावरण के कारण स्वयं इन कवियों की प्रकृति ऐसी बन गई है कि वे नई शैली की एक-दो रचनाएँ सुनाने के बाद जब तक परम्परागत शैली में भी अपने रचना कौशल का प्रदर्शन न कर लें तब तक उन्हें सन्तुष्टि नहीं मिलती । इसलिए चाहे-अनचाहे वे नवीन प्रयोग के आकर्षण में परम्परा से पूरी तरह कटकर कविता नहीं करना चाहते तथा ऐसे प्रयोगों में संस्कृत-काव्य का भविष्य भी उज्ज्वल नहीं देखते । नये कवियों का यह मध्यम मार्ग संस्कृत व काशी की सांस्कृतिक परम्परा को देखते हुए उचित व स्वाभाविक ही कहा जायेगा ।

काशी के संस्कृत काव्य-जगत् में यह सामर्थ्य आज भी विद्यमान है कि संक्षिप्त सूचना पर तत्काल २०-२५ कवि एकत्रित होकर अपनी मौलिक व आशु रचनाओं को तत्काल कविगोष्ठी में परिवर्तित कर सकते हैं जो संभवतया भारत में

अन्यत्र कठिन है ।

प्रेरणा के प्राकृतिक व आध्यात्मिक उपादानों की सुलभता, श्रीहर्ष, आचार्य जगन्नाथ, अप्पय दीक्षित, अम्बिकादत्त व्यास जैसे सुकवियों की समृद्ध परम्परा, संस्कृतज्ञों की पर्याप्त संख्या, काव्य-निर्माण की सामर्थ्य, रसिक श्रोतृसमूह, व्यवस्थित व नियमित मंच की आकुलता इत्यादि सभी दुर्लभ अनुकूलताओं के रहते हुए भी यदि 'कवि-भारती' जैसी आदर्श व अनुकरणीय संस्थाओं के प्रयोग बहुत दूर तक नहीं चल पाते हैं तो यह निष्कर्ष स्वीकार करने के लिये बाध्य होना पड़ता है कि काशी के कविमन की मानसिकता प्रासंगिक गोष्ठियों के ही अधिक अनुकूल है तथा यह कि काशी प्रयोग की नहीं, परम्परा की भूमि रही है और प्रस्तुत प्रसंग में आज भी वह वैसी ही है ।

## काशी की कवि-गोष्ठियों (१९९४७-१९८७) में काव्यपाठ करने प्रमुख कवि

१- सर्वश्री पं0 नारायण शास्त्री खिस्ते
२- पं0 महादेव शास्त्री
३- पं0 रामावतार शास्त्री
४- पं0 गौरीनाथ शास्त्री पाठक
५- पं0 बसन्त त्र्यम्बक शेवडे
६- पं0 बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते
७- पं0 पट्टाभिराम शास्त्री
८- पं0 वासुदेव द्विवेदी
९- पं0 रामकुबेर मालवीय
१०- पं0 प्रियव्रत शर्मा
११- पं0 रतिनाथ झा
१२- पं0 जगन्नाथप्रसाद पाठक
१३- पं0 रामप्रसाद त्रिपाठी
१४- पं0 रेवाप्रसाद द्विवेदी
१५- पं0 शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी
१६- पं0 कमलेशदत्त त्रिपाठी
१७- पं0 भोलाशंकर व्यास
१८- पं0 शिवजी उपाध्याय
१९- पं0 कपिलदेव पाण्डेय
२०- पं0 मनुजी भट्टाचार्य
२१- पं0 ज्योतिर्मित्र शास्त्री
२२-पं0 कृष्णमोहन ठाकुर
२३- पं0 कपिलदेव त्रिपाठी जटिल
२४- पं0 गजानन्द शास्त्री मुसलगाँवकर
२५- पं0 दरबारीलाल कोठिया
२६- पं0 लीलाधर पन्त
२७- पं0 रामस्वरूप पाठक
२८- पं0 देवी प्रसाद
२९- पं0 जयराम शास्त्री
३०- पं0 श्रीनारायण मिश्र
३१- पं0 गोपालचन्द्र मिश्र
३२- पं0 माहेश्वर झा

३३- पं0 रामचन्द्र पाण्डेय
३४- पं0 गोविन्द पाण्डेय
३५- पं0 चन्द्रबलि शर्मा
३६- पं0 धर्मपाल सिंह
३७- पं0 नरेश झा
३८- पं0 जनार्दन रटाटे
3९- पं0 रामनारायणदत्त पाण्डेय
४०- पं0 ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
४०- पं0 राजाराम शुक्ल
४२- पं0 रामायण द्विवेदी
४३- पं0 पद्मनाभ निराला
४४- पं0 रमाकान्त पाण्डेय
४५- पं0 भालचन्द्र पाण्डेय

## कवयित्री

४६- श्रीमती विमला मुसलगाँवकर
४७- डॉ0 प्रेमलता शर्मा
४८- श्रीमती कृष्णा बन्ध्योपाध्याय
४९- श्रीमती उर्मिला शर्मा
५०- श्रीमती भक्तिसुधा मुखोपाध्याय
५१-मृदुला चुनेकर
५२- श्रीमती कमला चुनेकर

# बिहारप्रदेशस्य विंशशताब्दीया नाट्यग्रन्थाः

डॉ0 रामाशीषपाण्डेयः

दृश्यकाव्यं दृश्यात्मकसौन्दर्योपेतं दर्शनप्रधानत्वात् श्रव्य-काव्यापेक्षयाऽधिकं रमणीयम्। काव्येषु नाटकं रम्यमिति कथनं यथार्थमेव। दृश्यकाव्येषु रूपकोपरूपकाणि प्राप्यन्ते । तत्र रूपस्यारोपत्वाद्रूपकमिति[१]। रूपस्यारोपे यान्यनुकरणान्याश्रयन्ते तान्याङ्गिकवाचिकाहार्यसात्त्विकानि प्रसिद्धानि[२] । रूपकेषु नाटकप्रकरणभाणव्यायोगसमवकारडिमांकेहामृग-वीथिप्रहसनानि विश्रुतानि दश रूपकाणि[३]। अनेनैवोपरूपकस्य नाटिका-प्रभृतयोऽष्टादश भेदाः प्रसिद्धाः । समग्ररूपकोपरूपकेषु नाटकस्य प्रथमोल्लेखाद् व्यवहारे रूपकोपरूपकभेदानां कृते प्रधानव्यपदेशान्नाटकमेव प्रयुक्तं दृश्यते । प्रकरणप्रहसननाटिकाप्रभृतिनाट्यभेदानां द्रष्टारोऽपि कथयन्ति सामान्येन नाटकस्य दर्शनं जातम्, यद्यपि नाट्यशास्त्रीयदृष्ट्या सर्वेषु पार्थक्यं दृश्यते । अवस्थानुकृतिर्नाट्यमिति वचनेन चतुर्विधानामवस्थानामनुकृतिर्नाट्येषु दृश्यते । नहि सर्वस्मिन्नाट्यभेदे सर्वाण्यनुकरणान्याश्रयन्ते । नाटकप्रकरणादिषु सर्वासामवस्थानामनुकरणं भवति परं प्रहसनभाणाङ्कादिनाट्यभेदेषु न्यूनाधिकावस्थानुकृता दृश्यते । सम्प्रति रेडियोरूपकस्याधिकः प्रचारो वर्तते। तत्र वाचिकानुकरणस्यैव प्राधान्यं भवति । वाचिकानुकरणे ध्वनेः प्रभावादभिनयस्यानन्दः सम्यक् प्राप्यते रेडियोरूपके । रूपकस्याङ्कभेदः रेडियोरूपकेणायामितो दृश्यते ।

विंशशताब्दौ समग्रे भारतवर्षे प्रभूतानि रूपकोपरूपकाणि रचितानि तत्र केरलस्थस्य ई0 पी0 भरत पिषारटी-महोदयस्य एकभारतनाटकम्[४], इलाहाबादस्थस्य डा0 'अभिराज' राजेन्द्रमिश्रस्य नाट्यपञ्चामृतम् (दास्यापनोदनम्, अर्जुनोर्वशीयम्, प्रतिनिर्यातनम्, समर्चितमृत्तिकम्, छलिताधमर्ण्यम्)[५] नाट्यपञ्चगव्यम् (कविसम्मेलनं, राधामाधवीयं,

फण्टूसचरितं,-नवरसप्रहसनं, कचाभिशापम्)[६] अकिञ्चनकाञ्चनम्, उत्तर-प्रदेशीयस्य भोजमणिशुक्लस्य कादम्बरीनाटकम्[७] डॉ0 आर0 वी0 शास्त्रिणो विक्रान्तभारतम्, डॉ0 रामकिशोरमिश्रस्याभिशप्त-दशरथमङ्गुष्ठदानञ्च[८], दिल्लीस्थस्य डा0 रमाकान्त शुक्लस्य १९८३ ई0 वर्षे प्रकाशितं पुरश्चरणकमलम्, १९८४ ई0 वर्षे प्रकाशितं पण्डित-राजीयम्, १९८५ ई0 वर्षे प्रकाशितमभिशापं तथा १९८९ ई0 वर्षे प्रकाशितम् आलोकिनी, दाराशिकोहीयं[९], चक्रानुसरणं[१०] चक्र-व्यूहभङ्गञ्च[११], डॉ0 रमेशचन्द्र शुक्लस्याभिनवहनुमन्नाटकम्, डॅा0 सी0 आर0 स्वामिनाथस्य १९८० वर्षे प्रकाशितं कर्णभूषणम्[१२] उत्तरप्रदेशी-यस्य डॉ0 भागीरथप्रसादत्रिपाठिनः कृषकाणां नागपाशः, मिथिलेश कुमारी मिश्राया आम्रपाली, राजस्थानस्थस्य विद्याधरशास्त्रिणः पूर्णानन्दं, कलिपलायनं, विक्रमाभ्युदयम्, डॉ0 श्रीधरभास्करवर्णेकरस्य विवेकानन्द-विजयं शिवराजाभिषेकञ्च दक्षिणभारतीयस्य वेङ्कटराघवन्-महोदयस्य कामशुद्धिः, प्रभृतीन्येनेकानि रूपकाणि तथा च विभिन्नप्रदेशेषु रचितानि नानाविधानि रूपकोपरूपकाणि संस्कृत-नाट्य-क्षेत्रे प्रसिद्धानि सन्ति। समग्रभारते विंशशताब्दौ रचितानां शताधिकानां नाट्यग्रन्थानां विवेचनं शोधपत्रेऽस्मिन्नसंभवमिति मत्वा बिहारप्रदेशीया नाट्यग्रन्था एवात्र विवेचिता भविष्यन्ति।

बिहारप्रदेशः सरस्वत्या आत्मप्रदेशः। बाणभट्ट-काव्यानुसारं सरस्वत्या अवतरणं बिहार-प्रदेशे अभूत्। ब्रह्मलोके दुर्वासा-ऋषिणा शप्ता सरस्वती भारतस्य नान्यस्मिन् प्रदेशेऽपितु बिहार-प्रदेशे निवासं कृत्वा विद्याक्षेत्रे विहारस्यावदानं प्रकाशितवती[१३]। नालन्दा विश्वविद्यालयो विक्रमशिलाविश्वविद्यालयोऽनेकानि विद्याकेन्द्राणि च प्राचीनकालेऽपि विहारस्य विद्याक्षेत्रत्वं सूचयन्ति। जनकयाज्ञवल्क्यादयो ब्रह्मविदः बाणभट्टमयूरादयः कवयश्चाणक्यादयो नीतिज्ञाश्चार्थशास्त्रकारा विहार-प्रदेशस्य शोभां वर्द्धयन्तो भारतस्यास्य गौरवभूता वर्तन्ते। पाटलिपुत्रस्य पाण्डित्यपरम्परां दृष्ट्वा राजशेखरः स्वीयकाव्यमीमांसायां प्रकाशयति-'श्रूयते च पाटलिपुत्रे शास्त्रकारपरीक्षा। अत्रोपवर्षवर्षाविह पाणिनिपिङ्गलाविह व्याडिः। वररुचिपतञ्जली इह परीक्षिताः ख्याति-

मुपजग्मुः[१४]।' अनेन विहारप्रदेशे विद्याया अवदानं स्पष्टम्।

काव्यस्य विविधक्षेत्रेषु विहार-प्रदेशस्य महत्त्वपूर्णं स्थानं वर्तते। सार्ववर्णिकस्य नाटकस्य रूपकोपरूपकस्य च प्रणयनमत्र प्रभूतमभूत्। विंशशताब्दावपि विहार-प्रदेशे समग्रकाव्यविधायाः प्रणयनं जातम्। शोधपत्रेऽस्मिन् विंशशताब्दौ रचितानां विहारप्रदेशीयरूपकोपरूपकाणा मेव विमर्शनं प्रस्तूयते-

## पाणिनीयनाटकम्-

अस्य नाटकस्य प्रणेता पं0 गोपाल शास्त्री दर्शनकेशरी महोदयो वर्तते। पं0 दर्शनकेशरी मूलतो विहारनिवासी। महोदयस्यास्य विरचितस्य नारीजागरणनाटकस्यान्तिमांशे समुद्धृतमस्ति- 'इति श्रीक्षेमधरिणा कौसल्यात्मजेन विहाराभिजनेन काशीवास्तव्येन म0 म0 पण्डितराज-श्रीगोपाल - शास्त्रिणा दर्शनकेशरिणा व्याख्यानवाग्मिना विरचितं नारीजागरणं नाटकमवसितम्'[१५]। अनेन स्पष्टं भवति यद् दर्शनकेशरी गोपालशास्त्रिमहाभागो विहार-प्रदेशस्य नाटककारो विद्यते। डा0 रामजी उपाध्यायेन गोपालशास्त्री काशीवासीति कथितम्। स्थानादिसम्बद्धस्तस्य परिचयो नाधिको दत्तः[१६]। शास्त्रिमहोदयः १९२१ ई0 वर्षतः १९४७ ई0 वर्षपर्यन्तं काशीविद्यापीठे दर्शनशास्त्रस्याचार्य आसीत्। वृद्धावस्थायामपि चमोली-मण्डलान्तर्गत- ज्योतिर्मठ-बदरीनाथ वेदवेदाङ्ग-महाविद्यालयस्य प्रधानाचार्यत्वमङ्गीचकार। साहित्यव्याकरणाचार्यो न्यायतीर्थः पण्डित-राजदर्शनकेशरी त्रीणि नाटकानि रचितवान्- पाणिनीयनाटकं, नारीजागरणनाटकं गोमहिमाभिनयश्च।

पाणिनीयनाटकस्याधारस्त्रिमुनिव्याकरणं वर्तते[१७]। महर्षेः पाणिनेर्वृत्तमाधारीकृत्य रचितेऽस्मिन्नाटके व्याकरणशास्त्रस्य संक्षिप्तेतिहासः प्रदर्शितः। अष्टाध्यायीसूत्राणां ज्ञानमनेन जायते। अस्य भोजराजदृश्ये स्त्रीणां वैदुष्यमभिनीतमस्ति। प्रकाशनमस्य चौखम्बा- विद्याभवन-वाराणसीतः जातम्[१८]।

## नारीजागरणनाटकम्-

अस्य प्रकाशनं चौखम्बा विद्याभवन वाराणसीतः १९६६ ई0 वर्षे

जातम् । अत्राभिनयात्मको नारीमहिमा दृश्यते । सप्ताङ्केऽस्मिन्नाटके प्रातः स्मरणीया नार्यो विशेषरूपेण चित्रिताः । भाषाऽस्य सरला सरसा चेति । पद्यमेकं यथा-

न नारी नरैर्निन्दनीया कदापि
दयादानदाक्षिण्यवात्सल्यचित्ता ।
पुमांस्तु स्त्रिया शिष्यते पाणिनीये
नये येन सा पुंसि लीना न भिन्ना ।।[१९]

अस्मिन्नाटकेऽन्येषां ग्रन्थानामपि श्लोकाः समुद्धृताः सन्ति । प्राकृतभाषायाः प्रयोगोऽत्र न विद्यते । एकस्मिन्नङ्के भोजपुरी भाषाऽपि संस्कृतेन सह प्रयुक्ताऽस्ति । अनेन प्रतीयते यन्नाटककारोऽयं भोजपुरी-भाषीति। पञ्चमाङ्के मानसमरालो भोजपुरी-भाषायां वक्ति [२०] । नाटकमिदं गयास्थ-जानिविद्यामठस्य मोहान्तानां स्वामिशिवरामभारती-महोदयानां कराब्जयोः समर्पितमस्ति [२१] । गया विहार-प्रदेशस्यैकं मण्डलं विद्यते ।

## गोमहिमाभिनयः-

अस्य नाटकस्य प्रकाशनं विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसीतः सम्पन्नम् । गोमहिमाभिनये लोकस्याभ्युदयाय गवां महत्त्वं प्रतिपादितमस्ति।

पं0 गोपालशास्त्री दर्शनकेशरी-महोदयस्य नाटकेषु राष्ट्रियभावना नारीं प्रति गां प्रति च सर्वोच्चभावना प्रदर्शिता वर्तते ।

## जवाहरलालनेहरूविजयम् -

अस्य नाटकस्य प्रणेता श्रीरमाकान्तमिश्रो वर्तते । मिश्रमहोदयश्चम्पारणस्थ नरकटिआ गंज-जानकी-संस्कृत-विद्यालये प्रधानाध्यापकः आसीत् । व्याकरणसाहित्यायुर्वेदविषयेषु आचार्योपाधिमधिगत्य बी0 ए0 परीक्षामपि समुत्तीर्णवान् ।

नाटकस्यास्य प्रकाशनं १९६८ ई0 वर्षे चौखम्बा विद्याभवन वाराणसीतो बभूव । नवीनशैल्यां रचितमिदं नाटकं नान्दीपाठ-प्रस्तावनाभरत-वाक्यादिरहितं वर्तते । अस्मिन्नाटके स्वतन्त्रताप्राप्त्यर्थं पं0 जवाहर-

लालनेहरोर्योगदानं तेनाधिगतं साफल्यञ्च वर्णितमस्ति । एकदा पं० जवाहरलालस्य पत्नी यदा रुग्णा आसीत् तदाङ्ग्रेजाधिकारिणस्तं हन्तुं 'बलवन' नामकं पुरुषमेकं प्रेषितवन्तः परं यथासमयं स धृतः[२३] । नाटकमिदं रोचकं राष्ट्र-भावनाभरितं च विद्यते ।

## शशिकलापरिणयम्-

अस्य नाटकस्य प्रणेता श्री ऋद्धिनाथझा महोदयो वर्तते । विहार-प्रदेशस्य मिथिलायां शारदापुरे महोदयस्यास्य जन्म बभूव । अस्य पिता महामहोपाध्यायो हर्षनाथझा शर्मा महान् कविवरासीत् । ऋद्धिनाथो दरभंगाराजकुमारस्य शिक्षक आसीत् । दरभंगास्थ लोहनासंस्कृत-विद्यापीठस्य प्रधानाचार्यपदमलञ्चकार । ततः परं महारानी महेश्वरलता-महाविद्यालयस्य च प्रधानाचार्यः सञ्जातः ।

शशिकलापरिणयनाटकस्यापरनाम यज्ञोपवीतमस्ति । दरभंगा-महाराजस्य श्रीकामेश्वरसिंहमहोदस्य भ्रातृव्यस्य श्रीजीवेश्वरसिंह-महोदयस्य यज्ञोपवीतसंस्कारावसरे अभिनयार्थं लिखितमिदं नाटकं तदवसरेऽभिनीतम् । नाटकस्य दर्शकाश्चानेके राजानो विद्वांसो महाराजाश्चासन् । अस्य प्रकाशनं १९४७ ई० वर्षे दरभंगातः सञ्जातम्। अस्य रचना १९४१ ई० वर्षे बभूव[२४] । शशिकलापरिणये नाटके पञ्चाङ्का विद्यन्ते । अत्र पौराणिकी कथा वर्णिताऽस्ति । कुमार्याः शशिकलाया भक्तसुदर्शनेन सह विवाहोऽत्र सुष्ठु वर्णितः ।

## पूर्णकामम् -

अस्य प्रणेताऽपि पं० ऋद्धिनाथ झा-महोदयो वर्तते । इयमेकांकी १९६० ई० वर्षे दरभंगातः प्रकाशिताऽस्ति । एकांकी दृश्येषु विभाजिता वर्तते । भाषाऽस्याः सरला रुचिरा नाट्योचिता च । मैथिलीपद्धतिमनुसृत्य संस्कृतगीतान्यत्र समायोजितानि सन्ति । श्री उमानाथस्य पौत्रस्य श्री रत्ननाथस्य जन्मोपलक्ष्ये रूपकमिदं रचितम् । पूर्णकामस्य नायको ऋषिकुमारः पूर्णकामो वर्तते यस्य कठिनेन तपसा भयभीतो देवेन्द्रस्तस्य तपसि विघ्नमुत्पादयितुं कामं तस्य मित्रं वसन्तं देवनर्तकीञ्च प्रेषितवान्। परं पूर्णकामं प्रभावशून्यं मत्वा देवेन्द्रस्तं वासो स्वर्गे आनयति । तत्रापि

पूर्णकामो मन्दाकिन्यास्तटे तपश्चकार । ततो नारदो विष्णुश्च तत्र समागतौ तथा तं पूर्णकामं विष्णुलोके समानीतवन्तौ । भारतस्याध्यात्मिकं गौरवमत्र विशेषरूपेण वर्णितमस्ति [२५] ।

## आदिकविः [२६]

इदमेकं रूपकं वर्तते । अस्य प्रणेता श्रीबुद्धदेवपाण्डेयो वर्तते । अस्य प्रकाशनं भारती-पत्रिकायां सञ्जातम् । [२७] श्रीपाण्डेयः पटनास्थमीठापुर-दयानन्द-कन्या-विद्यालयस्याध्यापक आसीत् । पाण्डेय-महोदयस्य जन्म पटना-मण्डलस्य सम्प्रति नालन्दामण्डलस्य ढेकवाहा जैतीपुर-ग्रामे बभूव। वाल्मीकिः पूर्वं रत्नाकरनामको दस्युरासीत् । एकदाऽनेन वने ऋषयो धृताः पीडिताश्च । तत्रैवावगतं यन्ममाचरितस्य पापस्य भोक्ता न कोऽप्यन्योऽहमेवास्मि । अतो दस्युवृत्तिं परित्यज्य तेभ्यो स दीक्षां गृहीतवान्। तदनन्तरं स महाकविः सञ्जातः । क्रौञ्चवधस्य घटनाऽपि तत्र प्रतिपादिताऽस्ति । अस्य भाषा सरला सुखबोध्या चेति [२८] ।

## पुनःसंगमम्-

अस्य प्रणेता मिथिलाया सिंहवाडा निवासी पं0 आनन्द झा-महोदयो वर्तते । लखनऊ विश्वविद्यालये प्राध्यापकत्वेन संस्कृतस्य सेवां कृत्वा पश्चात् कामेश्वर सिंह-दरभंगा-संस्कृत विश्वविद्यालये संस्कृतस्य सेवां चकार । पुनःसंगमरूपके कुमार- संभवमहाकाव्यस्य प्रथमतृतीय-पञ्चमसर्गाणां कथा वर्णिताऽस्ति । अस्मिन् रूपके कालिदासस्य कुमारसंभवे समुद्धृतनि पद्यान्यपि प्रयुक्तानि सन्ति। गद्यात्मकः सम्वादोऽत्र शोभनो वर्तते । [२९]

## कालिदासपाणिकरणम् -

अस्य रूपकस्य लेखकः पं0 सभानाथपाठको विद्यते । पाठकोऽयं विहार-प्रदेशेस्यारास्थ-बालगोविन्द-विद्यालयस्याध्यापकः । त्रिषु दृश्येषु सम्पन्नेऽस्मिन् रूपके नान्दी-पाठः प्रस्तावना च विद्येते परं भरत-वाक्यस्याभावो दृश्यते । आश्रयस्य वृक्षशाखाकर्त्तने संलग्नं कालिदासं मूर्ख मत्वा पण्डितास्तस्य विवाहं राजकुमार्या सह कारितवन्तः । एकदा

राजकुमारी 'उष्ट्र' शब्दस्य स्थाने तेनोच्चारितमुट्र इति श्रुत्वा तं महामूर्खं च मत्वा गृहान्निसारितवती । सोऽपि पश्चात् सरस्वत्या वरं लब्ध्वा विद्वान् कविः सञ्जातः । गृहमागत्यानावृतं कपाटं देहीति कथिते कालिदासे सा राजकुमारी तं विद्वान्सं मत्वा पतिरूपेण स्वीकृतवतीति रूपकस्यास्य सङ्क्षिप्तं वृत्तम् ।[२९]

## गुरुदक्षिणा[३०] -

अस्य रूपकस्य प्रणेता व्याकरणाचार्यः पं0 यदुवंशमिश्रो वर्तते । मिश्रोऽयं दरभंगायाः खाजेडीह-उच्चाङ्गल-विद्यालयस्याध्यापकः । चतुर्षु दृश्येषु विभक्तमिदं रूपकं कालिदासस्य रघुवंशमहाकाव्यस्य पञ्चमसर्गे समागतेन कौत्सस्य वृत्तेनाधारितम् ।[३१]

## इन्दुमतीपरिणयम्[३२]-

अस्य रूपकस्य प्रणेता पूर्णियास्थ-सुखसेना-निवासी श्रीनारायणमिश्रो वर्तते । दरभंगाया मिथिलाऽनुसन्धानसंस्थाने गवेषकः पं0 मिश्रो रूपकमिदं रचितवान् । इदन्तु रघुवंशमहाकाव्यस्य सप्तमसर्गस्य वृत्तमनुसृत्य रचितं वर्तते । अजस्य विवाहस्तत्र विशेषरूपेण वर्णितः । रूपकेऽस्मिन् दृश्यत्रयं विद्यते । नान्दी-प्रस्तावना-भरतवाक्यादिभिरलङ्कृतमिदं रूपकं कामेश्वरसिंह-दरभंगा-संस्कृतविश्वविद्यालये अभिनीतमस्ति ।[३१]

## कालिदासस्य गौरवम्-

अस्य रूपकस्य प्रणेता पं0 जीवनाथ झा शर्मा विद्यते । शर्म्महोदयो दरभंगाया जयनगरस्थ-संस्कृतमहाविद्यालयस्याध्यापकः । चतुर्षु दृश्येषु विभक्तमिदं रूपकं कालिदासस्य वृत्तमनुसृत्य रचितं वर्तते । कालिदासस्य मूर्खत्वं, काल्या वरप्राप्तिस्तस्य महाकाव्यादिप्रणयनं राज्ञा विक्रमादित्येन सम्मानप्राप्तिश्चेति वर्णितम् ।[३१]

## शाकुन्तलम्[३२]-

रूपकमिदं त्रिषु दृश्येषु विभक्तम् । अस्य प्रणेता च विहारप्रदेशस्थः पं0 रामावतारमिश्रः । अस्य कथा शकुन्तलाया दुष्यन्तेन सह गान्धर्व-विवाहानन्तरमारभ्यते । गान्धर्वविवाहस्य स्वीकृतिर्महर्षिणा कण्वेनापि

दत्ता। प्रतिज्ञानुसारं दुष्यन्तः शकुन्तलां नानयति । ततः शकुन्तला काश्यपस्याश्रमे निवसति । तत्र दुष्यन्तेन सह पुनर्मिलनं भवति । अस्मिन्नेकाङ्किरूपके प्रस्तावना-भरतवाक्यादि-नाट्यशास्त्रीय-विधयो नानुसृताः । नान्दी-पाठो विद्यते ।[३१]

## कालिदासः[३३]-

अस्यैकाङ्किरूपकस्य प्रणेता डॉ0 वनेश्वरपाठकः । विहार-प्रदेशस्य सिवानमण्डलस्य प्रसादीपुर ग्रामे १९२२ ई0 वर्षे पाठकमहोदयस्य जन्म बभूव । श्रीगोपालजीपाठकस्यात्मजः डॉ0 वनेश्वर पाठकः साहित्य-व्याकरणाचार्य-एम0 ए0-डी0 लिट्0-इत्युपाधिभिर्विभूषितः । १९५१ ई0 वर्षतः राँच्यां विविधमहाविद्यालयेषु कार्यरतो विद्यते । संस्कृतसेवासंघस्य सचिवत्वेन संस्कृतस्य प्रचारे प्रसारे च निरतस्य डॉ0 पाठकस्य विंशतिपुस्तकानि प्रकाशितान्येतान्यप्रकाशितानि सन्ति । श्रीपाठकस्य प्लवङ्गदूतं १९७६ ई0 वर्षे उत्तरप्रदेशशासनेन पुरस्कृतमस्ति। यीशुचरितम् (बाइबिलस्य संस्कृतपद्यानुवादः) १९९० ई0 वर्षे सत्यभारती प्रकाशन राँचीतः प्रकाशितं वर्तते । अनेनानेकानि रेडियो-रूपकाणि रचितानि ।

कालिदासः सप्तदृश्येषु विभक्तं रूपकं विद्यते । अत्र मूर्खकालिदासस्य विवाहकथा वर्णिताऽस्ति । पण्डितानां प्रयासेन मूर्खः कालिदासः राजकुमार्य्या सह विवाहितः । पश्चात् कालिदासं मूर्खं मत्वा सा तं गृहान्निसारितवती । रुदन् कालिदासो दिङ्नागाचार्यस्य निकटे समाजगाम। तस्यादेशेन स कालीं सम्पूज्य काव्यशक्तिमर्जितवान् । एकदा काव्यसम्मेलने मेघदूतस्य सर्वोच्चस्थानं निर्णीतम् । आश्रमे राजा विक्रमादित्यः राजकुमार्या सह समाजगाम । तत्रैव कालिदासः रघुवंशं कुमारसंभवञ्च काव्यद्वयं राजकुमार्यै समर्पितवान्[३४] ।

## रक्तदानम्-

अस्य रेडियोरूपकस्य प्रणेता डॉ0 वनेश्वर पाठकः । रूपकमिदं राँची आकाशवाणीतः प्रसारितं तथा सुबोधग्रन्थमाला-कार्यालय, राँचीतः-प्रकाशितं वर्तते । इदं हि द्व्यङ्कि रूपकं सामाजिकं सामयिकञ्च । अनेन

रूपकेण समाजे कुष्ठरोग इव प्रसृतायास्तिलकयौतुकदानकुप्रथायाः

समाधानस्य स्पृहणीयः सफल श्च प्रयत्नो विहितः। अत्र शिल्पविधानं वस्तु-विन्यासो रसनिबन्धनमाकर्षणोत्पादनञ्च युगानुरूपेण प्रस्तुतम्। भाषायां सहजः प्रवाहः शोभतेतराम्।[३५]

पाठकमहोदयस्य निम्नलिखितानि रेडियोरूपकाण्यपि आकाशवाणी राँचीतः प्रसारितानि प्रकाशितानि च सन्ति-

**विक्रान्तकर्णम्**-अमर प्रिंटर्स राँचीतः प्रकाशितम्।

**विभ्रान्तनारदम्**-ज्योतिप्रकाशनं, राँचीतः प्रकाशितम्।

**चाण्डालिका**-ज्योतिप्रकाशनं, राँचीतः प्रकाशिता।

**कादम्बरीनाटिका**-ज्योति प्रकाशनं, राँचीतः प्रकाशिता।

**रक्षाबन्धनम्**-पाठकमहोदयस्यैतिहासिकं नाटकमिदम् प्रकाशितं विद्यते।

अनेनोपर्युक्तेन विवरणेन स्पष्टं भवति यत् काव्यादिप्रणयने संलग्नः काव्यकारः डॉ0 पाठकः रेडियोरूपकप्रणयनेऽपि प्रभूतं साफल्यम-धिगतवान्।

## शिखाबन्धनम्-

अस्य नाटकस्य प्रणेता डॉ0 रामाशीषपाण्डेयः सम्प्रति विश्वविद्यालयाचार्यः राँचीस्थ-मारवाडी-महाविद्यालयस्य संस्कृत-विभागाध्यक्षो वर्तते। श्रीपाण्डेयस्य जन्म १९४४ ई0 वर्षे विहारप्रदेशस्य नालन्दामण्डले जैतीपुर-ग्रामे बभूव। अस्य पिता पं0 सिद्धेश्वर पाण्डेयो माता च श्रीमती जानकी देवीति। संस्कृते हिन्द्याञ्च एम0 ए0 द्वयस्योपाधिं प्राप्य साहित्यव्याकरणवेदविषयेषु त्रिषु परीक्षासु का0 सिं0 दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालयस्याचार्यस्योपाधिं लब्धवान्। निरुक्तस्य भाषा वैज्ञानिक-मालोचनात्मकञ्चाध्ययनमिति विषये पटना- विश्वविद्यालयेन पी-एच0 डी0 इत्युपाधिना विभूषितः। विहारशासनेन वैदिकसाहित्यपुरस्कारेण पुरस्कृतोऽयं पाण्डेयोऽनेकेषां काव्यनाटकादिग्रन्थानां प्रणयनं कृतवान्। अस्य १९७४ ई0 वर्षे प्रकाशितं मयूखदूतं नाम दूतकाव्यं १९८२ ई0 वर्षे प्रकाशितं शिखाबन्धनं नाम नाटकं[३६], १९८६ ई0 वर्षे

प्रकाशित-मिन्दिराशतकं, १९८९ ई0 वर्षे प्रकाशितं कर्णार्जुनीयं नाम नाटकम-प्रकाशितञ्च त्रयोदशसर्गात्मकं कृष्णोदयं नाम महाकाव्यं काव्यकादम्बकं कवितासमुच्चयमप्रकाशितानि प्रहेलिकाशतकादीनि च प्रकाशयन्ति काव्यक्षेत्रे श्रीपाण्डेयस्यावदानम् ।

शिखाबन्धनं नाम नाटकं प्रबोधसंस्कृत प्रकाशनं, राँचीतः प्रकाशितं राष्ट्रभावनाभरितं षडङ्कात्मकं प्रख्यातवृत्तैतिह्यकथावस्तुत्वात् परमद्भुतं सर्वथा नवीनञ्च विद्यते । वीरोत्साह-साहस-विक्रम-पराक्रम-भावादि संवलितमिदं व्यासं विहाय समासशैलीमङ्गीकरोति । नाटकस्यास्य नेता चाणक्यः परमोत्साहसम्पन्नो यस्य सत्प्रयासैर्हिंसां विनापि चन्द्रगुप्तो मगधसाम्राज्यस्य स्वामी बभूव । चाणक्यस्तदा स्वशिखां बध्नाति यदा राज्यस्याप्तिर्भवति । सिंहासनं समर्प्य स चन्द्रगुप्तं कथयति-अस्य सुविस्तृत साम्राज्यस्य सम्राट् भवान् राष्ट्रकल्याणाय सञ्चालनमनयाऽर्थशास्त्रपद्धत्या समधीतशास्त्रदृष्ट्या च करोतु[३७] । नाटकस्यास्य भाषा सरला भावभरिता च । भरतवाक्यमस्य द्रष्टव्यम्-

राष्ट्रे ज्ञानसमन्वितो द्विजवरः सत्यश्रमैः संयुतः
राजन्यो रिपुमर्दनश्च प्रबलः धेनुः घटोध्नी सदा ।
योषा शीलवती सुतो गुणयुतः सभ्यः सतां जायतां
काले वृष्टियुता फलेन सहिता पुष्पान्विता मेदिनी ।।[३८]

नाटकेऽस्मिन् सर्वत्रं संस्कृतभाषा एव प्रयुक्ता, प्राकृतस्य प्रयोगोऽत्र न वर्तते।

## कर्णार्जुनीयम्-

नाटकस्यास्य प्रणेता डॉ0 रामाशीष पाण्डेयः । षडङ्कात्मकं नाटकमिदं प्रबोधसंस्कृतप्रकाशनं, राँचीतः १९८९ ई0 वर्षे प्रकाशितमस्ति । इदं हि महाभारतीयं वृत्तमाधृत्य कर्णस्योपर्यर्जुनस्य विजय इति विषयमधिकृत्य रचितम् । राष्ट्रकल्याणाय राष्ट्रे विचारशून्यानां स्वार्थान्धानामन्यायरतानां राज्ञामवाश्यकता कदापि न भवति। धृतराष्ट्र-दुर्योधनादि-सदृशै-र्भूपतिभिस्तु सर्वत्राऽनाचारस्यैव प्राबल्यं भवति न तु सदाचारस्य। अतः

राष्ट्रस्योन्नत्यै राष्ट्रसेवका एव राजानो भवन्तु न तु राजमदमत्ताः प्रभुत्वान्धाः स्वार्थसाधनतत्पराः। भारतीयपरम्परायां नवीनविचाराणामुपस्थापनं युगानुरूपमावश्यकतानुरूपञ्च यथावश्यक-परिवर्तनमत्र विहितम्। अन्यायपथारूढस्य दुर्वृत्तदुर्योधनस्यानुगस्य कर्णस्य पराजयोऽर्जुनस्य च विजयोऽन्यायस्योपरि न्यायस्य विजय इति प्राधान्येनाऽत्र वर्णितम्। नाटकस्यास्य भरतवाक्यं द्रष्टव्यम्-

देशे नेत्रसमन्वितो नृपवरो न्यायं सदा पालयन्
लोकेभ्यो नितरां ददातु विपुलं कर्मानुसारं फलम्।
वस्त्रस्याहरणं धनापहरणं भूयान्न वा भूतले
राज्यस्यास्य प्रशासनाय नृपजो दुःशासनो नो भवेत्[३९]।

## पृथ्वीराजनाटकम्-

अस्य नाटकस्य प्रणेता श्रीश्रुतिदेवशास्त्री विद्यते। नाटककारोऽयं भागलपुरमण्डलस्य महादेवपुरालवपुरग्रामनिवासी आसीत्। 'विहार राष्ट्रभाषापरिषद् पटनायां' पूर्वं कार्यरतोऽयं कामेश्वरसिहं दरभंगा संस्कृतविश्वविद्यालये प्राध्यापकत्वेन सेवां चकार। वीररसप्रधानस्यास्याभिनव[४१] नाटकस्यैकस्याङ्कस्य प्रकाशनं पाटलिपुत्रतः प्रकाशितायां संस्कृतसञ्जीवनपत्रिकायां जातम्। नाटकेऽस्मिन् पृथ्वीराजस्य वृत्तमङ्कितम्। वीररसानुकूला भाषाऽत्र प्रयुक्ता वर्तते। पृथ्वीराजनाटकस्य प्रथमाङ्के समुद्घृतम् पृथ्वीराजस्य वाक्यं द्रष्टव्यं-

कामं ज्ञातेर्विभेदः श्रुतिपथगमनादीर्ष्यया बोभवीतु
वंशश्चेच्छिद्यतां वा श्रियि कृतविमतिश्चाहमानो यशस्वी।
राष्ट्रे जेगीयतां वा कृतिमपि मम हा हन्त थूच्चर्करीतु
म्लेच्छात्प्रत्याहरिष्ये ततधनुरवशां सव्यसाचीव गां भोः॥[४२]

## च्यवनस्य चक्षुषी-

इदमेकाङ्किरूपकं श्रीकामेश्वरशर्मा 'नयन' -विरचितमस्ति। शर्ममहोदयोऽयं विहारनिवासी 'राष्ट्रभाषा परिषद् पटनायां' कार्यासक्त आसीत्। चतुर्षु दृश्येषु विभक्तेऽस्मिन् रूपके ऋषेश्च्यवनस्य वृत्तं

गुम्फितमस्ति । राजकुमारी सुकन्याऽज्ञानवशाच्च्यवनस्य चक्षुषी स्फोटितवती । अनन्तरं च्यवनस्य सेवायै राज्ञा दत्ता राजकुमारी सुकन्या तस्य सेवायां संलग्ना भवति । भाषाऽस्यातीव सरला मधुरा च विद्यते । उदाहरणभूतं पद्यमेकं द्रष्टव्यम्-

ये साधवः परहिताय वहन्ति कष्टं
नैसर्गिकं तपश्चारुतरं चरन्ति ।
तप्त्वा शरीरममलं शुभमात्मवृद्धौ
येषां वचांसि स्वप्नेऽपि हि तारयन्ति ।।[४३]

रूपकस्यास्य प्रकाशनं पटनातः प्रकाशितायां संस्कृतसञ्जीवनमिति पत्रिकायां सञ्जातम् ।

## नीडनिर्माणम्-

अस्य रेडियोरूपकस्य प्रणेता डॉ0 अयोध्याप्रसादसिंहो वर्तते । सिंह-महोदयस्य जन्म सिवानमण्डलेऽभूत् । एम0 ए0 डी0 लिट्0 प्रभृत्युपाधिं पटनाविश्वविद्यालयतः समवाप्य तत्रैवाध्यापनं चकार । सम्प्रति राँची विश्वविद्यालयस्याचार्यः स्नातकोत्तरसंस्कृतविभागाध्यक्षतां मानविकी-संकायस्याध्यक्षताञ्च करोति । महान् समालोचकः डॉ0 सिंहः संस्कृत-काव्यक्षेत्रेऽपि ख्यातिमर्जितवान् ।

वर्तमानसामाजिकवृत्ताधारितं नीडनिर्माणमेकं रेडियोरूपकं वर्तते। भाषाऽस्य प्रभावपूर्णा भावश्चाकर्षकः । रोचकं सफलञ्चेदं रेडियोरूपकं समाजस्य समस्यां स्थितिञ्च समुपस्थापयति । रूपकमिकदमाकाशवाणी-राँचीतः प्रसारितमस्ति ।

## पुत्रविक्रयः-

अस्य लघुरूपकस्य लेखको मिथिलानिवासी श्रीशङ्करझा वर्तते । चतुर्षु दृश्येषु विभक्तेऽस्मिन्रूपके यौतुकादानस्य कुप्रथा गुम्फिता वर्तते । वर्तमान-समये पिता पुत्रस्य विवाहे यौतुकं गृहीत्वा कथं पुत्रं विक्रीणातीति सामयिकसमस्याप्रधानरूपकमिदम् । इदं हि लखनऊतः प्रकाशितायां सर्वगन्धायां षष्ठवर्षीयस्यैकादशद्वादशसंयुक्तमञ्जर्यां प्रकाशितमस्ति ।[४४]

## प्रतिज्ञानाटकम्-

अस्य प्रणेता श्रीसन्तोषपण्डा वर्तते । श्रीपण्डा छोटानागपुरस्य खरसाँवा ग्रामे १९२३ ई० वर्षे जन्म दधार । द्व्यङ्कि लघुरूपकमिदम-प्रकाशितं वर्तते ।[४५]

## नियन्त्रणम्-

इदमेकं लघुरूपकमस्ति । अस्य प्रणेताऽपि श्रीसन्तोषपण्डा विद्यते । रूपकमिदं पाण्डुलिपिरूपेण सुरक्षितमप्रकाशितञ्च विद्यते ।

विंशशताब्दौ रचितेषु विहारप्रदेशीयसंस्कृतनाटकेषु राष्ट्रीय-भावनायाः स्वरो प्राधान्येन मुखरो दृश्यते । अत्र चिन्तनस्य नूतनो-द्भावनायाः प्राधान्यमस्ति । कथावृत्तमैतिहासिकं समस्याप्रधानञ्च । ऐतिहासिकेऽपि नाटके राष्ट्रभावस्योनत्यै वर्तमानसमयस्य सामाजिकं, राजनीतिकं, धार्मिक, सांस्कृतिकं व्यङ्ग्यात्मकञ्च चित्रं चित्रितमस्ति । रेडियोरूपकेषु प्रायः सामयिकवृत्तस्य राष्ट्रभावस्य समाजे समागतायाः कुप्रथायाश्च वर्णनं दृश्यते ।

साम्प्रतिकेषु नाटकेषु नाट्यशास्त्रीयनियमस्यानुसरणं कुर्वद्भिरपि नाटककारैर्यथावश्यकपरिवर्तनं कृतम् । प्राकृतभाषायाः प्रयोगः पुरा संस्कृतनाटके भवति स्म परमद्य संस्कृतभाषा एव प्रयुक्ता भवति । वस्तुतो व्यावहारिकदृष्ट्या संस्कृतनाटके प्राकृतभाषायाः प्रयोगस्यावश्यकता सम्प्रति न विद्यते । अनेन प्रकारेणावश्यकपरिवर्तनं नाटकेषु दृश्यते । संस्कृतजगति रूपकोपरूपकाणां निर्माणं विंशशताब्दौ प्रभूतमभूत् । पुनश्च विहारप्रदेशेऽपि तेषां निर्माणं संस्कृतस्य विकासाय समृद्ध्यै सर्वतोभावेन महत्त्वपूर्णमिति दिक् ।

---

१- रूपकं तत्समारोपात्- द० रू० १/७

२- द० रू० १/६

३- द० रू० १/८

४- परमार्थसुधा-तृतीयवर्षस्य चतुर्थाङ्के-५६ पृष्ठे

५- सूर्योदयः-वाराणसी-५८ वर्षे १० अंकस्य ८ पृष्ठे

६- आ0 सं0 ना0 १२४३ पृष्ठे

७- परमार्थ-सुधा पञ्चमवर्षस्य द्वितीयाङ्के ५४ पृष्ठे

८- आ0 सं0 ना0 १२२७ पृष्ठे

९- अर्वाचीनसंस्कृतम् १|१|४ देववाणी-परिषद्, दिल्ली

१०. नाटकमिदं 'नियतिचक्र' मिति शीर्षकेन १९७५ ई0 में 'राका' पत्रिकायां प्रकाशित बभूव ।

११. आकाशवाणी-दिल्ली-केन्द्रात् १९७० बर्षे प्रसारितमिदं नाटकमद्यावधि अप्रकाशितं विद्यते।

१२. अर्वाचीनसंस्कृतम्, देववाणी-परिषद् दिल्ली - २/३, जुलाई १९८०

१३- हर्षचरिते-(बाणभट्टः)

१४- काव्यमीमांसायाम्-५५ पृष्ठे

१५- ना0 जा0 ना0 ११२ पृष्ठे

१६- आ0 सं0 ना0 १२३८, १२३९ पृष्ठयोः

१७- नारीजागरणनाटकस्यावरणपृष्ठे

१८- आ0 सं0 ना0 १२३९ पृष्ठे

१९- ना0 जा0 ना0 ५/९२ पृष्ठे

२०- 'एहो हमरो तनी सुनी लोगनी' - ना0 जा0 ना0 ७६ पृष्ठे

२१- ना0 जा0 ना0 ५ पृष्ठे

२२- आ0 सं0 ना0 १२३९ पृष्ठे

२३- आ0 सं0 ना0 १२४५ पृष्ठे

२४- आ0 सं0 ना0 ११८९ पृष्ठे

२५- आ0 सं0 ना0 ११८९ पृष्ठे

२६- कालिदासीयोपरूपकाणां समुच्चये संकलितमिदम् । अस्य प्रकाशनं १९६३ई0 वर्षे का0 सिं0 द0 संस्कृत-विश्वविद्यालयस्य कुलपतीनां डॉ0 उमेशमिश्र-महोदयानां सम्पादकत्वे महेश ठक्कुर-ग्रन्थमालायां सञ्जातम् ।

२७- भारती-६/१

२८- आ0 सं0 ना0 १२२९ पृष्ठे

२९- आ० सं० ना० १२२९ पृष्ठे

३०- कालिदासीयोपरूपकाणां समुच्चये संकलितम् ।

३१- आ० सं० ना० १२३१ पृष्ठे

३२- कालिदासीयोपरूपकाणां समुच्चये संकलितम् ।

३३- कालिदासीयोपरूपकाणां समुच्चये संकलितम् ।

३४- आ० सं० ना० १२३० पृष्ठे

३५- परमार्थसुधा, पञ्चमवर्षस्य तृतीयाङ्के ५६ पृष्ठे (समीक्षायाम्)

३६- शि० ब० ९१-९२ पृष्ठयोः (कविवंशपरिचयात्)

३७- पारिजातम् पंचमवर्षस्य दशमाङ्के ३३ पृष्ठे । बिहारराष्ट्रभाषापरिषदः डॉ० मिथिलेश कुमारी मिश्र-महोदयाभिः शिखाबन्धन-नाटकस्य समीक्षा कृता। विवरणं समीक्षातः समुद्धृतम् ।

३८- शि० ब० ६/८

३९- कर्णा० ६/१८

४०- नाटकस्य प्रस्तावनायां समुद्धृतमस्ति ।

४१- संस्कृतसंजीवनम्- २३ वर्षीयस्य प्रथमाङ्कस्य १६ पृष्ठे

४२- सं० संजीवनम्- २३ वर्षे प्रथमाङ्कस्य १६ पृष्ठे ।

४३- तत्रैव २३ वर्षे षष्ठाङ्कस्य ३५ पृष्ठे ।

४४- सर्वगन्धा-षष्ठवर्षे एकादशाङ्के ९ पृष्ठे

४५- 'छोटा नागपुर के विद्वानों की संस्कृत सेवा' - इतिशोधप्रबन्धेऽस्य वर्णनम्।

# मदीया काव्ययात्रा, कृतियात्रा वा

कविशिरोमणिः अमीरचन्द्रशास्त्री साहित्याचार्यः

इह ममान्तिमायां कृतौ श्रीजवाहरलालनेहरूचरितमहाकाव्ये सर्गाणां द्विसप्ततेः प्रत्येकमन्तिमे पद्ये कतमस्या अपि कृतेर्नामोल्लेखोऽस्ति। तत्पद्यपङ्क्तीनां कालक्रमेण पाठे मदीया कृतियात्रा सामान्येन निरूपिता भवति । तत्र च गीतिकादम्बर्यां सङ्गृहीतासु पूर्वतमा कृतिः 'श्रीमद्भागवतकथासारः।' चरितकादम्बर्यां संगृहीतं श्रीदीनदयालुशर्म चरितं च द्विवारं प्रणीतम्, प्रथमवारे १९४४ ईसवीयाब्दे द्वितीयवारे च १९५७ ईसवीयाब्दे पूर्वम्, द्विवारमपि १९६३ ईसवीयाब्दे द्वितीयम् । प्रथमवारप्रणीतस्य तस्य नाशे द्वितीयवारप्रणीत एवायं प्रथमवारप्रणयन-संस्कारसम्बन्धात् यदि पुरातनोऽपि मन्येत, तदा १९४४ ईसवीयाब्दा- त्प्राक्तनस्य कस्यापि प्रणयनस्याद्य क्वचिदपि नियतस्थले किमपि नावशिष्टम् ।

बाल्येऽपि तावदन्त्यानुप्रासभूषितां वाचं प्रयुञ्जानोऽहं भाविकवित्वेन सम्भावितोऽभवम् । तदा स्वमातृभाषायां पञ्चाम्बवीयां 'नी मेरी अम्मां, मैं कित्थे सम्मां', 'मेरे कन विच पीड, अम्मा निब्बूचा निपीड' इत्यादीनि पद्यान्युदचारयम् । हरिद्वारस्ये ऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रमे तु चतुर्थश्रेण्यां (वाराणसेयराजकीयप्रथमपरीक्षायां) श्रुतबोधाध्ययनेन छन्दोज्ञानात्परं तदुक्ताशेषवृत्तानुसारिपद्यरचनायां श्लोकवृत्तेन-

एषु सप्तसु कक्षेषु विठारा यान्ति गौरवम् ।
अबका लाघवं यान्ति, अन्येतु गुरुलाघवम् ।।

इति श्लोकं सर्वप्रथमतयाऽरीरचम् । तदुक्तप्रतिवृत्तानुसारिभिः पद्यैश्च विठारेभ्यो (विपिनचन्द्रठाकुरदत्तरामस्वरूपेभ्यः) गालीप्रदा-नमकार्षम् । पश्चाच्च तद्विहाय प्रत्येकेन वृत्तेन सरस्वतीवन्दनामलिखम्। तत्र वसन्ततिलकावृत्तपद्यं स्मियते-

या शारदारस्त्यभयदा वरदा च शुक्ला
चान्द्रीव या च जगतामधिदेवतास्ति ।
वीणाधरां विमलपुस्तकधारिणीञ्च
तां शारदाममर एष नतोऽस्मि नित्यम् ।। इति ।

तदा ऋषिकुलब्रह्मचर्याश्रमे तिस्रः सभाश्छात्राणां वक्तृत्वकला-विकासाय कल्पिता अभूवन् बालसभा, वाग्वर्धिनी सभा, विद्यापरिषच्चेति। बालसभायां विद्यापरिषदि च हिन्दीमाध्यमेन वाग्वर्धिन्यां सभायाञ्च संस्कृतमाध्यमेन व्याख्यानान्यक्रियन्त । प्रतिसभञ्चैकैकं मासिक-पत्रं हस्तलिखितमेव प्राकाश्यत बालकः, उषा, मकरन्दश्च । बालसभाया मन्त्रिणा सता मया बालकः, विद्यापरिषदो मन्त्रिणा काश्मीरिकेण विश्वनाथेन च उषा पत्रिका हिन्द्यां विलिख्य प्रकाश्यते स्म । गौर्जरेण मणिशङ्करवसन्तरामोपाध्यायेन वाग्वर्धिन्याः सभाया मन्त्रिणा सता मकरन्दो विलिख्य प्रकाशमनीयत । विश्वनाथो हिन्द्यां मणिशङ्करश्च संस्कृते कवयति, तावनुकुर्वन्नहं हिन्द्यामपि संस्कृतेऽपि कवयामि । ऋषिकुलमधिकृत्य 'ऋषिकुल माता के हम लाल' इति, 'ऋषिकुलं विमलं कलयन्तु के' इति, शैशवमधिकृत्य 'फिर न आई हासवेला' इति, वसन्तमधिकृत्य 'वसन्त आया बहार आई' इति, 'कलकलं कुरुते किल कोकिल' इति च, भारतमातरमधिकृत्य 'गले का हार हो जाता' इतिं, अन्याश्चैवंविधाः समस्या मयाप्यपूर्यन्त, तेषु पत्रेषु च प्राकाश्यन्त, तत्तत्सभासमायोजितेषु कविसम्मेलनेषु चापठ्यन्त । पश्चात्समस्यापूर्ति-पद्धत्या सह स्वतन्त्रतया किमपि शीर्षकमधिकृत्यापि हिन्दीसंस्कृत-योरुभयोरपि भाषयोर्माध्यमेन कवितानिर्माणे मनो दत्तम्। 'आर्यवीर!' इति, 'परलोक' इति, 'सीता और गीता' इति, 'हक़ीक़तराय' इत्यादिभिः शीर्षकैश्च हिन्दीकविताः, 'ऋषिकुलम्' इति, 'प्रतापविजयम्' इति, 'मानसी गुरुपूजा' इति, 'निर्धनकुटीरम्' इति, 'राधाजानिस्तोत्रम्' इत्यादीनि नानाशीर्षकाणि लघुकाव्यानि संस्कृतमाध्यमेन व्यरीरचम् । काश्मीरिकस्य विश्वनाथस्य महामार्याऽकालिके निधने तदधिकृताया विद्यापरिषदस्तन्नामसंयोगेन विश्वविद्यापरिषदिति नाम कृत्वा मन्त्रित्वेन संचानलनम् उषापत्रिकायाश्च सम्पादनमकरवम् । आचार्यकक्षायाञ्च

वाग्वर्धिन्याः परिषदः, तन्मुखपत्रस्य मकरन्दस्य च । इत्थमेतेषु बालकोषामकरन्देषु, सभात्रयायोजितेषु कविसम्मेलनेषु च विरचितानां कवितानां प्रकाशनेन शिथिलितं भवतिस्म स्वाभाविकं कविताप्रकाशनौत्कण्ठ्यम् । तथापि १९३१ ईसवीयाब्दतः १९४० ईसवीयाब्दं यावच्चतुर्थदशके परलोक-कृष्णजन्माष्टमी-माधुरी- पत्रिकासु परलोक-सीता और गीता-किसान-लकड़हारा-प्रभृति-शीर्षकाणि समाश्रित्य विरचिताः कविताः प्रकाशं गताः; निर्धनकुटीरम्, राधाजानिस्तोत्रम् इत्याद्याश्च संस्कृतकविताः सूर्योदय-संस्कृतरत्नाकरादिषु । नीतिशतकस्य, गङ्गालहर्याश्च हिन्दीपद्यानुवादो-ऽपि दशकेऽस्मिन्नेव मया कृतः ।

१९४१ ईसवीयाब्दात् १९४७ ईसवीयाब्दं यावत् पञ्चाम्बुदेशे झङ्गमण्डले मध्यानानगरे (सम्प्रति पाकस्थाने) स्थितेन श्रीमद्भागवत-कथासारः स्रग्धरावृत्तानां पञ्चचत्वारिंशदधिकत्रिशत्या विरचितो ब्राह्मणेनैकेन मित्रेण हस्तलिखित एव गृहीतो न प्रत्यर्पितः । इति १९५७ ई० वीयाब्दे दिल्लीमागतेन स कथासारः पुनर्निर्मितः । ततः पूर्वं १९४७ ईसवीयाब्दात् ऋषिकुलब्रह्मचर्याश्रमे साहित्योपाध्यायतया स्थितेन श्रीगणेशप्रसादेनाग्रकविना दोहासोरठावृत्ताभ्यां कृतस्य ज्ञानेश्वर्या गीताया हिन्दीपद्यानुवादस्य संशोधनं सम्पादनञ्च प्रारब्धम्, तत्रत्या अनेका दोहाः सोरठाश्च स्वयं निर्मिताः, विलासपुरवास्तव्येन वेणीशङ्करशास्त्रिणा साहित्याचार्येण मच्छिष्येण प्रकाशनव्यवस्थायै नियुक्तेन स्वनाम्ना सम्पादकत्वमारोप्यायमनुवादः प्रकाशितः- 'साहित्यचौराः प्रगुणीभवन्ति' इति यदुक्तं, तदिदम् । १९५० ईसवीयाब्दस्य जनवरीमासे प्रथमे दिनाङ्के श्रीवृन्दावनमागतेन श्रीराधावल्लभसम्प्रदाये प्राप्तदीक्षेण च रसकल्पतरुः, हितकल्पतरुः, सङ्गीतवृन्दावनम्, इत्यादिनाम्ना गीतिकादम्बर्या प्रकाशिता अनेके ग्रन्थाः श्रीवृन्दावनस्थेनैव निर्मिताः । १९५१ ईसवीयाब्दात् १९५७ ईसवीयाब्दं यावच्च वटपत्तनस्थितेन गीतिकादम्बर्याः सङ्कलितानि गीतानि, स्तुतिकादम्बर्यां, प्रशस्तिकादम्बर्यां च संगृहीतानि पद्यानि विरचितानि। व्याख्यानकादम्बरी, चरितकादम्बरी, पूर्तिकादम्बरी, श्रीमद्भागवत-कथासारः, अध्यात्मदर्शनम्, को वेदाधिकारी इत्यादीनां प्रणयनं १९५७

तः १९६७ यावद्दशके कृतम् । इत्थमेषा द्वादशपद्यगीतात्मकग्रन्थसङ्कलनात्मिका गीतिकादम्बरी १९६८ ईसवीयाब्दे श्रीलालबहादुरशास्त्रिकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठेन प्रकाशिता । इयमस्ति मदीया अष्टादशवार्षिकी सारस्वती साधना ।

हिन्द्यां तु १९५० ईसवीयाब्दात्परं श्रीमद्भागवतीयद्विसप्ततिस्तोत्राणां हिन्दीपद्यानुवादः, अवधूतगीताया हिन्दीपद्यानुवादः, वृन्दावनमहिमामृतस्य केषाञ्चित्पद्यानाम्, पुरुषसूक्तस्य, ऋग्वेदीयप्रथममण्डलीय षड्विंशतिसूक्तगतमन्त्राणां च हिन्दीपद्यानुवादो विरचितः । 'नयनयुगल जल भीने', 'तन में वृन्दाविपिन बसाऊँ' 'किस लिये हैं दीप जलते' इत्यादि शीर्षकाः कविताश्च प्राणैषम् । अपि च स्वामीसत्यानन्दधर्मार्थनिधिया प्रकाश्यमानस्य सत्यसाहित्यस्य हिन्दीमासिकपत्रस्य १९६१ तः १९६४ यावत्सहायकसम्पादकत्वेन सम्पादनं कुर्वता प्रत्यङ्कमनेके लेखाः, केषुचिदङ्केषु च हिन्दीकविता अपि विलिख्य समावेशिताः तासु 'अन्तर्द्वन्द्व नहीं तुलसी में' इति **शीर्षका** कवितोल्लेखनीयतामर्हति ।

१९६३ ख्रीष्टाब्देऽखिलभारतीयसंस्कृतविद्यापीठे **संस्कृतिसाहित्य**-प्राध्यापकत्वेन नियुक्तेः परं संस्कृत-रत्नाकरस्य सहायक**सम्पादकत्वेन** यदलिखं तत्तत्र प्राकाश्यमनीयतेति तदनन्तरा मदीया **काव्ययात्रा** सप्रमाणोपन्यासं निरूपयितुं शक्यते । तत्र १९६३ मई **मासाङ्के** श्रीदीनदयालुप्रशस्तिषु वियोगीनीवृत्तनिबद्धानि षोडश **पद्यानि** प्रकाशितानि, तानीमानि मयर्षिकुलस्थितेन १९४० ख्रीष्टाब्दात्पूर्वं **विलिख्य** शोकसंवेदनाप्रकाशनाय श्रीदीनदयालुशर्मणां पुत्रयोः श्रीहरिहर**स्वरूप**-शास्त्रि-मौलिचन्द्रशर्मणोरन्तिके प्रेषितान्यासन् । इमानि **पुनर्मद्विरचिते** श्रीदीनदयालुशर्मचरिते समाप्तिपद्यतया गीतिका**दम्बर्यामपि** चरितकादम्बर्यङ्गत्वेन संगृहीतानि ।

१९६३ अक्टूबरमासाद्यङ्केषु 'को वेदाधिकारी'ति **निबन्धः** सप्तत्यधिक-द्विशती पद्यानां विराजते, निबन्धोऽयमपि **गीतिकादम्बर्यां** तृतीयग्रन्थत्वेन सङ्गृहीतः 'भारत शीलय शीलमुदारम्' इतिगीतमपि **तत्र** च गीतिकादम्बर्यां । 'हस्तलिखितानि संस्कृतपुस्तकानि' इति

निबन्धोऽपि तेष्वेवाङ्केषु प्रकाशमुपगतः । दिसम्बरमासाङ्के युगलगीतयुगलम्-'भजे नवकुञ्जनिलयेऽहम्' इत्यादि, 'काले कोकिलवाचाले' इत्यादि च प्रकाशमुपगतम्, इदमपि गीतिकादम्बर्यां संगृहीतम् । अत्रैव डॉ० श्री सी0 पी0 महानुभावाभिनन्दने मया प्रस्तुतानां पद्यानां सूचनामात्रं विद्यते न पाठः ।

१९६४ जनवरीमासाङ्के 'हा हन्त हन्त बलवन्त !' इत्यादिकं पद्यत्रयम्। फरवरीमासाङ्के 'वर्तमानशिक्षापद्धतौ संस्कृतस्यानिवार्यता' इतिनिबन्धः। अप्रैलमासाङ्के ' को वेदाधिकारी' तिनिबन्धस्यांशः प्रकाशमुपगतो मईमासाङ्केऽपि। जून-जुलाई-अगस्तमासाङ्के श्रीजवाहर-लालनेहरूश्रद्धाञ्जल्यङ्के 'श्रीनेहरूणामुत्तराधिकारलेखः', 'आजौ कुतः संशयः', 'नमः स्तान्नेतृजनगुरवे' , 'को भयस्यावकाशः', 'किं कं प्रति ब्रूमहे', 'सा रसवत्ता विहता' इति पद्यानि गीतं च प्रकाशमुपगतानि, यानि गीतिकादम्बर्यामपि प्रायशः संङ्गृतानि, 'अस्माकं प्रधानमन्त्री' इति निबन्धस्तु संस्कृतरत्नाकरीयनेहरूश्रद्धाञ्जल्यङ्क एव । अत्राङ्के चित्र-परिचयपद्यान्यपि प्रकाशमुपगतानि । 'काश्मीरिकं कुलम्' इतिशीर्षकेण श्रीजवाहरलालनेहरूचरितमहाकाव्यस्य प्रथमः सर्गोऽप्यत्राङ्के गीतिकादम्बर्यां च प्रकाशमुपगतः । दिसम्बरमासाङ्के श्रीशास्त्रिसम्मानाङ्के वा 'अयं शास्त्री चिरं जीव्यात्' इति, 'श्रीलाबहादुरो विजयताम्' इति, 'दृढमाश्वासनाम्', 'श्रीशास्त्रिप्रशासन-प्रशंसनम्, रक्षा-बन्धनकाले श्रीशास्त्रिणः सन्देशः, 'अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे, 'अस्माकं नूतनः प्रधानमन्त्री', भागवतः पुरुषः, इत्येतेषां कानिचिद् गीतिकादम्बर्यामपि सङ्गृहीतानि । अप्रकाशिता तु शास्त्रिसप्तशती (आर्यागीतिसप्तशती वा) कवेर्गृह एव तिष्ठति । अत्राङ्के पद्येन भागवतः पुरुष इतिवदन्येऽपि केचन लेखा गद्येनानूदिताः ।

१९६५ जनवरीमासाङ्के 'पञ्चनदकेसरिपञ्चकम्', मार्चमासाङ्के 'जगति विजयते संस्कृतभाषा' इति गीतं गीतिकादम्बर्यामपि संगृह्य प्रकाशितम् । मईमासाङ्के 'नमनीया संस्कृतवाणी' इति गीतम्, अध्यात्मदर्शनम् श्रीमद्गान्धिदर्शनं वा श्लोकानां सप्तत्यधिकद्विशत्या-ऽध्यात्मचिन्तनं प्रस्तुतम्, तदिदं गीतिकादम्बर्यां चतुर्थग्रन्थत्वेन संगृहीतम्।

इदं मत्सूनुना श्रीशरच्चन्द्रकुशलेनाङ्गलभाषया, डॉ० जयनारायण-कौशिकेन च हिन्दीभाषयाऽनूदितम्, तदिदमनुवादद्वयमप्रकाशितम् । 'परहितमवधत्तां पञ्चशीलेन लोकः' इति पद्यनवकञ्च, गीतिकादम्बर्यामपि संगृहीतम् । १९६५ जून-जुलाई-अगस्तमासाङ्के प्रशिक्षणाङ्के वा 'जगति विजयते संस्कृतभाषे' तिगीतं पुनः प्रकाशितम् । सितम्बराङ्के भारतरक्षाङ्के वा 'अयि भारतीयसुन्धरे' इत्यादिगीतं प्रकाशितम्, तदिदं गीतिकादम्बर्यामपि सङ्गृहीतम् । अत्र भारतदण्डकमपि प्रकाशमुपगतम्, यद्गीतिकादम्बर्यां प्रशस्तिकादम्बरीग्रन्थे संगृहीतम् । 'जय भारत जय जीव च शास्त्रिन्' इति गीतमपि । 'व्याख्येयौ श्लोकौ' भारतरक्षाङ्के प्रकाशितौ गीतिकादम्बर्याः पूर्तिकादम्बर्यां संगृहीतौ 'परिहर भारत खेदशतानि' इति गीतमपि भारतरक्षाङ्काद्गीतिकादम्बर्यां संगृहीतम् । 'नेपालभूपालकुलम्' इत्याद्यष्टकं' नवम्बरदिसम्बर १९६५-जनवरी १९६६ खीष्टाब्दाङ्के संस्कृतविद्यापीठशिलान्यासाङ्के वा प्रकाशितम् । 'भारतनेपालसम्बन्ध' इतिशीर्षको निबन्धोऽपि । अत्राङ्के श्रीनेपालनृपालस्य श्रीमहेन्द्रवीरविक्रम-शाहदेवमहाभागस्य, विद्वद्वरेण्यस्य डॉ० राघवन् महोदयस्य चाभिनन्दनपत्रे अपि मया लिखिते प्रकाशमुपगते ।

श्रीशास्त्रिश्रद्धाञ्जल्यङ्के १९६६ फरवरीमार्चमासाङ्के शोकाश्रुविन्दवः श्रीशास्त्रिणः कृते, श्रीगाडगिलस्य च कृते प्रकाशिताः । श्रीनरहरि विष्णुगाडगिलजीवनपरिचयः श्री शास्त्रिणः सरलं विमलं च जीवनम् इति निबन्धौ, सुरतिनारायणमणित्रिपाठिनोऽभिनन्दनं प्रशस्तिपद्यानि चात्र प्रकाशमुपगतानि । दरभङ्गानगरे वक्तृत्वस्पर्द्धावसरे कृतानि सभाप्रशस्ति-पद्यान्यपि तावदस्मिन्नङ्के प्रकाशितानि, यानि पुनर्गीतिकादम्बर्याः प्रशस्तिकादम्बर्यामपि संगृहीतानि ।

१९६६ अप्रैलमासाङ्के 'काव्यमीमांसाः एकं व्याख्यानं' प्रकाशितम्, १९६६ मईमासाङ्के पण्डिमार्तण्डहनुमत्प्रसादशास्त्रि-शोकात्मकाः श्लोकाः पञ्चदश प्रकाशिताः । जूनमासाङ्के 'चित्रकाव्यम् एकमध्ययनम्' प्रकाशितम् । जुलाई - अगस्तसितम्बरमासाङ्के महामहोपाध्यायपरमगुरुगिरिधरशर्मशोकश्रद्धाञ्जलिपद्यानि द्वादश प्रकाशितानि । अक्टूबरनवम्बरदिसम्बराङ्के मया श्रीमतीमिन्दिरामुद्दिश्य

प्रणीतानि श्रीसूक्तच्छायारूपेण सुभाशंसनपद्यानि प्रकाशमुपगतानि । अनन्तरमपि संस्कृतरत्नाकरे गोस्वामिगणेशदत्तचरितमहाकाव्यस्य, लोकालोके च शास्त्रार्थमहारथमाधवाचार्यचरितकाव्यस्य प्रथमसर्गौ प्रकाशमुपगतौ ।

शोधप्रभायाः श्रीगिरिधरशर्मचतुर्वेदस्मृतिविशेषाङ्के ८१-८२ वार्षिके शोकश्रद्धाञ्जलिः शिखरिण्यष्टकरूपः प्रकाशितः । ७६-७७ ख्रीष्टाब्दे अन्वेषणायामध्ययनमालायाः षष्ठसप्तमकुसुमरूपे विशेषाङ्के अनुसन्धानसूत्र इति हिन्दीलेखः, 'अदितिः प्रकृतिः' इति सांख्ययोगयोर्वेदमूलत्व-प्रतिपादकलेखांशश्च प्रकाशितौ । ऐषम एव विश्वसंस्कृतशताब्दीग्रन्थस्य जम्बूकाश्मीरभागो राजस्थानभागश्च मया सम्पादितौ ,तत्रानेकानि गद्यपद्यमयानि मत्प्रणीतानि समावेशितानि । काश्मीरसुषमावर्णनं तु काश्मीरेतिहासे-ऽपि पुनरावर्तितम् ।

इत्थमियं विशंतिवार्षिक्यां गद्यपद्योभयात्मककाव्ययात्रायां प्रकाशमुपगता मदीया कृतिः संक्षेपेण प्रकीर्णतया विकीर्णतया वा निरूपिता। अत्र भूयश्चर्चिता गीतिकादम्बरी तु मदीयद्वादशग्रन्थ-सङ्कलनरूपा १९६८-६९ वर्षे विद्यापीठेन प्रकाशिता । तत्र-

१. गीतिकादम्बर्याम्-शास्त्रीयपद्धत्या गेयानां पञ्चचत्वारिंशतो गीतानां चलचित्रगीतगत्या गेयानाञ्चाष्टानां गीतानां सङ्कलनेन त्रयः पञ्चाशद्गीतानि सन्ति ।

२. श्रीमद्भागवतकथासारे-पद्मपुराणस्य षट्सु स्कन्दपुराणस्य च चतुर्षु अध्यायेषूपवर्णितं माहात्म्यं दशभिः स्रग्धराभिरुपनिबद्धम् । ततः श्रीमद्भागवतमहापुराणस्य कथा पञ्चत्रिंशदधिकाध्यायानां त्रिशती प्रत्यध्यायमेकस्रग्धराक्रमेण तावतीभिः स्रग्धराभिः सङ्क्षिप्य निरूपिता ।

३. अध्यात्मदर्शनम्-भगवत्प्रमाण-स्वभाव-मनुष्यत्व-भक्ति-निरूपकैः षड्भिरधिकरणैर्द्विसप्तत्यधिकश्लोकशतद्वय्या च प्रकल्पितम्, इदं गान्धिविचार-दोहनाध्ययनेन प्रभावितमिति श्रीमद्गान्धिदर्शननाम्नापि व्यपदिश्यते ।

४. को वेदाधिकारी-पण्डितचूडामणिशास्त्रिव्याख्यान- प्रत्याख्या-

नात्मको वेदाधिकारनिरूपकः सप्तत्यधिकश्लोकशतद्वय्या निबद्धः प्रस्तावः।

५. रसकल्पतरुः-रसभावविभावानुभावसञ्चारिभावविचारपरकपञ्च-विटपः सप्तत्यधिकश्लोकशतद्वय्या ग्रथितो रससिद्धान्तग्रन्थः ।

६. हितकल्पतरुः-श्रीराधावल्लभीयसिद्धान्तकारिकापरपर्यायोऽष्टादशाध्यायात्मकोऽष्टाधिकैकादशशतश्लोकविस्तरो भक्तिसिद्धान्तग्रन्थः ।

७. सङ्गीतवृन्दावनम्-श्रीराधासुधानिधिस्तोत्रस्यादिमत्रिंशत्पद्यानां रसकुल्याटीकामाधृतं पद्यगीतात्मकं त्रिंशत्सर्गात्मकं महाकाव्यम् ।

८. स्तुतिकादम्बरी-त्रयस्त्रिंशतो देवस्तुतीनां सङ्कलनम्-भारतभूमि-सरस्वती - सोमनाथ - नटराज - सोमनाथप्रतिष्ठा - मोहमदमूलोन्मूलन-श्रीसोमनाथपुनःप्रतिष्ठा - बुद्धमानसपूजा-बुद्धषट्पदी-बालकृष्णकेलिमुक्तक -निजेष्टमार्गषट्पदी-श्रीराधाचरणतलस्तोत्र-सुधा निधिस्तवस्तुति - दैन्यषट्पदी - कैङ्कर्याभि-लाषकलापक-गायत्र्यर्थ-श्रीराधास्तोत्र-वृन्दावनविरहविनोदन-काचिदुत्कण्ठा - कृपाकटाक्षस्तोत्र-राधामुकुन्दयुगलस्तोत्र - कृपाकटाक्षभाजनीकरणस्तास्त्र-राधावल्लभपाद-पल्लवयुगलस्तोत्र - जयति जगतिविशेषक - श्रीराधाचरणकञ्जमञ्जुरेणु-वन्दन - श्रीहरिवंशाष्टक-वंश्यादिवन्दनं अश्वधाटीयुग्मक - वासुदेवदेवत्व-श्रीहरिवंशवाण्यष्टक - आत्मनिवेदन - जन्माद्यस्येतिव्याख्यास्तोत्र-प्रातः-स्मरणस्तोत्र-बालकृष्णकेलिकलापाख्या नम् ।

९. चरितकादम्बरी-श्रीहितहरिवंशचरितामृतम् (सेवकवाण्या यशोविलासरसविलासाख्यसर्गद्वयात्मकम्) द्वितीयं श्रीहितहरिवंशचरितामृतम् (श्रीभगवतमुदितरसिकअनन्यमालानुसारिसर्गद्वयात्मकम्) मारुतिचरितम् (अष्टसर्गात्मकम्) श्रीदीनदयालुशर्मचरितम् (सर्गत्रयात्मकम्) श्रीगान्धिमहिमा (पञ्चखण्डात्मकः) श्रीनेहरूचरितचर्चा (अष्टाभागात्मिका) श्रीशास्त्रिचरितचर्चा (नवप्रकरणात्मिका)

१०. व्याख्यानकादम्बरी-कालिदासस्य महिमा, कालिदासजयन्ती, स्फुटाः सिद्धान्ताः, रसोपास्तिः, सूक्तिषट्कम्, युगरूपानुसारतः, संयोजका-भिभाषणम्, संस्कृतात्संस्कृतिर्नः, महर्घत, आचारविभ्रंशः, अनिदेश्यं ब्रह्म, संस्कृतस्यानिवार्यत्वम्, प्रतिनिधिभाषणम्, निर्णायक-भाषणम् ।

वैदिकसाहित्यपरिच- ऋग्वेदपरिचय-ऋक्संहितासंस्कृतिसूत्रोच्चय - वैदिकसंस्कृतिपरिचय - यजुसंहितासंस्कृतिसूत्रोच्चय-वेदापौरुषेयत्व-नामकपञ्चाध्यायात्मकः ।

११. प्रशस्तिकादम्बरी-आदिजगद्गुरुशङ्कराचार्य-मैथिलकोकिल-विद्यापतिठाकुर - स्वामिश्रीहरिदासमहानुभाव - अखिलभारतीयसंस्कृत साहित्यसम्मेलनपरिषत्प्रशस्ति - अखिलभारतीयसंस्कृतभाषण-प्रतियोगिता सभाप्रशस्ति - अन्तर्व्यूहसमितिप्रशस्ति-रामराज्यपरिषत्प्रशस्ति-केन्द्रीय-संस्कृतमण्डलप्रशस्ति - रूपकलाहरिनाम - सङ्कीर्तनसम्मेलनप्रशस्ति- वटपत्तनस्थसंस्कृतविद्वत्स-भाप्रशस्तिसभासत्प्रशस्तिसंग्रहात्मिका ।

१२. पूर्तिकादम्बरी-समस्यानां चतुर्विंशतेः पूर्तिः, हंसान्योक्तिः, षड्विंशे दिवसे जनवर्याः, उद्बोधनम् (संस्कृत-पण्डितानाम्) अगस्ते तिथौ पञ्चदश्याम् इति पञ्चस्वतन्त्रकविताश्च ।

१. इयं गीतिकादम्बरी श्रीलालबहादुरशास्त्रीकेन्द्रीयसंस्कृतविद्या पीठस्य ग्रन्थप्रकाशनमालाया द्वितीयपुष्पत्वेन प्रकाशिता ।

२. रससिद्धान्तः-डॉ०नगेन्द्रकृतरससिद्धान्तस्य रससिद्धान्तस्य परिकरश्लोकसहितः संस्कृतानुवादः- विद्यापीठस्य दशमपुष्पत्वेन प्रकाशितः सार्धशतत्रयपृष्ठात्मकः ।

३. भारतीयसौन्दर्यशास्त्रावतारः-डॉ० नगेन्द्रकृत 'भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका' इत्यस्य संस्कृतानुवादः-सार्धद्विशतपृष्ठात्मकः ।

४. श्रीजवाहरलालनेहरूचरितमहाकाव्यम्-श्रीनेहरू-लिखिताया 'मेरी कहानी'ति संज्ञिताया आत्मकथायाः संस्कृतपद्यानुवादात्मकं दशसहस्राधिकपद्यमयं द्विसप्ततिसर्गात्मकं महाकाव्यम् पृष्ठानां सप्तत्युत्तरसहस्रेण व्याप्तम्, विद्यापीठग्रन्थमालाया पुष्पत्वेन प्रकाशितम् ।

५. श्रीराधारससुधानिधिः-तन्नामकस्तवस्य हरिलालव्यासकृताया रसकुल्याख्यटीकाया रसकलशनाम्ना हिन्दीभाषानुवादः पृष्ठानां नवशतकैः पर्याप्तः । बाबाकिशोरीशरणसूरदासेन तिलपतसतिना प्रकाशितः ।

एतेषु गीतिकादम्बरी मौलिकी रचना, अन्याश्चतस्रोऽनुवादात्मकाः । अथ मौलिकानि खण्डकाव्यानि ।

१. स्वामिश्रीगुरुचरणदासमहाराजचरितामृतस्तोत्रम् (अष्टोत्तर-शतकशिखरिण्यात्मकम्) अमरवाणीप्रकाशकमण्डलेन प्रकाशितम्, ।

२. गुरुमण्डलमण्डनम् (सर्गत्रयात्मकम्) हरिद्वारस्थगुरुमण्डलाश्रमेण प्रकाशितम् ।

३. शार्दूलविक्रीडितम्-पण्डितचारुदेवशास्त्रिचरितम्, उपसर्गार्थ गीतासहितम् द्विशतशार्दूलविक्रीडितवृत्तपद्यात्मकम्, दिल्ली विश्वविद्यालयेन अभिनन्दनग्रन्थे प्रकाशितम् ।

४. स्रग्धराभिरामम्-पण्डितश्रीपट्टाभिरामशास्त्रिचरितम्-श्रीलाल-बहादुरशास्त्रीकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठेनाभिनन्दनग्रन्थे प्रकाशितम् ।

५. श्रीशास्त्रिसप्तशती-आर्यागीतिसप्तशतीयमप्रकाशिता तिष्ठति ।

६. श्रीमद्भागवतीयस्तोत्रद्विसप्ततिः हिन्दीपद्यैरनूदिताप्यप्रकाशिता तिष्ठति ।

७. हिन्दीकवितासङ्ग्रहोऽप्यप्रकाशितस्तिष्ठति।

८. अमुद्रितः संस्कृतकवितासङ्ग्रहोऽपि प्रकाशनं प्रतीक्षते ।

९. विविधगद्यसङ्ग्रहोऽप्यप्रकाशितस्तिष्ठति ।

# काव्य-यात्रा

अवस्थिनो बच्चूलालस्य ज्ञानोपाह्वस्य

सीतापुरमण्डले कमलापुरे मध्यमायामधीयानेन मया १९३९-४० ख्रीष्टाब्दे बहवोऽन्योक्तयो रचितास्तासु सम्प्रत्येकां स्मरामि-

समीक्षणं लोचनरञ्जनं वा प्रयोजनं नास्ति महामणीनाम् ।
यदेधते राजकिरीटशोभा स एव तेषां परमार्थलाभः ।।

तदानीं दीक्षितो लक्ष्मीकान्त एव मदीयरचनानां परमः सहृदय आसीत् । तेन यथापेक्षमार्थिकं साहाय्यं कारयित्वा सुतरामुपकृतवान् । तं प्रति १९४१ ख्रीष्टाब्दे लिखितामन्योक्तिं नैव विस्मर्तुं प्रभवामि-

पाटलतरौ प्रशुष्यति मेघानां मुखमवेक्षमाणेऽस्मिन् ।
मालिन् सहृदयशालिन् पानीयं चेद् ददासि, धन्योऽसि ।।

अतः परं सहृदयनिरपेक्ष एव स्वान्तःसुखाय कृता रचनाः क्वचित् कदाचित् पत्रेषु प्रकाशिता अपि न मया बहुमानं नीताः । प्रायः १९७३ ख्रीष्टाब्दे भारतभुवं विषयीकृत्य किंचिदलिखम् । सा च तदानीन्तनी प्रतिनिधी रचना । तथा हि

कुमारीतीर्थेषु प्रलुलितजलक्षालितपदा
घनोत्तुङ्गैर्विन्ध्यैरवकलितवक्षोजविभवा ।
तरङ्गैर्गङ्गाया द्युमणिकिरणोतप्रतिसरा
दिवो बाला काचिज्जयति हिममालाशिखरिणी ।।

नवपलाशपलाशलसन्तिकां कलितकोकिलकण्ठवसन्तिकाम् ।
विकचकैरविणीषु हसन्तिकां कलरवैर्वनिकासु रसन्तिकाम् ।।

निचुलपल्लवकम्पनिदेशिनीं धवलचान्द्रमसच्छविवेशिनीम् ।
परिमलोचितकेसरकेशिनीं नमत मातृभुवं भुवनोत्तराम् ।।
भरतदिग्विजयैः प्रगुणीकृतां विनयिभी रघुभिर्निपुणीकृताम् ।
तरुणिमोल्ललनैररुणीकृतां सकललोकशुचा करुणीकृताम् ।।
विविधगैरिकसानुसमर्पित-प्रकृतिपेशलकल्पकलापिनीम् ।
श्रुतिमतीं स्मृतिसंमतलापिनीं नमत मातृभुवं धिषणाभुवम् ।।
द्रुतविलम्बितनृत्तचणच्छद-व्रततिसल्लयतल्लजमालिनीम् ।।
वलयितभ्रमरालि-परिभ्रमद्भ्रुकुटिविभ्रमसंभ्रमशालिनीम् ।।
विपुलसंकुलभूरुह-सन्तत-ग्रथित-हृद्यसनादविहंगमाम् ।
पवनचालितपत्रकृतान्तरप्रतिविसारितमोद्युतिसंगमाम् ।।
अहनि गोचर-संचर-चंक्रमाँश्चटुलवत्सतराननु जंगमान् ।
निशि नदस्मिततारकहारकैरविरलैस्तरलैर्हृदयंगमाम् ।।
उषसि पुष्करिणीरभि पुष्कलस्मितकलं कमलेषु विकस्वराम् ।
प्रणयकौतुकसंवननालसप्रणयिनीप्रतिबद्धपिकस्वराम् ।।
मुनिवरैरमिताभतपस्विनीं युवजनैरविजय्यमनस्विनीम् ।
भुवनजागरणप्रतिभास्वरां नमत मातृभुवं प्रतिभास्वराम् ।।

अखर्व-पर्वशर्वरीश-बिम्बचुम्बितालका
प्रभात-भा-कदम्ब-डम्बराकरम्बितानना ।
अघर्म-घर्मपाद-पीत-शीतभीति-भासुरा
सुरावनी-वनी धरासुरावनी विराजते ।।

इतः परं कालिदासमधिकृत्य ग्रथितेयं रचना या 'अर्वाचीनसंस्कृते (८/१ अङ्के) प्रकाशिता-

## क्व कालिदासस्य जगाम भारती

अनुल्बणस्फीतरसस्फुरत्पदा सदर्थसारप्रसवा पुनर्नवा ।

विविक्तनिर्व्याजविनिक्तविग्रहा क्व कालिदासस्य जगाम भारती।।१।
दिलीपता लोकहितप्रतारिणी सुदिक्षणा हन्त करप्रसारिणी ।
वसिष्ठतानर्गल-लाभ-लुण्ठना क्व नन्दिनी वृत्तिरवैतु निर्वृतिम् ।२।
गता सदालम्बन-निर्मला रतिर्मृतं च लावण्यचमत्कृतं मनः ।
कवेत किं साधननिर्धनः कविः स्वदेत कस्मै रसिकाय किं वचः ।।३।।
उपोषिताक्षी न पतिं प्रतीक्षते न चुम्बति प्रस्नुवती स्तनन्धयम् ।
बताङ्गना भुग्नतनुर्वृकानना न नाद्य दुःखाकुरुते मनस्विनः ।।४।।
महार्हशय्यास्वपि दूयते स्म या क्व साद्य गौरीशिखरे तपस्विनी ।
अधीतिनी धीरमना धृतव्रता निबद्धबालारुण-बभ्रु-वल्कला ।।५।।
क्व गात्रयष्टेः स्तनभारनम्रता तपोभिरक्लिष्टजयं क्व यौवतम् ।
अपापवृत्ति क्व च रूपवैभवं प्रियेषु सौभाग्यफला क्व चारुता ।।६।।
वरं विरञ्ची रचयांचकार यन्निसर्गनिश्च्योतितरूपसम्पदा ।
विलोक्य तत् स्त्रैणमरक्षितं पथि प्रजानतः किं न मनो हृणीयते ।।७।।
उतस्विदास्तां बहु वादजल्पनं विकल्पनं तावदमुष्य तिष्ठतु ।
कुतः फलानीह कुतश्च पल्लवाः समूलघातं हत एव पादपः ।।८।।

अथ नवोऽध्याय आरभ्यते । यत्र त्रिपाठिराधावल्लभस्य सततं प्रोत्साहनेन, राजेन्द्रमिश्रस्याभिराजस्य प्रवर्तनेन, रमाकान्तशुक्लस्य स्वतःप्रवृत्तप्रकाशनप्रस्तावेन, भास्कराचार्यस्य त्रिपाठिनश्च च संचालनेन नैरन्तर्येण काव्यधारा प्रवाहिता । तत्र प्रथमतया ''अर्वाचीनसंस्कृत'' पत्रिकायां (६/४ अङ्के) प्रकाशिता रचना यथा-

## कश्चिद्

पुरा सापाङ्गभङ्गं स्वाङ्गमाजोगुप्यते कश्चित् ।
पुनः स्मेराननं भ्रूभ्रामणैश्चोकुप्यते कश्चित् ।।
असौ तूष्णीकता, ते विभ्रमाः, सा चंक्रमा दृष्टिः ।
परिष्वङ्गेषु लीलालोचनैर्लालप्यते कश्चित् ।।

न विस्मर्तुं न वा स्मर्तुं यथावत् पारये किञ्चित् ।
स्वयं सन्ताप्य सावज्ञं मुधा तातप्यते कश्चित् ।।
भ्रमं स्वप्नं सुषुप्तं वा तुरीयं वाभिमन्येरन् ।
मदीयां चेतनां सर्वात्मना लोलुप्यते कश्चित् ।।
क्षणास्ते हन्त तप्ते सैकते पाथःकणा जाताः ।
न मे रोरुप्यते कश्चिन्न वा तोतुष्यते कश्चित् ।।

(२१.९.८४)

''ग़ज़ल''-शैल्यामिदंप्रथमेयं मम रचना । कश्चिदिति प्रेमालम्बनं व्यनक्ति । गणबद्धमिदमनुष्टुप्छन्दः । यथा ''भवानीशंकरौ वन्दे'' इत्यत्र यगणरगणौ गुरुद्वयं च दृश्यन्ते । द्विपद्याश्च पादोऽनुष्टुभः पादद्वयेन रच्यते।

अथ त्रिपाठिनो भास्कराचार्यस्यादेशेन पुनरन्योक्ती रचिता । इयं च प्रायेण १९८४ खीष्टाब्दे समवतीर्णा

## अन्योक्तिपञ्चकम्

शाखारोह-जटाल-मूल-वलयैर्येनावनी पूरिता
छाया यस्य निदाघदग्धसमितौ धत्ते परं विश्रमम् ।
सन्तानः खलु यस्य निर्जरतया राराज्यते, नन्वसौ
न्यग्रोधो यदि नेतरान् विषहते नोपालभेरन् बुधाः ।।

विच्छायो हिमपातशातितदलस्तीरे तरूणां गणः
सौरभ्येण समं बत व्यपगतः सारः सरोजन्मनाम् ।
अद्याच्छाद्य जलाशयश्रियमियं दुर्दान्तसन्तानिनी
फुल्लद्गल्ल-दलद्दरिद्रकुसुमा व्याजृम्भते कुम्भिका ।।

यातौ राजकुलं कुलालरजकौ वीक्ष्य क्षणं मन्दुरां
साटोपं सकटाक्ष-हास-विगलद्बाष्पं मतं चक्रतुः ।
आवाभ्यां हितचिन्तया सविनयं भूपः सपद्युच्यतां
मूल्येनैकहयस्य किं न पणते सार्धं खराणां शतम् ।।

पुच्छोत्तोलनमुद्धतं परिसरे तूर्णं बलिष्ठेक्षणाद्
भीत्या भित्तिमुपेत्य कण्ठकलहो व्यावृत्तदन्तच्छदम् ।
नक्तं तस्करसख्यमेव दिवसे सभ्ये जने बुक्कनं
गुण्या वृत्तिरियं निसर्गनिपुणा ग्रामेचराणां शुनाम् ।।

मङ्गल्यं मधुसम्पृचां सुमनसां तावत् कुतः सौभगं
तावत् कुत्र मधुव्रता व्रततिषु व्रातैः समावृण्वते ।
वाताः कुत्र विसृत्वरा विचकिलामोदैकहेवाकिनः
सातत्येन वमन्ति शीतलहरीर्यावत् तुषाराचलाः ।।

नैकानि स्तोत्राणि रचितानि रच्यन्ते च । तत्र ५.११.१९९० इति तारिकायां कृता-

## भागवती कृष्णस्तुतिः

भङ्क्त्वा भाण्डमुदस्य वानरगणे हैयङ्गवीनं क्षिपन्
धुन्वन् दष्टरदच्छदास्यमभितः शङ्काकुले लोचने ।
वक्रभ्रूकुटिकं पुरः प्रतिभयं व्यालोच्य मातुर्मुखं
बाष्पव्याकुलदर्शनो हृदि हसन् कश्चिन्नटः पातु नः ।१।

एकः सन्नपि वत्स-वत्सप-तनूर्बिभ्रद् मनोहारिणी-
र्गोपीनां च गवां च हार्दमतुलं निष्पादयन् निर्विशन् ।
सर्वज्ञः परमेष्ठिना विरचितां कायां गिलन् कीलयन्
सर्वात्मा व्रजवल्लवो विजयते मायी परो मायिनाम् ।२।

दण्ड्यं दण्डयितुं कलां कलयितुं लोकेषु लेलायितां
लीलां गापयितुं प्रताकलितां श्रीलां कलौ पावनीम् ।
नेतुं निर्विषतां सुपानसलिलं कालिन्दिकाया ह्रदं
नृत्यन् कालियमूर्धसु व्रजपतिर्भूयात् सतां भूतये ।३।

पश्यन्त्या हृदयं निविश्य सहसा धोरन्[१] मनश्चोरयन्
को व्याधिस्तव भामिनीति सहसं[२] पृच्छन् स्पृशन् नाडिकाम्।
जिज्ञासुर्मनसो गतिं हृदि करं कृत्वा कचानामृशन्
मुग्धायै मिषतो दयामिव दधद् वः पातुः गोपीविटः ।।४।।
चाणूरं प्रणिहत्य वेगमहितश्चोत्पत्य, मञ्चाद् द्रुतं
कंसं शोणितकर्दमे क्षितितले सम्पात्य मृद्नन् मुहुः ।
यावत्प्राणवियोजनं स्मितयुतो निश्च्योतयन् पीडयन्
रङ्गस्थैरभिनन्दितः स भगवानव्यादभव्याशयात् ।।५।।

अथातो युगविसंगतीर्लक्षयित्वा द्विपदीनिबद्धप्रगीतिकाद्वारेणा-प्रस्तुतप्रशंसा पुरस्कृता--(३१.१०.१९९०)

## केऽवबुध्येरन्

समाजे हालिकानां भ्रूविलासान् केऽवबुध्येरन् ?
उलूकानां स्वराज्ये भानुभासान् केऽवबुध्येरन् ?
कुतः शुद्धा तथा गौणी कुतो व्यक्तिः क्व तात्पर्यम् ?
स्वतो व्यस्ताः समस्तास्ते समासान् केऽवबुध्येरन् ?
सपत्नैर्न्यक्कृता वा धिक्कृता वा मा स्म लज्जध्वम् ।
समे नासाविहीनाश्छिन्ननासान् केऽवबुध्येरन् ?
समन्ताच्चर्मपक्षैः कोलजातैः क्रान्त आक्रीडे ।
निशीथे मल्लिकायूथी-सुवासान् केऽवबुध्येरन् ?
दृशोरास्यस्य पाल्योश्च स्फुरत्कोणानुभावानाम् ।
दरोन्मीलत्सरोजानां विकासान् केऽवबुध्येरन् ?
मुहुर्विस्फारिताक्षैरट्टहासा एव तायेरन् ।
अपाङ्गैः रोचमानान् मन्दहासान् केऽवबुध्येरन् ?
कदात्मानं बिले कस्मिन्नपह्नुत्यावतिष्ठेरन् ?
वने वल्मीकदुर्गे नागवासान् केऽवबुध्येरन् ?

कवन्ते साम्प्रतं ते प्रत्यहोरात्रं महाकाव्यम् ।

सरस्वत्या विलासान् कालिदासान् केऽवबुध्येरन् ?

महाकोलाहलभ्रान्ते समन्तादन्धतामिस्रे ।

अथो तौर्यत्रिके तेषां प्रयासान् केऽवबुध्येरन् ।

अपि स्वीकारवाचां सद्व्युदासान् केऽवबुध्येरन् ?

प्रतीषेधप्रकारान् पर्युदासान् केऽवबुध्येरन् ?

शयाना भूतले भूमेर्भरं ये भर्तुमीहन्ते

ह्वयामः कर्णयोस्तेषां कदाचित् ते प्रबुध्येरन् ॥

श‍ृङ्गाररसनिर्भरासु प्रगीतिकासु 'कथंकथा' तावत् प्राधान्यं गाहते। श्रीरमाकान्तशुक्लेन सेयं बहुशो गीता स्तुता च । अस्याः प्रथमा द्विपदी-

पिका मौनं भजेरन् मासि वासन्ते कथंकारम् ।

शरः शाकुन्तलः सिध्येन्न दुष्यन्ते कथंकारम् ॥

मया ग्रथितास्वन्योक्तिषु 'शुकवृत्तम्' प्रतिनिधित्वं भजते । स्तोत्रेषु च 'मातृस्तवः' सातिशयः । त्रयमिदं 'अर्वाचीनसंस्कृते' (९/२, १०/१, १२/२ तमेष्वङ्केषु) सबहुमानं प्रकाशितम् । विस्तरभिया नेह संकलना कृता ।

इयं काव्ययात्रा रमाकान्तशुक्लस्य सदाग्रहेणैवेह संकलय्य पुरः स्थापिता । अयं हि युवा मम काव्यप्रवर्तकेषु अन्यतमः ।

---

१- धोर्ऋ गतिचातुर्ये ।

२- हसेन हासेन सहितं यथा स्यात् तथा ।

# मामकी साहित्य-यात्रा

डॉ0 विश्वनारायण शास्त्री

सिंहावलोकनन्यायेन पश्चाद्दत्तदृष्टेर्ममेयमात्मजिज्ञासा- अथ केन प्रणोदितोऽस्मि साहित्यविरचने । स्मृतिं रोमन्थयतो ममेदं प्रतिभाति यत् कारणबहुत्वेन तत्र भाव्यं; नैकम् । कानि तानीति सहसा विनिश्चेतुमसमर्थो दोलारूढचित्तो भवामि । भवतु, निर्दिष्टं भवतु एकमेव प्राक् । बहुशो विचिन्तमानस्य ममेदं प्रतिभाति प्रथमं तावत् तातपादस्य प्रभावः । नगराद् दूरे ग्रामे निवसतामस्माकं नासीत् करधृत-साहित्यवर्तिकः कोऽपि पथिकृत् पथद्रष्टा वा समीपे । नासीत् पुस्तकागारः, नासीत् वार्तापत्राणां प्रचारः । साहित्य-चर्च्चानुशीलनं दूरे, न श्रुतम्, किं नाम साहित्यमिति ।

अस्यां स्थितौ संस्कृते पदवाक्यप्रमाणेषु निष्णातस्तातपादः पाठयति स्म मां पारम्परीणया पद्धत्या । नीतिश्लोकाः कणठस्थीकृता अद्भुत-श्लोकजाता अपि । श्रुतं नगाधिराजस्य हिमालयस्य देवतात्मत्वम् । विस्मयविमूढो बालोऽहं तर्कयामि स्म-जगति तुंगत्वेन दैर्घ्येण च सर्वेषाम-चलानां राजेव विराजमानो हिमधरः कथं कविना देवतात्मरूपेण वर्णितः, न वर्णितास्तस्योत्तुङ्गश्रृङ्गा न वा हिमवाहा न च सरोवरा मानसादयः । गते काले वयसि च कृतपदे ज्ञातं मया श्रृङ्गादीनामरण्य-सरोवरादीनां याथातथ्येन वर्णनं न काव्यम् । कविमनसि प्रतिभातस्य हिमाचलस्य वर्णनमेव कविना कृतं न चिरतुषारावृतस्य पाषाणात्मकस्य पर्वतस्य । वस्तुस्थितिः कल्पना चानयोः साहित्यमेव साहित्यमिति मम प्रतिभातम् । चराचरजगतीतले परिदृश्यमानाः सर्वे वस्तुजाताः पार्थिवाः । परं तेषु महानचल एष देवता मानुषेभ्यः पार्थिवेभ्योऽतिरिच्यते इति कविः कवयति।

अथ कैशोरे कृतपदोऽसमीयाभाषायां प्रकाशितानि वार्तालोचना-त्मकानि पत्राणि पुस्तकानि पाठं पाठं पठने जाता बलवती रुचिः । 'लघुकथा' संज्ञाभाञ्जि आख्यानानि बलवदाकर्षयन्ति माम्। तेभ्यो भृशं स्पृहयामि । न केवलं कथावस्तु परं शब्दचयनं कथनवैशिष्ट्यमपि

कैशोरचित्रे नवे भाजने लग्ना रक्तादिसंस्कारा इव चिराय लग्नमिति मन्ये। स्मरामि तेषामिदानीमपि । तानि पठित्वा चापलाय प्रणोदितस्य ममापि रचनेच्छा समजनि । विरचिताः काश्चिल्लघुकथाः । कथावस्तुनिर्वाचने इतरविशेषविभेदाभावस्तथा अकाण्डे प्रथनमनपेक्षितानां, वर्णनायां पारिपाट्यदैन्यं, शैथिल्यं विरचने न ता लघुकथाः स्थायित्वं न वा सहृदय-हृदयसंवादवहनक्षमा इति न मूर्द्धानमारोहन्ति । परित्यक्तमेतत् न स्वेच्छया परं नितरामाग्रहाभावात् । अपूर्ववस्तुनिर्माणक्षमा प्रतिभा मम न स्फुरति स्मेति मन्ये ।

ततश्चेतिहासात्मकं विरचनं विशेषतः प्राचीनभारतस्य पुरातत्त्वेतिहासविषयका निबन्धा ग्रन्थाश्च मामाकुलीकुर्वन्ति । प्रबन्धान् पठित्वा आकरग्रन्थपठने जातो मम बलवाननुरागः । ''अहमपि विरचयामि ऐतिहासिकनिबन्धान्'' इति कृतसंकल्पः प्रथममसमीया-भाषायामेव विरचितवान् निबन्धान् विशेषतः कामरूपनाम्ना प्राग्ज्योतिषाख्यया च महाभारत-रामायण-पुराणेषु च प्रसिद्धस्य असमाख्यस्यास्मद्देशस्य ।

नूतनं किञ्चित् प्रकाशनीयं प्रतिपादनीयं च अनुमान-प्रमाणाभ्यामिति विरचिता निबन्धाः स्वोपज्ञाः । दिग्दर्शन-रूपेण निबन्धस्यैकस्य प्रतिपाद्यं संक्षेपेण कथयामि । रत्नावली-नागानन्द-प्रियदर्शिकानां रूपकानां रचयिता श्रीहर्षाख्यः कविः । कोऽयं श्रीहर्षः ? कदा कस्मिन् देशे खलु रूपकानि विरचितवानित्यत्र विवदन्ते विद्वांसः । अनैकान्तिको हेतुरिति विनिगमनाविरहान्न निश्चयकोटिमारूढः सिद्धान्तः । तथा हि कामरूपप्रान्ते इदानीन्तने काले असम इति ख्याते देशे आसीन्नृपतिः श्रीहर्षो नाम ईशवीयाष्टमशतकस्य प्रथमार्धे, यः खलु ''गौडोड्रादि-कलिङ्गकोसलपति'' रिति जयदेवेन नेपालभूभुजा समुद्गीतः । श्रीहर्षस्य तनया राज्यमती समुद्वाहिता अनेन, विवाहस्योल्लेखः पशुपतिनाथमन्दिरपश्चिमद्वारि शिलाखण्डे समुत्कीर्णः ।

माद्यद्दन्तिसमूहदन्तमुसलक्षुण्णारिभूभृच्छिरो
गौडोड्रादिकलिङ्गकोशलपतिः श्रीहर्षदेवात्मजा ।

देवी राज्यमती कुलोचितगुणैर्युक्ता प्रभूता कुलै-
र्येनोढा भगदत्तभूपकुलजा लक्ष्मीरिव क्ष्माभुजा ।।१५ ।।

भगदत्तः खलु नरकात्मजः प्राग्ज्योतिषाधिपतिर्भारतप्रसिद्धो यः कुरुक्षेत्रे पाण्डवान् युयुधे । श्रीहर्षः पराक्रमी भूपतिः पुराणप्रसिद्धं कामरूपान् शशास। असावेव रूपकत्रयाणां प्रणेता श्रीहर्ष इति स्वतः परतः प्रमाणै- र्ज्ञायत इति प्रतिपादितम् । यथा तथा वा भवतु सिद्धान्तः । सिद्धान्तार्थं युक्तिप्रमाणानामन्वेषणं समीक्षणमेव मन्तव्यं साहित्यगगने विचरणम् ।

आंगलभाषायामपि बहवो निबन्धा ऐतिहासिका विरचिताः । तेषु तथ्यानां संग्रहः तत्त्वानामन्वेषणं प्राणान् नोदयति, मनसः स्फूर्तिञ्च जनयतीति ते यथा स्वान्तःसुखाय तथा सहृदयहृदयसंवादं च प्रकल्पन्ते ।

ईशवीय-द्विचत्वारिंशदधिकोनविंशशतके ''त्यज भारतवर्षम्'' इत्याख्यया प्रवर्तमाने संग्रामे सैनिकत्वं स्वीक्रियमाणोऽहं कारागारे निरुद्धो जातः । ततश्च राजनीत्यां निष्णातानां कृतधियां पुरुषाणां सान्निध्यं मां चोदयति स्म राजनीतिविषयक-साहित्यविरचने । कारागारद् वर्षाभ्यन्तरे मुक्तोऽहं नियुक्तस्तादृशानां निबन्धानां पुस्तकानां च रचने । सांसदरूपेण लोकसभायाः कार्यजातं कुर्वता वर्षपूगेषु मया तेषां विरचनानां पूर्णत्वं प्रापितम् । सर्वमेतदाङ्गलभाषायाम् ।

भ्रमता बहुशो देशे विदेशेषु च जनानां चरितानामध्ययनं मया कृतं यथामति । जनानामाशा कामना-वासना च सुखानुभूतिः आर्तिः, आनन्दं च प्रेमविरहादिकं सर्वात्मनातिरिच्यान्यत् लोककथासु प्रकटीभवन्तीति जनजातीयानां तथान्येषां च लोककथानां संग्रहणं विश्लेषणं च मया स्वीकृतम् । यथा यथा अस्मिन् विषये प्रथितयशसां बुधजनानां निबन्धा ग्रन्थाश्च पठितास्तथा तथा तेषु महानभिनिवेशो जातः । अत एव शुकसप्तति-पञ्चतन्त्र-कथासरित्सागर-प्रभृतीनां कथासंग्रहाणां कथासु कथामूलीभूतानां कथावस्तूनां (Motif) प्रतीच्य-मध्यपूर्वदेशीयानाम् आर-बरजनी-डेकामेरान-प्रभृतीनां ग्रन्थानां कथावस्तुभिस्तुलनात्मकं समीक्षणं कृतम् । स्कन्दपुराणादिषु यथा यथा लोककथायाः समावेशः कृतस्तदपि किंचित् प्रकटीकृतम् ।

एतदर्थमेव कथासरित्सागरस्य असमीयाभाषायां समारोपणं मम । तत्र कथावस्तूनां सूची तथा प्रदत्ता यथा शोधप्रबन्ध-रचयितारः सुखमेव सर्वं लभेरन् । भाषान्तरीकृतं सटीकं साहित्यदर्पणम् असमीया-भाषायाम् तथा च कालिकापुराणम् आङ्गलभाषायाम् । समीक्षणं, भूमिका टीका च तं वर्द्धापयन्ति । अन्ये च ग्रन्था आङ्गलभाषातः असमीयाभाषामनूदिताः ।

यथा साहित्यं यथार्थतो बाह्येन अन्तरस्य, अतीतेन वर्तमानस्य भाविकालस्य च प्रणेतुर्हृदयेन पाठकानां हृदयानां साहित्यं कुर्यात् यथा च सहृदय-हृदयसंवादो भवेत् यथा च अपूर्वं किञ्चिन्नूतनं वस्तु निर्मितं भवेत् तदर्थं कृतप्रयत्नेन विरचितः संस्कृत-भाषायामैतिहासिक उपन्यासः 'अविनाशि' नामधेयः । अत्र एकस्या देवदास्या मानसिकं द्वन्द्वं, कामस्य प्रेम्णश्च स्वरूपं प्रकटीकृतम् ऐतिहासिके काले ऐतिहासिके च देशे । देशकालानुरूपाणि पात्रजातानि । साहित्य अकाडेमि-उत्तर प्रदेश संस्कृत अकाडेमि-भारतीय भाषापरिषत् प्रभृतिभिः संस्थानैः पुरस्कृतोऽयं ग्रन्थः सहृदयानां मनांसि आवर्जयतीति समीक्षकाः ब्रुवते ।

पदवाक्यप्रमाणेषु कृतश्रमो भारतीयदर्शनमधिकृत्य विरचितवान् शोधप्रबन्धान् । ''न्याये-वैषेषिके च समवायस्य परिकल्पनं तस्य क्रम-विकाशश्चेति'' शोधग्रन्थः डि0 लिट्0 विरुदार्थं विरचितः पाठकानां कृते परिवर्तन-परिवर्धनाम्यां प्रकाश्यते । दर्शनशास्त्रे कृतप्रवेशस्य महती रुचिर्जाता बौद्धन्याये बौद्धदर्शने चेति । बौद्धदर्शनमधिकृत्य निबन्ध-विरचन-काले पुरातनकाले भारते वर्तमानानां विहाराणामन्तेवासीति आत्मानं मन्यमानोऽहं वर्तमाने काले तिष्ठन्नपि अतीतेन साहित्यम् अनुभवामि।

बौद्धदर्शनस्याध्ययनमेव नोदयति तन्त्रशास्त्राणामध्ययने विशेषतो बौद्धतन्त्राणाम् । तन्त्रेषु कल्पिता देवतास्त्वष्टृभिः शिलायां प्रकटीकृताः, धातुमय्यश्च निर्मिताः। देवमूर्तित्त्वं देवस्वरूपज्ञानाय प्रभवतीति मूर्तितन्त्रे (Iconography) जातो महानाग्रहः । स्नातकोत्तर-कक्षायां लिपितन्त्रं विशेषरूपतयाधीतमिति ताम्रशासन-शिलालिप्यादि-पठने कृतश्रम प्रत्नतत्त्वा य स्पृहयामि भृशम् । आविष्कृतं पठितं च तादृशं शासनम् । सर्वाण्येतानि साहित्यप्रीत्या स्वान्तःसुखाय यथा तथासहृदयहृदयसंवादाय अपि।

यौवनस्य प्रारम्भे कविता असमीया-भाषायां विरचिता । गते काले रचनं कवितायाः स्वयमेव विलुप्तिं गतम् । न जाने रचनशैली न वा नवनवोन्मेषशालिन्याः प्रतिभाया विस्फुरणं काव्ये । नितरां समीक्षकोऽहमिति परेषां वाचि कदाचिद् दुर्जनप्रायस्य स्वविरचनमपि काव्यं समीक्षकस्य मम न रोचते । अतो न केवलं विरचनं परित्यक्तं कविताया असमीया-भाषायां परं संस्कृतेऽपि ।

यद्यपि मया बहुशः श्रुतं निर्मलं न वेति न जाने, नैसर्गिकी प्रतिभा मम विद्यते नवेति भृशं तर्कयामि, कार्यान्तरव्यापृतस्य अमन्दाभियोगस्यापि अभाव इति कविताः काव्यानि वा मद् बिभ्यति, अहं वा तेभ्यः ।

इतः प्राक् शिशुसाहित्यरचनायां बद्धकटिना पुराणादीनाम् आख्यानानि बालबोधार्थं रचितानि असमीया-भाषायाम् । न केवलं पुराणाख्यानम् अपितु भूगोलेतिहासपदार्थविज्ञानानां विषयमधिकृत्य विरचितानि मया बालपुस्तकानि । तेषु द्वे ''नद्या वृत्तम्'' (The story of a river) ''सागरिका'' (The story of the ocean) भारतसर्वकारेण प्राथम्येन स्वीकृत्य पुरस्कृते ।

बालसाहित्यविरचनं प्रत्नतत्त्वे शोधनिबन्धप्रणयनं वा तथैव उपन्यासरचनं वा सर्वत्र मयानुभूयते जनैरेकात्मता । वरीवर्द्धते स्पृहा, देदीप्यते जिज्ञासा, प्रबलायते चित्तं सर्वथा आत्मनः प्रकाशाय । एकोऽहं बहु स्यामिति भावना इति मनोऽनुकूलता । यथा यशोऽधिगन्तुं चित्तं प्रवणायते न तथा सुखलिप्सया अर्थोपार्जने, परं स्वान्तःसुखायेति नास्ति सन्देहः । साहित्यकर्मणि वराकस्यास्य यात्रा मन्दं मन्दं प्रचलति । ''चरैवेति चरैवेति'' इति शाश्वती वाणी सर्वथा देवतायते मम ।

# मदीया साहित्ययात्रा

प्रो० वरदाचार्य कण्णन्

मम साहित्ययात्रा बाल्ये प्रारब्धा । अद्याप्यनुस्यूता । जीवनस्य अनेकेषु घट्टेषु आविर्भूतरसा । शब्दालङ्कारैरर्थालङ्कारैश्च भूषिता । रसिकजनाह्लादनार्थमस्या यात्रायाः रसपुष्टाः पञ्चाशत् घट्टविशेषा इदानीमुपह्रियन्ते । पण्डितवरस्य श्रीरमाकान्तशुक्ल-महोदयस्य पञ्चाशद्वर्ष-पूर्तिरनेन पञ्चाशत्सन्दर्भस्मरणेन मया संभाविता भवति । सत्स्वपि परश्शतेषु सन्दर्भेषु पञ्चाशतः अत्र संस्मरणं क्रियते । सर्वस्यापि निश्शेषं कथनं न साध्यं, न चेष्टम् ।

## १- गर्वितो हन्त

मम आचार्यः नारायणार्यः सोमयाजी नित्याग्निहोत्री मम साक्षात् पितामहः । अक्षरशिक्षणमारभ्य अध्यात्मशास्त्रोपदेशपर्यन्तं मदर्थं कृतवान् । कदाचित् तस्य जन्मदिनोत्सवकाले तं सेवितुमशक्तस्सन् तस्मै पद्यगुम्फं समार्पयम् । स्रग्धराभागधेयमिति ग्रन्थे आर्या-मालिनी-मन्दाक्रान्ता-स्रग्धरादीनां वृत्तनायिकानां संवादरूपे, तद्वृत्तग्रथितम् अस्मदाचार्य-विषयकं श्लोकमपि संनिवेश्य कृतार्थोऽभवम् । तस्मात् ग्रन्था-दुद्धृतमिदं पद्यम्

दूरनिरसिताऽहन्ता<br>
येन च यश्शिष्यपापनिर्हन्ता ।<br>
अङ्घ्री तस्याहं ता-<br>
वुभौ श्रये तेन गर्वितो हन्त ॥

'गीति'-छन्दोबद्धेऽस्मिन् श्लोके प्रतिपादान्तं 'हन्ता' इति प्रासः अवलोकनीयः । आपातत एकरूपस्यापि तस्य शब्दस्य पदच्छेदतः अर्थभेदतश्च वैविध्यम् ।

## २- वृतवारिधिः

'मधुरा' नगरे विश्वविद्यालये पीएच्0 डी0 उपाध्यर्थं गाणितशास्त्रानुसन्धानपरः द्वित्रान् वत्सरानयापयम् । तदा तस्मिन्नेव नगरे एन्0 कण्णनिति मत्सनामा कनीयान् कलाशालायां विद्यार्थी आसीत् । सः मेधावी संस्कृतज्ञो विद्यावानिति तत्परिचयोऽभिलषितो मया। सोऽपि श्लोकरचनपटुरिति मम कवनशक्तेराविष्करणाय सन्दर्भस्संजातः । तस्मै वृत्तरत्नाकरनामकपुस्तकं प्रेषयन् सन्देशानपि अनेकवृत्तपद्यरूपेणालिखम्। तत उद्धृतमिदं पद्यार्धम्-

मित्ररत्न ! वृत्तरत्न विश्रुताकरं प्रति-<br>-प्रत्तमद्य दास्यतीह पङ्कजा तवाग्रजा ।

इदं पद्यमपि तत एव ।

विद्यावारिधयेऽमुष्मै दद्यां किमुचितं न्विति ।<br>अद्याचिन्तयतस्सद्यो हृद्यातो वृत्तवारिधिः ।।

वृत्तपदस्य द्वावर्थौ चमत्कृत्यर्थं बोध्यावत्र ।

## ३- विवाहमङ्गलमाला

मम विवाहः ई0 १९७१ वत्सरे काञ्चीक्षेत्रे समभूत् । विवाहानन्तरं बन्धुजनैस्साकमालयं गत्वा समर्चितो देवः । अनन्तरमवातरत् अष्टश्लोकात्मको ग्रन्थः । विवाहविघ्नकलापस्य सचमत्कारमुपवर्णनेन वरदस्य भगवतो हस्तिगिरिनायकस्य स्तवनरूपः । तत्र प्रथमोऽयं श्लोकः-

अस्ति हि समस्त जनतार्तिहरमेकं<br>वस्तु किमपि स्तुतमनेकगुरुवर्यैः ।<br>हस्तिगिरिमस्तकसमाश्रयमनर्घं,<br>निस्तुलमहः स्तुतिवशीकरणयोग्यम् ।

''स्त'' शब्दस्य पुनः पुनर्नियतेषु स्थलेषु प्रयोग आवर्जकः ।

## ४- चक्रबन्धः

अस्माकं ग्रामः नावल्पाकनामकः श्रोत्रियाग्रहारः । तत्र अय्या स्वामीति विख्यातः चतुश्शास्त्रपाण्डित्यतः अनुष्ठानतः वैराग्यतश्च आवर्जित-बहुशिष्यः श्रीदेवनायाचार्यः विराजते स्म । यत्सकाशात् मया मनाक् न्यायशास्त्रं केचन वेदभागाश्चाधीताः । तस्य अशीतिवयःपूर्त्यवसरे प्रकाशितायां विशेषसञ्चिकायां पृष्ठद्वये मम श्लोकानां मुद्रणं कृतम् । तत उद्धृतमिदम्-

दाक्ष्या दाक्षपदे पदे चरति यः प्रागुक्तिशीर्षेष्विव
सोपेता बुधवर्गपङ्क्तिरपि यं चारुं गुणैर्भास्वरा ।
यश्श्रीवेङ्कटनाथपादरतिमान् लाभप्रथानिस्पृहः
ज्ञप्तेर्मे सुपथस्तदङ्घ्रिरमणः राजेय तेनान्वहम् ॥

शास्त्रपाण्डित्यं, शिष्यसमृद्धिः, भक्तिः, वैराग्यम्, इत्यादिना शोभितस्य श्रीस्वामिनः चरणस्मरणतोऽहं राजेयेति संक्षिप्तार्थः । न हि केवलं छन्दोबद्धत्वमात्रतः पद्यं हृद्यं भवति । सावधानं पश्यत चित्रबन्धमत्र। अष्टारचक्रबन्धे निवेश्येमं श्लोकं पठत बहिश्चक्रगताक्षराणि। अन्यं श्लोकार्धं

दासो यज्ञवराहोऽहं देवनाथगुरुं भजे

इतीमं पश्यत तत्र गूढम् । (मम यज्ञवराह इति नाम कृतं, मत्पितामहस्य यज्ञानुष्ठानसंकल्पसंवत्सरे मम जननात्)

## ५- अद्राक्षम्

श्रीमदहोबिलमठास्थानविद्वान् वेदान्तवावदूकादिविरुदभूषितः वाराणसेयविश्वविद्यालयप्राचार्यः श्री विल्लिवलं नारायणाचार्यः अद्य कीर्तिमूर्तिः मदीयमष्टारचक्रबन्धश्लोकं पठित्वा प्रमुदितोऽभवत् । स्वषष्ट्यब्दपूर्तिसमये मया सभक्ति समर्पितं यत्किञ्चित् द्रविणं कृपया स्वीकृत्य अनुग्रहगर्भितमेकं पत्रं प्रैषयत् । तदा तस्मै लिखितमिदं पद्यं प्रासरम्यम्-

अद्राक्षं ह्यः पत्रं

सद्राक्षाफलसदृक्षमाधुर्यम् ।

भद्राक्षरसंश्लिष्टं

तत् द्राक् शंसति भवत्कृपां दासे ।।

अद्राक्षमित्यस्य 'अपश्य' मिति 'द्राक्षारहित' मिति चार्थौ ।

## ६- चाटूक्तिचन्द्रिका

मैसूरुनगरात् वरदराजय्यङ्गार्नामकविदुषा संपादिता सती सुधर्माख्या पत्रिका संस्कृतदैनिकीत्येन वैलक्षण्येन माम् आवर्जयत् । अतोऽहं न केवलं तस्याः नियतग्राहकोऽभवं, परन्तु सन्दर्भविशेषेषु मम श्लोकानपि तस्याममुद्रापयम् । तत्र चाटूक्तिचन्द्रिकेति शीर्षके प्रतिदिनं सव्याख्यानमेकं चाटुश्लोकं प्रकाशीकृत्य रसिकप्रियोऽभवम् । तत उद्धृतमिदम्-

जनगणरञ्जननिरतः

समरजभयनतगणसंश्रितपादः ।

कविगणसम्माननतत-

कीर्तिः श्लोकोऽस्ति सार्वभौमो हा ।।

सत्कविरचितः श्लोकः चक्रवर्तिसम इत्यत्र वर्ण्यते । सार्वभौमः (१-राजाधिराजश्चक्रवर्ती, २- सर्वभूमिसंबन्धी, सकलजनादृत इति यावत्) जनगणरञ्जननिरतः (१-प्रजाप्रीणनतत्परः २-रसिकजनहृद्यः) समरजभयनतगणसंश्रितपादः (१-युद्धभयेन नतैस्सामन्तगणैस्सेवितचरणः २- सगणः, मगणः, रगणः, जगणः, भगणः, यगणः, नगणः, तगणः इति विभक्तैः अक्षरत्रिकबद्धैः छन्दश्शास्त्रप्रतिपादितैः गणैराश्रितपादचतुष्टयः) कविगणानां संमाननात् विततकीर्तिश्चकास्ति ।

## ७- लवशेषसिंहः

'सुधर्मा' पत्रिकायाः पोषकेषु अभिमानिषु अन्यतमः विद्वान् जग्गु शिङ्गरार्यः । स कदाचित् समस्यारूपेण-

'बभौ मयूरो लवशेषसिंहः'

इति चतुर्थपादं दत्वा उचितश्लोकपूरणसमर्थाय शतरूप्यक-पारितोषिकमप्युद्घोषितवान् सुधर्मा-पत्रिकायाम् । अस्मिन् चतुर्थपादे निगूढं किञ्चित् वैलक्षण्यं कृतगणितशास्त्रपरिश्रमस्य मम झटिति अस्फुरत्। तद्यथा-

बकारमारभ्य हलक्षराणां
हकारपर्यन्तमिह क्रमेण ।
निवेशनात् वाक्यमिदं विचित्रं
बभौ मयूरो लवशेषसिंहः ।।

यदिदं वैचित्र्यं चतुर्थपादे स्थितं तत्तादृशं वैचित्र्यं सर्वेष्वपि पादेषु यथा स्यात् तथा समस्यापूरणं श्लाघ्यतरमिति मत्वा तत्र प्रायस्साफल्यमासादित मेवम्-

एकः खगौघेऽङ्गचरच्छविर्जले
झरेऽञ्जसाऽ टह्यलुठड्डुढौके ।
अर्णं तथाऽरादधिनोत् पफाल सः
बभौ मयूरो लवशेषसिंहः ।।

अर्थो यद्यपि क्लिष्टः तथाऽपि समीचीनः । सानुग्रहं जगगुशिङ्गरार्यात् रूप्यकशतं लब्धम् । एवं सुधर्मापत्रिकया संचालितासु स्पर्धास्वनेकविधासु भागीभूय पारितोषिकानि प्राप्तानि । मम साहित्ययात्रायां तस्याः पत्रिकाया निश्शङ्कं स्थानं समभवत् ।।

## - आचार्यामयम्

ममाचार्यः अतीताशीतिवयस्कः कदाचिदस्वस्थोऽभवत् । तत्परि-चर्यार्थं मम भार्या अस्मद्ग्रामेऽवसत्, अहं तु वृत्तिनिर्बन्धात् मधुरायाम्। तदा कस्मिंश्चन सायंकाले पद्याष्टकमेकं विरचितम् आचार्यदेहास्वास्थ्य-दूयमानमनसा मया । तस्मादुद्धृतमिदम्-

सुमख्यसौ किन्तु सुखी न कस्मात् ।

मकार एवास्य ददाति दुःखम् ।

सन्तो हितं दुःखकृतेऽपि कुर्युः

ततोऽयमास्ते महितो न चित्रम् ।

असौ सुमखी (यज्वा) न सुखी (अस्वस्थः) कुतः ? 'म' इत्यक्षरं दुःखहेतुः। तत्प्रहाणे किल सुमखी सुखी भवेत् । दुःखकृत् मकारः । तस्मा अपि हितं कुरुतेऽयमाचार्यः । अतः महितो भवति । मकाराय हितः, श्लाघनीयश्च।

## ९- कविरसिक-संवादः

कविरसिक-संवाद इति शीर्षके दश संभाषणानि पूर्वोक्तपत्रिकायां दशसु दिनेषु प्रकाशितानि । एकैकं कवेः रसिकस्य च संवादरूपं, मदीयस्य चाटुश्लोकस्य कस्यचन अर्थविवरणरूपं च । तत इदं पद्यम्-

निष्कं कदाचित् पटमैषमश्च

विद्वद्वरेभ्यस्सदसि प्रदाय ।

वेदान्तरामानुजदेशिकोऽसौ

जयत्यहो निष्कपटप्रदाता ।।

श्रीरङ्गं श्रीमदाण्डवन् स्वामी निष्कपटप्रदाता (१- कपटं विना प्रदाता, २- निष्कस्य स्वर्णमुद्रारूपस्य, पटस्य च प्रदाता) इति चमत्कृत्या तत्प्रशंसारूपमिदं पद्यम् ।

## १०- समुद्रतः

श्रीनिधिर्मम श्वशुरः । आशुककविसार्वभौम इति विरुदभूषितः । प्रतिदिनं संस्कृतश्लोकप्रणयनपरः । तत्कृतयः 'श्रीनिधिग्रन्थमाला' इति नाम्ना मुद्रयित्वा प्रकाश्यन्ते तत्पुत्रेण करुणाकरनामकेन । एवं प्रकाशनं साहितीलोकेनाभिनन्दनीयम् । तथा हि-

समुद्रकन्यानिधिपद्यरूप -

समुद्रतो रत्नसमूहमेवम् ।

समुद्धृतं श्रीकरुणाकरोऽद्य
स मुद्रितं तं कुरुतेऽभिनन्द्यः ।।

अनेकेष्वसरविशेषेषु श्रीनिधिकविताऽभिनन्दनविषयानि मम पद्यान्याविर्भूतानि ।

## ११- हयग्रीवः

हयग्रीवः अस्मत्सम्प्रदाये आराध्यदेवता । विष्णोरवतार इति पुराण-प्रसिद्धः । कण्ठादुपरि अश्वरूपः । लक्ष्म्यश्रिताङ्कः । ज्ञानं, वाक्, विद्या, आदीनां प्रदाता । आचार्योत्तमैरभिष्टुतः । अस्मद्ग्रामेऽर्चारूपेण अद्यावधि आराध्यमानः । श्रीलक्ष्मीहयग्रीवस्तोत्रात् मदीयादुद्धृतमिदं पद्यम्-

हयमुखकरुणायामस्मदाचार्यपङ्क्तौ
अनितरसुलभायामावहन्त्यां क्रमेण ।
अयमपि निकटस्थस्तावतैवार्हतीति
प्रभुरनुपधिवीचीशीकरैः प्रोक्षतान्माम् ।।

आचार्याः श्रीहयग्रीवकृपास्रोतो गाहन्ते । नाहं तद्योग्यः । किन्तु प्रवाहसमीपवर्त्यहम् । अतः शीकरप्रोक्षणमवश्यं मया लभ्यम् । इति हयग्रीवकृपाया लवांशस्य अहमपि पात्रम् । एवं रूपकगर्भितः अर्थालङ्कार-विशेषः स्वनैच्यानुसन्धानं रसवत् करोति ।

## १२- नृसिंहतातः

कदाचित् मुम्बईनगरे प्रवचनं कर्तुं सज्जनैरादिष्टोऽभूवमहम् । नावल्पाक्कं नरसिंहताततयार्य प्रति किंचित् भाषणं कर्तव्यमिति । तदर्थं श्लेषालङ्काररमणीयं श्लोकं विरच्य तदर्थविवरणरूपेण भाषणं कृतम्।

शास्त्रातिक्रमकोपनस्तृणतुलां नीत्वा हिरण्यं बभौ
लोके भागवतोत्तमावलिगतप्रह्लादवृद्धिं ददौ ।
रेजे दीप्तियुतश्शतक्रतुकुलश्रीवर्धको यः कलौ
नावल्पाकनृसिंहतातमपरं तं श्रीनृसिंहं भजे ।।

नावल्पाकं नरसिंहताततयार्यः मम पितामहस्य मीमांसाशास्त्रादिषु आचार्यः। तस्य भगवतो नृसिंहस्य च श्लेषोऽत्र । हिरण्यं तृणतुलां नीत्वा (१ स्वर्णं तृणतुल्यं मत्वा २- हिरण्यकशिपुं तृणवत् नखभेद्यं कृत्वा) भागवतप्रह्लादवृद्धिं ददौ (१-भागवतानां हर्षमवर्धयत् २-प्रह्लादनामक भागवतस्योन्नतिमदात्) शतक्रतुकुलश्रीवर्धकः (१-अनेकयज्ञा-नुष्ठानतश्शतक्रतुविरुदभाजिनः वंशस्य शोभाकरः २-शतक्रतुरिन्द्रः, तस्य कुलं देवगणः, तस्य श्रीवृद्धिकरः)

## १३- दण्डकः

दण्डक इति वृत्तविशेषः एकस्यैव गणस्य (अक्षरत्रिकबद्धस्य) पुनः पुनः प्रयोगेन चित्तावर्जकः । कालिदासस्य श्यामलादण्डकमारभ्य गोपाल-देशिकस्य कोमलादण्डकपर्यन्तमनेकेषु दण्डकेषु परिचितेषु सत्सु, तद्वत् मयापि रचितो दण्डकः स्वाचार्य- विषयकः । तत्रैकं चरणमिदम्-

''अखिलविबुधसेव्यपादाम्बुजद्वन्द्वमध्यात्मशास्त्रार्थ -
मध्यापयन्तं स्वविद्यार्थिवर्गं तुरङ्गास्यपद्मांघ्रिनिध्या -
नतो नीतमध्याह्नकालं निषद्यां गुणानामवद्येतरेषां
सुविद्यागणानां सदुद्यानभूमिं च मध्ये सतां सुष्ठु विद्योत-
मानं प्रपद्याहिताग्नीन्द्रमद्योत्तमाचार्यमासाद्य हृद्याति मे
निर्वृतिम्''

द्य, ध्य इत्यक्षरानुस्यूतः प्रासः प्रतिनियतस्थलेषु श्राव्यः ।

## १४- अक्षरारम्भमालिका

मम द्वौ पुत्रौ । तयोर्ज्यायान् रङ्गनाथ नामा । तस्य विद्यारम्भ शुभावसरे विरचितेषु चतुर्दशसंख्यातेषु पद्येष्वन्यतममिदम्-

पिङ्गलवृषभश्रवणसमेते
मङ्गलदिवसे महतामिष्टे ।

रङ्गमुखानां विद्यारम्भः

तुङ्गतुरङ्गमकृपया भविता ॥

## १५- अब्दपूर्तिमालिका

मम कनीयान् सुतः श्रीनाथ नामा । तस्य अब्दपूर्तिसन्दर्भे विरचितात् पद्यसमूहात् उद्धृतोऽयं श्लोकः ।

शुक्ले मासात् पक्षतो वासराच्च
काले ह्यस्मिन् पिङ्गले वत्सरेण ।
बालः कृष्णस्येक्षयाऽब्दं प्रपूर्य
रक्तेः पात्रं राजते चित्रमेतत् ॥

शुक्लं, कृष्णं, रक्तं, पिङ्गलमिति वर्णानां नामानि । पिङ्गलसंवत्सरे, शुक्ले मासे शुक्लपक्षे, शुक्रवारे, कृष्णस्यानुग्रहात्, अयं बालः रक्तेः (अनुरागस्य) पात्रमभमवदिति चित्रम् ।

## १६- अण्णयार्याष्टकम्

वेदान्तदेशिकविरचिते सुदर्शनाष्टके प्रयुक्तमपूर्वं वृत्तं श्रोत्रानन्दकरमनुभूतं मया । तदनुकरणं कृतमण्णयार्याष्टके मया । अत्र स्तूयमानः अण्णयार्यः द्विशतवत्सरेभ्यः प्रागवतीर्णः तपसा साक्षात्कृतहयग्रीवः अस्मदाचार्यस्य प्राचार्यः । तत्र प्रथमः श्लोकः -

महितनाथादिवंशज ! शतमखाख्यान्वयद्विज !
घनवने जात सद्विज ! हरिणशीर्षाख्यतारज !
प्रथितसिद्धान्तदिग्गज ! विबुधजुष्टाङ्घ्रिपङ्कज !
जय जयाचार्यतल्लज ! जयजयाचार्य तल्लज !

## १७- अलम्भि पत्रम्

मम स्यालः श्रीकरुणाकरः सवयस्कः विद्वान् कविः प्रवचनपटुः इंजिनीयर, SISI स्थापने डेपुटि डायरेक्टर् पदमद्य वहति । बहुवत्सरेभ्यः

आवयोः मिथः पत्रसन्देशः असकृत् संस्कृतश्लोकरूपेण भवन् परस्परश्लाघाहेतुर्भवति । शताधिका नूनं भवेयुरिमे श्लोकाः सामान्य-सन्देशवाहिनः । यथा-

अलम्भि पत्रं भवतश्शुभेच्छो
अनुष्टुभा रञ्जकमन्वभावि ।
अनुग्रहादेव सतां शुभोऽसौ
अभूदविघ्नोपहतो मुहूर्तः ।।

## १८- पदपा

मम श्वशुरः आशुकवि सार्वभौमः श्रीनिधिः मम साहित्ययात्रायाः बहुधा प्रोत्साहकः । असकृत् अनुप्रासरमणीयपद्यगर्भितानेव सन्देशान् प्रेषयति स्म । अहमपि पद्यरूपं प्रत्युत्तरं नैकवारं दातुकामोऽभवम् । परश्शतेषु ईदृशेषु सत्सु मत्प्रणीतेषु, उदाहरणतयैकमत्रावेद्यते-

श्रीरङ्गपुरे सदसश्चलनात्
एकं फलमतिशीघ्रं प्राप्तम् ।
यच्चर्ममयी त्यक्ता पदपा
लब्धा मणि पादत्रा तनुजा ।।

श्रीरङ्गक्षेत्रे विद्वत्सभानिर्वर्तनानन्तरं स्वग्रामं गतेन तेन विस्मृता स्वपादरक्षा। किन्तु तस्य दुहिता श्वश्रू गृहादानीता मणिपादुका नाम्नी स्वग्रामं नीतेत्येतदवलम्ब्य चाटूक्तिरियम् ।

## १९- अहल्या

'हरिपादस्तव' नामकात् मम स्तोत्रकाव्यात् उद्धृतोऽयं श्लोकः क्लिष्टः-

धूल्या पदस्यान्तिमभागयोगात्
अल्या भवेदश्मनि पूर्वभागः ।

कथं न्वहल्या समभूत् ब्रवीमि

पदाद्धि जातः प्रथितोऽन्त्यवर्णः ॥

रामपादस्य धूल्याः रेणोः अन्तिमभागस्य एकदेशस्य संयोगेन अश्मनि शिलायां पूर्वभागः एकदेशः कथं अहल्या समभवत् ? अल्या किल भवेत्? 'धूल्या' पदस्यान्तिमभागः 'ल्या' इति। अश्म शब्दस्य पूर्वभागः 'अ' इति। तयोस्संयोगात् 'अल्या' इति भवेत् । मध्ये हकारः कथमायातः? पुनश्चाद्गुतयोच्यते । हकारः अन्त्यवर्णः अक्षराणामन्तिमः । 'पद्भ्यां शूद्रोऽजायत' इति वेदवाक्यात् अन्त्यवर्णोऽपि पादादेव जातः किल ?

## २०- भासाभिनन्दनम्

सुरभारती-समितिरिति हैदराबादनगरे जस्टिस् अल्लाडि कुप्पु-स्वामि-प्रभृतिमहनीयानामभिमानेन पोषिता डा० पुल्लेलु रामचन्द्र-प्रभृतिभिः विद्वद्भिस्संवर्धिता काचन समितिरस्ति । १९७८-वर्षे अहं मधुरा यूनिवर्सिटी परित्यज्य 'हैदराबाद सेण्ट्रल् युनिवर्सिट्यां' नियुक्तोऽभवम्। ततः परं वर्षद्वयानन्तरमेकदा सुरभारती-समित्या आयोजिते सदसि भासकविं प्रति संस्कृतभाषणं कर्तुमाहूतः । 'इतरकवीनां भासाभिनन्दन'-मिति विषयं प्रति सरलसंस्कृतेऽभाषि मया । समित्याः वार्षिकसञ्चिकायां संमुद्र्य प्रकाशितं चैतत् भाषणम् । अनेन भाषणेन अनेकेषां संस्कृतविदुषां प्रीतिपात्रमभवम् ।

## २१- साहित्य अकादमी

आन्ध्रप्रदेश साहित्य अकादम्याः संस्कृत-आलोचक-परिषदि सदस्यत्वेन नियुक्तः अहं भूतपूर्व-गवर्नर्-श्रीगोपाल रेड्डि-महाभागस्य आध्यक्ष्ये पु० रामचन्द्रप्रभृतिभिर्विद्वद्भिस्साकं कर्माण्यकारयम् । त्रिचतुर-संवत्सरकालं यावत् ।

## २२- ध्रुवा

ध्रुवा, जुहूः उपभृदित्येते याज्ञिकपात्रविशेषाः मम आचार्यस्य यजन-शीलस्य हस्तभूषणान्यासन् । तस्य देहान्तकाले सः 'पृथिवी ध्रुवा' इति

ध्रुवारूपेणाम्नातां पृथिवीं त्यक्त्वा ध्रुवां (निश्चलां) गतिमवाप । अत्र श्लोकः-

ध्रुवा जुहूर्यस्य विभूषणौघे
ध्रुवा स्मृतिर्यस्य वृषाद्रिनाथे ।
ध्रुवेति दृष्टां पृथिवीं विमुच्य
ध्रुवां गतिं प्राप गुरूत्तमो मे ।।

एवं रीत्या केचन श्लोकाः तदा प्रणीता मया, बहूनां पण्डितानाम् आचार्यमरणखिन्नानां श्लोकैस्सह गोष्ठ्यां निवेदिताः ।

## २३- प्लवगेहः

मम स्यालः श्री सुन्दरराजः (आइ० ए० यस्०) बाल्यात्प्रभृति रसपुष्टपद्यप्रणयनपटुः । अत एव बालकविरिति प्रसिद्धः । तस्य सुरश्मिकाश्मीरमिति काव्यं देववाणी-परिषदा प्रकाशितम् । तत्प्रकाशन-सन्दर्भे मम डा० रमाकान्तशुक्ल महाभागेन प्रथमस्संपर्कोऽभवत्। तत् काव्यं पठित्वा मुदितेन मया प्रणीतावभिनन्दनश्लोकौ 'अभिमतम्' इति तस्मिन् पुस्तके मुद्रितौ । तयोरन्यतरमिदम्-

सप्लवगेहजलाशयमुख्यान्
चक्षुर्विषयानिव कुरुतेऽद्य ।
विप्लवगेहजडाशयकथकैः
अलमलमन्यैः कविभिरनेकैः ।।

सप्लवगेहः आवासनौकासहितः । विप्लवगेहजडाशयः (१. आवासनौका-रहितजलाशयः २. विप्लवस्य आवासभूतजडमतिः)

## २४- सीतासरस्वत्यौ

एकदा हैदराबाद् नगरे मम श्वशुरेण काचन कविसभा निर्वर्तिता । तत्र 'सीतासरस्वत्यौ' इति विषयं स्वीकृत्य केचन श्लोका मया पठिताः। तेष्वन्यतममिदं पद्यम्-

विश्रुतापद्यशोयुक्तकवनस्था सरस्वती ।

विश्रुतापद्यशोयुक्तकवनस्था च जानकी ।।

विश्रुता (प्रसिद्धा) युक्तकवनस्था (समुचिते गुणालङ्कारयुक्ते कविकर्मणि स्थिता) यशः (कीर्तिं) आपत् (अवाप) सरस्वती । जानकी च आपदि (दुःखे सति) अशो-युक्त-कवने (अशोकवने) स्थिता इति विश्रुता ।

## २५- सभोपक्रमश्लोकाः

परश्शतानि सभा-भाषणानि मया कृतानि । तेषु पञ्चाशदधिकानि संस्कृतभाषया । प्राय एतेषामारम्भेषु तदा तदा नूतनविरचितं सन्दर्भोचितं श्लोकं श्रावयन्नेव उपोद्घातः क्रियत इति मम प्रक्रिया । नियमेन चैवं श्रीवात्स्यवरददेशिकविद्वत्सभासु प्रतिसंवत्सरम् । ईदृशेषु श्लोकेष्वयमेकः दृष्टान्ततया दीयते -

कर्म व्यपदिष्टा चार्ये क्षति-

रस्ति मयीति तदधिकरणमहम् ।

ईक्षतिकर्मव्यपदेशाभिध-

मधिकरणं विवृणोमीत्युचितम् ।।

कर्मव्यपदिष्टः (सोमयाजिस्वामी, अग्निहोत्रस्वामी, इति कर्मभिः व्यपदिष्टः) अस्मदाचार्यः । तस्येक्षतिरनुग्रहः । ईक्षतेरधिकरणं पात्रमहम्। एवं चाहं कर्मव्यपदिष्टेक्षत्यधिकरणम् । अत उचितं यदहम् ईक्षतिकर्म व्यपदेशाधिकरणमधुना विवृणोमीति ।

## २६- वेदान्तश्लोकाः

कासुचन वेदान्तसभासु ब्रह्मसूत्रार्थविचाररूपभाषणेसु अधिकरणार्थाः समग्रतः श्लोकरूपेणैव मया प्रतिपादिताः । श्रीरङ्गक्षेत्रे प्रचालिते श्रीमदाण्डवन्-सभायां कदाचित् 'आश्रयानुपपत्ति' रेवं श्लोकार्थविवरण-रूपेण । तत एकः श्लोकः ।

जीवाश्रया वा भवतामविद्या

ब्रह्माश्रया वा भ्रममातनोति ।

पक्षद्वयेऽपीह विचार्यमाणे

दोषोऽनिवार्यो भवतीति पश्य ।।

## २७- सप्ततिसप्तकम्

आशुकविसार्वभौमस्य श्रीनिधेर्मम श्वशुरस्य सप्तत्यब्दपूर्त्यवसरे प्रकाशितसंचिकायां मम पद्यसप्तकादयं श्लोक उद्धृतः-

सभा-जनैस्सप्ततिवैभवेऽस्मिन्

सभाजनीयो यतनात् यदीयात् ।

सभा-जनिः वात्स्यगुरोः कवीन्द्रः

स भाजनं संप्रति मन्नतीनाम् ।।

यस्य प्रयत्नेन वात्स्यगुरुसभा आरब्धा सती प्रतिसंवत्सरं संचाल्यते, यश्च सभायां मिलितैः विद्वज्जनैः श्लाघनीयः, स मम प्रणामानां पात्रम् ।

## २८- वेदान्तकविता-स्पर्धा

त्रिचतुरवर्षेभ्यः प्रागारब्धा प्रतिवर्षमनुस्यूता वेदान्तकवितास्पर्धा श्रीवात्स्यवरददेशिकविद्वत्सभायाम् । पूर्वनिर्दिष्टविषयं प्रति पूर्व-निर्दिष्टवृत्तेन २०-२५ श्लोका विरचनीयाः । स्पर्धायां विजेतृभ्यः विशेष बहुमतिर्दीयते । कदाचित् मयाऽपि बहुमानं लब्धम् । तत्र समर्पितात् श्लोकसमूहादुद्धृतमिदं पद्यद्वयम्-

प्रकृष्टे शास्त्रेऽस्मिन् प्रबलमतिभिर्ज्ञेयविषये

प्रविष्टस्वाचार्यप्रवहदनुकम्पाबलयुतः ।

प्रणामान् पूर्वेभ्यः प्रथममिह कृत्वाऽथ मधुरान्

प्रबध्नामि श्लोकान् प्रसदनपरास्सन्तु विबुधाः ।।

य आदित्यस्यान्तः कनकमय आस्ते स पुरुषः

हिरण्यश्मश्र्वादिस्सरसिजसमानाक्षियुगलः ।

उदित्याख्या तस्यास्त्युदित इह पाप्मभ्य इति च
श्रुतोऽसौ छान्दोग्येऽप्यथ नयनयोरन्तरिति च ॥

## २९- लक्ष्मी-शतकम्

देववाणी-परिषदा डा0 रमाकान्तशुक्ल-महाभागस्य साहाय्येन प्रकाशितमिदं मम स्तोत्रकाव्यम् । यत्र लक्ष्मीस्तोत्रमुखेन तत्संबन्धिनः सम्प्रदायार्थाः सुरुचिरं सन्निवेशिताः । मम मातामहस्य तर्करत्नादिविरुदभूषितस्य (कीर्तिमूर्तेरद्य) श्री मधुरान्तकं वीरराघवाचार्यस्य मयि विशेषानुग्रहं समपादयदिदं काव्यम् । नानावृत्तग्रथितादस्मात्-

आदायाब्धेर्मध्यतो वारि भूमौ
आवर्ष्याप्नोत्यब्द औदार्यकीर्तिम् ।
आपस्तस्मै भूयशोऽब्धिर्ददातीति
आश्चर्यं किं त्वत्पिता कीदृशस्स्यात् ?

## ३०- नारिकेलपञ्चकम्

पूर्वोक्तया सुरभारती-समित्या प्रचालिते संस्कृतकविसम्मेलने मया निवेदितेषु श्लोकेषु पश्चात् समित्यैव संमुद्र्य प्रकाशितेषु प्रथमः

ताम्बूलपूर्वबहुमङ्गलवस्तुमध्ये
त्वां सन्निवेश्य हरिमन्दिरमानयेद्यः ।
हे नारिकेल तव तेन च माऽस्तु गर्वः
पश्चात् स एव भविता तव भेदकोऽपि ।

अन्यापदेशालङ्कृतोऽयं श्लोकः ।

## ३१- असून्

भारतराष्ट्रपतिसम्मानितस्य मम मातामहस्य १९८४ तमे वत्सरे ८३ तमे वयसि परमपदप्राप्तिकाले खिन्नमनसा मया विरचितेषु

श्लोकेष्वयमपि-

सूर्यस्य तिथ्यामथ सूर्यवारे
सूर्ये गते चापमसून् वियुज्य ।
सूर्युत्तमो वीररघूद्वहोऽगात्
सूर्याध्वना सूरिदृशां पदं तत् ।।

सूर्यस्य तिथिस्सप्तमी । सूर्ये गते चापं धनुर्मासे । असून् प्राणान् । 'सू' भिन्नानित्यप्यर्थः चमत्कारार्थं ग्राह्यः । सूर्याध्वना अर्चिरादिमार्गेण। सूरिदृशां पदं तत् 'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः' इत्युक्तं स्थानम्।

## ३२- क्षमा

हैदराबाद नगरे संक्रान्तिनाम्ना स्थापनेन समायोजिते संस्कृत-कविसम्मेलने आयोजकानामाह्वानमादृत्य पठितेषु पद्येषु चतुर्थमिदम्-

क्षमापते भवत्समक्षमागतेषु पापिषु
क्षमा तवेति तामपेक्षमाण आश्रये पदम् ।
क्षमाखिले सरोरुहाक्ष ! मान्य ! माऽन्यसेवनं
क्षमातले ममास्तु रक्ष मां तथा कृपां कुरु ।।

अत्र क्षमाशब्दः अष्टकृत्वः प्रयुक्तः । क्षमा भूमिः । क्षमा क्षान्तिः । क्षमाखिले 'सर्वसमर्थ' इति सम्बोधनम् । इतरे क्षमाशब्दाः अन्यपदमध्यस्थिताः अथवा पदद्वयसमभिव्याहारसंलब्धाः । पञ्चचामरवृत्ते चित्रबन्धनिवेशार्हः श्लोकः।

## ३३- अनुगच्छतु

मम पिता न्यायवेदान्तशिरोमणिः वरदाचार्यः । गच्छता कालेन मम पित्रे मया लिखितेषु पत्रेष्वपि संस्कृतपद्यानां कादाचित्कं स्थानमभवत् । विशिष्य च मनसि यदा तीव्रो भावः । यथा-

अनुभूतचरा पूर्वमनुरागसमन्विता ।
अनुगच्छतु मां युष्मदनुग्रहपरम्परा ।।

## ३४- अलीगढे

अलीगढमुस्लिमविश्वविद्यालये मम गणितप्राचार्यपदाय विशेषाह्वाने प्राप्ते सति

अलीगढे मुस्लिम विश्व विद्या-
-लये भवद्दत्तपदे निवेश्य ।

इत्यारभ्य प्रसृतः श्लोकगणः ।

## ३५- शतवर्षपूर्तिः

कोत्तिमङ्गलनामकेऽग्रहारे वीरराघवार्य नामा प्रशान्तः विरक्तः पण्डितः कर्मठः विरराज । तस्य कीर्तिमूर्तेश्शतवर्षपूर्त्युत्सवे विशेष-संचिकायामन्तर्भूतेषु मम श्लोकेषु दशमः श्लोकः-

संवत्सरेषु प्रथमे विचित्रं
द्वितीयमासेऽथ तृतीयतारे ।
चतुर्थवारे शतवर्षपूर्तिः
गुरोरभूद्ः वीररघूद्वहस्य ।।

प्रथमसंवत्सरः 'प्रभव' नामकः । द्वितीयमासः वैशाखः । तृतीयतारे कृत्तिकानक्षत्रे । चतुर्थवारे बुधवारे । संख्यानां क्रमशो निवेशः । इति चित्रम् ।

## ३६- स्वयंप्रकाशत्वम्

पण्डितप्रकाण्डेन मम पित्रा वरदाचार्येण वेदान्तशास्त्रे 'स्वयं-प्रकाशत्ववाद' इति विद्वद्भोग्यो ग्रन्थः निरमायि । आत्मा स्वयंप्रकाश इति निर्विवादम् । तद्गतम् अहंत्वं किं धर्मिभास्यं उत स्वप्रकाशम् इति चर्चाया-मभिप्रायभेदः पण्डितसमूहे । प्राचीनायाः सारास्वादिन्याः अभिमतं स्वयं प्रकाशत्वपक्षं समर्थयति मम पिता अस्मिन् ग्रन्थे । इमं प्रति रचितं पद्यम्-

अहन्ता-स्व-प्रकाशार्था याः पूर्वाचार्यसूक्तयः

अहं-तासु-अप्रकाशार्थान् अस्माद् ग्रन्थादवैम्यहो ॥

अहो इत्याश्चर्ये प्रथमतृतीयपादावेकरूपौ भिन्नार्थकौ ।

## ३७- विवाहषष्टिः

राष्ट्रपतिसम्मानितस्य मम श्वशुरस्य स्वविवाहप्रभृति गणितानां षष्ट्या अब्दानां पूर्तौ प्रकाशितायां विशेषसञ्चिकायां मम श्लोकेष्वन्यतमौ-

प्रथमः कविगोष्ठीषु द्वितीयाश्रमधर्मतः ।

श्रीनिधिः पूरयत्यद्य तृतीयां वर्षविंशतिम् ॥

तृतीया दुहिता यस्य द्वितीया मम सांप्रतम् ।

प्रथमोऽहं बुभूषामि तस्यानुग्रहभूमिषु ॥

प्रथमः (१.आद्यः २. मुख्यः) । द्वितीया (१. प्रथमानन्तरा २. भार्या)

## ३८- अग्राहबाधा

माननीयस्य डॉ0 रमाकान्तशुक्ल-महाभागस्य आह्वानमादृत्य दिल्लीं गत्वा १९८६-वर्षे संस्कृतदिवसकविसम्मेलने भाग्यभवम् । तदा समर्पितः मनोवृत्तिपरावृत्तिरिति ग्रन्थः पश्चादाकाशवाण्या दिल्लीकेन्द्रेण प्रसारितः। तत्र प्रथमः श्लोकः-

ग्राहेण बाधे तु पदे कदाचित्

जले गजस्येति कथा पुराणे ।

अग्राहबाधा तु पदे पदे हा

जडे वरीवर्ति किमत्र कुर्मः ?

ग्राहपदस्य द्वावर्थौ प्रसिद्धौ । ग्रहणम्, अवगमः; इत्येकः । नक्रः, मकरः इत्यपरः । गजेन्द्रोपाख्याननामके पुराणघट्टे ''जले गजस्य पदे ग्राहबाधा अभवत्'' इति कथा । अध्यापकस्य मम अनुभवः ''जडे पदे पदे अग्राहबाधा'' इति । जडे मन्दे । डलयोरभेदः पदे पदे असकृत् । अग्राहः अनवगमः ।

## ३९- विस्मृतिः

देववाणी-परिषदा प्रचालिते संस्कृतदिनसमारोहे नवमे सम्मेलने, डा0 रमाकान्तशुक्लेनाहूतेन मया दिल्लीनगरे हास्यकवितारूपः पद्य-गुम्फः पठितः-

अत्युत्तमो विस्मरणप्रभावः
कस्येति निर्धारयितुं कदाचित् ।

इत्यारभ्य विस्मरणसम्बद्धानां हास्यानामत्र वर्णनं क्रियते ।

## ४०- भारतदेशसमैक्यम्

आकाशवाण्या हैदराबाद-केन्द्रात् सप्तनिमेषकालं यावत् प्रसारितः पद्यसमूहो मम भारतसमैक्यशीर्षकः । श्राव्यवृत्तविशेषग्रथितादस्मात्-

विभजनहेतुभिरगणितजातिभिरहह न खण्डितमेकं
विविधमतैरतिविघटनशक्तिभिरपि न विघट्टितमेकम् ।
विषमिदुराशयविषमयवाचिभिरपि न मनागपि छिन्नं
विलसति विकसति विशति मनो मम भारतदेशसमैक्यम् ।।

## ४१- सङ्गणकयन्त्रे संस्कृतम्

बेङ्गलूरु-नगरे ई0 १९८६ तमे वर्षे 'संस्कृते ज्ञानप्रतिनिरूपणम् अनुमानं च' इति विषयमधिकृत्य सङ्गणकविज्ञानिनां संस्कृतविदुषां च एकत्र समावेशः अभूत् । अहमपि तत्र भागीभूय 'संस्कृते असन्दिग्धता' इति लेखं समार्पयम् । पश्चात् आकाशवाण्या दिल्लीकेन्द्रात् संगणके संस्कृतं प्रति मम आशयान् प्राकटयम् ।

## ४२- एकता

अन्यदा आकाशवाण्या प्रसारितेषु मम पद्येष्वन्यतमम् -

लोकपीडनरतैर्दुरात्मभिः
स्तोकबुद्धिभिरसज्जनैरपि ।
एकता यदि विरुध्यते खलैः
मूकता किमिति संश्रिता बुधैः ॥

## ४३- संस्कृतमेकतासाधनम्

भारतदेशस्य समग्रतां संस्कृतभाषायाः तत्साधनतां च प्रति मद्विरचितः त्रिंशत्पद्यात्मकग्रन्थः कश्चन । यस्मात् कानिचन पद्यानि कालविशेषे आकाशवाण्याः प्रसारितानि । ततो द्वौ श्लोकौ-

भिन्नप्रान्ते भिन्नभाषाप्रदेशे
भिन्नोद्देशे वेषभूषादिभेदे ।
सम्पाद्येत ह्यस्मदीयत्वबुद्धिः
सर्वं स्यूतात् संस्कृतात् संस्कृतेर्वा ॥
अधिकरणमेकातायाः
भारतदेशस्य मेधतां सुचिरम् ।
अपि करणमेकतायाः
संस्कृतवाणी समेधतां सुचिरम् ॥

## ४४- तस्करतल्लजः

'तस्करतल्लज' इति शीर्षितायां पद्यावल्यामिदं विवृणोमि, यत् भित्ति-कवाट-भेदनपूर्वकं परगृहं प्रविश्य धनापहारी तु साधारणचोर एव। परन्तु कार्यालये उत्कोचग्रहीता, मिथ्याव्ययलेखकः, सार्वजनिक-धनस्य स्वार्थोपयोक्ता च तस्करोत्तमाः । यत इमे वेतनमपि लभन्ते, एतदर्थं, गौरवमपि । आकाशवाण्यां ३१-७-८७ दिने प्रसारिते श्लोकसप्तके अन्तर्गतमिदम् -

कार्यालये कर्म किमप्यकुर्वन्
सुखोपविष्टस्सुगृहीतवेतनः ।

कार्यार्थिनस्स्वीकुरुते धनं यः

उत्कोचरूपेण स चोरतल्लजः ।।

## ४४- मातृवियोगः

शुक्ल नाम संवत्सरस्यारम्भे मम माता दिवं गता ।

शुक्ले वर्षे त्वादिमे शुक्लपक्षे

शुक् संजाता मे जनन्या वियोगात् ।

शुक्लात् शुक् चेत् 'ल' स्य नाशः किमर्थः ?

दैवस्येच्छा ह्येतदेव 'अल' मस्मात् ।।

शुक् शोकः । अलं पर्याप्तं लकारहीनं वा । तस्मिन् दिने शुक्लपक्षोऽपि समाप्तः । पौर्णमासी दिने माता दिवं गता ।

## ४५- भवतु भवतु

आकाशवाण्या हैदराबाद्-केन्द्रात् १०-८-९० दिने प्रसारिते कवितास्तबके मम श्लोकदशकम् अन्योक्तिनामक-अलङ्कारशोभित-मभवत्। 'अविवेकिजनैरनादृतत्वमात्रेण न काऽपि हानिरुत्कृष्टस्य' इति संक्षिप्तभावः । तत्र प्रथमं पद्यम्-

यदि मधुरतमानां कोकिलानां स्वराणां

रसपरिचयहीनाः पामरा गानदूराः ।

श्रवणकटुनिनादान् वायसान् श्लाघयन्ते

भवतु भवतु तस्मात् कस्य हानिः पिकस्य ।।

## ४७- ग्रन्थारम्भमङ्गलश्लोकाः

यद्यपि प्रायशो मम ग्रन्थाः गणितशास्त्रविषयकाः आङ्गलभाषा-मयाश्च, तथाऽपि तेषां प्रारम्भे मङ्गलाचरणं प्रायस्संस्कृतपद्यरूपेण मया क्रियते । स च श्लोको ग्रन्थात् बहिर्भूतो भवति । इमे श्लोकाः सरला अकठिनाश्च । यथा-

इमां कृतिं विना विघ्नं समापयितुमिच्छया ।
रमापतिमहं वन्दे क्षमानिधिमधोक्षजम् ।।

ईदृशानां श्लोकानां संकलनं क्रियेत यदि, तत् पृथगेकं स्तोत्रकाव्यं भवेत् पुनरुक्तिरहितम् ।

## ४८- श्लेषविंशतिः

श्लेषविंशतिरिति काव्ये सर्वे श्लोकाः द्वयोः पदार्थयोः युगपत् बोधकाः पदच्छेद-प्रकार-भेदेन । रसिकजनस्य पाण्डित्यनिकषाश्च । तस्मादुद्धृतोऽयं श्लोकः विष्णु-चोरयोः श्लेषरूपः-

तस्करसम इति मन्ये विष्णुः
चोरो गूढश्रीश्च कदाचित् ।
आस्तेनो रक्षेति समाहुः
यत्सान्निध्ये सति सर्वेऽपि ।।

चोरः (तस्करः) कदाचित् गूढश्रीः (निगूहितधनः) । तस्य सामीप्ये सति जनाः ! 'आ स्तेनः ! रक्ष इत्याहुः । विष्णुश्चोरो गूढश्रीः (विष्णुरपि उरोगूढश्रीः वक्षसि निगूढलक्ष्मीः) कदाचित् (वामनावतारकाले) । विष्णु-सामीप्येऽपि जनाः ''आस्तेनोरक्षे'' त्याहुः । आस्ते, नः, रक्षा, इति पद-विभागः ।

## ४०- प्रार्थनापद्यानि

यद्यपि ऐहिकफलापेक्षा मुमुक्षुभिर्नाद्रियते, तथाऽपि भगवदाराध-नाङ्गतया तत्प्रतिबन्धनिवारणादिप्रार्थनस्य अङ्गीकार्यत्वात्, यदा जीवने कष्टदशाऽनुभूयते तदा तदा भगवन्तमेव तन्निवृत्त्यर्थं प्रार्थयामः किल । नैकेष्ववसरेष्वेवं प्रार्थनाः पद्यरूपेण कृता मया । यथा-

कूपे गृहे मे सलिलं न पेयं
नापेतदुर्गन्धमशुद्धमस्ति ।

पापेन मे कष्टमिदं रमेश !

द्रापेन हीनं कुरु पेयमेतत् ।।

एतादृशानां पद्यानां नैककाले विरचितानां संकलनं कृतं 'प्रार्थनापद्यानि' इति शीर्षकस्याधः ।

## ५०- परमतसहनम्

अयोध्या-राम-जन्म भूमि-संबद्धसंभवैः अस्मद्देशस्य अनेकेषु भागेषु हिन्दू-मुस्लिम-कलहा घोरा अभवन् । एवमेव हैदराबाद्-नगरे, यत्समीपे अहं वसामि । अस्मिन्नवसरे आकाशवाणीत आगतमाह्वानं कवितास्तबक-नामककार्यक्रमे स्वीयकवितापठनार्थम् । मनसि तीव्रमुद्भूतानां भावानां किल कवितासु सरसप्रतिपादनं क्रियते । नाश्चर्यं यत् एतादृशावसरे 'परमतसहन'मिति शीर्षके पद्यानि रचितानीति । सरलभाषाया-बहुजनावर्जकवृत्ततश्च ग्रथितानीमानि । तत्राद्यं पद्यम्-

परमतसहनम्

परिचिनु सततम्

परिहर परिहर पापधियम् ।

सह परधर्मैः

सहनपटुर्भव

सकलसुहृत् भव साधु सखे ।।

## निगमनम्

इति मम साहित्ययात्रायाः प्रथमो भागः । प्राप्तेऽवसरे द्वितीयतृतीय-भागावपि शीघ्रमेव प्रकाश्येताम् । एतम् अवकाशं मम प्रदत्तवद्भ्यः अभिनन्दनसमितिसदस्येभ्यः मम कृतज्ञतामावेदये । डा0 रमाकान्त शुक्ल-महोदयस्य संस्कृतसेवा इतोऽप्यभिवर्धतामित्याशासे च ।

# मदीया साहित्ययात्रा

डॉ0 केशवचन्द्रदाशः

## ०. अभिनिवेशः

पर्वतस्य कस्मात् नाभिदेशतो नदी निर्गता --- समुद्रस्य कस्मिन् प्रदेशे आत्मसत्तां संश्लेषयितुं वा अभिधावति तत् कोऽपि निश्चित्य वक्तुं न प्रभवति । सम्मुखे हि धारा सनातनी । वयं च मध्यस्था यात्रिणः । पश्चात् केचित् आरोहन्ति अग्रे केचन अवतरन्ति । परं न नौकावहनस्य अवसानम्। न वा जलवाहनस्य समाप्तिः । नवीभवति तु यात्री - - - तदीया अभिव्यक्तिः- - - व्यवहाररीतिः । अत्र तथ्यमुद्धरति जयन्तभट्टः -

कुतो वा नूतनं वस्तु वयमुत्प्रेक्षितुं क्षमाः ।
वचोविन्यासवैचित्र्यमात्रमत्र विचार्यताम् ।।

(न्यायमञ्जरी, कारिका-८)

तथैवाऽत्र मे गतिः । दृश्यं निकटे । अदृश्यमपि अदूरे । दृष्टिस्तु अदृश्यप्रणयिनी ।

## १. तादात्म्यसन्धानम्

बाल्यतो मे अभिरुचिः संस्कृते । अभिरुचिसम्पादनाय मूलभूतप्रणम्य पुरुषो मे आद्यगुरुः कविराजः कुलमणिमिश्रः । कविकल्पनातले इदानीमपि दिग्दर्शननिमित्तं स दण्डायमानो भवति साक्षात् संस्कृतस्य परम्परारूपेण। स्मृतितले स एव गुरुः । किन्तु प्रवृत्तिमूले गरीयान् अनुभवः । अतो गतिर्मे भिन्ना । यद् दृश्यं तत् रुचिरम् । यद् अदृश्यं तत्तु रुचिरतरमिति अनुभवः मम काव्योदये कश्चन हेतुः ।

संस्कृतभाषा एका मुक्तभाषा इति बुद्धिः मदीयमुक्तचिन्तायां तादात्म्यं वहति । अतो रूढिवादे न मे श्रद्धा न वा परम्पराया

निष्कारणबन्धने आग्रहः । यन्मानविकं, यच्च जीवनपाथेयं मौलिकरूपेण, यत्र जीवनस्य गुरुत्वं तत्र मे रुचिः । अतो रचनायां मे जीवनस्य तत्त्वमेव अदृश्यनाभिः । जीवधर्मोऽत्र अलङ्कारः । शान्तिसन्तोषयोः सामरस्यं च साहित्ययात्रायां मे माङ्गलिकम् । शब्देन अशब्दतादात्म्यमत्र लक्ष्यम् ।

## २. नव्य-मनस्विता

परितः परम्परा । अत्र भीतिसङ्कुल आसीत् मम काव्यप्रकाशः । तथापि इतस्ततोभावेन खण्डशो मुक्तकविता प्रकाशिता । अयं कालः (१९७७) प्रारम्भकालः ।

परम्परातः किञ्चिद्दूरे मुक्तरूपेण प्रथमतो मे काव्यधारा ''प्रणयप्रदीपम्'' (१९७९) इति शीर्षकमङ्गीकृत्य धारावाह्यरूपेण 'सुधर्मा' (मैसूर)-दिन-पत्रिकायां प्रकाशिता । अत्र अवगुण्ठनविमोचनं प्रारब्धम्। निविडसम्बोधने मम काव्यनायिका ''हृदयेश्वरी'' (१९८१) रूपेण मयि तादात्म्यमतनोत् । वस्तुतः समाजिकस्थितिषु प्रणयस्य प्रत्यक्षसंसारेण सह सम्बन्धः दिशान्तरं निरदिशत् । तदेव ''महातीर्थम्'' (१९८२) इति संज्ञामात्मसादकरोत् । परमिह अनुभवे अपरा दिक् उद्भासिता, भेदबोधः सः संजातः । फलतः समुद्रः अपरः ---- तटी अन्या इति प्रतीतिशरणं ''भिन्नपुलिनम्'' (१९८३) इति काव्यस्तवकं प्रतीकात्मक-भावेन मदीयभावराज्यम् अध्यकरोत् । वहता कालेन ''अलका'' (१९८६) इति कश्चित् गन्तव्य-प्रदेशः सम्मुखे मनोहरः संजातः । अत्र च सदसद्विवेकः काव्यात्मनि आध्यात्मिकभावभूमिं पुरोऽकरोत् । इदानीं तु ''ईशा'' तमःप्रकाशयोः तादात्म्यमनुसन्धत्ते । वस्तुतः विनिमयस्य मौनकथा मम कविता --- ।

प्रमुखतः काव्यधारायां मे गद्यस्पर्शो गुरुत्वं वहति । परमत्र गद्यपद्ययोः कोऽयं भेदप्रदेशः---, का वा विभाजकलिपिः तन्निश्चित्य वक्तुं न शक्नोमि। तथाकथितगद्यप्रवाहे सरल-वाक्यविन्यासः मम प्रवृत्तेः सारांशः । अत्र आलापभागस्य प्राधान्यम् । सरलभाषामाध्यमेन जटिलपरिकल्पस्य परिचितिः मे कथाप्रकृतिः । अतः मानवस्य निम्नप्रवृत्तिमाधारीकृत्य मम कथा भारतस्य विभिन्नासु पत्रिकासु ''निम्नपृथिवी'' (१९८३) रूपेण

आत्मप्रकाशमकरोत् । मानवस्य अचेतनाऽवचेतन-मानसमाधारीकृत्य अन्तरावेशमुररीकृत्य च संकेत-प्रतीकात्मकशैल्या ''दिशा विदिशा'' (१९८८) इति कथाकल्पो मे रचनासु अन्यतमः ।

एतावति न मे तुष्टिः न वा पर्याप्तिः । अनुसन्धाने चमत्कृतिमसृजत् कथाया अपरप्रकारः । प्रकारोऽयं उपन्यासः । अत्र प्रमुखतः मानवस्य सामाजिक-नैतिक-पतनं विहाय नूतनसन्दर्भे जीवनस्य व्याख्यानं प्रारब्धम्। अत्र कस्यचित् प्रत्यग्रमूल्यबोधस्य उपस्थापननिमित्तं यत्नो विहितः । सौन्दर्यबोधेन शाश्वतभावस्य सामञ्जस्यम् अत्र चित्रणरीतिः । विनिमयतादात्म्यं च साधारणीकरणस्य विशेषविधिः ।

एषु प्रमुखचिन्ताबिन्दुषु मम प्रथम उपन्यासः आवेगप्रश्रये 'तिलोत्तमा' (१९८२) इति नाम अगृह्णात् । इतिहासस्य स्पर्शमादाय प्रणयसौजन्ये ''मधुयानम्'' (पत्रिकाप्रकाशः-१९८४, पुस्तकप्रकाशः-१९९०) इत्यस्य समुन्मेषः संजातः । अत्र उत्सर्गः प्रीतेः परिभाषिक-भूमिरभूत् दाम्पत्यस्य साफल्यानुसंधित्सा सफल-जीवनस्य च आधारमृगया ''शीतलतृष्णा'' (१९८३) इत्यस्य भावलिपिः । संस्कृतिप्राणतायाः कुत्र गतिः इति प्रश्नमवलम्ब्य ''प्रतिपद्'' (१९८४) इति उपन्यासः पुनरपि यात्रायां प्रथमदिवसस्य स्मारकः संजातः । आधुनिकनगरजीवनस्य पर्याकुलभावमालक्ष्य ''अरुणा'' (१९८५) अत्र करुणाप्रार्थिनी । वैदिकादर्शस्य पृष्ठभूमौ मानवस्य स्वभावप्रत्यावृत्तिः ''आवर्त्तम्'' (१९८५) इत्यस्य चैतसिकी भित्तिः । मानवस्य अविमर्शः, लोलुप मनोभूमिः, आसक्तिविवशता इत्यादयो विषया ''निकषा'' (१९८६) इत्यस्य प्रतीकात्मकविषयबन्धः । आधुनिक-पारम्परिकप्रवृत्तयोः संघर्षः ''शिखा'' (१९८७ ) इत्यस्य आधारशिला । एकत्र कामना । अन्यत्र संकल्पः। अनयोः विमिश्रबिन्दुः अत्र प्रमुखं वस्तु । ''अञ्जलिः'' (पत्रिका प्रकाशः १९८८ पुस्तकं प्रकाशः-१९९०) विखण्डितपारिपार्श्विकस्थितिषु पारिवारिकवैमनस्यम् उद्धरति । समाजस्य भ्रष्टप्रकरणे मानवस्य आत्मग्लानिरत्र विषयः । तथापि किमपि सत्यमस्ति येन आत्मगौरवं प्रस्तूयते, येन च समाजे मानवस्थितेः याथार्थ्यं प्रतिपाद्यते । तदत्र

''ऋतम्'' (१९८८) इति नाम्ना आत्मनिरीक्षणप्रबन्धमुपस्थापयति । एतदुपरि ''विसर्ग'' एव लाभावशेष इति कश्चन आत्मसन्तोषः अपरो मे उपन्यासः । हृदये औदात्त्यस्य विशदीकरणे 'शशिरेखा'' संप्रति मे मौनकथा ।

सर्वमेतद् विहाय प्रवृत्तिः मे कदाचित् बालकथासु । प्रसंगतः ''पताका'' (पत्रिका-प्रकाशः- १९८५, पुस्तकाकृतिः - १९९०) इति बालोपन्यासः ''महान्'' (१९८८) इति बालकथा, ''एकदा'' (१९८९) इति बालकथा च साहित्यधारायां मे भावकौमार्यमाहरन्ति ।

## ३. शैलीपरिमितिः

इदमवधेयं यदिदानीमपि अपांसुला पारम्परिकी शैली । परिवर्त्तितयुगबोधस्य परिप्रकाश-निमित्तम् अपरप्रकारः अपेक्ष्यते इत्यपि अङ्गीकरणीयम् । अत उभयोः मध्ये स्थित्वा रचनानिमित्तं शैलीधारायाः कश्चन नव्यसन्दर्भो मया अङ्गीकृतः । सरललघुवाक्यविन्यासः, भावस्य चिन्तनस्य च प्राधान्यम्, जीवत्परिवेशस्य संरचनम्, आलापस्पर्शद्वारा कथायाः प्रवाहमुखरत्वम्, विषयगाम्भीर्यम्, संक्षिप्तवर्णनम् - इत्यादय अत्र विशिष्यन्ते ।

## ४. मध्येप्रवाहम्

इदमत्र सत्यं यत् भाषायाः साहित्यस्य च परिपोषकप्रवाहरूपेण समग्रविश्वे सस्कृतं विकीर्णं वर्त्तते । पुनश्च अस्य पारम्परिकी शैली सर्वत्र ग्रहणसिद्धा अस्ति । परमत्र प्रश्नः- विज्ञानस्य प्रगतिधारया सह मानवस्य मनः परिवर्त्तते । रुचिरपि संस्क्रियते । किमस्यां परिस्थितौ संस्कृतस्य गतानुगतिकी शैलीप्रथा च सर्वदा सर्वथा च ग्रहणीया स्यात् ? नैतत् सम्भवति । एतदेव मनसि निधाय मया भाषा-प्रयोगे, शैलीविन्यासे, कथासंयोजने, विषयचयने, लेखनस्य प्रवृत्तिनिर्माणे च केचन संस्कारमूलक-पदक्षेपा गृहीताः । अत्र पारम्परिक मूल्यबोधेन सह आधुनिकदृष्टेः समसामयिकप्रवृत्तेश्च समन्वयः प्राधान्यं वहति ।

# ५.प्रेरणाधारा

प्रेरणाभूमौ द्रुमायन्ते अनेके । किन्तु साहित्यप्रवृत्तिषु मे मुख्यतया दण्डायमाना भवन्ति मूर्त्तिमन्तः केचन संस्कृतपत्रिकाणां संपादकाः । तेषु पण्डित वरदराजायङ्गार्यमहाभागः (सं.सुधर्मा-मैसूर) पण्डित केशव शर्मा (सं.दिव्यज्योतिः,शिमला) डॉ0 वीरभद्र मिश्रः (सं.सर्वगन्धा,लखनऊ) डॉ0 रमाकान्तशुक्लः (सं.अवीचीनसंस्कृतम्-दिल्ली) डॉ0 भास्कराचार्य त्रिपाठी (सं. दूर्वा-भोपाल) श्री0 अशोकन् पुरानाट्टुकरा (सं. भारतमुद्रा-केरलम्) पं0 प्राकर रामरत्न शास्त्री (सं.संस्कृताऽमृतम्,दिल्ली) डॉ0 प्रकाशमित्र शास्त्री (सं.पारिजातम्,कानपुरम्) अन्यतमाः ।

पुनश्च पुरोगमनस्य प्रेरणायां मम साहित्यस्य च परिवृद्धये ये उत्तमर्णतां प्रकटयन्ति तेषु डॉ0 सदानन्ददीक्षितमहाभागः (महासचिवः, लोक-भाषा-प्रचार-समितिः, पुरी) आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठि महाभागः (संस्कृतविभागाध्यक्षः, सागर विश्वविद्यालयः, सागरः, म0 प्र0) स्मरणीयस्तम्भ-रूपेण अन्यतमौ ।

अन्ततः सकलप्रस्तुतिपर्याये यस्याः स्मितेन दुर्दिनं सुदिनायते सा प्रेरणाया मे अपरा नीरवधारा---मम पत्नी --- श्रीमती सुभद्रा--- ।

# ००. अदृश्यदिशि

कियत्पर्याप्तं मे चिन्तनम् ? कियान् वा सफलो मे यत्नः तद् विशदयितुं कष्टायते वाग्वृत्तिः । तथापि संस्कृतरचनायां संस्कृतप्राणोऽयं जन इति सन्तोषः । जाने ---, परितो मदर्थम् अनङ्गीकृतेः अप्रत्याशितं सम्भाव्यम् । पुरतश्च बोधविधुरं किमपि अनीप्सितम् । नवाऽवधाने यत् चैतसिकं तत्तु अनिर्वचनीयम् । तथापि अदृश्ये मे रतिः । अदृश्याऽलिङ्गनं च संप्रीतिः ।

# आधुनिकसंस्कृतकविताजगति

## मदीया साहित्ययात्रा

प्रा० डॉ० हर्षदेव माधवः

वस्तुतः साहित्यमेव नदीजलमिव मे प्रतिभाति । सततं परिर्वनशीलं, सदैव नूतनं, सदैव नवनवीनं काव्यकलेवरं 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः' इति न्यायेन नितरां चारुतां वहत्येव । कवेः सर्जनव्यापारो न केवलं कौतुकदर्शनेनैव तृप्तिं गच्छति किन्तु सः विविधकाव्यरचना-वैदग्ध्यभङ्गीभणितिषु व्यञ्जनासाक्षात्कारमपि करोति। संस्कृतभाषायां विपुलं सर्जनं भवति, भविष्यत्येव । संस्कृते बहवः काव्यप्रकारा वर्तन्ते येषु नवनवीनं साहित्यं वर्तते वर्धते च । अतः संस्कृत-भाषा केवलं प्रशिष्टेव नास्ति ।[१]

समुद्भूते राष्ट्रीय-भावना-जागरणे राष्ट्रवादि साहित्यमपि विपुल-प्रमाणमितं समुपलभ्यते संस्कृतभाषायाम् । संस्कृतकाव्येषु दृष्यते राष्ट्र-क्रान्तिदर्शनम् । संस्कृतकवयः स्वयुगचेतनां ज्ञातुं प्रयत्नशीला वर्तन्ते।[२]

नवीनैः कविभिस्त्यक्तं छन्दोबन्धनम् । आधुनिकैः प्रस्थापितो संबन्धः स्वयुगे प्रवहमानाभिर्भाषाभिः सह । आधुनिकसंस्कृतकविः काव्यसर्जनकार्यं समुद्रमंथनं मन्यते । संस्कृते विविधकाव्यप्रयोगा भवन्ति । संस्कृतकविभिः दोहा-सोनेट-खण्डकाव्य-गजल-कजरी-स्कन्धहारीय-चैता-सोहर-चौपाई-चषक-अछांदस-हाइकु-तान्का-मोनो इमेज (एक-बिम्बीयं काव्यम्)-सीजो-लोकगीत-गलज्जलिका इत्यादयो नवनवीनाः प्रयोगाः स्वकाव्येषु निबद्धाः ।

युगानुरूपाः शैली, भावशबलत्वं, नवीनो वाक्यविन्यासः, कल्पन (Image)- प्रतीक (Symbol)- पुराकल्पन (Myth)- इत्यादीनामुपयोगः, उपमान-योजना-परिवर्तनं, अन्यभाषानां प्रचलितशब्दानां स्वीकारश्च संस्कृतस्याधुनिकतां दर्शयन्ति ।[३]

अहं विश्वसाहित्यस्य प्रणयी, साहित्यपदार्थं ज्ञातुकामः साहित्य-यात्राया यात्रिकोऽस्मि । संस्कृतं विश्वभाषाभिस्सह प्रवहेदिति-मे महत्त्वा-कांक्षास्ति । आधुनिकसंस्कृतकवितामार्गे केचित् सीमाचिह्नाङ्किताः स्तम्भाः (Mile-stones) सन्ति येषां साहित्यसर्जनं मे प्रेरणा-पीयूषं ददाति । तेषां महाभागानां स्तुतिं कृत्वा मम यात्रामार्गं दर्शयिष्यामि ।

**डॉ० अभिराजराजेन्द्रमिश्रवर्याः** अयं वाग्देवतावतारः काव्य-पुरुषः सदैव नवनवीनरचनाकारोऽस्ति । नवीना रीतिः, विविधप्रदेशानां लोकगीतानां लयः, वैदग्ध्यपूर्णा पदावली, सरसानि कल्पनानि (Images), मधुरा भाषा, सहेतुका शब्दयोजना, भाषायां प्रभुत्वं, परम्परायाः साक्षात्कारः, रसानां समुचितो विनियोगः, नर्म-मर्म-कटाक्ष-मिश्रिताः वक्रोक्तयः, नवीनतायाः स्वीकारः, विविधप्रदेश- पर्यटनानुभवाह्लादः-एतानि लक्षणानि राजेन्द्रमिश्र-महाभागानां काव्य-रचनासु द्रष्टव्यानि । मह्यम् 'आर्यान्योक्ति-शतकम्' 'वाग्वधूटी' 'मृद्वीका' 'नवाष्टमालिका' रचनाः सुवर्णकल्पा रोचन्ते । डॉ0 मिश्राः आधुनिककाव्यभवन-निर्माणमग्नाः सन्ति ।[४]

**डॉ० रमाकान्तशुक्ल महाभागाः** अयमस्ति रमाकान्तस्य विष्णोर्नूतन एकादशोऽवतारः । यदा काव्यग्लानिर्जाता तदा ह्यनेनावतारेण संस्कृताय सर्जकपौरुषं प्रदत्तम् । रमाकान्तः संभवति संस्कृत-गौरवस्थापनायै संस्कृतकाव्यतत्त्वस्य परित्राणाय च । पर्वतशिखर-कल्पः प्रेक्षणीयः वीरभद्र-प्रतिकृतिरूपोऽयं महात्मा दिग्गजवत् दिगन्तपर्यन्तं काव्यनादं प्रसारयति । अस्यं विभूतिः शोधप्रबन्धस्य विषयोऽस्ति । काव्यरचनाषु सौष्ठवं, वाचि मेघगाम्भीर्यं, गीतिषु वसन्तचैतन्याऽऽ-विष्कारः, नृत्यन्ती शब्दावली, विहसन्ती लय-लतावली, उन्मीलन्ती कल्पनावली----किं गणयामि ? किं न गणयामि ? रमाकान्त-मेघः स्वाति-विन्दून् वर्षति-वर्षयिष्यति । 'भाति मे भारतम्', 'अकालजलद', 'स्वागतं पयोद ते', 'जय भारतभूमे', 'अहं स्वतन्त्रता भणामि', 'मेघप्रबोधनम्' इत्यादिका रचनाश्चिरंजीविन्यः सन्ति । रमाकान्तानां कलहंसमधुरस्वरप्राप्ताः सर्वा रचनाः कर्णयोरद्यापि ध्वनन्ति । तेषां रचापाठः सर्वाधिकलोकप्रियोऽस्ति । अयं सर्वतोमुखीप्रतिभावान्

काव्यतीर्थरूपः सत्कविः समवयस्कानां सहचरश्च नूतनानां कवीना प्रेरणादाताऽस्ति ।

**डॉ० राधावल्लभात्रिपाठिवर्याः** श्रीमन्तस्त्रिपाठिमहाभागाः काव्यमर्मज्ञाः काव्यतत्त्वमधुबिन्दुपानमग्ना मधुपाः सन्ति । आधुनिक-शास्त्राणां गाढमनुशीलनं तैः कृतम् । तेषामभिधानं हिन्दीभाषामपि समलङ्करोति । 'सन्धानम्' इत्याख्येन काव्यसंग्रहेण तैरर्जुनवत् शब्दसन्धानं कृतमस्ति ।[५] छन्दो-बन्धने शुद्धिः, कल्पनाया वैविध्यं, पाश्चात्त्यकाव्य सिद्धान्तानामुपयोगः, अलङ्काराणां समृद्धिः, सौन्दर्यमयानि वर्णनानि-एतत् सर्वं सन्धानस्य काव्येषु विकीर्णमस्ति । कानिचिदुदाहरणानि प्रस्तूयन्ते-

प्रसुप्तानि चिरं गाढं छन्दांस्येतानि जज्ञिरे ।
निद्रामुषसि सन्त्यज्य सन्नद्धाः श्रमिका यथा ।।

(सन्धानम् पृ० ३)

शब्दनौका तरत्येषा साऽऽर्थद्वीपं प्रयाति च ।।

(सन्धानम् पृ० ४)

विधिना च निषेधेन कर्माकर्मविचारितैः ।
उत्सर्गेणापवादेन सकलं जीवनं गतम् ।।

(सन्धानम्-पृ०१२)

मेघच्छाया भ्रमन्त्येषा लज्जयेव जलीकृता ।

(सन्धानम्-पृ०४३)

त्रुटिते प्रेमाबन्धे प्रक्षालित इव मनसो रागे ।
मयि दृष्टिं निदधच्चक्षुर्बाष्पायते किमर्थं ते ? ।।

(सन्धानम्-पृ० ५९)

आधुनिकानां गणनाप्रसङ्गे राधावल्लभाः प्रथमपङ्क्त्यां सन्ति ।।

**डॉ० केशवचन्द्र दाशः** अयं युवा कविर्द्वितीयं मे हृदयं वर्तते । अहं केशवचन्द्रस्य काव्यसुन्दर्याः प्रशंसकोऽस्मि । मम समाकालीनोऽयं कवि-रत्नाकरो विपुलसाहित्यरत्नैः समृद्धोऽस्ति । काव्येषु तस्यापूर्वा रीतिः

केशवचन्द्रस्य सिद्धिरस्ति । बहुशः केशवचन्द्रो मे हृदयस्य वाणीं ब्रवीति। अलकाऽऽख्ये काव्यसंग्रहे तेन मनोहरा काव्यरचनाः प्रस्तुताः ।[६] यथा-

अफतावो निवर्तते
शरत् संबोधनं मम । (अलका-पृ०२)
ऊर्णनाभजालमिव
अस्थिमत्तो जीवः (अलका पृ० २)
मृत्तिकाया गर्भाशये
प्रकाशस्य मूल्यं दातुं प्रस्तुताऽस्ति
अङ्कुरस्य हरितलहरी । (अलका पृ० ६)
राजवधूनाभिरन्ध्रे
अन्धायते कलहंसध्वनिः (अलका पृ० ३३)

**श्री श्रीनिवासरथमहाभागाः** रथमहाभागास्तुरगरहिता रथकल्पाः अभिनवकालिदासा एव सन्ति । तेषां गीतिरचनासु प्रफुल्ला वाङ्माधुरी न विस्मर्यते केनापि ।

**मम साहित्ययात्रा** वर्तमानकविरूपेण प्राचीनसंस्कृतेर्गौरवं अर्वाचीनसभ्यताया वेदना च मे काव्यरचनासु प्रवहतः । शब्दानां, स्वप्नानां, वेदनानां निर्मक्षिकेषु ध्वंसावशेषेषु प्रभ्रष्टोऽस्मि । मम लेखन्यां वेदना, व्यथा, अस्तित्वसंघर्षश्च मन्मतेन मषीभूता । अहं गुर्जर-आंग्ल-संस्कृत-भाषासु काव्यानि लिखामि। विश्वसाहित्ये संस्कृतकविता स्थापना मे संकल्पो वर्तते । मया विविधा काव्यप्रयोगाः विदेशेभ्य आनीताः । 'रथ्यासु जम्बूवर्णानां शिराणाम्' 'अलकनन्दा' इत्याख्यौ काव्यसंग्रहौ मे प्रकाशितौ स्तः ।[७] अन्ये द्वाविंशति-काव्यसंग्रहाः, पञ्चदश नाटकानि प्रकाशनमपेक्षन्ते। अत्र केचित् काव्य-प्रकारा उदाह्रियन्ते ।

'हाइकु' काव्यानि- सूत्रात्मकेऽस्मिन् काव्ये सम्पूर्णं चित्रं, संपूर्ण विचारः कल्पनमेकं तन्यते ५,७,५ संख्यात्मकेषु वर्णेषु ।[८] कदाचिल्लघुचित्रं,

लघुविचारोऽपि दीर्घचिन्तनं प्रति चिन्तनशीलमानसमांकर्षयत्येव । यथा-

* मम स्वप्नास्तु
मोहें-जो-दडो-गृहं,
को वसेत् तत्र ? ।।'

* पारिजातकं/---
त्वया सह यापिताः
काश्चिद् यामिन्यः ।।

* शुकरूपेण
वृक्षात्मा पलायते
तक्षकं दृष्ट्वा ।।

* निशीथे सिंह-
नादः सुप्ता जागर्ति
राष्ट्र-चेतना ।।

'तान्का' काव्यानि- अयं जापानदेशीयः काव्यप्रकारः 'वाका' इति पदेनाप्यभिधीयते । पञ्चपादयुक्तेऽस्मिन् काव्ये प्रतिपादं क्रमशः, ५,७,५,७,७, संख्याका वर्णाः भवन्ति । जापानदेशे नूतनवर्षोत्सवेऽद्यापि चत्वारिंशत्सहस्राणि तान्काकाव्यानि काव्यस्पर्धायां प्रस्तूयन्ते । प्रणयिनस्तान्का-माध्यमेन स्वं प्रणयं परस्परं सूचयन्ति । उदाहरणानि-

(मधुरजनीचित्रं) * शङ्का । प्रवेशः ।
स्वेदः । रोमाञ्चः । स्पर्शः ।
दीपशमनम् ।
कम्पः । स्तम्भः । न जाने
अतः परं न जाने ।।

* वेश्यापर्यङ्के
वाक्षसवस्त्र-(Braassieres)गन्धः
उदिते चन्द्रे
रञ्जयति ताम्बूलं
क्वाथेन युवा हट्टे ।।

* चक्रं भ्रमति ।
कुम्भकारः पश्यति ।
वृद्धोऽनुशोचति ।
(आशुविनाशि-सर्गं
दृष्ट्वा ब्रह्मा सर्जनम् ।।)

* शिरसि घटं
वहन्ती, चालयन्ती
कपोलालकम् ।
पदस्खलनत्रस्तम्
उच्छलति मे हार्दम् ।।

* सहसा पार्श्वे
बसयानस्याऽऽसने
काऽपि युवतिः ।
रोमाञ्चे ऋतुस्पर्शः ।
स्कन्धे कोरकोद्भवः ।।[१]

लघुकल्पनकाव्यानिः- 'मोनो इमेज' काव्यानि अस्याः शताब्द्या आरम्भे आङ्ग्लसाहित्ये एझरा पाउण्डेन तत्समकालिकैश्च कविभिरुद्भावितानि । 'इमेज' (कल्पन)- काव्यं तत्क्षणमेव बौद्धिकं भावपूर्णं च बिम्बं मनसि जनयति ।[१०] उदाहरणानि-

नगरं- बुद्धस्य भिक्षापात्रे
निमज्जितमस्ति
अणुबोंबदग्धं नगरम् ॥

उष्ट्रः- उष्ट्रमुखे नासीत् तुलसीपत्रम् ।
नासीद् गङ्गाजलम् ।
केवलमासीत् तृषा ।
अक्ष्णोर्मुष्टिमुद्घाट्य
पलायितं रणम् ॥

समुद्रः- समुद्रेण बन्दीकृतद्वीपवत्
जनसङ्घातेऽहं वसामि ।
विविक्ते मयि
बहवः समुद्रा वसन्ति ॥

द्वीपः- कलकत्तानगरस्य
सोनागाच्छी रूपाजीविन्याः जङ्घा
द्वीपेन न दृष्टा ।
अतो द्वीपो द्वीपे वसति ॥

रणम्- आप्रलयाद् रणं रणमस्ति ।
उष्ट्र उष्ट्रोऽस्ति ।
प्रलयोत्तरात्
उष्ट्रो रणं भविष्यति
रणमुष्ट्रो भविष्यति ॥

ईश्वरः- हे ज्योर्तिविदश्चटके !
दर्शय मे भवितव्यमीश्वरस्य ॥

चुम्बनम्-ओष्ठद्वयस्य शुक्तिपुटे
चुम्बनमस्ति मौक्तिकम् ॥

'सीजोकाव्यानि-'सीजो' इत्याख्यः काव्यप्रकारो मया दक्षिणकोरिया देशस्य काव्यसाहित्यादानीतः । अयं काव्यप्रकारोऽतीव प्राचीनो वर्तते । अस्मिन् काव्यप्रकारे कोरियादेशस्य सौन्दर्यं, जनानामावेगः, राष्ट्रभावनाः परंपरागौरवम् एतत् सर्वं कविभिः प्रकटीकृतम् । त्रिपङ्क्तिमयं काव्यस्वरूपमिदमस्ति । अत्र पञ्चचत्वारिंत्शसंख्याकाः वर्णाः (In origin Sijo syllabic counts round 45) निश्चिताः कृताः । प्रति 'सीजो' काव्यं स्वयं सम्पूर्णं भवति । अत्र त्रयश्चत्वारो वा वर्णसमूहाः (Phrase) भवन्ति । प्रथमपङ्क्तौ वस्तुनिरूपणप्रारम्भः ('chi' means the rise or statement of the theme) द्वितीयपङ्क्तौ कथावस्तुविकासः ('cheng' means connection or development of theme) तृतीयपङ्क्तौ कथितव्य-वक्रता चमत्कृतिपूर्णा समाप्तिश्च ('chuan' means a roll or twist of the theme, "chieh" means conclusion or resolution of the theme) अत्र केन्द्रस्थाने वर्तते।[११] यथा-

* बद्धदुर्गे शस्त्रवर्षाः
अग्निज्वालाः/मंत्रणा/
शौर्यनादाः/रोदनानि
नाशयुक्ता यन्त्रणा ।
अस्ति रात्र्यां स्नेहशब्दे
वीरतायाः प्रेरणा ।।

* पौरजना हर्षोन्मत्ताः
पटहे जयघोषः ।
हतोऽस्ति रिपुः समरे
सफलो राज्ञो रोषः ।
हतः स विधवायै मे
युद्धं न, भाग्यदोषः ।।

* अश्वा ज़ाताः/प्राणा जाताः/
जातो वायुर्मनसि ।
शैलाः/नद्यः/वृक्षाः/आशाः
वसन्ति मे रहसि ।
मृदः प्रत्यणौ मयि
त्वमसि-तत् त्वमसि ।।

* कुम्भस्नाने मग्नाः सर्वे
क्लिन्नशरीरा याताः ।
धावन्ति गायन्ति स्नान्ति
किं स्नाताः खलु स्नाताः ?
मयि मृत्तिका-गर्भे
गङ्गाया धारा जाताः ।।

भाषाकर्म-कदाचित् प्रतीककल्पनविचाराभिव्यक्तिः भाषायां शब्दैः, सङ्केतैः, अन्यशास्त्राणां गणित-विज्ञानभूमिति । रसायनशास्त्रादीनां

संज्ञाभिः सौन्दर्यं प्राप्नोति । अत्र मुद्रणतान्त्रिकीविद्या (printing technique) अपि साहाय्यं करोति यथा

सर्पोक्तिः

हे स ज्ज नाः! यु ष्म द्वा ग्व च न प्र ण य व्य व हा र स दृ शी मे ग तिरस्ति!

अत्र सर्पस्य गतिरिव मानवस्य वक्रदर्शनं मुद्रणकलया सूच्यते ।

हाइकुकाव्यमेकम्-

गतः सूर्यो हा !
धिक् ! तिमिरमभितः
प
र्ण
प
त
न
म् ।

अत्र पर्णस्य पतनं शब्दरचनामिषेण निर्दिष्टमस्ति ।

अन्यत्रापि-

ऑफिस-चिन्ता
× गृहिणी + उपनेत्रं
% क्षयः = जीवितम् ॥

अत्र गाणितिक-संज्ञाभिः सूचितमस्ति जीवितम् ।

ईश्वरविषये काव्यमिदम्-

0 रज्जुः ।
सर्पः ॥
0 नान्दी ।
भरतवाक्यम् ॥
0 ?
!
॥

अत्र भाषाया विरामचिह्नैरीश्वरः प्रश्नार्थः, जगतः परममाश्चर्यं तथा च सर्वतर्काणां विरामोऽस्तीति दर्शितम् ।

<u>'प्रतिच्छाया'</u> (Shadow)- काव्यमपि सङ्केतयुक्तमस्ति ।

प

त प्रतिच्छाया < याच्छातिप्र पापकर्मसमा

ति श्याना श्यामा ।

द् ई ई ई ई ई -----र्घा आ---आ------आ ----

न

म

ति शनैः शनै वृद्धावस्थावत्----।

उलूकमुखी प्रतिच्छाया प्रतिनिवर्तते <--- प्रकाशात्

--->

--->

---> आक्रामति (ब्रूटसवत् पृष्ठे जुलियस सीझर ! पश्य ।)

छि/न्ना/ला भ्र/ष्टा/मलीना

अपि च धूमवत् न वि/श्य ति चिताग्नौ वलयाकारे ।।

<u>'काष्ठासनं'</u> इत्यस्मिन् काव्ये सर्वकाराधिकारिणां सत्ता-

मदिराप्राप्तौ गर्वः सूचितोऽत्र-

य उच्चपीठवत्

त् तत् --> कथं --> ज निषिदतः->मू स्मरेत् ?

का ड ढ

ष्ठा सनं न स्मरति स्य स्य

शा स्क वृ व मानवस्य

खा न्ध क्ष न

याः स्य स्य स्य

अत्र ह्याकृतिमिषेणाधिकारिवर्गस्य जनतां प्रति प्रभुत्वाविवेकिताद्वयं सूचितमस्ति ।

कदाचित् कविः कञ्चिदर्थं सूयचितुं भाषानियमानां उल्लङ्घनमपि

करोति । 'यन्त्राणि' इत्याख्ये काव्ये यन्त्राणां पौरुषं परतन्त्रमानवस्य क्लैब्यं च दर्शयितुं मया 'यन्त्र' शब्दः पुल्लिङ्गे प्रयोजितः । यथा-

<u>यन्त्राणि</u> (Surreal काव्यम्)

लोहमया हस्ताः/पादाः/दन्ता/ कर्णाः/वर्णाः
हार्दानि लोहमयानि
लोहमयं रक्तं/वीर्यं/स्मरणं/मरणं/करणं /शरणं
ननु लोहमयं बत ! लोहमयं
(शयतानाः रे ! जायण्टा रे ! यन्त्र-पुरुषाः पुरुषयन्त्राः)
रक्तं (तैलम्) रक्तं (विद्युद्हव्यं कव्यम्)
रक्तं नक्तं (निशाचराः --वा विषाजरा--वा--धराधराः--वा)
नक्तं कामायन्ते ----''

यन्त्रसंस्कृतिर्मानवानां विध्वंसं करोति तदप्यत्र सूचितम्-
कचऽक् पिष्टाः---रुकसुक् पिष्टाः
भचऽक् पिष्टाः भुकसुक् पिष्टा :
वयं च पिष्टाः, वयं चूर्णिताः, वयं खण्डिताः
वयं च कचऽक् वयं च पिप्पीप् वयं च कचऽक्
कचऽक् कचऽक् वयं यवं वच् चररर् वच् -- यच् -- ''[१२]

अस्मिन् काव्ये यन्त्राणां कृते ''जायण्ट'' (राक्षसकायानि) च ''शयतान'' (दैत्यस्वरूपाणि) इति शब्दद्वयम् आंग्ल-उर्दू भाषाभ्यां गृहीतम् ।

<u>पिरामिड</u> (PYRAMID) काव्यम् -

हा
धिक्!
श्यामः
पर्वतः
घनीभूतः
शोकसदृशः
जडत्वसाक्षात्कारवत्,
मृत्योरनुभूतिक्षण इव,
भूतकाल-ध्वंस-वैभव इव,
यक्षविप्रयोग-श्यामायमानो ननु,
अपकृत्यजातपापैरिव मलीनः खिन्नः
प्रणष्टुमिच्छन्नपि जीवितं धारयति
वत ! धृतराष्ट्रवत्--जीवितान्धोऽशक्तोऽस्ति ।।

अत्र मया पर्वतस्य नैराश्यं, पर्वतस्य स्थूलत्वं, पर्वतस्य स्वरूपं पिरामिडाकारेण दर्शितमस्ति ।

मया विविधछन्दसामपि प्रयोगाः कृताः । 'बृहन्नला' इत्याख्यं महाकाव्यमपि निर्मितम् । गज़लकाव्यान्यपि लिखितानि । मम काव्यसंग्रहात् कानिचिदुदाहरणानि प्रस्तूयन्ते-

कदाचित् सुखदायकं----मृत्युं
'अमृता शेरगिलं' चित्रितचित्रमिव
पश्येयम् ।। (मृत्युः, पृ० ५)
हे पुष्पदारिके !
त्वं ऋतुसम्राज्ञी ।
अहमागत आग्नेयकीटविभवः
पतङ्गवाह्येन रथेन ।। (पतङ्गवाह्येन रथेन, पृ० २)

समुद्रः

जिप्सीयुवतिपृष्ठदेशसमोऽनावृतः ।

समुद्रः

हवसीनेत्रप्रतिमः श्यामः ।

समुद्रः

होनोलुलु-सुन्दरिहस्तसन्निभो मसृणः । ---

परमपुरुषशय्येव कमलपत्रकोमलः ।। (समुद्रः पृ0 १३)

जवितं न हि जीवितं किन्तु व्यथा ।

तत्खलु रामायणी दीर्घा कथा ।। (पृ0 २२)

त्वया निर्मितं विश्वमेतन्न सौख्यम् ।

मधु नैव पात्रं च सृष्टं तथापि ।। (पृ0 २४)

क्रौञ्च भ्रातः ! निहतसखीकस्त्वं शृणु ।

हा ! खलु प्रणये व्रणः, प्रणये व्रणः ।। (पृ0 २४)

(वर्षाकालः) शरविद्धमिव मे मनः स्वप्नेषु त्वं क्वचित् ।

आषाढमिव पश्यति टापुर्-टुपुर्-टुपुर् ।।

वक्षसि श्वासायते अटलाण्टिकः ।

कौमुदीनां संहतिस्त्वं सारसि ।। (पृ0 २५)

पयो-दर्पणे प्रतिबिम्बानि ।

कौतुकेन पश्यन्ति वृक्षाः ।। (पृ0 २६)

वसन्तलक्ष्म्याः पश्य कानने ।

प्रसूननिकरे पदचिह्नानि ।।[१३] (पृ0 २९)

इत्थं ह्याधुनिककविता प्रतीकैः, चिह्नैः सङ्केतैः, पुराकल्पनैः सुसमृद्धा भवितुमिच्छति । संस्कृतकविता कदाचिन्नोबेलपारितोषिकप्राप्तिक्षमतां प्राप्नुयात् इत्येषा मे शुभकामनाऽस्ति ।

अयं लेखः संस्कृतभाषाया उत्तुङ्गशिखरभूतानां रमाकान्तानां चरण-कमलयोः अर्घ्यरूपेण समर्पितोऽस्ति

## संदर्भ-सूचिः


१- डॉ0 राधावल्लभत्रिपाठिमहाभागानां 'विश्वविद्यालय-अनुदान- आयोगेन ६-८ तारिकासु (डिसेम्बर,८९) सागर-विश्वविद्यालये आयोजितायां संगोष्ठ्यां दत्तं व्याख्यानं द्रष्टव्यम् ।

२- श्रीराम दवे ''आधुनिकसंस्कृतलेखकानां युगबोधः'' 'आधुनिक संस्कृत साहित्य' राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, प्रथम संस्करण, १९८७ पृ0 १६-२१ ।

३- डा0 चन्द्र किशोर गोंस्वामी ''आधुनिक संस्कृत काव्य में युगबोध'', आधुनिक संस्कृत साहित्य, पृ0 २६-४३ ।

४- विशेषद्रष्टव्यः- अर्चना त्रिवेदी ''अभिराज डॉ0 राजेन्द्र मिश्रका व्यक्तित्व एवं काव्यसंग्रह'' सागर विश्वविद्यालय-संगोष्ठ्यां प्रस्तुतानां पत्राणां सञ्चये स्थितो लेखः ।

५- डा0 राधावल्लभ त्रिपाठी, 'सन्धानम्' संस्कृत-परिषद्, सागरः १९८९

६- डॉ0 केशवचन्द्रदाशः ''अलका'' लोकभाषाप्रचारसमितिः, पुरी।

७- 'रथ्यासु जम्बूवर्णानां शिराणाम्', संस्कृत सेवा समितिः, अमदाबादः 'अलकनन्दा', पार्श्व प्रकाशन, अमदाबादः ।

८- द्रष्टव्या- 'संवित्' (मुंबई) ऑगस्ट-नववंर १९८३ पत्रिका पृ0 ४०-४४ अपिच, सुरभारती (वडोदरा) १९८५-१९८६ पत्रिका (पृ0 १५-२०)- स्थितः डॉ0 अरुणोदय जानी-महाभागानां लेखः ।

९- द्रष्टव्यम् 'अर्वाचीनसंस्कृतम्' दिल्ली पत्रिकायाः (२५ अप्रेल,१९९०) तान्का स्तवकम्, पृ0 २०२-२०४ ।

१०- An image is that which presents the intellectual and emotional complex in an instant of time [F.S. Flint and Ezra Pound: Poetry Vol. I, 1913 P. 41]

११- See the introduction of Kim Unsong, translator of Sijo in English : Poet' English international monthly' Korean Poetry, Madras- March 86 : PP- V.VII.

१२- द्रष्टव्यानि ''साम्मनस्यम्'' (नवं0 ८५) अमदाबाद संस्कृत पत्रिकायां परावास्तववादस्य (Surrealistic Approach) भूमिकासहितानि काव्यानि, पृ0 २२-२४।

१३- उदाहरणानि 'रथ्यासु जम्बूवर्णानां शिराणाम्'' इत्यस्मात् काव्यसंग्रहात् प्रस्तुतानि।

# मदीया काव्ययात्रा

कविरत्नम् ओम्प्रकाश ठाकुरः

भारतविभाजनादनन्तरं हिंसानलदंदह्यमानात् पाकस्थानात् कथंकथंचिदात्मरक्षां विधायाऽहं सपरिवारो दिल्लीं प्राप्नवम् । मुजफ्फरगढ मण्डलान्तर्गतम् अलीपुरम् (सम्प्रति पश्चिमीये पाकस्थाने) मम जन्मभूमिः। २० सितम्बर १९३३ तमे वर्षे जन्म । आंग्ल-आरब्य-पारस्य-भाषाणां नदीष्णः श्रीपोखरदासो ममं जनकः, सद्गुणपरिवृढा श्रीमती कृष्णादेवीच मे जननी ।

अत्रागत्य शास्त्रि-सहित्याचार्य-एम0 ए0 (संस्कृते) परीक्षाः समुत्तीर्य अध्यापनवृत्तिमूरीकृतवान् । विद्वद्वर्येभ्यः श्रीदिलीपदत्तशर्मोपाध्यायेभ्यो मया काव्यप्रेरणाऽधिगता । तेषां प्रतापचम्पूकाव्ये आल्हादिच्छन्दोभि-निर्बद्धानि गीतानि मां गीतिलेखने प्रैरयन् ।

अद्यावधि शताधिकगीतयः कविताश्च मया विरचिताः सन्ति । तासामेकं संकलनं 'इन्द्रधनुः' नाम्ना अचिरादेव प्रकाशमेष्यति ।

मम काव्ययात्रा 'सरस्वतीवन्दना' गीतेः प्रारभते :-

अयि वीणापाणे वाणि !<br>
तव चरणौ शरणं करवाणि । ध्रुव0<br>
विविधहेमरत्नालंकरणै-<br>
स्त्वामंचति विविधं धनिलोकः<br>
किं श्रद्धोपेतं दलमेकं<br>
पदयोर्नहि निदधानि । (साकेत १९५२)

१९५६ तमे वर्षे 'क्षुधितपाषाणम्' नामैकं रूपकम् आकाशवाणी-दिल्लीतः प्रसारितमभवत् । तस्मिन्नेव वर्षे पुराणदिल्लीरेलवे -स्टेशनस्य समक्षे प्रतिष्ठापितायाः श्री गान्धिमूर्तेराधारस्तम्भे श्रीगान्धिस्तवनात्म-

कमेकं भावानुवादपरं ममैकं पद्यमेवमुट्टङ्कितमभवत्-

श्रीगान्धेः प्रतिभा विभाति पुरतो राष्ट्रस्य श्रद्धात्मिका
कामं गौरवसंयुता परमियं यास्यत्यवश्यं क्षयम् ।
लोके लोकमनोविराजिततमां दिव्यां सुवन्द्यां च तां
भेत्तुं नासि कृती कृतान्त! न वशे यावन्नरात्मा हि ते ।

मम रचनानां कालक्रमे भूयानन्तरालोऽपि विद्यते । सुचिरं विश्रान्ता लेखनी सहसा गतिमपि लभते । भारते विश्वेऽपि च यद् घटनाचक्रं समाजमान्दोलयति, तत् साहित्यमपि प्रभावयति । धार्मिकोन्माद-हिंसा-दलगत राजनीति-स्वार्थक्रीडा-संस्कृतसंस्कृत्युपेक्षा-विज्ञान-युगीन व्यस्तता-युद्धोन्माद-जीवनमूल्यावमूल्यनादयो ये ये भावाः समये समये समाजे राजनीतौ चाविर्भवन्ति तान् प्रति व्यंग्येन वा, परिहासेन वा, आक्रोशेन वा प्रबोधदृष्ट्या वा यल्लिखामि, तदेव पत्र-पत्रिका-माध्यमेन काव्यरसिकानां सेवायां प्रस्तौमि । भाव-भाषादि-गतं वैशिष्ट्यं वा नैयून्यं वा काव्यमर्मज्ञा एव विदन्ति । सुधीपाठकानां मनोविनोदाय मम रचनानां केचिदंशा इहोपन्यस्यन्ते :-

१. ये गिरीणां गर्वभंगे सक्षमाः
उत्तरंगतरंगिणीतरणे क्षमाः
अद्भुतं कर्तुं किमपि बद्धस्पृहाः
युवजनैरेतादृशैर्भूषितगृहाः
ध्वंसमार्गे वर्तमानास्ते कथं
युवजना देशे दिशाहीनाः कथम् (अन्तर्वेदना)

२. त्वत्कृते संविधानं कपटदम्भयोः
विस्तृतोऽध्वा पुरः क्लान्तिसंघर्षयोः
त्वं गवाक्षेऽपि नालोक्यसे नन्दिनि
यावदाभाति नोत्कोचकादम्बिनी (आजीविका) ।।

३. गर्वमुच्चैस्त्वं प्रधारय
नर्तयेः लोकं समस्तं
प्राप्तविज्ञानप्रसादो
धारयस्व निधिं प्रशस्तं
दारुपुत्तलिकेव सर्वा
संस्कृतिस्ते क्रीतदासी
तव निदेशे वर्तिनी सा
त्वं प्रदीप्ताभाविभासी । (विज्ञानयुगीनं मानवं प्रति)

४. क्रयशक्तिस्ते लोके प्रथते
भूमौ सर्वो दास्यं भजते
ह्रेषितमश्वीयं गजरसितं
मुग्धानां वनितानां हसितं
नूपुररणितं ललितं भणितं
गीतं वाद्यं लास्यं क्वणितं
हावो भावो लीलाचलितं
गर्वो निष्ठा दृष्टं वलितं
पांडित्यं प्रतिभानं विदुषां
बुद्धेर्नैपुण्यं बुद्धिमतां
वीराणां दिग्विदितं शौर्यं
वधकाण्डे क्रूराणां क्रौर्यं
किं किं नो लोके क्रीणासि
केषां शान्तिं नो मुष्णासि (नाणकरणितम्)

५. नेदं विचारितं प्राक् मिथ्या समेऽवलम्बाः
किंचित्करा न सन्ति भूमौ धनादिदम्भाः

आश्रित्य यानभूवं दर्पेण ह्याध्माताः
उत्तुंगवीचिमाले जलधौ निपात्य याताः ।

(को वेद किं वदानि)

६. इन्द्रपुरीसमरम्या दिल्ली प्रोच्चानां हर्म्याणां धर्त्री
त्रिभुवनविजयवैजयन्तीयं सन्ततमुत्सवमध्यविहर्त्री
यथा रहस्यकथाऽऽवर्जयते घटनामयी जनानां चेतः
तथा नित्यनवघटनापूर्णा दिल्लीयं हरते जनचेतः

(दिल्ली)

७. विश्वे विभिन्नदिग्भागेषु पश्यामि कदाचिद्विहरन्ती
हिब्रू-जर्मन-लैटिन-रशियन-ग्रीकाद्याः पुत्रीर्दौहित्रीः
नानावर्णा नानावेषाः धारितभौगोलिकसंस्काराः
निवसन्तीर्जनसमुदायेषु पोषितनिजलघुगुरुपरिवाराः
भाषाविज्ञानविदोऽस्माकं विस्मृतसम्बन्धं पूर्वतनम्
आभाष्य पुनर्ब्रुवते वाचां तासामेकान्वयतो जननम्
वसुधामखिलां निजपरिवारं संवीक्ष्यानन्दपुलकिताया
गातुं मे मनस्तदा कुरुते हरिमहिमानं स्फुरदधरायाः

(संस्कृतवाणी)

# मदीया साहित्ययात्रा

डा0 मदन लाल वर्मा

डॉ0रमाकान्तशुक्लमहोदयेन सह मम प्रथमः परिचयो हरियाणा-प्रदेशस्य पावनतीर्थधरित्र्यां कुरुक्षेत्र-नगर्यामेकस्यां संस्कृत-कविगोष्ठ्या-मगस्तमासस्य षड्विंशतिदिनाङ्के १९८८ तमे ख्रिष्टाब्देऽभूत् । हर्षस्य खल्वयं विषयो यत्तस्य महाभागस्याभिनन्दनस्य कार्यक्रमो निर्धारितः। उपलक्ष्येऽस्मिन्नहं निजालेखं प्रस्तौमि- 'मदीया साहित्य-यात्रा।'

मदीया साहित्य-यात्रा तदैवारव्धा, यदाऽहं लायलपुरस्थे (वर्तमान पाकिस्तानदेशे) ऋषिकुलाश्रमसंस्कृतमहाविद्यालये प्राज्ञकक्षायाश्छात्र आसम् । मम प्रथमो लेखः ''दो मार्ग'' इति महाविद्यालयस्य पत्रिकायां प्रकाशितः । लेखेऽस्मिन्मया दैवीमार्ग आसुरीमार्गश्च-द्वौ पन्थानौ चर्चितौ। तदनन्तरं विकीर्णरूपेण संस्कृतभाषायां हिन्दीभाषायां च लेखनकार्यं सगतिकमासीत् । कार्यमेतन्निबन्धरूपेण प्रमुखमवर्तत ।

पुस्तकाकारे साहित्ययात्राया अधुनापर्यन्तं निम्नलिखितनिवेशानहं समपूरयम्-

१. हिन्दी काव्य में युद्धवर्णन-वैशिष्ट्य (शोधप्रबन्धः)

२. व्यावहारिक हिन्दी व्याकरण

३. काँटों से बिंधा गुलाब (उपन्यासः)

४. विचारवीथी (संस्कृत-निबन्ध-संग्रहः)

हरियाणा-साहित्य-अकादम्या पुरस्कृतो ग्रन्थः,

५. रूपारूपे (संस्कृतोपन्यासः)

हरियाणा-साहित्य-अकादम्या पुरस्कृतो ग्रन्थः

६. गिरिकर्णिका (संस्कृतगद्यगीतानि)

हरियाणा-साहित्य-अकादमी-अनुदानेन प्रकाशितो ग्रन्थः

७. गुज़रे वक्त की याद (कथानिका-संग्रहः)

८. नवनिमन्त्रण (कविता-संग्रहः)

हरियाणा-साहित्य-अकादमी-अनुदानेन प्रकाश्यमानो ग्रन्थः

एतेषां पुस्तकानां प्रकाशनातिरिक्तं ''कहूँ कहानी'' इत्याख्यस्य पुस्तकस्य सम्पादन-मण्डलस्य सदस्यरूपे यात्राया अन्याऽवस्थितिरायाति ।

शोधलेखाः, काव्यबन्धाः, निबन्धाः, कथानिकाः- संस्कृतभाषायां हिन्दीभाषायां चानेकेषु ग्रन्थेषु पत्रिकापत्रेषु च प्रकाशिताः । स्व साहित्य यात्राया हिन्दीविश्रामस्थानानामत्र विवरणमदत्वा गीर्वाणवाण्या दृष्ट्या त्रयाणां निजप्रमुखपुस्तकानां संक्षेपेण विवेचनं दीयते-

## १. विचारवीथी

मम प्रथमे ग्रन्थे 'विचारवीथ्यां' साकल्येन षोडश निबन्धास्सन्ति । एतेष्वधो लिखितेभ्यो षण्णिबन्धेभ्यो मया भाषाविभाग-हरियाणा-प्रदेशात् पुरस्कारः प्राप्तः-

१. कोऽयमीशः २. मानवश्चन्द्रमाश्च ३. वैज्ञानिकानां तपश्चर्या ४. युगसत्यधारणाया औचित्यस्य विश्लेषणम् ५. सौन्दर्यपरिज्ञानम्: विश्लेषणमेकम् ६. सुखदुःखवादौ इति ।

अपरेषु निबन्धेषु - १. प्रश्नोपनिषद्यध्यात्मज्ञानम् २. संस्कृत-चम्पूकाव्यानि, ३. गीतायामर्जुनस्य विशिष्टाभिधानानां सार्थकत्वम्, ४. अधिनायकवाद उत वा प्रजातन्त्रवादः, ५. नानकस्योपासनाभावः, ६. अस्म्यहमेकाकी, ७- वैदिककालीनं युद्धम्, ८. लौकिकसंस्कृतकाव्येषु रणनिरूपणम्, ९. कथानकदृष्ट्याऽऽधुनिकहिन्दीमहाकाव्येषु संस्कृतस्य प्रभावः १०. चरित्रचित्रणदृष्ट्याऽऽधुनिकहिन्दीमहाकाव्येषु संस्कृतस्य प्रभावः इमे दश निबन्धा विद्यन्ते । विषयस्य दृष्ट्यैतत् सुव्यक्तमेव यदेषु केचिन्निबन्धाः साहित्यिकाः केचन च ललिताः ।

## ८. रूपारूपे

मम द्वितीयं पुस्तकमास्ति- 'रूपारूपे' उपन्यासः। अम्बिकादत्तव्यासस्य

'शिवराजविजय' नामाख्योपन्यासस्यानन्तरं कियन्तः समाजिका उपन्यासाः संस्कृतसाहित्ये समुपलब्धाः सन्ति । एतत्तु विचारणीयम् ।

'रूपारूपे' सामाजिकः प्रथमः संस्कृतोपन्यासो मम । एतस्मिन् सामाजिकदृष्ट्या वर्णितानां घंटनानामाधारे सिद्धपुरुषस्यैकस्य जीवनचैतन्यं विद्यते । तस्य द्वे रूपे स्तः । एकस्मिन् दिव्यरूपेऽसौ स्वश्रद्धावत्सु जनेषु गृहीतादरो द्वितीयं च तस्य रूपं गार्हस्थ्यं सांसारिकमस्ति । तस्य प्रभावेणैकः प्रध्यापकोऽपि यतते तेन सदृशो भवितुं, परमसौ कुत्रपर्यन्तं साफल्यं लभते इत्येतत्तथ्यमधिगन्तुं पठनीयोऽयमुपन्यासः । रूपारूपे भगवद् दृष्ट्याऽप्यस्मिन्नुपन्यासे संलक्षिते-एतस्मादेव कारणादस्योपन्यासस्य शीर्षकं 'रूपारूपे' इति कृतं, यत्प्रतीकार्थमपि प्रकटयति ।

डॉ0 सुधीकान्तभारद्वाजमहाभागेन (संस्कृत-पालि-प्राकृत-विभागे, महर्षि-दयानन्द-विश्वविद्यालयस्य रोहतकस्य पूर्वाध्यक्षेण) पुस्तकस्यास्य भूमिकायां लिखितमस्ति यत् -

''प्रमोदस्य खल्वयं विषयो यद् डॉ0 श्री मदनलालवर्म्मणा विरचितस्य 'रूपारूपे' इत्याख्यस्योपन्यासस्य भूमिकां लेखितुं लब्धावसरोऽस्मि ।

विपुलरुचिरसाहित्याध्माते सत्यपि संस्कृतवाङ्मये गद्यसाहित्यस्य सर्वथा न्यूनतैवानुभूयते । प्राचीनसंस्कृतसाहित्ये केषाञ्चिदेव साहित्यकाराणां नामानि विद्यन्ते गद्यलेखनक्षेत्रे । यदप्यल्पं गद्यसाहित्यमुपलभ्यते तस्याधिकांशः साहित्य-निकष उच्चार्घतां धारयन्नपि क्लैष्ट्येन हतानन्दोऽस्ति । केषाञ्चिदेव कृतभूरिश्रमाणां परिणतबुद्धीनां विदुषां कृत एव कादम्बर्यादीनां रसास्वादनं जायते । सामान्यपाठकास्तु रसोपवन-प्रवेशात्पूर्वमेव वेलासु कीर्णैः समासकण्टकैरिव प्रतिहतगतयः पराजिता इव निवर्तन्ते । अत एव संस्कृते सरसगद्यसाहित्यस्यावश्यकता बहुकालादन्वभावि ।

आधुनिकाः केचन प्रतिभामण्डिता विद्वांसोऽभावमिमं पूरयितुं परिश्रमन्ते । डॉ0 श्रीमदनलालवर्मणोऽपि नाम तेषां कोट्यां विद्यते । डॉ0 वर्मणां महाभागानां लेखनीसरित् हिन्दी-संस्कृतयोरुभयोरेव क्षेत्रयोः सततं प्रवहति । तेषां महाभागानां 'विचारवीथी' इत्यभिधानं संस्कृत-

निबन्धसंकलनं हरियाणासाहित्य-अकादमी-पुरस्कारमण्डितं पूर्वमेव प्रकाशितं संस्कृतगद्य-साहित्यस्य गौरवं वर्धयति।

'रूपारूपे' इत्युपन्यासः संस्कृतगद्यसाहित्यस्य गरिमाणं वर्धयिष्यतीति विषये नास्ति काऽपि विचिकित्सा। आधुनिकशैल्यां विरचितोऽयमुपन्यासोऽतीव सरसः सरलश्च विद्यते। नातिदीर्घानि वाक्यानि सामान्यसंस्कृतज्ञातॄणामल्पधियामपि बुद्धावर्थं सहजं प्रस्फोटयन्ति हृदयञ्च रसाप्लावितं कुर्वन्ति। अस्योपन्यासस्य विषय आधुनिको विद्यते। सुरुचिपूर्णशैल्यां निगदितोऽप्ययमुपन्यासो गूढाशयं वहति यः खलु हृदयानन्दं वर्धयन् बुद्धिं परिमार्ष्टि।

हरियाणा-साहित्य-अकादमी-अनुदानेन प्रकाश्यमानोऽयं ग्रन्थः संस्कृतसाहित्यस्य विशिष्टोपलब्धिरस्ति। अस्य लेखकः भूयसः साधुवादानर्हति। आशासे भविष्यत्यपि संस्कृतसाहित्यं तस्य लेखनी सुतरां सततमुपकरिष्यति।''

कानपुरविश्वविद्यालयादस्मिन् पुस्तके शोधकार्यं भवन्नस्ति ''डॉ० मदन लाल वर्मा द्वारा रचित रूपारूपे का साहित्यिक मूल्यांकन'' इति। घटनमेतदुपन्यासस्य महत्त्वं स्वत एवोद्घाटयति। इदमेव नापितु हरियाणा-साहित्य-अकादमी पुस्तकायास्मै मह्यं पुरस्कारं दत्वा ग्रन्थस्य वैशिष्ट्यं स्वीचकार। पुस्तकस्याधोलिखितानि त्रीणि स्थलानि द्रष्टव्यानि-

'यावत्पर्यन्तं कपोलेन सह कपोलो न संमिलेत् अंगैः साकमंगानि न स्पृशेयुः, तावत्पर्यन्तं क आनन्दः। अहं स्त्रीपुरुषयोर्न कमपि भेदमवगच्छामि। वस्तुत एक एवेश्वरः स्त्रीपुरुषयोरुभयोः रचयिताऽस्ति। उत वा त्वमेव कथय, प्राध्यापक! एतस्या ललनायाः स्रष्टा कोऽप्यपरः परमात्मा विद्यते?'' (पृष्ठ १५)

''ईश्वर आत्मानमरूपमरचयत्। वयं तस्याभिधानं जानीमहे, परं तं वयमद्यपर्यन्तं नापश्याम। पश्येमापि तु कथम्, तस्य किमपि रूपं न वर्तते। तेन स्व-रूपस्य प्रतिरूपभूता वयं सर्वे प्राणिनो रचिताः। जगदिदं निखिलं तस्यैवास्ति। तस्यैव किम्, स एव तु विद्यते साकल्येनात्र, अन्यत् किमपि नास्ति। वयं देहधारिणः स्मः। शरीरस्य रूपसौन्दर्यं निरूप्य मोहिता भवामः। अरूपं विस्मरामः। विस्मरणमाहोस्वित् स्मरणमपि वस्तुतो

भ्रान्तम् । तस्यैव विस्मरणं भवितुं शक्यते, यस्य दर्शनं पूर्वं जातमस्ति । स एव स्मर्यते, यमवलोक्य वयमनुरागं बध्नामः ।'' (पृष्ठ ११४-११५)

''मृत्तिका मृत्तिकायां मिलति स्म । जलं जले समाविशति स्म । तेजस्तेजसि विलीयते स्म । पवनः पवने प्रविशति स्म शून्यश्च शून्ये । भस्मनो मज्जाकरेभ्यश्चातिरिक्तं सम्प्रति तत्र किमपि न विद्यते स्म ।''

(पृष्ठ १३२)

## ३. गिरिकर्णिका

मदीयायाः साहित्ययात्रायास्तृतीयो निवेशोऽस्ति- 'गिरिकर्णिकायाः' प्रकाशनम् । पुस्तकायैतस्मै मह्यं हरियाणा-साहित्य-अकादम्या प्रकाशनार्थ-मार्थिकसहायतानुदानं प्रदत्तम् ।

'गिरिकर्णिका' गुजरातप्रान्ते 'साबरमती' स्रोतस्विनी वर्तते । एतस्यास्तटिन्याः प्रवाह इव मम गद्यगीतानां स्रावः । कानिचिदुद्धरणान्यवलोकनीयानि-

'प्रसूनानि प्रपतन्ति, तव विस्मरणार्थम् ।
अश्रूणि पतन्ति, तव विस्मरणार्थम् ॥'' (पृष्ठ २०)

''प्रियतम हे ! तव स्मरणे वयम् ।
शतानि वाष्पाणि रुदिमः ॥'' (पृष्ठ ३५)

''सम्मिलनं तव भवति क्षणिकम्,
युगपर्यन्तं भवति रोदनम् ।
पुनरपि भवति नहि विस्मरणम्,
मधुरं मधुरं गीतं नष्टम् ॥'' (पृष्ठ ३८)

''वल्लभं विना मनस्तृष्यति रे !

लोचने मम छंमछमरणितेन वर्षतो रे !''

(पृष्ठ ४७)

''घृणाया आपणोऽयं संसारः घृणाया आपणः ।

स्वार्थस्य सर्वे सुहृदः, संसारोऽयं घृणाया आपणः ।।''

(पृष्ठ ५०)

'कीदृशोऽस्त्ययं तव व्याजः,

प्रणयस्य पणोऽतिपुराणः ।

मनसि स्थापयेः शय्याशृङ्गारम् ।

विश्राम्येः किंचिदेकवारम् ,

अनुरागं वर्धापयेः ।।'' ज्ञ

(पृष्ठ ६४)

इमे सन्ति मदीयायाः साहित्ययात्रायाः प्रमुखा निवेशाः । एतदतिरिक्तं केषुचित्तनुनिवेशेष्वप्यहमल्पकालायावस्थातुं क्षमोऽभवम् । एतेषु निवेशेषु 'सप्तसिन्धु-विश्वभारतीपत्रिका-साहित्यपरिचय-विश्वसंस्कृत-नागरी प्रचारिणीपत्रिका-साहित्यानुशीलन-दिव्यज्योतिः'-प्रभृतिपत्रिकासु प्रकाशितानां लेखानां स्थानम् । एकाधिकासु संस्कृतलेखकगोष्ठीषु संस्कृत-कविगोष्ठीसु च सहभागिता साहित्ययात्रायां नैरन्तर्येण सगतिकाऽस्ति । रोहतकनगरस्याकाशवाण्या विविधप्रसारणैर्मदीयायाः साहित्ययात्रायाः असंख्येयाः पक्षा अवगम्यन्ते ।

मदीयायाः साहित्ययात्राया अग्रिमो निवेशोऽस्ति- ''स्फुरन्तः उडुगणाः'' । एतस्मिल्लघुपुस्तके मया संस्कृतबालरचनानि हिन्दीपद्यानुवादसमन्वितानि प्रस्तोतुं प्रयासः कृतः ।

आलेखस्यास्यान्ते मम परमेश्वरं प्रति प्रार्थना यत्सकलभाषाणां जनयित्री गीर्वाणवाणी सर्वत्र लोकप्रियत्वमाप्नुयात् सर्वे च विद्वांसोऽस्या भाषाया महत्त्वं मन्येयुः ।

# मेरी साहित्य-यात्रा

डा0 विष्णुकान्त शुक्ल

१९५६-५७ की घटना है । रामभक्त कपीन्द्र जी अमेरिका में रामकथा का प्रचार करके लौटे थे । खुरजा (जिला बुलन्दशहर) के गौरीशंकर मन्दिर में उनकी कथा का आयोजन हुआ । उसी प्रसंग में उन्होंने अपनी साहित्यिक पत्रिका ''मकरन्द'' के प्रकाशन की सूचना दी, और उसके लिए लेख आमन्त्रित किये । तब मैं पूर्वमध्यमा परीक्षा की तैयारी कर रहा था ।

मेरे परिवार में साहित्यिक वातावरण था । पिताजी के आशीर्वाद से मेरे सभी बड़े भाई काव्य रचना करने लगे थे । उनकी देखादेखी मैं भी टूटे-फूटे शब्दों के सिर जोड़ लिया करता था । लिखकर संग्रह करने की प्रवृत्ति थी नहीं, जो लिखा वह गोष्ठी में सुना दिया और उसके बाद छुट्टी । निरीह भाव से 'श्रीकृष्णजन्माष्टमी' से सम्बन्धित एक कवितां 'घनाक्षरी कवित्त' के डिज़ाइन पर 'मकरन्द' में भेजी और वह छप गयी । फिर दो तीन-चार रचनाएँ 'मकरन्द' ने छापी । यह मेरी साहित्य यात्रा का आरम्भ था ।

उन दिनों विवाह के अवसर पर 'अभिनन्दन पत्र', 'स्वागत गीत', सेहरों का चलन अधिक था । यह दूसरी बात थी कि अभिनन्दनीय व्यक्ति उनमें कोई विशेष रुचि नहीं लेता था । उन पत्रों में वर-कन्या पक्ष के नामों की भरमार होती थी । चूँकि पिताजी कविरत्न थे, इसी नाते विवाह का मौसम आते ही अभिनन्दन पत्रों के लिखने के लिए प्रार्थनाएँ आना आरम्भ हो जाती थी । खुरजा के सेठ बाबूलाल जटिया के पुत्र श्री रामेश्वर जटिया के विवाह पर लिखा अभिनन्दन पत्र शुद्ध साहित्यिक शैली में लिखा गया था, और उसकी प्रशंसा भी पर्याप्त हुई थी । रामेश्वर जटिया पिताजी के शिष्य थे,उनके लिए अभिनन्दन लिखकर, अन्य लोगों की प्रार्थना को ठुकरा देना उनके स्वभाव में नहीं था । और हर किसी के विवाह के लिए अभिनन्दन लिखने का उनके पास समय भी नहीं था । इसीलिए वह विभाग हम भाइयों को सौंप दिया गया। सैंकड़ों अभिनन्दन लिखे हम लोगों ने । और मजेदार बात यह कि प्रस्तुतकर्त्ता में नाम वर के बहनोई या किसी और का ही लिखा जाता । हाँ, श्री रामेश्वर जटिया की पुत्री पद्मा के विवाह के अवसर पर लिखे गये अभिनन्दन पत्र में मेरा नाम रचयिता के स्थान पर छापा गया था । और यूँ,हिन्दी में रचना करना हमें कभी कठिन नहीं लगा ।

अपने छात्र जीवन में साहित्यिक प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती थीं। अन्त्याक्षरी (संस्कृत श्लोक) प्रतियोगिता के तो मैं और बड़े भाई जी (श्री रमाकान्त जी शुक्ल) एक्सपर्ट माने जाते थे। उनका नाम पुजता था, मेरे नाम के साथ पूँछ लग गयी थी। तब कुछ विशिष्ट अक्षरों से आरम्भ और समाप्त होने वाले श्लोकों की रचना भी की। संस्कृत में 'विज्ञान ज्योति' (खुरजा) में रचनाएँ छपती थीं। एन0 आर0 ई0 सी0 कालेज खुरजा की पत्रिका 'द थिंकर' में (हिन्दी-संस्कृत में) भी नाम छपने लगा था, और इस तरह लोकैषणा के साथ साथ छपैषणा बढ़ती गयी।

१९६४-६५ से आज तक स्तरीय पत्रिकाओं ने मुझे स्नेह सम्मान दिया है। विश्वसंस्कृतम्, स्वरमंगला, संवित्, संस्कृतरत्नाकर, संस्कृतप्रचारकम- उत्कलोदयः, सर्वगन्धा, भारतोदयः, गैर्वाणी, गाण्डीवम्, प्रतिभा, अर्वाचीनसंस्कृतम् आदि ने पर्याप्त सहयोग दिया है। हिन्दी पत्रों में सूत्रकार, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कादम्बिनी, संस्कृति, मनोरमा, मुक्ता, जैनविद्या आदि (साप्ताहिक-षाण्मासिक) प्रमुख हैं। अखिल भारतीय संस्कृत कवि सम्मेलनों में राष्ट्रीय संग्रहालय (दिल्ली), दिल्ली विश्वविद्यालय, हरिद्वार, मैनपुरी, लखीमपुर खीरी, मेरठ विश्वविद्यालय, शाहजहाँपुर, जयपुर, संस्कृत अकादमी दिल्ली के साथ-साथ आकाशवाणी और दूरदर्शन से प्रसारित तक के संस्कृत सम्मेलनों में भी काव्यपाठ के अनेक अवसर मिले हैं।

इतना होने पर भी मैं स्वंय को कवि नहीं मानता, न कहता। गद्य-पद्य दोनों में यदा कदा कुछ लिख लेने से कोई कवि नहीं बन जाता। हिन्दी में एक महाकाव्य लिखने का उपक्रम किया था, तब मैं एम0 ए0 का छात्र था, नाम रखा था 'अमिताभ':९-१० सर्ग लिखे और छोड़ दिये। प्रकाशित पुस्तक की बात कुछ और ही होती है, यह सोचकर लिखने का विचार बना और वह बना ही रहा। 'स्फाटिकी माला' (संस्कृत मुक्तक काव्य उ0 प्र0 संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत) के प्रकाशन ने उसे मूर्त रूप दिया। 'पूर्णकुम्भ' (संस्कृत ललित निबन्ध, उ0 प्र0 सं0 अकादमी द्वारा पुरस्कृत) से भी अच्छा लगा।

जब भी कोई अनहोनी घटती है, तब अनायास ही लेखनी चल पड़ती है। संस्कृत कवियों / काव्यों के साथ कुछ अनभिज्ञ लोग पुरातनता का दोषारोपण करते हैं। वास्तविकता यह है वे लोग संस्कृत से ही पूर्णतः परिचित नहीं हैं, दूसरी बात यह है कि संस्कृत का कवि उदात्त और उदार दृष्टिकोण रखता है। वह स्वयं को विज्ञापन से और गुटबाजी से दूर रखता है। वह आधुनिकतम घटनाओं से प्रभावित होकर भी लिखता अवश्य है, प्रकाशन के अभाव में सर्व सुलभ न हो सके यह अलग बात है। 'देशरक्षा कथम्' शीर्षक से लिखे श्लोको में मुझे तिहाड़ जेल से अफसरों की आँखों में धूल झोंककर भागा हुआ चार्ल्स शोभराज भी याद आया है, कुछ

कुमारी (सिनेतारिकाएँ) माताएँ भी, घूसखोर नेता और अभियन्ता भी, 'अहं नेता' 'अहं युवा' 'अहं छात्रः' ''भारतीया (आधुनिकी) बालशिक्षा'', 'युवजनचरितम्' (शतक), 'अद्यत्वे' आदि में आधुनिक समयबोध द्रष्टव्य है ।

मुझे 'आर्या' छन्द बहुत प्रिय है । एक बार मेरे मित्र स्व0 बुद्ध देव शर्मा (संस्कृत विभाग गुरुकुल काँगड़ी, हरिद्वार) ने आर्या छन्द में रचना का कारण पूछा था, तब मेरा उत्तर था-

'ललितपदं मृदुवचनं सहृदयचेतोहरं शुभाभरणम् ।

आर्याच्छन्दो रम्यं नवललनाननप्रतीकाशम् ॥'

स्वभाव में कठोरता नहीं हैं अतः रचना भी सरल ही रहती है । विकटबन्धों (पद्य में) से लगभग परहेज है ।

तुलसीदासजी ने एक आदर्श पंक्ति लिखी है,

''कवित विवेक एक नहिं मोरे । सत्य कहहुँ लिखि कागज कोरे''

यह बात मेरे लिए आदर्श है, और इसका एक गम्भीर कारण भी है । मेरे तीन बड़े भाई हैं, सभी साहित्यकार और धुरन्धर विद्वान् । सबसे बड़े भाई जी बरेली कालेज में संस्कृत विभागाध्यक्ष हैं- डॉ0 कृष्णकान्त जी शुक्ल, फिर सनातन धर्म कालेज, मुजफ्फरनगर में संस्कृत विभाग के वरिष्ठ आचार्य हैं- डॉ0 उमाकान्त जी शुक्ल और तीसरे बड़े भाई दिल्ली विश्वविद्यालय के राजधानी कालेज में हिन्दी-विभाग में प्रवाचक हैं- डॉ0 रमाकान्त जी शुक्ल । ये तीनों ही संस्कृतमुख हैं, संस्कृत में सोचना, बोलना, लिखना इनका स्वभाव है । मैदान तो फ़तह ये ही कर चुके हैं मेरे लिए तो अब मैदान की नाप तोल ही बचती है । मुझे सौभाग्य प्राप्त है शुक्ल-वंश में उत्पन्न होने का, कविवंश में जन्म लेने का और सुकविसमूह की सेवा करने का ।

साहित्याकाश की इयत्ता कहाँ है ? उसमें वैनतेय भी उड़ान भरता है ।, हंस भी उड़ता है, अन्य जीव जन्तु भी विचरण करते हैं । पर कोई भी पूर्ण यात्री नहीं है। मेरी यात्रा का तो अभी प्रारम्भ ही प्रारम्भ है । इसी आरम्भ में मेरी कविता भी आती है, कादम्बरीकथामुख की संस्कृत-हिन्दी व्याख्या भी ''नीतिशतक'' टीका भी, ''कवितावली'' ''पद्मावत'' पद्मावतीसमय का सम्पादन-व्याख्या भी 'संस्कृत शिक्षा'' भी और 'प्रिंसिपल कथा' भी । अभी तो यात्रा करते करते ३३-३४ वर्ष ही पूरे किये हैं । पूरी रिपोर्ट दे पाना कहाँ सम्भव है, । 'चरैवेति-चरैवेति ।'

६-१२-१९९०

# कविसम्मेलनेषु कविप्रशस्तिः

आचार्य बाबूराम अवस्थी

जानन्त्येव सहृदया विद्वांसो यद् देशे स्वतन्त्रे सञ्जाते सम्प्रति सर्वतोमुखी समुन्नतिर्दरीदृश्यते । संस्कृतसाहित्यक्षेत्रेऽपि विविधा विधाः, नवनवा शैल्यः, अभिनवाः कृतयश्च दृष्टिपथमायान्ति । अनेका गोष्ठ्योः नाना कविसम्मेलनानि, बहवः सारस्वतसमारोहाश्च संस्कृताभ्युदयाय समायोज्यन्ते । एतावतापि संस्कृतं प्रत्यभीष्टा जनरुचिर्नैव जागृता । न च साधारणजनेषु संस्कृतप्रचारः समवलोक्यते । अतः संस्कृतहितैषिणो विचारकाः सम्यक् विमृश्य निर्णीतवन्तो यद् विपश्चितो कवयश्च तादृशं सरलं रुचिकरं च साहित्यं रचयन्तु यज्जनेनावगम्येत, अभिनन्द्येत, स्वीक्रियेत, तस्मै रोचेत चेति ।

विचारकाणां मतमिदमनुसृत्यैव जनरुचिजागरायै जनोऽयं साम्प्रतिकेषु विभिन्नेषु कविसम्मेलनेषु पद्यमयसञ्चालनपद्धतिमङ्गीकृत्य चिरकालादविच्छिन्नरूपेण प्रवहन्तीं किन्तु दौर्भाग्यात् बहुकालात् त्रुटितां तां परम्पराशृङ्खलां पुनर्योजयितुं प्रायतत ।

ततश्च संस्कृतपरिषद् लखीमपुर खीरी, संस्कृतसंसद् सीतापुरम्, लखनऊस्था संस्कृतप्रचारिणी सभा,सार्वदेशिकसंस्कृतसमन्वयसमितिः, उ0 प्र0 संस्कृत-अकादमी,आकाशवाणी, दूरदर्शनम् चेत्यादिभिः प्रतिष्ठिताभिः संस्थाभिः समायोजितेषु जनपदीय-प्रदेशीय-अखिलभारतीयेषु कवि-सम्मेलनेषु सञ्चालनाय समादिष्टोऽयं जनः काव्यपाठाय कवीनावाहयन् अनुष्टुप्छन्दसा तेषां याः प्रशस्तीः कृतवांस्तासु काश्चिदेव इह सचेतसां प्रीतये पुरतः स्थाप्यन्ते ।

डा0 राजेन्द्र मिश्र-डा0 हरिदत्तशर्म-डा0राजदेवमिश्र-डा0 वीरभद्रमिश्र-डा0 प्रशस्य मिश्र शास्त्रि-डा0 सत्य प्रकाश मिश्र-आचार्य छैलविहारी मिश्र-प्रभृतयः प्रातिभसम्पदा सम्पन्नाः कविसम्मेलन-सञ्चालनधुरन्धराः सत्कवयश्चेमां पद्धतिं साधु संवर्धयन्ति ।

## डॉ0 रमाकान्त शुक्लः

देववाणी-परिषदो महामात्यं मनीषिणम् ।
दिल्लीस्थं चाह्वये शुक्लं रमाकान्तं कवीश्वरम् ।।१।।

अन्यत्र,
देशानुरागिणं दिल्ल्यां कृतावासं महामतिम् ।
ओजोगुणान्वितं शुक्लं रमाकान्तं समाह्वये ।।२।।

अन्यत्र,
दिल्लीतश्च समायातं सुव्यक्तित्वयुतं कविम् ।
डाक्टरं श्रीरमाकान्तशुक्लमावाहयाम्यहम् ।।३।।

अन्यत्र च,
ओजोगुणमयं काव्यं यस्य भाति महाकवेः ।
दिल्लीस्थं तं रमाकान्तशुक्लमावाहयाम्यहम् ।।४।।

## श्री वासुदेव द्विवेदी शास्त्री

बालसाहित्यकर्तारं संस्कृतस्य प्रचारकम् ।
आह्वये शास्त्रिणं काश्या वासुदेवद्विवेदिनम् ।।५।।

## श्री बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते

वटवो यस्य हर्षन्ति ज्ञानालोकेन भास्वता ।
खिस्तेवटुकनाथं तं शास्त्रिणं समुपाह्वये ।।६।।

## डॉ0 शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी

साहित्यभवने हिन्दूविश्वविद्यालये स्थितम् ।
शर्माणं शिवदत्ताख्यं चतुर्वेदं समाह्वये ।।६।।

## डॉ0 शिवजी उपाध्यायः

सम्पूर्णानन्द-नाम्ना यो विश्वविद्यालयो महान् ।
तत्रस्थं शिवजीत्याख्यमुपाध्यायमुपाह्वये ॥८॥

## डॉ0 रेवाप्रसाद द्विवेदी 'सनातनः'

विद्वांसं सुकविं हिन्दूविश्वविद्यालये स्थितम् ।
रेवाप्रसादं श्रीमन्तं द्विवेदं समुपाह्वये ॥९॥

## डॉ0 कैलासपति त्रिपाठी, काशीस्थः

साहित्याचार्यवर्यं च प्रवीणं प्रतिभान्वितम् ।
कैलासपतिनामानं त्रिपाठिनमुपाह्वये ॥१०॥

## डॉ0 कमलेशदत्त त्रिपाठी

कविं कवयितुं हिन्दूविश्वविद्यालये स्थितम् ।
कमलेशदत्तं श्रीमन्तमाह्वयामि त्रिपाठिनम् ॥११॥

## श्री मनुदेव भट्टाचार्यः

साहित्यशास्त्रमर्मज्ञं वैयाकरणपुङ्गवम् ।
काशीस्थं श्रीमनुदेव-भट्टाचार्यं समाह्वये ॥१२॥

## डॉ0 कपिलदेव पाण्डेयः, काशीस्थः

नाटकाभिनये दक्षं काव्यनिर्माणसक्षमम् ।
पाण्डेयं कपिलदेवं सादरं समुपाह्वये ॥१३॥

## श्री मायाप्रसाद त्रिपाठी

काशीस्थं कविमूर्धन्यं सुरागरचनापटुम् ।
मायाप्रसादं श्रीयुक्तमाह्वयामि त्रिपाठिनम् ॥१४॥

## डॉ0 'अभिराज' राजेन्द्र मिश्रः

स्वरे मधुरता यस्य काव्ये च कमनीयता ।

कविराजमभिराजं तं राजेन्द्रं मिश्रमाह्वये ॥ १५॥

अन्यत्र,

भाव-प्रसूनशतकैः पराम्बा[1] येन तोषिता ।

आवाहयामि तं कञ्चिद् वाग्वधूटी[2]-स्वयंवृतम् ॥१६॥

## डॉ0 हरिदत्त शर्मा

व्यक्तित्वे च कवित्वे च सौकुमार्यं सदा वहन् ।

डांक्टरो हरिदत्तोऽयं सामागच्छति साम्प्रतम् ॥१०॥

अन्यत्र,

गीतकारं प्रयागस्थं प्रवीणं प्रतिभान्वितम् ।

श्रीहरिदत्तशर्माणं सादरं समुपाह्वये ॥१८॥

## डॉ0 राजदेव मिश्रः

अयोध्यातः समायातं प्राचार्यपदभूषितम् ।

डाक्टरं श्रीराजदेवं मिश्रामावाहयाम्यहम् ॥१९॥

## डॉ0 वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी

मथुरातः समायातं ब्रजगन्धा-प्रकाशकम् ।

श्रीवासुदेवकृष्णाख्यं चतुर्वेदं समाह्वये ॥२०॥

## श्री कृष्णचन्द्र चतुर्वेदी

मथुरायां कृतावासं प्रेमप[3]त्रप्रचारकम् ।

कृष्णचन्द्रचतुर्वेदं सादरं समुपाह्वये ॥२१॥

## स्व0 आचार्य आनन्द झा

अथ विद्यावयोवृद्धं नैकशास्त्रविशारदम् ।

आचार्यपूर्वमानन्दझाभिधं कविमाह्वये ॥२१॥

## डॉ0 वनेश्वर पाठकः

'हीरोशतक -कर्तारं राँचीस्थं सुकवीश्वरम् ।
आह्वये काव्यपाठाय श्रीवनेश्वरपाठकम् ।।२३।।

## आचार्यः निवास रथः

उज्जयिन्याः समायातं भावाभिव्यञ्जने पटुम् ।
श्रीनिवासरथं सूरिं गम्भीरगिरमाह्वये ।।२४।।

## डॉ0 मिथिलेश कुमारी मिश्रा

पटनातः समायातां कवयित्रीं विशारदाम् ।
आह्वये कवितां कर्तुं मिथिलेशकुमारिकाम् ।।२५।।

## डॉ0 राधावल्लभ त्रिपाठी

सागरात्तु समायातं काव्यामृतरसप्रदम् ।
त्रिपाठिनं कविश्रेष्ठं राधावल्लभमाह्वये ।।२६।।

## डॉ0 पुष्पा दीक्षिता

अपूर्वप्रतिभायुक्तां डाक्टरोपाधिभूषिताम् ।
दीक्षितामाह्वये पुष्पां विलासपुरवासिनीम् ।।२७।।

## डॉ0 कृष्णकान्त शुक्लः

बरेलीवासिनं विज्ञं महाविद्यालये स्थितम् ।
श्रीकृष्णकान्तशुक्लाख्यं सुकविं समुपाह्वये ।।२८।।

## डॉ0 उमाकान्त शुक्ल

मुज़फ्फ़रनगराद् दूरात् समायातं सुधीवरम् ।
आह्वयेऽहमुमाकान्तं रमाकान्तसहोदरम् ।।२९।।

## डॉ0 विष्णुकान्त शुक्लः

सहारनपुरस्थो यः कविताकरणे पटुः ।

विष्णुकान्तं कविं शुक्लं सस्नेहं तमुपाह्वये ।। ३०।।

## डॉ0 घनश्याम तिवारी, रायबरेलीस्थः

मधुरस्वरसंयुक्तं काव्यपीयूषपूरितम् ।

वाग्बिन्दुवर्षिणं कञ्चिद् घनश्यामं समाह्वये ।।३१।।

## डा0 प्रशस्यमित्र शास्त्री

विशिष्टहास्यधारिणं मनोविनोदकारिणम् ।

समाह्वये सुभाषिणं प्रशस्यमित्रशास्त्रिणम् ।।३२।।

## डॉ0 भास्कराचार्य त्रिपाठी

भोपालतः समायातं 'दूर्वा'-सम्पादकं कविम् ।

भास्कराचार्यनामानं त्रिपाठिनमुपाह्वये ।।३३।।

## डॉ0 नलिनी शुक्ला, कानपुरस्था

यया 'भावाञ्जलिः' [४] पुण्यो वाङ्मयोऽसौ समर्पितः ।

कवयित्री च तां शुक्लां नलिनीं समुपाह्वये ।।३४।।

## डॉ0 नवलता, कानपुरस्था

धारयन्तीं नवलतां कविताकुसुमान्विताम् ।

कवयित्रीं नवलतां लतामिव समाह्वये ।।३५।।

## डॉ0 शिवबालक द्विवेदी

आयातः कानपुरतः कुशलो लेखकः कविः ।

कवितां कर्तुमायाति द्विवेदी शिबालकः ।।३६।।

## श्री शिवपूजन पाण्डेयः

गोरक्षपुरवास्तव्यं संस्कृतस्यानुरागिणम् ।

शिवपूजनपाण्डेयं 'सौरभं' समुपाह्वये ।।३७।।

## डॉ0 इच्छाराम द्विवेदी

मैनपुर्याः समायातं कविश्रेष्ठं सुशिक्षितम् ।
आवाहयामि सस्नेहमिच्छारामद्विवेदिनम् ॥३८॥

## डॉ0 शिवस्वरूप तिवारी

हरदोय्याः समायातं हासव्यङ्ग्यविशारदम् ।
शिवस्वरूपं श्रीमन्तमाह्वयामि तिवारिणम् ॥३९॥

## श्री शङ्करदयालु मिश्रः

विद्याव्यसनिनं विज्ञं देवभाषानुरागिणम् ।
शङ्करदयालुमिश्रं कविं सादरमाह्वये ॥४०॥

## श्री गिरिजाशङ्कर मिश्रः

बिसवाँतः समायातं कविकर्मणि पण्डितम् ।
आवाहयेऽहमाचार्य मिश्रं गिरिजाशङ्करम् ॥४१॥

## स्व0 श्रीप्रयागनारायण त्रिपाठी

सानुकम्पं समायातं प्रतापगढपत्तनात् ।
आवाहयामि सश्रद्धं श्रीप्रयागनरायणम् ॥४२॥

## डॉ0 मातृदत्त त्रिवेदी

लखनऊतः समायातमाह्वयामि कवीश्वरम् ।
मातृप्रदत्तप्रतिभं मातृदत्तत्रिवेदिनम् ॥४३॥

## डॉ0 अशोककुमार कालिया, लखनऊस्थः

सम्पादकमजस्नाया डाक्टरोपाधिभूषितम् ।
आह्वये काव्यपाठाय श्री अशोककुमारकम् ।।४४।।

## डॉ0 मनोरमा तिवारी, लखनऊस्था

प्रचार्यपद-पद्मस्थां शब्द-सम्पत्तिसंयुताम् ।
मनोरमामाह्वयामि कवयित्री रमामिव ।।४५।।

## डॉ0 वीरभद्र मिश्रः, लखनऊस्थः

नाम्नापि कर्मणा चापि वहन्तं वीरभद्रताम् ।
आह्वये सुकविं कञ्चित्सर्वगन्धा-सुगन्धितम् ।।४६।।

## श्री रामेश्वर शास्त्री 'रमेशः'

लख्नऊनगरस्थं च पण्डितप्रवरं प्रियम् ।
आवाहयामि सुकविं श्रीरामेश्वरशास्त्रिणम् ।।४७।।

## डॉ0 आशाराम त्रिपाठी

लख्नऊवासिनं सभ्यं कवितापठने पटुम् ।
आवाहयामि श्रीमन्तमाशारामत्रिपाठिनम् ।।४८।।

## डॉ0 कृष्णनारायण पाण्डेयः

सम्भाषणे भाषणे च संस्कृते सक्षमं सदा ।
पाण्डेयमाह्वये प्रीत्या कृष्णनारायणं कविम् ।।४९।।

## डॉ0 ओम प्रकाश शास्त्री

लख्नऊनगरे रम्ये विश्वविद्यालये स्थितम् ।
श्रीओम्प्रकाशं सुकविं शास्त्रिणं समुपाह्वये ।।५०।।

## श्री ललिताप्रसाद पाण्डेयः

विद्वद्वरेण्यमाचार्यं देववाण्या उपासकम् ।
श्रीललिताप्रसादाख्यं पाण्डेयमहमाह्वये ।।५१।।

## डॉ0 अनन्तराम मिश्रः 'अनन्तः'

हिन्द्यां च संस्कृते चापि काव्यनिर्माणसक्षमम् ।
अनन्तराममिश्राख्यं गोलास्थं कविमाह्वये ।।५२।।

## श्री छैलबिहारी मिश्रः

मोहम्मदीस्थमाचार्यं पण्डितप्रवरं पटुम् ।
आह्वये काव्यपाठाय मिश्रं छैलविहारिणम् ।।५३।।

## डॉ0 सत्यप्रकाश मिश्रः

लखीमपुरवास्तव्यं डाक्टरोपाधिशोभितम् ।
सत्यप्रकाशमिश्राख्यं युवानं कविमाह्वये ।।

## बाबूराम अवस्थी

आचार्यत्व-कवित्वाभ्यां सममेव समन्वितम् ।
अवस्थिनं कविश्रेष्ठं बाबूरामं समाह्वये ।।५४।।

(अभिराज डॉ0 राजेन्द्रमिश्रस्य)

अन्यत्र,

व्यक्तित्वे यस्य गाम्भीर्यं कवित्वे शक्तिरद्भुता ।
बाबूरामकवीन्द्रं तं काव्यपाठाय चाह्वये ।।५५।।

(डॉ0 हरिदत्तशर्मणः)

अन्यत्र,

लखीमपुरखीरीतः समायातं मनीषिणम् ।
आवाहयामि श्रीमन्तं बाबूराममवस्थिनम् ।।५६।।

(डॉ0 कृष्णनारायणपाण्डेयस्य)

अन्यत्र,

लखीम्पुरात्समायातं सञ्चालनधुरन्धरम् ।
आह्वये काव्यपाठाय बाबूराममवस्थिनम् ।।५७।।

(डॉ0 वीरभद्रमिश्रस्य)

---

१- 'पराम्बाशतकम्' कवेः कृतिः ।
२- 'वाग्वधूटी' ,, ,, ,, ।
३- प्रेमपत्रम् कवेर्महाकाव्यम् ।।
४- 'भावाञ्जलिः' कवयित्र्याः कृतिरप्यस्ति ।

# संघटनमूला संस्कृतोन्नतिः

आचार्यः बाबूराम अवस्थी

मानव-जीवने संस्कृतस्य कियत्यावश्यकता कियच्च महत्त्वमस्तीति कस्यापि नाविदितम् । आजन्मनो निर्वाणपर्यन्तं संस्कृतं समये-समये महदुपकरोति मानवं विशेषेण भारतनिवासिनं जनम् । अनेनैव लौकिकं पारलौकिकं च हितं सम्पाद्यते । अतस्तस्योन्नतये विचारकरणं तदनुरूपं कार्यकरणं च संस्कृत-हितैषिणां मुख्यं कर्तव्यमस्ति ।

यद्यपि हितचिन्तकास्तस्याभ्युदस्योपायान् चिन्तयन्ति, यथावसरं पत्र-पत्रिकादि-माध्यमेन सूचयन्ति, निर्दिशन्ति च तदनुकूलमाचरणाय, कुर्वन्ति च तदनुसारं कार्यं संस्कृतसेवापरायणाः । क्वचिद् गोष्ठ्यः क्वचित्सम्मेलनानि, कचित्प्रशिक्षणानि कुत्रचिच्च शिविरा आयोज्यन्ते । लघ्वाकारा बृहदाकाराश्च ग्रन्थाः प्रकाश्यन्ते । आकाशवाणी-दूरदर्शनदि-संस्था अपि संस्कृत-कार्यक्रमान् प्रसारयन्ति ।

एतेन संस्कृतस्य काचिदुन्नतिर्जाता किन्तु यादृश्यभिमता न तादृशी दृष्टिगोचरीभवति । अद्यापि समाजे प्रतिशतं पञ्चषा एव जनाः संस्कृतं पठन्ति । इयन्त एव संस्कृतं सेवन्ते । संस्कृत-पत्र-पत्रिकाः संस्कृतज्ञा एव पठन्ति नेतरे । अनेके संस्कृतज्ञाः संस्कृतबलेनैव जीविकामर्जयन्तोऽपि तदुपेक्षन्ते, स्वबालकान् अंग्रेजीमाध्यमविद्यालयेषु प्रवेश्य गौरवमनुभवन्ति। शासनमपि संस्कृता प्राचीना भाषा परलोकहितकारिणी न लोकहिताय इति कृत्वोपेक्षते । कथमेतेन संस्कृतमुन्नेष्यते ? अस्या दुरवस्थायाः मुख्यं कारणं संस्कृतज्ञानां संघटनाभावस्तेषामौदासीन्यं च ।

अस्माकं विचारेण संस्कृतोन्नतये प्रथमं तावत् संघटनं दृढीकर्तव्यम्। संघटनं विनाद्यत्वे महासत्त्वोऽपि कश्चित् किमपि महत्कार्यं सम्पादयितुं न शक्नोति । मतिशक्तिमानपि महात्मा गांधी जनशक्तिमनिवार्यत्वेना-मन्यत । यद्यप्यद्यत्वे लघु-लघूनि संघटनानि विद्यन्ते, यथाशक्ति संस्कृतं सेवन्ते च किन्तु तान्येकदेशीयत्वात्सार्वदेशिककार्याणि कर्तुं नितरामक्षमाः,

अतस्तादृशं संघटनं निर्मातव्यं यत्सार्वदेशिकं सुदृढञ्च भवेत् ।

संघटनस्य किं रूपं भवेदिति विचारे स्वबुद्ध्या किञ्चित् प्रस्तूयते । प्रथमं तावदुच्चपदस्था विद्वांसः, वर्चस्विनः संस्कृतसेवकाः, नागरिकाश्च संस्कृतानुरागिणः परस्परं सम्मिल्य एकां महासंस्थां स्थापयन्तु । तस्या मुख्यकार्यालयो भारतस्य राजधान्यां दिल्ल्यां सांस्कृतिकराजधान्यां वाराणस्यां वा प्रतिष्ठापनीयः । अभिधानं चास्याः -'विश्वसंस्कृत-महापरिषद्' इति भवेत् । महापरिषदो द्वेधा विभागः कर्तव्यः । एकस्तावत् पुरुषाणां द्वितीयश्च महिलानां संघटनं स्यात् । पुनश्चोभौ भागौ चतुर्धा विभक्तव्यौ- १- केन्द्रीयम्, २- प्रदेशीयम्, ३- जनपदीयम्, ४- नगर-संघटनं चेति । तेषु सर्वेषु चेमे पदाधिकारिणः सन्तु । १- अध्यक्षः, २-उपाध्यक्षः, ३- महामन्त्री, ४- संघटनमन्त्री, ५- प्रचारमन्त्री, ६-कार्यक्रममन्त्री, ७- कोषाध्यक्षः, ८- लेखानिरीक्षकः, ९- कार्यप्रणालीनिरी-क्षकः, १०- परामर्शदातारः, ११- सदस्याश्च । इत्थं केन्द्रीयपरिषद्वत् प्रदेशीयपरिषदि, जनपदीयपरिषदि, नगरपरिषदि च पदाधिकारिण-श्चयनीयाः । सर्वोपरि एको विश्वसंस्कृतमहापरिषदोऽध्यक्षो भवेत् । यत्र च पूर्वसंस्थापिताः संस्कृतसेविन्यः संस्था सन्ति तासां महापरिषदि विलयः करणीयोऽथवा ता महापरिषदो मान्यतामवाप्य तन्नियमानुसारेण कार्यक्रमान् सम्पादयन्तु, स्वतन्त्ररूपेणापि सेवाकार्यं कुर्वन्तु ।

एवमखिलभारतीयं सुदृढं संघटनं विधाय युद्धस्तरेण संस्कृतसेवामारभेत । केन्द्रीयपरिषत् संस्कृतोन्नतिकारकान् कार्यक्रमान् निर्माय सर्वान् सूचयेत् । ते च कार्यक्रमा एकस्मिन्नेव दिने समये च सर्वत्र भारते सम्पन्ना भवन्तु । प्रचारस्य कृते एकं पत्रमपि प्रकाशनीयम्, यस्यां संस्कृताभ्युदयकारिणः समाचाराः प्रकाशनीया । युगेऽस्मिन् धनं विना किमपि कार्यं न चलति, तदर्थं च यथोचितं शुल्कं सर्वेषां कृते निर्धारणीयम्।

संस्कृतज्ञा भेदभावं विहाय, विमुच्य चाहन्तामीर्ष्यां विस्मृत्य, स्वीकृत्य निश्छलतां सर्वे ऐकमत्यमवाप्य संघीभूय च संस्कृतसेवां कुर्वन्तु । एतेन संस्कृतमवश्यमुन्नेष्यते । अथ संघटनं दृढं न क्रियेत चेत् तर्हि कृतं बहुभिरुपायैरलं च संस्कृताभ्युदयघोषणाभिरिति ।

# आधुनिकसंस्कृतयुगे संस्कृतभाः

आचार्यः पद्मनाभ शर्मा

जीवनपरिवर्तनेन सह विद्यायाः परिवर्तनमपि निरन्तरं संभवत्येव। स्वतन्त्रभारते संस्कृतभाषायाः परिवर्तने परिवर्द्धने च महान् ह्रासः संजातः। अनेके विद्वांसः संस्कृतस्य संवर्द्धनार्थं प्रायतन्त प्रयतन्ते च। परं शिक्षामन्त्रालयस्य संस्कृतविषये या नीतिः वर्तते सा नीतिः संस्कृतम् अधः पातयति। प्रतिवर्षं शिक्षानीतौ यत् परिवर्तनं भवति तस्मिन् परिवर्तने कृष्णपक्षचन्द्रमा इव संस्कृतस्य स्थितिः क्षीणतां याति येन संस्कृत-विदुषामन्तःकरणं नितरां शोचति।

यदाहं संस्कृतविषये चिन्तयामि तदा भर्तृहरेः अयं श्लोकः मम स्मृतिपथम् आयाति। यथा वा-

> विद्वांसो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।
> अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम्॥

इयमेव स्थितिरिदानीं संस्कृतस्य, शास्त्राणां भारतीयसंस्कृतेश्च वर्तते।

स्वतन्त्रभारते यस्याः देववाण्याः उन्नतिः आवश्यकी तस्या एव वाण्याः सुतरां नितरां च तिरस्कारः संजातः। अहं प्रायः सर्वत्र भारते संस्कृतप्रचारप्रसारार्थं भ्रमामि अनेकेषु नगरेषु ग्रामीणविद्यालयेषु च संस्कृताध्यापकान् अन्यान् अधिकारिणश्च संस्कृतशिक्षाविषये पृच्छामि चेत् केचन हसन्ति केचन आश्चर्यं प्रकटयन्ति अन्ये केचन औदासीन्यं प्रदर्शयन्ति। अनेके संस्कृताध्यापकाः भाषानभिज्ञा भूत्वा संस्कृतं पाठयन्ति। अहं नागपुरे एकेन संस्कृताध्यापकेन सह चित्रमीमांसाविषये चर्चामकरवम्। तदानीं सोऽवदत् यत् चित्रमीमांसा मीमांसाशास्त्रग्रन्थ इति। एतच्छ्रुत्वा दुःखाविष्टचेता भूत्वा न्यवर्तयम्। एवमेव अनेकेषु नगरेषु ग्रामेषु च भ्रमन् मासमेकं व्यतीतवान्।

ममानुभवेन अहं सत्यं वच्मि यत् स्वतन्त्रभारते विद्याक्षेत्रस्य स्थितिः अतीव शोचनीया अस्ति । संस्कृताध्यापकानां मनसि संस्कृतं प्रति श्रद्धाविश्वासौ न स्तः । प्रायः ते संस्कृतविषये छात्रान् न प्रोत्साहयन्ति । छात्रा अपि मन्यन्ते यत् संस्कृतभाषा शुष्कभाषा इति । तेषां मनसि तेषां मातापितॄणां च हृदये संस्कृतविषये आदरो न दृश्यते ।

सर्वकारीयप्रोत्साहनाभवात् अनेकेषु प्रान्तेषु विद्यालयेषु च संस्कृत भाषा ऐच्छिकविषयरूपेणापि न वर्तते । विरलेषु विद्यालयेषु संस्कृतभाषा अनिवार्यरूपेण ऐच्छिकरूपेण वा पाठ्यते, तत्रापि अध्यापकाः न श्रद्धदति छात्रा अपि न पठन्ति संस्कृतम् । येन केन प्रकारेण रटनमार्गेण परीक्षायां प्रथमश्रेण्यामुत्तीर्णा भूत्वा स्वसाहसं प्रकटयन्ति छात्राः, अध्यापका अपि पण्डितंमन्या स्वयं श्लाघन्ते ।

एवमेव शिक्षानीतिः प्रवर्तते चेत् अल्पेष्वेव वर्षेषु संस्कृतम् इति नाम नाम्ना एव अवशिष्येत ।

'राजा राष्ट्रकृतं पापं राष्ट्रपापं पुरोहितः।'

इतीयपुक्तिः सार्थकतां च अधिगच्छेत् ।

इदानीं केचन महाराष्ट्रीयाः बङ्गीयाः ओडियाप्रान्तीयाः दाक्षिणात्याः विद्वांसः संस्कृतभाषारक्षणार्थं सुतरां नितरां च यतन्ते, परं तेषां प्रयत्नः तण्डुलप्रस्थमूल इव भासते ।

शिक्षासचिवालयस्य शिक्षानीतिः सर्वान् विदुषः पण्डितान् च दुःखयति।

काञ्ची-शृंगेरी-शंकराचार्यौ सर्वदा वेदानां शास्त्राणां च रक्षणार्थं जनान् प्रोत्साहयतः । परं शिक्षासचिवालयस्य नीतिः सर्वान् जनान् विफली करोति ।

'यद्यत् भवितव्यं तत्सर्वं भवत्येव' इति मत्वा भगवन्तमेव प्रार्थयामि संस्कृतस्य रक्षार्थम् इति शान्तिः ।

# सरकार और संस्कृत

त्रिलोकीनाथ धर

सिद्धान्ततः जो कोई भाषा किसी एक प्रान्त विशेष की न हो, उसके प्रोत्साहन का उत्तरदायित्व केन्द्रीय सरकार पर होता है। इसी सिद्धान्त के अनुसार केन्द्रीय सरकार का शिक्षा-विभाग उर्दू, अंग्रेजी, सिंधी आदि भाषाओं के प्रचार-प्रसार की व्यवस्था करता है। संस्कृत भाषा को भी इसी वर्ग में रखे जाने के कारण शिक्षा विभाग में एक प्रभाग संस्कृत अनुभाग है, जिसका संचालन उप-शिक्षा सलाहाकार सहायक शिक्षा सलाहकार एवं अन्य अधिकारी करते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि संस्कृत को इस वर्ग में रख़ना एक भूल है। क्योंकि जहाँ ऊपर लिखित भाषाएँ किसी एक राज्य की भाषाएँ नहीं हैं, वहाँ संस्कृत सभी राज्यों की भाषा है। अतः इसका एक अपना विशिष्ट स्थान है। कुछ दशक पूर्व भारत सरकार ने संस्कृत आयोग का गठन किया था, जिसने संस्कृत के संबध में विस्तृत जानकारी प्राप्त करके एक सुविचारित प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था। भारत सरकार इस प्रतिवेदन की अनुशंसाओं को कुछ अंश तक क्रियान्वित करती रही है।

१९७१ से पूर्व शिक्षा विभाग केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति एवं श्री लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली का सीधा संचालन कर रहा था। १९७१ में केन्द्रीय सरकार ने राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान की स्थापना की और इसे एक स्वायत्त सस्था के रूप में पंजीकृत किया गया। इन दो संस्कृत विद्या पीठों के अतिरिक्त पुरी, जम्मू एवं इलाहाबाद के विद्यापीठों का अधिग्रहण करके राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान के अन्तर्गत आरम्भ में पाँच संस्कृत विद्यापीठों का संचालन किया गया। कालान्तर में केरल प्रान्त में गुरुवायूर संस्कृत विद्यापीठ का अधिग्रहण करके उसे भी संस्थान के अन्तर्गत लाया गया और इसके पश्चात् जयपुर तथा लखनऊ में नये केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठों की स्थापना की गयी।

इन विद्यापीठों में शास्त्री, आचार्य, शिक्षा-शास्त्री एवं शिक्षाचार्य के लिए छात्रों को तैयार किया जाता है और पुरी तथा जम्मू विद्यापीठों में मध्यमा स्तर के दो विभाग भी हैं, जहाँ उत्तर मध्यमा तक की शिक्षा दी जाती है। यद्यपि संस्कृत आयोग ने यह संस्तुति की थी कि राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान के अन्तर्गत हर प्रदेश में एक-एक संस्कृत विद्यापीठ की स्थापना की जानी चाहिये। तथापि कई पंचवर्षीय योजनाओं के उपरान्त भी अभी तक़ देश के आधे से भी कम प्रदेशों तक ही यह सुविधा सीमित है। संस्कृत प्रेमी भारत सरकार से यह अपेक्षा रखते हैं कि वह आयोग की इस

संस्तुति को योजना-बद्ध रूप में एक निश्चित अवधि में कार्यान्वित करें ।

इन विद्यापीठों की एक बड़ी समस्या यह है कि प्रायः शास्त्री प्रथम वर्ष के लिये इन्हे पारम्परिक पद्धति से पढ़े हुए छात्र कम मिलते हैं । इसी कारण से आधुनिक शिक्षा पद्धति से पढ़े हुए छात्रों को इस परम्परा के साथ जोड़ने के लिएं प्राक्-शास्त्री कक्षाओं का संचालन करना पड़ रहा है । इसी कारण से सर्वाधिक आवश्यकता इस बात की है कि हर प्रान्त में संस्कृत पाठशालाओं की स्थापना की जाये, जहाँ उत्तर मध्यमा तक संस्कृत का अध्यापन हो और जंहाँ के छात्र केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठों में प्रवेश पा सकें । यद्यपि विद्यापीठों में संस्कृत के अतिरिक्त आधुनिक विषयों के अध्ययन की भी व्यवस्था है तथापि इस व्यवस्था को अधिक सुदृढ करने की अत्यन्त आवश्यकता है । विशेषकर गणित एवं विज्ञान के भिन्न-भिन्न विषय पढ़ाने की व्यवस्था विद्यापीठों में अविलम्ब होनी चाहिए । इसके अतिरिक्त खेल-कूद तथा कुछ व्यावसायिक विषयों का भी पाठ्यक्रमों में समावेश होना चाहिए, जिससे कि संस्कृत विद्यापीठ से निकले हुए छात्र समाज में जीवन यापन के लिए उपयुक्त काम प्राप्त कर सकें और उन्हें केवल ज्योतिष अथवा कर्मकाण्ड तक ही सीमित न रहना पड़े।

देश में इस समय सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा तथा जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय, पुरी-- ये तीन संस्कृत के विश्वविद्यालय भी उपलब्ध हैं । इनके अतिरिक्त बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी तथा राजस्थान विश्वविद्यालय जैसे कतिपय विश्वविद्यालयों में भी शास्त्री विषयों के अध्ययन की व्यवस्था है । इतने बड़े देश के लिए संस्कृत जैसे महत्त्वपूर्ण विषय के लिए यह व्यवस्था पर्याप्त नहीं है । कुछ समय पूर्व आदि शंकराचार्य की जन्मस्थली कालड़ी में एक संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना की घोषणा भी की गयी थी, किन्तु अभी तक इसकी स्थापना नहीं हुई है । उचित तो यही है कि कम से कम दक्षिण में दो, पूर्वोत्तर प्रदेशों में एक तथा पश्चिम में एक और संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना की जाये, जिससे कि संस्कृत के उच्चस्तरीय अध्ययन की सुविधाएँ भारत के प्रत्येक भाग में उपलब्ध हो सकें ।

यूँ तो संस्कृत भारत के लगभग १५० विश्वविद्यालयों में पढ़ायी जाती है । परन्तु वहाँ पर इसे एक साधारण भाषा अथवा विषय के रूप में पढ़ाया जाता है, जिससे कि संस्कृत के वास्तविक महत्त्व को समझने में भूल हो जाती है । संस्कृत मात्र एक विषय या एक भाषा ही नहीं है बल्कि यह एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा किसी भी विषय का अध्ययन किया जा सकता है । जिसके वाङ्मय में व्याकरण और साहित्य के अतिरिक्त सभी वैज्ञानिक एवं मानविकी विषयों पर भण्डार भरा है और भारत की भारतीयता को यदि सुनिश्चित करना है और भारत की विशिष्ट पहचान को भविष्य में यदि सुस्थिर करना है तो संस्कृत में उपलब्ध ज्ञान को हर विषय के पाठ्यक्रम में समावेश करना होगा । कोई कारण नहीं कि आधुनिक कानून का छात्र मनुस्मृति जैसे ग्रन्थों से अपरिचित क्यों रहे । इसी प्रकार से चिकित्सा

विज्ञान के छात्रों को सुश्रुत एवं चरक की संहिताओं का सम्यक् ज्ञान दिलाना भी आवश्यक होगा । संस्कृत के वाङ्मय में इतिहास, अर्थशास्त्र, दर्शन, ज्योतिष, गृह-विज्ञान-- अर्थात् ज्ञान के सभी अंगों पर साहित्य उपलब्ध है, जिसका समावेश स्कूलों और विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले विषयों के पाठ्यक्रमों में उचित मात्रा में करके, उसे आधुनिक ज्ञान के साथ जोड़ना, आने वाली पीढ़ी के लिए अत्यन्त श्रेयस्कर होगा। हम चाहेंगे कि इस विषय में सरकार एक विस्तृत योजना बनाकर, उसकी क्रियान्विति के लिए उचित साधन जुटाये ।

भारत सरकार ने केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरूपति एवं श्री लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नयी दिल्ली को विश्वविद्यालय का स्तर देकर एक सराहनीय कदम उठाया है । हमें आशा है कि ये दोनों विद्यापीठ संस्कृत अध्ययन के विशिष्ट केन्द्र बनेंगे और पहले से कहीं अधिक उत्साह से यहाँ संस्कृत का अध्ययन अध्यापन होगा ।

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान को भी यथाशीघ्र राष्ट्रिय महत्त्व की संस्था घोषित करने के लिए संसद् में एक बिल लाने की आवश्यकता है, जो कई वर्षो से भारत सरकार के विचाराधीन है ।

कई राज्य सरकारों ने भी कुछ अंश तक संस्कृत के प्रोत्साहन के लिए कदम उठाये हैं । राजस्थान सरकार ने, उत्तर प्रदेश सरकार ने, मध्यप्रदेश सरकार ने, बिहार सरकार ने तथा दिल्ली प्रशासन ने संस्कृत अकादमियों का गठन किया है । राजस्थान सरकार में संस्कृत के लिए पृथक् निदेशालय भी हैं, जो संस्कृत के अध्ययन अध्यापन की देख-रेख करता है । आवश्यकता इस बात की है कि सभी राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में एक-एक संस्कृत की अकादमी अथवा निदेशालय की स्थापना की जाये, जिनका सारा ध्यान संस्कृत के प्रचार-प्रसार की ओर केन्द्रित हो और उस प्रदेश विशेष की जो संस्कृत परम्परा रही हो, उसे अक्षुण्य आगे जीवित रखा जाये -- इसे वह सुनिश्चत करे । केवल मात्र सम्मेलन बुलाकर अथवा वर्ष भर में एक आध कवि गोष्ठी करने से कार्य की सिद्धि नहीं होगी । हमें जड़ों को सींचना है, केवल पत्तों पर जल छिड़कने से यह वृक्ष हरा भरा नहीं रह सकता । देश में त्रिभाषी फार्मूले के कारण संस्कृत को जो क्षति हुई है, उसके फलस्वरूप यह देखने में आता है कि जो सुविधायें संस्कृत पढ़ने के लिए विदेशी राज के समय उपलब्ध थीं वे भी अब स्वतन्त्र भारत में उपलब्ध नही हैं । इसी कारण से इस समस्या पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने की आवश्यकता है, जिससे कि हम संस्कृत पढ़ने की व्यवस्था आरम्भ से ही कर पायें ।

प्रायः यह कहा जाता है कि संस्कृत दुरूह भाषा है और इसीलिये इसे पढ़ने के लिए लोग सहज में आकृष्ट नहीं होते । पिछले कई वर्षो में यह धारणा भी गलत प्रमाणित की गयी है । कई स्वायत्त संस्थाओं ने और कई संस्कृत प्रेमियों ने यह

प्रमाणित करके दिखाया है कि एक या डेढ़ मास के अल्पाविधि शिविर में संस्कृत की शिक्षा इस प्रकार से दी जा सकती है कि इस अवधि के पश्चात् एक व्यक्ति संस्कृत में साधारण रूप से बोल चाल सकता है। यह प्रयोग आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, उडीसा, दिल्ली आदि प्रान्तों में तो हुआ ही, कई सांसदों ने भी इन शिविरों में भाग लेकर इस बात का अनुभव किया। संस्कृत एक सुव्यवस्थित भाषा है, जिसका व्याकरण सम्पूर्ण तथा सुविचारित है। फिर भी आधुनिक पद्धति को अपनाकर संस्कृत का शिक्षण सम्भाषण के द्वारा तथा अन्य तरीकों से किया जा सकता है। इसमें टेलीविजन, कम्प्यूटर आदि आधुनिक उपकरणों का भी यथोचित उपयोग किया जा सकता है, और इसके अध्ययन को सरल और आकर्षक बनाया जा सकता है। और ऐसा करने का दायित्व संस्कृत के विद्वानों और शिक्षकों पर है।

भारत सरकार की साहित्य अकादमी और राज्य सरकारों की अकादमियां प्रतिवर्ष संस्कृत के लेखकों को पुरस्कृत करती हैं। इसके अतिरिक्त संस्कृत के विशिष्ट विद्वानों को भी प्रतिवर्ष राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया जाता है। परन्तु बड़े खेद का विषय है कि अभी भी हमारे देश में संस्कृत के अध्यापकों को दूसरे विषयों के अध्यापकों की तुलना में कम वेतन मिलता है। संस्कृत के छात्रों तथा शोध कर्त्ताओं को दूसरे विषय के छात्रों एवं शोध कर्त्ताओं की अपेक्षा कम छात्रवृत्तियाँ मिलती हैं। इस सब के कारण संस्कृत पढने वालों में एक हीन भावना सी आ गयी है जिसका निवारण भी परम आवश्यक है। जहाँ कहीं इस तरह की विसंगतियाँ हैं, सरकार को चाहिये कि वह इन विसंगतियों को दूर करे, ताकि संस्कृत पढने वालों का आत्मसम्मान पुनर्जीवित हो।

देश के अन्दर और देश के बाहर संस्कृत की पाण्डुलिपियों का एक बहुत बड़ा भण्डार उपलब्ध है, जिसकी पूरी जानकारी तक सम्भवतः उपलब्ध नहीं है। न जाने इन ग्रन्थों में कौन-कौन से रत्न छिपे पड़े हैं। हमारी सरकार का ध्यान इस ओर भी जाना चाहिये, ताकि इन पाण्डुलिपियों की विस्तृत विवेचनात्मक सूची तैयार हो, इसका संरक्षण किया जाय और इनके सम्पादित संस्करणों के मुद्रण, प्रकाशन की भी व्यवस्था की जाये। इसके लिए एक केन्द्रीय संस्था की आवश्यकता है, जो इसका सर्वेक्षण करके अपना प्रतिवेदन दे सके। प्रायः देखने में आया है कि ये पाण्डुलिपियाँ भिन्न-भिन्न लिपियों में उपलब्ध हैं। जिनमें शारदा लिपि ग्रन्था लिपि तथा अन्य कई लिपियाँ सम्मिलत हैं। अब जब कि प्रायः ये सभी लिपियाँ प्रयोग में नहीं आ रहीं हैं, इस कारण से इन सभी ग्रन्थों को देवनागरी लिपि में उपलब्ध कराना होगा। इसके लिए भी एक बहुत बड़ी योजना बनानी होगी, जो एक निश्चित अवधि में इस कार्य को सम्पन्न करने की रूपरेखा तैयार करे।

संस्कृत की एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था, जिसका मुख्यालय पेरिस में है, के अन्तर्गत विश्व संस्कृत सम्मेलनों का आयोजन होता है। इस क्रम में पहला सम्मेलन १९७२

में दिल्ली में हुआ था और पाँचवा १९८१ में वाराणसी में। इन सम्मेलनों में देश के संस्कृत विद्वान्, भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों और संस्थाओं की वित्तीय सहायता से सम्मिलित होते हैं। इसके अतिरिक्त निजी स्तर पर बाहर के विभिन्न देशों से संस्कृत के शोधार्थी तथा विद्वान् भारतवर्ष में आकर अपने-अपने विषय के सबंध में विद्वानों से सम्पर्क करते हैं और सामग्री एकत्रित करते हैं। इसी प्रकार संस्कृत के क्षेत्र में जो सांस्कृतिक आदान-प्रदान अन्य देशों के साथ प्रचलित है, वह पूर्णतः सुव्यवस्थित नहीं लगता। अपेक्षित यह है कि इस सांस्कृतिक आदान प्रदान का संचालन भी एक केन्द्रीय संस्था के द्वारा ही हो, जिससे कि हर विषय के विद्वानों को उचित अवसर प्राप्त हो। इसके लिए भी समग्र देश के संस्कृत विद्वानों और उपलब्ध संस्कृत पंडितों की जानकारी एकत्रित करके एक केन्द्र में उपलब्ध कराने की आवश्यकता है।

१९८७ में भारत सरकार ने राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान की स्थापना की। इसका मुख्य उद्देश्य वेदों के उच्चारण की मौखिक परम्परा की सुरक्षा, वेदाध्ययन का प्रोत्साहन तथा वेद में निहित ज्ञान के शोध के लिए सुविधाएँ उपलब्ध कराना है। इस संस्था को वेद के सम्बन्ध की एक उच्चतम केन्द्रीय संस्था बनाते हुए एक बृहद् वैदिक पुस्तकालय का गठन कराना भी इसके उद्देश्यों में सम्मिलित है। गत तीन वर्षों में इस संस्था ने कई कार्यक्रम आरम्भ किये और आने वाले वर्षों के लिए कई योजनाएँ सुनिश्चित कीं। खेद का विषय है कि हजार से ऊपर प्रचलित वेद की शाखाओं में से इस समय मात्र १० शाखाएँ जीवित हैं। और इनमें से भी कई शाखाओं के जानकार केवल एक या दो हैं जो वयोवृद्ध हैं और यदि इन शाखाओं के और जानकर उपलब्ध नहीं कराये गये तो इन शाखाओं का भी लोप अवश्यम्भावी है। इसलिए सरकार के लिए इस संस्था को आवश्यक धन उपलब्ध कराना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। क्योंकि इस संस्था के उद्देश्यों में जो कार्य है उनकी क्रियान्विति यदि शीघ्र नहीं की गयी तो देश की सांस्कृतिक धरोहर को क्षति पहुँचेगी, जिसकी पूर्ति असम्भव हो जायेगी। इन वेद पंडितों को, जिन्होंने अपना समग्र जीवन वेदाध्ययन में लगाया, न केवल उचित सम्मान तथा उपयुक्त मानदेय देना आवश्यक है, अपि तु ऐसी व्यवस्था करनी है कि वे विद्वान् अपनी विद्या का अमृत नई पीढ़ी को पिलायें, ताकि जिस शाखा के आज एक या दो विद्वान् उपलब्ध हैं, अगले दस वर्षों में उसके आठ-दस वयस्क विद्वान् उपलब्ध हों, जो इस परम्परा को सँजोये रखे और आगे बढ़ायें।

अंत में यह कहना भी आवश्यक है कि संस्कृत को किसी धर्म विशेष के साथ जोड़ना, इसके साथ बड़ा अन्याय होगा। संस्कृत भारत की भाषा है, किसी विशेष वर्ग की नहीं। इसमें हमारी संस्कृति, हमारी परम्परा, हमारी सभ्यता की जानकारी सुरक्षित है और सुरक्षित हैं वे मूल्य जो भारत की पहचान हैं और जिनके कारण

संसार भर में भारत का सम्मान होता चला आ रहा है। इसलिए संस्कृत को पढ़ना, संस्कृत का प्रचार करना और संस्कृत की हर प्रकार से सेवा करना भारत सरकार का, प्रत्येक राज्य सरकार का तथा प्रत्येक भारत वासी का परम धर्म है।

# भाति मे भारतम्

## एक राष्ट्रीय दृष्टि

डॉ0 रामेश्वर प्रसाद गुप्त

मानव जीवन के महत्त्वपूर्ण मूल्य सुसंस्कार, सदाचरण, सद्वृत्ति, सुशिक्षा सुज्ञान, कार्य कर्म में निष्ठा, परोपकार, सहृदयता, सौहार्द, दया, क्षमा, धैर्य, धर्माचरण आदि हैं; किन्तु देशभक्ति या राष्ट्रीय भावना ऐसा अमूल्य मूल्य है एवं मानव जीवन का वह प्राणाधार है जिसके ये सभी जीवन मूल्य अंग हैं। राष्ट्र का योग और क्षेम ही उन सभी के स्थायित्व का आधार है।

काव्य का सृजन व्यष्टि एवं समष्टि के किसी भी अंग को आधार बनाकर होता है। कवियों द्वारा काव्य की विविध-विधाओं के माध्यम से सृष्टि के एक अथवा अनेक रूप उन माध्यमों के द्वारा समाज के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। लेकिन उस यशस्वी कवि की कलम ही कृतार्थ मान्य है, जो अपनी मातृभूमि या राष्ट्र के गौरव को गरिमा प्रदान करती है एवं राष्ट्र के उन्नयन एवं अभ्युदय के प्रति सचेतनता से सचेष्ट रहती है।

**''भाति मे भारतम्''** काव्य के प्रणेता पं0 डॉ0 रमाकान्त शुक्ल की अमर लेखनी ने 'भारत देश' के गौरव का कल कीर्तन कर उन महाकवि को अजरता सहित अमरता प्रदान करते हुए देश भर के लोगों में राष्ट्रीय भावना के जागरण का जो अलख जगाया है, जो शंखनाद किया है,उसकी झंकृति सभी के हृदयों में प्रेरक गुञ्जार करती हुई अपनी इस धरा के प्रति अपने को समर्पित करने की कल्याण कारी भावना को उत्पन्न करने में सक्षम स्रोत के रूप में सुप्रवाहित है।

महाकवि की दृष्टि भारत में रमने पर भी विश्वबन्धुत्व की भावना से संयुक्त, अत एव विशाल भावना से उपेत है। यथा-

विश्वमेकं कुटुम्बं समालोकयद्<br>
भूतले भाति मेऽनारतं भारतम्।।

भारत देश की सुस्थिति में अहिंसा की भावना को प्रधानाधार निरूपित करते हुए कवि इस राष्ट्र के सभी गुणान्वित एवं श्रेष्ठ सोपानों को प्रस्तुत करता हुआ इसके आकर्षण का वर्णन इस प्रकार करता है-

मानवामानितं दानवाबाधितं<br>
निर्जराराधितं सज्जनासाधितम्।

पण्डितैः पूजितं पक्षिभिः कूजितं

भूतले भाति मेऽनारतम् भारतम्।।

महाकवि के चिन्तन में यह देश सभी प्रणियों का आकर्षण केन्द्र एवं रम्य है-

निर्जरैर्योगिभिर्भोगिभिश्चार्थितं

भूतले भाति मेऽनारतं भारतम्।।

जीवनमुक्ति के सोपान शील, संतोष एवं सत्यादि हैं जो भारत के योग और क्षेम के निमित्त एवं उपादान दोनों कारण हैं। अर्थात् सदाचरण एवं शील-संतोष इस देश का अन्तःकरण एवं आत्मा है, इसी लिये भूतल पर यह देश रम्य है-

शीलसन्तोषसत्यादिभी रक्षितं

भूतले भाति तन्मामकं भारतम्।।

वस्तुतः कवि की सृष्टि सर्वप्रथम उसके चरित्र का चित्रण है, उसके अन्तः का दृश्य है एवं उसका आदर्श या दर्पण है। कविवर डॉ0 रमाकान्त शुक्ल एक कर्त्तव्यनिष्ठ सुविज्ञ व्यक्ति हैं। उनकी कार्य कर्म में निष्ठा दृष्टि सम्पूर्ण समाज को कर्त्तव्यनिष्ठ मानती हुई इस देश की उन विशेषता का निर्धारण कर देती है, जो सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक सत्य के रूप में स्वीकृत है। उनके अनुसार ''इस देश में क्रिया के अभाव में ज्ञान एक भार ही है''-

ज्ञानमास्ते च भारः क्रियां वै विना

भूतले भाति तन्मामकं भारतम्।।

उक्त सूक्ति **''ज्ञानमास्ते च भारः क्रियां वै विना''** अपनी सामर्थ्य से अकर्मण्य ज्ञानियों की उत्प्रेरक दिशा निर्देशिका का कार्य करती है जिससे कि भारत की ''भा'' सर्वदा प्रदीप्त रहे।

महाकवि ने ''भाति मे भारतम्'' कृति में ''भारत'' के बाह्य तथा अन्तः रूप के विविध दृश्य प्रस्तुत कर जन सामान्य से लेकर देश के नेतृत्व तक को एक राष्ट्रीय दृष्टि प्रदान करने का सद् उपक्रम किया है। मानव एवं मानवता, पशु पक्षी एवं उनकी रम्य संध्वनियाँ, प्रकृति एवं उसके विविध रमणीय आयाम-सलिलपूर्ण, सरितायें उत्तुंग अचल, सुदृढ सेतुबन्ध, खनिज खानें, अमूल्य औषधियाँ, विशिष्ट वैज्ञानिक उपलब्धियाँ, कला ज्ञान एवं वाद्य विज्ञान, धार्मिक अनुष्ठान एवं प्रतिष्ठान, सांस्कृतिक आयाम एवं विश्राम, सामाजिक वेष एवं परिवेश, दार्शनिक तत्त्व एवं महत्त्व, राजनीतिक विमर्श एवं निष्कर्ष, पुरुषार्थचतुष्टय एवं चतुर्दशविद्यासमीक्षण तथा प्राणिमात्र में आत्मवीक्षण आदि विचारों का सरस अनुबन्ध सुकवि ने अपनी इस कृति में मधुरता से किया है। भाषाओं में श्रेष्ठ ''संस्कृत'' भाषा को मोदप्रदायिनी के रूप

में उल्लेख करते हुए कहा है कि-

देववाणी च यत्रास्ति मोदाकुला

भूतले भाति तन्मामकं भारतम्।।

भारत और भारतीयता से परम अनुरक्ति के कारण सुकवि ने न यहाँ का कोई त्यौहार छोड़ा न तीर्थ। विभिन्न संस्कृतियो, भाषाओं, कलाओं, व्यापारों, भावों, चित्रों, चित्रस्थानों, आदर्शों एवं आश्चर्यों आदि सभी को कृति में समाहित कर पाठकों के समक्ष उनके मनोरम बिम्ब उपस्थित करना कवीश्वर की ईप्सित मनोवृत्ति रही है।

भारत देश महापुरुषों एवं अवतार पुरुषों की पावन धरा है। ये अवतार पुरुष आज भी हमारा सशक्त सम्बल हैं अवतारी परमतत्त्व पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण एवं उनके परम धाम को स्मरण करते हुए सुकवि की लेखनी की प्रखरता एवं रम्यता अवलोकनीय है-

कृष्णलीलायुतं वेणुसंनादितम्,

पावनं भावनं यत्र वृन्दावनम्।

शम्भुशूलस्थिता यत्र वाराणसी

भूतले भाति तन्मामकं भारतम्।।

देशभक्तों की गाथा का गान करते हुए महाकवि परम आमोदित है-

भूधराकाशतोयेषु रक्षापरो,

यत्र शत्रून् भटो हेलया नाशयेत्।

यत्र वीराङ्गना युद्धभूमिं गता,

भूतले भाति तन्मामकं भारतम्।।

भारत देश स्वतन्त्रता और समानता का परम पक्षधर है। प्राणिमात्र में समानता का भाव इसका अपना वैशिष्ट्य है। इस प्रकार अपने देश की महनीयता को प्रस्तुत करते हुए कवि का कथन है कि-

सर्वभूतेषु दृष्टिं समां धारयद्

भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ।

समाज सुधारकों एवं श्रेष्ठपुरुषों के नाम स्मरण से कविश्रेष्ठ ने अपने देश की गौरवगाथा का मनोरम गान किया है-

श्रीदयानन्दगान्ध्युज्ज्वलं गुर्जरं,

स्वर्णवङ्गं विवेकारविन्दोज्ज्वलम्।

नानकाद्युज्ज्वलं पञ्चतोयं दधत्,

भूतले भाति मेऽनारतं भारतम्।।

इस प्रकार महाकवि डॉ0 शुक्ल ने अपनी इस उत्कृष्ट कृति में आदर्श को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करते हुए राष्ट्र के प्रति भक्ति भावना का जो अजस्र प्रवाह प्रवाहित किया है, उसकी मधुर सरस अमृतमयी धारा में जन जन का ही नहीं; अपितु प्राणिमात्र का तन, मन संजीवन सहज रूप से आलोडन करने के लिये उत्सुक एवं उत्कण्ठित होता है।

**''भाति मे भारतम्''** काव्य एक राष्ट्रीय काव्य है। यह काव्य समाज में राष्ट्र के प्रति समर्पण की सहभावना का जागरण कराने में एवं देशभक्ति की भावना को उत्पन्न करने में पूर्ण सक्षम है।

सन्त्यनेके गुणा अत्र काव्ये स्थिताः,

राष्ट्रभावस्तु मुख्यात्मना शोभते।

वन्दनीयाः समे सन्ति ते सज्जनाः,

येपठन्ति प्रियं ''भाति मे भारतम्''।।

# 'देववाणी-परिषद्, दिल्ली'

## द्वारा

# प्रकाशित संस्कृत साहित्य

-आनन्दवर्धन शुक्ल

**'देववाणी-परिषद्, दिल्ली'** संस्था सन् 1976 से संस्कृत के प्रचार-प्रसार के लिए कार्यरत है। 21.8.1976 को इसकी नियमावली समिति-पञ्जीयक के कार्यालय में प्रस्तुत की गयी; अतः प्रति वर्ष 21 अगस्त को इसका 'संकल्पना-दिवस' मनाया जाता है एवं 13.12.1976 को इसका पञ्जीकरण हुआ था; अतः प्रति वर्ष 13 दिसम्बर को इसका 'स्थापना-दिवस' मनाया जाता है। परिषद् ने अपनी उद्देश्यों के अनुसार विगत वर्षों में बहु आयामी गतिविधियाँ आयोजित की हैं। देश की राजधानी में संस्कृतमय वातावरण बनाने के लिए परिषद् ने जहाँ एक ओर संस्कृत-नाट्योत्सव, संस्कृत-संगीतक, एकल तथा समूह गान-प्रतियोगिताएँ, अक्षरश्लोकम्, विचार गोष्ठियाँ, अ0भा0 संस्कृत कवि सम्मेलन, आचार्यश्रीब्रह्मानन्दशुक्ल-व्याख्यानमाला विद्वदभिनन्दन आदि कार्य कलाप आयोजित किये वहीं संस्कृत-आशुलिपि के विकास के लिए प्रयत्न भी किये। 1983 को इसकी प्रेरणा से 'संस्कृत आशुलिपि' का प्रदर्शन भी एक आशुलिपिकार ने कर दिखाया जिसके लिए उसे परिषद् ने 5001/- का 'संस्कृत आशुलिपि-श्रीगणेश-पुरस्कार' प्रदान किया।

परिषद् 1979 से **'अर्वाचीनसंस्कृतम्'** नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन भी कर रही है जिसके 1992 तक प्रकाशित 3730 पृष्ठों में 200 के लगभग लेखकों और रचनाकारों के 121 लेख और 284 रचनाएँ प्रकाशित हैं।

परिषद् ने अनेक संस्कृत ग्रन्थ भी प्रकाशित किये हैं। कुछ ग्रन्थ तो 'अर्वाचीन-संस्कृतम्' में पूर्व प्रकाशित सामग्री को पृथक् पुस्तकाकार में प्रस्तुत करते हैं, कुछ ग्रन्थों को बाद में 'अर्वाचीनसंस्कृतम्' में भी इस दृष्टि से प्रकाशित किया गया है जिससे कि नियमित पाठकों को अधिक मूल्य वाली सामग्री अल्प मूल्य में मिल सके। कुछ स्वतन्त्र ग्रन्थ अनेक खण्डों में प्रकाशित किये गये हैं तथा अन्तिम खण्ड के प्रकाशन के बाद में सभी एक जिल्द में भी प्रकाशित किये गये हैं। देववाणी-परिषद् ने ऐसे ग्रन्थों का प्रकाशन कर एक आदर्श स्थापित किया है जिन ग्रन्थों को प्रकाशन-व्यवसायी संस्थान प्रकाशित करने में हिचकिचाते हैं। इन ग्रन्थों में नाटक,

महाकाव्य, खण्डकाव्य, उपन्यास, अनुवादकाव्य, पुराणकाव्य, गीतिकाव्य, मुक्तककाव्य आदि अन्तर्मुक्त हैं। प्रकाशित ग्रन्थों के अवलोकन से यह बात निर्भ्रान्ति रूप में सामने आती है कि संस्कृत की रचना-धारा सदानीरा है जैसा कि परिषद् के संस्थापक महासचिव डा0 रमाकान्त शुक्ल का कथन है:-

अज्ञैर्मृतेति गदिता, ह्यमरत्वभावभरिता।
नित्यं प्रवर्धमाना, सुरभारती विजयते।।

इन सभी ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय भी पर्याप्त स्थान की अपेक्षा रखता है। यहाँ हम स्थानानुरोध से देववाणी-परिषद् द्वारा प्रकाशित 83 ग्रन्थों का आनुपूर्वी से उल्लेख मात्र कर रहे हैं। आशा है यह ग्रन्थ-सूची जिज्ञासुओं के कौतूहल एवं आनन्द का वर्धन करने वाली सिद्ध होगी। इस सूची में पहले क्रम संख्या, तत्पश्चात् ग्रन्थनाम, फिर ग्रन्थकर्त्ता का नाम और कोष्ठकों में प्रकाशन तिथि प्रदत्त हैं। अन्त में 21.8.92 अर्थात परिषद् के सप्तदश संकल्पना-दिवस से प्रभावी मूल्य अंकित है।

## ग्रन्थ-सूची

1. **देववाणी-विलासः** (सं0 डॉ0 रमाकान्त शुक्लः) (22.1.1978)
2. **सुगमरामायणम्** (आचार्य रमेशचन्द्र शुक्लः) (18.8.1978) 60.00
3. **द्वितीयवार्षिकाधिवेशनस्मारिका** (सं0 डॉ0 रमाकान्त शुक्लः) (12.2.1979)
4. **अर्वाचीनसंस्कृतमहाकाव्यविशर्मः (I)** (सं0 डा0 रमाकान्त शुक्लः) (10.7.1979) 50.00
5. **श्रीकृष्णचरितम्** (आचार्य रमेशचन्द्र शुक्लः) (30.11.1979) 50.00
6. **देववाणी-दर्शनम्** (सं0 डा0 रमाकान्त शुक्लः) (13.12.1979) 50.00
7. **तृतीयवार्षिकाधिवेशनस्मारिका** (सं0 डा0 रमाकान्त शुक्लः) ( 21.3.1980)
8. **अर्वाचीनसंस्कृतमहाकाव्यविमर्शः (II)** (सं0 डा0 रमाकान्त शुक्लः) (27.5.80) 50.00
9. **कर्णभूषणम्** (डा0 सी0 आर0 स्वामिनाथन्) (15.7.1980) 15.00
10. **हरविजयस्य साहित्यिकमध्ययनम्** ( डा0 कृष्णकान्त शुक्लः) (21.8.1980) 100.00 ।
11. **भाति मे भारतम्** (प्रथमसंस्करणम्) (डा0 रमाकान्त शुक्लः) (22.11.1980) 40.00
12. **श्रीमदप्पयदीक्षितचरितम्** (डा0 हरिनारायण दीक्षितः) (9.2.1981) 20.00

13. **भारतस्वातन्त्र्यसंग्रामेतिहासः** (आचार्य डा0 रमेशचन्द्र शुक्लः) (4.3.81) 35.00
14. **आभाणकमञ्जरी** (पं0 टी0 वी0 परमेश्वर अय्यरः) (13.5.1981 17.7.81) 15.00
15. **सदाशयसमुच्चयः** (पं0 टी0 वी0 परमेश्वर अय्यरः) (27.5.1981) 15.00
16. **मेघदूत : एक विश्लेषण** (डा0 देवीदत्त शर्मा) (18.6.1981) 20.00
17. **रघुवंश : एक विश्लेषण** (डा0 देवीदत्त शर्मा) (2.7.1981) 20.00
18. **अभिज्ञानशाकुन्तल : एक विश्लेषण** (डा0 देवीदत्त शर्मा) (17.7.1981) 20.00
19. **कालिदास की कला और संस्कृति (II)** (डा0 देवीदत्त शर्मा) (17.7.1981) 60.00
20. **अर्वाचीनसंस्कृतमहाकाव्यविमर्शः (III)** (सं0 डा0 रमाकान्त शुक्लः) (13.12.1981) 50.00
21. **जय भारतभूमे (प्रथमसंस्करणं)** (डा0 रमाकान्त शुक्लः) (24.12.1981) 30.00
22. **साधारणीकरण और समानान्तर चिन्तन की पूर्वपीठिका** (डा0 सुलेखचन्द्र शर्मा) (21.3.1982) 50.00
23. **राधाकृष्णरसायनम्** (पं0 ओट्टूर उण्णि नम्बूदिरीपादः) (6.7.1982) 40.00
24. **अभिनवहनुमन्नाटकम्** (आचार्य रमेशचन्द्र शुक्लः) (15.8.1982) 25.00
25. **अर्वाचीनसंस्कृतसाहित्यपरिचयः (I)** (सं0 डा0 रमाकान्त शुक्लः) (21.8.82) 50.00
26. **पूर्णकुम्भः** (पं0 विष्णुकान्त शुक्लः) (29.10.1982) 20.00
27. **भट्टनायक और अभिनवगुप्त की साधारणीकरणविषयक अवधारणा** (डा0 सुलेखचन्द्र शर्मा) (15.11.1982) 50.00
28. **स्फूर्तिसप्तशती** (डा0 शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी) (29.12.82) 30.00
29. **साहित्यकौतुकम्** (पं0 टी0 वी0 परमेश्वर अय्यरः) (19.1.1983) 40.00
30. **षष्ठवार्षिकाधिवेशनस्मारिका** (सं0 डा0 रमाकान्त शुक्लः) (21.1.1983)
31. **संस्कृत साहित्य में राष्ट्रिय भावना (प्रथम खण्ड)** (डा0 हरिनारायण दीक्षित)

(11.2.1983) 100.00

32. **श्रीबदरीशसुप्रभातम्** (डा0 सी0 आर0 स्वामिनाथन्) (10.3.1983) 10.00

33. **रसदर्शनम् (प्रथमसंस्क0)** (डा0 रमेशचन्द्र शुक्लः) (4.6.1983) 25.00

34. **अभिनवोत्तर संस्कृत काव्य शास्त्र में साधारणीकरणविमर्श** (डा0 सुलेख चन्द्र शर्मा) (5.6.1983) 50.00

35. **संस्कृत साहित्य में राष्ट्रिय भावना (द्वितीय खण्ड)** (डा0 हरिनारायण दीक्षित) (1.8.1983) 100.00

36. **संस्कृत साहित्य में राष्ट्रिय भावना** (तृतीय खण्ड) (डा0 हरिनारायण दीक्षित) (15.8.1983) 100.00

37. **श्रीपादसप्ततिः श्रीपादपरागव्याख्या** (डा0 सी0 आर0 स्वामिनाथन्) (31.8.1983) 40.00

38. **उच्छिष्टगणपतिमहाकल्पः** (सं0 डा0 सी0 आर0 स्वामिनाथन्) (4.11.83) 8.00

39. **श्रीबदरीशतरङ्गिणी** (श्री श्रीसुन्दरराजन्) (13.12.1983) 20.00

40. **सुरश्मिकाश्मीरम्** (श्री श्रीसुन्दरराजन्) (24.12.1983) 20.00

41. **संस्कृतसङ्गीतक-संस्कृतनाट्यसमोरह-विवरणिका** (सं0 डा0 रमाकान्त शुक्लः) (28.12.1983)

42. **पुरश्चरणकमलम्** (डा0 रमाकान्त शुक्लः) (13.12.1983) 10.00

43. **साधारणीकरण : प्राच्य एवं प्रतीच्य चिन्तन** (डा0 सुलेखचन्द्र शर्मा) (13.12.1983) 50.00

44. **रसदर्शनम् (द्वितीयसंस्करणम्)** (डा0 रमेशचन्द्र शुक्लः) (1.1.1984) 50.00

45. **संस्कृत साहित्य में राष्ट्रिय भावना (सम्पूर्ण)** (डा0 हरिनारायण दीक्षितः) (26.1.1984) 300.00

46. **आराधना** (सं0 मण्डन मिश्रः) (13.3.1984) 10.00

47. **भाति मौरीशसम्** (डा0 रमाकान्त शुक्लः) (15.4.1984) 10.00

48. **साधारणीकरण और समानान्तर चिन्तन** (डा0 सुलेखचन्द्र शर्मा) (21.8.1984) 200.00

49. **कूहा** (डा0 उमाकान्त शुक्लः) (13.12.1984) 20.00

50. **पण्डितराजीयम्** (डा0 रमाकान्त शुक्लः) (24.12.1984) 20.00
51. **कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने** (आचार्य रमेशचन्द्र शुक्लः) (1.1.1985) 10.00
52. **अभिशापम्** (डा0 रमाकान्त शुक्लः) (2.1.1985) 20.00
53. **सारस्वतसमुन्मेषः** (डा0 विन्ध्येश्वरीप्रसाद मिश्रः 'विनयः') (7.1.1985) 20.00
54. **रस सिद्धान्त और नाटक** (डा0 सुन्दरलाल कथूरिया) (2.7.1985) 60.00
55. **नवभारतपुराणम्** (डा0 रमेश चन्द्र शुक्लः) (15.8.1985) 50.00
56. **अभागभारतम्** (श्रीसुन्दरराजः) (30.10.1985) 20.00
57. **महाप्रयाणम्** (कविरत्न श्रीकृष्ण सेमवालः) .(30.10.1985) 20.00
58. **काव्याञ्जलिः** (सं0 रमाकान्त शुक्लः) (29.12.1985) 60.00
59. **अध्यात्मरामायण में अध्यात्मचिन्तन** (पं0 त्रिगुणानन्द शुक्लः) (12.10.1986) 40.00
60. **निकषा** (डा0 केशवचन्द्र दाशः) (17.10.1986) 20.00
61. **श्रीगरुडध्वजसपादशतकम्** (डा0 रामकिशोर मिश्रः) (13.12.1986) 15.00
62. **संस्कृतसेवकः स्वामिनाथः** (सं0 रमाकान्त शुक्लः) (9.3.187) 60.00
63. **नूतनसत्यनारायणकथा** (डा0 रमेशचन्द्र शुक्लः) (11.7.1987) 10.00
64. **लक्ष्मीशतकम्** (डा0 वरदाचार्य कण्णन्) (21.8.1987) 20.00
65. **ऋतम्** (डा0 केशवचन्द्र दाशः) (13.12.1987) 20.00
66. **दयानन्दसूक्तिसप्तशती** (पं0 शिवकुमार मिश्रः) (13.12.1988) 20.00
67. **श्रीनेहरूवृत्तम्** (डा0 रमेशचन्द्र शुक्लः) (26.1.1989) 15.00
68. **कालिदास की जन्मभूमि गढ़वाल हिमालय** (पं0 धर्मानन्द जमलोकी) (22.6.1989) 40.00
69. **भाति मे भारतम् (द्वितीयसंस्क0)** (रमाकान्त शुक्लः) (21.8.1989) 15.00
70. **गान्धिसूक्तिसप्तशती** (पं0 शिवकुमार मिश्रः) (21.8.1989) 20.00
71. **श्रीसीताचरित्रम्** (आचार्य डा0 रमेशचन्द्र शुक्लः) ( 21.8 1989) 20.00
72. **श्रीगान्धिचरितम्** (प्रो0 चारुदेव शास्त्री) (2.10.1989) 50.00
73. **श्रीराधाचरित्रम्** (आचार्य डा0 रमेशचन्द्र शुक्लः) (13.12.1989) 20.00

74. **दूतप्रतिवचनम्** (डा0 इच्छाराम द्विवेदी 'प्रणवः') (24.12.1989) 20.00

75. **भाति मे भारतम् (तृतीयसंस्करणं)** (रमाकान्तशुक्लः) (21.8.1990) 18.00

76. **अर्वाचीनसंस्कृतसाहित्यपरिचयः (II)** (सं0 डा0 रमाकान्त शुक्लः) (12.2.1991) 50.00

77. **'अर्वाचीनसंस्कृत'संग्रहः (I)** (सं0 डा0 रमाकान्त शुक्लः) (6.1.1992) 200.00

78. **'अर्वाचीनसंस्कृत'संग्रहः (II)** (सं0 डा0 रमाकान्त शुक्लः) (6.1.1992) 200.00

79. **'अर्वाचीनसंस्कृत'संग्रहः (III)** (सं0 डा0 रमाकान्त शुक्लः) (6.1.1992) 200.00

80. **गीतिमञ्जरी** ('कविरत्न' ओम्प्रकाशठाकुरः) (8.2.1992) 60.00

81. **नाट्यसप्तकम्** (डा0 रमाकान्त शुक्लः) (21.8.1992) 100.00

82. **जय भारतभूमे (द्वितीयसंस्क0)** (डा0 रमाकान्त शुक्लः) (21.8.1992) 100.00

83. **श्रीहनूमत्पञ्चाशत् तथा शरणागतिषोडशी** (श्रीसुन्दरराजः) (24.10.92) 10.00

इस लेख के लिखे जाते समय दो ग्रन्थ- **'भारतजनताऽहम्'** (ले0 डा0 रमाकान्त शुक्ल) और **'राजनीतितिलीलाशताधिकम्'** (ले0 डा0 दीपक घोष) मुद्रणाधीन हैं। उपर्युक्त सूची में अनेक ग्रन्थ अब अलभ्य और दुर्लभ हो चुके हैं। इस विषय में अधिक जानकारी के लिए परिषद् के पते पर पत्र व्यवहार किया जा सकता है। पता इस प्रकार है-

महासचिव, देववाणी-परिषद्, दिल्ली, आर-6 वाणी विहार,
नयी दिल्ली-110059

(13.12.1992 देववाणी-परिषद्, दिल्ली का सप्तदश स्थापना-दिवस)

# 'देववाणी-सुवास'-पञ्चम-प्रसर-लेखक-परिचय :

अभिनव शुक्लः

(अस्यां सूच्यां 'देववाणी-सुवास'स्य पञ्चमप्रसरे लेखदातॄणां विदुषां/विदुषीनां संस्कृतभाषायां, हिन्दीभाषायां, वा देवनागरीवर्णमालाक्रमेण कुलनाम, नाम, जन्मतिथिः, जन्मस्थानं, पितृ-मातृ-नाम, शिक्षोपाधयः, प्रकाशित/प्रणीतग्रन्थनाम, 1990-93 कालावधौ अध्युष्टपदं, साम्प्रतिक आवाससङ्केतः, अन्ते च देवाणी-सुवास-पञ्चमप्रसर-पृष्ठसंख्या दीयन्ते। क्वचित्पूर्णतथ्यानुपलब्धौ यथासम्भवं कुलनाम-नामादीनामुल्लेख एव क्रियते।)

अग्रवाल, डा0 महावीर । एम0 ए0 (संस्कृत, वेद, हिन्दी), पीएच 0 डी0 (संस्कृत) व्याकरणाचार्य। रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत-विभाग, गुरुकुल काँगडी वि0 वि0, हरद्वार (1990)। आवास : 5 प्रोफेसर्स कालोनी, गुरुकुल काँगडी वि0 वि0 हरद्वार-249404 (उ0 प्र0)। 5.269

अग्रवाल डा0 सौ0 रंजनी । 5.547। इन्दौर।

अभ्यंकर, डा0 सौ0 कमल शंकर । 15.12.1938 । एम0 ए0 पीएच0डी0 (संस्कृत)। संस्कृतरचना, रंजनकथामाला-प्रथमं पुष्पम्, संस्कृतनिबन्धादर्शः, राजशेखराची काव्यमीमांसा। आकाशवाणी और दूरदर्शन पर कार्यक्रम प्रस्तुति। प्रपाठक और संस्कृत विभाग प्रमुख, श्री0 ना0 दा0 ग0 महिला विद्यापीठ, बम्बई। सी-9 गणेश भवन, सेनापति बापट मार्ग, माहीम मुम्बई-400016। 5.195

अवस्थी, बाबूराम। एम0 ए0, आचार्य। संस्कृतबोधिनी, संस्कृतशिक्षकः (पञ्चभागेषु)। सरलसंस्कृतसम्भाषणम्,प्रार्थनापद्यावली! पूर्व महामन्त्री, संस्कृत परिषद् लखीमपुर खीरी । कृतकार्य प्रवक्ता पी0 के0 इण्टर कालेज, लखीमपुर खीरी। मौ0 वाजपेयी कालोनी, लखीमपुर खीरी (उ0प्र0)। 5.787, 5.797।

अवस्थी, डा0 बच्चूलाल 'ज्ञान'। 6-8-1918। एम0 ए0 (संस्कृत-हिन्दी) साहित्य-व्याकरणाचार्यडी0लिट्0। देवव्रतीयम् (महाकाव्य), तुलसीकोश, व्युत्पत्तिकोश तथा स्फुट कविताएँ। कालिदास अकादमी, उज्जैन। 5.021, 5.720।

'अव्यय' रामकृष्ण शास्त्री । १-१५ कार्तिक १९८० वैक्रमाब्द। शास्त्री (लब्धस्वर्णपदकः काशी हिन्दू विश्वविद्यालयतः), गद्यपद्य, कविता लेखनादि में रत। सम्पादक-जनजागरणम् संस्कृत समाचारपत्र, भू0 पू0 सम्पादकः 'सुप्रभातम्' श्री रामप्रकाशनम् 122 श्री रघुनाथपुरम्, पुराना जम्मू 180001। 5.573।

आचार्य, डा0 सुद्युम्न। 9.1.196 व्याकरणाचार्य, एम0 ए0, डी0 फिल। रोचन्तां शब्दभूमयः,राजन्तां दर्शनांगवः। संस्कृत विभाग, मु0म0 टाउन पी0 जी0 कालेज, बलिया । वेदवाणी वितान, प्राच्यविद्या शोध संस्थान, कोलगवाँ, सतना। 5.299।

आरलीकट्टी, डा0 आर0 एन0। एम0 ए0, पीएच0 डी0, एम0 एड0 आचार्य। विदेशों में भाषण प्रदत्त। रजिस्ट्रार, राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ (मानित वि0 वि0), तिरुपति। 6-12-17ए कनकभूषण ले आउट, तिरुपति -517507 । 5.326 ।

उन्नि, डा0 एन0 पी0 । एम0 ए0, पीएच0 डी0 (संस्कृत)। प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, केरल वि0 वि0, KARIATTOM, TRIVANDRUM । 5.594 ।

कण्णन् डा0 वरदाचार्य । तमिलनाडु-प्रान्ते, नावल्पाक्का श्रोत्रियग्रामे। श्री नारायणताताचार्यस्य पौत्रः, श्रीवरदाचार्यस्य पुत्रः। गणितशास्त्रे एम0 एससी0, एम0 फिल्0, पीएच0, डी0। गणितविषयकाः लेखा नैकासु वैदेशिकपत्रिकासु प्रकाशिताः । संस्कृतलेखास्तु अर्वाचीनसंस्कृत-सुधर्मा-सुरभारती-प्रभृति-पत्रिकासु प्रकाशिताः। केन्द्रीयविश्वविद्यालये हैदराबादनगरस्थे गणित-विभागाचार्याध्यक्षः, गणितसूचना-विज्ञानसंकायप्रमुखश्च, यूनीवर्सिटी ऑफ हैदराबाद, सेन्ट्रल यूनीवर्सिटी, हैदराबाद-500134। 5.732।

कथूरिया, डा0 सुन्दरलाल। 1-7-1941। दराबन कलाँ, डेरा इस्माइल खाँ (उत्तर-पश्चिमी-सीमाप्रान्त) सम्प्रति पाकिस्तान में । शास्त्री (प्र0 खं0) एम0 ए0, एम0 लिट्0, पीएच0 डी0, डी0 लिट्0। रस संख्या : काव्यशास्त्रीय विश्लेषण रस सिद्धान्तः आक्षेप और समाधान, व्यूह से जूझता अभिमन्यु, रस सिद्धान्त और नाटक आदि अनेक ग्रन्थ। दिल्ली वि0 वि0 के आत्माराम सनातनधर्म कालेज में हिन्दी विभाग के रीडर (1992 तक)। सम्प्रति प्रोफेसर तथा अध्यक्ष हिन्दी विभाग, भावनगर यूनिवर्सिटी, गौरीशंकर लेक रोड, भावनगर-346002। स्थायी दिल्ली आवास बी 3/79 जनक पुरी नई दिल्ली-110058। 5.080।

कुमार, डा0 शशिप्रभा। 1.11.1951। बी0 ए0 आनर्स, एम0 ए0, पीएच0 डी0 (संस्कृत) । वैशेषिक दर्शन में पदार्थनिरूपण, अधुनिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय दर्शन की प्रासङ्गिकता (सम्पादित)। रीडर संस्कृत-विभाग, मैत्रेयी कालेज, बापूधाम, चाणक्यपुरी, नई दिल्ली -110021। 21 साक्षरा अपार्टमेण्ट्स, ए 3 ब्लाक, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063। 5.233 ।

कैंघे, प्रो0 चिन्तामणि त्र्यम्बक (सी0टी0)। एम0 ए0, पीएच0 डी0, वेदान्तालंकार। प्रोफेसर तथा चेयरमैन, संस्कृत-विभाग, अलीगढ मुस्लिम वि0 वि0। १ मौरिसन रोड, अलीगढ मु0 वि0 वि0 परिसर अलीगढ-202002। 5.439।

कौशल, डा0 चितरंजन दयाल सिंह । एम0 ए0, पीएच0 डी0। सम्पादक, संस्कृत वीणा। प्राध्यापक संस्कृत-विभाग, यूनिवर्सिटी कालेज, कुरुक्षेत्र वि0 वि0 171।1 वधवा भवन, मसीता हाऊस, थानेसर, कुरुक्षेत्र-132118। (हरि0) 5.356।

कौशिक, डा0 सत्यदेव । एम0 ए0 (संस्कृत बौद्धअध्ययन) नव्यव्याकरणाचार्य, एम0 फिल्0 (दिल्ली वि0 वि0), पीएच0 डी0 (आगरा)। प्रतिप्राध्यापक संस्कृत-

विभाग अलीगढ़, मुस्लिम वि0 वि0 अलीगढ़। 5.487।

गुप्त, डा0 रामेश्वर प्रसाद । एम0 ए0, पीएच0 डी0। अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दतिया (म0प्र0)। 5 .807।

गुप्त, डा0 सुधीर कुमार। 1.5.1917। पिता ला0 रामस्वरूप गुप्त। एम0 ए0, पीएच0 डी0, डी0 लिट्। संस्कृत साहित्य का सुबोध इतिहास आदि अनेक ग्रन्थ,शताधिक शोधपत्र। कृतकार्य प्रोफेसर तथा अध्यक्ष संस्कृत-विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर। आदरी निदेशक, भारती मन्दिर अनुसन्धानशाला। ए-1, वेद सदन, विश्वविद्यालयपुरी, गोपालपुरा मार्ग, जयपुर- 302068 (राज0)। 5.416।

चटर्जी शास्त्री, डा0 अशोक। 30.10.1929। एम0 ए0 (संस्कृत-बंगला), पीएच0 डी0, डी0 लिट्0, डी0 जर0, डी0 फिल्0 ग्रिफिथ प्राइज़, ग्रिफिथ प्राइज़ द्वितीय बार, जर्मन डिप्लोमा, काव्यतीर्थ, वेदतीर्थ, प्राचीनस्मृतितीर्थ, नव्यस्मृतितीर्थ महामहोपाध्याय उमेशचन्द्र विद्यारत्न पुरस्कार (3 बार)। मीमांसा-प्रकाश, पद्मपुराण ए स्टडी, श्राद्धकल्प, श्रीदत्तस्य समयप्रदीपः, चित्रसूत्र, पितृभक्ति, कल्किपुराण, कामरूप-शासन-वैशिष्ट्य स्टडीज़, इन स्वर्गखण्ड, ऋग्वेदसंहिता, (प्रथम खण्ड), पुराणपरिचय, ऋग्वेदसंहिता (द्वितीय खण्ड), कौटिलीयार्थशास्त्रचर्चा, एनसेन्ट ट्रीटिज़ आफ इण्डियन आर्ट, ब्रह्मपुराण, कूर्मपुराण, वामनपुराण, गरुडपुराण (सम्पादन, भूमिका और अनुवाद), भट्टनारायण, तन्त्र :.दर्शन और साधना, पौराणिक दिग्दर्शन, पिंगलछन्दसूत्र-ए स्टडी, चित्रलक्षण, वायुपुराण, चैतन्य, विष्णुपुराण (सम्पादन, भूमिका और अनुवाद), पद्मपुराण-विश्लेषणात्मक अध्ययन, डीटिज एण्ड डीइफिकेशन इन ब्रह्मपुराण, ब्रह्माण्डपुराण (सम्पादना, विस्तीर्ण भूमिका और अनुवाद), अग्निपुराण, पातञ्जलयोगसूत्र, स्टडीज़ इन कौटिल्याज़ वोकेबुलरी, छन्दःशास्त्रे पिंगलदान, मिथ्स एण्ड लिजेण्ड्स इन कालिदास, हिस्ट्री आव रिलिजस आर्ट्स इन इण्डिया तथा 200 शाधपत्र। देश विदेश के विश्वविद्यालयों में अनेक भाषण प्रदत्त। 1992-93 में अभिनन्दनग्रन्थ से सम्मानित। प्रोफेसर तथा अध्यक्ष संस्कृत विभाग, कलकत्ता वि0 वि0। ए-3, लावोनी एस्टेट, साल्ट लेक सिटि, कलकत्ता-700064। 5.403।

चतुर्वेदी, डा0 शिवदत्त शर्मा। 16-4-1934। जयपुर। एम0 ए0, पीएच0 डी0, साहित्याचार्य । स्फूर्तिसप्तशती, चर्चामहाकाव्यम्, ललिता पत्रिका आदि 30 के लगभग ग्रन्थ। रीडर तथा अध्यक्ष, साहित्य-विभाग, संस्कृत विद्यासंकाय, काशी हिन्दू वि0 वि0। जी-28, अरविन्द कालोनी, वाराणसी-221005। 5.041।

चन्सौरिया, कु0 गीता । एम0 ए0 (संस्कृत), पीएच0 डी0 (शोध प्रबन्ध प्रस्तुत), विषयः स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत मुक्तक -काव्यों का समीक्षात्मक अध्ययन, मौ0 शास्त्री नगर (अलीगंज), बाँदा-210001। 5.044, 5.554।

जयसीताराम, डा0 मुल्लपूडि। एम0 ए0, पीएच0 डी0, (संस्कृत), एम0 ए0

(तेलुगु)। क्षेत्रय्य पदसाहित्यं, हरिजनचरितम्, गायत्रीजयरामम्, आदि। उपन्यासक श्री शंकर संस्कृत कला शाला, रेपल्ले Repalle 522265। 5.466।

जैन, डा0 भागचन्द्र 'भागेन्दु'। एम0 ए0, पीएच0 डी0। आचार्य, संस्कृत-विभाग, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दमोह (म0 प्र0)। 5.637।

झा, पं0 आद्याचरण । 1-1-1920। मंगरौनी (मधुवनी-मिथिला, बिहार), व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य। राष्ट्रपति सम्मानित संस्कृत पंडित। भारतीयवाङ्मयेषु रामकथावर्णनम्। बिहार राज्य में संस्कृत के सहायक शिक्षा निदेशक,प्रतिकुलपति, का0 सिं0 संस्कृत वि0 वि0, दरभंगा। (कृतकार्य)। पता- (22.8.90 को) 134, पाटलिपुत्र कालोनी, पटना-800013। वर्तमान पता- आशियाना रोड (श्री रमेश झा का मकान) पटना-800014। 5.254।

झा, डा0 रमा। 10-12-1945। एम0 ए0, पीएच0 डी0 (अंग्रेजी)। Gandhian thought & Indo-anglian novelists, (1983), Women & the Indian Print Media (Portrayal and Performance) (1992) अनेक शोध लेख तथा रचनाएं विभिन्न ग्रन्थों तथा पत्रिकाओं में प्रकाशित। 'च्वाइस इण्डिया' पत्रिका की संस्थापक सम्पादक। महिलाओं पर तीन फिल्मों की निर्माता। अनेक बार शिक्षा कार्य से विदेश यात्रा। रीडर, अंग्रेजी विभाग, लक्ष्मीबाई महिला कालिज,अशोक विहार. दिल्ली। एफ-10/14 मॉडल टाउन, दिल्ली-110009। 5.109, 5.114।

झा, वीरेन्द्र कुमार । 15.1.1962। साहित्याचार्य, शिक्षा शास्त्री। प्रचारमन्त्री, विश्वकल्याण अध्यात्मिक-परिषद्। संस्कृत कविसम्मलनों में काव्यपाठ। अध्यापक, साहित्यविभाग, श्रीमोतीनाथ संस्कृत महाविद्यालय, रमेशनगर, नई दिल्ली-110015। बी-18-19, मेजर भोलाराम एन्क्लेव, पो0 धूल सरस, पोचनपुर, नयी दिल्ली-110061। 5.032।

टण्डन, डा0 किरण । एम0 ए0, पीएच0 डी0। रीडर संस्कृत-विभाग, कुमायूँ वि0 वि0। 196, बड़ा बाजार, मल्ली ताल, नैनीताल-263001। 5.514।

ठाकुर, कविरत्न ओम्प्रकाश । 20.9.1934। एम0 ए0 (संस्कृत), शास्त्री, साहित्याचार्य। गीतिमञ्जरी, इन्द्रधनुः, अनेक रचनाएँ पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित। दिल्ली प्रशासन शिक्षा विभाग में उपप्रधानाचार्य। डी-757, सरस्वती विहार, दिल्ली-110034। 5.774।

तिवारी, डा0 चन्द्रशेखर । एम0ए0 (संस्कृत) डी0 फिल्0, वाल्मीकि रामायण के परिप्रेक्ष्य में स्वयम्भूप्रणीत पउमचरिउ का आलोचनात्मक अध्ययन। इलाहाबाद वि0 वि0 । 5.560 ।

तिवारी, डा0 (श्रीमती) शशि। 16.10.1945। एम0 ए0, पीएच0 डी0 (संस्कृत)। ऋग्वेदीय आप्रीसूक्त, मुण्डकोपनिषद्, ईशावास्योपनिषद् (सम्पादन-व्याख्या)। राजस्थान संस्कृत अकादमी से 'भारती मिश्रा' पुरस्कार। इटली के ट्यूरिन

वि0 वि0 में भाषण प्रदत्त। संस्कृत नाट्यप्रस्तुति में सहभाग। रीडर, संस्कृत विभाग, मैत्रेयी कालेज (दिल्ली वि0 वि0) बापूधाम, चाणक्यपुरी, नई दिल्ली-110021। 5.368।

त्यागी, सुखनन्दन। 10--7-1965। एम0 ए0 (संस्कृत)। 'बीसवीं शताब्दी के संस्कृत नाटको में राष्ट्रीय चेतना' विषय पर पीएच0 डी0 शोधछात्र, मेरठ वि0 वि0। 18-बी मुरारीपुरम् (कल्याण नगर), गढ़ रोड, मेरठ। 5.257।

त्रिपाठी, कामता प्रसाद 'पीयूष'। 1.9.1947। व्याकरणाचार्य एम0 ए0, साहित्यरत्न। सङ्गीतसूर्योदय, अनेक गीत, लेख, निबन्धादि पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित। रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत-विभाग, इन्दिरा कला संगीत वि0 वि0, खैरागढ़, जिला- राजनाद गाँव -491881। 5.026।

त्रिपाठी, डा0 भास्कराचार्य। 23-9-1942। अभिलेखों में 1-7-42। एम0 ए0, डी0 फिल्0। अजाशती, लक्ष्मीलाञ्छनम्, सुतनुकालास्यम्, मृत्कूटम् आदि। म0 प्र0 संस्कृत अकादमी के संस्थापक सचिव एवं दूर्वा संस्कृत पत्रिका के संस्थापक प्रधान सम्पादक। एफ-44/6, तात्या टोपे (टी0 टी0) नगर, भोपाल-462003। 5.536।

त्रिपाठी, डा0 राधावल्लभ। 15-2-1949। एम0 ए0, पीएच0 डी0, डी0 लिट्0 (संस्कृत)। प्रेमपीयूषम्, महाकविकण्टकः, सन्धान, चतुष्टयी, वाल्मीकिविमर्शः, नाट्यमण्डपम्, भारतीयरङ्गसमुन्मेषः, निदाघलहरी, रोटिकालहरी, माण्डवम्, आदि 44 ग्रन्थ तथा अनेक शोधलेख। म0 प्र0 संस्कृत आकादमी से पुरस्कृत। जर्मनी आदि देशों में अनेक भाषण प्रदत्त। प्रोफेसर तथा अध्यक्ष संस्कृत विभाग, डा0 हरिसिंह गौर वि0 वि0 सागर (म0 प्र0)। 5.603।

त्रिपाठी, डा0 रुद्रदेव। 23.9.1925। मन्दसौर। पिता पं0 रमाकान्त शर्मा। पत्रदूतम्, पुत्रदूतम्, पादत्राणदूतम्, गायत्रीलहरी, बदरीशलहरी, बटुकभैरवलहरी, विनोदनी, डिण्डिमः, हाहाहूहू, प्रेरणा, गीतिगङ्गा, गीताञ्जलिः, वज्रमानवः, प्रासङ्गिकपद्यपीयूषम्, चित्रपद्यावली, महावीरचरितामृतम्, चित्रालंकारचन्द्रिका, अभिनवक्रीडातरङ्गिणी, संस्कृत साहित्य में शब्दालंकार (पीएच0 डी0 शोध प्रबन्ध), शब्दालंकार साहित्य का समीक्षात्मक सर्वेक्षण (डी0 लिट्0 शोध प्रबन्ध), मालवमयूर मासिक संस्कृत पत्र के संस्थापक सम्पादक, शोधप्रभा के सम्पादक। विशेष परिचय हेतु द्र0 देववाणीसुवासः 5.547-5.553। शोधाधिकारी, बृज मोहन बिडला, शोध संस्थान, उज्जैन। 5.184।

त्रिपाठी, पं0 सदानन्द 'दयालुः'। 5.165।

त्रिपाठी, डा0 सुरेन्द्र नारायण। 1-8-1928। एम0 ए0 (हिन्दी-संस्कृत), व्याकरणाचार्य, पीएच0 डी0। संस्कृते पञ्चदेवतास्तोत्रणि, गीतादर्शन। रीडर संस्कृत विभाग, राजधानी कालेज (दिल्ली वि0 वि0) नयी दिल्ली-110015। आर-74, वाणी विहार, नयी दिल्ली-110059। 5.131।

दाश, डा0 केशव चन्द्र । एम0 ए0, एम0 फिल्0, पीएच0 डी0, व्याकरणाचार्य, व्याकरणपारङ्गत। प्रणयप्रदीपः, हृदयेश्वरी, महातीर्थ, भिन्नपुलिनम्, अलका, निम्नपृथिवी, दिशा विदिशा, तिलोत्तमा, मधुयानम्, आवर्तम्, शीतलतृष्णा प्रतिपद्, निकषा, ऋतम् आदि। आचार्य न्यायदर्शन-विभाग, श्री जगन्नाथ संस्कृत वि0 वि0 पुरी-752002। 5.755।

दीक्षित, डा0 एस0 पी0। एम0 ए0, पीएच0 डी0 (अंग्रेजी)। अंग्रेजी विभाग शासकीय कालेज बिलासपुर। तेली पारा, बिलासपुर (म0 प्र0)। 5.111।

दीक्षित, डा0 हरिनारायण। 13-1-1936। पड़कुला जिला- जालौन। व्याकरणाचार्य, सांख्ययोगाचार्य, साहित्याचार्य, एम0 ए0, पीएच0 डी0, डी0 लिट्0, साहित्यरत्न । संस्कृतानुवादकलिका, संस्कृतनिबन्धरश्मि, श्रीमदप्पयदीक्षितचरितम्, तिलकमंजरी, राष्ट्रियसूक्तिसंग्रहः, संस्कृत साहित्य में राष्ट्रिय भावना, मेनकाविश्वामित्रम्, श्रीहनुमनद्दूतम, गोपालबन्धुः, भीष्मचरितम् (साहित्य अकादमी दिल्ली से 1992 में पुरस्कृत महाकाव्य) आदि अनेक ग्रन्थ। प्रोफेसर तथा अध्यक्ष संस्कृत विभाग, कुमायूँ वि0 वि0 नैनीताल। 196, बड़ा बाजार, मल्लीताल, नैनीताल-263001 (उ0 प्र0)। 5.050 ।

दुबे, डा0 योगेशचन्द्र। एम0 ए0, पीएच0 डी0 (संस्कृत)। गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद-211002। 5.482।

द्विवेदी, डा0 कैलाशनाथ। 11-1-1942। बैना (कानपुर)। एम0 ए0, पीएच0 डी0, डी0 लिट्0, साहित्याचार्य, साहित्यरत्न। कुसुमांजलि, गुरुमाहात्म्यमाला, शाकुन्तलीयम्, कालिदासीयम्, लेखाञ्जलिः, महाकविकालिदास, कालिदास की कृतियों में भौगोलिक स्थलों का प्रत्यभिज्ञान, ऋग्वैदिक भूगोल, भारतीयसंस्कृति की रूप रेखा, संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, भाषाविज्ञान एवं हिन्दी भाषा की भूमिका, 100 से अधिक शोधनिबन्ध प्रकाशित। संस्कृत-विभागाध्यक्ष, जनता महाविद्यालय, अजीतमल, इटावा (1990)। सम्प्रति- प्राचार्य मथुराप्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कौंच, जालौन (उ0 प्र0)। 5.570।

द्विवेदी, डा0 प्रेम नारायण। 5-6-1922। काव्यतीर्थ, एम0 ए0, पीएच0 डी0 । सौन्दर्यसप्तशती (बिहारीसतसई का संस्कृत काव्यानुवाद), रामचरितमानस तथा अन्यान्य हिन्दी ग्रन्थों के संस्कृत काव्यानुवाद। कृतकार्य प्राध्यापक, संस्कृत-विभाग, सागर वि0 वि0। पुर्व्याऊ टौरी, जनता स्कूल के समीप, सागर। 5.443।

द्विवेदी, डा0 रहस बिहारी। 1947। एम0 ए0, एम0 लिट्0, साहित्याचार्य, विद्यावाचस्पति। अनेक शोधपत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित। उपाचार्य संस्कृत विभाग, रानी दुर्गावती वि0 वि0। सी-9, सरस्वती विहार, जबलपुर-482001। 5.117।

धर, त्रिलोकीनाथ । एम0 ए0 (अंग्रेजी)। मैं समुद्र हूँ (हिन्दी कविता संग्रह)। कश्मीरी में 'कुन्दन' के नाम से लेखन। कृतकार्य उपनिदेशक (वित्त) राष्ट्रिय संस्कृत

संस्थान दिल्ली, राष्ट्रिय वेदविद्याप्रतिष्ठान के उपसचिव, सम्प्रति विशेष कार्याधिकारी, लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नयी दिल्ली-110016। सी- 2 /2 बी, लारेंस रोड, दिल्ली। 5.801।

डा0 नरेन्द्र देव । 5.161।

नानावटी, डा0 राजेन्द्र। एम0 ए0, पीएच0 डी0 (संस्कृत)। रीडर तथा अध्यक्ष संस्कृत-विभाग, एम0 एस0 वि0 वि0, बड़ौदा। बी/103 राजलक्ष्मी सोसायटी, ओल्ड पडरा रोड, बडोदरा (BARODA)-390015। 5.673।

नारंग, डा0 सत्यपाल। 18-1-1942। एम0 ए0, पीएच0 डी0 (संस्कृत)। कालिदास बिब्लियोग्राफी, संस्कृत-काव्यपद सूची सम्पादन में लग्न। अनेक ग्रन्थों के सम्पादक। भूतपूर्व प्रोफेसर संस्कृत विभाग, गुरुकुल काँगडी तथा पाण्डिचेरी वि0 वि0। रीडर संस्कृत विभाग, दिल्ली वि0 वि0 दिल्ली-110007। 31, विद्या अपार्टमेण्ट्स (सामने ज्वालापुरी-5), रोहतक रोड, दिल्ली-110041। 5.457।

पाठक, डा0 बनवारी लाल। 15-9-1936। पिता-पं0 शिवराम शास्त्री। एम0 ए0 (हिन्दी-संस्कृत-दर्शन-समाजशास्त्र-प्राचीनभारतीय इतिहास-संस्कृति), आचार्य (साहित्य-व्याकरण-न्याय-सांख्ययोग-वेदान्तदर्शन-धर्मशास्त्र-ज्योतिष), एल0 टी0, साहित्यरत्न, विद्यावारिधि,पीएच0 डी0, विद्यावाचस्पति। दशभाषाविद्। भारतीयज्यौतिषे रमलसाहित्यम्, बीसवीं शताब्दी का संस्कृत गद्य साहित्य (मुद्रणाधीन)। दलपत स्ट्रीट, मथुरा-281001। 5.221।

पाण्डेय, कैलाशचन्द्र। एम0 ए0। निदेशक दशपुर प्राच्य शोध संस्थान 2/67 नई आबादी, मन्दसौर (म0 प्र0)-458001। 5.622।

पाण्डेय, डा0 जनार्दन प्रसाद 'मणि'। एम0 ए0 (संस्कृत-हिन्दी), डी0 फिल्0 (संस्कृत)। निःष्यन्दिनी कविता संग्रह प्रकाशनाधीन। 136/2 सी / 2 चाँदपुर सलोरी, मानस नगर, सी0 लाइन, इलाहाबाद-211008 (उ0 प्र0)। 5.001।

पाण्डेय, डा0 रामलखन । एम0 ए0, पीएच0 डी0। सागरिका आदि पत्रिकाओं में पुस्तक समीक्षाएँ प्रकाशित। प्राध्यापक साहित्य विभाग, श्री रणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, शास्त्री नगर, जम्मू तवी। 5.587।

पाण्डेय, डा0 रामाशीष। 1944। जैतीपुर (नालन्दा)। एम0 ए0 (संस्कृत हिन्दी), पीएच0 डी0 साहित्य-व्याकरण-वेदाचार्य, बी0 एड0, साहित्यरत्न। बिहार शासन से वैदिक साहित्य पुरस्कार प्राप्त। मयूखदूतम्, शिखाबन्धनम्, इन्दिराशतकम्, कर्णार्जुनीयम्, कृष्णोदयम्, काव्यकादम्बकम्, प्रहेलिकाशतकम्। यूनिवर्सिटी प्रोफेसर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग, मारवाड़ी कालेज, राँची, बिहार। एम/47 हरमू हाउसिंग कालोनी, राँची (बिहार)। 5.695।

पाण्डेय, डा0 रूपनारायण। एम0 ए0, डी0 फिल्0 । संस्कृत प्रवक्ता प्र0 ना0

राजकीय इन्टर कालिज, रामनगर दुर्ग, वाराणसी-221008। 5.346।

भट्टि, प्रो0 देवदत्त। 3 जून 1939। पटियाला पंजाब। साहित्यरत्न, साहित्याचार्य, शास्त्री, एम0 ए0, पी0 ई0 एस0 । राष्ट्रपति पुरस्कृत, पंजाब शासन से पुरस्कृत, विभिन्न संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत। पंजाब शासन के साहित्यशिरोमणि 1992 पुरस्कार से सम्मानित। संस्कृत कार्य पुस्तिका प्रथम एवं द्वितीय, इरा, सिनीवाली, शम्पा, काञ्चनीवासयष्टि, ग्लिम्प्सेज् आफ सोसाइटी इन अथर्ववेद। संस्कृत-विभागाध्यक्ष एवं उपाचार्य, गवर्नमेन्ट कालेज, मालेरकोटला पंजाब-14803। स्टेडियम रोड, दिल्ली गेट मालेरकोटला-148023। 5.275।

भाटिया, डा0 पंतजलि कुमार। शास्त्री, एम0 ए0, एम0 फिल्0, पीएच0 डी0 (संस्कृत) डिप्लोमा इन फ्रेंच। प्राध्यापक, इन्स्टीट्यूट ऑफ संस्कृत एण्ड इण्डोलोजिकल स्टडीज़, कुरुक्षेत्र वि0 वि0, कुरुक्षेत्र (1990) सम्प्रति प्राध्यापक संस्कृत विभाग, पी0 जी0 डी0 ए0 वी0 कालेज, नेहरूनगर, नयी दिल्ली-110063। 596/11 डी0 मुखर्जी स्ट्रीट गाँधी नगर, दिल्ली-110031। 5.092।

'माधव', डा0 हर्षदेव। 20-10-1954। अहमदाबाद। एम0 ए0, बी0 एड0, (डी0 लिट्0, कैलिफोर्निया वि0 वि0), पीएच0 डी0, मुख्य पुराणों मे शापतत्व और उसका प्रभाव, गुजराती, संस्कृत एवं अंग्रेजी पत्रिकाओं में नियमित लेखन । रथ्यासु जम्बूवर्णानां शिराणाम्, शब्दानां निर्मक्षिके ध्वंसावशेषसु, अलकनन्दा, हाथफँफोसे आधला सुगन्धने (गुजराती), आठ ग्रन्थों का सम्पादन। 21 काव्य संग्रह 15 नाटक (संस्कृत में) अप्रकाशित। नवशैली के प्रयोगधर्मी कवि । सी-14/रीमा अपार्टमेण्ट्स वासणा बैरेज रोड, अमदाबाद, गुजरात-380007। 5.760।

मिश्र, इन्दुप्रकाश 'इन्दु' । एम0 ए0, डी0 फिल्0 (संस्कृत)। 8 बाघम्बरी रोड, इलाहाबाद। 5.475।

मिश्र, डा0 दुर्गाप्रसाद। एम0 ए0, पीएच0 डी0। प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, मेरठ कालेज, मेरठ। 5.136।

मिश्र, डा0 राजेन्द्र 'अभिराज'। पौष कृष्ण पञ्चमी वि0 सं0 1999। 26.12.1942। द्रोणीपुर (जौनपुर)। पिता-स्व0 पं0 दुर्गाप्रसाद मिश्र। माता-श्रीमती अभिराजी देवी मिश्रा। एम0 ए0, डी0 फिल्0 (संस्कृत)। आर्यान्योक्तिशतकम्, नवाष्टकमालिका, पराम्बाशतकम् (खण्डकाव्य), वाग्वधूटी, मृद्वीका (गीतसंग्रहः), जानकीजीवनम् (महाकाव्य), इक्षुगन्धा (साहित्य अकादमी दिल्ली द्वारा पुरस्कृत कथासंग्रह) अभिराजसप्तशती, नाट्यपञ्चामृतम्, शताब्दीकाव्यम्, कस्मै देवाय हविषा विधेम, देववाणीहुंकारशतकम्, यवद्वीपसाहित्यशतकम्, बालीप्रत्यभिज्ञानशतकम् आदि अनेक ग्रन्थ। उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी से बहुधा पुरस्कृत। देववाणी-परिषद् दिल्ली के वर्तमान अध्यक्ष। 'अर्वाचीनसंस्कृतम्' के परामर्शदाता। कालिदास समिति उज्जैन के सदस्य। देववाणी-सुवासः (डा0 रमाकान्त-शुक्लाभिनन्दनग्रन्थ) के प्रधान

सम्पादक। रीडर संस्कृत-विभाग, इलाहाबाद वि0 वि0 (1990) सम्प्रति (21 दिसम्बर 1990 से ) प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, हिमाचल प्रदेश वि0 वि0 शिमला। स्थायी पता- 8 बाघम्बरी रोड, इलाहाबाद। 5.302।

मिश्र, डा0 राम किशोर। 25-2-1939। सोरों (उ0 प्र0)। पिता- स्व0 पं0 श्री होतीलाल मिश्र। माता- स्व0 श्रीमती कलावती मिश्रा। साहित्य-व्याकरणाचार्य, एम0 ए0, पीएच0 डी0, (संस्कृत)। काव्यकिरणावलिः, विद्योत्तमाकालिदासीयम्, श्रीगरुडध्वजसपादशतकम्, किशोरकथावलिः, अङ्गुष्ठदानम्, वसन्ततिलकम्, अन्तर्दाहः, एकाङ्कमाला, एकाङ्कावलिः, गीतजवाहरम्, पतिपत्नीविवादम्, बालचरितम्, देवयानी, छन्दस्कलावती। अनेक ग्रन्थ उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी से पुरस्कृत। अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, महामना मालवीय डिग्री कालेज, खेकड़ा-201101 (मेरठ)

मिश्र, डा0 श्रीनिवास । एम0 ए0, पीएच0 डी0 (संस्कृत)। कृतकार्य रीडर तथा अध्यक्ष संस्कृत-विभाग, धर्म समाज कालेज, अलीगढ़। 3/1602 जनकपुरी, अलीगढ़। 5.287।

मुरकुटे, वि0 ह0। सम्पादक 'संस्कृत दुन्दुभि' औरंगाबाद (महाराष्ट्र)। एन-5 गुलमोहर कालोनी, इ-6/1 सिरकी, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)। 5.403।

रस्तोगी, डा0 श्रीमती लीना। 29-8-1939। मेहसाना (गुजरात)। एम0 ए0 (संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं मराठी) पीएच0 डी0 (संस्कृत)। मराठी, हिन्दी तथा संस्कृत में रचना। संस्कृत प्राध्यापिका, नूतन मराठी महाविद्यालय, उमरेड़। 'दिलासा' कोठारी ले आउट, उमरेड, जिला-नागपुर-441203। 5.207।

राजपाली, डा0 ओम्प्रकाश। एम0 ए0, पीएच0 डी0। 5.453।

लौ, डा0 रमेश कुमार। 18-1-1940। एम0 ए0, पीएच0 डी0। The Language of Tattiriya Brāhmaṇa । रीडर तथा अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, सनातन धर्म पी0 जी0 कालेज, मुजफ्फरनगर (उ0 प्र0)। 280 सिविल लाइन्स, मुजफ्फरनगर-251001। 5.282।

वर्मा, डा0 मदनलाल। तुलुम्बा (अब पाकिस्तान में)। एम0 ए0 (हिन्दी-संस्कृत), पीएच0 डी0 साहित्यरत्न । हिन्दी काव्य में युद्ध वर्णन वैशिष्ट्य, व्यावहारिक हिन्दी व्याकरण, काँटो से बिंधा गुलाब, विचारवीथी, रूपारूपं, गिरिकर्णिका, नव निमन्त्रण। उपप्राचार्य तथा अध्यक्ष हिन्दी-संस्कृत-विभाग, यूनीवर्सिटी कालिज (सान्ध्य), रोहतक। 133-एल/ए, बसेरा माडल टाउन, रोहतक-124001 । 5.778।

वैदिक, डा0 वेदवती। 9-4-1948। एम0 ए0, पीएच0 डी0। श्वेताश्वतर उपनिषद् : दार्शनिक अध्ययन। रीडर संस्कृत-विभाग, अरविन्द कालेज (सान्ध्य), मालवीयनगर, नयी दिल्ली-110017। ए-199 प्रेस एन्क्लेव, साकेत, नयी दिल्ली-110017। 5.246।

व्यास, डा0 सूर्यप्रकाश। एम0 ए0, पीएच0 डी0। प्राध्यापक, बौद्धदर्शन, संस्कृत विद्या संकाय, काशी हिन्दू वि0 वि0, बी-7।14, अन्नपूर्णा कालोनी, विद्यापीठ रोड, वाराणसी-221002। 5.687।

शर्मा, पं0 पद्मनाभ। 7-10-1929। पिता पं0 शंकर नारायण शास्त्री, आचार्य (वेद, व्याकरण, मीमांसा, साहित्य तथा अद्वैत वेदान्त)। अध्यक्ष संस्कृत-विभाग, भारतीय विद्याभवन, कस्तूरबा गाँधी मार्ग, नयी दिल्ली-110001। 5.799।

शर्मा, डा0 रामदत्त। 12 अक्टूबर, 1941। मंढा भामसिंह, जयपुर । एम0 ए0 (संस्कृत-हिन्दी), पीएच0 डी0, डी0 लिट्0, साहित्यरत्न, शिक्षाशास्त्री। दो दर्जन एवं शताधिक ग्रन्थ, शताधिक शोधपत्र एवं सहस्राधिक लेख प्रकाशित । राज्य एवं केन्द्र सरकार से कई रचनायें पुरस्कृत। हरियाणा शिक्षामण्डल में उपनिदेशक। प्रोफेसर तथा संस्कृत विभागाध्यक्ष, गवर्नमेन्ट पी0 पी0 कालेज भिवानी, हरियाणा। 277 विकासनगर भिवानी हरियाणा। 125021। 5.659।

शर्मा, डा0 रामेश्वरदत्त। 18-6-1934। एम0 ए0, पीएच0 डी0, शास्त्री। हरियाणासंस्कृतवृित्तम्, दिव्यदृष्टिः। अनेक रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। 3, विकासनगर, भिवानी-125021। 5.652।

शर्मा, डा0 श्यामबिहारीलाल। 5-5-1934। एम0 ए0 (अंग्रेजी- संस्कृत- हिन्दी) एम0 लिट्0, पीएच0 डी0। पाश्चात्त्य नव्यालोचन। रीडर, हिन्दी-विभाग, राजधानी कालेज (दिल्ली वि0 वि0) नयी दिल्ली-110015। सी-1 ए/28 ए, जनकपुरी नयी दिल्ली-110058। 5.073।

शर्मा, डा0 सन्ध्या। एम0 ए0, एम0 फिल्0, बी0 एड0, पीएच0 डी0 । दिल्ली प्रशासन शिक्षा विभाग में संस्कृत अध्यापिका। 70 चर्च रोड, जंगपुरा, भोगल, नयी दिल्ली-110014। 5.147।

शर्मा, डा0 हरिदत्त। 27-9-1948। हाथरस (उ0 प्र0)। पिता- पं0 लहरीशङ्कर शर्मा। एम0 ए0 (संस्कृत), आचार्य, डी0 फिल्0 जर्मन एवं रशियन डिप्लोमा। प्राध्यापक संस्कृत विभाग, इलाहाबाद वि0वि0। जर्मनी, फ्रांस, नीदरलैण्ड्स, आस्ट्रिया में शैक्षिक यात्राएँ। संस्कृत-काव्यशास्त्रीय भावों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन (समीक्षा ग्रन्थ) , निबन्ध- निकुञ्जम्, गीतकन्दलिका (उ0 प्र0 संस्कृत अकादमी से पुरस्कृत गीतकाव्य), त्रिपथगा, उत्कलिका (गीतिकाव्य)। 100 एलनगंज, इलाहाबाद-211002। 5.542।

शास्त्री, अमीरचन्द 'कविशिरोमणि' । 15-7-1918। पिता- श्री दुनीचन्द कुशल। शास्त्री, साहित्याचार्य, विद्यावाचस्पति। गीतिकादम्बरी, रससिद्धान्तः, राधारससुधानिधिस्तवभाषानुवादः, ऋग्वेदसायणभाष्यभाषानुवादः, कृष्णयजुर्वेद सायणभाष्यभाषानुवादः, श्रीजवाहरलालनेहरूचरितमहाकाव्यम्। राष्ट्रपति पुरस्कृत। कृतकार्य प्रोफेसर साहित्य-विभाग, श्रीलालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय विद्यापीठ, नयी

दिल्ली। ब्रह्मनिवास 11, विद्यापीठ चौराहे के निकट,वृन्दावन (1993) 5.710।

शास्त्री, डा0 प्रशस्यमित्र। (द्र0 दे0 सु0 4.284)। 5.405।

शास्त्री, डा0 विश्वनारायण। एम0 ए0, डी0 लिट्0, साहित्यव्याकरणमीमांसा से शास्त्री, काव्यतीर्थ। 40 ग्रन्थ असमी में 2 संस्कृत में, 4 अंग्रेजी में, कालिकापुराण, कथासरित्सागर और साहित्यदर्पण पर टीकायें। लोकसभा सदस्य(पूर्व)। राष्ट्रपति पुरस्कृत, अविनाशि पर साहित्य अकादमी से पुरस्कृत। उ0 प्र0 की सं0 अकादमी एवं हिन्दी संस्थान से पुरस्कृत। भारत छोड़ो आन्दोलन में सहभागिता, लोकसभा में प्रथम बार संस्कृत में भाषणकर्त्ता, सम्प्रति- उपाध्यक्ष, असम राज्य योजनायोग। 'ऋतायन', रेडक्रास रोड, चांदमारी, गुवाहाटी-781003। 5.727।

शास्त्री, प्रो0 सत्यव्रत । 29-9-1930। एम0 ए0, एम0 ओ0 एल0, पीएच0 डी0। बृहत्तरं भारतम्, श्रीबोधिसत्त्वचरितम्, श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरितम् (साहित्य अकादमी से पुरस्कृत), Essays on Indology, The Rāmāyaṇa- A Linguistic Study, Studies in Sanskirt and Indian Culture in Thailand, Kālidāsa in Modern Sanskrit Literature, Studies in the Language and the Poetry of the Yogavāsiṣṭha आदि। राष्ट्रपति-सम्मानित संस्कृत विद्वान्। दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग में प्रोफेसर, श्री जगन्नाथ संस्कृत वि0 वि0, पुरी के कृतकार्य कुलपति। सम्प्रति थाइलैण्ड के बैंकाक नगर में स्थित शिल्पाकर वि0 वि0 के प्राच्यभाषा-विभाग में अभ्यागताचार्य। स्थायी पता- 3/54 रूपनगर, दिल्ली-110007। साम्प्रतिक प्रावासिक संकेत- Prof. Satya Vrat, 82, Soi. 1, 'SUKHUMVIT BANAGKOK-10110 THAILAND। 5.313।

शुक्ल, अभिनव। 8-10-1976। छात्र एकादश कक्षा विज्ञान। आकाशवाणी तथा दूरर्दशन पर संस्कृत कार्यक्रम प्रदत्त । आर-6 वाणी विहार, नयी दिल्ली-110059। 5.817।

शुक्ल, अरविन्दनाभ। एम0 ए0 (संस्कृत)। प्रवक्ता संस्कृत, दून स्कूल, देहरादून (उ0 प्र0)। 5.509।

शुक्ल, आनन्दवर्धन। 21-8-1970। बी0 ए0, एम0 ए0 राजनीतिशास्त्र (उत्तरार्ध)। दूरदर्शन कार्यक्रम में सहभाग। हिन्दी तथा संस्कृत पत्र पत्रिकाओं में लेखन। आर-6 वाणी विहार, नयी दिल्ली-110059। 5.811।

शुक्ल, डा0 उमाकान्त । 18-1-1939। खुर्जा (उ0 प्र0)। पिता स्व0 ब्रह्मानन्द शुक्ल। एम0 ए0 (हिन्दी-संस्कृत), साहित्याचार्यः, पीएच0 डी0 (संस्कृत)। मङ्गल्या, परीष्टिदर्शनम्, कूहा तथा अन्य अनेक ग्रन्थ । उ0 प्र0 संस्कृत अकादमी से पुरस्कृत। रीडर संस्कृत विभाग, सनातन धर्म स्नातकोत्तर कालेज, मुजफ्फरनगर-251001। (उ0 प्र0)। 604, संजय मार्ग पटेल नगर, मुजफ्फरनगर (उ0प्र0)। 5.493।

शुक्ल, स्व0 आचार्य गणपति। 19-7-1931। साहित्याचार्य, एम0 ए0, बी0

एड0। भूदानयज्ञगाथा, कथामृतम् गान्धिशतश्लोकी नवकथोपदेश। भू0 पू0 संस्कृत व्याख्याता, शिक्षाविभाग म0 प्र0 शासन। कुमार मौहल्ला 11, बड़वाहा-451115 (म0 प्र0) 7-12-1992 को बड़वाहा में दिवंगत। 5.102।

शुक्ल पं0 चन्द्रदीप। विद्यारत्नम्, व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य, बी0 ओ0 एल0, एस0 टी0 सी0, साहित्यालंकार। महासचिव, बिहार राज्य संस्कृत साहित्य सम्मेलन। सम्पादक 'संस्कृतसम्मेलनम्' चौक, पटना सिटी (बिहार)। चाणक्य संस्कृत विद्यापीठ, श्री महावीर स्थान, बाहरी बेगमपुर, पटना सिटी, पटना-800008। 5.401।

शुक्ल, डा0 चन्द्रमौलि। 27-5-1966। मोदीनगर (उ0 प्र0)। बी0 ए0, बी0 ए0 एम0 एस0। चिकित्सक। दूरदर्शन कार्यक्रम सहभाग। 'देववाणी-सुवासः' के सह सम्पादक तथा प्रबन्ध सम्पादक। आर-6 वाणी-विहार, नयी दिल्ली-110059। 5.376।

शुक्ल, डा0 रमेश चन्द्र। 15-10-1909। (अभिलेखानुसार) धौलपुर। एम0 ए0 (संस्कृत), साहित्याचार्य, सांख्ययोगाचार्य, पीएच0 डी0। प्रबन्धरत्नाकर, नाट्यसंस्कृतिसुधा, गान्धिगौरवम्, लालबहादुरशास्त्रिचरितम्, बँगलादेशः, भरतचरितामृतम्, गीतमहावीरम्, सुगमरामायणम्, श्रीकृष्णचरितम्, इन्दिरायशस्तिलकम्, चारुचरितचर्चा, अभिनवहनुमन्नाटकम्, भारतस्वान्त्र्य-संग्रामेतिहासः, कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने, संस्कृतवैभवम्, रसदर्शनम्, नवभारतपुराणम्, विभावनम्, श्रीसीताचरित्रम्, श्रीराधाचरित्रम्। अनेक ग्रन्थों पर उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी से पुरस्कृत। उ0 प्र0 सं0 अकादमी तथा दिल्ली संस्कृत अकादमी से संस्कृत सेवा के लिए सम्मानित। कृतकार्य प्राध्यापक संस्कृत विभाग, श्रीवार्ष्णेय कालेज, अलीगढ़ तथा शास्त्रचूडामणि पण्डित। संस्थापक मंन्त्री, अलीगढ़ संस्कृत परिषद्। संस्थापकाध्यक्ष. देववाणी-परिषद्, दिल्ली। ए-1/203 जनकपुरी, नई दिल्ली 110058। 5.035।

शुक्ल, डा0 विष्णुकान्त। 19-10-1942। खुर्जा (उ0 प्र0)। एम0 ए0 (हिन्दी-संस्कृत), साहित्याचार्य, पीएच0 डी0। स्फाटिकीमाला, पूर्णकुम्भः। उ0 प्र0 संस्कृत अकादमी से पुरस्कृत। रीडर एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष, जे0 वी0 जैन कालेज, सहारनपुर (उ0 प्र0)। विभावना, प्रद्युम्ननगर, सहारनपुर (उ0 प्र0)। 5.734।

श्रीवास्तव, डा0 आनन्द कुमार। एम0 ए0, डी0 फिल्0 (संस्कृत)। प्राध्यापक। सी-632 गुरु तेगबहादुर नगर (करेली स्कीम) इलाहाबाद-211016। 5.295।

श्रीवास्तव, डा0 उर्मिला। एम0 ए0, डी0 फिल्0 (संस्कृत)। प्राध्यापिका। सी-632 गुरु तेगबहादुर नगर (करेली स्कीम) इलाहाबाद-211016। 5.523।

सिंह, डा0 वी0 के0। एम0ए0, डी0 फिल्0। संस्कृत अव्ययों का भाषावैज्ञानिक अध्ययन। प्राध्यापक संस्कृत-विभाग, इलाहाबाद वि0 वि0, इलाहाबाद। 5.0?7।

सेंगर, डा0 (श्रीमती) किरण सिंह । एम0 ए0, पीएच0 डी0। प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, कुँवर आर0 सी0 महिला महाविद्यालय, मैनपुरी (उ0 प्र0)। 5.059।